

RAV-P-3

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला [संस्कृत ग्रन्थाङ्क-२४]



श्रीमद्भरविषेणाचार्यप्रणीतम्

पद्मपुराणम्

[पद्मचरितम्]

द्वितीयो भागः

हिन्दीभाषानुवादसहितः



—सम्पादक—

पण्डित पन्नलाल जैन साहित्याचार्य

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

प्रथम आवृत्ति
१९०८ प्रति

साध, वीर नि० २४८५
वि० सं० २०१५
फरवरी १९५६

{ मूल्य
दस रुपये

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला

संस्कृत ग्रन्थाङ्क २४

इस ग्रन्थमालामें प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तामिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध
आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन
साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन और उसका मूल और यथासम्भव
अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन होगा। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ,
शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और
लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी
ग्रन्थमालामें प्रकाशित होंगे।

ग्रन्थमाला सम्पादक
डॉ. हीरालाल जैन,
एम० ए०, डी० लिट्०
डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये,
एम० ए०, डी० लिट्०



प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

मुद्रक :—वाङ्माल जैन फागुल, सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

स्थापनाद्व
फाल्गुन कृष्ण ६
वीर नि० २५७०

सर्वाधिकार सुरक्षित

विक्रम सं० २०००
१८ फरवरी सः

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी



स्वर्गायि मूर्तिदेवी, मानेश्वरी साहू गान्धिनगर जैन

JÑĀNAPĪTHA MURTIDEVĪ JAINA GRĀNTHAMĀLĀ
SANSKRIT GRANTHA, No 24

PADAMA PURĀṆA

[VOL.II]

of

RAVISENACĀRYA

WITH

HINDI TRANSLATION



EDITOR

Pandit. PANNALAL JAN SAAITYĀGHARYA

Published by

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA KĀSHĪ

First Edition }
1100 Copies }

MAGHA VIRA SAMVAT 2485
V. S. 2015
FEBRUARY 1959

{ Price
Rs 10/-

विषयानुक्रमिका

छन्वीसवाँ पर्व

विषय

पृष्ठ

राजा जनककी रानी विदेहाके गर्भमें स्थित सीता और भामरखलके पूर्वभवोका वर्णन । सीता चित्तोत्सन्ना थी और भामरखल कुरङ्गलमण्डित । कुरङ्गलमण्डितने चित्तोत्सवाका हरण किया था जिससे उसका पति पिङ्गल बहुत दुखी होवा हुआ मरकर महाकाल नामका असुर हुआ । पूर्व वैरके कारण वह कुरङ्गलमण्डितको नष्ट करनेके प्रयत्नमें तत्पर रहने लगा । रानी विदेहाके गर्भसे एक साथ पुत्र और पुत्रीका जन्म हुआ । महाकाल असुर अवधिज्ञानसे पुत्रको अपनी लीका हरण करनेवाला—कुरङ्गलमण्डित जानकर रोषसे उबल पड़ा और उत्पन्न होते ही उसने उसका अपहरण कर पश्चात् दयासे द्रवीभूत हो उसे आकाशसे नीचे गिरा दिया । साथ ही उसे दिव्य कुरङ्गलोसे अलङ्कृत भी कर दिया ।

१-१०

चन्द्रगति विद्यावरने आकाशसे पड़ते हुए पुत्रको मेलता और अपनी अपुत्रवती पुष्पवती रानीको सौंप दिया । पुत्र जन्मका उत्सव मनाया गया और पुत्रका भामरखल नाम रक्खा गया ।

११-१२

पुत्रापहरणके कारण राजा जनककी रानी विदेहाका कष्ट विलाप और राजा जनकके द्वारा सान्त्वनाका वर्णन ।

१३-१४

सीता-पुत्रीका बाल्यकाल तथा सौन्दर्यका वर्णन ।

१४

सत्ताईसवाँ पर्व

मलेच्छ राजाओंके द्वारा राजा जनकके देशमें उपद्रव होना । सहायताके लिए राजा जनकका दशरथको बुलाना । दशरथका तत्काल वहाँ जाना और मलेच्छोंको परास्त करना । दशरथके इस अमृतपूर्व सहयोगसे प्रसन्न होकर राजा जनकका, दशरथके पुत्र रामके लिए अपनी पुत्री सीताके देनेका निश्चय करना ।

१५-२२

अट्ठाईसवाँ पर्व

नारद सीताके मङ्गलमें पहुँचे । सीता उस समय दर्पणमें मुख देख रही थी । नारदकी प्रतिकृति दर्पणमें देख सीता भयभीत हो उठी । नारद और अन्तःपुरकी स्त्रियोंके बीच होहल्ला सुन द्वारपालोंने उसे रोकना चाहा । पर नारद जिस किसी तरह वचकर आकाशमार्गसे उड़ कैलास पर्वत पर गये । वहाँ सीतासे बदला लेनेका विचार कर उसका चित्रपट बनाते हैं और उसे ले जाकर विजयार्ध पर्वत पर स्थित रथनूपुर नगरके राजाके उद्यानमें छोड़ दिये हैं । चित्रपटको देखकर भामरखल उसपर मोहित हो उठता है । नारदने चित्रपटका परिचय दिया जिससे भामरखलका व्यामोह बढ़ता गया ।

२३-३०

राजा चन्द्रगतिकी संमतिसे चपलवेग नामका विद्याधर अश्वका रूप रख मिथिलासे राजा जनकको हरकर रथनूपुर नगर ले गया । राजा जनक वहाँका वैभव देखकर प्रसन्न हुआ । विद्याधरोंने राजा जनकके सामने भामरखलके लिए सीता देनेका प्रस्ताव किया परन्तु राजा जनकने दृढ़ताके साथ उत्तर दिया कि मैं दशरथके पुत्र रामके लिए पहलेसे देना निश्चित कर चुका हूँ । विद्याधरों द्वारा भूमिगोचरियोंकी निन्दा सुन राजा जनकने करार उत्तर दिया । अन्तमें 'यदि राम वज्रावर्त धनुष चढ़ा देंगे तो सीता ले सकेगे अन्यथा भामरखल लेगा' इस शर्त

परजनक मिथिलामें वापिस आये । मिथिलामें स्वयंवर हुआ और रामने धनुष चढ़ाकर सीताकी रत्नमाला प्राप्त की । लक्ष्मणने भी दूसरा धनुष चढ़ाकर अठारह कन्याएँ प्राप्त कीं । भरतका राजा जनकके भाई जनककी पुत्री लोक-सुन्दरीके साथ विवाह हुआ ।

३०-४४

उनतीसवाँ पर्व

आपादी अष्टाह्निकामें राजा दशरथने भगवान्‌का अभिषेक कर गन्धोदक, सब रानियोंके पास भेजा । सुप्रभा रानीके पास एक वृद्ध कञ्चुकी ले गया इसलिए वह देरसे पहुँचा । अन्य रानियोंके पास तरुण दासियाँ ले गई थीं इसलिए जल्दी पहुँच गया । सुप्रभाने इसे अपना अपमान समझ प्राणघात करनेके लिए विष मँगाया ।

४५-४७

कञ्चुकी विष लेकर सुप्रभाके पास पहुँचा ही था कि उसी समय राजा दशरथ उसके पास पहुँच गये । राजा तथा अन्य रानियाँ जब तक उसे समझाती हैं तब तक वृद्ध कञ्चुकी गन्धोदक लेकर आ पहुँचा ।

४७-४८

प्रसन्न होकर सुप्रभाने गन्धोदक शिर पर धारण किया । राजा दशरथने कञ्चुकीसे विलम्ब का कारण पूछा तो उसने अपनी वृद्ध अवस्थाको ही उसका कारण बतलाया । उसकी जर्जर अवस्था देख राजाको वैराग्य उत्पन्न हो आया । उसी समय अयोध्याके महेन्द्रोदय उद्यानमें सर्वभूतहित नामक मुनिराजका आगमन हुआ ।

४८-५३

तीसवाँ पर्व

विद्याधरोने यथार्थ बात भामरडलसे छिपा रखी थी इसलिए वह सीताके मिलनेमें विलम्ब देख विह्वल हो उठा । निदान, एक दिन लज्जा छोड़ उसने पिताके समक्ष ही अपने मित्र वसन्त-ध्वजको उपालम्भ दिया । तब विद्याधरोने सब बात स्पष्ट कर दी । भामरडल उत्तेजित हो उठा और सीताहरणकी भावनासे सेना लेकर अयोध्याकी ओर चला । विदग्ध नामक देशके मनोहर नगर पर जब उसकी दृष्टि पड़ी तब उसे पूर्वभवका स्मरण हो आया जिससे मूर्च्छित हो गया । सचेत होनेपर अपने कुविचारोंके प्रति उसे बहुत घृणा हुई । उसने चन्द्रयान विद्याधरको बताया कि मैं पूर्वभवमें यहाँका राजा कुरडलमण्डित था । धर्मके प्रभावसे राजा जनकका पुत्र हुआ । उत्पन्न होते ही मेरा हरण हुआ । और आपके यहाँ पलकर मैं पुष्ट हुआ । जिस सीताके व्यामोहसे मैं उन्मत्त हो रहा था वह तो मेरी सगी बहिन है । अन्तमें भामण्डल सब लोगोंके साथ अयोध्याके महेन्द्रोदय उद्यानमें स्थित सर्वभूतहित मुनिराजके पास जाता है । चन्द्रयान विद्याधर दीक्षा लेनेका भाव प्रकट करता है । भामरडलका विरदगान होता है जिसे सुनकर सीता जागती है । सर्वभूतहित मुनिके पास सबका मिलन होता है । सीता अपने भाईसे मिलती है । दशरथ राजा जनकको खबर देते हैं । राजा जनक सपरिवार आकर अपने जन्महृत पुत्रसे मिलकर परम आनन्दका अनुभव करते हैं । राजा जनक अपना राज्य अपने भाई जनकको सौंपकर भामरडलके साथ विजयार्थ चले जाते हैं ।

५४-६६

इकतीसवाँ पर्व

सर्वभूतहित मुनिराजके द्वारा दशरथके पूर्व भवोंका वर्णन ।

६५-७२

पूर्वभवोंका वर्णन सुन राजा दशरथका विरक्त हृदय और भी अधिक विरक्त हो जाता है । वे मन्त्रियोंके समक्ष अपना अटार्य निश्चय प्रकट कर रामके राज्याभिषेककी घोषणा करते हैं । समय पाकर भरतकी माँ कैकया, अपना पूर्वस्वीकृत वर माँगकर भरतके लिए राज्य माँगती है । राजा दशरथ असमञ्जसमें पड़ जाते हैं । रामके समक्ष वे अपनी इस दुरवस्थाको प्रकट

करते हैं। राम दृढ़ताके साथ कहते हैं कि आप भरतको राज्य देकर अपने सत्यवचनको रक्षा कीजिये मेरी चिन्ता छोड़िये। इसी बीच भरत संसारसे विरक्त हो दीक्षाके लिए महलसे नीचे उतरता है तब राजा दशरथ और राम उसे जिस किसी तरह समझा बुझाकर रोकते हैं। भरतका राज्याभिषेक होता है।

७३-७८

पिताके पाससे उठकर राम अपनी माता अपराजिता (कौशल्या) के पास जाते हैं और उसे समझाकर तथा सान्त्वना देकर वनको जानेके लिए उद्यत होते हैं। सीता और लक्ष्मण उनके साथ हो जाते हैं। राम लक्ष्मणके साथ प्रजाके अनेक लोग थे। सूर्यास्तका समय आया और राम लक्ष्मण तथा सीता तीनों ही नगरके बाहर श्री जिनमन्दिरमें ठहर गये। दशरथकी अन्य रानियोंने उनके पास जाकर प्रार्थना की कि आप राम लक्ष्मणको लौटाकर शोकसागरमें डूबते हुए इस कुलकी रक्षा करो परन्तु दशरथके विरक्त हृदयने अब इस प्रपञ्चमें पडना उचित नहीं समझा।

७९-८५

वत्तीसवाँ पर्व

राम लक्ष्मण, सीताको साथ ले मध्यरात्रिके समय जब कि सब लोग बाह्यमण्डपमें सो रहे थे मन्दिरके पश्चिम द्वारसे निकलकर दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़े। प्रातः जागनेपर कितने ही लोग उनके पीछे दौड़े तथा कुछ दूर तक साथ गये। अन्तमें परियात्रा नामक वनके बीचमें पड़नेवाली भयंकर नदीको राम लक्ष्मण तैरकर पार कर गये परन्तु सामन्त एवं अन्य प्रजाजन उसे पार नहीं कर सके। फलस्वरूप कितने ही घर लौट गये और कितने ही दीक्षित हो गये। तदनन्तर राजा दशरथने सर्वभूतहित मुनिराजके पास दीक्षा धारण कर ली। कौशल्या और सुमित्रा पति एवं पुत्रके बिना बहुत दुःखी हुई। भरतकी माता कैकया इन दोनोंकी दुःखपूर्ण अवस्था देख भरतसे कहती है कि तू राम लक्ष्मणको लौटानेके लिए जा। मैं भी पीछेसे आती हूँ। तदनन्तर सघन वनमें एक सरोवरके तीरपर भरतने राम लक्ष्मणको देखा। सबका मिलाप हुआ। कैकया और भरतने वारिस चलनेका बहुत आग्रह किया परन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुआ। राम वापिस नहीं लौटे। भरत निराश हो वापिस लौट आया और राज्यका पालन करने लगा। उसने द्युतिमन्दिरके समक्ष प्रतिज्ञा ली कि मैं राम के वरानामात्रसे मुनिदीक्षा ले लूँगा। द्युतिमन्दिरकने सबको धर्मका यथार्थ उपदेश दिया। ८६-१००

तैंतीसवाँ पर्व

क्रम-क्रमसे राम लक्ष्मण चित्रकूट वनको पारकर अवन्ति देशमें पहुँचे। वहाँ एक ऊबड़ देशको देख तत्रागत दीनहीन मनुष्यसे उसका कारण पूछा। उसने इसी प्रकारमें दशाज्ञपुरके राजा वज्रकर्णका वृत्तान्त सुनाया। तदनन्तर सिंहोदरकी उद्दण्डताका वर्णन सुनाया। सिंहोदर और वज्रकर्णके पारस्परिक संघर्षका निरूपण किया और यह बताया कि सिंहोदरने कुपित होकर इस हरे-भरे देशको ऊबड़ किया है।

१०१-११३

राम लक्ष्मण आहार प्राप्त करनेकी इच्छासे आगे बढ़ते हैं। लक्ष्मणके सौन्दर्यसे आकृष्ट हो राजा वज्रकर्ण उसे उत्तमोत्तम भोज्यपदार्थ देता है। लक्ष्मण उन सबको लेकर रामके पास आता है। वज्रकर्णके इस आतिथ्य सत्कारका रामके हृदयमें भारी प्रभाव पड़ता है और वे लक्ष्मणको वज्रकर्णकी रक्षाके लिए भेजते हैं। लक्ष्मण भरतका सेवक बनकर सिंहोदरकी अक्ल ठिकाने लगाता है और उसे परास्तकर वज्रकर्णकी रक्षा करता है। अन्तमें वज्रकर्ण और सिंहोदरकी मित्रता करार कर राम लक्ष्मण आगे बढ़ते हैं।

११४-१२४

चौतीसवाँ पर्व

राम वनमें विराजमान हैं और लक्ष्मण पानी लेनेके लिए एक सरोवरके किनारे जाते हैं। वहाँ हाथी पर चढ़ा एक युवराज अपने सेवकोंके द्वारा लक्ष्मणको बुलाकर उसके प्रति प्रेम प्रकट करता है। लक्ष्मणके यह कहने पर कि प्रथम मुझे अपने भाईके पास भोजन सामग्री भेजना है। यह सुन उस युवराजने अपने पास उत्तमोत्तम भोजन सामग्री बुलाकर प्रधान द्वारपाल द्वारा राम और सीताको अपने मण्डपमें बुलाया। लक्ष्मण वहाँ विद्यमान था ही सीता और राम भी वहाँ पहुँच गये। सबका आतिथ्य सत्कार करनेके बाद युवराजने अपना असली रूप प्रकट किया। वह कन्या होने पर भी अचतक कुमारके वेषमें रह रहा था। पूछने पर उसने इसकी आश्चर्यकथा कह सुनाई। मेरा पिता बालिखिल्य मेरे जन्मके पूर्वसे ही म्लेच्छ राजाके यहाँ कैद है। उनके आभावमें मैं कुमारका वेष रख राज्यका पालन कर रही हूँ मेरा नाम कल्याणमाला है। राम-लक्ष्मण-सीताने उसे सान्त्वना दी। तदनन्तर आगे चलकर उन्होंने म्लेच्छ-राजाको आज्ञाकारी बनाकर बालिखिल्यको बन्धन-मुक्त कराया।

१२५-१३२

पैंतीसवाँ पर्व

वन विहार करते-करते सीता थक जाती है। प्याससे उसका मुख सूख जाता है। जिस किसी तरह सान्त्वना देकर राम-लक्ष्मण उसे समीपवर्ती गाँवमें ले जाते हैं और सब क्रमप्राप्त कपिल ब्राह्मणकी यज्ञशालामें ठहर जाते हैं। ब्राह्मणकी द्वारा दिया ठण्डा पानी पीकर सीताका हृदय शान्त हो जाता है, परन्तु उसी समय लकड़ियोंका भार शिर पर रखे हुए कपिल ब्राह्मण आता है और हन्नें अपनी यज्ञशालामें ठहरा देख ब्राह्मणकी प्रति रोषसे उबल उठता है। वह सबका तिरस्कार कर उन्हें घरसे निकलनेके लिए बाध्य करता है। उत्तेजित लक्ष्मणको शान्त कर राम और सीता वनमें एक बट वृक्षके नीचे पहुँच कर विश्राम करते हैं। आकाशमें घनघटा उमड़ आती है। जोरदार वर्षा होने लगती है तथा राम-लक्ष्मण सीता असहायकी तरह पानीसे भीगने लगते हैं। यक्षपति अपने अवधिशानसे उन्हें बलभद्र और नारायण जानकर नगरीकी रचना करता है और उसमें सबको ठहराता है। अचानक कपिल ब्राह्मण उस नगरीके पास जाकर जैन धर्म धारण करता है और रामकी दान-वीरतासे प्रलुब्ध चित्त हो ब्राह्मणकी साथ उनके दरबारमें जाता है। वहाँ लक्ष्मणको देख भयसे भागनेका प्रयत्न करता है पर सान्त्वना मिलने पर धीरे-धीरे बैठकर रामका स्तवन करना है। राम उसे अपरिमित धनधान्य-सम्पदासे परिपूर्ण करते हैं। अपकारके बदले उपकारका अनुभव कर ब्राह्मण लज्जासे नतमस्तक हो गया। अन्तमें ब्राह्मणने गृहस्थीका भार स्त्रीके लिए सौंप जिन-दीक्षा धारण कर ली।

१३३-१४६

छत्तीसवाँ पर्व

वर्षाकाल वीतने पर जब राम उस यक्ष निर्मित रामपुरीसे चलने लगे तब यक्षराजने उनसे क्षमा माँगी। महावनको पारकर राम, वैजयन्तपुरके समीपवर्ती मैदानमें पहुँचे। रात्रिके समय एक वृक्षके नीचे ठहर गये। वैजयन्तपुरके राजा पृथिवीधर और रानी इन्द्राणीकी वनमाला नामक पुत्री प्रारम्भसे लक्ष्मणको चाहती थी पर उनके वन भ्रमणका समाचार सुन राजा पृथिवीधर उसका अन्य कुमारके साथ विवाह करनेके लिए उद्यत हुआ। यह देख, वनमाला आत्म-घातकी भावना लेकर रात्रिके समय अपनी सखियोंके साथ वनदेवीकी पूजाका बहाना कर वनमें गई और सायके सब लोगोंके सो जाने पर वह उत्तरीय वस्त्रकी फाँसी बना मरनेके लिए तैयार हुई। लक्ष्मणने छिपे-छिपे उसके पास पहुँच कर उसकी प्राण-रक्षा की।

अपने आपको प्रकट किया। रामके पास सब लोग पहुँचे। राजा पृथिवीधर रानी इन्द्राणीके साथ सन-धनकर उनके पास गये। आमोद-प्रमोदसे लक्ष्मणका वनमालाके साथ विवाह हुआ।

१४७-१५४

सैंतीसवाँ वर्ष

राजा पृथिवीधरके समामण्डपमें राम सुखासीन हैं उसी समय राजा अतिवीर्यका दूत एक पत्र राजा पृथिवीधरको देता है। उसमें लिखा था कि मैं अयोध्याके राजा भरतके प्रति अभियान कर रहा हूँ अतः सहायताके लिए सदल बल शीघ्र पधारो। रामके पूछने पर दूतने भरतके प्रति होनेवाले अभियानका कारण भी बताया। रामका संकेत पाकर राजा पृथिवीधरने दूतको आज्ञासन देकर बिदा किया। तदनन्तर परस्परके विचार-विमर्शके बाद, राम लक्ष्मण-सीता और पृथिवीधरके पुत्रोंके साथ अतिवीर्यकी राजधानीकी ओर चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने बड़ी गम्भीरताके साथ कर्तव्य मार्गका निर्णय कर, राम-लक्ष्मण सीताको आर्यिकाओंके पास छोड़ नर्तकियोंके वेषमें अतिवीर्यके दरबारमें गये। वहाँ उन्होंने अपने अनुपम संगीतों और कलापूर्ण नृत्योंसे उसे मन्त्र-मुग्धकी तरह वशीभूत कर लिया। रङ्ग जमा हुआ देख नर्तकीने डौट दिखाते हुए कहा कि तू भरतके प्रति जो अभियान कर रहा है यह तेरी मृत्युका कारण है अतः यदि जीवित रहना चाहता है तो भरतको प्रणाम कर। इस प्रकार अपनी तर्जना और भरतकी प्रशंसा सुन क्रुद्ध हो अतिवीर्यने नर्तकियोंको मारनेके लिए जो तलवार ऊपर उठाई थी लक्ष्मणने उसे छपक कर छीन लिया और उससे ही सब राजाओंको भयभीत कर अतिवीर्यको जीवित पकड़ लिया। नर्तकियोंकी यह विचित्र शक्ति देख आगत राजा-महाराजा पलायमान हो गये। राम-लक्ष्मणने बन्धनबद्ध अतिवीर्यको ले जाकर सीताके सामने रख दिया। उसकी दुःखपूर्ण अवस्था देख सीता दयासे द्रवोभूत हो गई। फलस्वरूप उसने उसे छुड़वा दिया। अतिवीर्यने सब मान छोड़ कर जिनदीक्षा धारण कर ली। राम-लक्ष्मण रात्रिमेवकी तरह अत्यन्त रूपसे भरतकी रक्षा कर आगे बढ़ गये।

१५५-१६६

अड़तीसवाँ वर्ष

रामने अतिवीर्यके पुत्र विजयधरका राज्याभिषेक किया। अतिवीर्यके मुनि होनेका समाचार सुन भरत उनके दर्शन करनेके लिए गया। दर्शन कर क्षमा मोंगी, मुनिराजकी स्तुति की। भरतको नर्तकियोंका पता नहीं था अतः वह आश्चर्यसागरमें निमग्न था। वनमालाको आज्ञासन दे राम-लक्ष्मण आगे बढ़े। क्षेमाक्षलिपुर नगरके बाहर सब ठहरे। भोजनोपरान्त लक्ष्मण, रामकी आज्ञासे नगरमें प्रविष्ट हुए और वहाँके राजा शत्रुदमनकी शक्तिको फेल कर उसकी पुत्री जिनपद्माको अपने पर आसक्त किया। जिनपद्माका पिता राजा शत्रुदमन सेनाके साथ राम और सीताके पास गया। राम सेनाको आती देख पहले तो आश्चर्यमें पड़े परन्तु बादमें यथार्थ बातका पता चलने पर निश्चिन्त हुए। लक्ष्मणका जिनपद्माके साथ विवाह हुआ।

१६७-१७७

उनतालीसवाँ वर्ष

राम-लक्ष्मण तथा सीताका वंशस्थलुति नगरमें जाना, भागते नगरवासियोंके द्वारा पर्वतसे आते हुए भयङ्कर शब्दकी सूचना तथा रामके द्वारा उसका अनुसरण। देशभूषण तथा कुलभूषण नामक मुनियोंके दर्शन करके उनका अग्निप्रभ देवके द्वारा किये हुए उपसर्गको दूर करना। तथा मुनियोंको केवलज्ञान उत्पन्न होना। मुनियों द्वारा पश्चिमोत्तरकी राजा विजय-पर्वत तथा रानी धारिणीके दूत अमृतस्वरके पुत्र उदित तथा मुदितकी कथाका भवान्तर सहित वर्णन, भवान्तर सहित देशभूषण तथा कुलभूषण मुनियोंका वर्णन।

१७८-१८४

चालीसवाँ पर्व

वंशस्थलपुरके राजा सुरप्रभ द्वारा चरमशरीरी रामका अभिवादन, रामचन्द्रका दण्डक वन प्रस्थान तथा रामगिरिका वर्णन ।

१६५-१६८

इकतालीसवाँ पर्व

राम-लक्ष्मण तथा सीताका कर्णरवा नदीको प्राप्त कर उसमें अवगाहन तथा सुगुप्ति और गुप्ति नामक दो मुनियोंको आहार दान देनेसे पञ्चाश्वर्यकी प्राप्ति । मुनिराजके दर्शनसे ग्रस्त पत्नीका पूर्वभव ज्ञान उत्पन्न होना तथा मुनिवन्दनाके कारण दिव्य शरीरकी प्राप्ति, मुनि द्वारा ग्रन्थके पूर्वभवका कथन, मुनिराज द्वारा अपने पूर्वभवका वर्णन कर अपने स्थानको प्रस्थान, राम द्वारा ग्रन्थका 'जययु' नाम करण तथा उसका रामके आश्रममें निवास ।

१६९-२१०

बयालीसवाँ पर्व

पात्र दानके प्रभावसे राम-लक्ष्मण रत्न तथा सुवर्णादि सम्पदासे सम्पन्न हो गये । तदनन्तर वे मनोरथ रथ पर आरुढ़ हो दण्डक वनमें स्वेच्छानुसार भ्रमण करने लगे । नाना छन्दोमें दण्डक वनका अद्भुत वर्णन । वनके सौन्दर्यसे प्रसन्न हो राम पहले तो लक्ष्मणसे कहते हैं कि जाओ अपनी माताओंको ले आओ फिर कुछ रुक कर कहते हैं कि नहीं अभी वर्षा ऋतु है अतः यातायातमें कष्ट होगा । शरद् ऋतुके सुनहले दिन आने पर मैं स्वयं जाऊँगा ।

२११-२२१

तैंतालीसवाँ पर्व

शरद् ऋतुकी निर्मल चोदनी आकाशमें छिटकने लगी । एक दिन लक्ष्मण वनमें भ्रमण करते-करते दूर निकल गये । उन्हें एक ओरसे अद्भुत गन्ध आई उसी गन्धसे आकृष्ट हो वे उस ओर बढ़ते गये । श्रेणिकके पूछने पर गौतम स्वामीने राज्ञस वंश तथा लंकाका वर्णन किया । एक वाँसके भिड़ेमें शम्भूक सूर्यहास खड्ग सिद्ध कर दिया था । देवोपनीत खड्ग आकाशमें लटक रहा था । उसीकी सुगन्धि सर्वत्र फैल रही थी । लक्ष्मणने लज्जकर सूर्यहास खड्ग हाथमें ले लिया और उसकी तीक्ष्णताकी परख करनेके लिए उसे उन्होंने उसी वाँसके भिड़े पर चला दिया । चलाते ही वाँसोका मिड़ा कट गया और साय ही उसके भीतर स्थित शम्भूक भी कट कर दो टुक हो गया । शम्भूक, रावणकी वहिन चन्द्रनखाका पुत्र था । वह प्रतिदिन पुत्रको भोजन देनेके लिए आती थी । उस दिन पुत्रके दो टुक देख उसके दुःखका पार नहीं रहा । उसका करुण विलाप आकाशमें गूँजने लगा । कुछ समय बाद राम-लक्ष्मणके सौन्दर्यसे उसका मन हरा गया और वह उन्हें प्राप्त करनेके लिए छलसे कन्या वन गई । राम-लक्ष्मण उसकी मायासे विचलित नहीं हुए ।

२२२-२३१

बयालीसवाँ पर्व

कामेच्छा पूर्ण न होनेपर चन्द्रनखाको पुत्रशोकने फिर घर ढवाया जिससे विलाप करती हुई वह अपने पति खरदूषणके पास गई । खरदूषणने स्वयं आकर पुत्रको मरा देखा । उसका क्रोध उबल पड़ा । वह राम लक्ष्मणके साथ युद्ध करनेके लिए उठ खड़ा हुआ । खरदूषणने रावणको भी इस घटनाकी खबर दी थी । खरदूषणका इष्ट लक्ष्मणके साथ घमासान युद्ध होता है उधर रावण उसकी सहायताके लिए आता है तो व्रीचमें सीताको देख मोहित हो उठता है । छलसे सिंहनाद कर रामको लक्ष्मणके पास भेज देता है और सीताको एकाकिनी देख हर ले जाता है । जययु शक्ति भर प्रयत्न करता है पर सफलता नहीं प्राप्त कर पाता है । रण-भूमिमें रामको देख लक्ष्मण घटित घटनाकी आशंकासे दुःखी हो उन्हें तत्काल वापिस भेजते हैं । पर राम वापिस आनेपर सीताको नहीं पाते हैं । उसके बिना करुण विलाप करते हैं । २३२-२४३

पैतालीसर्वा पर्व

लक्ष्मण खरदूषणको निष्प्राणकर जब रामके पास आते हैं तब उन्हें सीतारहित देख बहुत दुःखी होते हैं। लक्ष्मण अपने उपकारी विराधित विद्याधरका रामको परिचय देते हैं। उसी समय विराधित सेना सहित रामके समीप आ पहुँचता है। रामको बहुत खुति करता है। लक्ष्मण उससे सीता हरणकी बात कहते हैं। विराधितने अपने मन्त्रियोंको सीताका पता लगानेका आदेश दिया। अर्कजयीका पुत्र रत्नजयी सीताका रोदन सुन रावणके पीछे दौड़ा परन्तु रावणने उसकी आकाशगामिनी विद्या छीनकर उसे नीचे गिरा दिया। वह समुद्रके मध्य कम्बु नामक द्वीपमें पड़ा। विद्याधरोंको सीताका पता नहीं लगा। अनन्तर विराधितके कहनेसे राम अलंकार पुर (पाताल लंका) गये। वहाँ सीताकी विरहानलमें झुंसते रहे। २४४-२५१

द्वितीयसर्वा पर्व

रावण सीताको लेकर लंकामें पहुँचा। वहाँ पश्चिमोत्तर दिशामें स्थित देवार्ण्य नामक उद्यानमें सीताको ठहराकर उससे प्रेम याचना करने लगा। शीलवती सीताने उसकी समस्त प्रार्थनाएँ ठुकरा दीं। रावणने माया द्वारा सीताको मयमीत करनेका प्रयत्न किया पर वह कर्तव्य पथसे रक्षमात्र भी विचलित नहीं हुई।

रावणकी विप्रलम्भजन्य दुर्दशा देख मन्दोदरीने उसे बहुत समझाया पर सब व्यर्थ हुआ। रावण की दुर्दशासे दुखी हो मन्दोदरी सीताको समझानेके लिए गई पर सीताने ऐसी फटकार दी कि मन्दोदरीको उत्तर नहीं सूझ पड़ा। प्रातःकाल होने पर रावण पुनः सीताके पास गया पर सीताको अनुकूल नहीं कर सका। मन्त्रियोंद्वारा प्रकृत बातपर गम्भीर विचार विमर्श हुआ और लंकाकी रक्षाके उपाय किये गये। २५२-२६८

सैतालीसर्वा पर्व

विट सुग्रीवके द्वारा उपद्रुत होनेके कारण किष्किन्वापुरीका स्वामी सुग्रीव दुःखी होकर इधर-उधर भ्रमण करता फिरता था। उसी समय वह विराधितकी पाताललंकामें आया। विराधितने उसका सन्मान किया। वहाँ रामके साथ उसका परिचय हुआ। मन्त्रियोंने रामसे सुग्रीवकी दुःखद दशाका वर्णन किया जिसे सुनकर रामने उसकी सहायता करना स्वीकृत किया। रामने जाकर कृत्रिम सुग्रीव साहसगति विद्याधरको निष्प्राण किया। सुग्रीवकी तेरह कन्याओंने रामको बरा***। २६९-२८०

अष्टतालीसर्वा पर्व

राम सीताके विरहसे संतप्त हैं। सीताका पता चलानेमें सुग्रीवको विलम्ब थुका देख लक्ष्मण उसके प्रति क्रुपित होते हैं। सुग्रीव रामके पास आकर क्षमा मांगता है और अपने सेवकोंको सीता का पता लगानेका आदेश देता है। रत्नजयीने पता दिया कि सीताको लंकाधिपति रावण हर कर ले गया है। रावणका नाम सुन विद्याधरोंके होश ठण्डे पड़ जाते हैं। रामके प्रबल आग्रह वश वानर यह कहकर सहयोग देनेको तत्पर होते हैं कि रावणकी मृत्यु कोटिशिला उठाने वालेके द्वारा होगी ऐसा अनन्तवीर्य सुनीन्द्रने कहा था सो यदि आप लोग कोटिशिला उठा सकें तो हम रावणके साथ युद्ध करनेके लिए उद्यत हो सकते हैं। लक्ष्मणने उसी समय जाकर कोटिशिला उठा दी। वानर उनकी शक्तिका विश्वास कर युद्धके लिए तैयार हुए। २८१-२९८

उनचासवाँ पर्व

सुग्रीवने हनूमान्को बुलानेके लिए अपना कर्मभूति नामका दूत भेजा । इसने हनूमान्से खरदूषण की मृत्युका समाचार कहा जिससे उसके अन्तःपुरमें शोक छा गया । विष्ट सुग्रीवके नाशका समाचार सुन हनूमान्की दूसरी छी पञ्चरंगा प्रसन्न हुई । रामकी महिमा सुन हनूमान् उनके समीप आया और विनीत भावसे उनकी स्तुति कर सीताके पास राम संदेश भेजनेके लिए लंका गया ।

२६६-३०७

पचासवाँ पर्व

लंका जाते समय हनूमान् मार्गपतिव्रत मातामह महेन्द्रके नगरमें पहुँचा वहाँ उसके द्वारा किये हुए माताके अपमानका स्मरण होनेसे उसे बहुत रोष उत्पन्न हुआ जिससे उसने उसे बलपूर्वक परास्त किया । हनूमान्का आदेश पाकर राजा महेन्द्र अपनी पुत्री अञ्जनाके साथ मिला । ३०८-३१२

इक्यावनवाँ पर्व

दक्षिमुख द्वीपमें स्थित मुनियोंके ऊपर दावानलका उपसर्ग हनूमान्ने दूर किया । समीप स्थित गन्धर्व-कन्याओंने विद्यासिद्ध हो जानेके कारण हनूमान्के प्रति कुतश्चता प्रकट की । रामको गन्धर्व-कन्याओंकी प्राति हुई ।

३१३-३१६

बावनवाँ पर्व

अचानक अपनी सेनाकी गति रुक जानेसे हनूमान् आश्चर्यमें पड़ा । आगे बढ़ कर उसने मायामय कोटको ध्वस्त कर दिया । और थोड़ी देरमें ही वज्रावुषको प्राणरहित कर दिया । तदनन्तर उसकी पुत्री लंकासुन्दरीके साथ हनूमान्का विवाह हुआ ।

३१७-३२३

त्रेपनवाँ पर्व

हनूमान् लंकामें जाकर सर्व प्रथम विभीषणसे मिलता है और रावणके दुष्कृत्यका उसे उपासम्भ वेता है । तदनन्तर विभीषणकी विवशताका विचार कर प्रमदोद्यानमें जाता है । वहाँ अशोक वृक्षके नीचे सीताको देख अपने जन्मको सफल मानता है । वह उसकी गोदमें रामप्रदत्त अंगूठी छोडता है । सीता उसे बुलाती है । वह प्रकट होकर विनीतभावसे सीताके समक्ष आता है और सीताके लिए रामका संदेश सुनाता है । ग्यारहवें दिन रामका संदेश पाकर सीता आहार ग्रहण करती है । मन्दोदरी आदिके साथ हनूमान्का संघर्ष होता है । हनूमान् उद्यानको क्षति अस्त करता है । बन्धन बढ़ होने पर रावणके समक्ष उपस्थित होता है परन्तु अन्तमें बन्धन तोड़ तथा लंकाको नष्ट-भ्रष्ट कर रामके पास वापिस आ जाता है । ३४२-३४३

चौवनवाँ पर्व

वापिस आकर हनूमान्ने रामको सीताका सब समाचार सुनाया उसका चूड़ामणि उन्हें अर्पित किया । साथ ही सीताकी दशमी दशका भी वर्णन किया । चन्द्रमरीचि विद्याधरकी प्रेरणासे उत्तेजित हो सब विद्याधरोंने रामको साथ ले लंकाकी ओर प्रस्थान किया ।

३४४-३५०

पचपनवाँ पर्व

लंकाके समीप पहुँचने पर राज्ञसोमें जोध उत्पन्न हो गया । इन्द्रजित् और विभीषणमें पर्याप्त वाक्संघर्ष हुआ । रावणसे तिरस्कार प्राप्तकर विभीषण लंका छोड़ कर रामसे आ मिला । ३५१-३५७

छप्पनवाँ पर्व

रावणकी अक्षौहिणी आदि सेनाका वर्णन ।

३५८-३६०

सत्तावनवाँ पर्व

लंका निवासिनी सेनाकी तैयारी तथा लंकासे बाहर निकलनेका वर्णन ।

३६१-३६६

अट्ठावनवाँ पर्व

नल और नीलके द्वारा हस्त और प्रहस्तका मारा जाना ।

३६७-३७०

उनसठवाँ पर्व

अश्विकके पूछने पर गौतम स्वामी द्वारा हस्त-प्रहस्त और नल-नीलके पूर्वमवका वर्णन ।

३७१-३७३

साठवाँ पर्व

अनेक राजसोंका मारा जाना तथा राम लक्ष्मणको दिव्यास्त्र तथा सिंहवाहिनी और गरुडवाहिनी विद्याओंकी प्राप्तिका वर्णन ।

३७४-३८४

इकसठवाँ पर्व

सुग्रीव और भामरगडलका नागपाशसे बंधा जाना तथा राम-लक्ष्मणके प्रभावसे उनका बन्धन-मुक्त होना ।

३८५-३८७

बासठवाँ पर्व

वानर और राजसर्वशरी राजाओंका युद्ध, विभीषण और रावणका संवाद, योद्धाओंकी रणोन्मादिनी चेष्टाएँ और रावणके द्वारा शक्तिका चलाया जाना । शक्तिके लगनेसे लक्ष्मणका मूर्छित हो पृथिवी पर गिर पड़ना ।

३८८-३९५

तिरसठवाँ पर्व

शक्ति निहत लक्ष्मणको देख राम विलाप करते हैं ।

३९६-३९८

चौंसठवाँ पर्व

इन्द्रजित् मेघवाहन तथा कुम्भकर्णके मरनेकी आशंकासे रावण दुःखी होता है । लक्ष्मणके धायल होनेका समाचार सुन सीता भी बहुत दुःखी हुई । एक अपरिचित मनुष्य द्वारा लक्ष्मणकी शक्ति निकालनेका उपाय बताया जाता है, वह अपना परिचय देता है । विशल्याके पूर्वभवों तथा उसके वर्तमान प्रभावका वर्णन कर वह रामको सान्त्वना देता है ।

३९९-४०७

पैंसठवाँ पर्व

उस अपरिचित प्रतिचन्द्र विद्याधरके वचनोंसे हर्षित हो रामने हनुमान् भामरगडल तथा अंगदको तत्काल अयोध्या भेजा । अयोध्यामें क्षोभ फैल जाता है । अनन्तर द्रोणमेघके पास भरतकी मा स्वर्य गई और विशल्याको लंका मेंबनेकी व्यवस्था की । विशल्याके लंका पहुँचते ही लक्ष्मणके वक्षःस्थलसे शक्ति निकल कर दूर हो गई और रामकी सेनामें हर्ष छा गया । विशल्याका लक्ष्मणके साथ विवाह हुआ ।

४०८-४१४

पद्मपुराणम्

श्रीमद्रविषेणाचार्यकृतम्

पद्मचरितापरनामधेयं

पद्मपुराणम्

षड्विंशतितमं पर्व

अतो जनकसम्बन्धं शृणु श्रेणिक ते परम् । निवेदयामि यद्वृत्तं भवावहितमानसः ॥१॥
भामिनी जनकस्यासीद् विदेहा नाम सुन्दरी । गर्भनिर्वेदनं तस्याः प्रत्यक्षत् चिरं सुरः ॥२॥
जगाद् श्रेणिको नाथ तं गर्भं केन हेतुना । देवो ररञ्च विज्ञातुमेतदिच्छामि^३ शिष्यत्ताम् ॥३॥
उवाच गौतमो राजा नाम्ना चक्रध्वजोऽभवत् । स्थाने चक्रपुरामिस्थे आर्या तस्य मनस्विनी ॥४॥
तयोश्चित्तोत्सवापत्न्यं कन्या गुरुगृहे च सा । रराज सितमृदुलेशैल्लेखनी वर्णपूरिका ॥५॥
राजः पुरोहितस्यास्य भूमकेशस्य पिङ्गलः । स्वाहाकुक्षिमवोऽधीते सुतस्तत्रैव पाठके ॥६॥
विद्यालामस्तपोर्गौसीढन्योन्यहृतचेतसोः । विद्याधर्मावगाहश्च जायतेऽवहितात्मनाम् ॥७॥
पुरा संसृतः प्रीतिः प्राणिनामुपजायते । प्रीतितोऽभिरतिप्राप्ता रतेर्दिश्रन्मसंभवः ॥८॥
सद्भावाद् प्रणयोऽपि प्रेमैवं पञ्चहेतुकम् । दुर्मोचं बध्यते कर्म पातकैरिव पञ्चभिः ॥९॥

अथानन्तर गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अब राजा जनकका वृत्तान्त कहता हूँ सो तुम सावधान चित्त होकर सुनो ॥१॥ राजा जनककी विदेहा नामकी सुन्दरी स्त्री थी । उसके गर्भ रहा, सो एक देव चिरकालसे उसके गर्भकी प्रतीक्षा करने लगा ॥२॥ यह सुन राजा श्रेणिकने कहा कि नाथ ! वह देव किस कारणसे विदेहाके गर्भकी रक्षा करता था ? यह मैं जानना चाहता हूँ सो कहिए ॥३॥ इसके उत्तरमें गौतमस्वामीने कहा कि चक्रपुरनामा नगरमें एक चक्रध्वज नामका राजा था । उसकी स्त्रीका नाम मनस्विनी था ॥४॥ उन दोनोंके चित्तोत्सवा नामकी कन्या उत्पन्न हुई । वह कन्या गुरुके घर अर्थात् चादशालामें खड़िया मिट्टीके टुकड़ोंसे वर्णमाला लिखती हुई सुशोभित होती थी ॥५॥ उसी गुरुके घर राजाके पुरोहित भूमकेशकी स्वाहा नामकी स्त्रीसे उत्पन्न पिङ्गल नामका पुत्र भी अध्ययन करता था ॥६॥ चित्तोत्सवा और पिङ्गल इन दोनोंका चित्त परस्परमें हरा गया इसलिए उन्हें विद्याकी प्राप्ति नहीं हो पाई । सो ठीक ही है क्योंकि विद्या और धर्मकी प्राप्ति स्थिरचित्तवालोंको ही होती है ॥७॥ आचार्य कहते हैं कि पहले की पुरुषका संसर्ग अर्थात् मेल होता है फिर प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीतिसे रति उत्पन्न होती है, रतिसे विश्वास उत्पन्न होता है और तदनन्तर विश्वाससे प्रणय उत्पन्न होता है । इस तरह प्रेम पूर्वोक्त पाँच कारणोंसे उत्पन्न होता है । जिस प्रकार हिंसादि पाँच पापोंसे जो कूट न सके ऐसे कर्मका बन्ध होता है उसी प्रकार पूर्वोक्त पाँच कारणोंसे प्राणियोंके गाढ़ प्रेम उत्पन्न होता है ॥८-९॥

अयासो ज्ञातसद्भावा तेन विचोत्सवा रहः । हियतेन महारुपा कान्तिर्दुर्घेशता यथा ॥१०॥
 दूरं देशं यद्वानाथि तदाज्ञायि सुबन्धुभिः । हुता प्रसादद्रोपेग मोहेन सुगतिर्यथा ॥११॥
 कन्याया मुदितर्थातः पिङ्गलो धनवर्जितः । न विभाति यथा लोनी वृणया धनवर्जितः ॥१२॥
 विद्रुधनगरं चाप दुर्गं परराष्ट्रिणाम् । बहिः कृत्वा कुर्यात् तस्यै तत्स्वकपाटके ॥१३॥
 ज्ञानविज्ञानरहितस्तृणकाष्ठदिविक्रयात् । अनुरक्तिं तां पत्नीं नग्नो दारित्र्यसागरे ॥१४॥
 पुत्रः प्रकाशसिंहस्य परराष्ट्रमयकरः । जातोऽत्र प्रवरावल्पो राजा कुण्डलमण्डितः ॥१५॥
 तेन दृष्टान्यदा बाला नियतिन कथञ्चन । हृत्तश्च पञ्चमिवर्गमोरत्पामुत् सुदुःखितः ॥१६॥
 प्रच्छन्नं प्रेषिता दूती तथा राज्ञी वृपालयम् । यथासीत् कमलमेला सुमुखस्य प्रवेशिता ॥१७॥
 तथा तद् सुखं रमे प्रीतः कुण्डलमण्डितः । उर्वरया सह संरक्तो यथासीत्तल्लक्ष्मणः ॥१८॥
 ततः स पिङ्गलाख्योऽपि भ्रान्तः स्वगृहनागनम् । तामपरयम् विशालाक्षीं मग्नो वैदुर्यसागरे ॥१९॥
 वितर्पणैर्न किमुक्तेन सोऽयं विरहदुःखितः । न कचिद्वनते सौख्यं चक्रावृट् इवाकुलः ॥२०॥
 हृतमार्गो द्विको द्रीनस्तं राजानमुपागमम् । लब्धे चान्दिष्य मे राजन् पत्नी केनापि चोरिता ॥२१॥
 भीषितायां दुरिद्राणानार्तायां च विशेषतः । नारीणां पुत्रराणां च सर्वेषां शरणं वृषः ॥२२॥

अथानन्तर जब पिङ्गलको चित्तोत्सवाके अभिप्रायका पूर्ण ज्ञान हो गया तब वह उस रूपवतीको एकान्त पाकर हर ले गया । जिस प्रकार अपयशके द्वारा कौर्विका अपहरण होता है उसी प्रकार पिङ्गलके द्वारा चित्तोत्सवाका हरण हुआ ॥१०॥ जब वह उसे बहुत दूर देशमें ले गया तब बन्धुजनोंको उसका पता चला । जिस प्रकार मोहके द्वारा उत्तम गतिका हरण होता है उसी प्रकार प्रसादके द्वारा उस कन्याका हरण हुआ था ॥११॥ इधर कन्याको चुरानेवाला पिङ्गल कन्या पाकर प्रसन्न था, पर निर्धन होनेके कारण वह उससे उस प्रकार सुशोभित नहीं हो रहा था जिस प्रकारकी धर्महीन लोभो मनुष्य वृणासे सुशोभित नहीं होता है ॥१२॥ पिङ्गल कन्याको लेकर जहाँ दूसरे देशके लोगोंका प्रवेश नहीं हो सकता था ऐसे विद्रुध नगरमें पहुँचा और वहाँ नगरके बाहर जहाँ अन्य दरिद्र मनुष्य रहते थे वहीं कुटी बनाकर रहने लगा ॥१३॥ वह ज्ञान-विज्ञानसे रहित था साथ ही दुरिद्रतारूपी सागरमें भी निमग्न था इसलिए वृण, काष्ठ आदि वैचकर अपनी उस पत्नीकी रक्षा करता था ॥१४॥

उसी नगरमें राजा प्रकाशसिंह और प्रवरावली रानीका पुत्र राजा कुण्डलमण्डित रहता था जो कि शत्रुओंके देशको भय उत्पन्न करनेवाला था ॥१५॥ एक दिन वह नगरके बाहर गया था सो वहाँ चित्तोत्सवा उसकी दृष्टिमें आई । देखते ही वह कामके पौर्वा चांगोंसे वाहिन होकर अत्यन्त दुःखी हो गया ॥१६॥ उसने गुमरूपसे चित्तोत्सवाके पास दूती भेजी सो उस दूतने उसे रात्रिके समय राजमहलमें उस तरह प्रविष्ट करा दिया जिस प्रकार कि पहले राजा सुमुखकी दूतने कमलामेलाको उसके महलमें प्रविष्ट कराया था ॥१७॥ जिस प्रकार अनुरागसे भरा नलकूबर र्वशीके साथ रमण करता था उसी प्रकार प्रीतिसे भरा कुण्डलमण्डित उस चित्तोत्सवाके साथ रमण करने लगा ॥१८॥

तदनन्तर जब वह पिङ्गल शकाभाँड़ा अपने घर आया तो उस विशाल लोचनको न देखकर दुःखरूपी सागरमें निमग्न हो गया ॥१९॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि अधिक कष्टनेसे क्या ? उसके विरहसे दुःखी हुआ वह चक्रावृट्की तरह आकुल होता हुआ किसी भी जगह सुख प्राप्त नहीं करता था ॥२०॥ तदनन्तर जिसकी भार्या हरी गई थी ऐसा वह दीनहीन ब्राह्मण राजाके पास गया और जिस किसी तरह राजाका पता चलाकर बोला कि हे राजन् ! किसीने मेरी स्त्री चुरा ली है ॥२१॥ राजा ही सबका शरण है और खासकर जो स्त्री-पुरुष भवभीत, दरिद्र

अमात्यं धूर्तमाहूय समायं पार्थिवोऽब्रवीत् । चिराय मा कृष्या माम जायास्यान्विष्यतामिति ॥२३॥
जगदेति च तत्रैकः सन्निकरेण चक्षुषा । सा दृष्टा पथिकैर्देव पौदनस्थानवर्त्मनि ॥२४॥
क्षान्त्यायावृन्दमध्यस्था^१ तपः कर्तुं समुद्यता^२ । विनिवर्तय तां चित्रं किं विरोपि ब्रज द्विज ॥२५॥
को वा ब्राह्मणकालोऽस्या दधत्यास्तस्मिन् तनुम् । वरस्त्रीगुणपूर्णाया हरन्यास्तस्मिन् जनम् ॥२६॥
इत्युक्ते द्विज उत्थाय बद्ध्वा परिकरं ददम् । दधाव रंहसा विद्वो अष्टाश्वतरको यथा ॥२७॥
पौदने नगरेऽन्विष्य चैत्येषूपवनेषु च । अदृष्ट्वा पुनरागच्छद् विदग्धनगरं द्रुतम् ॥२८॥
नृपाज्या नरैः क्रूरैर्गलघातैः स तर्जनैः । यद्विलोष्टप्रहारैश्च दूरं निर्वासितो भृशम् ॥२९॥
स्थानभ्रंशं परित्यज्यमवमानं वधं तथा । अनुभूय परं दीर्घमध्वानं स प्रपन्नवान् ॥३०॥
रतिं न लभते क्वापि रहितः प्रियया तथा । शुष्यत्यहनि राज्ञी च पतितोऽगनाविवोरगः ॥३१॥
विशालपङ्कजवनं दावाग्निमिव पश्यति । सरोऽपि ग्राहमानोऽसौ दृष्ट्वा विरहाग्निना ॥३२॥
एवं सुदुःखितमतिः पर्यटन् पृथिवीतले । नगरस्य स्थितं द्वारं^३ ददर्श गगनाम्बरम् ॥३३॥
आचार्यमार्यगुप्तं^४ च समेत्य रचिताल्लिङ्गः । प्रणम्य शिरसा दृष्टो धर्मं शुश्राव तत्त्वतः ॥३४॥
श्रुत्वा धर्मं सुनेः प्राप्तः स वैराग्यमनुत्तमम् । प्रशंसं जनेन्द्राणां शासनं शान्तमानसः ॥३५॥
अहो परमाहालयो मार्तोऽयं जिनिदेशितः । ममान्धकारयातस्य यो मास्कर इवोदितः ॥३६॥

तथा दुःखी होते हैं उनका राजा ही शरण होता है ॥२३॥ यह सुन राजाने एक धूर्तमन्त्रीको बुलाकर मायासहित कहा कि विलम्ब मत करो, शीघ्र ही इसकी खोज पता चलाओ ॥२३॥ तब एक मन्त्रीने विकारसहित नेत्र चलाकर कहा कि हे राजन ! उस खोजको तो पथिकोंने पौदनपुरके मार्गमें देखा था ॥२४॥ वह आर्यिकाओंके समूहके बीचमें स्थित थी तथा शान्तिपूर्वक तप करनेके लिए तत्पर जान पड़ती थी । अरे ब्राह्मण ! जल्दी जाकर उसे लौटा ला । इधर क्यों रो रहा है ? ॥२५॥ जब कि वह यौवनपूर्ण शरीरको धारण कर रही है, उत्तम स्त्रियोंके गुणोंसे परिपूर्ण है तथा तरुण जनोको हरनेवाली है तब उसका यह तप करनेका समय ही कौन-सा है ? ॥२६॥ मन्त्रीके ऐसा कहते ही वह ब्राह्मण उठा और अच्छी तरह कमर कसकर वेगसे इस प्रकार दौड़ा जिस प्रकार कि बन्धनसे छूटा घोड़ा दौड़ता है ॥२७॥ वहाँ जाकर उसने पौदनपुरके मन्दिरों तथा उपवनोमें अपनी खोज की । जब नहीं दिखी तब वह पुनः शीघ्र ही विदग्धनगरमें वापिस आ गया ॥२८॥ राजाकी आज्ञासे दुष्ट मनुष्योंने उसे गलेमें पिन्ना देकर नाता प्रकारकी बोट दिखाकर तथा लाठी और पत्थरोंसे मारकर बहुत दूर भगा दिया ॥२९॥ स्थान भ्रंश, अत्यन्त क्लेश, अपमान और मारका अनुभव कर उसने लम्बा रास्ता पकड़ लिया अर्थात् वह बहुत दूर चला गया ॥३०॥ खोज बिना वह कहीं भी रतिको प्राप्त नहीं होता था । वह अग्निमें पड़े हुए सोंपके समान रात-दिन सूखता जाता था ॥३१॥ वह कमलोंके विशाल वनको दावानलके समान देखता था और सरोवरमें प्रवेश करते समय विरहाग्निसे जलने लगता था ॥३२॥ इस प्रकार दुःखित हृदय होकर वह पृथिवीपर घूमता रहा । एक दिन उसने नगरके द्वारपर स्थित आर्यगुप्त नामक दिगम्बर आचार्यको देखा । उनके पास जाकर उसने हाथ जोड़कर शिरसे प्रणाम किया तथा हर्षित हो धर्मका यथार्थ स्वरूप सुना ॥३३-३४॥ मुनि-राजसे धर्म श्रवणकर वह परम वैराग्यको प्राप्त हुआ तथा शान्तचित्त होकर इस प्रकार जिन-शासनकी प्रशंसा करने लगा ॥३५॥ कि अहो ! जिन भगवान्के द्वारा प्रदर्शित यह मार्ग उल्लूख प्रभावसे सहित है । मैं अन्धकारमें पड़ा था सो यह मार्ग मेरे लिए मानो सूर्यके समान ही -

१. मायासहितं यथा स्यात्तथा । २. मध्यस्था म० । ३. समुद्यतां म० । ४. ग्राहमानो म० । ५. दूरे ज०, क०, ख० । दूर म० । ६. दिगम्बरमुनिम् । ७. मर्यादितं च म० ।

प्रपद्ये^१ जिनेन्द्राणां शासनं पापनाशनम् । देहं निर्वापयाम्यथ दग्धं^२ विरहवह्निना ॥३७॥
 ततः संवेगमापद्य^३ गुरुणाम्यनुमोदितः । कृत्वा परिग्रहत्वायं दीर्घां दैगम्बरीमितः^४ ॥३८॥
 तथापि विहरन् चोर्णां सर्वसद्गुणविवर्जितः ।^५ चित्तोत्सवासमुत्कण्ठां जातुविप्रत्यपद्यत^६ ॥३९॥
 सरित्पर्वतदुर्गेषु स्मशानेष्वेतद्वीषु च । वसन् स परमं चक्रे तपो विग्रहशोषणम् ॥४०॥
 न यस्य जलध्वान्ते काले खेदं गतं मनः । हेमन्ते हिमपङ्केन वपुर्यस्य न कम्पितम् ॥४१॥
^७ पूष्णे यस्य करैरुग्रैस्तापोऽधुरपि नो कृतः । स्मृत्वासीदत् सतां जातु स्नेहस्य किमु दुष्करम् ॥४२॥
 दहामासं तथाप्येव शरीरं विरहाग्निना । पुनर्विध्यापयन्मैत्र्यवचनो^८ दकसीकरैः ॥४३॥
 अधर्दधतश्चक्षुष्यं तत्तस्य वपुरायतम् । रमणीस्मरणेनोग्रतपसा च निरन्तरम् ॥४४॥
 आस्तां तावदिदं वक्ष्ये^९ मण्डितस्थाधुनेहितम्^{१०} । कथा ह्यन्तरयोगेन स्थिता रत्नावली यथा ॥४५॥
 अनरण्ये च राउयस्थे वृत्तमेतश्चिब्रुभ्यात्मा । कथासुक्रमयोगेन कथ्यमानमतः शृणु ॥४६॥
 स्थानं दुर्गं समाश्रित्य मण्डितेन वसुन्धरा । विराधितानरण्यस्य कुशीलेन यथा स्थितिः^{११} ॥४७॥
 देशा उद्रासिता तेन दुर्जनेन गुणा यथा । विरोधिताश्च सामन्ताः कषाया^{१२} इव योगिना ॥४८॥
 नाशकनोदतरण्यस्थं गृहीतुं क्षुद्रमप्यलम् ।^{१३} आखोगिरिविलस्यस्य किं करोतु^{१४} मृगाधिपः ॥४९॥

उदित हुआ है ॥३६॥ मैं पापको नष्ट करनेवाले जिनशासनको प्राप्त होता हूँ और विरहरूपी अग्निसे जले हुए इस शरीरको आज शान्त करता हूँ ॥३७॥ तदनन्तर संवेगको प्राप्त हो तथा गुरुकी आज्ञा लेकर उसने परिग्रहका त्याग कर दिया और दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली ॥३८॥ यद्यपि वह समस्त परिग्रहसे रहित हो पृथिवीपर विहार करता था तथापि जब कभी भी चित्तोत्सवाके विषयमें उत्कण्ठित हो जाता था ॥३९॥ नदी, पर्वत, दुर्ग, स्मशान और अटवियोंमें निवास करता हुआ वह शरीरको सुखानेवाला परम तपश्चरण करता था ॥४०॥ मेघोसे अन्धकारपूर्ण वर्षाकालमें उसका मन खेदको प्राप्त नहीं होता था और न हेमन्त ऋतुमें हिमके पङ्कसे उसका शरीर कम्पित होता था ॥४१॥ सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंसे उसे थोड़ा भी सन्ताप नहीं होता था । वह सदा सत्पुरुषोंका स्मरण करता रहता था सो ठीक ही है क्योंकि स्नेहके लिए कौन-सा कार्य दुष्कर अर्थात् कठिन है ? ॥४२॥ यह सब था तो भी उसका शरीर विरहाग्नि से जलता रहता था जिसे वह जिनेन्द्र भगवान्के वचनरूपी जलके छींटोंसे पुनः-पुनः शान्त करता था ॥४३॥ इस प्रकार निरन्तर होनेवाले स्त्रीके स्मरण तथा उग्र तपश्चरणसे उसका वह शरीर अधजले वृक्षके समान काला हो गया था ॥४४॥

अथानन्तर गौतमरामजी कहते हैं कि अब यह कथा रहने दो । इसके बाद कुण्डलमण्डित की कथा कहता हूँ सो सुनो ! यथार्थमें जिस प्रकार रत्नावली बीच-बीचमें दूसरे रत्नोंके अन्तरसे निमित्त होती है उसी प्रकार कथा भी बीच-बीचमें दूसरी-दूसरी कथाओंके अन्तरसे निमित्त होती है ॥४५॥ जिस समय राजा अनरण्य राज्यमें स्थित थे अर्थात् राज्य करते थे उस समय की यह कथा है सो कथाके अनुक्रमसे कही जानेवाली इस अवान्तर कथाको सुनो ॥४६॥ कुण्डलमण्डित दुर्गम गढ़का अवलम्बन कर सदा अनरण्यकी भूमिको उस तरह विराधित करता रहता था जिस प्रकार कि कुशील मनुष्य कुलकी मर्यादाको विराधित करता रहता है ॥४७॥ जिस प्रकार दुर्जन गुणोंको उजाड़ देता है उसी प्रकार उसने अनरण्यके बहुतसे देश उजाड़ दिये और जिस प्रकार योगी कषायोंका अवरोध करते हैं उसी प्रकार उसने बहुतसे सामन्तोंका अवरोध कर दिया ॥४८॥ यद्यपि वह क्षुद्र था तो भी अनरण्य उसे पकड़नेके लिए समर्थ नहीं हो

१. गुरुणात्यनुमोदितः म० । २. प्राप्तः । ३. चित्तोत्सवा समुत्कण्ठा म० । ४. प्रतिपद्यत म० । ५. जलध्वान्ते म० । ६. पूष्णोर्यस्य म० । ७. वचनोत्तर-म० । ८. कुण्डलमण्डितस्य । ९. दितः ख० । १०. विरोधितानरण्यस्य । ११. स्थितेः म० । १२. कषाय इव म० । १३. मूषकस्य । १४. करोति म० ।

नक्तविषमशुष्यत् स^१ तत्पराजयचिन्तया । अनादरेण शरीरमपि कर्म प्रपन्नवान् ॥५०॥
 ततोऽसौ बालचन्द्रेण सेनान्धा जात्वभाष्यत । उद्विग्नं ह्येव कस्मात्त्वं सततं नाथ लक्ष्यसे ॥५१॥
 उद्वेगकारणं भद्रं मम मण्डितकः परम् । इत्युक्ते बालचन्द्रेण प्रतिज्ञेयं समाश्रिता ॥५२॥
 राज्ञस्तथापयित्वा तं^२ पापं मण्डितकं तव । सकाशं नागमिष्यामि व्रतमेतन्मया कृतम् ॥५३॥
 इति राज्ञः पुरः कृत्वा संगरं रोषमुद्वहन् । बलेन चतुरङ्गेण सेनानीर्गन्तुमुद्यतः ॥५४॥
 चित्तोत्सवा समायुक्तचित्तो मुक्तान्यचेष्टितः । प्रमादबहुलो भिन्नमूलभृष्टपक्षतायतिः ॥५५॥
 अज्ञातलोकवृत्तान्तो मण्डितः खण्डितोद्यमः । हेलया बालचन्द्रेण गात्वा यद्वो मृगो यया ॥५६॥
 गृहीतबलराज्यं तं निर्वाच्य^३ विपयत् कृती । बालचन्द्रोऽनरण्यस्य समीपं पुनरागमत् ॥५७॥
 ततस्तेव सुश्रुत्येव कृतसुस्थवसुन्धरः । परं प्रमोदभाष्योऽनरण्यः सुखमन्वभूत् ॥५८॥
 शरीरमाश्रयारी तु मण्डितः पादचारकः । पर्यटन् धरणी दुःखी पश्चात्ताप समाहृतः ॥५९॥
 परिप्राप्याश्रमपर्वं भ्रमणानां महात्मनाम् । नत्वा च शिरसाचार्यं धर्मं प्रपन्नं भावतः ॥६०॥
 दुःखितानां दरिद्राणां वर्जितानां च बान्धवैः । न्यायिसंपीडितानां च प्रायो भवति धर्मयोगः ॥६१॥
 प्राम्दये यस्य भगवन् शक्तिर्जन्तोर्न विद्यते । परिग्रहपरस्यास्य धर्मः कश्चिन्न विद्यते ॥६२॥

सका । सो ठीक ही है क्योंकि पहाड़के बिलमें स्थित चूहेका सिंह क्या कर सकता है ? ॥४६॥
 वह रात-दिन उसीके पराजयकी चिन्तासे सूखता जाता था । भोजन, पान आदि शरीर-सम्बन्धी
 कार्य भी वह अनादरसे करता था ॥४७॥

तदनन्तर किसी दिन उसके बालचन्द्र नामा सेनापतिने उससे कहा कि हे नाथ ! आप
 सदा उद्विग्न-से क्यों दिखाई देते हैं ? ॥४८॥ इसके उत्तरमें राजा अनरण्यने कहा कि हे भद्र !
 मेरे उद्वेगका परम कारण कुण्डलमण्डित है । राजाके यह कहनेपर बालचन्द्र सेनापतिने यह
 प्रतिज्ञा की कि हे राजन् ! पापी कुण्डलमण्डितको वश किये बिना मैं आपके समीप नहीं आऊँगा^१
 मैंने यह व्रत लिया है ॥४९-५३॥ इस प्रकार राजाके सामने प्रतिज्ञा कर क्रोध धारण करता हुआ
 सेनापति चतुरङ्ग सेनाके साथ जानेके लिए उद्यत हुआ ॥५४॥

उधर चित्तोत्सवामें जिसका चित्त लगा रहा था ऐसा कुण्डलमण्डित अन्य सब चेष्टाएँ
 छोड़कर प्रमादसे परिपूर्ण था । उसके मन्त्री आदि मूल पक्षके सभी लोग उससे भिन्न हो चुके
 थे । लोकमें कहाँ क्या हो रहा है ? इसका उसे कुछ भी पता नहीं था । सब प्रकारका उद्यम
 छोड़कर वह एक क्षीमें ही आसक्त हो रहा था । सो अनरण्यके सेनापति बालचन्द्रने जाकर उसे
 मृगकी भौंति अनायास ही बौंध लिया ॥५५-५६॥ चतुर बालचन्द्र उसकी सेना और राज्य पर
 अपना अधिकार कर तथा उसे देशसे निकालकर अनरण्यके समीप वापिस आ गया ॥५७॥
 इस प्रकार उस उत्तम सेवकके द्वारा जिसकी वसुधामें पुनः सुख-शान्ति स्थापित की गई थी ऐसा
 अनरण्य परम हर्षको प्राप्त होता हुआ सुखका अनुभव करने लगा ॥५८॥

कुण्डलमण्डितका सब राज्य छिन गया था, शरीर मात्र ही उसके पास बचा था । ऐसी
 दशामें वह पैदल ही पृथिवी पर भ्रमण करता था । सदा दुःखी रहता था और पश्चात्ताप करता
 रहता था ॥५९॥ एक दिन वह भ्रमण करता दिगम्बर मुनियोंके तपोवनमें पहुँचा । वहाँ आचार्य
 महाराजको शिरसे नमस्कार कर उसने भावपूर्वक धर्मका स्वरूप पूछा ॥६०॥ सो ठीक ही है
 क्योंकि दुःखी, दरिद्री, भाई-बन्धुओंसे रहित और रोगसे पीड़ित मनुष्योंकी बुद्धि प्रायः धर्ममें
 लगती ही है ॥६१॥ उसने पूछा कि हे भगवन् ! जिसकी मुनिदीक्षा लेनेकी शक्ति नहीं है उस

१. तत्परा जय म० । २. हे राजन् ! असाधयित्वा = त स्ववशमकृत्वा । ३. पापमदितक ख० ।
 ४. देशात् ।

कथं वा मुच्यते पापैश्चतुःसंज्ञापरायणः । एतदिच्छामि विज्ञातुं प्रसीद व्याकुलस्य मे ॥६३॥
 गुरुः प्रोवाच वचनं धर्मः प्राणिदया स्मृता । मुच्यन्ते देहिनः पापैरात्मनिन्दविगर्हणैः ॥६४॥
 हिंसायाः कारणं घोरं शुक्रशोणितसंभवम् । पिशितं मा भक्ष्य त्वं शुद्धं चेद्धर्ममिच्छसि ॥६५॥
 प्राणिनां मृत्युभीरूणां मांसैश्चर्मप्रसेविकाय ॥ प्रयित्वा भुवं याति नरकं पापमानवः ॥६६॥
 शिरसो मुण्डनैः स्नानैर्विलिङ्गग्रहणादिभिः । नास्ति संघारणं जन्तोर्मांसभक्षणकारिणः ॥६७॥
 तीर्थस्नानानि दानानि सोपवासानि देहिनः । नरकाच्च परित्राण कुर्वन्ति पिशिताशिनः ॥६८॥
 सर्वजातिगता जीवा बान्धवाः पूर्वजन्मसु । स्थुरमी भक्षितास्तेन मांसभक्षणकारिणा ॥६९॥
 पश्चिमत्यसृगान् हन्ति परिपन्थं च तिष्ठति । यो नरोऽस्मादपि क्रूरां मधुमांसाद् गतिं व्रजेत् ॥७०॥
 न वृक्षाजायते मांसं नोद्भिज्ज धरणीतलम् । नाम्नसः पञ्चवस्त्राणि सद्द्रव्येभ्यो यथौषधम् ॥७१॥
 पश्चिमत्यसृगान् हत्वा धराकान् प्रियजीविताम् । क्रूरैरुपायते मांसं तस्मान्नरन्ति दयापराः ॥७२॥
 स्तन्येन वर्धितं यस्या शरीरं तां मृतां सतीम् । महिषीं मातरं कष्टं भक्षयन्ति नराधमाः ॥७३॥
 माता पिता च पुत्रश्च मित्राणि च सहोदराः । भक्षितास्तेन यो मांसं भक्षयत्यधमो नरः ॥७४॥
 इतः यमापटलं मेरोरथस्तात् समकं स्मृतम् । तत्र रत्नप्रभाभिख्ये देवा भवनवासिनः ॥७५॥
 सकपायं तपः कृत्वा जायन्ते तत्र देहिनः । देवानामधमास्ते तु दुष्टकर्मसमन्विताः ॥७६॥

परिमृही मनुष्यके लिए क्या कोई धर्म नहीं है ? ॥६२॥ अथवा चारों संज्ञाओंमें तत्पर रहनेवाला गृहस्थ पापोंसे किस प्रकार छूट सकता है ? मैं यह जानना चाहता हूँ सो आप प्रसन्न होकर मेरे लिए यह सब बताइये ॥६३॥

तदनन्तर मुनिराजने निम्नाङ्कित वचन कहे कि जीवद्वया धर्म है तथा अपनी निन्दा गद्गा आदि करनेसे मनुष्य पापोंसे छूट जाते हैं ॥६४॥ यदि तू शुद्ध अर्थात् निर्दोष धर्म धारण करना चाहता है तो हिंसाका अर्थकर कारण तथा शुक्र और शोणितसे उत्पन्न मांसका कभी भक्षण नहीं कर ॥६५॥ जो पापी पुरुष मृत्युसे डरनेवाले प्राणियोंके मांससे अपना पेट भरता है वह अवश्य ही नरक जाता है ॥६६॥ शिर मुंडाना, स्नान करना तथा नाना प्रकारके वेष धारण करना आदि कार्योंसे मांसभक्षी मनुष्यकी रक्षा नहीं हो सकती ॥६७॥ तीर्थक्षेत्रोंमें स्नान करना, दान देना तथा उपवास करना आदि कार्य मांसभोजी मनुष्यको नरकसे बचानेमें समर्थ नहीं है ॥६८॥ समस्त जातियोंके जीव इस प्राणीके पूर्वभवोंमें बन्धु रह चुके हैं । अतः मांसभक्षण करने वाला मनुष्य अपने इन्हीं भाई-बन्धुओंको खाता है यह समझना चाहिए ॥६९॥ जो मनुष्य पक्षी, मत्स्य और सृगोंको मारता है तथा इनके विरुद्ध आचरण करता है वह मधु-मांसभक्षी मनुष्य इन पक्षी आदिसे भी अधिक क्रूर गतिको प्राप्त होता है ॥७०॥ मांस न वृक्षसे उत्पन्न होता है, न पृथिवीतलको भेदन कर निकलता है, न कमलकी तरह पानीसे उत्पन्न होता है और न ओषधिके समान किन्हीं उत्तम द्रव्योंसे उत्पन्न होता है । किन्तु जिन्हें अपना जीवन प्यारा है ऐसे पक्षी, मत्स्य, सृग आदि दीन-हीन प्राणियोंको मारकर दुष्ट मनुष्य मांस उत्पन्न करते हैं । इसलिए दयालु मनुष्य उसे कभी नहीं खाते ॥७१-७२॥ जिसके दूधसे शरीर पुष्ट होता है तथा जो माताके समान है ऐसी भैंसके मरने पर नीच मनुष्य उसे खा जाता है यह कितने कष्टकी बात है ? ॥७३॥ जो नीच मनुष्य मांस खाता है उसने माता, पिता, पुत्र, मित्र और भाइयोंका ही भक्षण किया है ॥७४॥ यहाँसे मेरु पर्वतके नीचे सात पृथिवियों हैं उनमें से रत्नप्रभानामक पृथिवीमें भवनवासी देव रहते हैं । जो मनुष्य कषायसहित तप करते हैं । वे उनमें उत्पन्न होते हैं । भवनवासी देव सब देवोंमें नीच देव कहलाते

१. मृच्छसि म० । २. उदरद्रीम् । ३. विविचलिङ्गधारणैः । ४. अमार्गं प्रतिकूलप्रवृत्तिमिति यावत् ।
 ५. क्रूरा म० । ६. शन्येन म० । ७. यस्या म० ।

अथस्तस्याः चितेरन्या दारुणः पटु च भूमयः । नारका यासु पापस्य मुञ्जन्ते कर्मणः फलम् ॥७७॥
 कुरूप दारुणारावा दुःस्पर्शा ध्वान्तपूरिताः । उपमोञ्जितदुःखानां कारणीभूतविग्रहाः ॥७८॥
 कुम्भीपाकाख्यमास्थानं नरकं भीमदर्शनम् । नदी वैतरणी घोरा शास्मली क्रूरकण्टका ॥७९॥
 असिपत्रवन्धुजाः क्षुरधाराश्च पर्वताः । ज्वलदग्निनिभास्तीक्ष्णलोहकीला निरन्तराः ॥८०॥
 तेषु ते तीव्रदुःखानि प्राप्नुवन्ति निरन्तरम् । प्राणिनो मधुमांसादा^२ घातकाश्चासुचारिणाम् ॥८१॥
 नास्त्यथांहुलमात्रोऽपि प्रदेशस्तत्र दुःखितैः । क्रियते नारकैर्यत्र निमेषमपि विश्रमः ॥८२॥
 प्रच्छन्नमिह तिष्ठाम इति ध्यात्वा पलायिताः । हन्यन्ते निर्दयैरन्यैर्नारकैरभरैश्च ते ॥८३॥
 ज्वलद्गङ्गाकुटिले दग्धा मत्स्या इवानिले । निरसं विहिताक्रन्दा विनिःसृत्य कथञ्चन ॥८४॥
 नारकाग्निभयग्रस्ताः प्राप्ता वैतरणीजलम् । चण्डहारोर्मिभिर्भूयो दहन्ते वह्नितोऽधिकम् ॥८५॥
 असिपत्रवन् यातारुजायाप्रत्याशया क्रुतम् । पतस्त्रिस्तत्र दार्यन्ते चक्रखड्गदादिभिः ॥८६॥
 विच्छिन्ननासिकाकर्णस्कन्धजङ्घादिविग्रहाः । कुम्भीपाके^४ नियुज्यन्ते बान्तशोणितवर्णिनः ॥८७॥
 प्रपीड्यन्ते च यन्त्रेषु क्रूरारवेषु विह्वलाः । पुनः शैलेषु भिद्यन्ते तीक्ष्णेषु विरसस्वराः ॥८८॥
 उल्लङ्घ्यन्तेऽतिवृद्धेषु पादपैवन्धकारिषु । ताड्यन्ते मुद्गरावातैर्महर्म्मिस्तके तथा ॥८९॥
 जलं प्रार्थयमानानां तृष्णातर्तानां प्रदीयते । ताम्रादिकललं तेन दग्धदेहाः सुदुःखिताः ॥९०॥

हैं तथा ये दुष्ट कार्य करने वाले होते हैं ॥७५-७६॥ रत्नप्रभा पृथिवीके नीचे लह भयंकर पृथिवियों और हैं जिनमें नारकी जीव पाप कर्मका फल भोगते है ॥७७॥ वे नारकी कुरूप होते हैं, उनके शब्द अत्यन्त दारुण होते हैं, वे अन्धकारसे परिपूर्ण रहते है तथा उनके शरीर उपमातीत दुःखोके कारण हैं ॥७८॥ उन पृथिवियोंमें कुम्भीपाक नामका भयंकर नरक है, भय उत्पन्न करने वाली वैतरणी नदी है, तथा तीक्ष्ण कंटोसे युक्त शास्मली वृक्ष है ॥७९॥ असिपत्र वनसे आच्छादित तथा क्षुरोकी धारके समान तीक्ष्ण पर्वत हैं और जलती हुई अग्निके समान निरन्तर लोहेकी तीक्ष्ण कीलें वहाँ व्याप्त है ॥८०॥ मधु मांस खानेवाले तथा प्राणियोंका घात करनेवाले जीव उन नरकोंमें निरन्तर तीव्र दुःख पाते रहते है ॥८१॥ वहाँ अर्ध-अङ्गुल प्रमाण भी ऐसा प्रदेश नहीं है जहाँ दुःखी नारकी निमेषमात्रके लिए भी विश्राम कर सकें ॥८२॥ 'हम यहाँ छिपकर रहेंगे' ऐसा सोचकर नारकी भागकर जाते हैं पर वही पर दयाहीन अन्य नारकी और दुष्ट देव उनका घात करने लगते हैं ॥८३॥ जिस प्रकार जलते हुए अंगारोंसे कुटिल अग्निमें जलते हुए मच्छ विरस शब्द करते हैं उसी प्रकार नारकी भी अग्निमें पड़ कर विरस शब्द करते हैं । यदि अग्निके भयसे भयभीत हो किसी तरह निकलकर वैतरणी नदीके जलमें पहुँचते है तो अत्यन्त खारी तरङ्गोके द्वारा अग्निसे भी अधिक जलने लगते हैं ॥८४-८५॥ यदि छायाकी इच्छासे शीघ्र ही भागकर असिपत्र वनमें पहुँचते है तो वहाँ पड़ते हुए चक्र, खड्ग, गदा आदि शस्त्रोंसे उनके खण्ड-खण्ड हो जाते हैं ॥८६॥ जिनके नाक, कान, स्कन्ध तथा जङ्घा आदि अवयव काट लिये गये हैं तथा जो निकलते हुए खूनकी मानो वर्षा करते हैं ऐसे उन नारकियोंको कुम्भी-पाकमें डाला जाता है अर्थात् किसी घड़े आदिमें भर कर उन्हें पकाया जाता है ॥८७॥ जिनसे क्रूर शब्द निकल रहा है ऐसे कोलहुओंमें उन विह्वल नारकियोंको पेल दिया जाता है फिर तीक्ष्ण नुकीले पर्वतों पर गिराकर उनके टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं जिससे वे विरस शब्द करते हैं ॥८८॥ अन्धा कर देने वाले बहुत ऊँचे वृक्षों पर उन्हें चढ़ाया जाता है तथा वड़े-वड़े मुद्गरों की चोटसे उनका मस्तक पीटा जाता है ॥८९॥ जो नारकी प्याससे पीड़ित होकर पानी भोगते

१. शास्मली क्रूरकण्टका क० । २. मासादिघातका म० । ३. चन्द्र म० । तीव्रव० । ४. पाकेन युज्यन्ते । ५. चान्त म० । वात व० ।

श्रुवते नास्ति तृष्णा न इत्यतोऽपि बलादमी । पाप्यन्ते तदतिक्रमैः संदंशव्यावृत्ताननाः^१ ॥६१॥

अपात्य भूतले भूयो वक्षस्याक्रम^२ दीयते । पादः क्रूरवचोभिस्तैस्तेषां कल्मषकर्मणाम्^३ ॥६२॥

तेषां निर्दग्धकण्ठानां दहते हृदयं पुनः । निष्कामन्ति पुरीतन्ति^४ निर्भिष्य बठरं सह ॥६३॥

परस्परकृतं दुःखं तथा भवनवासिभिः । नरका वक्ष्यपद्यन्ते कस्तद्वर्णयितुं क्षमः ॥६४॥

इति ज्ञात्वा महादुःखं नरके मांससंभवम् । वर्जनीयं प्रयत्नेन विदुषा मांसभक्षणम् ॥६५॥

अत्रान्तरे जगादैवं कुण्डलस्तमानसः । नाथाणुव्रतयुक्तानां का गतिर्हरयेत वद ॥६६॥

गुरुरुचे न यो मांसं खादत्यतिदृढव्रतः । तस्य वक्ष्यामि यत्पुण्यं सम्यग्दष्टेर्विशेषतः ॥६७॥

उपवासादिहीनस्य दरिद्रस्यापि धीमतः । मांसमुक्तोर्निवृत्तस्य सुगतिर्हस्तवर्तिनी ॥६८॥

यः पुनः शीलसम्पन्नो जिनशासनमाश्रितः । सोऽणुव्रतधरः प्राणी सौधर्मादिषु जायते ॥६९॥

अहिंसा प्रवर्तं मूलं धर्मस्य परिकीर्तितम् । सा च मांसास्त्रिवृत्तस्य जायतेऽन्यन्तनिर्मला ॥७०॥

दयावान् सत्त्ववान् योऽपि श्लेच्छश्चाण्डाल एव वा । मधुमांसास्त्रिवृत्तः सन् सोऽपि पापेन मुच्यते ॥७१॥

मुक्तमात्रः स पापेन पुण्यं गृह्णाति मानवः । जायते पुण्यबन्धेन सुरः सन्मनुजोऽथवा^५ ॥७२॥

सम्यग्दष्टिः पुनर्जन्तुः कृत्वाणुव्रतधारणम् । लभते परमान्मोगान् भुवं स्वर्गनिवासिनाम् ॥७३॥

है उनके लिए तामा आदि धातुओंका कलल (पिघलाया हुआ रस) दिया जाता है जिससे उनका शरीर जल जाता है तथा अत्यन्न दुःखी हो जाते हैं ॥६०॥ यद्यपि वे कहते हैं कि हमें प्यास नहीं लगी है तो भी जबर्दस्ती संडाशीसे मुँह फाड़ कर उन्हें वह कलल पिलाया जाता है ॥६१॥ पाप करने वाले उन नारकियोंको जमीन पर गिराकर तथा उनकी छाती पर चढ़कर दुष्ट वचन बोलते हुए बलवान् नारकी उन्हें पैरोंसे रूँदते हैं ॥६२॥ पूर्वोक्त कललपानसे उन नारकियोंके कण्ठ जल जाते हैं तथा हृदय जलने लगते हैं । यहीं नहीं पेट फोड़ कर उनकी आँते भी बाहर निकल आती हैं ॥६३॥ इसके सिवाय भवनवासी देव उन्हें परस्पर लड़ाकर जो दुःख प्राप्त कराते हैं उसका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥६४॥ इस तरह मांस खानेसे नरकमे महादुःख भोगना पड़ता है ऐसा जानकर समझदार पुरुषको प्रयत्नपूर्वक मांसभक्षणका त्याग करना चाहिए ॥६५॥

इसी बीचमे जिसका मन अत्यन्त भयभीत हो रहा था ऐसे कुण्डलमण्डितने कहा कि हे नाथ ! अणुव्रतसे युक्त मनुष्योंकी क्या गति होती है सो कहिये ॥६६॥ इसके उत्तरमे गुरु महाराजने कहा कि जो मांस नहीं खाता है तथा अत्यन्त दृढ़तासे व्रत पालन करता है उसे तथा खासकर सम्यग्दष्टि मनुष्यको जो पुण्य होता है उसे कहता हूँ ॥६७॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य मांस-भक्षणसे दूर रहता है भले ही वह उपवासादिसे रहित हो तथा दरिद्र हो तो भी उत्तम गति उसके हाथमे रहती है ॥६८॥ और जो शीलसे सम्पन्न तथा जिनशासनकी भावनासे युक्त होता हुआ अणुव्रत धारण करता है वह सौधर्मादि स्वर्गमें उत्पन्न होता है ॥६९॥ धर्मका उत्तम मूल कारण अहिंसा कही गई है । जो मनुष्य मांस-भक्षणसे निवृत्त रहता है उसीके अत्यन्त निर्मल अहिंसा-धर्म पलता है ॥७०॥ जो परिग्रही श्लेच्छ अथवा चाण्डाल भी क्यों न हो यदि दयालु है और मधु-मांस-भक्षणसे दूर रहता है तो वह भी पापसे मुक्त हो जाता है ॥७१॥ ऐसा जीव पापसे मुक्त होते ही पुण्य-बन्ध करने लगता है और पुण्य-बन्धके प्रभावसे वह देव अथवा उत्तम मनुष्य होता है ॥७२॥ यदि सम्यग्दष्टि मनुष्य अणुव्रत धारण करता है तो वह

१. अस्माकम् । २. व्यावृत्ताननः म० । ३. प्रयात्य म० । ४. वक्षस्याक्रम म० । ५. ६२-६३ श्लोकयोरेयं पाठः 'व' पुस्तकसंमतः । पुस्तकान्तरेषु त्वित्यं पाठोऽस्ति 'प्रपात्य भूतले भूयो वक्षस्याक्रमदीयते । तेषां निर्दग्धकण्ठानां दहते हृदयं पुनः ॥६२॥ निष्कामन्ति पुरीतन्ति निर्भिष्य बठरं सह । ज्वलता कललेनाशु तेषां कल्लुर्कर्मणाम् ॥६३॥ ६. अत्राणि । ७. यया म० । ८. विभुः क०, ख०, ग० ।

इत्याचार्यस्य वचनं श्रुत्वा कुण्डलमण्डितः । मन्दभाम्यतया शक्त्या रहितोऽणुव्रतेष्वपि ॥१०४॥
 प्रणिपत्य गुरुं स्रग्भ्रां मधुमांसविवर्जनम् । जग्राह शरणोपेतं समीचीनं च दर्शनम् ॥१०५॥
 कृत्वा चैत्ये^१ नमस्कारं गुरोर्दिग्वाससां तथा । निष्कान्तः स^२ ततो देशादिति चिन्तामुपगतः ॥१०६॥
 मातुः सहोदरो आता कृतान्तसमविक्रमः । भ्रुवं मे सीदतः सोऽयं भविष्यत्यवलम्बनम् ॥१०७॥
 राजा भूत्वा पुनः शत्रुं जेव्यामीति सुनिश्चितः । आशां वहन् प्रवृत्तोऽसावातुरो दक्षिणापथम् ॥१०८॥
 श्रमादिदुःखपूर्णस्य व्रजतोऽस्य शनैः शनैः । उदीयुर्ध्वाधरो देहे पापैरन्यमवार्जितैः ॥१०९॥
 सन्धिषु च्छिद्यमानेषु मिद्यमानेषु मर्मसु । सर्वस्य जगतोऽन्त्राणं^३ मरणं तस्य दौकितम् ॥११०॥
 मुञ्चते समये यस्मिन् जीवं कुण्डलमण्डितः । तत्रैव क्यवते देवः^४ शेषपुण्यादिवश्च्युतः ॥१११॥
 गर्भे च^५ तौ विदेहाया विधिना परियोजितौ । यस्य कर्मानुभावस्य विचित्रमिति चेष्टितम् ॥११२॥
 एतस्मिन्नन्तरे साधु कालं कृत्वा स पिङ्गलः । तपोबलान्महातेजा महाकालोऽसुरोऽभवत् ॥११३॥
 भवनेऽवधिना स्मृत्वा धर्मस्य च फलोद्यमः । वृष्यौ चित्तोत्सवा क्वेति तावज्ज्ञे यथाविधि ॥११४॥
 दृष्ट्वा किं तथा कृत्यं क्वासौ कुण्डलमण्डितः । येनाहं प्रापितोऽवस्थां विधुरां विरहार्णवे ॥११५॥
 पत्न्या जनकराजस्य गर्भमाश्रित्य मण्डितः । साकमन्येन जीवेन विवेद स्थित इत्यसौ ॥११६॥
 सुतां तावदियं देवी युगलं किं समानया । गर्भद्वितययोगिन्या मृतयास्ति प्रयोजनम् ॥११७॥

निश्चित ही देवोंके उत्कृष्ट भोग प्राप्त करता है ॥१०३॥ इस प्रकार आचार्यके वचन सुनकर कुण्डलमण्डित मन्द भाग्य होनेसे अणुव्रत धारण करनेके लिए भी समर्थ नहीं हो सका ॥१०४॥ अतः उसने शिरसे गुरुको नमस्कार कर मधुमांसका परित्याग किया और शरणभूत सम्यग्दर्शन धारण किया ॥१०५॥

तदनन्तर जिन-प्रतिमा और दिगम्बराचार्यको नमस्कार कर वह ऐसा विचार करता हुआ उस देशसे बाहर निकला कि मेरी माताका सगा भाई यमराजके समान पराक्रमका धारी है सो वह विपत्तिमें पड़े हुए मेरी अवश्य ही सहायता करेगा । मैं फिरसे राजा होकर निश्चित ही शत्रुको जीतूंगा । ऐसी आशा रखता हुआ वह कुण्डलमण्डित दुःखी हो दक्षिण दिशाकी ओर चला ॥१०६-१०८॥ वह थकावट आदि दुःखोंसे परिपूर्ण होनेके कारण धीरे-धीरे चलता था । बीचमें पूर्वभ्रममें संचित पाप कर्मके उद्यसे उसके शरीरमें अनेक रोग प्रकट हो गये ॥१०९॥ उसकी सन्धिषो छिन्न होने लगीं और मर्म स्थानोंमें भयंकर पीड़ा होने लगी । अन्तमें समस्त संसार जिससे नहीं बचा सकता ऐसा उसका मरण आ पहुँचा ॥११०॥ जिस समय कुण्डलमण्डितने प्राण छोड़े उसी समय चित्तोत्सवाका जीव जो स्वर्गमें देव हुआ था शेष पुण्यके प्रभावसे स्वर्गसे च्युत हुआ ॥१११॥ भाग्यवश वे दोनों ही जीव राजा जनककी रानी विदेहाके गर्भमें उत्पन्न हुए । गौतमस्वामी कहते हैं कि अहो श्रेणिक ! कर्मोद्यको यह विचित्र चेष्टा देखो ॥११२॥ इसी बीचमें वह पिङ्गल ब्राह्मण अच्छी तरह मरण कर तपके प्रभावसे महातेजस्वी महाकाल नामका असुर हुआ ॥११३॥ उसने उत्पन्न होते ही अवधिज्ञानसे धर्मके फलका विचार किया और साथ ही इस बातका ध्यान किया कि चित्तोत्सवा कहीं उत्पन्न हुई है ? वह अपने अवधिज्ञानसे इन सब बातोंको अच्छी तरहसे जान गया ॥११४॥ फिर कुछ देर बाद उसने विचार किया कि मुझे उस दुष्टासे क्या प्रयोजन है ? वह कुण्डलमण्डित कहीं है जिसने मुझे विरहरूपी सागरमें गिराकर दुःखपूर्ण अवस्था प्राप्त कराई थीं ॥११५॥ उसने अवधिज्ञानसे यह जान लिया कि कुण्डलमण्डित राजा जनककी पत्नीके गर्भमें चित्तोत्सवाके जीवके साथ विद्यमान है ॥११६॥ उसने विचार किया कि यदि गर्भमें ही इसे मारता हूँ तो रानी विदेहा

१. चैत्यनमस्कारं व० । २. सततं ख० । ३. न विद्यते त्राण यस्मात्तत्, व० पुस्तके टिप्पणम् ।
 ४. तस्मिन् म० । ५. देवी शेषपुण्यादिवः सती व० । ६. चित्तौ म० । ७. यस्य म० ।

ततो निर्लुडितं सन्तं पापं मण्डितकं ध्रुवम् । नेष्यामि यदहं दुःखं तत्तमेव दुरीहितम् ॥११८॥
 इति संचिन्तयन् क्रुद्धः पूर्वकर्मालुब्धतः । देवो रक्षति तं गर्भं संसृद्वाणिना करम् ॥११९॥
 इति ज्ञात्वा धर्मं कर्तुं दुःखं जन्तोर्न कस्यचित् । कालव्यवहितं तद्धि कृतमात्मन एव हि ॥१२०॥
 कालेनाथ सुत देव्री प्रसूता युगल शुभम् । सुतं दुहितरं चान्ते जहार प्रथुकं सुरः ॥१२१॥
 आस्फाल्य मारयाग्येन शिलायां पूर्वमण्डितम् । इति ध्यातं पुरा तेन पुनरेवमचिन्तयत् ॥१२२॥
 धिङ्मया चिन्तितं सर्वं ससारपरिवर्धनम् । जायते कर्मणा येन तत्कुर्वीत कथं बुधः ॥१२३॥
 तृणस्यापि पुरा दुःखं श्रामग्ये न कृतं मया । सर्वारम्भनिवृत्तेन तपोवीवधवाहिना ॥१२४॥
 गुरोस्तस्य प्रसादेन कृत्वा धर्मं सुनिर्मलम् । ईदृशीं क्षुतिमाप्तोऽस्मि करोमि दुरितं कथम् ॥१२५॥
 स्वल्पमप्यर्जितं पापं ब्रजत्युपचय परम् । निमग्नो येन संसारे चिर दुःखेन दह्यते ॥१२६॥
 निर्दोषभावो यस्तु दयावान् सुसमाहितः । स्थितं करतले तस्य रत्नं सुगतिर्सङ्गम् ॥१२७॥
 घृणावान् संप्रधार्येदं तमलंकृत्य बालकम् । कुण्डले कर्णयोरेष्य चक्रे दीप्तांशुमण्डले ॥१२८॥
 पर्णलक्ष्मी ततो विद्यां संक्रमय्य शिशौ सुरः । सुखदेशे विमुच्येनं गतो धाम मनीषितम् ॥१२९॥

मरणको प्राप्त होगी इसलिये यह युगल सन्तानको उत्पन्न करे पीछे देखा जायगा । दो गर्भको धारण करनेवाली इस रानीके मारनेसे मुझे क्या प्रयोजन है ? गर्भसे निकलते ही इस पापी कुण्डलमण्डितको अवश्य ही भारी दुःख प्राप्त कराऊँगा ॥११७-११८॥ ऐसा विचार करता हुआ वह असुर पूर्वकर्मके प्रभावसे अत्यन्त क्रुद्ध रहने लगा तथा हाथसे हाथको मसलता हुआ उस गर्भकी रक्षा करने लगा ॥११९॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि राजन् ! ऐसा जानकर कभी किसीको दुःख पहुँचाना उचित नहीं है क्योंकि कालान्तरमे वह दुःख अपने आपको भी प्राप्त होता है ॥१२०॥

अथानन्तर समय आनेपर रानी विदेहाने एक पुत्र और एक पुत्री इस प्रकार युगल सन्तान उत्पन्न की । तो उत्पन्न होते ही असुरने पुत्रका अपहरण कर लिया ॥१२१॥ उसने पहले तो विचार किया कि इस कुण्डलमण्डितके जीवको मैं शिलापर पछाड़कर मार डालूँ । फिर कुछ देर बाद वह वह विचार करने लगा ॥१२२॥ कि मैंने जो विचार किया है उसे धिक्कार है । जिस कार्यके करनेसे संसार (जन्म-मरण) की वृद्धि होती है उस कार्यको बुद्धिमान् मनुष्य कैसे कर सकता है ? ॥१२३॥ पूर्वभवमे मुनि अवस्थामें जब मैं सब प्रकारके आरम्भसे रहित था तथा तपस्वी कौबरको धारण करता था तब मैंने तृणको भी दुःख नहीं पहुँचाया था ॥१२४॥ उन गुरुके प्रसाद से अत्यन्त निर्मल धर्म धारण कर मैं ऐसी कान्तिको प्राप्त हुआ हूँ । अतः अब ऐसा पाप कैसे कर सकता हूँ ॥१२५॥ संचित किया हुआ थोड़ा पाप भी परम बुद्धिको प्राप्त हो जाता है जिससे संसार-सागरमें निमग्न हुआ यह जीव चिरकाल तक दुःखसे जलता रहता है ॥१२६॥ परन्तु जिसकी भावना निर्दोष है जो दयालु है और जो अपने परिणामोको ठीक रखता है सुगतिरूपी रत्न उसके करतलमें स्थित रहता है ॥१२७॥ ऐसा विचार करके हृदयमे दया उत्पन्न हो गई जिससे उसने उस बालकको मारनेका विचार छोड़ दिया तथा उसके कानोंमें देदीप्यमान किरणोंके धारक कुण्डल पहिनाकर उसे अलंकृत कर दिया ॥१२८॥ तदनन्तर वह देव उस बालकमें पर्णलक्ष्मी विद्याका प्रवेश कराकर तथा उसे सुखकर स्थानमें छोड़कर इच्छित स्थानपर चला गया ॥१२९॥

१. बालकं 'पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः प्रथुकः शावकः शिशुः' इत्यमरः । २. श्रामग्येन म० । ३. तपो-विविध-म० ।

नक्तं शक्त्या स्थितेवासामुद्याने नभसः पतन् । विद्याभूतेन्दुगतिना दृष्टो सुखभाजनम् ॥१३०॥
 उडुपातः किमेव स्याद् विद्युत्खण्डोऽयवा च्युतः । वितर्कयति समुत्पत्य दृष्टो पृथुकं शुभम् ॥१३१॥
 गृहीत्वा च प्रमोदेन देव्याः पुण्यवतीश्रुतेः । वरशय्याप्रसूतायां जह्वादेशो चकार सः ॥१३२॥
 ऊर्चे^१ वैतां^२ द्रुतस्वान् उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुन्दरि । किं शोभे बालकं पश्य संप्रसूतासि शोभनम्^३ ॥१३३॥
 ततः कान्तकरस्पर्शसौख्यसंपत्त्यबोधिता । शय्यातः सहस्रोत्तस्थौ सा विधूणिंतलोचना ॥१३४॥
 गर्भकं च ददर्शात्सुन्दरं सुन्दरानना । तस्यास्तदंशुजालेन निद्राशोषो निराकृतः ॥१३५॥
 परं च विस्मयं प्राप्ता पप्रच्छ प्रियदर्शना । कथार्यं जनितो नाथ पुण्यवत्या स्त्रिया शिशुः ॥१३६॥
 सोऽबोचहयिते जालस्तवाग्रं प्रवरः सुतः । प्रतीहि संशयं मा गास्त्वन्नो धन्या परा तु का ॥१३७॥
 साबोचप्रिय वन्ध्यास्मि कुतो मे सुतसंभवः । प्रतारितास्मि दैवेन किं मे भूयः प्रतार्यते ॥१३८॥
 सोऽबोचहरेवि मा शङ्कं कार्पीः कर्मनियोगतः । प्रच्छन्नोऽपि हि नारीणां जायते गर्भसंभवः ॥१३९॥
 साबोचदक्षु नामैवं कुण्डले त्वत्तिचारुणी^४ । ईदृशी मर्ललोकेऽस्मिन् सुरजे भवतः कुतः ॥१४०॥
 सोऽबोचहरेवि नानेन विचारेण प्रयोजनम् । शृणु तर्ज्यं पतन्नेव गगनादाहृतो मया ॥१४१॥
 भयानुनोदितस्तेऽयं सुतः सुकुलसंभवः । लक्ष्णानि वदन्यत्य महापुरुषभूमिकम् ॥१४२॥
 श्रमं कृत्वापि भूयांसं भारमूढा च गर्भजम् । फलं तवयलामोऽन्न तत्ते जातं सुखं प्रिये ॥१४३॥

तदनन्तर चन्द्रगति विद्याधर रात्रिके समय अपने उद्यानमें स्थित था सो उसने आकाशसे पड़ते हुए सुखके पात्रस्वरूप उस बालकको देखा ॥१३०॥ क्या यह नक्षत्रपात हो रहा है ? अथवा कोई बिजलीका टुकड़ा नीचे गिर रहा है ऐसा संशय कर वह चन्द्रगति विद्याधर ज्योंही आकाशमें उड़ा त्योही उसने उस शुभ बालकको देखा ॥१३१॥ देखते ही उसने बड़े हर्षसे उस बालकको बीचसे ही ले लिया और उत्तम शय्यापर शयन करनेवाली पुण्यवती रानी की जोंधों के बीचसे रख दिया ॥१३२॥ यही नहीं, ऊँची आवाजसे वह रानीसे बोला भी कि हे सुन्दरि ! उठो, क्यों सो रही हो ? देखो तुमने सुन्दर बालक उत्पन्न किया है ॥१३३॥ तदनन्तर पतिके हस्त-स्पर्शसे उत्पन्न सुखरूपी सम्पत्तिसे जाग्रत हो रानी शय्यासे सहसा उठ खड़ी हुई और इधर-उधर नेत्र चलाने लगी ॥१३४॥ ज्योंही उस सुन्दरमुखीने अत्यन्त सुन्दर बालक देखा, त्योही उसकी किरणोंके समूहसे उसकी अवशिष्ट निद्रा दूर हो गई ॥१३५॥ उस सुन्दरीने परम आश्चर्यको प्राप्त होकर पूछा कि यह बालक किस पुण्यवती स्त्रीने उत्पन्न किया है ? ॥१३६॥ इसके उत्तरमें चन्द्रगतिने कहा कि हे प्रिये ! यह तुम्हारे ही पुत्र उत्पन्न हुआ है । बिश्वास रखो, संशय मत करो, तुमसे बढ़ कर और दूसरी धन्य स्त्री कौन हो सकती है ? ॥१३७॥ उसने कहा कि हे प्रिय ! मैं तो वन्ध्या हूँ, मेरे पुत्र कैसे हो सकता है ? मैं दैवके द्वारा ही प्रतारित हूँ—ठगी गई हूँ अब आप और क्यों प्रतारित कर रहे हैं ? ॥१३८॥ उसने कहा कि हे देवि ! शङ्का मत करो, क्योंकि कदाचित् कर्मयोगसे स्त्रियोंके प्रच्छन्न गर्भ भी तो होता है ॥१३९॥ रानीने कहा कि अच्छा ऐसा ही सही पर यह तो वताओ कि इसके कुण्डल लोकोत्तर क्यों है ? मनुष्य लोकमें ऐसे उत्तम रत्न कहाँसे आये ? ॥१४०॥ इसके उत्तरमें चन्द्रगतिने कहा कि हे देवि ! इस विचारसे क्या प्रयोजन है ? जो सत्य बात है सो सुनो । यह बालक आकाशसे नीचे गिर रहा था सो बीचमें ही मैंने प्राप्त किया है ॥१४१॥ मैं जिसकी अनुमोदना कर रहा हूँ ऐसा यह तुम्हारा पुत्र उचकुलमें उत्पन्न हुआ है क्योंकि इसके लक्षण इसे महापुरुषसे उत्पन्न सूचित करते हैं ॥१४२॥ बहुत भारी श्रम कर तथा गर्भका भार धारण कर जो फल प्राप्त होता है वह पुत्रलाम रूप ही होता है । सो हे प्रिये ! तुम्हें यह फल

१. प्रसूताया म० । २. चैतां क० म० । ३. द्रुतस्वान म० । ४. शोभितम् म० । ५. भूप म० ।
 ६. त्वत्तिचारिणी म० । ७. मया तु मोदित म० ।

कुञ्चिजातोऽपि पुत्रस्य यः कृत्यं कुरुते न ना^१ । अपुत्र एव कान्तेऽसौ जायते रिपुरेव वा ॥१४३॥
 तव सोऽयमपुत्रायाः सति पुत्रो भविष्यति ।^२ अन्तर्यानेन किं कृत्यमत्र वस्तुनि-शोभने ॥१४५॥
 एवमस्त्विति संभाष्य देवी स्त्रियगृहं गता । प्रभाते सुतजन्मांस्त्यास्तृष्टया लोके प्रकाशितम् ॥१४६॥
 ततो जन्मोत्सवस्तस्य पुरेऽस्मिन् रथन्पुरे । संप्रवृत्तः समागच्छद् विस्मिताशेषवान्धवः ॥१४७॥
 रत्नकुण्डलभानूनां मण्डलेन यतो वृतः । प्रमामण्डलनामास्य पितृभ्यां निर्मितं ततः ॥१४८॥
 अर्पितः पोषणायासौ धान्या लीलामनोहरः । सर्वान्तःपुरलोकस्य करपद्ममधुव्रतः ॥१४९॥
 विदेहा तु हते पुत्रे कुररीवत्कृतस्त्वना । बन्धुनपातयत् सर्वान् गम्भीरे शोकसागरे ॥१५०॥
 परिदेवनमेवं च चक्रे चक्राहतेव सा । हा वत्स केन नीतोऽसि मम दुष्करकारिणा ॥१५१॥
 विद्युत्स्य कथं तस्य पापस्य प्रयत्नौ करौ । अज्ञानं जातमात्रं त्वां गृहीतुं श्रौचैतसः ॥१५२॥
 परिचमाया इवाशयाः संध्येवेवं सुता मम । स्थिता स तु परिप्राप्तो मन्दायाः पूर्ववत्सुतः ॥१५३॥
 भ्रुवं भवान्तरे कोऽपि मया बालो वियोजितः । तदेव फलितं कर्म न कार्यं बीजवर्जितम् ॥१५४॥
 मारितास्मि न किं तेन पुत्रचोरणकारिणा । पुरं प्राप्तास्मि यद्दुःखं समागत्याद्द्वैशसम्^३ ॥१५५॥
 इति तां कुर्वतीमुखैर्विह्वलां परिदेवनम् । समाश्वासयद्वागत्य जनको निगदन्निदम् ॥१५६॥
 म्रिये मा गाः परं शोकं जीवत्येव शरीरजः^४ । हतः केनाप्यसौ जीवन् द्रव्यस्य भ्रुवमेव हि ॥१५७॥

अनायास ही प्राप्त हो गया है ॥१४३॥ जो मनुष्य कुञ्चिसे उत्पन्न होकर भी पुत्रका कार्य नहीं करता है हे म्रिये ! वह अपुत्र ही है अथवा शत्रु ही है ॥१४४॥ हे पतिव्रते ! तुम्हारे पुत्र नहीं है सो यह तुम्हारा पुत्र हो जायगा । इस उत्तम वस्तुके भीतर जानेसे क्या प्रयोजन है ? ॥१४५॥

तदनन्तर ऐसा ही हो इस प्रकार कहकर रानी प्रसूतिकागृहमें चली गई और प्रातःकाल होते ही इसके पुत्र-जन्मका समाचार लोकमें बड़े हर्षसे प्रकाशित कर दिया गया ॥१४६॥ तदनन्तर रथन्पुर नगरमें पुत्रका जन्मोत्सव किया गया । इस उत्सवमें आश्चर्यचकित होते हुए समस्त भाई-बन्धु-रिश्तेदार सम्मिलित हुए ॥१४७॥ चूँकि वह बालक रत्नमय कुण्डलोंकी किरणोंके समूहसे घिरा हुआ था इसलिए माता-पिताने उसका भामण्डल नाम रक्खा ॥१४८॥ अपनी लीलाओंसे मनको हरनेवाला तथा समस्त अन्तःपुरके करकमलोंमें भ्रमरके समान संचार करनेवाला वह बालक पोषण करनेके लिए धायकी सौंपा गया ॥१४९॥

इधर पुत्रके हरे जानेपर कुररीके समान विलाप करती हुई रानी विदेहाने समस्त बन्धुओं को शोकरूपी सागरमें गिरा दिया ॥१५०॥ चक्रसे ताड़ित हुईके समान वह इस प्रकार विलाप कर रही थी कि हाय वत्स ! कठोर कार्य करनेवाला कौन पुरुष तुम्हें हर ले गया है ? ॥१५१॥ जिसे उत्पन्न होते देर नहीं थी ऐसे तुम अबोध बालकको उठानेके लिए उस निर्दय पापीके हाथ कैसे पसरे होंगे ? जान पड़ता है कि उसका हृदय पत्थरका बना होगा ॥१५२॥ जिस प्रकार पश्चिम दिशामें आकर सूर्य तो अस्त हो जाता है और सन्ध्या रह जाती है उसी प्रकार मुझ अभागिनीका पुत्र तो अस्त हो गया और संध्याकी भाँति यह पुत्री स्थित रह गई ॥१५३॥ निश्चित ही भवान्तरमें मैंने किसी बालकका वियोग किया होगा सो उसी कर्मने अपना फल दिखाया है क्योंकि बिना बीज के कोई कार्य नहीं होता ॥१५४॥ पुत्रकी चोरी करनेवाले उस दुष्टने मुझे मार ही क्यों नहीं डाला । जब कि अधमरी करके उसने मुझे बहुत भारी दुःख प्राप्त कराया है ॥१५५॥ इस प्रकार विह्वल होकर जोर-जोरसे विलाप करती हुई रानीके पास जाकर राजा जनक यह कहते हुए उसे समझाने लगे कि हे म्रिये ! अत्यधिक शोक मत करो, तुम्हारा पुत्र जीवित ही है, कोई उसे हरकर ले गया

दश्यते नेचयते भूयः पुनर्जातलोक्यते । पूर्वकर्माजुभावेन जाये रोदिपि किं वृथा ॥१५८॥
 व्रज स्वास्थमिमं लेखं सुहृदो नान्ययाम्यहम् । वार्ता दशरथस्येमां परिवेदयितुं प्रिये ॥१५९॥
 स चाह च सुतस्याशु करिष्यामि गवेपणम् । प्रच्छाद्य घर्णीं सर्वां चरैः कुशलचेष्टितैः ॥१६०॥
 दयितां सान्त्वयित्वैवं लेखं मित्राय दत्तवान् । तं प्रवाच्य सशोकेन पूरितोऽतिगरीयसा ॥१६१॥
 मह्यमन्वेपितस्ताभ्यां नासौ दृष्टो यदार्भकः । मन्दीकृत्य तदा शोकमस्युः कुच्छ्रेण वान्धवाः ॥१६२॥
 नासावार्साज्जनस्तत्र पुरुषः प्रमदायवा । यो न बाष्पपरीताचस्तच्छ्रोत्रेन वशीकृतः ॥१६३॥
 शोकविस्मरणे हेतुर्बभूव सुमनोहरा । जानकी बन्धुलोकस्य शुभशैशवचेष्टिता ॥१६४॥

मालिनीवृत्तम्

प्रमदमुपगतानां योषितामङ्गदेशे
 पृथतनुसवकान्ध्या लिम्पती दिक्समूहम् ।
 विपुलकमलयाता श्रीरिवासौ सुकण्ठा
 शुचिहसितसितास्या वर्षताम्भोजनेत्रा ॥१६५॥
 प्रभवति गुणसस्यं येन तस्यां समृद्धं
 भजदखिलजनानां सौख्यसंभारदानम् ।
 तदतिशयमनोज्ञा चारुलक्ष्मांस्विताङ्गा
 जगति निगदितासौ भूमिसाम्येन सीता ॥१६६॥
 वदनजितशशाङ्का पल्लवच्छाद्यपाणिः
 शितमणिसमतेजः^१केशसंघातरम्या ।

है और निश्चित ही तुम उसे जीवित देखोगी ॥१५६-१५७॥ इष्ट वस्तु पूर्व कर्मके प्रभावसे अभी दिखती है फिर नहीं दिखती, तदनन्तर फिर कभी दिखाई देने लगती है । इसलिए हे प्रिये ! व्यर्थ ही क्यों रोती हो ? ॥१५८॥ तुम स्वस्थताको प्राप्त होओ । हे प्रिये ! मैं वह समाचार बतलानेके लिए मित्र राजा दशरथके पास पत्र भेजता हूँ ॥१५९॥ वह और मैं दोनों ही चतुर गुप्तचरोंसे समस्त पृथिवीको आच्छादित कर शीघ्र ही तेरे पुत्रकी खोज करेंगे ॥१६०॥ इस प्रकार स्त्रीको सान्त्वना देकर उसने मित्रके लिए पत्र दिया । उस पत्रको बॉचकर राजा दशरथ अत्यधिक शोकसे व्याप्त हो गये ॥१६१॥ उन दोनोंने पृथिवीपर पुत्रकी खोज की । पर जब कहीं पुत्र नहीं दिखा तब सब बन्धुजन शोकको मन्दकर बड़े कष्टसे चुप बैठ रहे ॥१६२॥ उस समय न कोई ऐसा पुरुष था और न कोई ऐसी स्त्री ही थी जिसके नेत्र पुत्र सम्बन्धी शोकके कारण अश्रुओंसे व्याप्त नहीं हुए हों ॥१६३॥ उस समय बन्धुजनोंका शोक भुलानेका कारण यदि कुछ था तो अत्यन्त मनोहर और शुभ बालचेष्टाओंको धारण करनेवाली जानकी ही थी ॥१६४॥

वह जानकी हर्षको प्राप्त होने वाली स्त्रियोंकी गोदमे निरन्तर वृद्धिज्ञत हो रही थी । वह अपने शरीरकी विशाल कान्तिसे दिशाओंके समूहको लिप्त करती थी । वह विपुल कमलोंको प्राप्त लक्ष्मीके समान-सी जान पड़ती थी, उसका कण्ठ सुन्दर था, पवित्र हाथसे उसका मुख शुक्ल हो रहा था और कमलके समान उसके नेत्र थे ॥१६५॥ समस्त भक्तजनोंके लिए सुखका समूह प्रदान करने वाला गुणरूपी धान्य, चूँकि उस जानकीमे अत्यन्त भक्तद्विके साथ उत्पन्न होता था, अतः अत्यन्त मनोहर और उत्तम लक्ष्णोंसे युक्त उस जानकी को लोग भूमिकी समानता रखनेके कारण सीता भी कहते थे ॥१६६॥ उसने अपने मुखसे चन्द्रमाको जीत लिया था, उसके हाथ पल्लवके समान लाल कान्तिके धारक थे, वह नील मणिके समान कान्तिके

जितसमदनहंसखीगतिः सुन्दरभू-

र्वकुलसुरभिवक्त्रामोदवद्धालिबृन्दा ॥१६७॥

अतिमृदुसुखमाला शक्रशस्त्रानुमध्या

प्रवरसरसरम्भास्तम्भसाम्यस्थितोरः ।

स्थलकमलसमानोत्तुङ्गपृष्ठोज्ज्वलाद्भिन्नः

प्रभवदतिविशालच्छायवचोऽनयुग्मा ॥१६८॥

प्रवरभवनकुक्षिप्वत्युदारेषु कान्त्या

विविधविहितमार्गा लब्धवर्णा पर सा ।

सततमुपगतान्तःसप्तकन्याशताना-

मतिशय रमणीयं शास्त्रमार्गेण रेमे ॥१६९॥

अपि दिनकरदीप्तिः कौमुदी चन्द्रकान्तिः

सुरपत्तिमहिषी वा कापि वा सा सुभद्रा ।

यदि भजति तदीयासङ्गशोभां कथं चि-

न्ध्रियतमतिमनोज्ञास्तास्ततो वेदनीयाः ॥१७०॥

विधिरिव रतिदेवी कामदेवस्य बुद्ध्या

दशरथतनयस्याकल्पयत्पूर्वजस्य ।

जनकनरपतिस्तां सर्वविज्ञानयुक्तां

ननु रविकरसङ्गस्योचिता पद्मलक्ष्मीः ॥१७१॥

इत्यार्षे रविप्रेक्षाचर्यग्रीके पद्मचरिते सीताभामण्डलोत्पत्तिमिधानं
नाम षड्विंशतितमं पर्व ॥२६॥

धारक केशोके समूहसे मनोहर थी, उसने कामोन्मत्त हंसिनी चालको जीत लिया था, उसकी भौंहें सुन्दर थीं तथा मौलिश्रीके समान सुगन्धित उसकी मुखके सुवाससे उसके पास भौरोंके समूह में डराते रहते थे ॥१६७॥ उसकी भुजाएँ अत्यन्त सुकुमार थीं, उसकी कमर वज्रके समान पतली थी, उसकी जाँघें उत्तम सरस केलेके स्तम्भके समान सुन्दर थीं, उसके पैर स्थल-कमलके समान उन्नत पृष्ठभागसे सुशोभित थे और उसके उठते हुए स्तनयुगल अत्यधिक कान्तिसे युक्त थे ॥१६८॥ वह विदुषी जानकी उत्तमोत्तम राजसहलोकके विशाल कोष्ठोंमें अपनी कान्तिसे विविध मार्ग बनाती हुई सात सौ कन्याओंके मध्यमे स्थित हो बड़ी सुन्दरताके साथ शास्त्रानुसार क्रीड़ा करती थी ॥१६९॥ यदि सूर्यकी प्रभा, चन्द्रमाकी चाँदनी, इन्द्रकी इन्द्राणी, और चक्रवर्ती की पट्टरानी सुभद्रा किसी तरह जानकीके शरीरकी शोभा प्राप्त कर सकती तो वे निश्चित ही अपने पूर्वरूपकी अपेक्षा अधिक सुन्दर होती ॥१७०॥ जिस प्रकार विधाताने रतिको कामदेवकी पत्नी निश्चित किया था उसी प्रकार राजा जनकने सर्व प्रकारके विज्ञानसे युक्त सीताको राजा दशरथके प्रथम पुत्र रामकी पत्नी निश्चित किया था सो ठीक ही है क्योंकि कमलोंकी लक्ष्मी सूर्यकी किरणोंके साथ संपर्क करने योग्य ही है ॥१७१॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध रविप्रेक्षाचार्यके द्वारा ग्रीक पद्मचरितमें सीता और भामण्डलकी उत्पत्तिका कथन करने वाला छव्वीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२६॥

सप्तविंशतितमं पर्व

ततो मगधराजेन्द्राशुवृत्तान्तविस्मृतः । पप्रच्छ गणिनामग्र्यं नूतनप्रशयान्वितः ॥१॥
 किं पुनस्तस्य माहात्म्यं दृष्टं जनकभृशता । रामस्य येन सा तस्मै तेन ब्रुद्धा निरूपिता ॥२॥
 ततः करतलासङ्गद्विगुणीभूतदन्तभाः । जगौ गणधरो वाक्यं चित्तप्रह्लादनावहम् ॥३॥
 शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि रामस्याविलम्बकर्मणः । यतः प्रकल्पिता कन्या जनकेन सुबुद्धिना ॥४॥
 दक्षिणे विजयाद्वैत्य कैलासाद्वैस्तथोचरे । अन्तरेऽत्यन्तबहवः सन्ति देशाः सहान्तराः ॥५॥
 तत्रार्धवर्षे देशो निःसंयमनमस्कृतिः । निर्विदग्धजनो घोरम्लेच्छलोकसमाकुलः ॥६॥
 मयूरमालनगरे^१ कृतान्तनगरोपमे ।^२ आन्तरङ्गतमो नामेत्यर्द्धवर्षचारिणाम् ॥७॥
 पूर्वापरायतक्षोण्यां यावन्तो म्लेच्छसंभवाः । कपोतशुककाम्बोजमङ्गनाथाः सहस्रशः ॥८॥
 गुप्ता बहुविधैः सैन्यैर्भीषणैर्विधायुधैः । आन्तरङ्गतमं ग्रीव्या परिवायं ससाधनाः ॥९॥
 आर्यानेताञ्जनपदान् प्रचण्डान्तररंहसः । उद्वासयन्त आजगमुरिति कारुण्यवज्जिताः ॥१०॥
 देशं जनकराजस्य ततो भ्यान्तुं समुद्यताः । शलभा इव निःशोपसुपल्लवविधायिनः ॥११॥
 जनकेन च साकेतां युवानां प्रेषिता^३ द्रुतम् ।^४ आन्तरङ्गतमं प्राप्तमूर्खदृशरथस्य ते ॥१२॥
 विज्ञापयति देव त्वां जनको जनवत्सलः । पौलिन्द^५ परचक्रेण समाक्रान्तं महीतलम् ॥१३॥

अथानन्तर भामण्डलके सुन्दर वृत्तान्तसे आश्चर्यचकित हुए राजा श्रेणिकने नूतन विनयसे युक्त हो अर्थात् पुनः नमस्कार कर गौतम गणधरसे पूछा कि हे भगवन् ! राजा जनकने रामका ऐसा कौनसा माहात्म्य देखा कि जिससे उसने रामके लिए बुद्धिपूर्वक अपनी कन्या देनेका निश्चय किया ? ॥१-२॥ तदनन्तर करतलके आसङ्गसे जिनके दौतांकी कान्ति दूनी हो गई थी ऐसे गौतम गणधर चित्तको आह्लादित करनेवाले बचन बोले ॥३॥ उन्होंने कहा कि हे राजन् ! सुनो, संक्लेशहीन कार्यको कनेवाले रामचन्द्रके लिए अत्यन्त बुद्धिमान् जनकने जिस कारण अपनी कन्या देना निश्चित किया था वह मैं कहता हूँ ॥४॥ विजयाद्वै पर्वतके दक्षिण और कैलास पर्वतके उत्तरकी ओर बीच-बीचमें अन्तर देकर बहुतसे देश स्थित हैं ॥५॥ उन देशोंमें एक अर्धवर्षर नामका देश है जो असंयमी जनोके द्वारा मान्य है, धूर्तजनोंका जिसमें निवास है तथा जो अत्यन्त भयंकर म्लेच्छ लोगोंसे व्याप्त है ॥६॥ उस देशमें यमराजके नगरके समान एक मयूरमाल नामका नगर है । उसमें आन्तरङ्गतम नामका राजा राज्य करता था ॥७॥ पूर्वसे लेकर पश्चिम तककी लम्बी भूमिमें कपोत, शुक, काम्बोज, मङ्गल आदि जितने हजारों म्लेच्छ रहते थे वे अनेक प्रकारके शस्त्र तथा नाना प्रकारके भीषण अस्त्रोंसे युक्त हो अपने सब साधनोंके साथ प्रीतिपूर्वक आन्तरङ्गतम राजाकी उपासना करते थे ॥८-९॥ जिनका गमन बीच-बीचमें अत्यन्त वेगसे होता था तथा जो दूरासे रहित थे ऐसे वे म्लेच्छ इन आर्य देशोंको उजाड़ते हुए यहाँ आये ॥१०॥ तदनन्तर टिड्डियोंके समान उपद्रव करनेवाले वे म्लेच्छ राजा जनकके देशको व्याप्त करनेके लिए उद्यत हुए ॥११॥ राजा जनकने शीघ्र ही अपने बौद्धा अयोध्या भेजे । उन्होंने जाकर राजा दशरथसे आन्तरङ्गतमके आनेकी खबर दी ॥१२॥ उन्होंने कहा कि हे राजन् ! प्रजा-

१. नूतनप्रशयान्वितः क०, ख० । २. तत्रार्धवर्षीदेशे व० । ३. मयूरमालानगरे क०, ख० । ४. आन्तरङ्गतमे क०, ख० । ५. मङ्गलनाथाः व० । ६. प्रेषिता क०, ख०, व० । ७. आतासन्तजना तेन दूतस्तेन धन्त वै (?) क०, ख० । ८. प्राप्त व० । ९. पौलिन्य म० ।

आर्यदेशाः परिध्वस्ता म्लेच्छैरुद्धासितं जगत् । एकवर्णां प्रजां सर्वां पापाः कर्तुं समुद्यताः ॥१४॥
 प्रजासु विप्रनष्टासु जीवासः किं प्रयोजनाः^१ । विन्यतामिति किं कुर्मो व्रजामो वा कमाश्रयम् ॥१५॥
 किं वा दुर्गं समाश्रित्य तिष्ठामः समुद्भजनाः । नन्दीकालिन्दभागान् वा गिरिं वा विपुलह्वयम् ॥१६॥
 अथवा सर्वसैन्येन निकुञ्जगिरिमाश्रिताः । सन्निरुध्मः^३ समागच्छत् परसैन्यं भयानकम् ॥१७॥
 साधुगोश्रावकाकीर्णां प्रजामेतां सुविह्वलाम् । सम्यक् संधारयिष्यामस्त्यक्त्वा जीवं सुदुत्सहम् ॥१८॥
 अतो ब्रवीमि राजंस्त्वां^४ यत्तथा पाल्यते महीं । तव राज्यं महाभाग त्वमेव हि जगत्पतिः ॥१९॥
 यजन्ते^५ भावतः सन्तो यावन्तः श्रावकादयः । पञ्चयज्ञान् विधानेन^६ ब्राह्मणैर्यद्वीजकैः^७ ॥२०॥
 'मुक्तिज्ञान्तिगुणैर्युक्ता यच्च ध्यानपरायणाः । तप्यन्ते सुतपो मोक्षसाधनं गगनाम्बराः ॥२१॥
 महान्तश्च पुरस्कारा यच्चैत्यभवनादिषु । विधीयन्तेऽभिषेकाश्च विमानां क्षीणकर्मणम् ॥२२॥
 'प्रजासु रक्षितास्त्वेतत्सर्वं भवति रक्षितम् । तत्तत्र धर्मकामार्थाः प्रेत्य चेह भूभृताम् ॥२३॥
 बहुकोपो नरेशो यः प्रीतः पालयति क्षितिम् । परचक्राभिभूतश्च नावसादं^{१०} समरयुते ॥२४॥
 हिंसाधर्मविहीनानां यच्छ्रुतां यागदक्षिणाम् । कुरुते पालनं यच्च तस्य भोगाः^{११} पुनर्युवः ॥२५॥
 धर्मार्थकामभोगाणामधिकारः सहीतले । जनानां राजगुप्तानां जायन्ते तेऽन्यथा हृतः ॥२६॥
 नृपबाहुबलच्छायां समाश्रित्य सुखं प्रजाः । ध्यायन्त्यात्मानमन्यग्रास्तयैवाश्रमिणी बुधाः ॥२७॥

वत्सल राजा जनक आपसे निवेदन करते हैं कि समस्त पृथिवीतल म्लेच्छ राजाकी सेनासे आक्रान्त हो चुका है ॥१४॥ उन म्लेच्छोंने आर्य देश, नष्ट-भष्ट कर दिये हैं तथा समस्त जगत्को उजाड़ दिया है । वे पापी समस्त प्रजाको एक वर्णकी करनेके लिए उद्यत हुए हैं ॥१५॥ जब प्रजा नष्ट हो रही है तब हम किसलिए जीवित रह रहे हैं ? विचार कीजिए कि इस दशामें हम क्या करें ? अथवा किसकी शरणमें जावे ? ॥१५॥ हम मित्रजनोके साथ किस दुर्गका आश्रय लेकर रहें अथवा नन्दी, कलिन्द या विपुलगिरि इन पर्वतोंका आश्रय लें ? ॥१६॥ अथवा सब सेनाके साथ निकुञ्जगिरिमें जाकर शत्रुकी आती हुई भयंकर सेनाको रोकें ॥१७॥ अथवा यह कठिन दिखता है कि हम अपना जीवन देकर भी साधु, गौ तथा श्रावकोसे व्याप्त इस विह्वल प्रजाकी रक्षा कर सकेंगे ॥१८॥ इसलिये हे राजन् ! मैं आपसे कहता हूँ कि चूँकि आप ही पृथिवीकी रक्षा करते रहे, अतः यह राज्य आपका ही है और हे महाभाग ! आप ही जगत्के स्वामी हैं ॥१९॥ जितने श्रावक आदि सत्पुरुष हैं वे भावपूर्वक पूजा करते हैं । अङ्कुर उत्पन्न होनेकी शक्तिये रहित पुराने धान आदिके द्वारा विधिपूर्वक पाँच प्रकारके यज्ञ करते हैं ॥२०॥ निर्ग्रन्थ मुनि मुक्ति ज्ञान्ति आदि गुणोंसे युक्त होकर ध्यानमें तत्पर रहते हैं तथा मोक्षका साधनभूत उत्तम तप तपते हैं ॥२१॥ जिनमन्दिर आदि स्थलोंमें कर्मोंको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्की वड़ी-वड़ी पूजाएँ तथा अभिषेक होते हैं ॥२२॥ प्रजाकी रक्षा रहने पर ही इन सबकी रक्षा हो सकती है और इन सबकी रक्षा होने पर ही इस लोक तथा परलोकमें राजाओंके धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्ग सिद्ध हो सकते हैं ॥२३॥ बहुत बड़े खजानेका स्वामी होकर जो राजा प्रसन्नतासे पृथिवीकी रक्षा करता है और परचक्रके द्वारा अभिभूत होने पर भी जो विनाशको प्राप्त नहीं होता तथा हिंसाधर्मसे रहित एवं यज्ञ आदिसे दक्षिणा देनेवाले लोगोंकी जो रक्षा करता है उस राजाको भोग पुनः प्राप्त होते हैं ॥२४-२५॥ पृथिवीतलपर मनुष्योंको धर्म अर्थ, काम और मोक्षका अधिकार है सो राजाओंके द्वारा सुरक्षित मनुष्योंको ही ये अधिकार प्राप्त होते हैं अन्यथा किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं ? ॥२६॥ राजाके बाहुबलकी छायाका आश्रय

१. किं प्रयोजनम् म० । २. नदीकालिन्दभागान्वा म० । ३. सन्निरुध्मः म० । ४. राजंस्त्वां म० । ५. यजन्ते क०, ख० । ६. प्रधानेन म० । निधानेन व० । ७. यववीजकैः व० । ८. युक्तिः म० । ९. प्रजाः सुरक्षितास्त्वेतत् म० । १०. समभ्रुतम् म० । ११. पुनरपि प्राप्या भवन्ति ।

यस्य देशं समाश्रित्य साधवः कुर्वते तपः । पष्ठमंशं नृपस्तस्य लभते परिपालनात् ॥२८॥
 अथैवमिति तत्सर्वमुपश्रित्य^१ नराधिपः । द्रुतं रामं समाहूय^२ राज्यं दातुं समुद्यतः ॥२९॥
 मुदितैः किङ्करैर्भेरीध्वनानन्दा समाहता^३ । आजगमुः सचिवाः सर्वे गजवानिसमाकुलाः ॥३०॥
 जाम्बूनदमयान् कुम्भान् गृहीत्वा वारिपरितान् । बद्ध्वा परिकरं भूरा भासमानाः समागताः ॥३१॥
 चारुनूपुरनिस्ताना दधाना वेपथ्वितम् । वस्त्रालङ्कारमादाय पटलेष्वागताः^४ स्त्रियः ॥३२॥
 आटोपमीदृश दृष्ट्वा किमेतदिति शब्दितम् । रामं दशरथोज्जीवत् पाल्येमां सुत चित्तम् ॥३३॥
 रिपुवक्रमिहायातं यद्वैरपि दुर्जयम् । विजेय्ये तद्दहं गत्वा प्रजानां हितकाम्यया ॥३४॥
 ततो राजीवन्यनो राघवो नृपमब्रवीत् । किमर्थं तात संरम्भमस्थाने प्रतिपद्यसे ॥३५॥
 किं कार्यं पशुसंज्ञैस्तेरसभापैर्दुरात्मभिः । येपामभिमुखीभावं प्रयासि रणकादृक्षया ॥३६॥
 न ह्याकुलान् विरोधेन क्षुभ्यन्ति वरवारणाः । न चापि तुलदाहार्यं^५ सन्नद्धति विभावसुः ॥३७॥
 तत्र प्रयातुमस्माकं युज्यते यच्छ ज्ञानम् । ह्युक्तो हर्षिताङ्गस्तं परिपश्य पितृव्रवीत् ॥३८॥
 एवं बालः सुकुमारङ्गः पथं पश्यानिषेचनः । कथं तान् सहसे जेतु न प्रत्येग्यहमर्भकं^६ ॥३९॥
 सोऽबोचत् सद्य उल्बको भ्रमरस्त्वोऽपि पावकः । कथं दहत विस्तीर्णं महद्भिः किं प्रयोजनम् ॥४०॥
 बालः सूर्यस्तमो घोरं द्यूतीरं ऋक्षगणस्य च । एको नाशयति क्षिप्रं भूतिभिः किं प्रयोजनम् ॥४१॥

लेकर प्रजा सुखसे आत्माका ध्यान करती है तथा आश्रमवासी विद्वान् निराकुल रहते हैं ॥२८॥
 जिस देशका आश्रय पाकर साधुजन तपश्चरण करते हैं उन सबकी रक्षाके कारण राजा तपका छठवां भाग प्राप्त करता है ॥२८॥

अथानन्तर यह सब सुनकर राजा दशरथ शीघ्र ही रामको बुलाकर राज्य देनेके लिए उद्यत हो गये ॥२९॥ किङ्करोंने प्रसन्न होकर बहुत भारी आनन्द देनेवाली भेरी बजाई । हाथी और घोड़ोंसे व्याकुल समस्त मन्त्री लोग आ पहुँचे ॥३०॥ देदीप्यमान शूरवीर जलसे भरे हुए सुवर्ण-कलश लेकर तथा कमर कसकर आ गये ॥३१॥ जिनके नूपुरोंसे 'सुन्दर' शब्द हो रहा था तथा जो उत्तमोत्तम वेप धारण कर रही थीं ऐसी स्त्रियों पिटारोंमें वस्त्रालंकार ले लेकर आ गईं ॥३२॥ यह सब तैयारी देखकर रामने पूछा कि यह क्या है ? तब राजा दशरथने कहा कि हे पुत्र ! तुम इस पृथिवीका पालन करो ॥३३॥ यहाँ ऐसा शत्रुदल आ पहुँचा है जो देवोंके द्वारा भी दुर्जेय है । मैं प्रजाके हितकी वाञ्छासे जाकर उसे जीतूँगा ॥३४॥ तदनन्तर कमललोचन रामने राजा दशरथसे कहा कि हे तात ! अस्थानमें क्रोध क्यों करते हो ? ॥३५॥ आप रणकी इच्छा से जिनके सम्मुख जा रहे हैं, उन पशुस्वरूप भापाहीन दुष्ट मनुष्योंसे क्या कार्य हो सकता है ? ॥३६॥ वहाँके विरोध करनेसे उत्तम गजराज बौभको प्राप्त नहीं होते और न सूर्य रुईको जलानेके लिए तत्पर होता है ॥३७॥ वहाँ जानेके लिए तो मुझे आज्ञा देना उचित है सो दीजिए । ऐसा कहनेपर हर्षित शरीरके धारी पिताने रामका आलिङ्गन कर कहा ॥३८॥ कि हे पद्म ! अभी तुम बालक हो, तुम्हारा शरीर सुकुमार है, तथा नेत्र कमलके समान हैं, इसलिए हे बालक ! तुम उन्हें किस तरह जीत सकोगे इसका मुझे प्रत्यय नहीं है ॥३९॥ रामने उत्तर दिया कि तत्काल उत्पन्न हुई थोड़ी-सी अग्नि बड़े विस्तृत वनको जला देती है इसलिए बड़ोंसे क्या प्रयोजन है ? ॥४०॥ बालसूर्य अकेला ही घोर अन्धकारको तथा नक्षत्र-समूहकी कान्तिको नष्ट कर देता है इसलिए विभूतिसे क्या प्रयोजन है ? ॥४१॥

१. -सुप्रश्रित्य ब०, व०, क०, ख० । २. दातुं राज्यम् म० । ३. समाहताः म० । ४. पटलेष्वागताः म० । ५. तत्परं भवति । ६. हे राम । ७. प्रत्यय करोमि । ८. अर्भकः म० । ९. सद्यमुपजो क०, ख०, म० ।
 ३

ततः सहृष्टरोमाङ्गो नृपो दशरथः पुनः । प्रमोदं परमं प्राप्नो विषादं च सवाष्पदृक् ॥४२॥
 सत्वस्यागादिवृत्तीनां क्षत्रियाणामियं स्थितिः । उत्सहन्ते प्रयातुं यद्विहातुमपि जीवितम् ॥४३॥
 अथवा जयमप्राप्ते जन्तुरायुषि नारुते । मरणं गहनं प्राप्नो परं यद्यपि जायते ॥४४॥
 इति चिन्तयतस्तस्य कुमारौ रामलक्ष्मणौ । पितुः पादाब्जयुगलं प्रणय्योपगतौ बहिः ॥४५॥
 ततः सर्वाङ्गकुशलौ सर्वशास्त्रविशारदौ । सर्वलक्षणसंपूर्णौ सर्वस्य प्रियदर्शनौ ॥४६॥
 चतुरङ्गबलोपेतौ पूर्यमाणौ विभूतिभिः । संप्रयातौ रथारूढौ दीप्यमानौ स्वतेजसा ॥४७॥
 पूर्वमेव तु निर्यातौ जनकः सोदरान्वितः । अन्तरं योजने द्वे च परसैन्यस्य तस्य च ॥४८॥
 शत्रुशब्दममृष्यन्तो जनकस्य महारथाः । विविशुल्लेच्छसंघातं मेघवृन्दमिव ग्रहाः ॥४९॥
 प्रवृत्तश्च महाभीमः संप्राप्तो रोमहर्षणः । बृहत्पहरणाटोप आर्यम्लेच्छभटाकुलः ॥५०॥
 जनकः कनकं दृष्ट्वा परं गहनमागतम् । अचोदयदतिक्रुद्धो दुर्वारकरिणां घटाम् ॥५१॥
 वर्षरैस्तु महासैन्यैर्भनैर्भग्नैः पुनः पुनः । भीमैर्जनकराजोऽपि दिक्षु सर्वांषु वेष्टितः ॥५२॥
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्नो पद्मः सौमित्रिणा सह । अपारं गहनं सैन्यमपर्यन्ताकुलोचनः ॥५३॥
 दृष्ट्वा तस्य सितच्छत्रं विशीर्षां शत्रुबाहिनी । तमसां सन्ततिः स्फोता पौर्णमासीविधुं यथा ॥५४॥
 आरवासितश्च बाणौघैर्जनको घ्वस्तकङ्कटः । तेन जन्तुर्यथा दुःखी धर्मेण जगदायुषा ॥५५॥

तदनन्तर जिनका शरीर रोमाञ्चित हो रहा था ऐसे राजा दशरथ पुनः परम प्रमोद और विषादको प्राप्त हुए । उनके नेत्रोंसे आँसू निकल पड़े ॥४२॥ सत्त्व त्याग आदि करना जिनकी वृत्ति है ऐसे क्षत्रियोंका यही स्वभाव है कि वे युद्धमें प्रस्थान करनेके लिए अथवा जीवनका भी त्याग करनेके लिए सदा उत्साहित रहते हैं ॥४३॥ उन्होंने विचार किया कि जब तक आयु क्षीण नहीं होती है तब तक यह जीव परम कष्टको पाकर भी मरणको प्राप्त नहीं होता ॥४४॥ इस प्रकार राजा दशरथ विचार ही करते रहे और राम लक्ष्मण दोनों कुमार उनके चरण-कमलको नमस्कार कर बाहर चले गये ॥४५॥

तदनन्तर जो सर्व शास्त्र चलानेमें कुशल थे, सर्व शास्त्रोंमें निपुण थे, सर्व लक्षणोंसे परिपूर्ण थे, जिनका दर्शन सबके लिए प्रिय था, जो चतुरङ्ग सेनासे सहित थे, विभूतियोंसे परिपूर्ण थे तथा आत्मतेजसे देदीप्यमान हो रहे थे ऐसे दोनों कुमार रथपर आरूढ़ होकर चले ॥४६-४७॥ राजा जनक अपने भाईके साथ पहले ही निकल पड़ा था । जनक और शत्रुसेनाके बीचमें दो योजनका ही अन्तर रह गया था ॥४८॥ जिस प्रकार सूर्य चन्द्रमा आदि ग्रह मेघसमूहके बीच में प्रवेश करते हैं उसी प्रकार राजा जनकके महारथी योद्धा शत्रुके शब्दको सहन नहीं करते हुए म्लेच्छसमूहके भीतर प्रविष्ट हो गये ॥४९॥ दोनों ही सेनाओंके बीच जिसमें बड़े-बड़े शास्त्रों का विस्तार फैला हुआ था, और जो आर्य तथा म्लेच्छ योद्धाओंसे व्याप्त था, ऐसा रोमहर्षित करनेवाला महाभयंकर युद्ध हुआ ॥५०॥ राजा जनकने देखा कि भाई कनक संकटमें पड़ गया है तब उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर दुर्वार हाथियोंकी घटाको प्रेरित कर आगे बढ़ाया ॥५१॥ म्लेच्छोंकी सेना बहुत बड़ी तथा भयंकर थी इसलिए उसने बार-बार भग्न होनेपर भी भी राजा जनकको सब दिशाओंमें घेर लिया ॥५२॥ इसी बीचमें सुन्दर नेत्रोंको धारण करनेवाले राम लक्ष्मणके साथ वहाँ जा पहुँचे । पहुँचते ही उन्होंने शत्रुकी अपार तथा भयंकर सेना देखी ॥५३॥ रामके सफेद छत्रको देखकर शत्रुकी सेना इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट हो गई जिस प्रकार कि अन्धकारकी सन्तति पूर्णमासे चन्द्रमाको देख कर नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है ॥५४॥ बाणोंके समूहसे जिसका कवच टूट गया था ऐसे जनकको रामने उसी तरह आरवासन

राघवो रथमारुढो युक्तं चपलबाजिभिः । कवचोद्योतितवपुः हारकुण्डलमण्डितः ॥५६॥
धनुरायतमास्थाय शरपाणिर्हरिध्वजः । प्रकीर्णकोत्पन्नचक्रो धरणीधीरमानसः ॥५७॥
प्रविशन् विपुलं सैन्यं लीलाया लोकवत्सलः । सुभटैः पूर्यमाणः सन् भात्यर्क इव रश्मिभिः ॥५८॥
संरक्ष्य जनकं प्रीतः कनकं च यथाविधि । वलं व्यध्वंसयच्छत्रोरिभवं कदलीवनम् ॥५९॥
तथैव लक्ष्मणस्तत्र बाणानाकर्णसहताम् । ववर्ष वायुना नुन्नः सागरे जलदो यथा ॥६०॥
निशितानि च चक्राणि शक्तीश्च कनकानि च । शुलं क्रकचनिर्घातान्येवमाद्यान्यचिच्छिपत् ॥६१॥
सौमित्रिभुजनिर्मुक्तैस्तैः पतद्भिरितस्ततः । म्लेच्छदेहा^२ न्यक्त्यन्त ह्रुमाः परशुभिर्यथा ॥६२॥
भटाः शवरसैन्येऽस्मिन् बाणैर्निर्भिलवत्सः । केचिच्छिन्नमुज्जीवीषा निपतन्ति सहस्रशः ॥६३॥
ततः पराद् मुखीभूता लोककण्टकवाहिनी । तथापि लक्ष्मणस्तेषामनुधावति पृष्ठतः ॥६४॥
अनिवार्यं समालोक्य तं सौमित्रि शूराधिपम् । अपरे म्लेच्छशार्दूलं समन्ताद् क्षोभमागताः ॥६५॥
बृहद्वादित्रिभिर्बाणैः कुर्वाणा भैरवं रवम् । चापासिचक्रवद्गुलाः कृतसंघातपटङ्कयः ॥६६॥
रक्तवस्त्रशिरस्त्राणाः केचिद्वर्षधारिणः । असिधेनुकराः क्रूरा नानावर्णाङ्गधारिणः ॥६७॥
केचिन्मन्त्राभूतच्छायाः शुक्रपत्रस्त्रिपोऽपरे । केचिद्वर्द्धमसंकाशाः केचित्ताम्रसमस्त्रिपः ॥६८॥
कटिसूत्रमणिप्रायाः पत्रचीवरधारिणः । नानाधातुविलिप्ताः मञ्जरीकृतशेखराः ॥६९॥

दिया-वैर्य बंधाया जिस प्रकार कि जगतके प्राणस्वरूप धर्मके द्वारा दुःखी प्राणीको आरवासन दिया जाता है ॥५५॥ रामचन्द्र चञ्चल घोड़ीसे जुते हुए रथ पर सवार थे, उनका शरीर कवचसे प्रकाशमान हो रहा था, हार और कुण्डल उनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥५६॥ वे एक हाथमें लम्बा धनुष और दूसरे हाथमें बाण लिये हुए थे । उनकी ध्वजामें सिंहका चिह्न था, शिर पर विशाल छत्र फिर रहा था तथा उनका मन पृथिवीके समान धीर था ॥५७॥ जिनके साथ अनेक सुभट थे ऐसे लोकवत्सल, राम, लीलापूर्वक विशाल सेनाके बीच प्रवेश करते हुए ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो किरणोंसे सहित सूर्य ही हो ॥५८॥ प्रसन्नतासे भरे रामने जनक और कनक दोनों भाइयोंकी विधिपूर्वक रक्षा कर शत्रुसेनाको उस तरह नष्ट कर दिया जिस प्रकार कि हाथी केलाके वनको नष्ट कर देता है ॥५९॥ जिस प्रकार वायुसे प्रेरित मेघ समुद्र पर जल वर्षा करता है उसी प्रकार लक्ष्मणने शत्रुदल पर कान तक खिंचे हुए बाण बरसाये ॥६०॥ वह अत्यन्त तीक्ष्ण चक्र, शक्ति, कनक, शूल, क्रकच और वज्रदण्ड आदि शस्त्रोंकी खूब वर्षा कर रहा था ॥६१॥ जिस प्रकार पड़ते हुए कुल्हाड़ोंसे वृक्ष कट जाते हैं उसी प्रकार लक्ष्मणकी भुजासे छूटकर जहाँ-तहाँ पड़ते हुए पूर्वोक्त शस्त्रोंसे म्लेच्छोंके शरीर कट रहे थे ॥६२॥ म्लेच्छोंकी इस सेनामें बाणोंसे कितने ही योद्धाओंका वक्षःस्थल छिन्न-भिन्न हो गया था, और हजारों योद्धा भुजा तथा गरदन कट जानेसे नीचे गिर गये थे ॥६३॥ यद्यपि लोकके शत्रुओंकी वह सेना लक्ष्मणसे पराङ्मुख हो गई थी तो भी वह उनके पीछे दौड़ता ही गया ॥६४॥ जिसे कोई रोक नहीं सकता था ऐसे लक्ष्मणरूपी मृगाराजको देखकर म्लेच्छरूपी तिट्ठुए सब ओरसे क्षोभको प्राप्त हो गये ॥६५॥ उस समय वे म्लेच्छ वड़े भारी बाजोंके शब्दसे भयंकर शब्द कर रहे थे, धनुष, कृपाण तथा चक्र आदि शस्त्र बहुलतासे लिये थे और मुण्डके-मुण्ड बनाकर पडित्तरूपसे खड़े थे ॥६६॥ कितने ही म्लेच्छ लाल वस्त्रका साफा बाँधे हुए थे, कोई छुरी हाथमें लिये थे और नाना रङ्गके शरीर धारण कर रहे थे ॥६७॥ कोई मसले हुए अन्नके समान काले थे, कोई सूखे पत्तोंके समान कान्ति वाले थे, कोई कीचड़के समान थे और कोई लाल रङ्गके थे ॥६८॥ अधिकतर वे कटिसूत्रमें मणि बाँधे हुए थे, पत्तोंके वस्त्र पहिने हुए थे; नाना धातुओंसे उनके शरीर लिप्त थे, फूलकी

वराट्कामदशना विशालपिठोदराः । विरेजुः सैन्यमध्ये^१ तु कुटजा इव पुष्पिताः ॥७०॥
 अपरे शवरा रेजुभीषणायुधपाणयः । पीनजङ्घाभुजस्कन्धा असुरा इव दुर्गिताः ॥७१॥
 निर्दयाः पशुमांसादो मूढाः प्राणिवधोद्यताः । आरभ्य जन्मनः पापा सहस्रात्मकारिणः ॥७२॥
 वराहमहिष्याप्रवृककङ्कादिकेतवः । नानायानच्छदच्छत्रास्तस्मान्मन्ताः सुभीषणाः ॥७३॥
 नानायुद्धकृतध्वान्ता महावेगपदातयः । सागरोर्मिनिभाश्चण्डा^२ नानाभीषणनिस्वनाः ॥७४॥
 लक्ष्मणसमाधरं वज्रुः क्षुब्धाः शबरनोरदाः । निजसामन्तवातेन प्रेरिताः पुरुरंहसः ॥७५॥
 अथावत्लक्ष्मणस्तेषां निपाताय समुद्यतः । यथानहुत्समूहानां महावेगो गजाधिपः ॥७६॥
 मृद्यमाना निपेतुस्ते स्वैरेव वसुधातले । विदुद्वुरसंस्थाश्च भीत्या विचतमूर्तयः^३ ॥७७॥
 ततः संधारयन् सैन्यं मान्तरङ्गतमो नृपः । समं सकलसैन्येन लक्ष्मणाभिमुखं स्थितः ॥७८॥
 तेनाभ्यागतमात्रेण प्रवृत्ते सैरवे मृधे । लक्ष्मणस्य धनुर्विद्वन् बाणैः संततवर्षिभिः ॥७९॥
 कृपाणं याचदादत्ते लक्ष्मणो विरधीकृतः । समीरणजवं तावत्पत्रो रथमबोधयत् ॥८०॥
 लक्ष्मणस्योपनीतश्च रथोऽन्यः क्षेपवर्जितः । अपारमदहत् सैन्यं रामः कण्ठमिवानलः ॥८१॥
 कांश्चिच्चिच्छेद बाणौघैः कांश्चिक्लकतोमरैः । चक्रैः शिरांसि केषांचिक्कुञ्चितौघान्यपातयत् ॥८२॥

मञ्जरियोसे उन्होंने सेहरा बना रक्खा था ॥६६॥ कौड़ियोंके समान उनके दौत थे, बड़े मटकाके समान उनके पेट थे और सेनाके बीच वे फूले हुए कुटज वृक्षके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७०॥ जिनके हाथोंमें भयंकर शस्त्र थे, और जिनकी जाँघें, भुजाएँ और स्कन्ध अत्यन्त स्थूल थे ऐसे कितने ही म्लेच्छ गर्वीले असुरोंके समान जान पड़ते थे ॥७१॥ वे अत्यन्त निर्दय थे, पशुओंका मांस खाने वाले थे, मूढ़ थे, पापी थे और सहसा अर्थात् बिना विचार किये काम करने वाले थे ॥७२॥ वराह, महिष, व्याघ्र, वृक और कङ्क आदिके चिह्न उनकी पताकाओंमें थे, उनके सामन्त भी अत्यन्त भयंकर थे तथा नाना प्रकारके वाहन, चर और छत्र आदिसे सहित थे ॥७३॥ नाना युद्धोंमें जिन्होंने अन्धकार उत्पन्न किया था, जो समुद्रकी लहरोंके समान प्रचण्ड थे, और नाना प्रकारका भयंकर शब्द कर रहे थे ऐसे महावेगशाली पैदल योद्धा उनके साथ थे ॥७४॥ अपने सामन्तरूपी वायुसे प्रेरित होनेके कारण जिनका वेग बढ़ रहा था ऐसे उन लोभको प्राप्त हुए म्लेच्छरूपी मेघोंने लक्ष्मणरूपी पर्वतको घेर लिया ॥७५॥ जिस प्रकार बैलोक समूहको नष्ट करनेके लिए महावेगशाली हाथी दौड़ता है उसीप्रकार उन सबको नष्ट करनेके लिए उद्यत लक्ष्मण दौड़ा ॥७६॥ लक्ष्मणके दौड़ते ही उनमें भगदड़ मच गई जिससे वे अपने ही लोगोसे कुचले जाकर पृथिवीपर गिर पड़े। तथा भयसे जिनके शरीर खण्डित हो रहे थे ऐसे अनेक योद्धा इधर-उधर भाग गये ॥७७॥

तदनन्तर आन्तरङ्गतम राजा सेनाको रोकता हुआ सब सेनाके साथ लक्ष्मणके सम्मुख खड़ा हुआ ॥७८॥ उसने आते ही भयंकर युद्ध किया और निरन्तर बरसते हुए बाणोंसे लक्ष्मणका धनुष तोड़ डाला ॥७९॥ लक्ष्मण जब तक तलवार उठाता है तब तक उसने उसे रथ-रहित कर दिया अर्थात् उसका रथ तोड़ डाला। यह देख रामने वायुके समान वेगवाला अपना रथ आगे बढ़ाया ॥८०॥ लक्ष्मणके लिए शीघ्र ही दूसरा रथ लाया गया और जिस प्रकार अग्नि वनको जलाती है, उसी प्रकार रामने शत्रुकी सेनाको जला दिया ॥८१॥ उन्होंने कितने ही लोगोंको बाणोंके समूहसे छेद डाला, कितने ही लोगोंको कनक और तोमर नामक शस्त्रोंसे

१. सैन्यमय म० । २. सहस्रात्मकारिणः म० । ३. चन्द्रा म० । ४. शरदनीरदाः म० । ५. यथा नदत्समूहाना म० । ६. विकृतमूर्तयः म० । ७. साधरयन् म० । ८. आन्तरङ्गतमः एतन्नामा म्लेच्छनृपः । ९. समीरणजवात्तावत् म० ।

ननाश भयपूर्णां च यथास्थं म्लेच्छवाहिनी । विध्वस्तचामरच्छत्रध्वजचापसमाकुला ॥८३॥
 निमिषान्तरमात्रेण रासेणाविलष्टकर्मणा । म्लेच्छा निराकृताः सर्वे कथायां हव साधुना ॥८४॥
 आगतो यश्च सैन्येन निष्पारेणोद्धरिष्या । भीतोऽश्वैर्दृशभिः सोऽयं म्लेच्छराजो विनिःसृतः ॥८५॥
 पराङ्मुखीकृतैः क्लीबैः किमेभिर्निहतैरिति । सौमित्रिणा समं रामः कृती निववृते सुखम् ॥८६॥
 अमी भयाकुला म्लेच्छा चिह्नाय विजिगीषुताम् । आश्रित्य सहाविन्ध्याद्रौन् समयेनावतस्थिरे ॥८७॥
 कन्दमूलफलाहारस्तत्पञ्च रौद्रकर्मताम् । राघवाद् भयमापन्ना वैनतेयाद्रिवोरगाः ॥८८॥
 १सानुजः २सानुजं पद्मो विग्रहे शान्तविग्रहः । विसर्ज्य ३जनकं हृष्टं ४जनकाभिमुखोजगमत् ॥८९॥
 प्रजात्तपरमानन्दार् रेमे विस्मितमानसा । रराज पृथिवी सर्वा भूत्या कृतयुगे यथा ॥९०॥
 धर्मार्थकामसंस्तौः पुरुषैर्नृपितं जगत् । व्यतीतहिमसंरोधैर्नैवैरम्बरं यथा ॥९१॥
 माहात्म्यादमुतो राजन् दुहिता लोकसुन्दरी । जनकेन प्रसन्नेन राघवस्य प्रकल्पिता ॥९२॥

काट डाला तथा जिनके आँठ टेढ़े हो रहे थे ऐसे कितने ही लोगोंके शिर चक्ररत्नसे नीचे गिरा दिये ॥८३॥ दूढ़े-कूढ़े चमर छत्र ध्वजा और धनुषोसे व्याप्त म्लेच्छोंकी वह सेना भयभीत होकर इच्छानुसार नष्ट हो गई—इधर-उधर भाग गई ॥८४॥ जिस प्रकार साधु कथायोंको क्षण भरमे नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार क्लेशरहित कार्य करनेवाले रामने निमेष मात्रमें ही समस्त म्लेच्छोंको नष्ट कर दिया ॥८५॥ जो म्लेच्छ राजा समुद्रके समान अपार सेनाके साथ आया था वह भयभीत होकर केवल दश घोड़ोंके साथ बाहर निकला था ॥८६॥ इन विमुख नपुंसकोंको मारनेसे क्या प्रयोजन है ऐसा विचार कर कृतकृत्य राम लक्ष्मणके साथ सुख पूर्वक युद्धसे लौट गये ॥८७॥ भयसे घबड़ाये हुए म्लेच्छ विजयकी इच्छा छोड़ सन्धि कर सन्न और विन्ध्य पर्वतोपर रहने लगे ॥८८॥ जिस प्रकार सौंप गरुड़से भयभीत रहते हैं उसी प्रकार म्लेच्छ भी रामसे भयभीत रहने लगे । वे कन्द मूल फल आदि खाकर अपना निर्वाह करने लगे तथा उन्होंने सब दुष्टता छोड़ दी ॥८९॥

तदनन्तर युद्धमे जिनका शरीर शान्त रहा था ऐसे सानुज अर्थात् छोटे भाई लक्ष्मणसहित राम, सानुज अर्थात् छोटे भाई जनकसहित हर्षित जनकको छोड़कर जनक अर्थात् पिताके सम्मुख चले गये ॥८९॥ तदनन्तर जिसे परम आनन्द उत्पन्न हुआ था और जिसका मन आश्चर्यसे विस्मित हो रहा था ऐसी समस्त प्रजा आनन्दसे क्रीड़ा करने लगी और समस्त पृथिवी कृतयुगके समान वैभवसे सुशोभित होने लगी ॥९०॥ जिस प्रकार हिमके आवरणसे रहित नक्षत्रोंसे आकाश सुशोभित होता है उसी प्रकार धर्म अर्थ काममे आसक्त पुरुषोंसे संसार सुशोभित होता है ॥९१॥ गौतमस्वामी श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! राजा जनकने इसी माहात्म्य से प्रसन्न होकर अपनी लोकसुन्दरी पुत्री जानकी रामके लिए देना निश्चित की थी ॥९२॥

१. यथावाञ्छम् यथासंम्लेच्छम् ० । २. विनिःसृतः ० । ३. लक्ष्मणः । ४. अनुजसहित जनक सहितमिति यावत् । ५. पद्मोऽविग्रहः ० । ६. मिथिलाधिपम् । ७. पित्रभिमुखम् । ८. रोमविस्मित- ० ।

उपजातिवृत्तम्

किं वात्र कृत्यं बहुभाषितेन श्रीश्रेणिक स्वं ननु कर्म दुःसाम् ।
 'समागमे गच्छति हेतुभावं वियोजने वा सुजनेन साकम् ॥६३॥
 सोऽहं महात्मा सुवने समस्ते गतः प्रतापं परमं सुभाग्यः ।
 गुणैरनन्यप्रमितैरुपेतो रवियथोद्गाति^२ परो मयूखैः ॥६४॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यं प्रोक्ते पद्मचरिते म्लेच्छपराजयसंकीर्तनं नाम
 सप्तविंशतितमं पर्व ॥२७॥

इस विषयमे बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? हे श्रेणिक ! यह निश्चित बात है कि मनुष्योंका अपना किया कर्म ही उत्तम पुरुषोंके साथ संयोग अथवा वियोग होनेसे कारणभावको प्राप्त होता है ॥६३॥ परम प्रतापको प्राप्त भाग्यशाली एवं असाधारण गुणोंसे युक्त महात्मा रामचन्द्र समस्त संसारमे इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि किरणोंसे युक्त सूर्य सुशोभित होता है ॥६४॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमे म्लेच्छोंके पराजयका वर्णन करनेवाला सत्ताईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२७॥

अष्टाविंशतितमं पर्व

ईद्वपराक्रमाकृष्टो नारदः पुरुविस्मयः । धृतिं न लभते कापि रामसंकथया विना ॥१॥
 अतश्च तेन वृत्तान्तो रामस्य किल मैथिली । पिता दातुमर्भाष्टेति प्रकटा सर्वविधे ॥२॥
 अचिन्तयच्च पर्यामि कन्यां तामद्य कीदृशीम् । शोभनैल्लक्ष्णैर्येन रामस्य परिकल्पिता ॥३॥
 पद्मगर्भदं यस्मिन् कृत्वा स्तनतटे रहः । मत्कान्त्या सह्यं नेदमिति बुद्ध्यावलीकते ॥४॥
 समये नारदस्तस्मिन् सीतालीकनलाळसः । विशुद्धहृदयः प्रापदाखरोह च सद्गृहम् ॥५॥
 ततो दर्पणसंक्रान्तं जटामुकुटभीषणम् । नारदीयं वपुर्वीक्ष्य कन्या त्राससमाकुला ॥६॥
 हा मातः कोऽयमत्रेति कृत्वा प्रस्थलितस्वनम् । विवेश गर्भभवनं वेपमानशरीरिका ॥७॥
 नारदोऽनुपदं तस्या विशन्नतिकुतूहलः । नारीभिर्द्वारपालीभिः सावष्टम्भमरुष्यत ॥८॥
 यावत्तस्य च तासां च कलहो वर्तते महान् । तावच्छब्देन संप्राप्तुर्नराः खड्गधनुर्धराः ॥९॥
 गृह्णातां गृह्णातां कोऽयं कोऽयमित्युद्धतस्वनाः । कुञ्चितौघान्नरान् दृष्ट्वा सशस्त्रान् हन्तुमुद्यतान् ॥१०॥
 नारदः परमं विश्रङ्गयमुक्त्वनेपथुः । ऊर्ध्वरोमा खमुत्पत्य विश्रान्तोऽष्टापदाचले ॥११॥
 अचिन्तयच्च हा कष्टं प्राप्नोऽस्मि जननं पुनः । विष्कान्तोऽस्मि महादावात् पत्नी ज्वालाहतो यथा ॥१२॥

अथानन्तर जो इस प्रकारके पराक्रमसे आकर्षित था तथा बहुत भारी आश्चर्यसे युक्त था ऐसा नारद युद्धकी चर्चाके बिना कहीं भी सन्तोषको प्राप्त नहीं होता था ॥१॥ उसने समाचार सुना कि समस्त संसारमे प्रसिद्ध अपनी सीता नामकी पुत्री उसके पिता राजा जनकने रामचन्द्रके लिए देनेकी इच्छा की है ॥२॥ समाचार सुनते ही उसने विचार किया कि उस कन्याको देखू तो सही कि वह शुभ लक्षणोंसे कैसी है जिससे रामचन्द्रके लिए उसका देना निश्चित किया गया है ॥३॥ ऐसा विचार कर नारद उस समय सीताके महलमे पहुँचा जध कि वह एकान्त स्थानमें पद्मगर्भ मणिका एक खण्ड अपने स्तन तटके समीप करके इस बुद्धिसे उसे देख रही थी कि यह मेरी कान्तिके समान है या नहीं ॥४॥ जिसे सीताके देखनेकी लाळसा थी तथा जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध अर्थात् निर्विकार था ऐसा नारद उस समय सीताके महलमे ऊपर जा चढ़ा ॥५॥ तदनन्तर जिसका दर्पणमे प्रतिबिम्ब पड़ रहा था और जो जटारूपी मुकुटसे भीषण था ऐसा नारदका शरीर देखकर सीता भयसे व्याकुल हो गई ॥६॥ हा मातः ! यह यहाँ कौन आ रहा है ? इस प्रकार अर्धोच्चारित शब्द कर वह महलके भीतर घुस गई । उस समय उसका शरीर कम्पित हो रहा था ॥७॥ अत्यन्त कुतूहलसे भरा नारद भी उसीके पीछे महलमे भीतर प्रवेश करने लगा तो द्वारकी रक्षा करनेवाली स्त्रियोंने उसे बलपूर्वक रोक लिया ॥८॥ जब तक नारद तथा उन स्त्रियोंके बीच बड़ा कलह होता है तब तक उनका शब्द सुनकर तलवार और धनुषको धारण करनेवाले पुरुष वहाँ आ पहुँचे ॥९॥ वे पुरुष पकड़ो-पकड़ो कौन है ? कौन है ? इस प्रकारका जोरदार शब्द कर रहे थे । जो ओठ चाव रहे थे, शस्त्रोंसे युक्त थे तथा मारनेके लिए उद्यत थे ऐसे उन पुरुषोंको देखकर नारद अत्यन्त भयभीत हो उठा । उसके शरीरसे अत्यधिक कंप-कंपी छूट रही थी, और रोमाञ्च खड़े हो गये थे । खैर, जिस किसी तरह वह आकाशमें उड़कर कैलास पर्वत पर पहुँचा और वहीं विश्राम करने लगा ॥१०-११॥ वह विचारने लगा कि हाय ! मैं वड़े कष्टमे पड़ गया था । वचकर क्या आया मानो दूसरा जन्म ही मैंने प्राप्त किया है । जिस प्रकार ज्वालाओंसे मुल्ला पत्नी किसी वड़े ढावानलसे बाहर निकलता

शनैः शनैस्ततः कर्मं तद्विग्न्यस्तेक्ष्णोऽमुचत् । समार्जं च ललाटस्थान् स्वेदविन्दून् स्थवीर्यसः ॥१३॥
 समादधे स्खलपाणिर्जटाभारं समाकुलम् । मुहुः स्मृता च निःश्वासान्मुमुचे दीर्घवेगिनः ॥१४॥
 ततः स्वैरं भयाद् अष्टौ दध्यावेवं प्रकोपवान् । निश्चलस्थितशेषाङ्गो मूर्धानं कम्पयन् मनाक् ॥१५॥
 अदुष्टमानसः पश्यन् यातो रूपदिदृक्षया । रामानुरागतः प्रापमवस्थां मृत्युसोचराम् ॥१६॥
 अहो प्रौढकुमार्यस्तच्चेष्टितं दुष्टविग्रमम् । गृहीतोऽस्मि नयनेनैव कृतान्तसदृशैरैः ॥१७॥
 नव मे पापाधुना याति न्यसने पातयामि ताम् । नृत्याम्यातोक्षमुक्तोऽपि किमुतातोद्यस्युतः ॥१८॥
 विचिन्त्यैवं द्रुतं गत्वा नगरं रथनूपुरम् । सीतारूपं पदे न्यस्य प्रत्यक्षमिव सुन्दरम् ॥१९॥
 चकारोपवने चन्द्रगतेः^२ क्रीडनसम्पन्नि । उत्सृज्य च वहिस्तस्थौ पुरस्थाप्रकटात्मकः ॥२०॥
 अन्यदाथ तमुद्देशं कुमारैर्वहुभिः समम् । भामण्डलकुमारोऽसौ रममाणः समाययौ ॥२१॥
 तन्नाजानात् समालोक्य स्वतारं चित्रगोचराम् । ह्रींश्रुतिस्मृतियुक्तात्मा द्वाक् प्रभामण्डलोऽभवत् ॥२२॥
 ततः शोचति निरवासान्मुञ्चतेऽन्यन्तमायताम् । श्रुप्यति क्षिपति क्षत्तं गात्रं यत्र क्वचिद् द्रुतम् ॥२३॥
 न रात्रौ न दिवा निद्रां लभते ध्यानतत्परः । उपचारेण^३ कान्तेन न जातु सुखमश्नुते ॥२४॥
 पुष्पाणि गन्धमाहारं द्वेष्टि चवैढं^४ यया नृशम् । करोति लोठनं भूयः संतापी जलकुट्टिने ॥२५॥

है उसी प्रकार मैं भी उस कष्टसे बाहर निकला हूँ ॥१२॥ उस समय भी उसके नेत्र उसी दिशामें लगा रहे थे । तदनन्तर धीरे-धीरे उसने शरीरकी कँपकँपी छोड़ी और ललाटपर स्थित पसीनेकी बड़ी-बड़ी बूँदें पोंछीं ॥१३॥ उसने कोंपते हुए हाथसे अपनी बिखरी हुई जटाएँ ठीक कीं । यह करते हुए जब उसे बार-बार पिछली घटनाका स्मरण हो आता था तब वह लम्बी-लम्बी साँसें छोड़ने लगा था ॥१४॥ तत्पश्चात् जब भय दूर हुआ तो क्रोधमें आकर वह इस प्रकार विचार करने लगा । विचार करते समय उसके समस्त अङ्ग निश्चित रूपसे स्थिर थे केवल वह मस्तकको कुछ-कुछ हिला रहा था ॥१५॥ वह विचारने लगा कि देखो मेरे मनमें कोई दोष नहीं था मैं केवल रामचन्द्रके अनुरागसे सीताका रूप देखनेकी इच्छासे ही वहाँ गया था परन्तु ऐसी दशाको प्राप्त हो गया जिसमें मृत्यु तककी आशाही हो गई ॥१६॥ आश्चर्य है कि उस प्रौढ़ कुमारीकी वह चेष्टा कितनी दुष्टतासे भरी थी कि जिसके कारण मैं यमराजकी समानता करनेवाले मनुष्योंके द्वारा पकड़ लिया गया ॥१७॥ वह पापिनी अब जावेगी कहाँ ? मैं उसे अवश्य ही संकटमें डालूँगा । मैं तो बाजेके बिना ही नाचता हूँ फिर यदि बाजे मिल जावे तो कहना ही क्या है ? ॥१८॥ ऐसा विचार कर उसने एक पटपर प्रत्यक्षके समान सीताका सुन्दर चित्र बनाया और उसे लेकर वह शीघ्र ही रथनूपुर नगर गया ॥१९॥ वहाँ जाकर उसने उपवनमें जो अत्यन्त उत्कृष्ट क्रीड़ा भवन था उसमें वह चित्रपट रख दिया और स्वयं अप्रकट रहकर नगरके बाहर रहने लगा ॥२०॥

अथानन्तर किसी दिन अनेक कुमारोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ भामण्डल कुमार वहाँ आया ॥२१॥ सो चित्रमें अङ्कित वहिन सीताको देखकर वह अज्ञानवश शीघ्र ही लज्जा, शास्त्र, ज्ञान तथा स्मृतिसे रहित हो गया अर्थात् सीताके चित्रको देखकर इतना कामाकुलित हुआ कि लज्जा, शास्त्र तथा स्मृति आदि सबकी भूल गया ॥२२॥ वह निरन्तर शोक करने लगा, अत्यन्त लम्बे श्वासोच्छ्वास छोड़ने लगा, उसका शरीर सूख गया तथा शिथिल शरीरको वह चाहे जहाँ उपेक्षासे डालने लगा अर्थात् चाहे जहाँ ठठने बैठने लगा ॥२३॥ उसे न रात्रिमें नींद आती थी न दिनमें चैन पड़ता था । वह रात-दिन उसीके ध्यानमें निमग्न रहता था । सुन्दर उपचारोंसे उसे कभी भी सुख नहीं मिलता था ॥२४॥ वह पुष्प, सुगन्धित पदार्थ तथा आहारसे ऐसा द्वेष

मौनमाचरति स्मिन्वा करोति च कथां मुहुः । सहसोत्तिष्ठति व्यर्थं याति भूयो निवर्तते ॥२६॥
 ततो ग्रहगृहीतस्य सदृशैस्तैर्विचेष्टितैः । ज्ञातं तदातुरत्वस्य कारणं मतिशालिभिः ॥२७॥
 जगदुच्चैवमन्योन्थं कन्येयं केन चित्रिता । पटोऽत्र निहितो गेहे स्याद् वा नारदचेष्टितम् ॥२८॥
 ततः श्रुत्वा कुमारं तमाकुलं स्वेन कर्मणा । नारदस्तस्य बन्धूनां विस्तृत्यो दर्शनं ददौ ॥२९॥
 आदरेण च तैः पृष्टः कृतपूजानमस्कृतिः । मुने कथय कन्येयं दृष्ट्वा क्व भवतेदृशी ॥३०॥
 महोरगाङ्गना किं स्याद् भवेत् किं वा विमानजा । मर्त्यलोकं समायाता त्वया दृष्टा कथंचन ॥३१॥
 'अथद्वारस्ततोऽनोचद् विचर्य परम बहन्' । भूयो भूयः स्वयं गच्छन् विस्मयं कम्पयन् शिरः ॥३२॥
 अस्त्यत्र मिथिला नाम पुरी परमसुन्दरी । इन्द्रकेतोः सुतस्तत्र जनको नाम पार्थिवः ॥३३॥
 विदेहेति प्रिया तस्य मनोबन्धनकारिणी । गोत्रसर्वस्वभूतेयं सीतेति द्रुहिता तयोः ॥३४॥
 निवेद्यैवमसौ तेभ्यः कुमारं पुनरुक्तवान् । बाल मा याः विपादं त्वं तवेयं सुलभैव हि ॥३५॥
 रूपमात्रेण यातोऽसि किमस्या भावनीदृशम् । ये तस्या विभ्रमा भद्रं कस्तान् वर्णयितुं समः ॥३६॥
 तथा चित्तं समाकृष्ट तवेति किमिहाङ्कृतम् । धर्मध्याने दृढ बद्धं मुनीनामपि सा हरेत् ॥३७॥
 आकारमात्रमत्रैतत्तस्या न्यस्तं मया पटे । लावण्यं यच्च तत्तस्यास्तस्यामेवैतदीदृशम् ॥३८॥
 नवयौवनसंभूतकान्तिसागरवीचिषु । सा तिष्ठति तरन्तीव संसक्ता स्तनकुम्भयोः ॥३९॥

करता था मानो उन्हें विपमय ही समझता हो । वह संतापसे युक्त होकर बार-बार जलसे सींचे हुए फर्शपर छोटता था ॥२५॥ वह मौन बैठ रहा था, कभी हँसकर बार-बार चर्चार्च करने लगा था, कभी सहसा उठकर व्यर्थ ही चलने लगा था और फिर लौट आता था ॥२६॥ उसकी समस्त चेष्टाएँ ऐसी हो गईं मानो उसे भूत लग गया हो । तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुषोंने उसकी आतुरताके कारणोंका पता लगाया ॥२७॥ वे परस्परमें इस प्रकार कहने लगे कि यह कन्या किसने चित्रित की है ? इस महलमें यह चित्रपट किसने रक्खा है ? जान पड़ता है कि यह सब नारदकी चेष्टा है ॥२८॥

तदनन्तर जब नारदने सुना कि हमारे कार्यसे भामण्डल कुमार अत्यन्त आकुल हो रहा है तब उसने निश्चाङ्क होकर उसके बन्धुओंके लिए दर्शन दिया ॥२९॥ उन सबने बड़े आदरसे नारदकी पूजा कर नमस्कार किया तथा पूछा कि हे मुने ! कहीं आपने यह ऐसी कन्या कहीं देखी है ? ॥३०॥ यह कोई नागकुमार देवकी अङ्गना है या पृथिवी पर आई हुई किसी कल्पवासी देवकी स्त्री आपने किसी तरह देखी है ? ॥३१॥ तदनन्तर परम विनयको धारण करता तथा स्वयं ही आश्चर्यकी प्राप्त हो बार-बार शिर हिलाता हुआ नारद कहने लगा ॥३२॥ कि इसी मध्यमलोकमें अत्यन्त मनोहर मिथिला नामकी नगरी है उसमें इन्द्रकेतुसे प्रशंसाको प्राप्त हुआ जनक नामका राजा रहता है ॥३३॥ उसके मनको बाँधने वाली विदेहा नामकी प्रिया है । उन दोनोंकी ही यह सीता नामकी कन्या है । यह कन्या उन दोनोंके गोत्रका मानो सर्वस्व ही है ॥३४॥ भामण्डलके भाई-बन्धुओंसे ऐसा कहकर उसने भामण्डलसे कहा कि हे बालक ! तू विपादको प्राप्त मत हो । यह कन्या तुम्हें सुलभ ही है ॥३५॥ तू इसके रूपमात्रसे ही ऐसी अवस्थाको प्राप्त हो रहा है फिर इसके जो हाव-भाव विभ्रम हैं उनका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥३६॥ उसने तुम्हारा चित्त आकृष्ट कर लिया इसमें आश्चर्य ही क्या है ? वह तो धर्मध्यान में सुदृढरूपसे निबद्ध मुनियोंके चित्तको भी आकृष्ट कर सकती है ॥३७॥ मैंने चित्रपटमें उसका यह केवल आकारमात्र ही अङ्कित किया है । उसका जो लावण्य है वह तो उसीमें है अन्यत्र सुलभ नहीं है ॥३८॥ वह नव यौवनसे उत्पन्न कान्तिरूपी समुद्रकी तरङ्गोंमें ऐसी जान पड़ती

१. नारदः । अवधारः म० । २. महत् म० । ३. गच्छद्विस्मयं म० । ४. इन्द्रकेतोः सुतः म० । ५. तां म० ।

तस्याः श्रोणी वराहोहा कान्तिसंस्फावितांशुका । वींचितोन्मूलयेत्^१ स्वान्तं समूलमपि योगिनाम् ॥४०॥
 युक्त्वा भवन्तमन्यस्य सेयं कस्योचिता भवेत् । यत्न वस्तुनि कुर्वन्^२ जायतां योग्यसंगमः^३ ॥४१॥
 ह्युक्त्वा चरितार्थः सन्धारदोऽगामननीपितम् । दध्वौ भामण्डलोऽप्येव स्मरसायकताडितः ॥४२॥
 क्षेपिष्ठं प्रसदारत्वं न लभेयं यदीदृशम् । न जीवेयं तदावश्यं स्मराकुलितमानसः ॥४३॥
 धारयन्ती परां कान्तिमिय मे^४ हृदयस्थिता । कथं न^५ कुरुते तापमग्निज्वालेव सुन्दरी ॥४४॥
 बृहति त्वचमेवाकौ बहिरन्तश्च मन्मथः । अन्तर्द्विस्ति सूर्यस्य मन्मथस्य न विद्यते ॥४५॥
 द्वयमेव ध्रुवं मन्ये प्रासव्यमधुना मया । तथा वा संगमः साकं मरणं वा स्मरेषुभिः ॥४६॥
 अनारतमिति^६ ध्यायन्नशने शयने न च । न प्रासादे न बोधाने छर्ति भामण्डलोऽगमत् ॥४७॥
 स्त्रियोऽयं नारदं मत्वा कुमारसुखकारणम् । ससंभ्रमं समुद्विग्नाः^७ पितुरस्य न्यवेदयन्^८ ॥४८॥
 नाथानर्थसमुद्गेन^९ नारदेनाहता पटे । चित्रीकृत्याङ्गना कापि^{१०} रूपातिशययोगिनी ॥४९॥
 समालोक्य कुमारस्तां विह्वलीभूतमानसः । छर्ति न लभते कापि त्रयथा दूरमुत्क्रान्तः ॥५०॥
 मुहुस्तामीचते कन्यां सीताशब्दं समुच्चरन् । करोति विविधां चेष्टां वायुनेव वशीकृतः ॥५१॥
 उपायश्चिन्त्यतामाशु तस्योत्पादयितुं छतिम् । यावन्न मुच्यते प्राणैर्भोजनादिपरादमुखः ॥५२॥

है मानो स्तनरूपी कलशोंके सहारे तैर ही रही हो ॥३९॥ कान्तिसे वखको तिरोहित करने वाले उसके नितम्ब यदि देखनेमें आ जायें तो निश्चित ही वह योगियोंके मनको भी समूल उखाड़ कर फेंक दे ॥४०॥ आपको छोड़कर और यह किसके योग्य हो सकती है ? इस कार्यमें यत्न करो जिससे योग्य समागम प्राप्त हो सके ॥४१॥ इतना कहकर नारद तो कृतकृत्य हो इच्छित स्थान पर चला गया पर इधर भामण्डल कामके बाणोंसे ताड़ित हो इस प्रकार विचार करने लगा कि ॥४२॥ चूँकि मेरा मन कामसे इतना आकुल हो रहा है कि यदि मैं शीघ्र ही इस खीरव्रको नहीं पाता हूँ तो अवश्य ही जीवित नहीं रह सकूँगा ॥४३॥ परम कान्तिको धारण करने वाली यह सुन्दरी प्रमदा मेरे हृदयमें स्थित है फिर अग्निकी ज्वालाके समान सन्ताप क्यों कर रही है ॥४४॥ सूर्य सिर्फ बाहरी जमड़ेको जलाता है पर काम भीतरी भागको जलाता है । इतने पर भी सूर्य अस्त हो जाता है पर काम कभी अस्त नहीं होता ॥४५॥ इस समय तो ऐसा जान पड़ता है कि मेरे द्वारा दो ही वस्तुएँ प्राप्त करने योग्य हैं । एक तो उस स्त्री रत्नके साथ समागम और दूसरा कामके बाणोंसे मारा जाना ॥४६॥ इस प्रकार निरन्तर उसीका ध्यान करता हुआ भामण्डल न भोजनमें, न शयनमें, न महलमें और न उद्यानमें—कहीं भी धैर्यको प्राप्त हो रहा था ॥४७॥

अथानन्तर जब स्त्रियोंको पता चला कि कुमारके दुःखका कारण नारद है तब उन्होंने उद्विग्न होकर शीघ्र ही कुमारके पितासे यह समाचार कहा ॥४८॥ कि इस समस्त अनर्थका पिटारा नारद ही है । वही कहींकी एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीको चित्रपट पर अङ्कित करके लाया था ॥४९॥ उसे देखकर जिसका मन अत्यन्त विह्वल हो गया है ऐसा कुमार किसी भी वस्तुमें धैर्यको प्राप्त नहीं हो रहा है । लज्जाने उसे दूरसे ही छोड़ दिया है ॥५०॥ वह सीता शब्दका उच्चारण करता हुआ बार-बार उसी कन्याको देखता रहता है तथा वायुके वशीभूत हुए के समान नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करता रहता है ॥५१॥ वह भोजनादि समस्त कार्योंसे विमुख हो गया है अर्थात् उसने खाना-पीना सब छोड़ दिया है । इसलिए जब तक प्राण इसे नहीं छोड़ते है तब तक

१. -न्मूलयत् म० । २. पुमान् । ३. योग्यसमागमसहितः । ४. शीघ्रम् । ५. हृदय स्थिता म०, ज० । ६. च म० । ७. -मतिध्यायन् म० । ८. समुद्विग्ना म० । ९. न्यवेदयत् म० । १०. तथानर्थसमुद्गेन म०, नार्थानर्थ- व० । अनर्थसमुद्गेन = अनर्थकरणकेन । ११. कापि म० ।

ततश्चन्द्रगतिः श्रुत्वा वार्तामेतां समाकुलः । आगत्य कान्तया साकं सुतमेवमभाषत ॥५३॥
 भज सर्वाः क्रियाः पुत्र सुचेता भोजनादिकाः । अयं वृणोमि तां कन्यां भवतो मनसि स्थिताम् ॥५४॥
 'परिसान्त्व्य सुतं कान्तां रहश्चन्द्रायणोऽवदत् । प्रमोदं च विपादं च विस्मयं च वहन्निदम् ॥५५॥
 आर्ये विद्याभृतां कन्याः संत्यज्य प्रतिमोक्षिताः । भृगोचरामिसम्बन्धः कथमस्मासु युज्यते ॥५६॥
 क्षमागोचरस्य नित्यं गन्तुं वा युज्यते कथम् । यदा वा तेन नो दत्ता मुखच्छाया तदा तु का ॥५७॥
 तस्मात् केनाप्युपायेन कन्यायाः पितरं प्रियम् । इहैव नाथयाम्याशु नान्यः पन्था विराजते ॥५८॥
 नाथ युक्तमयुक्तं वा त्वमेव ननु मन्यसे । तथापि तावकं वाक्यं ममापि हृदयङ्गमम् ॥५९॥
 ततश्चपलवेगाख्यं श्रुत्यमाहूय सादरम् । कर्णजापेन विज्ञातवृत्तान्तमकरोन्मुपः ॥६०॥
 आज्ञादानेन तुष्टोऽसौ मिथिलां त्वरितो ययौ । हृष्टहंसयुवामोदसूचितामिव पद्मिनीम् ॥६१॥
 अवतीर्याम्बराब्जारसोसिवेषसुपाश्रितः । विभ्रासयितुमुद्युक्तो गोमहिष्यैश्वरवारणान् ॥६२॥
 'देशवाते यथा जातः समःक्रन्दस्तदापरः । शुभ्राव च जनौघेभ्यो जनकस्तद्विचेष्टितम् ॥६३॥
 निर्ययौ च पुराद्युक्तः प्रमोदोद्देगकौतुकैः । ईशाञ्जके च तं संक्षिप्तं नवयौवनसंगतम् ॥६४॥
 'उद्दामानं मनोवेगं भास्वत्प्रवरलक्षणम् । प्रदक्षिणमहावर्तं तनुवक्त्रोदरं चलम् ॥६५॥

उसके पहले ही इसे धैर्य उत्पन्न करनेके लिए कोई उपाय सोचा जाय ॥५२॥ तदनन्तर चन्द्र-
 गति विद्याधर इस समाचारको सुनकर धबड़ाया हुआ स्त्रीके साथ आकर पुत्रसे इस प्रकार
 बोला कि हे पुत्र ! स्वस्थचित होकर भोजनादि समस्त क्रियाएँ करो । मैं तुम्हारे मनमें स्थित
 उस कन्याको बरता हूँ अर्थात् तेरे लिए स्वीकार करता हूँ ॥५३-५४॥ इस प्रकार पुत्रको
 सान्त्वना देकर चन्द्रगति विद्याधर हर्ष, विपाद और विस्मयको धारण करता हुआ एकान्तमें
 अपनी स्त्रीसे बोला कि ॥५५॥ हे आर्य ! विद्याधरको अनुपम कन्याएँ छोड़कर हम लोगोंका
 भूमिगोचरियोंके साथ सम्बन्ध करना कैसे ठीक हो सकता है ? ॥५६॥ इसके सिवाय एक बात
 यह है कि भूमिगोचरीके घर जाना कैसे ठीक हो सकता है ? याचना करने पर भी यदि उसने
 कन्या नहीं दी तो उस समय मुखकी क्या कान्ति होगी ? ॥५७॥ इसलिए कन्याके प्रिय पिताको
 किसी उपायसे शीघ्र ही यहीं बुलाता हूँ । इस विषयमें कोई दूसरा मार्ग शोभा नहीं देता ॥५८॥
 स्त्रीने उत्तर दिया कि हे नाथ ! उचित और अनुचित तो आप ही जानते हैं पर इतना अवश्य
 कहती हूँ कि आपकी बात मुझे भी अच्छी लगती है ॥५९॥

तदनन्तर राजाने चपलवेग नामक श्रुत्यको आदरपूर्वक बुलाकर उसके कानमें सब
 वृत्तान्त सूचित कर दिया ॥६०॥ तत्पश्चात् स्वामीकी आज्ञासे सन्तुष्ट हुआ चपलवेग शीघ्र ही
 उस प्रकार मिथिलाकी ओर चला जिस प्रकार कि हर्षसे भरा तरुण हंस सुगन्धिसे सूचित कम-
 लीनीकी ओर चलता है ॥६१॥ उसने आकाशसे उतरकर सुन्दर घोड़ेका रूप बनाया और वह
 गाय, भैसा, अश्व तथा हाथी आदि पशुओंको भयभीत करनेके लिए उद्यत हुआ ॥६२॥ वह
 जिस देशके घात करनेमें प्रवृत्त होता था उसी ओरसे रोनेका प्रबल शब्द उठ खड़ा होता था ।
 राजा जनकने भी जनसमूहसे उस घोड़ेकी चेष्टाएँ सुनीं ॥६३॥ सुनी ही नहीं, वह हर्ष, उद्वेग
 और कौतुकसे युक्त हो उस घोड़ेकी चेष्टाएँ देखनेके लिए नगरसे बाहर भी आया और उसने
 नव यौवनसे युक्त उस घोड़ेकी देखा ॥६४॥ वह घोड़ा अत्यन्त ऊँचा था, मनको अपनी ओर
 खींचनेवाला था, उसके शरीरमें अच्छे-अच्छे लक्षण देवीयमान हो रहे थे, दक्षिण अङ्गमें महान्

१. परिशान्त्य म० । २. चन्द्रगतिः । ३. नवयाम्याशु म० । ४. मन्यते म० । ५. हृदयेषम् ।
 ६. महिषाश्व क०, ल० । ७. देशवातो ल० । ८. उद्दामानं म० । उद्दामानं ल० । ९. मनोयोगं म० ।
 १०. चलम् म०, ल० ।

सुशफाभैर्मुदङ्गानां कुर्वाणमिव ताडनम् । पृथग्जनैर्दुरारोह दधत प्रोथवेपथुम् ॥६६॥
 ततः शुद्धप्रमोदः सन् जगाद जनको मुहुः । ज्ञायतामेप कस्याश्वः प्राप्नो निर्दामतामिति ॥६७॥
 ततो द्विजगणा ऊचुः प्रियोद्योद्यतचेतसः^३ । राजन्नस्य न नाकेऽपि तुरङ्गो विद्यते सन् ॥६८॥
 कैव वार्तां पृथिव्यां नु^४ । राक्षसीदग् भवेदिति । अथवा किं न कालेन नृप दृष्टस्त्वयेयता ॥६९॥
 'रथे दिवाकरस्यापि श्रुतिविभ्रमगोचरः । विद्यते नेति जानीमः^५ स्थूरीपृष्ठोऽमुना समः ॥७०॥
 नूनं भवन्तमुद्दिश्य कृतवन्तं परं तपः । सृष्टोऽयं विधिना सप्तिरतः स्वीक्रियतां प्रभो ॥७१॥
 ततोऽसौ^६ विनयी निन्ये प्रग्रहद्वयसंयुतः । 'मन्दुरां कुङ्कुमाद्राङ्गः प्रवलच्चारुचामरः ॥७२॥
 'संवृत्तो मासमात्रोऽस्य ययौ कालो गृहीतितः'^७ । उपचारैरलंयौग्यैः सेव्यमानस्य सन्ततम् ॥७३॥
 पाशकोऽन्त्रान्तरे नत्वा जनकाय न्यवेदयत् । नाथ नागस्य^८ सदेशे ग्रहण दृश्यतामिति ॥७४॥
 ततोऽसौ मुदितस्तुङ्गसारुखं चरवारणम् । उद्विष्टपादविस्तेन विवेश सुमहद्गमम् ॥७५॥
 दूरे च सरसो दुर्गे स्थितं दृष्ट्वा वरं द्विपम् । जगादानथ तत्त्विप्रं कंचिदश्वं महाजवम् ॥७६॥
 षोडशश्च स मायाश्वः सद्यः स्फुरितविग्रहः । आरुरोह स तं यातश्चोपत्य तुरगो नभः ॥७७॥
 हाहाकारं नृपाः कृत्वा बहन्तः शोकमुद्धतम् । निवृत्ताः सहसा भीता विस्मयग्यासमानसाः ॥७८॥

आवर्त थी, उसका मुख तथा उदर कृश था, वह अत्यन्त बलवान् था, टापीके अग्रभागसे वह पृथिवीको ताडित कर रहा था । उससे ऐसा जान पड़ता था मानो मुदङ्ग ही बजा रहा हो । साधारण व्यक्ति उसपर चढ़नेमें असमर्थ थे तथा उसका नथना कम्पित हो रहा था ॥६५-६६॥ तदनन्तर विशुद्ध हर्षको धारण करनेवाले राजा जनकने बार-बार उपस्थित लोगोसे कहा कि साल्म किया जाय कि यह किसका घोड़ा बन्धनमुक्त हो गया है ? ॥६७॥ तत्पश्चात् प्रिय वचन कहनेमें जिनका चित्त उत्कण्ठित हो रहा था ऐसे ब्राह्मणोंने कहा कि हे राजन् । इस घोड़ेके समान कोई दूसरा घोड़ा नहीं है ॥६८॥ यहाँ की बात जाने दीजिए समस्त पृथिवीमें जितने राजा हैं उनमें किसीके ऐसा घोड़ा नहीं होगा । अथवा हे राजन् । आपने भी इतने समय तक क्या कभी ऐसा घोड़ा देखा ? ॥६९॥ हम तो समझते हैं कि सूर्यके रथमें भी इस घोड़ेकी समानता करनेवाला घोड़ा नहीं होगा ॥७०॥ ऐसा जान पड़ता है कि परम तपस्या करनेवाले आपको लक्ष्य कर ही विधाताने यह घोड़ा बनाया है सो हे प्रभो । इसे आप स्वीकार करो ॥७१॥

तदनन्तर उस विनयवान् घोड़ेको दुहरी रस्सीसे बाँधकर घुड़शालमें ले जाया गया । उस समय उसका शरीर केशरके विलेपनसे गीला हो रहा था और उसपर सुन्दर चमर हिल रहे थे ॥७२॥ घुड़शालमें निरन्तर योग्य उपचारोंसे इसकी सेवा होती थी । इस तरह जिस दिनसे घोड़ा पकड़कर लाया गया था उस दिनसे एक मासका समय व्यतीत हो गया ॥७३॥ इस बीचमें वनके एक कर्मचारीने नमस्कार कर राजा जनकसे निवेदन किया कि हे नाथ । अपने देशमें हाथी कैसे पकड़ा जाता है यह देखिए ? ॥७४॥ तदनन्तर प्रसन्नतासे भरे राजा जनक उत्तुङ्ग गजराज पर सवार होकर चले । वनका कर्मचारी उन्हें मार्ग बताता जाता था । इस तरह राजा जनक किसी बड़े वनमें प्रविष्ट हुए ॥७५॥ वहाँ उन्होंने सरोवरके दूसरी ओर दुर्गम स्थानमें खड़े हुए उत्तम हाथीको देखकर सारथीसे कहा कि शीघ्र ही किसी वेगशाली घोड़ेको लाओ ॥७६॥ कहनेकी देर थी कि जिसका शरीर फड़क रहा था ऐसा वह मायामय घोड़ा लाकर राजा जनकके समीप खड़ा कर दिया गया । राजा जनक उसपर सवार हुए नहीं कि वह घोड़ा उन्हें लेकर आकाशमें उड़ गया ॥७७॥ यह देख जो सहसा मयभीत हो गये थे तथा जिनके चित्त आश्चर्यसे व्याप्त

१. प्रोथु म० । २. शुद्धः प्रमोदः ब०, म० । ३. प्रियमाषणपरमानसाः । ४. न ना कोऽपि म० । ५. तु म० । ६. अश्वः स्थूरीपृष्ठो ब० । ७. विनयैर्निन्ये व० । ८. मन्दुराकुङ्कुमाद्राङ्गप्रचलच्चारुचामरः म० । ९. संवृत्तो म० । १०. गृहीततः व० । ११. सदेशे म०, क० । सदेशे ख० ।

ततो नदीर्गिरीन् देशानरण्यानि च शूरिशः । प्रयाति लङ्घयन् सप्तिः मनोवदनिवारणं ॥७६॥
 नातिदूरे ततो दृष्ट्वा प्रासादं तुङ्गमुज्ज्वलम् । ह्रियमाणः स शाखायां दृढं लग्नो महातरो ॥८०॥
 अवतीर्य ततो घृहाद् विश्रम्य च सविस्मयः । चरणाभ्या परिक्रामन् प्रययौ स्तोकमन्तरम् ॥८३॥
 ददर्श च महातुङ्गं शालं चामीकरात्मकम् । गोपुरं च सुरलेन तोरणेनातिशोभिनम् ॥८२॥
 नानाजातीश्च वृक्षाणां लताजालकयोगिनाम् । फलपुष्पसमृद्धानां नानाविहगशोभिनाम् ॥८३॥
 संध्याभ्रकटं संकाशान् प्रासादान् मण्डलस्थितान् । सेवां प्रासादराजस्य कुर्वाणानिव तत्पराम् ॥८४॥
 ततोऽसौ खड्गमालम्य दक्षिणो दक्षिणे करे । केसरीवातिनिःशङ्कः प्रविवेश स गोपुरम् ॥८५॥
 अपश्यच्च परिसीताः पुष्पजातीर्वहुस्त्रिपः । मणिकाञ्चनसोपाना वारीश्च स्फटिकाम्मसः ॥८६॥
 रमणांश्च महामोदान् विशालान् कुन्दमण्डपान् । चलत्पल्लवसंघातान् कृतसंगीतपट्टपदान् ॥८७॥
 ततश्च माधवीतुङ्गजालकान्तरयोगिना । विस्फारितप्रसन्नेन चक्षुषा चाकृष्टान्तिना ॥८८॥
 रत्नवातायनैर्युक्तं मुक्ताजालकशोभितैः । शातकौम्भमहास्तम्भसहस्रकृतधारणम् ॥८९॥
 नानारूपसमाकीर्णं मेरुश्चलसमप्रभम् । वज्रवद्धमहापीठमद्वापीदं भवनं नृपः ॥९०॥
 अचिन्तयच्च किं न्वेतद्विमानं पतितं खतः । वासवस्य हतं किं वा दैत्यैः क्रीडामृहं भवेत् ॥९१॥

हो रहे थे ऐसे अन्य राजा लोग हाहाकार करके बहुत भारी शोकको धारण करते हुए वापिस लौट आये ॥७८॥

अथानन्तर मनके समान जिसका कोई निवारण नहीं कर सकता था ऐसा वह धोड़ा अनेक नदी, पहाड़, देश और पर्वतोंको लौघता हुआ आगे बढ़ता गया ॥७६॥ तदनन्तर पास ही मे एक ऊँचा उज्ज्वल भवन देखकर राजा जनक एक महावृक्षकी शाखामें मजबूतीसे भूम गये ॥८०॥ तदनन्तर वृक्षसे नीचे उतरकर उन्होंने आश्चर्यचकित हो कुछ देर तक विश्राम किया फिर पैरोंसे पैदल चलते हुए कुछ दूर गये ॥८३॥ वहाँ उन्होंने अत्यन्त ऊँचा सुवर्णमयकोट और उत्तमोत्तम रत्नोंसे युक्त तोरणसे समुद्रासित गोपुर देखा ॥८२॥ लताओंके समूहसे युक्त, फल और फूलोंसे समृद्ध, तथा नाना प्रकारके पक्षियोंसे सुशोभित वृक्षोंकी नाना जातियों देखी ॥८३॥ जिनके शिखर संध्याके बादलोके समान सुशोभित थे, जो गोलाकारमें स्थित थे तथा जो भवनोके राजा अर्थात् राजभवनकी बड़ी तत्परतासे सेवा करते हुए के समान जान पड़ते थे ऐसे महलोको भी उन्होंने देखा ॥८४॥ तदनन्तर अतिशय चतुर राजा जनकने दाहिने हाथमें तलवार लेकर सिद्धके समान निःशङ्क हो गोपुरमें प्रवेश किया ॥८५॥ वहाँ जाकर उन्होंने जहाँ-तहाँ फैले हुए रत्न-विरङ्गे अनेक प्रकारके फूल देखे । जिनकी सीढ़ियों मणि और स्वर्णकी बनी हुई थी तथा जिनमें स्फटिकके समान स्वच्छ जल भरा था ऐसी वावड़ियों देखी ॥८६॥ जिन्हें देखकर आनन्द उत्पन्न होता था, जिनकी बहुत भारी सुगन्धि दूर-दूर तक फैल रही थी, जिनके पल्लवोंके समूह हिल रहे थे, और जहाँ अमर संगीत कर रहे थे ऐसे कुन्द पुष्पोंके विशाल मण्डप भी उन्होंने देखे ॥८७॥ तदनन्तर राजा जनकने खुले हुए अत्यन्त सुन्दर स्वच्छ नेत्रसे माधवी लताओंकी ऊँची जालीके बीच भौंककर एक ऐसा सुन्दर मन्दिर देखा जो मोतियोंकी जालीसे सुशोभित रत्नमय झरोखोंसे युक्त था, जो सुवर्णनिर्मित हजारों बड़े-बड़े खम्भे धारण कर रहा था, नाना प्रकारके रूपसे व्याप्त था, मेरुकी शिखरके समान जिसकी प्रभा थी, और जिसकी महापीठ (भूमिका) वज्रनिवद्धके समान अत्यन्त मजबूत थी ॥८८-९०॥ उसे देखकर वे विचार करने लगे कि क्या यह आकाशसे गिरा हुआ विमान है अथवा दैत्योके द्वारा हरण किया हुआ

१. नदीगिरेदेशान् म० । २. प्रासादं तुङ्गमुज्ज्वलम् म० । ३. कुर्वाणामिव व० । ४. तत्परम् व०, ज० । ५. वारी च म० । ६. पीत म० । ७. किलेतद्विमानं म० । ८. आकाशात् ।

पातालादुत्थितः किं वा नागेन्द्रस्याबमालयः । कुतोऽपि कारणात् सूर्यमरीचिकृतखण्डनः ॥६२॥
 अहो मे ययुना^१ तेन भद्रेणोपकृतं परम् । अदृष्टपूर्वमेतद् यत् साधु वेरमावलोकितम् ॥६३॥
 विवेश चिन्तयन्नेव भवनं तन्मनोहरम् । सस्फुल्लवदनाभोजो ददर्श च जिनाधिपम् ॥६४॥
 द्रुताशनशिखागौरं पूर्णचन्द्रनिमाननम् । पद्मासनस्थितं तुङ्ग^२ जटामुकुटधारिणम् ॥६५॥
 प्रातिहार्यसमायुक्त हेमतामरसावितम् । विभ्रल्लङ्घितच्छायां तुङ्गसिंहासनस्थितम् ॥६६॥
 ततोऽञ्जलिपुटं मूर्ध्नि कृत्वा हृष्टतनूहः । प्रणामं प्रथतः कुर्वन् भक्त्या मूर्च्छासुपागतः ॥६७॥
 क्षणेन प्राप्य संज्ञां च स्तुतिं कृत्वा सुसंस्कृतम् । विखण्णं जनकस्तस्यै विस्मयं परमुद्ग्रहन् ॥६८॥
 कृती चपलवेगाश्च मायां संहृत्य सत्वरः । खड्गविद्याधरो भूत्वा संग्राप रथनूपुरम् ॥६९॥
 स्वामिने चावदन्नवा तुष्टो जनकमाहृतम् । रम्यकाननसमीते स्थापितं जिनवेशमनि १००॥
 आगतं जनकं ज्ञात्वा परं हर्षसुपागमत् । आसवर्णेण संयुक्तश्चन्द्रयानो सहामनाः ॥१०१॥
 गृहीत्वा च परां पूजां नानावाहनसकुलः । मनोरथरथारूढो ययौ जिनवरालयम् ॥१०२॥
 दृष्ट्वा तत्सुमहसैन्यमागच्छत्परमोज्ज्वलम् । तूर्यशङ्खमहानादमाविष्टो जनकोऽभवत् ॥१०३॥
 ततो हतिगजद्वीपिनागहसादिबाहिनाम् । पुष्पाणामिदं मध्ये विमानं स व्यलोकयत् ॥१०४॥

इन्द्रका कीड़ागृह है ? ॥६१॥ अथवा किसी कारणवश सूर्यकी किरणोंसे जिसके खण्ड हो गये थे ऐसा पातालसे निकला हुआ नागेन्द्रका भवन है ? ॥६२॥ अहो ! उस भले घोड़ेने मेरा बड़ा उपकार किया जिससे मैं इस अदृष्टपूर्व सुन्दर मन्दिरको देख सका ॥६३॥ ऐसा विचार करते हुए राजा जनकने उस मनोहर मन्दिरमें प्रवेश किया और वहाँ जाकर जिनेन्द्रभगवान्के दर्शन किये । जिनदर्शनके प्रभावसे उनका मुखकमल खिल उठा था ॥६४॥ मन्दिरमें विराजमान जिनेन्द्रदेव अग्निकी शिखाके समान गौर वर्ण थे, उनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, वे पद्मासनसे विराजमान थे, बहुत ऊँचे थे, जटारूपी मुकुटको धारण किये हुए थे, आठ प्रातिहार्यों से युक्त थे, स्वर्ण कमलोसे उनकी पूजा की गई थी, नाना प्रकारके रत्नोंसे उनकी कान्ति बढ़ रही थी, और वे ऊँचे सिंहासनपर विराजमान थे ॥६५-६६॥

तदनन्तर जिसके शरीरमें रोमाञ्च उठ रहे थे ऐसे राजा जनकने हाथ जोड़कर मस्तकसे लगाये और बड़ी सावधानीसे जिनेन्द्रदेवको नमस्कार किया । नमस्कार करते-करते उसकी भक्ति इतनी अधिक बढ़ी कि वह उसके अतिरेकसे मूर्च्छित हो गया ॥६७॥ क्षण भरके बाद पुनः चेतना प्राप्त कर उसने सुन्दर सुसंस्कृत स्तुति की । तदनन्तर वह परम आश्चर्यको धारण करता हुआ निःशङ्क हो वहीं बैठ गया ॥६८॥

इधर चपलवेग नामका विद्याधर जो घोड़ेका रूप धरकर जनकको हर ले गया था अपने कार्यमें सफल हो बड़ा प्रसन्न हुआ तथा शीघ्रतासे सब माया समेटकर तथा खड्गधारी विद्याधर बनकर रथनूपुर नगर पहुँचा ॥६९॥ उसने संतुष्ट होकर अपने स्वामीके लिए नमस्कार कर कहा कि राजा जनक यहाँ लाये जा चुके हैं तथा सुन्दर वनसे वेष्टित जिनमन्दिरमें उन्हें ठहरा दिया गया है ॥१००॥ राजा जनकको आया जानकर चन्द्रगति परम हर्षको प्राप्त हुआ । तदनन्तर उदार चित्तको धारण करनेवाला एवं नाना वाहनोंसे युक्त चन्द्रगति आप्तवर्गके साथ पूजाकी उत्तमोत्तम सामग्री लेकर मनोरथरूपी रथपर सवार हो जिनमन्दिर गया ॥१०१-१०२॥ जिसमें तुरही और शङ्खोका विशाल शब्द हो रहा था ऐसी उस देदीप्यमान बड़ी भारी सेनाको आती देख जनक कुछ भयभीत हुआ ॥१०३॥ तदनन्तर उसमें सिंह, हाथी, शार्दूल, नाग तथा हंस

१. अश्वेन । २. तुङ्गजटा-ज०, क०, ख० । ३. सुवर्णकमलपूजितम् । ४. मनोहरोद्यानवेष्टिते ।
 ५. सुमहासैन्य व० ।

अचिन्तयच्च ते नूनमेते विद्याभृतो^१ जनाः । विजयाहर्द्धगिरेरुर्ध्वं ये वसन्तीति मे श्रुतम् ॥१०५॥
^२मध्येऽयमस्य सैन्यस्य स्वविमानकृतस्थितिः । शोभते परमो दीप्या कोऽपि विद्याधराधिपः ॥१०६॥
 एवं चिन्तापरे तस्मिन्नुपतौ दैत्यपुङ्गवः । संप्रापच्चैत्यमवनं सम्मदी^३ नतविग्रहः ॥१०७॥
 दृष्ट्वा दैत्याधिपं प्राप्तं भीमसैन्यपरिग्रहम् । जनकः किमपि ध्यायस्तस्थौ सिंहासनान्तरे ॥१०८॥
 भक्त्या शशाङ्कयानोऽपि कृत्वा पूजामनुत्तमाम् । प्रणम्य विधिना चक्रे जिनानां परमस्तुतिम् ॥१०९॥
^४विपद्भ्यो च विधायाह्ने सुखरूपां प्रियामिव । महाभावनया युक्तो जगौ जिनगुणात्मकम् ॥११०॥

चतुष्पदिकावृत्तम्

त्रिशुवनवरदमभिष्टुतमतिशयपूजाविधानविनिहितचित्तैः ।
 प्रणतं सुरवृषभगणैः प्रणमत नाथं जिनेन्द्रमच्चयसौख्यम् ॥१११॥
 ऋषभ सततं परमं वरदं मनसा वचसा शिरसा सुजनाः ।
 भजत प्रवरं विलथं प्रगतं विहितं सकलं दुरितं भवति ॥११२॥
 अतिशयपरमं विनिहत दुरितं परमगतिगतं नमत जिनवरम् ।
 सर्वसुरासुरपूजित पादं क्रोधमहारिपुनिर्मितमङ्गम् ॥११३॥
 उत्तमलक्षणलचित्तदेहं नौमि जिनेन्द्रमहं प्रयतात्मा ।
 भक्त्या विनमितसर्वजनौघं नतिमात्रविनाशितभक्तभयम् ॥११४॥

आदि नाना वाहनोपर स्थितं पुरुषोके मध्यमें एक विमान देखा ॥१०४॥ उसे देखकर वह विचार करने लगा कि निश्चय ही वे विद्याधर हैं जो कि विजयाहर्द्ध पर्वतपर वास करते हैं ॥१०५॥ इस सेनाके बीचमें अपने विमानमें बैठ्वा हुआ जो कान्तिमान पुरुष शोभित हो रहा है वह विद्याधरो का राजा है ॥१०६॥ राजा जनक इस प्रकारकी चिन्तामें तत्पर थे ही कि हर्षसे भरा तथा नम्रीभूत शरीरको धारण करनेवाला वह चन्द्रगति जिनमन्दिरमें आ पहुँचा ॥१०७॥ जिसका परिग्रह-कुछ तो भीम अर्थात् भय उत्पन्न करनेवाला था और कुछ सौम्य अर्थात् शान्ति उत्पन्न करनेवाला ऐसे दैत्यराजको आया देख कुछ ध्यान करता हुआ राजा जनक जिनराजके सिंहासन के नीचे बैठ गया ॥१०८॥ राजा चन्द्रगतिने भी भक्तिवश उत्तम पूजा कर तथा विधिपूर्वक प्रणाम कर जिनेन्द्रदेवकी उत्तम स्तुति की ॥१०९॥ और प्रियाके समान जिसका स्वर अत्यन्त सुखकारी था ऐसी वीणाको गोदमें रख बड़ी भावनासे युक्त हो जिनराजका गुणगान करने लगा ॥११०॥

गुणगान करते समय उसने कहा कि जो तीनों लोकोंके लिए वर देनेवाले हैं, अतिशय पूर्ण पूजाके करनेमें चित्त धारण करनेवाले मनुष्य जिनकी सदा स्तुति करते हैं, इन्द्रादि श्रेष्ठ देव जिन्हें नमस्कार करते हैं, तथा जो अक्षय—अविनाशी सुखके धारक हैं, ऐसे जिनेन्द्रदेवको हे भग्यजन ! सदा प्रणाम करो ॥१११॥ हे सत्पुरुषो ! तुम उन ऋषभदेव भगवान्को मनसे, वचनसे शिर मुकाकर सदा नमस्कार करो जो कि उत्कृष्ट लक्ष्मीसे युक्त हैं, वर देनेवाले हैं, श्रेष्ठ हैं, अविनाशी हैं और उत्तम ज्ञानसे युक्त हैं तथा जिन्हें नमस्कार करनेसे समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥११२॥ तुम उन जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार करो जो कि अतिशयोक्ते लक्ष्मण हैं, जिन्होंने पापको नष्ट कर दिया है, जो परमगति—सिद्ध गतिको प्राप्त हो चुके हैं, समस्त सुर और असुर जिनके चरणोंकी पूजा करते हैं, तथा जिन्होंने क्रोधरूपी महाशत्रुको पराजित कर दिया है ॥११३॥ मैं भक्तिपूर्वक बड़ी सावधानीसे उन जिनेन्द्रभगवान्की स्तुति करता हूँ कि जिनका शरीर उत्तम लक्षणोंसे युक्त है, जिन्होंने समस्त मनुष्योंके समूहको नम्रीभूत कर

अनुपमगुणधरमनुपमकार्यं विनिहृतभवभयसकलकुचेष्टम् ।

कलिमलघनपटविनयनदक्षं प्रणमत जिनवरमतिशयपूतम् ॥११५॥

इति गायति दैत्येन्द्रे जिनसिंहासनान्तरात् । निर्ययौ भयमुत्सृज्य जनको नाम शोभनः ॥११६॥

तत्तश्चन्द्रायणोऽवोचदीपचलितमानसः । को भवान् विजने देशे वसत्यत्र जिनालये ॥११७॥

उरमाणां पतिः किं स्यात् किं वा विद्याधराधिपः । सखे वद कुतः प्राप्तो भवान् किं संज्ञकोऽपि वा ॥११८॥

मिथिलानगरीतोऽहं प्राप्नो जनकसंज्ञकः । हतो मायातुरद्वेण नमश्चरमहीपते ॥११९॥

इत्युक्ते जनकेनैतावन्त्योन्यं प्रीतिमानसौ । इच्छाकाराक्षर्लिं कृत्वा सुखासीनौ बभूवतुः ॥१२०॥

क्षणं स्थित्वा च वृत्तात्तैरन्योन्यविनिवेदितैः । जनितान्योन्यसन्मानौ तौ विश्रम्भं समीयतुः ॥१२१॥

तत्तश्चन्द्रायणोऽवोचद्धीमान् कृत्वा कथान्तरम् । पुण्यवानस्मि येन त्वं मिथिलापतिरिच्छितः ॥१२२॥

अस्ति ते दुहिता राजन् लक्षणेनैविता शुभैः । कर्णगोचरमायाता मम भूरिजनाननात् ॥१२३॥

सा भामण्डलतंज्ञाय मत्पुत्राय प्रदीयताम् । त्वया विहितसम्बन्ध मन्ये स्वं परमोदयम् ॥१२४॥

सोऽवोचत् सर्वमेतत्स्यात् कृतं विद्याधराधिप । किन्तु दशरथेर्बाला ज्येष्ठस्य परिकल्पिता ॥१२५॥

सुहृच्चन्द्रगतिरूपे सा कस्मात्तत्स्यकल्पिता । सोऽवोचच्छ्रुयतामस्ति भवतां चेत् कुतूहलम् ॥१२६॥

दिया है और जिन्हें नमस्कार करने मात्रसे भक्तोका भय नष्ट हो जाता है ॥११४॥ हे भव्य-जन ! तुम उन जिनेन्द्रदेवको प्रणाम करो कि जो अनुपम गुणोंको धारण करनेवाले है, जिनका शरीर उपमारहित है, जिन्होंने संसाररूपी समस्त कुचेष्टाओंको नष्ट कर दिया है, जो कलिकालके पापरूपी सघन पटको दूर करनेमें समर्थ हैं तथा जो अतिशयोक्ते पवित्र है अथवा अत्यन्त पवित्र है ॥११५॥

तदनन्तर दैत्यराजके इस प्रकार गानेपर सुन्दर शरीरको धारण करनेवाला राजा जनक भय छोड़ जिनेन्द्रदेवके सिंहासनके नीचेसे बाहर निकल आया ॥११६॥ उसे देख जिसका मन कुछ विचलित हो गया था ऐसा चन्द्रगति बोला कि आप कौन हैं ? जो इस निर्जन स्थान में जिनालयके बीच रहते हैं ॥११७॥ आप नागकुमार देवोंके स्वामी हैं ? या विद्याधरोंके अधि-पति है ? अथवा किस नामको धारण करनेवाले है ? और यहाँ कहींसे आये हैं ? हे मित्र ! यह सब मुझसे कहो ॥११८॥ इसके उत्तरमें राजाने कहा कि विद्याधरराज ! मैं मिथिला नगरीसे आया हूँ । जनक मेरा नाम है और एक मायामयी घोड़ा मुझे हरकर लाया है ॥११९॥ जनकके इतना कहनेपर दोनोंके हृदय परस्पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और दोनों ही एक दूसरेके लिए हाथ जोड़कर सुखसे बैठ गये ॥१२०॥ क्षणभर ठहरकर दोनोंने एक दूसरेके लिए अपना वृत्तान्त सुनाया और परस्पर एक दूसरेका सम्मान किया । इस तरह वे परस्पर विश्वासको प्राप्त हुए ॥१२१॥ तदनन्तर बीचमें ही बात काटकर चन्द्रगतिने कहा कि अहो ! मैं बड़ा पुण्यवान् हूँ कि जिसने आप मिथिलाके राजाका दर्शन किया ॥१२२॥ हे राजन् ! मैंने अनेक लोगोंके मुखसे सुना है कि आपके शुभ लक्षणोंसे युक्त कन्या है ॥१२३॥ सो वह कन्या मेरे भामण्डल नामक पुत्रके लिए दीजिए । आपके साथ सम्बन्ध स्थापित कर मैं अपने-आपको परम भाग्यशाली समझूँगा ॥१२४॥ इसके उत्तरमें राजा जनकने कहा कि हे विद्याधरराज ! यह सब हो सकता था परन्तु वह कन्या राजा दशरथके ज्येष्ठ पुत्र रामके लिए निश्चित की जा चुकी है, अतः विवशता है ॥१२५॥ मित्र चन्द्रगतिने कहा कि वह कन्या रामके लिए किस कारण निश्चित की गई है ? इसके उत्तरमें जनकने कहा कि यदि आपको कौतूहल है तो सुनिए ॥१२६॥

१. नागशोभनः ज० । २. प्रीतिमानसौ ज० । प्रतिमानसौ म० । ३. -ञ्जली कृत्वा म० । ४. दशरथ-सुतस्य रामचन्द्रस्य ।

धनगोरत्नसंपूर्णा मदीया मिथिलापुरी । अर्द्धवैरकैर्लङ्घ्यैरवाध्यत सुदास्यौ ॥१२७॥
 अपीड्यन्त प्रजाः सर्वाः स्वहिन्यन्त धनोक्तराः । धर्मयज्ञा न्यवर्तन्त आबकाणां महात्मनाम् ॥१२८॥
 ततो महाहवे जाते रक्षित्वा मां सङ्गानुजम् । पद्मेन विजिता म्लेच्छा ये सुरैरपि दुर्जयाः ॥१२९॥
 लक्ष्मणश्चानुजस्तस्य शत्रोपमपराक्रमः । कुर्वते शासनं नित्यं महाविनयसंयुतः ॥१३०॥
 यदि नाम न तस्मैन्यं ताम्यां स्याद् विजितं द्विषा । म्लेच्छलोकेन संपूर्णा ततः स्यादखिला महौ ॥१३१॥
 विवेकरहितास्ते हि लोकपीडामया इव । महोत्पाता इवात्यन्तभीषणा विषदाहणाः ॥१३२॥
 प्राप्य तौ गुणसंपूर्णां सुपुत्रौ लोकवत्सलौ । इन्द्रवज्रवने राज्यं सुखं दशरथोऽमजत् ॥१३३॥
 तस्य राज्यं शुना जाते नयशौर्यविलासिनः । वातोऽपि नाहरत् किञ्चित् प्रजानां पुरुषस्पदाम् ॥१३४॥
 ततः प्रत्युपकारं क करोमीति समाकुलः । न रात्रौ न दिवा निद्रां संप्राप्नोऽस्मि त्रिचिन्तयन् ॥१३५॥
 रक्षिता येन मे प्राणास्तस्य रामस्य नो समः । कश्चित् प्रत्युपकारोऽस्ति किमुताधिक्यगोचरः ॥१३६॥
 हतं महोपकारेण प्रतीकारविवर्जितम् । मन्ये तृणमिवात्मानं भोगप्रीतिं पराद्भुजम् ॥१३७॥
 नवयौवनसंपूर्णां दृष्ट्वा दुहितरं शुभाम् । गतो विरलतां शोकः शोकस्थानेऽपि मे ततः ॥१३८॥
 तथा कल्पितया तस्य रामस्य पुस्तैर्जसः । नावेव शोकजलधेस्तारितोऽहं बुधातया ॥१३९॥
 ततो नमश्चरा ऊर्ध्वरथकारीकृतानना । अहो मानुषमात्रस्य बुद्धिस्तव न योगना ॥१४०॥

अर्ध-राक्षसोंके समान अत्यन्त दुष्ट म्लेच्छोंने मेरी धन, धान्य, गाय, भैंस तथा अनेक रत्नों-से परिपूर्ण मिथिला नगरीको बाधा पहुँचाना शुरू किया ॥१२७॥ समस्त प्रजा पीड़ित होने लगी, धन-धान्यके समूह चुराये जाने लगे, और महानुभाव आबकोंके धार्मिक पूजा-विधान आदि अनुष्ठान नष्ट किये जाने लगे ॥१२८॥ तदनन्तर उनके साथ मेरा महायुद्ध हुआ । सो उस महा-युद्धमें रामने मेरी तथा मेरे छोटे भाईकी रक्षा कर देवोंसे भी दुर्जेय उन समस्त म्लेच्छोंको पराजित किया ॥१२९॥ रामका छोटा भाई लक्ष्मण भी इन्द्रके समान महापराक्रमी तथा महा विनयसे सहित है । वह सदा रामकी आज्ञाका पालन करता है ॥१३०॥ यदि उन दोनों भाइयोंके द्वारा म्लेच्छोंकी वह सेना नहीं जीती जाती तो निश्चित था कि वह समस्त पृथिवी म्लेच्छोंसे भर जाती ॥१३१॥ वे म्लेच्छ विवेकसे रहित तथा लोगोंको पीड़ा पहुँचानेके लिए रोगोंके समान थे अथवा महा उत्पातके समान अत्यन्त भयंकर और विषके समान दारुण थे ॥१३२॥ गुणोंसे सम्पूर्ण तथा लोगोंसे स्नेह करनेवाले उन दोनों पुत्रोंको पाकर राजा दशरथ अपने भवनमें इन्द्रके समान राज्यसुखका उपभोग करते हैं ॥१३३॥ नय और शूरवीरतासे सुशोभित राजा दशरथके राज्यमें इस समय हवा भी सम्पत्तिशाली प्रजाका कुछ हरण नहीं कर पाती है फिर अन्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥१३४॥ इस उपकारके बदले मैं उनका क्या उपकार करूँ इसी बातकी आकुलतासे चिन्ता करते हुए मुझे न रातमें नींद आती है न दिनमें ही ॥१३५॥ रामने मेरे प्राणोंको जो रक्षा की है उस समान भी कोई प्रत्युपकार नहीं है फिर अधिककी तो चर्चा ही क्या है ? ॥१३६॥ जो महान् उपकारसे दबा हुआ है तथा स्वयं कुछ भी प्रत्युपकार करनेमें असमर्थ है, ऐसे अपने आपको मैं तृणके समान तुच्छ समझता हूँ । मैं केवल भोगोंके भयसे पराङ्मुख हो रहा हूँ ॥१३७॥ तदनन्तर जब मेरी दृष्टि नवयौवनसे सम्पूर्ण अपनी शुभ पुत्री पर पड़ी तब शोकके स्थानमें भी मेरा शोक विरलताको प्राप्त हो गया ॥१३८॥ मैंने अतिशय प्रतापी रामचन्द्रजीके लिए उसको देना संकल्पित कर लिया और नावकी भौति इस पुत्रीने मुझे शोकरुपी सागरसे पार कर दिया ॥१३९॥

तदनन्तर जिनके मुखोंपर अन्धकार छा रहा था ऐसे विद्याधर बोले कि अहो ! तुम एक

म्लेच्छैः किं ग्रहणं क्षुद्रैर्यदि तेषां पराजये । 'प्रशंससि परां शक्तिं भूमिगोचरिणो' बुध ॥१४१॥
 म्लेच्छनिर्घाटनात् स्तोत्रं त्वया पश्यस्व कुर्वता । कृता प्रत्युत निन्देयमहो हस्यमिदं परम् ॥१४२॥
 शिशोर्विपफले प्रीतिर्विस्वस्य^१ बदरादिषु । ध्वाङ्गस्य पादपे शुष्के स्वभावः खलु दुस्त्यजः ॥१४३॥
 कुसम्बन्धं परित्यज्य हितिगो^२चरिणां मतम् । कुल विद्याधरेन्द्रेण सम्बन्धमधुना सह ॥१४४॥
 नव महासम्पदो देवैः सदृशो ज्योमचारिणः । नव भूमिगोचराः क्षुद्राः सर्वथैवातिदुःखिताः ॥१४५॥
 जनकोऽवोचदत्यन्तविपुलः 'चौरसागरः । न तत्करोति यद्वाप्यः स्तोत्रस्वादुपयोभृतः' ॥१४६॥
 अत्यन्तघनबन्धेन तमसा भूयसापि किम् । अल्पेन तु प्रदीपेन जन्यते लोकचेष्टितम् ॥१४७॥
 असंख्या अपि मातङ्गा मदिनः कुर्वते न तत् । केशरी यत्किशोरः सञ्चन्द्रनिर्मलकेशरः ॥१४८॥
 हल्युक्ते 'कोऽपि नोऽप्यर्थं समं कृतमहारवाः । भूमिचेष्टां समारब्धा निन्दितुं गगनायनाः' ॥१४९॥
 विद्यामाहात्म्यमिमुंका नित्यं स्वेदसमन्विताः । शौर्यसम्पत्परित्यक्ताः शोचनीया धराचराः ॥१५०॥
 वद् तेषां पशूनां च को भेदो जनक स्वया । दृष्टो येन त्रयां त्यक्त्वा दुर्बुद्धिस्तान् विकल्पसे ॥१५१॥
 उवाच जनको धीरः हा कष्टं किं श्रुतं मया । वसुधाराजरत्नानां निन्दितं पापकर्मणा ॥१५२॥
 कथं त्रिभुवनख्यातो वंशो नाभेयसंभवः । कर्णगोचरमेतेषां न प्राप्नो लोकपावनः ॥१५३॥

साधारण मनुष्य हो, तुम्हारी बुद्धि ठीक नहीं है ॥१४०॥ रामने म्लेच्छोंको पकड़ा है इससे क्या हुआ ? उनको परास्त तो छुद्र मनुष्य भी कर सकते हैं फिर क्यों तुम बुद्धिमान् होकर भूमि-गोचरियोंकी परम शक्तिकी प्रशंसा कर रहे हो ॥१४१॥ म्लेच्छोंको निकालने मात्रसे ही तुम रामकी स्तुति कर रहे हो सो यह उनकी स्तुति नहीं किन्तु निन्दा है । अहो ! यह बड़ी हँसीकी बात है ॥१४२॥ बाळककी विपफलोमे, दरिद्रकी बैर आदि तुच्छ फलोमे और कौएकी सूखे वृत्तमें प्रीति होती है । सो कहना पड़ता है कि प्राणीका स्वभाव कठिनाईसे छूटता है ॥१४३॥ इसलिए तुम भूमिगोचरियोंका खोटा सम्बन्ध छोड़कर इस समय विद्याधरोके राजाके साथ सम्बन्ध करो ॥१४४॥ महासम्पत्तिमान् तथा देवोंके समान आकाशमें चलनेवाले विद्याधर कहाँ ? और सर्वप्रकारसे अत्यन्त दुःखी छुद्र भूमिगोचरी कहाँ ? ॥१४५॥

तदनन्तर जनकने उत्तर दिया कि अत्यन्त विस्तृत लवणसमुद्र वह काम नहीं करता जो कि थोड़ेसे मधुर जलको धारण करनेवाली वापिकाएँ कर लेती हैं ॥१४६॥ अत्यन्त सघन अन्धकार बहुत भारी होता है तो भी उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है जब कि छोटेसे दीपकके द्वारा लोककी चेष्टा उत्पन्न होती है अर्थात् सब काम सिद्ध होते हैं ॥१४७॥ मद्को भ्रष्टानेवाले असंख्य हाथी भी वह काम नहीं कर पाते जो कि चन्द्रबिम्बके समान उज्ज्वल जटाओंको धारण करनेवाला सिंहका एक बच्चा कर लेता है ॥१४८॥ ऐसा कहनेपर कितने ही विद्याधर 'ऐसा नहीं है' इस प्रकार जोरसे एक साथ बड़ा शब्द करते हुए भूमिगोचरियोंकी निन्दा करने लगे ॥१४९॥ वे कहने लगे कि भूमिगोचरी विद्याके माहात्म्यसे रहित हैं, निरन्तर पसीनासे युक्त रहते हैं, शूरवीरता और सम्पत्तिसे रहित हैं तथा अतिशय शोचनीय हैं ॥१५०॥ अरे जनक ! बता तूने उनमें और पशुओंमें क्या भेद देखा है ? जिससे दुर्बुद्धि हो तथा लज्जा छोड़कर उनकी इस तरह प्रशंसा किये जा रहा है ? ॥१५१॥

तदनन्तर धीरवीर जनकने कहा कि हाय ! बड़े कष्टकी बात है कि मुझ पापीको भूमि-गोचरी उत्तमोत्तम राजाओंकी निन्दा सुननी पड़ी ॥१५२॥ क्या त्रिजगत्में प्रसिद्ध तथा लोकको

१. प्रशंससि म० । २. गोचरिणोर्बुधः म०, गोचरिणो बुधैः व० । ३. दरिद्रस्य । निःस्वस्य म० । ४. गोचरिणामतः म० । ५. लवणसागरः । ६. चन्द्रमण्डल- म० । ७. केऽपि नोत्थं (?) । ८. विद्याधराः ।

अहन्तस्त्रिजगत्पूज्याश्चक्रिणो हरयो बलाः । उत्पद्यन्ते नरा यस्यां सा कथं निन्दिता महौ ॥१५४॥
 पञ्चकल्याणसम्प्राप्तिं पुंसां वदत खेचरा । स्वप्नेऽपि जातु किं दृष्टा भवन्निः खेचरावनी ॥१५५॥
 इक्ष्वाकुवंशसभूता गोष्पदीकृतविष्टपाः । अनोचितपरच्छत्रा महारत्नसमृद्धयः ॥१५६॥
 सुरेन्द्रकीर्तितोद्गारकांतयो गुणसागराः । न्यतीता बहवो भूमौ कृतकृत्या नरोत्तमाः ॥१५७॥
 पुत्रोऽनरण्याराजस्य तत्र वशे महात्मनः । जातः सुमङ्गलाकुक्षौ नृपो दशरथोऽभवत् ॥१५८॥
 यो लोकहितमुद्दिश्य विरहेदपि जीवितम् । भूधर्मा वहति यस्याज्ञां शोषामिव जनोऽखिलः ॥१५९॥
 चतस्रो यस्य सम्पन्नाः सर्वशोभागुणोज्ज्वलाः । आशा इव महादेव्यः सुभावाः सुप्रसाधिताः ॥१६०॥
 शतानि वरनारीणां पञ्च यस्य सुचेतसः । वक्त्रनिजितचन्द्राणां हरन्ति चरितैर्मनः ॥१६१॥
 पद्मो नाम सुतो यस्य पद्मालिङ्गितविग्रहः । इंसिनिजितस्त्रिमांशुः कीर्त्तिनिजितशीतयुः ॥१६२॥
 स्थैर्यनिजितशेलेन्द्रः शोभाजितपुरन्दरः । शौर्येण यो महापद्मं जवेदपि सुविभ्रमः ॥१६३॥
 अनुजो लक्ष्मणो यस्य लक्ष्मीनिलवविग्रहः । उच्यन्ति शत्रवो भीता दृष्ट्वा यस्य शरासनम् ॥१६४॥
 वायसा अपि गच्छन्ति नभसा तेन किं भवेत् । गुणेष्वत्र मनः कृत्यमिन्द्रजालेन^१ को गुणः ॥१६५॥
 ग्रहणं वा भवद्भिः किं यत्र देवाधिपा अपि । क्रियन्ते भूमिसमृत्तैर्नमन्तः चित्तमस्तकाः ॥१६६॥
 इत्युके रहसि स्थित्वा सम्मन्य गगनायनाः । ऊचुर्न वेत्ति कार्याणि जनकैकप्रमादवासाः ॥१६७॥

पवित्र करनेवाला भगवान् ऋषभदेवका वंश इनके कर्णगोचर नहीं हुआ ॥१५३॥ त्रिजगत्के द्वारा पूजनीय तीर्थंकर चक्रवर्ती, नारायण और बलभद्र जैसे महापुरुष जिसमें उत्पन्न होते हैं वह भूमि निन्दनीय कैसे हो सकती है ? ॥१५४॥ हे विद्याधरो^२ कहो, विद्याधरोंकी भूमिमें पुरुषोंकी पञ्च कल्याणकांकी प्राप्ति होना क्या कभी आप लोगोंने स्वप्नमें भी देखी है ? ॥१५५॥ जिनकी उत्पत्ति इक्ष्वाकु वंशमें हुई थी, जिन्होंने संसारको गोष्पदके समान तुच्छ कर दिखाया, जिन्होंने कभी दूसरेका छत्र नहीं देखा, महारत्नोंकी समृद्धि जिनके पास थी, इन्द्र जिनकी उदार कीर्त्तिका वर्णन करता था, और जो गुणोंके सागर थे ऐसे अनेक कृतकृत्य राजा पृथिवी पर हो चुके हैं ॥१५६-१५७॥ उसी इक्ष्वाकु वंशमें महानुभाव राजा अनरण्याकी सुमङ्गला रानीकी कुत्तिसे राजा दशरथ उत्पन्न हुए हैं ॥१५८॥ जो लोकहितके लिए अपना जीवन भी छोड़ सकते हैं, समस्त लोग जिनकी आज्ञाको शोषात्तके समान शरसे धारण करते हैं ॥१५९॥ जिसके सर्व प्रकारकी शोभा और गुणोंसे उज्ज्वल, उत्तम अभिप्रायकी धारक तथा उत्तम अलङ्कारोंसे युक्त चार दिशाओंके समान चार महादेवियों हैं ॥१६०॥ यही नहीं, अपने मुखसे चन्द्रमा को जीतनेवाली पोंच सौ स्त्रियों और भी अपनी चेष्टाओंसे जिसके मनको हरती रहती हैं ॥१६१॥ जिसके पद्म (राम) नामका ऐसा पुत्र है कि लक्ष्मी जिसके शरीरका आलिङ्गन करती है, जिसने अपनी दीप्तिसे सूर्यको, कीर्त्तिसे चन्द्रमाको, धीरतासे सुमेरुको और शोभासे इन्द्रको जीत लिया है, जो शूरवीरतासे महापद्म नामक चक्रवर्तीको भी जीत सकता है तथा उत्तम विभ्रमको धारण करनेवाला है ॥१६२-१६३॥ जिसका शरीर लक्ष्मीका निवासस्थल है और जिसके धनुषको देखकर शत्रु भयभीत होकर भाग जाते हैं ऐसा लक्ष्मण उस रामका छोटा भाई है ॥१६४॥ विद्याधर आकाशमें चलते हैं यह कहा सो आकाशमें तो कौए भी चलते हैं । इससे उनमें क्या विशेषता हो जाती है ? यहाँ गुणोंमें मन लगाना चाहिए अर्थात् गुणोंका विचार करना चाहिए । इन्द्रजालमें क्या सार है ? ॥१६५॥ अथवा आप लोगोंकी तो बात ही क्या है ? जबकि भूमिमें उत्पन्न हुए मनुष्य इन्द्रोंको भी नम्रीभूत कर देते हैं और नमस्कार करते समय उन्हें अपने मस्तक पृथिवीपर रगड़ने पड़ते हैं ॥१६६॥

अथानन्तर जनकके ऐसा कहनेपर विद्याधरोंने एकान्तमें बैठकर पहले सलाह की फिर

पद्मो लक्ष्मण इत्युच्चैर्गर्जितं वहसे वृथा । अथ विप्रैर्ययः कश्चित्तोऽस्माद्भज निश्चयम् ॥१६८॥
 समयं शृणु भूनाथ वज्रावर्तमिदं धनुः । इदं च सागरावर्तममरैः कृतरक्षणम् ॥१६९॥
 इमे वाणासने कर्तुमधिष्ये यदि तौ क्षमौ । अनेनैव तयोः शक्तिं ज्ञास्यामः किं बहुदितैः ॥१७०॥
 वज्रावर्तं समारोप्य पद्मो गृह्णातु कन्यकाम् । अस्माभिः प्रसभं पश्य तामानीतामिहान्वया ॥१७१॥
 ततः परममित्युक्त्वा धनुषी वीच्य दुर्ग्रहे । मनकाद् व्याकुलोभावं जनको मनसागमत् ॥१७२॥
 ततः कृत्वा जिनेन्द्राणां पूजां स्तोत्रं तु भावतः । गदासीरादिसयुक्ते पूजां नीते शरासने ॥१७३॥
 उपादाय च ते शूरा जनकं च नमश्चराः । मिथिलामिमुखं जग्मुश्चन्द्रोऽपि रथनूपुरम् ॥१७४॥
 ततः कृतमहाशोभं समङ्गलमहाजनम् । विवेश जनको वेश्म पौरलोकावलोकितः ॥१७५॥
 विधायायुधशालां च समावृष्य नमश्चराः । वहन्तः परमं गर्वं नगरस्य बहिःस्थिताः ॥१७६॥
 जनकस्तु सखेदाहः कृत्वा किञ्चित्स भोजनम् । चिन्तयाकुलितो मेने तत्पमुत्साहवर्जितः ॥१७७॥
 तत्र चोत्तमनारीभिर्विनीताभिः सुविभ्रमम् । चन्द्रांशुचयसंकाशैश्चामरैरभिवीजितः ॥१७८॥
 उष्णदीर्घातिभिः श्वासान् विमुञ्चन् विपमानलम् । दधत्वा विविधं भावमभाष्यत् विदेह्यौ ॥१७९॥
 का क कामिस्त्वया दृष्टा वारी यातेन लज्जिता । तद्वियोगकथामेतामवस्थामसि सञ्चितः ॥१८०॥

कहा कि हे जनक ! तुम कार्य करना नहीं जानते, तुम्हारा मन सिर्फ एक ही ओर लग रहा है ॥१६७॥ 'राम और लक्ष्मण उच्छृङ्खल हैं' इस गर्जनाको तुम व्यर्थ ही धारण कर रहे हो यदि मेरे इस कहनेसे कुछ संशय हो तो इससे उसका निश्चय कर लो ॥१६८॥ हे राजन् ! हमारी शर्त सुनो । यह वज्रावर्त नामका धनुष है, और यह सागरावर्त नामका धनुष है । देव लोग इन दोनों की रक्षा करते हैं ॥१६९॥ यदि राम और लक्ष्मण इन धनुषोंको डोरीसहित करनेमें समर्थ हो जावेंगे तो इसीसे हम उनकी शक्ति जान लेंगे । अधिक कहनेसे क्या लाभ है ? ॥१७०॥ राम वज्रावर्त धनुषको चढ़ाकर कन्या ग्रहण कर सकते हैं यदि वे उक्त धनुष नहीं चढ़ा सकेंगे तो आप देखना कि हम लोग उसे यहाँ जबरदस्ती ले आवेंगे ॥१७१॥

तदनन्तर 'ठीक है' ऐसा कहकर जनकने विद्याधरोकी शर्त स्वीकार तो कर ली परन्तु उन दुर्ग्राह्य धनुषोंको देखकर चित्तमें वह कुछ आकुलताको प्राप्त हुआ ॥१७२॥ तदनन्तर भाव-पूर्वक जिनेन्द्र भगवान्की पूजा और स्तुति कर चुकनेके बाद गदा, हल आदि शस्त्रोंसे युक्त उन दोनों धनुषोंकी भी पूजा की गई ॥१७३॥ वे शूरवीर विद्याधर उन धनुषों तथा राजा जनकको लेकर मिथिलाकी ओर चले पड़े और चन्द्रगति विद्याधर भी रथनूपुरकी ओर चले दिया ॥१७४॥ तदनन्तर जिसकी बहुत बड़ी सजावट की गई थी, और जिसमें महाजन लोग मङ्गलाचारसे सहित थे, ऐसे अपने भवनमें राजा जनकने प्रवेश किया । प्रवेश करते समय नागरिकजनोंने जनकके अच्छी तरह दर्शन किये थे ॥१७५॥ बहुत भारी गर्वको धारण करनेवाले विद्याधर नगरके बाहर आयुधशाला बनाकर तथा उसीको घेरकर ठहर गये ॥१७६॥ जिसका शरीर खेद-खिन्न था ऐसे जनकने कुछ थोड़ासा भोजन किया और इसके बाद वह चिन्तासे व्याकुल हो शय्यापर पड़ रहा । उस्ताह तो उसे था ही नहीं ॥१७७॥ यद्यपि वहाँ विनयसे भरी उत्तम स्त्रियों, हाथ भाव दिखाती हुई, चन्द्रमाकी किरणोंके समान चमरोसे उसे हवा कर रही थी तथापि वह अत्यन्त विपम, उष्ण और लम्बे-लम्बे अत्यधिक श्वास छोड़ रहा था । उसकी यह दशा देख विविध प्रकारके भावको धारण करती हुई रानी विदेहाने कहा ॥१७८-१७९॥ कि हे कामिन् ! आप कहाँ गये थे और वहाँ ऐसी कौन-सी कामिनी आपने देखी है जिसके वियोगसे इस

‘प्राकृता कापि सा नारी कामिनीगुणरिक्तिका । इति या स्मरसंतस^२ भवन्तं नाकुम्पते ॥१८॥
 नाथ वेदय मे स्थानं येन तामानयामि ते । भवद्दुःखेन मे दुःखं जनस्य सकलस्य वा ॥१८२॥
 उदारे सति सौभाग्ये कथमिष्टोऽसि नो तथा । आबमानसया येन दृष्टि न लभसे भृशम् ॥१८३॥
 उत्तिष्ठ भज निःशेषाः क्रिया राजजनोचिताः । शरीरे सति कामिन्यो भविष्यन्ति मनीषिताः^५ ॥१८४॥
 इत्युक्ते पार्थिवोऽबोचत् कान्तां प्राणगरीयसीम् । अन्यथा खेदितस्यास्य किं मे चित्तस्य खेदते ॥१८५॥
 शृणु देवि यतोऽब्रव्यामीदृशीमहमागतः । अपरिज्ञातवृत्तान्ता किमर्थमिति भापसे ॥१८६॥
 तेन मायातुरद्वेगे नीतोऽहं विजयाचलम्^७ । समयेनामुना तत्र मुक्तः पत्न्या खगामिनाम् ॥१८७॥
 वज्रावर्तमधिष्यं चेद्धनुः पद्मैः करिष्यति । ततः स्यात्तस्य कन्येयं तनयस्य समान्यथा ॥१८८॥
 कर्मानुभावतस्तच्च मया साध्वसतोऽपि वा । प्रतिपन्नमभाग्येन वन्धावस्थामुपेयुषा ॥१८९॥
 समुद्रावर्तसंज्ञेन^८ तच्चापेन समन्वितम् । आनीतं खेचैरैश्वर्यैः स्थानस्य तिष्ठति ॥१९०॥
 मन्ये तस्य सुरेशोऽपि न शक्तोऽधिष्यताकृतौ । वज्रज्वलनं तुल्यस्य दुर्निरीक्ष्यस्य तेजसा ॥१९१॥
 ‘कृतान्तमेव निम्नुद्धमनाकृष्टमपि स्वनत् । अनधिष्यमपि स्वैरं भीष्मं तिष्ठत्यनारतम् ॥१९२॥
 ‘अधिष्ये न कृते तस्मिन् पद्मेन^९ मदिशं ध्रुवम् । हरिष्यते खगैः कन्या मांसपेशीव जम्बुकाद् ॥१९३॥
 विंशतिर्वासरानां च वस्तुम्यत्र कृतोज्ज्विः । बलाहीता वराकांयं भूयोऽस्माभिः क्व वीक्षिता ॥१९४॥

अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥१८०॥ जान पड़ता है कि वह कोई पामरी स्त्री है अथवा स्त्रीके योग्य गुणोंसे रिक्त है जो इस तरह कामसे संतप्त हुए आप पर दया नहीं करती है ॥१८१॥ हे नाथ । आप वह स्थान बतलाइये जिससे मैं उसे ले आऊँ क्योंकि आपके दुःखसे मुझे तथा समस्त लोगोंको दुःख हो रहा है ॥१८२॥ उत्कृष्ट सौभाग्यके रहते हुए भी उस पापाणहृदयाने आपको क्यों नहीं आहा है जिससे कि आप अत्यन्त अधीर हो रहे है ॥१८३॥ उठिए और राजाओंके योग्य समस्त क्रियाओंका सेवन कीजिए । यदि शरीर है तो अनेक इच्छित खियाँ हो जावेंगी ॥१८४॥

विदेहाके ऐसा कहेनेपर राजाने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय वल्लभासे कहा कि मेरा चित्त दूसरे ही कारणसे खिन्न हो रहा है । उसे इस तरह खेद क्यों पहुँचा रही हो ? ॥१८५॥ हे देवि । सुनो, मैं जिस कारणसे ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुआ हूँ । तुम वृत्तान्तको जाने बिना इस प्रकार क्यों बोल रही हो ? ॥१८६॥ मैं उस मायामय अश्वके द्वारा विजयार्थ पर्वतपर ले जाया गया था वहाँ विद्याधरोंके राजाने मुझे इस शर्तपर छोड़ा है कि यदि राम वज्रावर्त धनुषको डोरी-सहित कर देगे तो यह कन्या उनकी होगी अन्यथा मेरे पुत्रकी होगी ॥१८७-१८८॥ कर्मके प्रभावसे समझो अथवा भयसे समझो वन्धन अवस्थाको प्राप्त हुए युध्म मन्दभाग्यने उसकी वह शर्त स्वीकार कर ली ॥१८९॥ समुद्रावर्त नामक दूसरे धनुषके साथ उस धनुषको उग्र विद्याधर ले आये है और वह नगरके बाहर स्थित है ॥१९०॥ वह धनुष वज्राग्निके समान है तथा तेजके कारण उसकी ओर देखना भी कठिन है । इसलिए मैं तो समझता हूँ कि उसे डोरी-सहित करनेमें इन्द्र भी समर्थ नहीं हो सकेगा ॥१९१॥ वह ऐसा जान पड़ता है मानो अत्यन्त क्रुद्ध यमराज ही हो । बिना खींचे भी वह शब्द करता है और बिना डोरीके भी वह अत्यन्त भयंकर है ॥१९२॥ यदि राम उस धनुषको डोरीसहित नहीं कर सके तो मेरी इस कन्याको विद्याधर लोग अवश्य ही उसी तरह हर कर ले जावेंगे जिस तरह कि पत्नी किसी शृगालके मुखसे मांसकी डलीको हर ले जाते है ॥१९३॥ इस कार्यके लिए बीस दिनकी अवधि निश्चित की

१. पामरी । २. स्मरसंसक्त म० । ३. पापाणवत्कठोरचेतसा । ४. इष्टाः । ५. विजयार्थगिरिम् । ६. रामः । ७. स्वीकृतम् । ८. सख्येन म० । ९. दिग्बालानल-ज०, ख०, क० । १०. कृतान्तायैव तत्क्रुद्ध-म०, ख० । ११. अधिष्येन क्षते यस्मिन् म० । १२. मत् मत्सकाशात् ।

एवमुक्तेऽखिलपूज्यलोचना सहसामभवत् । विदेहापहृत बालमस्मरच्च प्रसङ्गतः ॥१६५॥
 अतीतागामिशोककाश्यामभित' पीडितेव सा । चकार वारिनेत्राभ्यां कुररीव कृतस्वना ॥१६६॥
 परिदेवनमेवं च चक्रे विह्वलमानसा । कुर्वती परिवर्गस्य द्रवणं^१ चेतसामलम्ब ॥१६७॥
 कीदृशम मया नाथ दैवस्यापकृतं भवेत् । पुत्रेण यच्च संतुष्ट हर्तुं कन्यां समुद्यतम् ॥१६८॥
 स्नेहालम्बनमेकैव बालिकेय सुचेष्टिता । मम ते बान्धवानां च प्रेमभावो जनस्य च ॥१६९॥
 दुःखस्य यावदेकस्य^२ नान्त गच्छामि पापिनी । द्वितीयं तावदेतन्मे^३ कृतसन्निधि वर्तते ॥२००॥
 शोकवर्तनिमग्नां तां करुण रुदतीमिति । नियम्यास्तु^४ प्रियोवोचदतः शोकसमाकुलः ॥२०१॥
 अलं कान्ते रुदित्वा ते ननु कर्माजितं पुरा । नर्तयत्यखिलं लोकं नृत्ताचार्यां ह्यसौ परः ॥२०२॥
 अथवा मयि विश्वस्ते हतो दुष्टेन बालकः । अग्रमत्तस्य बालां तु हर्तुं शकोऽस्ति को मम ॥२०३॥
 आसप्रधारणन्यायमपरित्यजता मया । वृष्टासि दधिते वस्तु जानाम्येतद् दुःखावहम् ॥२०४॥
 सारैरेवविधैर्वाक्यैः कान्तेन कृतसान्त्वना^५ । विदेहा विरलीकृत्य शोकं कृत्वा द्रवस्थिता ॥२०५॥
 ततो धनुर्ध्वान्ते विशाला रचितावचि । स्वयवरार्थमाहूता, पार्थिवाः सखलाः, चित्ती ॥२०६॥
 प्रेषितः कोशलां दूतः^६ पद्माद्याः समुपागताः । मातापित्रादिंसंयुक्ता जनकेनाभिपूजिताः ॥२०७॥

गई है । इसके बाद यह कन्या जबदेस्ती ले जाई जावेगी । फिर इस बेचारीको हम कहाँ देख सकेंगे ? ॥१६४॥

जनकके ऐसा कहते ही विदेहाके नेत्र सहसा औंसुओसे भर गये और इस प्रसङ्गसे उसे अपने अपहृत बालकका स्मरण हो आया ॥१६५॥ वह अतीत और आगामी शोकके द्वारा दोनों ओरसे पीड़ित हो रही थी । इसलिए कुररीकी तरह शब्द करती हुई नेत्रोसे जल बरसाने लगी ॥१६६॥ विह्वल चित्तकी धारक विदेहा परिजनोके चित्तको अत्यन्त द्रवीभूत करती हुई इस प्रकार खिलाप करने लगी कि हे नाथ ! मैंने दैवका कैसा उलटा अपकार किया होगा कि जिससे यह पुत्रके द्वारा सन्तुष्ट नहीं हुआ अब कन्याको हरनेके लिए उद्यत हुआ है ॥१६७-१६८॥ उत्तम चेष्टाको धारण करनेवाली यही एक बालिका मेरे और आपके स्नेहका आलम्बन है तथा भाई-बान्धव एवं परिवारके लोगोका प्रेमभाजन है ॥१६९॥ मैं पापिनी जब तक एक दुःखका अन्त नहीं प्राप्त कर पाती हूँ तब तक दूसरा दुःख आकर उपस्थित हो जाता है ॥२००॥ राजा जनक स्वयं शोकसे आकुल था पर जब उसने देखा कि विदेहा शोकरूपी आवर्तमे फँसकर करुण रोदन कर रही है तब उसने जिस किसी तरह अपने औंसू रोककर कहा कि हे प्रिये ! तुम्हारा रोना व्यर्थ है । निश्चयसे पूर्व जन्ममे अर्जित कर्म ही समस्त लोकको नचा रहा है । यही सबसे बड़ा नर्तकाचार्य है ॥२०१-२०२॥ अथवा मेरे निश्चित असावधान रहनेपर किसी दुष्टके द्वारा बालक हरा गया था पर अब तो मैं सावधान हूँ । देखूँ मेरी कन्याको हरनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२०३॥ हे प्रिये ! 'आप्तजनोके साथ कार्यका विचार करना चाहिए' इस न्यायको न छोड़ते हुए ही मैंने तुममे पूछा था । मैं तो जानता हूँ कि यह वस्तु सुखको धारण करनेवाली ही होगी ॥२०४॥ पतिके इस प्रकार सारपूर्ण वचनोसे जिसे सान्त्वना दी गई थी ऐसी विदेहा बड़े कष्ट से शोकको हलका कर चुप हो रही ॥२०५॥

तदनन्तर जहाँ धनुष रक्खा था उसके समीप ही विशाल भूमि बनाई गई और उसमे स्वयंवरके लिए समस्त राजा जुलाये गये ॥२०६॥ अयोध्याको भी दूत भेजा गया जिससे राम आदि चारो भाई माता पिता आदिके साथ आये और राजा जनकने उन सबका सम्मान किया

१. द्रविणं म० । २. देतस्य म० । ३. तावदेतन्मे म० । ४. नियम्याश्रुं म० । ५. सान्त्वया ज० । ६. रामाद्याः । ७. मातृपित्रा-ज०, क०, ख०, व० ।

ततो हर्म्यतले कान्ते स्थिता परमसुन्दरी । कन्यासक्तशतान्तस्था सीता शूरभटावृता ॥२०८॥
 प्रान्तेषु सर्वसामन्ता वेश्मनोऽस्यावतस्थिरे । कुर्वाणा विविधां लीलां महाविभववर्तिनः ॥२०९॥
 ततः स्थित्वा पुरस्तस्य कञ्चुकी सुबहुश्रुतः । जगाद तारशब्देन हेमवेत्रलताकरः ॥२१०॥
 राजपुत्रि परीक्षन् पद्मोऽसौ पद्मलोचन । अयोध्याधिपतेराद्यः पुत्रो दशरथश्रुतेः ॥२११॥
 लक्ष्मीमान् लक्ष्मणश्चायमनुजोऽप्य महाव्रतिः । भरतोऽयं महाबाहुः शत्रुघ्नोऽप्य सुचेष्टितः ॥२१२॥
 सुतैर्दशरथोऽमीभिर्गुणसागरमानसैः । वसुधां शास्ति निर्दग्धमयाङ्कुरसमुद्भवाम् ॥२१३॥
 हरिवाहननामाय धामानेष घनप्रभः । अयं चित्ररथः कान्तो दुर्मुखोऽयं प्रभाववान् ॥२१४॥
 श्रीसजयो जयो भानुः सुप्रभो मन्दरो ब्रुधः । विशालः श्रीधरो वीरो बन्धुर्भद्रबलः शिखी ॥२१५॥
 पुतेऽन्ये च महासत्त्वा महाशोभासमन्विता । विशुद्धवशसम्भूताश्चन्द्रनिर्मलकान्तयः ॥२१६॥
 कुमाराः परमोत्साहा गुणभूषणवारिणः । महाविभवसम्पन्ना भूरिविज्ञानकोविदाः ॥२१७॥
 गजोऽयमस्य शैलाभस्तुरङ्गोऽस्यायमुन्नत । रथोऽस्याय महाभोगो भटोऽस्याय कृताद्भुतः ॥२१८॥
 सांकार्यपुरनाथोऽयमयं रन्ध्रपुराधिपः । गवीधुमदधीशोऽयमयं नन्दनिकाधिपः ॥२१९॥
 विभुः सूरपुरस्यायमेव कुण्डपुराधिपः । अयं मगधराजेन्द्रः काम्पित्यविभुरेव च ॥२२०॥
 अयमिष्वक्कुसम्भूतो नृपोऽयं हरिवंशजः । अयं कुरुकुलानन्दो भोजोऽयं वसुधापतिः ॥२२१॥
 इत्यादिवर्णनयुक्ता श्रूयन्तेऽमी महारुणाः । इदं त्वदर्थमेतेषां समाख्यं परीक्षणम् ॥२२२॥

॥२०७॥ तदनन्तर परम सुन्दरी सीता सात सौ अन्य कन्याओंके साथ महलकी सुन्दर छतपर बैठी । शूरवीर योद्धा उसे घेरे हुए थे ॥२०८॥ उस महलके चारो ओर नाना प्रकारकी लीला को करते हुए समस्त सामन्त वड़े ठाट-बाटसे अवस्थित थे ॥२०९॥

तदनन्तर अनेक शास्त्रोंको जाननेवाला तथा हाथमें सुवर्णकी छड़ी धारण करनेवाला कञ्चुकी सीताके सामने खड़ा होकर उच्च स्वरसे बोला कि हे राजपुत्रि ! देखो यह कमल-लोचन, अयोध्याके अधिपति राजा दशरथका आद्य पुत्र पद्म (राम) है ॥२१०-२११॥ यह लक्ष्मीवान् तथा विशाल कान्तिको धारण करनेवाला इसका छोटा भाई लक्ष्मण है । यह वड़ी बड़ी भुजाओं को धारण करनेवाला भरत है और यह सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाला शत्रुघ्न है ॥२१२॥ जिनके हृदय गुणोंके सागर हैं ऐसे इन पुत्रोंके द्वारा राजा दशरथ पृथिवीका पालन करते हैं । इनकी पृथिवीमें भयके समस्त अङ्कुरोंकी उत्पत्ति भस्म कर दी गई है ॥२१३॥ यह अत्यधिक कान्तिको धारण करनेवाला बुद्धिमान् हरिवाहन है, यह सुन्दर चित्ररथ है, यह प्रभावशाली दुर्मुख है ॥२१४॥ यह श्रीसजय है, यह जय है, यह भानु है, यह सुप्रभ है, यह मन्दर है, यह ब्रुध है, यह विशाल है, यह श्रीधर है, यह वीर है, यह बन्धु है, यह भद्रबल है और यह शिखी अर्थात् मयूरकुमार है ॥२१५॥ ये तथा इनके सिवाय और भी राजकुमार यहाँ उपस्थित हैं । ये सभी महा पराक्रमी, महा शोभासे युक्त, विशुद्ध कुलमें उत्पन्न, चन्द्रमाके समान निर्मल कान्तिके धारक, परमोत्साही, गुणरूपी आभूषणोंके धारक, महा विभवसे सम्पन्न तथा अत्यधिक विज्ञानसे निपुण हैं ॥२१६-११७॥ यह पर्वतके समान आभावाला इसका हाथी है, यह इसका ऊँचा घोड़ा है, यह इसका विस्तृत रथ है और यह आश्चर्यजनक कार्य करनेवाला इसका सुभट—योद्धा है ॥२१८॥ यह साङ्काश्यपुरका स्वामी है, यह रन्ध्रपुरका अधिपति है यह गवीधुमद् देशका अधीश है, यह नन्दनिकाका नाथ है ॥२१९॥ यह सूरपुरका विभु है । यह कुण्डपुरका अधिप है, यह मगध देशका राजा है, और काम्पित्यपुरका स्वामी है ॥२२०॥ यह राजा इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ है, यह हरिवंशमें उद्भूत हुआ है, यह कुरुकुलका आनन्ददायक है और यह राजा भोज है ॥२२१॥ ये सभी राजा इत्यादि वर्णनासे युक्त तथा महा

वज्रावर्तमिदं चापमारोपयति ओ नरः । कुमारि वरणीयोऽसौ भवत्या पुरुषोत्तमः ॥२२३॥
 क्रमेण मानिनस्ते च कुर्वणाः स्वविकथनम् । वज्रावर्तधनुस्तेन दौकितान्ध्रावभिन्नाः^१ ॥२२४॥
 आसीदसु कुमारेषु धनुर्भुज्यति पावकम् । विद्युत्सटासमाकारं निश्चसन्नीपणोरगम् ॥२२५॥
 चक्षुस्तत्र द्रुतं केचिद्वनुर्वालासमाहृतम् । त्रस्ताः पिपाय पाणिभ्यां पराचीर्नस्वमाश्रिताः ॥२२६॥
 तस्थुर्दूरत एवान्ये दृष्ट्वा स्फुरितपद्मगात्र । कम्पमानसमस्ताद्वा निमीलितविलोचनाः ॥२२७॥
 'केचिज्ज्वराकुलाः पेतुः क्षितावन्ये' गिरोज्झिताः । द्रुतं पलायिताः केचिदेके मूर्च्छासुपागताः ॥२२८॥
 केचित्पद्मवातेन क्षिप्ता मर्मरपत्रवद् । अपरे स्तम्भमायाताः स्थिताः शान्तर्दयोऽपरे ॥२२९॥
 केचिदूर्ध्वदि स्थान गमिष्यामो निज ततः । जीवदानानि दास्यामश्चरणौ देहि^२ देवते ॥२३०॥
 'ऊचुरन्येऽन्यनारीभिः सेवां मानसवासिनः'^३ । ध्रियमाणाः करिष्यामो रूपिण्यापि किमेतया ॥२३१॥
 अन्ये जगुरिभं नून केनापि क्रूरचेतसा । प्रयुक्ता परमा माया वधार्थं पृथिवीक्षिताम् ॥२३२॥
 अन्ये जगुः किमस्माकं कामेनास्ति प्रयोजनम् । ब्रह्मचर्येण नेष्यामः समयं साधवो यथा ॥२३३॥
 ततः पद्मः समुत्तस्थौ वरकार्मुकलालसः । हुढौके च^४ महानागमन्थरां गतिमुद्वहन् ॥२३४॥
 आसीदतिष्ठुमे तस्मिन् रूपं भजे धनुर्निजम् । सुचारुपरमं सौम्यमन्तेवार्सा^५ गुराविव ॥२३५॥

गुणवान् मुने जाते हैं । तुम्हारे लिए इन सबका यह परीक्षण प्रारम्भ किया गया है ॥२२२॥ हे कुमारि ! जो पुरुष इस वज्रावर्त धनुषको चढ़ा देगा वही पुरुषोत्तम तुम्हारे द्वारा बरा जाना है ॥२२३॥

तदनन्तर जो मानसे सहित थे, अपनी प्रशंसा अपनेआप कर रहे थे, और सुन्दर विलाससे सहित थे ऐसे उन सब राजाओंको वह कञ्चुकी वज्रावर्त धनुषके पास ले गया ॥२२४॥ जिसका आकार बिजलीकी छटाके समान था तथा जिसमें भयङ्कर सोंप फुकार रहे थे ऐसा वह धनुष राजकुमारोके पास आते ही अग्नि छोड़ने लगा ॥२२५॥ कितने ही राजकुमार भयभीत हो धनुषकी श्वालाओसे ताड़ित चक्षुको दोनों हाथोंसे ढँककर शीघ्र ही वापिस लौट गये ॥२२६॥ जिनके समस्त अङ्ग कम्पित हो रहे थे तथा नेत्र बन्द हो गये थे ऐसे कितने ही लोग चलते हुए सोंपोंको देखकर दूर ही खड़े रह गये थे ॥२२७॥ कितने ही लोग ज्वरसे आकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़े, कितने ही लोगोंकी बोलती बन्द हो गई, कितने ही शीघ्र भाग गये और कितने ही मूर्छाको प्राप्त हो गये ॥२२८॥ कितने ही लोग सोंपोंकी वायुसे सूखे पत्रके समान उड़ गये, कितने ही अकड़ गये और कितने ही लोगोंकी ऋद्धि शान्त हो गई अर्थात् वे शोभारहित हो गये ॥२२९॥ कितने ही लोग कहने लगे कि यदि हम अपने स्थानपर वापिस जा सकेंगे तो जीवोंको दान देवेंगे । हे देवते ! मुझे दो चरण दो अर्थात् वापिस भागनेकी पैरोंमें शक्ति प्रदान करो ॥२३०॥ कितने ही लोग बोले कि यदि हम जीवित रहेंगे तो अन्य स्त्रियोंसे कामकी सेवा कर लेंगे । भले ही यह रूपवती हो पर इससे क्या प्रयोजन है ? ॥२३१॥ कुछ लोग कहने लगे कि निश्चित ही किसी दुष्ट चित्तने राजाओंके वधके लिए इस मायाका प्रयोग किया है ॥२३२॥ और कुछ लोग कहने लगे कि हमें कामसे क्या प्रयोजन ? हम तो साधुओंके समान ब्रह्मचर्यसे समय बिता देवेंगे ॥२३३॥

तदनन्तर जिन्हें उस उक्त धनुषकी लालसा उत्पन्न हो रही थी ऐसे राम मदनोन्मत्त गजराजके समान मन्थर गतिको धारण करते हुए उसके पास पहुँचे ॥२३४॥ पुण्यशाली रामके

१. चारुविभ्रमा म० । २. शीघ्रम् । ३. पराङ्मुखत्वम् । ४. केचिद्वराकुल म०, केचित्ज्वराकुल ज० । ५. वाण्या रहिताः । ६. देवि ज० । ७. ऊचुरन्येन नारीभिः म० । ८. कामस्य । ९. महागजमन्थरा । १०. छात्रः ।

ततो विजयमादाय धनुस्त्रेष्ठ्यं चांशुकम् । समारोपयदभ्युच्चैर्ध्वनितं विपुलप्रभम् ॥२३६॥
 महाजलधरध्वानशङ्खिभिः शिखिभिः कृतम् । मुक्तकेकारवैर्नृत्यं बद्धविस्तीर्णमण्डलैः ॥२३७॥
 अलातचक्रसंकाशः संजातो दिवसाधिपः । सुवर्णरजसाच्छाद्वा इवासन् व्योमबाहवः ॥२३८॥
 साधु साध्विति देवानां बभूव नभसि स्वनः । ननुतुर्व्यन्तराः केचिन्मुञ्चन्तः पुण्यसहतीः ॥२३९॥
 ततोऽनजटङ्कारवधिराकृतविष्टपम् । आचकर्ष धनुः पद्मः सम्प्राप्तं चक्रताविव ॥२४०॥
 विकलीभूतनिशेषहृषीकः सकलो जनः । तदावतमिष प्राप्नो भ्राम्यति त्रस्तमानसः ॥२४१॥
 प्रवातघूर्णिताम्भोजपलाशाधिककान्तिना । चक्षुषा स्मरन्वापेन सीता रामं निरैचत ॥२४२॥
 रोमाञ्छार्चितसर्वांगा दधती परमजगम् । ग्रीता रामं द्रुढौके सा ग्रीढाविनमितानना ॥२४३॥
 पार्श्वस्थया तथा रेजे स तथा सुन्दरौ यथा । यथायमिति दृष्टान्तं यो गदेत् स गतत्रयः ॥२४४॥
 अवतारितनौर्धौ स कृत्वा सायकासनम् । तस्यौ विनयसम्पन्नः स्वासने सीतया सह ॥२४५॥
 सकम्पहृदया सीता रामाननदिदृच्छया । भावं कमपि सम्प्राप्ता नवसङ्गमसाध्वसा ॥२४६॥
 झुब्धाक्षूपारनिस्वानं सागरावर्तकासुकम् । तावच्च लक्ष्मणोऽधिज्यं कृत्वास्फालयदुन्नतम् ॥२४७॥
 शरे निहितदृष्टिं तं समालोक्य नभश्चराः । वदन्तो देव मा मेति मुमुक्षुः कुसुमोत्करान् ॥२४८॥
 आकृत्य कासुकं क्रूरं मौर्वीर्त्तरात्वमूर्जितः । अवतार्य च पद्मस्थ पार्श्वे सुविनयस्थितः ॥२४९॥

समीप आते ही धनुष अपने असली स्वरूपको उसीतरह प्राप्त हो गया जिस तरह कि गुरुके समीप आते ही विद्यार्थी अत्यन्त सुन्दर एवं सौभाग्यरूपको प्राप्त हो जाता है ॥२३६॥ तदनन्तर रामने वल्ल ऊपर चढ़ाकर निःशङ्क हो धनुष उठा लिया और उसे चढ़ाकर जोरसे विपुल गर्जना की ॥२३६॥ मयूर उस गर्जनाको मेघोकी महागर्जना समझ करसे केकाध्वनि छोड़ने लगे और अपनी पिच्छोंका मण्डल फैला कर नृत्य करने लगे ॥२३७॥ सूर्य अलातचक्रके समान हो गया और दिशाएँ सुवर्णकी परागसे ही मानो व्याप्त हो गई ॥२३८॥ आकाशमे 'साधु' 'साधु'—'ठीक-ठीक' इस प्रकार देवोंका शब्द होने लगा और फूलोंके समूहकी वर्षा करते हुए कितने ही व्यन्तर नृत्य करने लगे ॥२३९॥

तदनन्तर अटनीकी टङ्कारसे जिसने समस्त विश्वको बहिरा कर दिया था तथा जो चक्राकारताको मानो व्याप्त हो रहा था ऐसे धनुषको रामने खींचा ॥२४०॥ जिनकी समस्त इन्द्रियो विकल हो गई थीं तथा मन भयभीत हो रहा था ऐसे सब लोग भँवरमे पड़े हुएके समान घूमने लगे ॥२४१॥ बायुसे हिलते हुए कमलदलसे भी अधिक जिसकी कान्ति थी, तथा जो कामदेवके धनुषके समान जान पड़ता था, ऐसे नेत्रसे सीताने रामको देखा ॥२४२॥ जिसका समस्त शरीर रोमाञ्छोंसे सुशोभित हो रहा था, जो उत्कृष्ट माला धारण कर रही थी, तथा लज्जासे जिसका मुख नीचेकी ओर झुक रहा था ऐसी सीता प्रसन्न हो रामके समीप पहुँची ॥२४३॥ पासमे खड़ी सीतासे सुन्दर राम इस तरह सुशोभित हो रहे थे कि उनकी उपसामे 'वे इस तरह सुशोभित थे' ऐसा जो कहता था वह निर्लज्ज जान पड़ता था अर्थात् वे अनुपम थे ॥२४४॥

तदनन्तर धनुषकी डोरी उतारकर वे विनयवान् राम सीताके साथ अपने आसनपर बैठ गये ॥२४५॥ जो नव समागमके कारण भयभीत हो रही थी तथा जिसके हृदयमे कम्पन उत्पन्न हो रहा था ऐसी सीता रामका मुख देखनेकी इच्छासे किसी अद्भुत भावको प्राप्त हो रही थी ॥२४६॥ इतनेमे ही झुमि ससुद्रके समान जिसका शब्द हो रहा था ऐसे सागरावर्त्त नामक धनुषको लक्ष्मणने प्रत्यश्चासहित कर जोरसे उसकी टङ्कार छोड़ी ॥२४७॥ तदनन्तर बाणपर दृष्टि लगाये हुए लक्ष्मणको देख 'हे देव नहीं, नहीं' ऐसा कहते हुए विद्याधरोने फूलोंके समूह छोड़े अर्थात् पुष्प वर्षा की ॥२४८॥ तदनन्तर जिसकी डोरीसे विशाल शब्द हो रहा था ऐसे

विक्रान्ताय तथा तस्मै विद्याभुञ्जन्ध्वर्धनः । अष्टादश ददौ कन्या धियैवाप्रीडिका इति ॥२५०॥
 विद्याधरैः समागत्य परमं भयपूरितैः । वृत्तान्ते कथिते तस्मिन्श्रद्धाश्रित्तापरः स्थितः ॥२५१॥
 वृत्तान्तमिममालोक्य भरतः पुरुविस्मयः । अशोचदेवमात्मानं मनसा सम्प्रबुद्धवान् ॥२५२॥
 कुलमेकं पिताम्येकं पुत्रयोर्मम चेदृशम् । प्राप्तमद्भुतमेताभ्यां न मया मन्दकर्मणा ॥२५३॥
 अथवा किं मनो व्यर्थं परलक्ष्याभितप्यसे । पुरा चारुणि कर्माणि न कृतानि भूवं स्वया ॥२५४॥
 पद्मगर्भदलच्छाया साक्षाल्लक्ष्मीरिवोज्ज्वला । ईदृशी पुरुपुण्यस्य पुंसो भवति भामिनी ॥२५५॥
 कलाकलापनिष्ठाता विज्ञाना केकया ततः । विज्ञाय तनयाकृतं कर्णं प्रियमभापत ॥२५६॥
 भरतस्य मया नाथ शोकवह्निस्त मनः । तथा कुरु यथा नाथ निर्वेदं परमुच्छति ॥२५७॥
 अस्त्यत्र कनको नाम जनकस्यानुजो नृपः । सुप्रभायां ततो जाता सुकन्या लोकसुन्दरी ॥२५८॥
 स्वयंवराभिधं भूयः समुद्धोष्य नियोज्यताम् । तथायं यावदावाति नान्यं तं भावनान्तरम् ॥२५९॥
 ततः परमसिक्तुत्वा वार्ता दशरथेन सा । कर्णगोचरमानीता कनकस्य सुवैतसः ॥२६०॥
 यद्वाज्ञापयतीत्युत्त्वा कनकेनान्यवासरे । समाहूता नृपाः क्षिप्रं गता ये निलयं निजम् ॥२६१॥
 ततो यथोचितस्थानस्थितभूनाथमभ्यगम् । नक्षत्रगणमभ्यस्यशर्वरीवरविश्रमम् ॥२६२॥
 उपात्तसुमनोदामा कानकी कनकप्रभा । सुप्रभा भरतं वन्दे सुमद्रा भरतं यथा ॥२६३॥

धनुषको खींचकर और फिर उतारकर बलवान् लक्ष्मण रामके समीप ही बड़ी विनयसे आ बैठा ॥२४६॥ इस प्रकार शूरवीरता दिखानेवाले लक्ष्मणके लिए चन्द्रवर्धन विद्याधरने अत्यन्त बुद्धि-
 मती अठारह कन्याएँ दीं ॥२४७॥ भयसे अतिशय भरे हुए विद्याधरोंने वापिस आकर जब
 यह समाचार कहा तब चन्द्रगति विद्याधर चिन्तामें निमग्न हो गया ॥२४९॥

अथानन्तर यह वृत्तान्त देखकर जिसे बड़ा आश्चर्य प्राप्त हो रहा था तथा जिसे मनमें प्रबोध उत्पन्न हुआ था ऐसा भरत अपने आपके विषयमें इस प्रकार शोक करने लगा ॥२४९॥
 कि देखो हम दोनोंका एक कुल है, एक पिता हैं । पर इन दोनों अर्थात् राम लक्ष्मणने ऐसा आश्चर्य प्राप्त किया और पुण्यकी मन्दतासे मैं ऐसा आश्चर्य प्राप्त नहीं कर सका ॥२५३॥ अथवा दूसरेकी लक्ष्मीसे मनको व्यर्थ ही क्यों संतप्त किया जाय ? निश्चित ही तुने पूर्वभवमें अच्छे कार्य नहीं किये ॥२५४॥ कमलके भीतरी दलके समान जिसकी कान्ति है ऐसी साक्षात् लक्ष्मीके समान उज्ज्वल स्त्री अत्यधिक पुण्यके धारक पुरुषको ही प्राप्त हो सकती है ॥२५५॥

तदनन्तर कलाओके समूहमें निष्ठात एवं विशिष्ट ज्ञानको धारण करनेवाली केकयाने पुत्रकी चेष्टा जानकर कानमें हृदयबल्लभ राजा दशरथसे कहा कि हे नाथ ! मुझे भरतका मन शोकयुक्त दिखाई देता है । इसलिए ऐसा करो कि जिससे यह वैराग्यको प्राप्त न हो जाय ॥२५६-
 २५७॥ यहाँ जनकका छोटा भाई कनक है उसकी सुप्रभा रानीसे उत्पन्न हुई लोकसुन्दरी नामा कन्या है ॥२५८॥ सो स्वयंवर विधिकी पुनः घोषणा कर उसे भरतके लिए उसी तरह स्वीकृत कराओ जिस तरह कि वह किसी दूसरी भावनाको प्राप्त नहीं हो सके ॥२५९॥ तदनन्तर 'बहुत ठीक है' ऐसा कहकर राजा दशरथने यह बात विचारवान् राजा कनकके कान तक पहुँचाई ॥२६०॥ राजा कनकने भी 'जो आज्ञा' कहकर दूसरे दिन जो राजा अपने घर चले गये थे उन्हें शीघ्र ही बुलाया ॥२६१॥

तदनन्तर जो यथायोग्य स्थानोंपर बैठे हुए राजाओंके मध्यमें स्थित था और नक्षत्रोंके समूहके मध्यमें स्थित चन्द्रमाके समान सुरोमित हो रहा था ऐसे भरतको पुष्पमाला धारण करनेवाली एवं सुवर्णके समान कान्तिसे संयुक्त, राजा कनककी पुत्री लोकसुन्दरीने उस तरह

अत्यन्तविपरीभावं पश्य श्रेणिक कर्मणाम् । यतोऽसौ संप्रबुद्धः सन् कन्ध्या मोहितः पुनः ॥२६४॥
 विल्लाः पार्थिवाः सर्वे जन्मुः स्थानं यथायथम् । अस्थुश्च विकयाश्वत्वा बन्धुवर्गसमागमे ॥२६५॥
 यादृक् येन कृतं कर्म बुद्धके तादृक् स तत्फलम् । ननु सान् कोद्रवान् कश्चिद्वरुते शालिसंपदम् ॥२६६॥
 केतुतोरणमालामिण्डितायां महाद्युतौ । अगुल्फकुसुमापूर्णविशालापणवर्त्मनि ॥२६७॥
 सशंखतूर्यनिस्वानपुरिताखिलवेश्मनि । मिथिलायां तयोश्चक्रं विवाहः परमोत्सवः ॥२६८॥

द्रविणेन तथा लोकः सकलो परिपुरितः ।

महाप्रलयमायातं देहीति ध्वनितं यथा ॥२६९॥

ये विवाहोत्सवं द्रष्टुं स्थिता भूपाः सुचेतसः ।

परमं प्राप्य सन्मानं ययुस्ते स्वं स्वमालयम् ॥२७०॥

द्रुतचिलन्वितवृत्तम्

सकलविष्टपनिर्गतकीर्तयः परसरूपपयोनिधिवर्तिनः ।

पितृजनार्पितसमदसम्पदः परमरत्नविभूषितविग्रहाः ॥२७१॥

विविधयानसमाकुलसैनिका जलनिधिवनतूर्यनिनादिताः ।

विविश्वरभ्युदयेन सुकोशलां दशरथस्य सुता वधुके तथा ॥२७२॥

समवलोकितुमुत्तमविग्रहे पुरि तदा वधुके सकलो जनः ।

रहितसामिहृतस्वमनःक्रियः अयति राजपथं शृशमाकुलः ॥२७३॥

वरा जिस तरह कि उत्तम कान्तिको धारण करनेवाली सुभद्राने पहले भरत चक्रवर्तीको वरा था ॥२६२-२६३॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! कर्मोंकी अत्यन्त विषमता देखो कि प्रबोधको प्राप्त हुआ भरत कन्ध्याके द्वारा पुनः मोहित हो गया ॥२६४॥ सब राजा लोग लज्जित होते हुए यथायोग्य स्थानोंपर चले गये और अपने बन्धुवर्गके बीचसे विकथा करते हुए रहने लगे ॥२६५॥ कितने ही कहने लगे कि जिस जीवने जैसा कार्य किया है वह वैसा ही फल भोगता है । क्योंकि जिसने कोढ़ा बोये है वह धान्य प्राप्त नहीं कर सकता ॥२६६॥

तदनन्तर जो पताका तोरण और मालाओंसे सजाई गई थी, जो महाकान्तिको धारण कर रही थी, जिसके बाजारके लम्बे-चौड़े मार्ग घुटनों तक फूलोंसे व्याप्त किये गये थे और जिसके समस्त घर शङ्ख एवं तुरहीके मधुर शब्दोंसे भर रहे थे ऐसी मिथिला नगरीमें दोनोंका बड़े उत्सवके साथ विवाह किया गया ॥२६७-२६८॥ उस समय घनसे सब लोक इस तरह भर दिया गया था कि जिससे 'देहि अर्थात् देओ' यह शब्द महाप्रलयको प्राप्त हो गया था अर्थात् विलकुल ही नष्ट हो गया था ॥२६९॥ उत्तम चित्तको धारण करनेवाले जो राजा विवाहोत्सव देखनेके लिए रह गये थे वे परम सन्मानको प्राप्त हो अपने-अपने घर गये ॥२७०॥

अथानन्तर जिनकी कीर्ति समस्त संसारमें फैल रही थी, जो परम सौन्दर्यरूपी सागरमें निमग्न थे, जिन्होंने माता-पिताके लिए हर्षरूप सम्पदा समर्पित की थी, जिनके शरीर उत्कृष्ट रत्नोंसे अलंकृत थे, जिनके सैनिक नाना प्रकारकी सवारियोंसे व्यग्र थे, और जिनके आगे समुद्रके समान विशाल शब्द करनेवाले तुरही वज्र रही थी ऐसे दशरथके पुत्रों तथा वधुओंने वड़े वैभवके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया ॥२७१-२७२॥ उस समय उत्तम शरीरको धारण करनेवाली वधुओंको देखनेके लिए समस्त नगरवासी लोग अपना आधा किया कार्य छोड़ बड़ी

कृतसमस्तजनप्रतिमाननाः पुरुगुणस्तवसन्नतमूर्तयः ।
 स्वनिलयेषु महासुखभोगिनो दशरथस्य सुताः सुधियः स्थिताः ॥२७४॥
 समवगम्य जनाः शुभकर्मणः फलमुदारमशोभनतोज्ज्वला ।
 कुरुत कर्म दुर्धरमिनन्द्रितं भवत येन रवेरधिकप्रभाः ॥२७५॥

इत्यार्षे रविप्रेषाचार्यश्रोत्रके पद्मचरिते रामलक्ष्मणरत्नमालामिधानं
 नामाष्टाविंशतितमं पर्व ॥२८॥



व्यग्रतासे राजमार्गमें आ गये ॥२७३॥ जिन्होंने सब लोगोंका सत्कार किया था तथा अपने विशाल गुणोंके स्तवनसे जिनका शरीर चिनम्र हो रहा था अर्थात् लज्जाके भारसे झुक रहा था ऐसे दशरथके बुद्धिमान् पुत्र महासुख भोगते हुए अपने महलोंमें रहने लगे ॥२७४॥ गौतम-स्वामी कहते हैं कि हे भव्यजनो ! 'शुभ कर्मका फल अच्छा होता है और अशुभ कर्मका फल अशुभ होता है' ऐसा जानकर विद्वज्जनोंके द्वारा प्रशंसनीय वह कार्य करो जिससे कि सूर्यसे भी अधिक कान्तिके धारक होओ ॥२७५॥

इस प्रकार आर्पणामसे प्रसिद्ध रविप्रेषाचार्यके द्वारा कथित पद्मचरितमें रामलक्ष्मणको स्वयंवरमें रत्नमालाकी प्राप्ति होनेका वर्णन करनेवाला अष्टाईसवों पर्व समाप्त हुआ ॥२८॥

एकोनत्रिंशत्तमं पर्व

आपाहधवलपट्ट्याः प्रभृत्यथ नराधिपः । महिमानं जिनेन्द्राणां प्रयतः कर्तुमुद्यतः ॥१॥
 सर्वाः प्रियास्तदा तस्य तनया बान्धवस्तथा । विधातुं जिनविम्बानामिति कर्तव्यमुद्यतः ॥२॥
 पिनष्टि पञ्चवर्णानि कश्चिच्चूर्णानि सादरः । कश्चिद् अश्नाति मात्यानि लब्धवर्णः सुभक्तिपु ॥३॥
 वासत्युदकं कश्चिद्वयत्यपरः क्षितिम् । पिनष्टि परमान् गन्धान् कश्चिद्बहुविधच्छवीन् ॥४॥
 द्वारशोभां करोत्यन्यो वासोभिरतिभासुरैः । नानाधातुरसैः कश्चित्कुरुते भित्तिमण्डनम् ॥५॥
 एवं जनः परां भक्तिं बहून् प्रसदपूरितः । जिनपूजासमाधानात् पुण्यमार्जयदुत्तमम् ॥६॥
 ततः सर्वसमृद्धीनां कृतसम्भारसज्जिधिः । चकार स्तपन राजा जिनानां तूर्यनादितम् ॥७॥
 अष्टाहोपोषितं कृत्वाभियेकं परमं नृपः । चकार महती पूजां पुण्यैः सहजकृत्रिमैः ॥८॥
 यथा नन्दीश्वरे द्वीपे शक्रः सुरसमन्वितः । जिनेन्द्रमहिमानन्दं कुरुते तद्देव सः ॥९॥
 ततः सदनयातानां महिषीणां नराधिपः । प्रजिघास्य महापूतं शान्तिगन्धोदकं कृती ॥१०॥
 तिसृणां तरुणीक्रीमिनीतं शान्त्युदकं द्रुतम् । प्रतीता मस्तके चक्रस्ततो दुरितनोदनम् ॥११॥
 बृद्धकन्धुकिनो हस्ते दत्तं जिनवरोदकम् । अप्राप्य सुप्रभा कोपं शोकं च परमं गता ॥१२॥
 अचित्तयच्च नो साध्वी बुद्धिरेषा महीश्रुतः । यदेता मानिता नाह शान्तिवारिविसर्जनात् ॥१३॥

अथानन्तर आपाह शुक्ल अष्टमीसे आष्टाहिक महापर्व आया । सो राजा दशरथ जिनेन्द्र भगवान्की महिमा करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१॥ उस समय उसकी समस्त स्त्रियाँ, पुत्र तथा बान्धवजन जिन-भतिमाओके विषयमे निम्नाङ्कित कार्य करनेके लिए तत्पर हुए ॥२॥ कोई मण्डल धनानेके लिए बड़े आदरसे पाँच रङ्गके चूर्ण पीसने लगा, तो नाना प्रकारकी रचना करनेमे निपुण कोई मालाएँ गूँथने लगा ॥३॥ कोई जलको सुगन्धित करने लगा, कोई पृथिवीको सींचने लगा, कोई नाना प्रकारके उत्कृष्ट सुगन्धित पदार्थ पीसने लगा ॥४॥ कोई अत्यन्त सुन्दर बस्त्रोंसे जिनमन्दिरके द्वारकी शोभा करने लगा और कोई नाना धातुओंके रससे दीवारोंको अलंकृत करने लगा ॥५॥ इस प्रकार उत्कृष्ट भक्तिको धारण करनेवाले एवं आनन्दसे परिपूर्ण भक्तजनोने जिनेन्द्रदेवकी पूजा कर उत्तम पुण्यका संचय किया ॥६॥

तदनन्तर सब प्रकारकी उत्तमोत्तम सामग्रियोंको एकत्र कर राजा दशरथने जिसमे तुरहीका विशाल शब्द हो रहा था ऐसा जिनेन्द्र भगवान्का अभिषेक किया ॥७॥ आठ दिनका उपवास कर उत्कृष्ट अभिषेक किया तथा सहज अर्थात् स्वाभाविक और कृत्रिम अर्थात् स्पर्ण रजत आदिसे बनाये हुए पुष्पोसे महापूजा की ॥८॥ जिस प्रकार इन्द्र देवोंके साथ नन्दीश्वर द्वीपमे जिनेन्द्रपूजा करता है उसी प्रकार राजा दशरथने भी सब परिवारके साथ जिनेन्द्रपूजा की ॥९॥ तदनन्तर जब रानियों घर पहुँच गईं तब बुद्धिमान राजा दशरथने सबके लिए महा पवित्र, शान्तिकारक गन्धोदक पहुँचाया ॥१०॥ सो तीन रानियोंके लिए तो वह गन्धोदक तरुण स्त्रियों ले गईं इसलिये जल्दी पहुँच गया और उन्होंने पापको नष्ट करनेवाला वह गन्धोदक शीघ्र ही बड़ी श्रद्धासे मस्तकपर धारण कर लिया ॥११॥ परन्तु सुप्रभाके लिए बृद्ध कञ्चुकीके हाथ भेजा था इसलिये उसे शीघ्र नहीं मिला अतः वह अत्यधिक क्रोध और शोकको प्राप्त हुई ॥१२॥ वह विचार करने लगी कि राजाकी यह बुद्धि ठीक नहीं है जिससे उन्होंने मुझे

को वात्र नृपतेर्दोषः प्रायः पुण्यं पुरा मया । नार्जितं येन सम्प्राप्ता^१ निकारमिमीदृशम् ॥१४॥
 पुण्यवत्य इमाः श्लाघ्या महासौभाग्यसंयुताः । पूतं यासां जिनैर्द्राम्बु ग्रीत्या ग्रहितमुत्तमम् ॥१५॥
 अपमानेन दग्धस्य हृदयस्यास्य मेऽञ्जुना । शरणं मरणं मन्ये तापः शाम्यति नान्यथा ॥१६॥
^२विशाखसंज्ञमाहूय भाण्डाग्निकमेककम् । जगाद भद्र नाख्येयं त्वयेदं वस्तु कस्यचित् ॥१७॥
 विप्रेणात्यन्तपरमं मम जातं प्रयोजनम् । तदानय द्रुतं भक्तिर्मयि चेत्तव विद्यते ॥१८॥
 गत्वा स यावदन्विष्यंश्चिरयत्नतिशंकितः । तावत्तत्पगृह गत्वा सातिष्ठत् सस्तगात्रिका ॥१९॥
 नृपतिश्चागतो वीक्ष्य प्रियास्तित्तस्तया विना । समन्विष्यागमत्तस्याः समीपं त्वरितक्रमः ॥२०॥
 अपश्यच्च मनश्चौरीमश्रुकच्छत्रविग्रहाम् । अनादरेण सत्तत्त्वे शक्त्यदिमिव स्थिताम् ॥२१॥
 गृहाण तदिदं^३ देवि चवेदमित्यवदच्च सः । प्रेष्यो दशरथश्चैतं देशं प्राप्याश्रणोद् ध्वनिम् ॥२२॥
 हा देवि किमिदं मुग्धे प्रारब्धमिति च ब्रुवन् । स निराकरोद्^४ भुजिष्यन्तं तत्तत्त्वे चोपविष्टवान् ॥२३॥
 राजानमागतं ज्ञात्वा सहसा सन्नपोथिता । चित्ताबुपविचिन्तन्ती कान्तेनाङ्गे निवेशिता ॥२४॥
 अवाचि च प्रिये कस्मात् कोपं प्राप्ता त्वमीदृशम् । सर्वतो दयिते येन जीवितेऽप्यसि निस्पृहा ॥२५॥
 सर्वतो मरणं दुःखमन्यस्माद्दुःखतः परम् । प्रतिकारस्तु यद्यस्य तद्दुःखं वद कौदृशम् ॥२६॥
 त्वं मे हृदयसर्वस्वं दयिते वद कारणम् । चणेनापनय^५ यस्य करिष्यामि वरानने ॥२७॥
 श्रुत वेत्ति जिनैर्द्राणां सदसद्गतिकारणम् । तथापि मतमीदृक् ते विक्षोपं ध्वान्तमुत्तमम् ॥२८॥

गन्धोदक भेजकर सम्मानित नहीं किया ॥१३॥ अथवा इससे राजाका क्या दोष है ? प्रायः-
 कर मैंने पूर्व भवसे पुण्यका संचय नहीं किया होगा जिससे मैं ऐसे तिरस्कारको प्राप्त हुई हूँ ॥१४॥
 ये तीनों पुण्यवती तथा महा सौभाग्यसे सम्पन्न हैं जिनके लिए राजाने प्रेमपूर्वक पवित्र एवं
 उत्तम गन्धोदक भेजा है ॥१५॥ अपमानसे जले हुए मेरे इस हृदयके लिए इस समय मरण ही
 शरण हो सकता है ऐसा मैं मानती हूँ । अन्य प्रकारसे मेरा सन्ताप शान्त नहीं हो
 सकता ॥१६॥ यह विचार कर उसने विशाख नामक एक भाण्डारीसे कहा कि हे भद्र ! तुम यह
 बात किसीसे कहना नहीं ॥१७॥ मुझे विपकी अत्यन्त आवश्यकता आ पड़ी है । इसलिये यदि
 तेरी मुझसे भक्ति है तो शीघ्र ही ला दे ॥१८॥ विषके नामसे अत्यन्त शक्ति होता हुआ भाण्डारी
 उसे खोजता हुआ जब तक कुछ विलम्ब करता है तबतक वह शयनगृहमें जाकर तथा शरीर
 को शिथिल कर पड़ रही ॥१९॥ इतनेमें ही राजा आ गये और उसके बिना तीन प्रियाओंको
 देखकर खोज करते हुए शीघ्र ही उसके समीप जा पहुँचे ॥२०॥ उन्होंने देखा कि मनको चुराने-
 वाली सुप्रभा वस्त्रसे शरीर ढँककर शय्यापर अनादरसे इन्द्रधनुषके समान पड़ी है ॥२१॥
 इसी समय उस भाण्डारीने आकर कहा कि हे देवि ! यह विष लो । भाण्डारीके इस शब्दको
 वहाँ जाकर राजाने सुन लिया ॥२२॥ सुनते ही राजाने कहा कि हे देवि ! यह क्या है ? मूर्ख !
 यह क्या प्रारम्भ कर रक्खा है ? ऐसा कहते हुए राजाने उस भाण्डारीको वहाँसे दूर हटाया
 और स्वयं सुप्रभाकी शय्यापर बैठ गये ॥२३॥ राजाको आया जान वह लजाती हुई सहसा
 उठी और पृथिवीपर बैठना चाहती थी कि उन्होंने उसे गोदमें बैठा लिया ॥२४॥ राजाने कहा
 कि प्रिये ! तुम इस प्रकारके क्रोधको क्यों प्राप्त हुई हो जिससे कि सबसे अधिक प्रिय अपने
 जीवनसे भी निस्पृह हो रही हो ॥२५॥ मरणका दुःख सब दुःखोंसे अधिक दुःख है । सो जिस
 अन्य दुःखसे दुःखी होकर तुमने मरणको उसका प्रतिकार बनाया है वह दुःख कैसा है यह
 तो बताओ ॥२६॥ हे दयिते ! तुम मेरे हृदयकी सर्वस्व हो, अतः हे समुखि ! शीघ्र ही वह कारण
 बताओ जिससे मैं उसका प्रतिकार कर सकूँ ॥२७॥ सुगति और दुर्गतिके कारणोंका निरूपण करने-

प्रसादं देवि कोऽद्यापि कोपस्यावसरस्तव । प्रसादं च निपर्यन्तं प्रकोपा हि महास्त्रियः ॥२६॥
 तयोक्तं नाथ क' कोपस्त्वयि मे दुःखमीदृशम् । समुत्पन्नं न यद्याति शान्तिं पञ्चतया विना ॥३०॥
 देवि तत्कतरदुःखमित्युक्तैवमभाषत । शान्त्यम्बुदानमन्यासां मम नेति कुतो वद ॥३१॥
 दृष्टेन केन कार्येण हीनाहं विदिता त्वया । यद्वञ्चितपूर्वास्मि वञ्चिता पण्डिताधुना ॥३२॥
 यावदेवं वदत्येषा तावदायाति कञ्चुकी । देवि जैनाम्बु नाथेन तुर्यं दत्तमिति ब्रुवन् ॥३३॥
 अत्रान्तरे प्रियाः प्राप्ता इतरास्तामिदं जगुः । अयि मुग्धे प्रसादस्य स्थाने प्राप्तासि किं रूपा ॥३४॥
 पश्यास्माकं क्षुण्णसाभिर्दासीभिर्जलमाहृतम् । वरिष्ठेन पवित्रेण तव कञ्चुकिनामुना ॥३५॥
 ईदृशो नाम नाथस्य सम्प्रीतिर्भवती प्रति । यतोऽयं जनितो भेदः किमकाण्डे^१ प्रकुप्यसि ॥३६॥
 प्रसीद दयितव्यास्य लघ्नस्यैव प्रयत्नतः । प्रणयादपराधेऽपि ननु तुप्यन्ति योषितः ॥३७॥
 दयिते क्रियते यावत्कोपो दारुणमानसे । तावत्संसारसौख्यस्य विघ्नं जानीहि शोभने ॥३८॥
 विपादयितुमस्माकमात्मानमुचितं ननु । किं त्वन्न जिनचन्द्राणां^२ वारिणा नः प्रयोजनम् ॥३९॥
 सपत्नीभिरपि प्रीतमिति सान्त्वितया तथा । चक्रे शान्त्युदकं मूर्ध्नि रोमाञ्चाञ्छितगान्धवा ॥४०॥
 ततः प्रकुपितोऽवोचद् राजा कञ्चुकिनं तकम् । व्याख्येयः क्व नु ते जातो वदापसदं^३ कञ्चुकिन् ॥४१॥
 ततो भयाद्विशेषेण कम्पिताखिलविग्रहः । कञ्चुकी कथमप्युच्ये^४ चित्तिजानुशिराक्षलिः ॥४२॥

वाले जिनशास्त्रको तुम जानती हो फिर भी तुम्हारी ऐसी बुद्धि क्यों हो गई ? इस प्रगाढ़ अन्धकारस्वरूप क्रोधको धिक्कार हो ॥२८॥ हे देवि ! प्रसन्न होओ । इस समय भी क्या तुम्हारे क्रोधका कोई अवसर है क्योंकि जो महास्त्रियों होती हैं उनका क्रोध प्रसाद शब्द सुनने तक ही रहता है ॥२९॥

सुप्रभाने कहा कि हे नाथ ! आप पर मेरा क्या क्रोध हो सकता है ? पर मुझे ऐसा दुःख उपपन्न हुआ है कि जो मरणके बिना शान्त नहीं हो सकता ॥३०॥ राजाने पूछा कि हे देवि ! वह कौन-सा दुःख है ? इसके उत्तरमें सुप्रभाने कहा कि आपने अन्य रानियोंके लिए तो गन्धोदक भेजा पर मुझे क्यों नहीं भेजा सो कहिए ? ॥३१॥ आपने ऐसा कौन-सा कार्य देखा है जिससे मुझे हीन समझ लिया है । हे सुविज्ञ ! जिसे पहले कभी धोखा नहीं दिया उसे आज क्यों धोखा दिया गया ? ॥३२॥ सुप्रभा जब तक यह सब कह रही थी कि तब तक वृद्ध कञ्चुकी आकर यह कहने लगा कि हे देवि ! राजाने तुम्हें यह गन्धोदक दिया है ॥३३॥ इसी बीचमें दूसरी रानियों आकर उससे कहने लगीं कि अरी भोली ! तू प्रसन्नताके स्थानको प्राप्त है फिर क्या कह रही है ? ॥३४॥ देख, हम लोगोंके लिए तो निन्दनीय दासियों गन्धोदक लाई है पर तेरे लिए यह श्रेष्ठ एवं पवित्र कञ्चुकी लाया है ॥३५॥ तेरे प्रति स्वामी की ऐसी उत्तम प्रीति है इसीसे यह भेद हुआ है फिर असमयमें क्यों कुपित हो रही है ? ॥३६॥ फिर स्वामी तेरे पीछे वड़े प्रयत्नसे लग रहे हैं । अतः इनपर प्रसन्न हो क्योंकि स्नेहके कारण स्त्रियों अपराध होनेपर भी सन्तुष्ट ही रहती हैं ॥३७॥ हे कठोरहृदये ! जब तक पतिपर क्रोध किया जाता है तब तक हे शोभने ! सांसारिक सुखमें विघ्न ही जानना चाहिए ॥३८॥ वास्तवमें तो हमलोगोंका मरना उचित था पर हमें तो गन्धोदकसे प्रयोजन था । इसलिए सब अपमान सहन कर लिया ॥३९॥ इस प्रकार सपत्नियोंने भी जब उसे सान्त्वना दी तब उसका शरीर रोमाञ्चसे सुरोभित हो गया और उसने गन्धोदक मस्तकपर धारण किया ॥४०॥

तदनन्तर राजाने कुपित होकर उस कञ्चुकीसे कहा कि हे नीच कञ्चुकी ! चत्ता तुम्हें यह विलम्ब कहाँ हुआ ? ॥४१॥ भयसे जिसका समस्त शरीर विशेषकर कर्णने लगा था ऐसा

हृदये स्थापिताः कृच्छ्रादान्तीता वक्त्रगोचरम् । ओष्ठे प्रणिहिता वर्णा व्यलीन्तेऽस्य भूरिशः ॥४३॥

रसखल्कारं मुहुः कुर्वन् स्फुरयन्नधरो^३ मुहुः । हृदयं सम्पृशन् कृच्छ्रादुपनीतेन पाणिना ॥४४॥

परचान्मस्तकभागस्थश्चन्द्रांशुसितमूर्द्धजः । मन्दवाताहतश्चेत्चामरोपमकूर्चकः ॥४५॥

मत्तिकाच्छदनच्छातस्वस्त्रितरोहितकैकंसः । धवलभ्रूलिच्छन्नशोणप्रमनरीक्षणः ॥४६॥

अभिलक्ष्यशिराजालसंवेष्टितचलत्तनुः । असम्पूरितपुस्ताभः कृच्छ्राद्वातोऽपि धारयन् ॥४७॥

हिमाहत इवात्यर्थं कपोलौ कम्पयन् श्लथौ । विवक्षया मुहुर्बिह्वौ स्थानानि स्वलितां नयन् ॥४८॥

अप्येकाक्षरनिष्पत्तिं मन्यमानो महोत्सवम् । वर्णान्तराभिसंधानाद् वर्णमन्यं समुच्चरन् ॥४९॥

संधानवर्जितान् वर्णान् परमश्रमकारिणः । कण्टकानिव कृच्छ्रेण मुमोच परिजर्जरान् ॥५०॥

जराधीनस्य मे नाथ किमागो भृत्यवत्सल । सम्प्राप्तोऽसि यतः कोपं देव विज्ञानभूषण ॥५१॥

पुरा करिकराकाशुजं कर्कशमुन्नतम् । पीनोत्तुङ्गं महोरस्कमालनसदृशोरकम् ॥५२॥

आलोन् मम वपुः शैलराजकूटसमाकृति । कर्मणामिति चित्राणां कारणं परमोदयम् ॥५३॥

अभूतां चूर्णने देव यत्की^४ हस्तिकपाटयोः । करौ पाण्यिप्रहारश्च पर्वतस्यापि भेदकः ॥५४॥

उच्चावचां किति वेगाद् पुराहं परिलंघयन् । राजहंस इवावाते नाथ स्थानमभीप्सितम् ॥५५॥

आसीत् दृष्टेरवष्टमस्तादृशो मम पार्थिव । आमन्येऽपि चित्तेरीशं यादृशेन तृणोपमम् ॥५६॥

कञ्चुकी पृथिवीपर घुटने और शिरपर अञ्जलि रखकर किसी तरह बोला ॥४२॥ उसके हृदय में जो अक्षर थे वे मुख तक बढ़ी कठिनाईसे आये और जो ओठोपर रखे गये थे वे बार-बार वहीं के वहीं घिलीन हो गये ॥४३॥ वह बार-बार खकारता था, बार-बार ओठ चलाता था, और बढ़ी कठिनाईसे उठकर पांस ले जाये गये हाथसे हृदयका स्पर्श करता था ॥४४॥ उसके मस्तकके पिछले भागमें चन्द्रमाकी किरणोंके समान सफेद बाल स्थित थे तथा सफेद चमरके समान उसकी दाढ़ीके बाल मन्द-मन्द वायुसे हिल रहे थे ॥४५॥ मक्खीके पङ्क्तके समान पतली त्वचासे उसकी हड्डियाँ ढँकी हुई थीं, उसके लाल-लाल नेत्र सफेद-सफेद भ्रुकुटियोंकी बलसे आच्छादित थे ॥४६॥ उसका चञ्चल शरीर स्पष्ट दिखाई देनेवाली नसोंके समूहसे वेष्टित था, मिट्टीके अधबने खिलौनेके समान उसकी आभा थी । वह वस्त्र भी बढ़ी कठिनाईसे धारण कर रहा था, हिमसे ताड़ित हुएके समान दोनों शिथिल कपोलोंको कम्पित कर रहा था, बोलनेकी इच्छासे लड़खड़ाती जिह्वाको तालु आदि स्थानोपर बढ़ी कठिनाईसे ले जा रहा था, यदि एक अक्षरका भी उच्चारण कर लेता था तो उसे महान् उत्सव मानता था । कुछ वर्ण-बोलना चाहता था पर उसके बदले कुछ दूसरे ही वर्ण बोल जाता था, जिनके बोलनेका विचार ही नहीं था ऐसे बहुत भारी श्रमको करनेवाले दूटे-फूटे वर्णोंको वह जीर्ण-शीर्ण कोंटेके समान बढ़ी कठिनाईसे छोड़ता था अर्थात् उसका उच्चारण करता था ॥४७-४८॥ हे भृत्यवत्सल, स्वामिन् ! मुझ बुढ़ेका क्या अपराध है ? जिससे कि विज्ञानरूपी आभूषणको धारण करनेवाले हे देव ! आप कौधको प्राप्त हुए हो ॥४९॥ पहले मेरे शरीरकी सुजाँह हाथीकी सूँड़के समान थी, शरीर अत्यन्त कठोर और ऊँचा था । सीना विशाल था, जङ्घाएँ आलान अर्थात् हाथी बाँधनेके खम्भेके समान थीं, मेरा यह शरीर सुमेरुके शिखरके समान आकृति वाला था, तथा अनेक अद्भुत कार्योंका सशक्त कारण था ॥५०-५१॥ हे देव ! हमारे ये हाथ पहले सुदृढ़ किवाड़ोंके चूर्ण करनेमें समर्थ थे, हमारे पैरकी ठोकर पर्वतके भी टुकड़े कर डालती थी, ऊँची-नीची भूमिको मैं वेगसे लाँघ जाता था, हे स्वामिन् ! मैं राजहंस पक्षीके समान मन-चाहे स्थानको शीघ्र ही प्राप्त हो जाता था ॥५४-५५॥ हे राजन् ! मेरी दृष्टिमें इतना बल था कि

अङ्गनालनदृष्टीनां मनसां स महास्थिरम् । आलानमेतदासीन्मे शरीरं चारुविभ्रमम् ॥५७॥
 लालितं परमैर्भोगैः प्रसादेन पितुस्तव । विंसधटितमेतन्मे कुमित्रमिव साम्प्रतम् ॥५८॥
 अथत यः पुरा शक्तिं रिपुदारणकारिणीम् । करेण यष्टिमालम्ब्य तेन आभ्यामि साम्प्रतम् ॥५९॥
 विक्रान्तपुरुषाकृष्टशरासनसमं मम । पृष्ठास्थि स्थितमाक्रान्ते मूर्ध्नि मृत्योरिवोत्रिणा ॥६०॥
 दन्तस्थानभवा वर्णाश्रिरं नवापि गता मम । ऊष्मवर्णोष्मणा तापमशका इव सेवितुम् ॥६१॥
 आलम्ब्ये यदि नो यष्टिमेतां प्राणगरीयसीम् । क्षितौ पतेत्ततः पक्वमिदं हतशरीरकम् ॥६२॥
 वलीनां वर्तते वृद्धिस्तदाहस्य परिष्वयः । राजन् स्वसिम्नि देहेन यदेतेन तदद्भुतम् ॥६३॥
 'अद्यध्यानमुं कायं जरया जर्जरीकृतम् । नाथ धर्तुं न शक्नोमि बाह्ये वस्तुनि का कथा ॥६४॥
 नितान्तपटुताभाक्षि हृषीकाणि पुरा मम । संप्रत्युद्देशमात्रेण स्थितावि जडचेतसः ॥६५॥
 पद्ममन्यत्र यच्छामि पतत्यन्यत्र दुर्घटम् । श्याममेवाखिलं दृष्ट्वा पश्यामि धरणीतलम् ॥६६॥
 गोत्रक्रमसमायातमिदं राजकुलं मम । यतः शक्नोमि न त्यक्तुमपि प्राप्येदृशीं दशाम् ॥६७॥
 पक्व फलमिवैतन्मे शरीरं कापि चासरे । नेष्यत्याहारतां मृत्युर्मर्मरच्छद्बोपमाम् ॥६८॥
 न तथासन्नमृत्योर्मै स्वामिन् संजायते अयम् । अवच्छरणसंसेवाविरहाद् भाविनो यथा ॥६९॥
 व्याचेपो मे कुतः कश्चिद्वधतस्तत्तुमीदृशीम् । भवदाज्ञा प्रतीक्यैव यस्य जीवितकारणम् ॥७०॥

जिससे मैं राजाको भी ठण्ठके समान तुच्छ समझता था ॥६६॥ अत्यन्त स्थविर और सुन्दर विलाससे युक्त मेरा यह शरीर बीजनोंकी दृष्टि और मनको बांधनेके लिए आलानके समान था ॥६७॥ आपके पिताके प्रसादसे मैंने इस शरीरका उत्तमोत्तम भोगोंसे लाड़-प्यार किया था पर इस समय कुमित्रके समान यह विषट गया है ॥६८॥ मेरा जो हाथ पहले शत्रुओंको विदारण करनेकी शक्ति रखता था अब उसी हाथसे लाठी पकड़कर चलता हूँ ॥६९॥ मेरी पीठकी इड्डी शूरवीर मनुष्यके द्वारा खींचे हुए धनुषके समान मुक्त गई है और मेरा शिर यमराजके पैरसे आक्रान्त हुएके समान नष्ट हो गया है ॥६०॥ दाँतोंके स्थानसे उच्चरित होनेवाले मेरे वर्ण (लु तवर्ग ल और स) कहीं चले गये हैं सो ऐसा जान पड़ता है मानो ऊष्मवर्णों (श ष स ह) की ऊष्मा अर्थात् गरमीसे उत्पन्न सन्तापको सहनेमें असमर्थ होकर ही कहीं चले गये हैं ॥६१॥ यदि मैं प्राणोंसे भी अधिक प्यारी इस लाठीका सहारा न लेऊँ तो यह पका हुआ अधम शरीर पृथ्वीपर गिर जावे ॥६२॥ शरीरमें बलि अर्थात् सिक्किनोकी वृद्धि हो रही है और उस्ताहका हास हो रहा है । हे राजन् ! इस शरीरसे मैं साँस ले रहा हूँ यही आश्चर्यकी बात है ॥६३॥ हे नाथ ! आज-कलमें नष्ट हो जानेवाले इस जराजर्जरित शरीरको ही धारण करनेके लिए मैं समर्थ नहीं हूँ फिर दूसरी बाह्य वस्तुकी तो क्या ही क्या है ? ॥६४॥ पहले मेरी इन्द्रियों अत्यन्त सामर्थ्यको प्राप्त थीं पर इस समय नाममात्रकी ही स्थित है मेरा मन भी जड़रूप हो गया है ॥६५॥ पर अन्य स्थानपर रखता हूँ पर सम्भल नहीं सकनेके कारण अन्य स्थानपर जा पड़ता है । मैं समस्त पृथ्वीतलको अपनी दृष्टिसे काला-ही-काला देखता हूँ ॥६६॥ चूँकि यह राजकुल मेरी वंश परम्परासे चला आ रहा है इसलिए ऐसी दशाको प्राप्त होकर भी इसे छोड़नेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥६७॥ मेरा यह शरीर पके हुए फलके समान है सो यमराज सूखे पत्रके समान इसे अपना आहार बना लेगा ॥६८॥ हे स्वामिन् ! मुझे निकटवर्ती मृत्युसे वैसा भय नहीं उत्पन्न होता है जैसा कि भविष्यमें होनेवाली आपके चरणोंकी सेवाके अभावसे हो रहा है ॥६९॥ आपकी सम्माननीय आज्ञा ही जिसके जीवित रहनेका कारण है ऐसे इस शरीरको धारण करते हुए मुझे विलम्ब अथवा कार्यान्तरमें

स त्वं नाथ जराधीनं मम ज्ञात्वा शरीरकम् । कोपमहंसि नो कर्तुं धीर धत्स्व प्रसन्नताम् ॥७१॥
 निशम्य तद्वचो राजा गण्डं कुण्डलमण्डितम् । वामे करतले न्यस्य चिन्तामेवमुपागमत् ॥७२॥
 जलबुद्बुदनिस्तार कष्टमेतच्छरीरकम् । सन्ध्याप्रकाशसकाशं यौवनं बहुविभ्रमम् ॥७३॥
 सौदामिनीत्वरस्यास्य कृते देहस्य मानवाः । आरम्भन्ते न किं कृत्यं नितान्तं दुःखसाधनम् ॥७४॥
 अलिप्तकाङ्क्षनापाङ्गमङ्गलुल्याः । अतारकाः । भोगिभोगसमाभोगास्तापोपचयकारिणः ॥७५॥
 विपयेषु यदायत्तं दुःप्रापेषु विनाशिषु । दुःखमेतद्विमुद्धानां सुखत्वेनावभासते ॥७६॥
 आपातरमणीयानि सुखानि विषयादयः । किंपाकफलतुल्यानि चित्र प्रार्थयते जनः ॥७७॥
 पुण्यवन्तो महोत्साहाः प्रबोधं परमं गताः । विपवद् विषयान् दृष्ट्वा ये तपस्यन्ति सज्जनाः ॥७८॥
 कदा नु विषयस्यैकत्वा निर्गतः स्नेहचारकात् । आचरिष्यामि जैनेन्द्रं तपो निर्वृत्तिकारणम् ॥७९॥
 सुखेन पालिता क्षोणी मुक्ता भोगा यथोचिताः । विकान्ता जनिता पुत्राः किमद्यापि प्रतीक्ष्यते^१ ॥८०॥
 अन्वयव्रतमस्माकमिदं यत्सुनवे श्रियम् । दत्त्वा संवेगिनो धीराः प्रविशन्ति तपोवनम् ॥८१॥
 चिन्तितित्वाप्यसावेवं राजा कर्मानुभावतः । भोगेषु शिथिलासक्तिर्गृह एव रतिं ययौ ॥८२॥
 यः प्रासज्यं यदा येन यत्र यावद्यतोऽपि वा । तस्याप्यते तदा तेन तत्र तावद्यतो ध्रुवम् ॥८३॥
 कियत्पि ततोऽतीते काले भगवत्सुन्दर । पर्यटन् विधिना क्षोणीसङ्केतं महता वृतः ॥८४॥

आसङ्ग कैसे हो सकता है ? ॥७०॥ इसलिये हे नाथ ! मेरे शरीरको जराके आधीन जानकर आप क्रोध करनेके योग्य नहीं है । हे धीर ! प्रसन्नताको धारण करो ॥७१॥

कञ्जुकीके वचन सुनकर राजा कुण्डलसे सुशोभित कपोलको वाम करतलपर रखकर इस प्रकार विचार करने लगे ॥७२॥ कि अहो बड़े कष्टकी बात है कि यह अधम शरीर पानीके बबूलेके समान निःसार है और अनेक विभ्रमों—विलासोंसे भरा यह यौवन सन्ध्याके प्रकाशके समान भङ्गुर है ॥७३॥ बिजलीके समान नष्ट हो जानेवाले इस शरीरके पीछे मनुष्य न जाने अत्यन्त दुःखके कारणभूत क्या-क्या कार्य प्रारम्भ नहीं करते हैं ? ॥७४॥ ये भोग अत्यन्त मत्त स्त्रीके कटाक्षोंके समान ठगनेवाले हैं, सोंपके फलके समान भयङ्कर हैं और सन्तापकी वृद्धि करने वाले हैं ॥७५॥ कठिनाईसे प्राप्त होने योग्य विनाशी विषयोंमें जो दुःख प्राप्त होता है वह मूर्ख प्राणियोंके लिए सुख जान पड़ता है ॥७६॥ ये जो विषयादिक हैं वे प्रारम्भमें ही मनोहर सुख रूप जान पड़ते हैं फिर भी आश्चर्य है कि लोग किन्पाक फलके समान इन सुखोकी चाह रखते हैं ॥७७॥ जो सज्जन इन विषयोंको विषके समान देखकर तपस्या करते हैं वे पुण्यात्मा महोत्साहवान् तथा परम प्रबोधको प्राप्त हैं ऐसा समझना चाहिए ॥७८॥ मैं कब इन विषयोंको छोड़ कर तथा स्नेह रूपी कारागृहसे छूटकर मोक्षके कारणभूत जिनेन्द्र-प्रोक्त तपका आचरण करूँगा ॥७९॥ सुखसे पृथिवीका पालन किया, यथायोग्य भोग भोगे, और शूरवीर पुत्र उत्पन्न किये फिर अब किस बातकी प्रतीक्षा की जा रही है ॥८०॥ यह हमारा वंशपरम्परागत व्रत है कि हमारे धीर वीर वंशज विरक्त हो पुत्रके लिए राज्यलक्ष्मी सोंपकर तपोवनमें प्रवेश कर जाते हैं ॥८१॥ राजा दशरथने इस प्रकार विचार भी किया और भोगोंमें आसक्ति कुछ शिथिल भी हुई तो भी कर्मोंके प्रभावसे वे घरमें ही प्रीतिको प्राप्त होते रहे अर्थात् गृहत्याग करनेके लिए समर्थ नहीं हो सके ॥८२॥ सो ठीक ही है क्योंकि जिस समय जहाँ जिससे जो और जितना कार्य होना होता है उस समय वहाँ उससे वह और उत्तना ही कार्य प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है ॥८३॥

अथानन्तर गौतमस्वामी कहते हैं कि हे भगवद् देशके आभूषण ! कितना ही काल

सर्वभूतहितो नाम सर्वभूतहितो मुनिः । नगरीं तां समायासीन्मनःपर्यवेदेकः ॥८५॥
 'सरस्वाश्च तदे कालं श्रान्तं सङ्गमविष्टिपत् । पितेव पालयन् न्यस्तकायवाहमानसक्रियः ॥८६॥
 प्राग्भागेषु स्थिताः केचिद् गुहास्वन्ये तपस्विनः । केचिद् विविक्तेगेहेषु केचिज्जैन्द्रवेशमसु ॥८७॥
 नगानां कोदरेष्वन्ये यथाशक्तिसमुद्यताः । तपांसि चक्रुराचार्यादधिगम्यानुमोदनाम् ॥८८॥
 आचार्यस्तु चिकित्सेषु पुर्या उत्तरपश्चिमाय । तपःसमुचितक्षेत्रं विशालमतिमुन्दरम् ॥८९॥
 उद्यानं सुमहावृक्षं सयूथ इव वारणः । प्रविवेशात्मदशमो महेन्द्रोदयकीर्तनम् ॥९०॥
 तस्मिन् शिलातले रम्ये विपुले निर्मले समे । पशूनामङ्गनानां च पण्डुकानां च दुर्गमे ॥९१॥
 द्वेपिलोकविमुक्तैः सौ सूचमप्राणिविवर्जिते । दूरावष्टमिशालस्य स्थितो नागतरोधः ॥९२॥
 मार्तण्डमण्डलच्छायां गर्भारः प्रियदर्शनः । वर्षाः क्षपयितुं तस्यौ कर्माणि च महामनाः ॥९३॥
 सम्प्राप्तश्च महाकालः प्रवासिजनमैरवः । प्रस्फुरद्विद्युदुद्रोऽष्टं क्रूरधाराधरध्वनिः ॥९४॥
 तर्जयन्निव लोकस्य कृततापं विवाकरम् । भयात् पलायित कापि स्थूलधारान्धकरतः ॥९५॥
 जातसुर्वातलं सन्यक् कम्बुकेन कृतावृत्तिः । बद्धन्ते सुमहानद्यो वीचिपातितरोधः ॥९६॥
 जायते प्रासक्पावां चितोद्भ्रान्तिः प्रवासिनाम् । असिधाराप्रतं जैनो जनोऽसक्तं निषेवते ॥९७॥

व्यतीत होनेपर बड़े भारी संघसे आवृत, सर्व प्राणियोंका हित करनेवाले, तथा मनःपर्यय ज्ञानके धारक सर्वभूतहित नामा मुनि, विधिपूर्वक पृथिवीमें विहार करते हुए अयोध्या नगरीमें आये ॥८४-८५॥ जिनके मन वचन कायकी चेष्टा समीचीन थी और जो पिताकी तरह संघका पालन करते थे ऐसे उन मुनिराजने अपने थके हुए संघको सरयू नदीके किनारे ठहराया ॥८६॥ संघके कितने ही मुनि, आचार्य महाराजकी आज्ञा प्राप्त कर वनके सघन प्रदेशोंमें, कितने ही गुफाओंमें, कितने ही शून्य गुहोंमें, कितने ही जिनमन्दिरोंमें और कितने ही वृक्षोंकी कोटरोंमें ठहरकर यथाशक्ति तपश्चरण करने लगे ॥८७-८८॥ तथा आचार्य एकान्त स्थानके अभिलाषी थे इसलिये उन्होंने नगरीकी उत्तर पश्चिम दिशा अर्थात् वायव्य कोणमें जो महेन्द्रोदय नामका उद्यान था उसमें यूथसहित गजराजके समान प्रवेश किया । उस महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें तपके योग्य अनेक स्थान थे, तथा वह विशाल, अत्यन्त सुन्दर और अनेक बड़े-बड़े वृक्षोंसे सहित था । आचार्यके साथ अधिक भीड़ नहीं थी । अपने आपको मिलाकर कुल दश ही मुनिराज थे । वह उद्यान पशुओं, स्त्रियों और नपुंसकोंके लिए दुर्गम था, द्वेपी मनुष्योंसे रहित था तथा सूक्ष्म जन्तुओंसे शून्य था । ऐसे उस उद्यानमें जिसकी शाखाएँ दूर-दूर तक फैल रही थी ऐसे एक नाग वृक्षके नीचे सुन्दर, विशाल, निर्मल एवं समान शिलातल पर विराजमान हुए ॥८९-९०॥ आचार्य महाराज सूर्यविम्बके समान वैदीप्यमान, गर्भार, प्रियदर्शन और उदारहृदय थे तथा कर्मोंका क्षय करनेके लिए वर्षायोग लेकर वहाँ विराजमान हुए थे ॥९१॥

तदनन्तर जो विदेशमें जाने वाले मनुष्योंको भय उत्पन्न करने वाला था, चमकती हुई विजलीसे उग्र था तथा जिसमें आठों दिशाओंके सेधोंकी कठोर गर्जना हो रही थी ऐसा वर्षाकाल आ पहुँचा । वह वर्षाकाल ऐसा जान पड़ता था मानो लोगोंकी संताप पहुँचाने वाले सूर्यको डोंट हो रहा हो और बड़ी मोटी धाराओंके अन्धकारसे भयभीत हो कहीं भाग गया हो ॥९२-९५॥ पृथिवीतल ऐसा दिखाई देने लगा मानो उसने अच्छी तरह कञ्चुक ही धारण कर रक्खी हो । तरङ्गोंसे तटोंको गिरानेवाली बड़ी-बड़ी नदियाँ बहने लगीं ॥९६॥ और जिन्हें कँप-कँपी छूट रही थी ऐसे प्रवासी मनुष्योंके चित्तमें भ्रान्ति उत्पन्न होने लगी । ऐसे वर्षाकालमें जैनी लोग निरन्तर

१ सरयूनद्याः । सरस्वाश्च म० । २ प्राग्भागेषु म० । ३ तपःसमुचित क्षेत्रं म०, क० । ४ कीर्तितं व० । ५. नपुंसकानाम् । ६. मण्डलोच्छाया गर्भारप्रिय ख० । ७. दुर्गम म० ।

भूरिशोऽवग्रहांश्चक्रमुनयः क्षितिगोचराः । खयानलब्धयश्चैते पान्तु त्वा मगधाधिप ॥६८॥
 अथ भेरीनिनादेन शङ्खनिस्वनशोभिना । दीपान्ते कोशलानाथो विबुद्धो^२ भस्करो यथा ॥६९॥
 ताप्रचूडाः खरं रेणुर्दम्पतीनां वियोजकाः । सारसाश्चक्रवाकाश्च सरसीषु नदीषु च ॥७०॥
 भेरीपणववीणाद्यैर्गीतैश्च सुमनोहरैः । व्यावृत्तस्यैवगेहेषु जायते विपुलो जनः ॥७१॥
 विवर्णमाननयनः सकलारुणलोचनः । विमुञ्चते जनो निद्रां प्रियामिव ह्रियान्वितः ॥७२॥
 प्रदीपाः पाण्डुरा जाता शशाङ्गश्च गतप्रभः । विकासं यान्ति पद्मानि कुसुदानि निमीलनम् ॥७३॥
 ध्वस्ता ग्रहादयः सर्वे दिवाकरमरीचिभिः । जिनप्रवचनज्ञस्य वचनैर्वादिनो यथा ॥७४॥
 एवं प्रभातसमये संपन्नैर्ज्यन्तनिर्मले । कृत्वा प्रत्यङ्गकर्माणि नमस्कृत्याचितं जिनम् ॥७५॥
 आरुह्य वांसितां भद्रां कुशापटविराजिताम् । शतैरवनिनाथानां सेव्यमानोऽमरत्विपाम् ॥७६॥
 देशे देशे नमस्कृत्वा सुनीश्रैव्याख्यास्तथा । महेंद्रोदयमुर्दाशो ययौ कुत्रोपशोभितः ॥७७॥
 विष्टपानन्दजननीविभूतितस्तस्य भूभृतः । राजन् संवत्सरेणापि शक्यं कथयितुं न सा ॥७८॥
 मुनिरायातमात्रः सन् गुणरत्नपयोनिधिः । ओन्नयोगौचरं तस्य संप्राप्तस्तत्र मण्डले ॥७९॥
 करोणेरवतीर्यासौ राजमितपरिचुद्धः । महाप्रमोदसंपूर्णो विवेशोद्यानमेदिनीम् ॥८०॥
 विन्यस्य भक्तिसम्पन्नः पादयोः कुसुमाक्षलिम् । सर्वभूतहिताचार्यं शिरसा स नमोऽकरोत्^३ ॥८१॥

खड्गधारके समान कठोर व्रत धारण करते हैं ॥६७॥ जो पृथिवी पर विहार करते थे तथा जिन्हें आकाशमे चलनेकी श्रद्धि प्राप्त हुई थी ऐसे मुनिराज उस समय अनेक प्रकारके नियम धारण करते थे । गौतमस्वामी कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! ये सब मुनिराज तुम्हारी रक्षा करें ॥६८॥

अथानन्तर प्रातःकाल होने पर शङ्खके शब्दसे सुशोभित भेरीके नादसे राजा दशरथ सूर्यके समान जागृत हुए ॥६९॥ स्त्रीपुरुषोंका वियोग करने वाले मुर्गे तथा सरोवर और नादियोंमे विद्यमान सारस और चक्रवाक पक्षी जोर-जोरसे शब्द करने लगे ॥७०॥ भेरी, पणव तथा वीणा आदिके मनोहर गीतोंसे आकर्षित हो बहुतेसे मनुष्य जिनमन्दिरोंमें उपस्थित होने लगे ॥७१॥ जिस प्रकार लज्जासे युक्त मनुष्य प्रियाको छोड़ता है इसी प्रकार जिसके नेत्र धूम रहे थे तथा समस्त नेत्र लाल-लाल हो रहे थे ऐसा मनुष्य निद्राको छोड़ रहा था ॥७२॥ दीपक पाण्डुवर्ण हो गये थे और चन्द्रमा फीका पड़ गया । कमल विकासको प्राप्त हुए और कुसुद निमीलित हो गये ॥७३॥ जिस प्रकार जिनशालके ज्ञाता मनुष्यसे वादी परास्त हो जाते हैं उसी प्रकार सूर्यकी किरणोंसे समस्त ग्रह परास्त हो गये अर्थात् छिप गये ॥७४॥ इस प्रकार अत्यन्त निर्मल प्रभात काल होनेपर राजा दशरथने शरीर-सम्बन्धी कार्य कर पूजनीय जिनैन्द्रभगवान्को नमस्कार किया । तदनन्तर मनोहर मूलसे सुशोभित हस्तिनीपर सवार हो वह मुनिराजकी बन्दनाके लिए चला । देवोके समान कान्तिको धारण करनेवाले हजार राजा उसकी सेवा कर रहे थे ॥७५-७६॥ इस प्रकार छत्रसे सुशोभित राजा दशरथ जगह-जगह मुनियों और जिनचैत्याल्लयोंको नमस्कार करता हुआ महेंद्रोदय नामा उद्यानमे पहुँचा ॥७७॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस समय राजा दशरथकी लोकको आनन्दित करनेवाली जो विभूति थी वह एक वर्षमें भी नहीं कही जा सकती है ॥७८॥ गुणरूपी रत्नोंके सागर मुनिराज जब देशमें पधारे थे तभी उसके कानोंमें यह समाचार आ पहुँचा था ॥७९॥ तदनन्तर हस्तिनीसे उतरकर अपरिमित वैभवके धारक एवं महान् हर्षसे परिपूर्ण राजाने उद्यानकी भूमिमें प्रवेश किया ॥८०॥ तत्पश्चात् भक्तिके युक्त हो चरणोंमें पुष्पाञ्जलि बिखेरकर उसने सर्वभूत आचार्यको शिरसे नमस्कार किया ॥८१॥

१. निशान्ते प्रमाते इत्यर्थः । २. विबुद्धो म० । ३. रराण, रेणुतः, रेणुः-शब्दं चक्रुः । ४. करिणीम् ।

५. नमस्करोत् (?) म० ।

ततः सिद्धान्तसबद्धामशृणोद् गुरुतः कथां । अयुयोगान्यतोतानां भाविनां च महात्मनाम् ॥११२॥
लोकं द्रव्यायुभावांश्च युगानि च यथाविधि । स्थितिं कुलकराणां च वंशाश्च बहुधागतान् ॥११३॥
पदार्थान् सर्वजीवादीन् पुराणानि च सादरम् । श्रुत्वा प्रणम्य संवेशं नगरं पार्थिवोऽविशत् ॥११४॥

मन्दाक्रान्ताच्छुन्दः

दत्त्वा स्थानं चणमवनिमृन्मंत्रिणां स चित्तीशां
कृत्वा जैनी गुणगणकथां विस्मयेवातिपूर्णः ।
अन्तर्गेहं प्रविशति तदा मज्जनादिक्रियाश्च
प्रीतश्चक्रे विपुलविभवः स प्रजापत्यमिन्धुः ॥११५॥
सम्पूर्णानां परममहसा चन्द्रक्रान्ताननानां
चक्षुश्चेतोहरणनिपुणैर्विभ्रमैर्मण्डितानाम् ।
श्रीतुल्यानां परमविनयं विभ्रतीनां प्रियाणां
पद्मालीनां रविरिव रति तत्र कुर्वन् स तस्थौ ॥११६॥
इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथवैराग्यसर्वभूतहितागमाभिधानं
नाम एकोनविंशत्तमं पर्व ॥२६॥

सिद्धान्तसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनी, अतीत अनागत महापुरुषोंके चरित सुने, लोक, द्रव्य, युग, कुलकरोकी स्थिति, अनेक वंश, जीवादिक समस्त पदार्थ और पुराणोंको बड़े आदरसे सुना । तदनन्तर संघके स्वामी सर्वभूतहित आचार्यको नमस्कार कर राजाने नगरमें वापिस प्रवेश किया ॥११२-११४॥

तदनन्तर निकटवर्ती मन्त्रियों और राजाओंसे जिनराज सम्बन्धी गुणोंकी कथा कर तथा उन्हें विद्वाकर आश्चर्यसे भरे हुए राजाने अन्तःपुरमें प्रवेश किया । वहाँ विपुल वैभव तथा प्रजापतिकी शोभा धारण करनेवाले राजाने बड़ी प्रसन्नतासे स्नानादि क्रियाएँ कीं ॥११५॥ तदनन्तर जो उत्कृष्ट कान्तिसे युक्त थीं, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखोंको धारण कर रही थीं, नेत्र और हृदयको हरनेमें निपुण विभ्रमोंसे सुशोभित थीं, लक्ष्मीके तुल्य थीं और परम विनयको धारण कर रही थीं ऐसी स्त्रियोंको, कमलिनियोंको सूर्यकी भोंति आनन्द उपजाता हुआ वह उसी अन्तःपुरमें ठहर गया ॥११६॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें राजा दशरथके वैराग्य और सर्वभूत आचार्यके आगमनका वर्णन करनेवाला उन्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२६॥

त्रिंशत्तमं पर्व

ततः कालो गतः क्वापि घनौघदमरो नृप । प्रोक्षयौ पुष्कर धौतमण्डलाग्रसमग्रम् ॥१॥
 पद्मोत्पलादिजलजपुष्पमुन्मादकृद् बभौ । साधूनां हृदयं यद्वद् बभूव विमल जलम् ॥२॥
 शरत्कालः परिप्राप्तः प्रकटं कुमुदैर्हसन् । नष्टमिन्द्रधनुर्जाता धरणी पंकवर्जिता ॥३॥
 विद्युत्संभावनायोग्यास्तूलाशिसमत्विषः । क्षणमात्रमदृश्यन्त घनलेशा बवचित्कचित् ॥४॥
 सन्ध्यालोकललामोक्षो ज्योत्स्नातिविमलाम्बरा । निशानववधूर्भाति चन्द्रचूडामणिस्तदा ॥५॥
 चक्रवाककृतच्छाया मत्तसारसनादिताः । वाप्यः पद्मवनप्राग्प्रद्राजहंसैर्विराजिरे ॥६॥
 भामण्डलकुमारस्य सीता चिन्तयतस्तु तत् । ऋतुनाश्वितमप्येवं जातमग्निसमं जगत् ॥७॥
 भरत्याकर्षिताद्भौसौ परित्यज्यान्वदा त्रपा । पितुः पुरः परं मित्रं वसन्तध्वजमवधीत् ॥८॥
 ४दीर्घसूत्रो भवानेवं परकार्येषु शीतलः^१ । गणरात्रमिदं दुःखं तस्यां मे गतचेतसः^२ ॥९॥
 उद्वेगविपुलावर्ते प्रत्याशाजलधौ मम । निमज्जनः सखे कस्मादीयते नावलम्बनम् ॥१०॥
 हृत्पातैर्ध्यानयुक्तस्य निशम्य गदित बुधाः । सर्वे गतप्रभीभूता विपादं परमं ययुः ॥११॥
 तां वीषय शोकसन्तप्तान् वारणानिव शुष्यतः । आवर्जितशिराद्योढां क्षणं भामण्डलोऽगमत् ॥१२॥

अथानन्तर मेघोके आडम्बरसे युक्त वर्षाकाल कहीं चला गया और आकाश मँजिले हुए कृपाणके समान निर्मल प्रभाका धारक हो गया ॥१॥ कमल उत्पल आदि जलमें उत्पन्न होनेवाले पुष्प कामीजनोंको उन्माद करते हुए सुशोभित होने लगे तथा जल साधुओके हृदयके समान निर्मल हो गया ॥२॥ कुमुदोंके सफेद पुष्पोसे प्रकट रूपसे हँसता हुआ शरदूकाल आ पहुँचा, इन्द्रधनुष नष्ट हो गया और पृथ्वी कीचड़से रहित हो गई ॥३॥ जिनमें बिजली चमकनेकी सम्भावना नहीं थी और जो रुईके समूहके समान सफेद कान्तिके धारक थे ऐसे मेघोके खण्ड कहीं-कहीं दिखाई देने लगे ॥४॥ सन्ध्याका लाल-लाल प्रकाश जिसका सुन्दर आँठ था, चौदनी ही जिसका अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्र था और चन्द्रमा ही जिसका चूडामणि था, ऐसी रात्रिरूपी नव-वधू उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥५॥ चक्रवाक पक्षी जिनकी शोभा बढ़ा रहे थे, और मदोन्मत्त सारस जहाँ शब्द कर रहे थे ऐसी वापिकाएँ कमलवनमें घूमते हुए राजहंसोंसे सुशोभित हो रही थीं ॥६॥ इस तरह यह जगत् यद्यपि शरदृत्तुसे सुशोभित था तो भी सीताकी चिन्ता करनेवाले भामण्डलके लिए अग्निके समान जान पड़ता था ॥७॥

अथानन्तर अरतिले जिसका शरीर आकर्षित हो रहा था ऐसा भामण्डल एक दिन लज्जा छोड़ पिताके आगे अपने परममित्र वसन्तध्वजसे इस प्रकार बोला कि ॥८॥ आप बड़े दीर्घसूत्री हैं—देरसे काम करनेवाले हैं और दूसरेके कार्य करनेमें अत्यन्त मन्द हैं । उस सीतामें जिसका चित्त लगा रहा है ऐसे मुझे दुःख उठाते हुए अनेक रात्रियाँ व्यतीत हो गई । फिर भी तुम्हें चिन्ता नहीं है ॥९॥ जिसमें उद्वेगरूपी वड़ी-बड़ी मँवरें उठ रही हैं ऐसे आशारूपी समुद्रमें मैं डूब रहा हूँ । सो हे मित्र ! मुझे सहारा क्यों नहीं दिया जा रहा है ॥१०॥ इस प्रकार आर्तध्यानसे युक्त भामण्डलके वचन सुनकर सभी विद्वान् हतप्रभ होते हुए परम विपादको प्राप्त हुए ॥११॥ तद-नन्तर उन सबको शोकसे सन्तप्त तथा हाथियोंके समान सूखते हुए देख भामण्डल शिर नीचा

१. नृपः म० । २. उज्ज्वलकृपाणतुल्यप्रभम् । ३. मेघलेशः, घनलेशः म०, ख०, व० । ४. विलम्बेन कार्यकारी । ५. मन्दः । ६. वहुना रात्रीणां समूहः । ७. गतवेगतः म० । ८. निसर्गतः म० । ९. गतप्रभाभूताः म० ।

बृहत्केतुस्ततोऽनोचत् किमद्याप्युपयुक्षते । निवेद्यतां कुमारस्य निराशो येन जायते ॥१३॥
ततस्ते कथयाञ्चकुस्तस्मै सर्वं यथाविधि । चन्द्रयानं पुरस्कृत्य कथमप्युत्तिक्ताधराः ॥१४॥
जनको बाल कन्यायां हृदैवास्माभिराहृतः । याचितश्चासित्यलेन पद्मस्योच्चे प्रकल्पिताम् ॥१५॥
उत्तप्रत्युत्तमालाभिरस्माभिस्तेन निर्जितैः । धनूरत्नावाधिशक्ते कृतसन्मन्त्रणैः किल ॥१६॥
धनूरललता तस्य रामस्याक्षिपकर्मणः । शार्दूलस्य ध्रुवात्तस्य मांसपेशी यथापिता ॥१७॥
कन्या स्वयंवरा साध्वी कया हृदयहारिणी । नवयौवनलावण्यपरिपूरितविग्रहा ॥१८॥
अवालेन्दुमुखा बाला मदनैर्न समन्विता । वैदेही रामदेवस्य श्रीसमा वनितामवत् ॥१९॥
न चापे साम्प्रतं जाते गदासीरादिसयुते । अमराविधिते नापि कन्या त्रैलोक्यसुन्दरी ॥२०॥
अपि द्रष्टुं न ये शक्ये सुपर्णोरगदानवैः । रामलक्ष्मणवीराराम्यामाकृष्टे ते शरासने ॥२१॥
प्रसन्न साधुना हृतमशक्या त्रिदशैरपि । किमुतल्यन्तमस्माभिर्निस्सारैर्धनुषी विना ॥२२॥
पूर्वमेव हृता कस्मात्तेति चेन्मन्यते शिशो । यज्जामाता दद्यात्स्वस्य जनकस्य सुहृन्मनुः ॥२३॥
अवगम्य कुमारैवं विनीतः स्वस्थतां भज । शक्नोति न सुरेन्द्रोऽपि विधातुं विधिमन्यथा ॥२४॥

कर कृणभरके लिए लज्जाको प्राप्त हुआ ॥१२॥ तब बृहत्केतु नामा विद्याधर बोला कि अवतक इस बातको क्यों छिपाया जाता है प्रकट कर देना चाहिए जिससे कि कुमार इस विषयमें निराश हो जावे ॥१३॥

तदनन्तर उन सबने चन्द्रयानको आगे कर लड़खड़ाते अँधेरोमें सब समाचार भागण्डलसे कह दिया ॥१४॥ उन्होंने कहा कि हे कुमार ! हमलोग कन्याके पिताको यहाँ ही ले आये थे और उससे यत्नपूर्वक कन्याकी याचना भी की थी पर उसने कहा था कि मैं उस कन्याको रामके लिए देना सङ्कल्पित कर चुका हूँ ॥१५॥ उत्तर-प्रत्युत्तरसे जब उसने हम सबको पराजित कर दिया तब हमने मन्त्रणा कर धनुषरत्नकी अवधि निश्चित की अर्थात् राम और भागण्डलमेसे जो भी धनुष रत्नको चढ़ा देगा वही कन्याका स्वामी होगा ॥१६॥ हम लोगोंने धनुषकी शर्त इसलिए रखी थी कि राम उसे चढ़ा नहीं सकेगा अतः अगत्या तुम्हें ही कन्याकी प्राप्ति होगी परन्तु वह धनुष-रत्नरूपी लता पुण्याधिकारी रामके लिए ऐसी हुई जैसे भूखसे पीड़ित सिंहके लिए मांसकी डली अर्पित की गई हो अर्थात् रामने धनुष चढ़ा दिया जिससे वह साध्वी कन्या स्वयंवरमें रामकी स्त्री हो गई । वह कन्या अपने वचनोंसे हृदयको हरनेवाली थी, नवयौवनसे उत्पन्न लावण्यसे उसका शरीर भर रहा था, तरुण चन्द्रके समान उसका मुख था, लक्ष्मीकी तुलना करनेवाली थी और कामसे सहित थी ॥१७-१८॥ वे सागरावर्त और वज्रावर्त नामा धनुष आजकलके धनुष नहीं थे किन्तु बहुत प्राचीन थे, गदा, हल आदि शस्त्रोंसे सहित थे, देवोंसे अधिष्ठित थे तथा सुपर्ण और उरग जातिके दैत्योंके कारण उनकी ओर देखना भी सम्भव नहीं था । फिर भी राम लक्ष्मणने उन्हें चढ़ा दिया और रामने वह त्रिलोकसुन्दरी कन्या प्राप्त कर ली ॥२०-२१॥ इस समय वह कन्या देवोंके द्वारा भी जबर्दस्ती नहीं हरी जा सकती है फिर जो उन धनुषोंके निकल जानेसे अत्यन्त सारहीन हो गये हैं ऐसे हम लोगोंकी तो बात ही क्या है ॥२२॥ हे कुमार ! यदि यह कहो कि रामके स्वयंवरके पहले ही उसे क्यों नहीं हर लिया तो उसका उत्तर यह है कि रावणका जमाई राजा मधु जनकका मित्र है सो उसके रहते हम कैसे हर सकते थे ? ॥२३॥ इसलिए यह सब जानकर हे कुमार ! स्वस्थताको प्राप्त होओ, तुम तो अत्यन्त विनीत हो, जो कार्य जैसा होना होता है उसे इन्द्र भी अन्यथा नहीं कर सकता ॥२४॥

ततः स्वयंवरोदन्त श्रुत्वा भामण्डलो हिया । विषादेन च सम्पूर्णः कुक्कु चिन्तान्तरं गतः ॥२५॥
 निरर्थकमिदं जन्म विद्याधरतया समम् । यतः प्राकृतवत् कश्चिन्न सम्प्राप्तोऽस्मि तां प्रियाम् ॥२६॥
 ईर्ष्याक्रोधपरीतश्च सभासाह हसन्नसौ^१ । का वः खेचरता भर्ति भजतां भूमिगोचरात् ॥२७॥
 आनयाभ्येष सत्कन्यां स्वयं निजित्व भूचरान् । न्यासापहरिणां कुर्वे यद्वाणां च विनिग्रहम् ॥२८॥
 इत्युक्त्वासौ सुसन्नह विमानो विद्यदुद्धतः । पुरकाननसम्पूर्णं पृथिवीतलमैक्षत ॥२९॥
 ततो दृष्टिगता तस्य विदग्धविषये क्रमात् । महीध्रसंकटे रम्ये नगरे चात्मसेविते ॥३०॥
 दृष्टं मया कदाप्येतदिति चिन्तामुपागतः । जातिस्मरत्वमासाद्य समवाप्य स भूर्ज्वनम् ॥३१॥
 पितुरन्ते ततो नीतः सचिवैराकुलात्मकैः । चन्दनद्ववसिक्तह्रः प्रमदाभिः प्रबोधितः ॥३२॥
 अभ्योन्यं दत्तनेत्र च हसित्वा तामिरौच्यत । कुमार युक्तेतत्ते कातरत्वमनुत्तमम् ॥३३॥
 अदृष्ट्वाविचर्यार्थं निरशेषरहितत्रय^२ । गुरुणामग्रतो मोहं यत्प्राप्तोऽसि विचक्षण^४ ॥३४॥
 भज खेचरनाथानां कन्या देव्यधिकप्रभाः । जनजल्पनकं व्यर्थं वृत्तं सुन्दर मा कृथाः ॥३५॥
 ततोऽसाव्रवीदेवं व्रीडाशोकनताननः । जिम्मया वनमोहेन विरुद्ध चिन्तितं महत् ॥३६॥
 नीचानामपि नात्यन्तमोदश कर्म युज्यते । अहो कर्मभिरत्यर्थमशुभैरभिचेष्टितः ॥३७॥
 एकस्मिन्नुपितः कुक्षौ कापि सार्धमहं तथा । दुष्कर्मविगमाज्ञाता कथाञ्चिद् साधुना मया ॥३८॥
 ततस्त शोकभारेण पीडित चन्द्रविक्रमः । अङ्गभारोप्य चुम्बित्वा पत्रच्छु पुस्तविस्मयः ॥३९॥

तदनन्तर स्वयंवरका घृत्तान्त सुनकर भामण्डल लज्जा और विषादसे युक्त होता हुआ दुःखके साथ यह विचार करने लगा कि ॥२५॥ अहो ! मेरा यह विद्याधरका जन्म निरर्थक है कि जिससे मैं साधारण मनुष्यकी तरह उस प्रियाको प्राप्त नहीं कर सका ॥२६॥ ईर्ष्या और क्रोध से युक्त होकर उसने हँसते हुए सभासे कहा कि जब आप लोग भूमिगोचरीसे भी भय रखते हो तब आपका विद्याधर होना किस कामका ? ॥२७॥ मैं भूमिगोचरियोंको जीतकर स्वयं ही उस उत्तम कन्याको ले आता हूँ तथा धनुषरूपी धरोहरका अपहरण करनेवाले यक्षोंका निग्रह करता हूँ ॥२८॥ ऐसा कहकर वह तैयार हो विमानमे बैठकर आकाशमें जा उड़ा । वहाँसे उसने पुर और वनसे भरा पृथ्वीतल देखा ॥२९॥ तदनन्तर उसकी दृष्टि अनेक पर्वतोंसे युक्त विदग्धनामक देशमे अपने पूर्वभवके मनोहर नगर पर पड़ी ॥३०॥ यह नगर मैंने कभी देखा, है । इस प्रकार चिन्ता करता हुआ वह जातिस्मरणको प्राप्त होकर मूर्छित हो गया ॥३१॥ तदनन्तर घबड़ाये हुए मन्त्री उसे पिताके समीप ले आये । वहाँ स्त्रियोंने चन्दनके द्रवसे उसका शरीर सींचकर उसे सचेत किया ॥३२॥ स्त्रियोंने परस्पर नेत्रका इशारा कर तथा हँसकर उससे कहा कि हे कुमार ! तुम्हारी यह कातरता अच्छी नहीं ॥३३॥ जो तुम बुद्धिमान् होकर भी भूचर्याका समस्त प्रयोजन बिना देखे ही गुरुजनोंके आगे इस तरह मोहको प्राप्त हुए हो ॥३४॥ देवियोंसे भी अधिक कान्तिको धारण करनेवाली विद्याधर राजाओंकी अनेक कन्याएँ हैं सो उन्हें तुम प्राप्त होओ । हे सुन्दर ! इस तरह व्यर्थ ही लोकापवाद मत करो ॥३५॥

तदनन्तर लज्जा और शोकसे जिसका मुख नीचा हो रहा था ऐसे भामण्डलने इस प्रकार कहा कि मुझे धिक्कार हो, जो मैंने तीव्र मोहमे पड़कर इस प्रकार विरुद्ध चिन्तन किया ॥३६॥ ऐसा कार्य तो अत्यन्त नीच कुलवालोंको भी करना उचित नहीं है । अहो, मेरे अत्यन्त अशुभ कर्मोंने कैसी चेष्टा दिखाई ? ॥३७॥ मैंने उसके साथ एक ही उदरमें शयन किया है । आज पाप-कर्मका उदय मन्द हुआ इसलिये किसी तरह उसे जान सका हूँ ॥३८॥ तदनन्तर शोकके भारसे पीडित भामण्डलको गोदमें रखकर बहुत भारी आश्चर्यसे भरा चन्द्रगति चुम्बन कर पृच्छने लगा

वद पुत्रक किन्वेतदीदृशं भाषितं त्वया । सोऽबोचत्तात वक्तव्यं चरितं शृणु मामकम् ॥४०॥
 पूर्वजन्मनि वास्येऽस्मिन् विदग्धे नगरे वृषः । अभूवं परराष्ट्राणां ध्वंसको मण्डितध्वनिः ॥४१॥
 सर्वस्यामवधनौ ख्यातः सततं विग्रहप्रियः । पालको निबलोकस्य महाविभवसंयुतः ॥४२॥
 इतां तत्र मया जाया विप्रस्याशुभकर्मणा । माययाऽपाकृतश्चासौ गतः काप्यतिदुःखितः ॥४३॥
 ततोऽनरण्यसेनान्या गमितस्तनुशेषताम्^१ । पर्यटन् धरणीं कापि प्राप्नोऽस्मि मुनिसंश्रयम् ॥४४॥
 यत्र त्रिलोकपूज्यानां सर्वज्ञानां महात्मनाम् । मत्तं भगवतां प्राप्तमर्हतां पावनं मया ॥४५॥
 तत्र बान्धवभूतस्य गुरोः शासनतो मया । अनामिषं व्रतं शुद्धं गृहीतं क्षुद्रशक्तिना ॥४६॥
 शासनस्य जिनेन्द्राणामहो साहाय्यमुत्तमम् । तथापि यन्महापापो नावतीर्णोऽस्मि दुर्गतिम् ॥४७॥
 अनन्यशरणत्वेन व्रतेन नियमेन च । सममन्येन जीवेन विदेहाकुलिमागमत् ॥४८॥
 ह्रस्वेन च प्रसूता सा कन्यया सहितं तुल्यम् । केनाप्यपहृतश्चार्यं गृध्रेण पिशितं यथा ॥४९॥
 वचनोचरातीतं तेन वीतोऽस्मि पुष्करम्^२ । असौ नूनं स यस्यासौ इतां जाया मया पुरा ॥५०॥
 मारयामीति तेषीकत्वा भूयः कृत्वानुकम्पवत् । शनैरस्मि विमुक्तः खात कुण्डलभ्यामलङ्कृतम् ॥५१॥
 पतन् वीक्ष्य तदा रात्राबुद्धाने परमे तथा । गृहीत्वा तात दसोऽस्मि जाययै करुणावता ॥५२॥
 सोऽहं भवत्प्रसादेन तदङ्गे वृद्धिमागतः । परं विद्याधरत्वं च कृतदुर्लभितक्रियः ॥५३॥
 इत्युक्त्वा विरामासौ विसर्गं च जनो गतः । हाकारबहुलं शब्दं कुर्वन् कम्पितमस्तकः ॥५४॥

॥३६॥ कि हे पुत्र ! कह, तूने ऐसा कथन किसलिए किया ? इसके उत्तरमें उसने कहा कि हे तात ! मेरा कहने योग्य चरित सुनिए ॥४०॥

पूर्व जन्ममें मैं इसी देशके विदग्ध नगरमें दूसरे देशोको छूटनेवाला, समस्त पृथिवीमें प्रसिद्ध, युद्धका प्रेमी, अपनी प्रजाकी रक्षा करनेवाला तथा महाविभवसे संयुक्त कुण्डलमण्डित नामका राजा था ॥४१-४२॥ वहाँ मैंने अशुभ कर्मके उद्‌यसे एक ब्राह्मणकी स्त्री हरी और ब्राह्मणको मायापूर्वक तिरस्कृत किया जिससे वह अत्यन्त दुःखी होकर कहीं चला गया ॥४३॥ तदनन्तर राजा अनरण्यके सेनापतिने मेरी सब सम्पत्ति हरकर मेरे पास केवल मेरा शरीर ही रहने दिया । अन्तमें अन्यन्त दरिद्र हो पृथिवी पर भटकता हुआ मैं कहीं मुनियोके आश्रममें पहुँचा ॥४४॥ वहाँ मैंने तीनों लोकोसे पूज्य, सब पदार्थोको जाननेवाले तथा महान् आत्माके धारक अरहन्त भगवान्‌का पवित्र धर्म प्राप्त किया ॥४५॥ और समस्त जीवोंके बान्धवभूत श्री गुरुके उपदेशसे निरतिचार सांस्त्याग व्रत धारण किया । मैं अत्यन्त क्षुद्र शक्तिका धारक था इसलिए अधिक व्रत धारण नहीं कर सका ॥४६॥ अहो जिन शासनका वड़ा साहाय्य है जो मैं महापापी होकर भी दुर्गतिको प्राप्त नहीं हुआ ॥४७॥ श्री जिनधर्मकी शरण होनेसे तथा व्रत और नियमके प्रभावसे मेरा जीव किसी अन्य जीवके साथ राजा जनककी विदेहा रानीके उद्‌रमें पहुँचा ॥४८॥ रानी विदेहाने सुखपूर्वक कन्याके साथ एक पुत्र उत्पन्न किया सो जिस प्रकार गीध मांसके टुकड़ोको हर लेता है उसी प्रकार किसीने उस पुत्रको हर लिया ॥४९॥ वह व्यक्ति उस बालकको नन्त्रोसे भी अधिक ऊँचे आकाशमें ले गया । यथार्थमें व्यक्ति वही था जिसकी स्त्री पहले मैंने हरी थी ॥५०॥ पहले तो उसने कहा कि मैं इसे भारता हूँ परन्तु फिर दया कर उसने कुण्डलोंसे अलंकृत कर धीरेसे आकाशसे छोड़ दिया ॥५१॥ उस समय तुम परम उपवनमें विद्यमान थे सो रात्रिमें पड़ता देख तुमने मुझे ऊपरसे ही पकड़ लिया और दयालु होकर अपनी रानीके लिए सौँपा ॥५२॥ आपके प्रसादसे रानीकी गोष्ठमें वृद्धि प्राप्त हुआ, उत्कृष्ट विद्याओंका धारक हुआ और बहुत ही लज्जित प्यारसे मेरा पालन हुआ ॥५३॥ यह कहकर भामण्डल चुप हो रहा तथा उपस्थित

१. गमितस्तनुशेषता म० । २. पुत्रं 'बुक्' लोक चान्द्रवः प्रजा' इत्यमरः । ३. गयनम् ।

इमं चन्द्रगतिः श्रुत्वा वृत्तान्तमतिचित्रितम् । लोकधर्मतत्त्वं^१ वन्द्यं विदित्वा भवबन्धनम् ॥५५॥
 भूतमात्रमतिं त्यक्त्वा सुनिश्चित्यात्मकर्मणाम् । परं प्रबोधमायातः संवेगं च सुदुर्लभम् ॥५६॥
 आत्मीयं राज्यमाधाय तत्र पुत्रे यथाविधि । सर्वभूतहितस्यागात् पादमूलं त्वरान्वितः ॥५७॥
 भगवान् स हि सर्वत्र विष्टपे प्रथितात्मकः । गुणरसिसमूहेन भव्यानन्दविधायिना ॥५८॥
 महेन्द्रोदययौतं तमग्यर्च्यं प्रणिपत्य च । स्तुत्वा च भावतोऽवादीदेवं मूर्धाहिताञ्जलिः ॥५९॥
 भगवंस्त्वत्प्रसादेन सप्राप्य जिनदीक्षणम् । तपोविषातुमिच्छामि निर्विण्णो गृह्णवास्ततः ॥६०॥
 एवमस्त्विति तेनोक्ते^२ तार भेर्यः^३ समाहिताः । भामण्डलः परं चक्रे महिमानं च भावतः ॥६१॥
 कलं प्रवरनारीभिर्गीतं वंशस्वनालुङ्गम् । जगज्ज्योत्सङ्गातः करतालसमन्वितः ॥६२॥
 श्रीमान् जनकराजस्य तनयो जयतीति च । इत्युच्चैर्वन्दनां नादः सज्जते प्रतिनादवान् ॥६३॥
 तेनोद्यानसमुत्थेन नादेन श्रोत्रहारिणा । नक्तं कृतो विनीतायां कृतनिद्रोऽखिलो जनः ॥६४॥
 ऋषिसन्ध्यासुदूतानं श्रुत्वा जैनाः प्रमोदिनः । ज्ञाता जना विप्रेणाश्च मिथ्यादर्शनपूरिताः ॥६५॥
 रोमाञ्छाञ्चितसर्वाङ्गा विस्फुरद्वासलोचना । सीता सिक्तामृतेनेव बुबुधे ध्वनिनामुना ॥६६॥
 अचिन्तयन्न च को न्वेय जनको यस्य नन्दनः । जयतीति सुहृन्नादः श्रूयतेऽयन्तमुन्नतः ॥६७॥
 कनकन्याग्रजो राजा ममापि जनकः पिता । जातमात्रश्च मे ज्ञाता ह्यतो यः किं न्वलौ भवेत् ॥६८॥

समस्त लोग हाहाकार करते तथा मस्तक हिलाते हुए आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥५४॥ राजा चन्द्र-
 गति यह अत्यन्त आश्चर्यकारी वृत्तान्त सुनकर परम प्रबोध तथा अत्यन्त दुर्लभ संवेगको प्राप्त
 हुआ । उसने लोक-धर्म अर्थात् स्त्री-सेवनरूपी वृत्तको सुखरूपी फलसे रहित तथा संसारका
 बन्धन जाना, इन्द्रियोके विषयोंमें जो बुद्धि लग रही थी उसका परित्याग किया, आत्म-कर्तव्यका
 ठीक-ठीक निश्चय किया, पुत्रके लिए विधिपूर्वक अपना राज्य दिया और बड़ी शीघ्रतासे
 सर्वभूतहित नामक मुनिराजके चरणमूलमें प्रस्थान किया ॥५५-५७॥ भगवान् सर्वभूतहित
 भव्य जीवोको आनन्द देनेवाले गुणरूपी किरणोके समूहसे समस्त संसारमें प्रसिद्ध थे ॥५८॥
 महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें स्थित उन सर्वभूतहित मुनिराजकी पूजा कर नमस्कार कर तथा भाव-
 पूर्वक स्तुति कर हाथ जोड़ मस्तकसे लगाकर राजा चन्द्रगतिने इस प्रकार कहा कि हे भगवन् !
 मैं गृहवाससे विरक्त हो चुका हूँ इसलिये आपके प्रसादसे जिनदीक्षा प्राप्त कर तपश्चरण करना
 चाहता हूँ ॥५९-६०॥ 'एवमस्तु' ऐसा कहने पर भामण्डलने भावपूर्वक परम प्रभावना की ।
 जोर-जोरसे भेरियों बजने लगीं, उत्तम स्त्रियोने बाँसुरीकी ध्वनिके साथ मनोहर गीत गाया,
 करतालके साथ-साथ अनेक वादित्रोके समूह गर्जना करने लगे । 'राजा जनकका लक्ष्मीशाली
 पुत्र जयवन्त हो रहा है' वन्दीजनोका यह जोरदार शब्द प्रतिध्वनि करता हुआ पूँजने लगा
 ॥६१-६३॥ उद्यानसे उठे हुए इस श्रोत्रहारी शब्दने रात्रिके समय अयोध्यावासी समस्त लोगोंको
 निद्रारहित कर दिया ॥६४॥ ऋषियोसे सम्बन्ध रखनेवाली इस हर्षध्वनिको सुनकर जैन लोग
 परम हर्षको प्राप्त हुए और मिथ्यादृष्टि लोग विषादसे युक्त हो गये ॥६५॥ उस शब्दको सुनकर
 सीता भी इस प्रकार जाग उठी मानो अमृतसे ही सींची गई हो, उसके समस्त अङ्ग रोमाञ्चसे
 व्याप्त हो गये तथा उसका बाँया नेत्र फट्कने लगा ॥६६॥ वह विचारने लगी कि यह जनक
 कौन है जिसका कि पुत्र जयवन्त हो रहा है । यह अत्यन्त उन्नत शब्द बार-बार सुनाई दे रहा
 है ॥६७॥ राजा जनक कनकका बड़ा भाई और मेरा पिता है । मेरा भाई उत्पन्न होते ही हरा

१. वध्यं म० । वन्द्या क० । २. भूतमात्रमति म० । ३. यात्यन्त व० । ४. उच्चैः । ५. नारमे स०,
 म० दुन्दुभयः । ६. वंशस्वनालुङ्गं म० । ७. विपन्नाश्च म० ।

ध्वालेति सोदरस्नेहसुसंस्लावितमानसा । मुक्तकण्ठं करोदासौ परिदेवनकारिणी ॥६१॥
 ततो रामोऽभिरामाद्भः प्रोवाच मधुराक्षरम् । कस्माद् रोदिपि वैदेहि आतृशोकेन कर्पिता ॥७०॥
 भवत्या यद्यसौ भ्राता शो ज्ञातास्मो न संशयः । अथवान्यः क्वचित् कोऽपि पण्डिते शोचितेन किम् ॥७१॥
 कारणं यदतिक्रान्तं मृतमिष्टं च बान्धवम् । हृतं विनिर्गतं नष्टं न शोचन्ति विचक्षणाः ॥७२॥
 कातरस्य विपादोऽस्ति दयिते प्राकृतस्य च । न कदाचिद्विपादोऽस्ति विक्रान्तस्य दुधस्य च ॥७३॥
 एवं तयोः समालापं दम्पत्योः कुर्वतोः क्षपा । कृपयैव गता शीघ्रं जातमङ्गलनिस्वना ॥७४॥
 ततो दशरथः कृत्वा प्रत्यङ्गं वस्तु सादरः । नगरीतो विनिष्क्रान्तः ससुतः साङ्गनाजनः ॥७५॥
 हृतश्रेतश्च विस्तीर्णां पश्यन् खेचरवाहिनीम् । ययौ स विस्मयापन्नः सामन्तशतपूरितः ॥७६॥
 हृद्वाचक्रे च देवेन्द्रपुरतुल्यं विनिर्मितम् । ज्ञाद्विद्याधरैः स्थानं तुङ्गप्राकारगोपुरम् ॥७७॥
 पताकातोणैश्चित्रं रत्नैश्च कृतसङ्गढम् । प्रविशेश तदुद्यानं साधुलोकसमाकुलम् ॥७८॥
 नत्वा स्तुत्वा च तत्रासौ गुहं गुणगुहं नृपः । ददर्शोदयने भागेश्वन्द्रयानस्य दौर्गुणम् ॥७९॥
 नभश्चरैः समं पूजां कृत्वा सुमहतीं गुरोः । एकपात्रैः निविष्टोऽसौ सर्वबान्धवसङ्गतः ॥८०॥
 श्रीप्रमामण्डलोऽप्येकं पादंमाश्रित्य खेचरैः । समस्तैः सहितस्तस्यै किञ्चिच्छोकमिवोद्वहन् ॥८१॥
 खेचरा भूचराश्चैते सुतयश्चान्तिकं स्थिताः । शुभ्रबुध्नुक्तो धर्ममनगारं तथेतरम् ॥८२॥
 चरितं निरगाराणां शूराणां शान्तमीहितम् । शिवं सुदुर्लभं सिद्धं सारं क्षुद्रभयावहम् ॥८३॥

गया था सो यह वही तो नहीं है ? ॥६८॥ ऐसा विचार कर भाईके स्नेहसे जिसका मन व्याप्त हो रहा था ऐसी सीता विलाप करती हुई गला फाड़कर रोने लगी ॥६९॥

तदनन्तर सुन्दर शरीरके धारी रामने मधुर अक्षरोमे कहा कि हे वैदेहि ! भाईके शोकसे विषरा हो क्यों रही हो ॥७०॥ यदि यह तुम्हारा भाई है तो कल मालूम करोगे इसमें संशय नहीं है और यदि कहीं कोई दूसरा है तो हे पण्डिते ! शोक करनेसे क्या लाभ है ? ॥७१॥ क्योंकि जो चतुर जन है वे नीते हुए, मरे हुए, हरे हुए, गये हुए अथवा गुमे हुए इष्टजनका शोक नहीं करते हैं ॥७२॥ हे वल्लभे ! विषाद उसका किया जाता है जो कातर होता है अथवा बुद्धिहीन होता है । इसके विपरीत जो शूरवीर बुद्धिमान् होता है उसका विषाद नहीं किया जाता ॥७३॥ इस प्रकार दम्पतीके वार्तालाप करते-करते रात्रि बीत गई सो मानो दयासे ही शीघ्र चली गई और प्रातःकाल सम्बन्धी मङ्गलमय शब्द होने लगे ॥७४॥

तदनन्तर राजा दशरथ अङ्गसम्बन्धी कार्य कर आदरसहित पुत्रों और स्त्रीजनोके साथ नगरीसे बाहर निकले ॥७५॥ सैकड़ों सामन्त उनके साथ थे । वे जहाँ-तहाँ फैली हुई विद्याधरोकी सेनाको देखते हुए आश्चर्यचकित होते जा रहे थे ॥७६॥ उन्होंने क्षणभरमे ही विद्याधरोके द्वारा निर्मित ऊँचे कोट और गोपुरोंसे सहित इन्द्रपुरीके समान स्थान देखा ॥७७॥ तदनन्तर उन्होंने पताकाओं और तोरणोंसे चित्रित, रत्नोंसे अलंकृत एवं मुनिजनोसे व्याप्त उस महेन्द्रोदय नामा उद्यानमे प्रवेश किया ॥७८॥ वहाँ जाकर राजा दशरथने गुणोसे श्रेष्ठ सर्वभूतहितनामा गुरुको नमस्कार कर तथा उनकी स्तुति कर सूर्योदयके समय राजा चन्द्रगतिका दीक्षामहोत्सव देखा ॥७९॥ उन्होंने विद्याधरोके साथ गुरुको बहुत बड़ी पूजा की और उसके बाद वे समस्त भाई-बन्धुओंके साथ एक ओर बैठ गये ॥८०॥ कुछ शोकको धारण करता हुआ भामण्डल भी समस्त विद्याधरोंके साथ एक ओर आकर बैठ गया ॥८१॥ विद्याधर और भूमिगोचरी गृहस्थ तथा मुनिराज सभी लोग पास-पास बैठकर गुरुदेवसे मुनि तथा गृहस्थ धर्मका व्याख्यान सुन रहे थे ॥८२॥ गुरुदेव कह रहे थे कि मुनियोका धर्म शूरवीरोंका धर्म है, अत्यन्त शान्त दशारूप है,

मन्यजीवा यमासाद्य लभन्ते संशयोक्तिमतम् । सम्यग्दर्शनसम्पन्ना गीर्वाणेन्द्रसुख महत् ॥८४॥
 केचित् केवलमासाद्य लोकालोकप्रकाशनम् । लोकप्रामभारमारुह्य भजन्ते नैवृत्ते सुखम् ॥८५॥
 तिर्यग्नरकदुःखाग्निज्वालाभिः परिपूरितः । संसारो मुच्यते येन तं पन्थानं महोत्तमम् ॥८६॥
 सर्वप्राणिहितोऽवोचन्मन्द्रगैर्जितनिस्वनः । प्रह्लादं सर्वचित्तानां जनयन्विद्विताखिलः ॥८७॥
 सन्देहतापविच्छेदि तद्वचोभुज्मुनीन्द्रजम् । कर्णाजलिपुटेः पीतं प्राणिभिः प्रीतमानसैः ॥८८॥
 ततो दशरथोऽपृच्छत् संजाते वचनान्तरे । चन्द्रकीर्त्तेः खगेन्द्रस्य वैराग्यं नाथ किंकृतम् ॥८९॥
 सीता तत्र विशुद्धात्मी ज्ञातुमिच्छुः सहोदरम् । शुश्रूषया मनश्चक्रे विनीतात्यन्तनिश्चलम् ॥९०॥
 शुद्धात्मा भगवान्नुचे शृणु राजन् विचित्रताम् । जीवानां निर्मितामेतां कर्मभिः स्वयमर्जितैः ॥९१॥
 संसारे सुचिरं भ्रान्त्वा जीवोऽयमतिदुःखितः । कर्मानिलेरितः प्राप्तश्चन्द्रेण ध्रुवतमण्डलः ॥९२॥
 अर्पितः पुष्पवत्यै च स्त्रीचिन्ताकुलतारकः । स्वसारं च समालोक्य गाढाकल्पकमगतः ॥९३॥
 जनकः कृत्रिमाश्रयेन हृतश्चापस्वयंवरा । जाता विदेहजा चिन्ता परां भामण्डलोऽगमत् ॥९४॥
 अस्मरन् च भवं पूर्वं मूर्च्छितः पुनरश्वसीत् । पृष्ठश्चन्द्रेण चावोचदिति पूर्वभवक्रियाम् ॥९५॥
 भरतस्ये विदग्धाख्ये पुरे कुण्डलमण्डितः । अधार्मिकोऽहरत् कान्तां पिङ्गलस्य मनःप्रियाम् ॥९६॥

मङ्गलरूप है, अत्यन्त दुर्लभ है, सिद्ध है, साररूप है और बुद्धजनोंको भय उत्पन्न करनेवाला है ॥८३॥ इस मुनिधर्मको पाकर सम्यग्दृष्टि मन्यजीव निःसन्देह स्वर्गका महासुख प्राप्त करते हैं ॥८४॥ और कितने ही लोक अलोकको प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानको प्राप्त कर लोकके अग्रभाग पर आरुढ़ हो मोक्षका सुख प्राप्त करते हैं ॥८५॥ तिर्यञ्च और नरक गतिके दुःखरूपी अग्निकी ज्वालाओंसे भरा हुआ यह संसार जिससे छूटता है वही मार्ग सर्वोत्तम है ॥८६॥ ऐसे मार्गका कथन उन मुनिराजने किया था । वे मुनिराज समस्त प्राणियोंका हित करनेवाले थे, गम्भीर गर्जनाके समान स्वरको धारण करनेवाले थे, समस्त जीवोंके चित्तमें आह्लाद उत्पन्न करनेवाले थे तथा समस्त पदार्थोंको जाननेवाले थे ॥८७॥ जिनके चित्त प्रसन्नतासे भर रहे थे ऐसे समस्त लोगोंने सन्देहरूपी सन्तापको नष्ट करनेवाले मुनिराजके वचनरूपी जलका अपने-अपने कर्णरूपी अञ्जलिपुटसे खूब पान किया ॥८८॥

तदनन्तर जब वचनोंमें अन्तराल पड़ा तब राजा दशरथने पूछा कि हे नाथ ! विद्याधरोके राजा चन्द्रगतिका वैराग्य किस कारण हुआ है ? ॥८९॥ वही पासमें बैठी निर्मल दृष्टिकी धारक सीता अपने भार्द्वको जानना चाहती थी इसलिए श्रवण करनेकी इच्छासे नष्ट हो उसने मनको अत्यन्त निश्चल कर लिया ॥९०॥ तब विशुद्ध आत्माके धारक भगवान् सर्वभूतहित मुनिराज बोले कि हे राजन् ! अपने द्वारा अर्जित कर्मोंके द्वारा निर्मित जीवोंकी इस विचित्रताको सुनो ॥९१॥ कर्मरूपी चायुसे प्रेरित हुआ यह भामण्डलका जीव दीर्घकाल तक संसारमें भ्रमण कर अत्यन्त दुःखी हुआ है । अन्तमें जब भामण्डल पैदा हुआ तब वह राजा चन्द्रगतिको प्राप्त हुआ । चन्द्रगतिके पालन-पोषण करनेके लिए अपनी पुष्पवती भार्याको सौंपा । जब यह तरुण होकर स्त्रीविषयक चिन्ताको प्राप्त हुआ तब अपनी बहिन सीताका चित्रपट देख अत्यन्त व्यथाको प्राप्त हुआ ॥९२-९३॥ सीताकी मँगनी करनेके लिए मायामयी अश्वके द्वारा राजा जनकका हरण हुआ अन्तमें सीताका धनुष-स्वयंवर हुआ और उसने स्वयंवरमें राजा दशरथके पुत्र रामको चर लिया । इस घटनासे भामण्डल परम चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥९४॥ अकस्मात् इसे पूर्व भवका स्मरण हुआ जिससे यह मूर्च्छित हो गया । सचेत होनेपर राजा चन्द्रगतिके इसका कारण पूछा तब वह अपने पूर्व भवकी चार्ता इस प्रकार कहने लगा ॥९५॥ कि मैं भरत क्षेत्रके विदग्धनामा

वालेन्दुहृतसर्वस्वो विपयात् स निराकृतः । श्रमणाश्रममासाद्य प्राप व्रतमनामिषम् ॥६७॥
धर्मध्यानगतः कृत्वा कालं कलुषवर्जितः । जनकस्य विदेहायाः ससहायस्तनुं श्रितः ॥६८॥
अर्ण्यात् पिङ्गलः प्राप्नो ह्यष्टा शून्यकुटीरकम् । कोटरानलजीर्णागदाहदुःखं समाप्तवान् ॥६९॥
‘यद्दर्शं दुःखितोऽप्राचीन्नेत्राश्रुभूतदुर्दिनः । दृष्टा स्यात् पुण्डरीकाक्षी ममेत्युन्मत्तविभ्रमः ॥१००॥
हा कान्त इति कृञ्च विलापमकरोदिति । प्रभावती सवित्री तां तातं चक्रध्वजं च तम् ॥१०१॥
विभूतिमतिपुङ्गां च बान्धवार्च च सुमानसान् । परित्यज्य मयि प्रीत्या विदेशमसि सन्नता ॥१०२॥
रुचाहारकुवद्वल्लं मदर्थं सेवितं त्वया । मासुत्सृज्य क्व यातासि सर्वावयवसुन्दरि ॥१०३॥
खिन्नोऽसौ धरणीं दुःखं ज्ञान्त्वा सगिरिकाननाम् । वियोगवद्विना दग्धः सोऽकण्ठस्तपसि स्थितः ॥१०४॥
ततो देवत्वमासाद्य चिन्तामेवमुपागमत् । तिर्यग्योनिं किमेता सा कान्ता सम्यक्स्ववर्जिता ॥१०५॥
स्वभावाज्जवसम्पन्ना भूयो वा मातुषी भवेत् । जीवितान्ते जिन्नं स्थूत्वा किं वा देवत्वमागता ॥१०६॥
इति ध्यायन् विनिरिचत्य स्तब्धदृष्टिः प्रकोपवान् । कासौ शत्रुदुराभेति ज्ञात्वा कुचिसमाश्रितम् ॥१०७॥
प्रसूतमेककं कृत्वा शान्तः कर्मनियोगतः । बालं मुमोच जीवेहि वदन् विशालवृक्षतम् ॥१०८॥

नगरमे कुण्डलमण्डित नामका राजा था, मैं बड़ा अधर्मी था इसलिए मैंने उसी नगरमे रहनेवाले पिङ्गलनामक ब्राह्मणकी मनोहर स्त्रीका हरण किया था ॥६६॥ मैं राजा अनरण्यके राज्यमे उपद्रव किया करता था इसलिए उसके सेनापति बालचन्द्रने मेरी सर्व सम्पदा छीनकर मुझे देशसे निकाल दिया । अन्तमें मैं भटकता हुआ मुनियोंके आश्रममे पहुँचा और वहाँ मैंने अनामिष अर्थात् मांस त्यागका व्रत धारण किया ॥६७॥ उसके फलस्वरूप धर्मध्यानसे सहित हो तथा कलुषतासे रहित होकर मैंने मरण किया और भरकर राजा जनककी रानी विदेहाके गर्भमें जन्म धारण किया । जिस स्त्रीका मैंने हरण किया था भाग्यकी बात कि वह भी उसी विदेहाके गर्भमें उसी समय आकर उत्पन्न हुई ॥६८॥

पिङ्गलने जब जङ्गलसे लौटकर कुटिया सूनी देखी तो उसे इतना तीव्र दुःख हुआ कि मानो उसका शरीर कोटरकी अग्निसे झुलस ही गया हो ॥६९॥ वह उसके बिना पागल जैसा हो गया, उसके नेत्रोंसे लगातार दुर्दिनकी भोंति आँसुओंकी वर्षा होने लगी तथा दुःखी होकर वह जो भी दिखता था उसीसे पूछता था क्या तुमने मेरी कमललोचना प्रिया देखी है ? ॥१००॥ वह हा कान्ते ! इस प्रकार चिन्ताता हुआ विलाप करने लगा तथा कहने लगा कि तुम मुझमें प्रीति होनेके कारण प्रभावती माता, चक्रध्वज पिता, विशाल विभूति और प्रेमसे भरे भाइयोंको छोड़कर विदेशमे आई थीं ॥१०१-१०२॥ तुमने मेरे पीछे रुखा-सूखा भोजन और अशोभनीय वस्त्र ग्रहण किये हैं फिर भी हे सर्वावयवसुन्दरि ! मुझे छोड़कर तुम कहाँ चली गई हो ? ॥१०३॥ खेदस्त्रिभूत तथा वियोगगुरुपी अग्निसे जला हुआ पिङ्गल पहाड़ों और चनोंसे सहित पृथिवीमे दुःखी होकर चिरकाल तक भटकता रहा । अन्तमे तप करने लगा परन्तु उस समय भी उसे स्त्रीकी उत्कण्ठा सताती रहती थी ॥१०४॥

तदनन्तर देवपर्यायको पाकर वह इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि क्या मेरी वह प्रिया सम्यक्त्वसे रहित होकर तिर्यञ्च्योनिकी प्राप्त हुई है ॥१०५॥ अथवा स्वभावसे सरल होनेके कारण पुनः मातुषी हुई है या आयुके अन्त समयमें जिनेन्द्रदेवका स्मरण कर देव पर्यायको प्राप्त हुई है ? ॥१०६॥ ऐसा विचार कर तथा सब निश्चय कर उसने अपनी दृष्टि स्थिर की तथा कुपित होकर यह विचार किया कि इसे अपहरण करनेवाला दुष्ट शत्रु कहाँ है ? कुछ समयके विचारके बाद उसे मालूम हो गया कि वह शत्रु भी इसीके साथ विदेहा रानीकी कुचिमे ही विद्यमान है ॥१०७॥ रानी विदेहाने बालक और बालिकाको जन्म दिया सो वैरका बदला लेनेके

ज्योत्स्नाकृताट्टहासायां रात्रौ प्राप्ताः पतंसवया । तदा स्मरसि किं नेदं पुष्पवत्यै समर्पितः ॥१०६॥
 प्राप्नो भवत्प्रसादेन विद्याधरविधिमया । नूनं माता विदेहा मे सा च सीता सहोदरी ॥१०७॥
 इत्युक्ते विस्मयं प्राप्ता सर्वा वैद्याधरी सभा । चन्द्रायणश्च संविग्नो न्यस्य भामण्डले ध्रियम् ॥१०८॥
 माता पिता च ते वत्स दुःखं शोकेन तिष्ठति । तयोर्नेत्रोत्सवं यच्छ्रेयैवमुक्त्वा समागतः ॥१०९॥
 जातस्य नियतो मृत्युस्ततो गर्भस्थितिः पुनः । इति भीतो भवादेष चन्द्रः प्राब्रज्यमासवान् ॥११०॥
 अत्रान्तरे-विदेहाजः^१ सशयं परिपृच्छति । स्नेहश्चन्द्रायणादीनां मयि कस्मात् परः प्रभो ॥१११॥
 ततः सर्वहितोऽबोचन्निबोध द्युतिमण्डल । यथा पिता च माता च तव पूर्वभवे स्थितौ ॥११२॥
 दाहप्राप्ते तु विप्रोऽभूद् विमुचिस्तस्य भामिनी । अनुकोशातिमृत्तिश्च तनयः सरसा स्तुपा ॥११३॥
 कया मात्रा सहप्राप्तः कथानाख्योऽन्यदा द्विजः । अहरत् सरसां सारं धनमन्तर्गतं च यत् ॥११४॥
 अतिभूतिद्वयं तद्देवोः शोका बभ्राम मेदिनीम् । ततो निष्पुरुषे गेहे शेषं स्वमपि लुण्ठितम् ॥११५॥
 विमुचिर्दक्षिणाकांशी देशान्तरगतः पुरा । अत्रा कुलकुटं गमनं निवृत्तस्वरयान्वितः ॥११६॥
 जार्जवस्त्रावशेषाद्भामनुकोशां सुविह्वलाम् । सान्त्वयित्वा तया सार्धसुर्या चान्वेष्टमुद्यतः ॥११७॥
 प्रजाभिः पृथिवीपृष्ठे कथ्यमानं समन्ततः । अवधिज्ञानकर्णैर्जगद् येनावभासितम् ॥११८॥

लिए वह देव बालकको उठा ले गया परन्तु कर्मोद्यसे उसके परिणाम शान्त हो गये जिससे उसने उस बालकको लघुपूर्णा विद्यासे लघु कर 'जीते रहो' इन शब्दोंका उच्चारण कर आकाशसे छोड़ा ॥१०८॥ जिसमे चौदनी अट्टहास कर रही थी ऐसी रात्रिमें आकाशसे पड़ते हुए उस बालकको आपने पकड़ा था और अपनी रानी पुष्पवतीके लिए सौंपा था । क्या यह आपको स्मरण नहीं है ? ॥१०९॥ मैंने आपके प्रसादसे विद्याधरपना प्राप्त किया । यथार्थमें विदेहा मेरी माता है वह सीता मेरी बहिन है ॥११०॥ भामण्डलके ऐसा कहनेपर विद्याधरोकी समस्त सभा आश्चर्यको प्राप्त हुई तथा चन्द्रगति संसारसे भयभीत हो भामण्डलके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तथा यह कहकर यहाँ चला आया कि हे वत्स ! तेरे माता-पिता शोकके कारण दुःखसे रह रहे हैं सो उनके नेत्रोंको आनन्द प्रदान कर ॥१११-११२॥

तदनन्तर जो उत्पन्न होता है उसका मरण अवश्य होता है और जिसका मरण होता है वह गर्भमें स्थित होता है, ऐसा विचार कर चन्द्रगति संसारसे भयभीत हो वैराग्यको प्राप्त हुआ ॥११३॥ इसी बीचमे भामण्डलने सर्वभूतहित मुनिराजसे पूछा कि हे प्रभो ! चन्द्रगति आदिका मुझपर बहुत भारी स्नेह किस कारण था ॥११४॥ इसके उत्तरमे मुनिराजने कहा कि हे भामण्डल ! तेरे माता-पिता पूर्व भवमें जिस प्रकार थे सो कहता हूँ सुन ॥११५॥

दारुग्राममे एक विमुचि नामका ब्राह्मण था उसकी स्त्रीका नाम अनुकोशा था और पुत्रका नाम अतिभूति था । अतिभूतिकी स्त्रीका नाम सरसा था ॥११६॥ किसी समय उसके घर अपनी ऊरी नामक माताके साथ कथान नामका एक ब्राह्मण आया सो उसने अतिभूतिकी स्त्री सरसा तथा घरके भीतरका सारभूत धन दोनोंका हरण किया अर्थात् सरसा और धनको लेकर कहीं भाग गया ॥११७॥ इस निमित्तसे अतिभूति बहुत दुःखी हुआ और स्त्रीको खोजमे पृथिवीपर भ्रमण करने लगा । इधर उसके चले जानेसे घर पुरुषरहित हो गया सो बाकी वचा धन भी चोर ले गये ॥११८॥ विमुचि ब्राह्मण दक्षिणांकी इच्छा करता हुआ पहले ही देशान्तर चला गया था । वहाँ जब उसने सुना कि हमारा कुल-परम्परासे चला आया घर नष्ट हो गया है तब वह शीघ्र ही लौटकर वापिस आया ॥११९॥ आकर उसने देखा कि उसकी स्त्री-अनुकोशा अत्यन्त विह्वल हो रही है और उसके शरीरपर जीर्ण-शीर्ण फटे चिथड़े ही शेष रह-गये हैं । तब उसने उसे सान्त्वना दी और कथानकी माता ऊरीके साथ पुत्रको ढूँढ़नेके लिए गया ॥१२०॥ उसने पृथिवी

तमाचार्यं परिग्राहः पुरे सर्वारिनामनि । प्रष्टुं किल महाशोको नष्टचित्तस्तुपात्मजः ॥१२२॥
 दृष्ट्वा गणेश्वरीमूर्द्धि श्रुत्वा च विविधां स्थितम् । तीव्रं संवेगमासाद्य विमुचिर्मुनिर्वा गतः ॥१२३॥
 पार्श्वे कमलकान्ताया आर्याया सुसमाहिता । सममूर्यानुकोशापि प्रव्रज्य तपसि स्थिता ॥१२४॥
 त्रयोऽपि ते शुभध्यानाः कृत्वाकालमलोलुपाः । लौकान्तिकं गता लोकं नित्यालोकमनाकुलम् ॥१२५॥
 अतिभूतिप्रभृतयो हिसावादस्य शंसकाः । द्वेपकाः संयतानां च कुम्भानां दुर्गतिं गताः ॥१२६॥
 मृगात्वं सरसा प्राप्ता चलाहकनगोरसि । व्याघ्रभीता च्युता यूथान्मृता दावानलाहता ॥१२७॥
 जाता मनस्विनीदेव्याः सुता चित्तोत्सवाह्वया । दुःखदानप्रवीणस्य प्रशमात् पापकर्मणः ॥१२८॥
 कथानः क्रमशो भूत्वा पारसीकः क्रमेलकः । मृत्वा पिङ्गलनामाभूद्धूमकेशस्य नन्दनः ॥१२९॥
 हंसस्ताराचमरसि सोऽतिभूतिः क्रमादभूत् । श्येनैर्विलससर्वाङ्गशैल्यस्य पतितोऽन्तके ॥१३०॥
 अध्यात्मयानं गुरुणा यशोमित्रं पुनः पुनः । अश्रौपीदहतां स्तोत्रं मुक्त्वा नथ जीवितम् ॥१३१॥
 दशवर्षसहस्रायुः किन्नरोऽभून्नगोत्तरे । विदग्धनगरे च्युत्वा जातः कुण्डलमण्डितः ॥१३२॥
 अहरत् पिङ्गलः कन्यां तथा कुण्डलमण्डितः । यद्व्राज्यं पुरावृत्तः सम्बन्धः परिकीर्तितः ॥१३३॥
 योऽसौ विमुचिरिष्यासीत् सोऽयं चन्द्रगतिर्नृपः । अनुकोशा तु जायाम्य जाता पुष्पवती पुनः ॥१३४॥
 कथानोऽयं सुरो हतां सरसा हृदयोत्सवा । उरी जाता विदेहा तु सोऽतिभूतिः प्रमाह्वयः ॥१३५॥

तलपर भ्रमण करते हुए लोगोंसे सुना कि सर्वारिपुर नामा नगरमें एक आचार्य है जिन्होंने अपने अवधिज्ञानसे इस जगत्को प्रकाशित कर रखा है सो वह उनसे पुत्रकी वार्ता पूछनेके उद्देश्यसे उनके पास गया । विमुचि महाशोकसे भरा था और पुत्र तथा पुत्रवधुका पता न लगने से अत्यन्त दुःखी था ॥१२१-१२२॥ वह आचार्य महाराजकी तप श्रद्धा देखकर तथा संसारकी नाना प्रकारकी स्थिति सुनकर तीव्र वैराग्यको प्राप्त हुआ और उन्हींके पास दीक्षा लेकर मुनि हो गया ॥१२३॥ विमुचिकी स्त्री अनुकोशा और कथानकी माता उरी इन दोनों ब्राह्मणियोंने भी कमलकान्ता नामक आर्यिकाके पास दीक्षा लेकर तप धारण कर लिया ॥१२४॥ विमुचि, अनुकोशा और उरी ये तीनों प्राणी महानिःस्पृह, धर्म ध्यानसे मरकर निरन्तर प्रकाशसे युक्त तथा आकुलतारहित ब्रह्मलोक नामक स्वर्गमें उत्पन्न हुए ॥१२५॥ अतिभूति तथा कथान दोनों ही हिसा धर्मके समर्थक तथा मुनियोंसे द्वेष रखनेवाले थे । इसलिए खोदे ध्यानसे मरकर दुर्गतिमें गये ॥१२६॥ अतिभूतिकी स्त्री सरसा चलाहक नामक पर्वतकी तलहटीमें मृगी हुई सो व्याघ्रसे भयभीत हो मृगोके कुण्डसे बिलुडकर दावानलमें जल मरी ॥१२७॥ तदनन्तर दुःख देनेमें प्रवीण पाप कर्मके शान्त होनेसे मनस्विनी देवीके चित्तोत्सवा हुई ॥१२८॥ और कथान मरकर क्रमसे घोड़ा तथा ऊँट हुआ । फिर मरकर धूमकेशका पुत्र पिङ्गल हुआ ॥१२९॥ अतिभूति भव भ्रमण कर क्रमसे ताराक्ष नामक सरोवरके तीरपर हंस हुआ सो किसी समय श्येन अर्थात् बाज पक्षियोंने इसका समस्त शरीर नाच डाला जिससे घायल होकर जिनमन्दिरके समीप पड़ा ॥१३०॥ वहाँ गुरु यशोमित्र नामक शिष्यको बार-बार अर्हन्तभगवान्का स्तोत्र पढ़ा रहे थे सो सुनकर हंसने प्राण छोड़े ॥१३१॥ उसके फलस्वरूप वह नगोत्तर नामक पर्वतपर दश हजार वर्षकी आयुवाला किन्नर देव हुआ और वहाँसे च्युत होकर विदग्धनगरमें राजा कुण्डलमण्डित हुआ ॥१३२॥ पूर्वभवके संस्कारसे चित्तोत्सवा कन्याका पिङ्गलने अपहरण किया और उसके पाससे कुण्डलमण्डित राजाने अपहरण किया । इन सबका जो पूर्व भवका सम्बन्ध था वह पहले कहा जा चुका है ॥१३३॥ इनमें जो विमुचि ब्राह्मण था वह चन्द्रगति राजा हुआ, उसकी अनुकोशा नामकी जो स्त्री थी वही पुष्पवती नामकी फिरसे स्त्री हुई ॥१३४॥ कथान अपहरण करनेवाला देव हुआ, सरसा चित्तोत्सवा हुई, उरी विदेहा हुई और अतिभूति मामण्डल हुआ ॥१३५॥

ततो दशरथः श्रुत्वा तं वृत्तान्तमशेषतः । भामण्डलं समाश्लिष्य वाष्पपूर्णनिरीक्षणः ॥१३६॥
 अद्भुतैर्जितमूर्धानो जातरोमोद्गमा मृशम् । आनन्दवाष्पलोलोत्था सभायामभवज्जनाः ॥१३७॥
 उद्गर्णमाननेनैव प्रीत्या तं वीक्ष्य सोदरम् । मृगीव रुटती स्नेहाहधाचोद्घृतबाहुका ॥१३८॥
 हा आतः प्रथमं दष्टो मयाद्यासीतिशब्दिनी । तमाश्लिष्य चिरं सीता रुक्मिणा धृतिमागता ॥१३९॥
 समापितः स रामेण संभ्रमालिङ्गितश्चिरम् । लक्ष्मणेन तथान्येन बन्धुलोकेन सादरम् ॥१४०॥
 नमस्कृत्य मुनि श्रेष्ठं ततः खेचरभूचराः । उद्यानात् प्रमदापूर्णा निरीयुः सुविराजिताः ॥१४१॥
 भामण्डलेन संमन्य द्रुतं दशरथो ददौ । लेखं जनकराजस्य नीतं गगनयाथिना ॥१४२॥
 प्रेषित आनुमार्गेण तस्य हंसधृतं वरम् । यान विद्याधरैर्वीरैर्भूरिभिः परिवारितम् ॥१४३॥
 प्रभामण्डलमादाय ततो भृत्यातिक्रान्तया । तुष्टो दशरथोऽयोध्यां सुव्रामसदृशोऽविशत् ॥१४४॥
 अक्षीणसर्वकोशोऽनुपचारं परं नृपः । प्रीतो भामण्डले चक्रे सर्वलोकसमन्वितः ॥१४५॥
 रम्ये सुविपुले तुंगे वायुद्यानविभूषिते । गृहे दशरथोऽदिष्टे तस्थौ भामण्डलः सुप्रभम् ॥१४६॥
 दारिद्र्यान्मोचितो लोकः परमोत्सवजन्मना । दानेन वाञ्छिताधिक्यं प्राप्तेन धरणीतले ॥१४७॥
 शत्वा पवनवेगेन जनको लेखहारिणा । सहसा वर्द्धितो दिव्या पुत्रागमनजन्मना ॥१४८॥
 प्रभाष्य चार्पितं लेखं सुदृढप्रत्ययः परम् । प्रमोदं जनकः प्राप रोमाञ्छांचितविग्रहः ॥१४९॥
 भद्रं किं किमर्थं स्वप्नः स्याज्जाग्रप्रत्ययोऽथवा । एहि दौकस्व दौकस्व तौवत्वाद्य परिप्लवे ॥१५०॥

तदनन्तर इस समस्त वृत्तान्तको सुनकर जिनके नेत्र ओंसुओंसे भर गये थे ऐसे राजा दशरथने भामण्डलका आलिङ्गन किया ॥१३६॥ उस समय सभासे जितने लोग बैठे थे सभीके मस्तक आश्चर्यसे चकित रह गये, सभीके शरीरमें बहुत भारी रोमाञ्छ निकल आये और सभीके नेत्र आनन्दके ओंसुओंसे चञ्चल हो उठे ॥१३७॥ मुखकी आकृति ही जिसे प्रकट कर रही थी ऐसे भाईको बड़े प्रेमसे देखकर सीता स्नेहवश मृगीकी तरह रोती हुई, भुजाएँ ऊपर उठा दौड़ी और हे भाई ! मैं तुम्हें आज पहले ही पहल देख रही हूँ, यह कहकर उससे लिपट गई और चिरकाल तक रुदन कर धैर्यको प्राप्त हुई ॥१३८-१३९॥ राम, लक्ष्मण तथा अन्य बन्धुओंने भी सहसा उठकर भामण्डलका आलिङ्गन किया तथा आदरसहित उससे वार्तालाप किया ॥१४०॥

तदनन्तर उन श्रेष्ठ मुनिराजको नमस्कार कर सब विद्याधर और भूमिगोचरी मनुष्य उपवनसे बाहर निकले । उस समय वे हर्षसे परिपूर्ण थे तथा अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥१४१॥ भामण्डलके साथ सलाह कर राजा दशरथने शीघ्र ही आकाशगामी विद्याधरके हाथ राजा जनकके पास पत्र भेजा ॥१४२॥ भामण्डलका उत्तम विमान आकाश-मार्गसे आ रहा था, हंसोंके द्वारा धारण किया गया था तथा बहुतसे विद्याधर वीर उसे घेरे हुए थे ॥१४३॥ तदनन्तर भामण्डलको लेकर राजा दशरथने इन्द्रके समान बड़ी विभूतिसे अयोध्यामें प्रवेश किया ॥१४४॥ अक्षीण कोशके धनी राजा दशरथने भामण्डलके आनेपर प्रसन्न हो सब लोगोंके साथ मिलकर बड़ा उत्सव किया ॥१४५॥ भामण्डल राजा दशरथके द्वारा बताये हुए रमणीय, विशाल, ऊँचे तथा बापी और वगीचासे सुशोभित महलमें मुखसे ठहरा ॥१४६॥ उस परमोत्सवके समय राजा दशरथने इतना अधिक दान दिया कि पृथ्वीतलके दरिद्र मनुष्य इच्छासे अधिक धन पाकर दरिद्रतासे मुक्त हो गये ॥१४७॥ उधर पवनके समान शीघ्रगामी पत्रवाहक विद्याधरने पुत्रके आगमनका समाचार सुनाकर राजा जनकको सहसा हर्षित कर दिया ॥१४८॥ राजा जनक दिये हुए पत्रको वाँचकर तथा उसकी सत्यताका दृढ़ विश्वास कर परम प्रमोदको प्राप्त हुए । उनका सारा शरीर हर्षसे रोमाञ्चित हो गया ॥१४९॥ वे उस विद्याधरसे पूछने लगे कि हे भद्र ! क्या

इत्युक्तवानन्वाशेषेण तरतारकलोचनः । साक्षात्पुत्रमिव प्राप्त लेखहारं स सपत्रजे ॥१५१॥
नम्रतापरिहारेण देहस्य वस्त्रभूषणम् । ससम्भ्रम द्वादौ तस्मै मुदा वृत्तमिवाचरन् ॥१५२॥
समेति बन्धुलोकोऽस्य थावद्विष्ट्यामिवर्द्धकः । तावत्तद्यानमायातं छादयद्गगनं रुचा ॥१५३॥
अपृच्छत्तस्य वृत्तान्तमतृप्तश्च पुनः पुनः । उक्तं विद्यावरैस्तस्य यथावदतिविस्तरम् ॥१५४॥
ततो यानं समारुह्य समस्तैर्वन्धुभिः समम् । निमेषेण परिप्राप्तो विनीतां त्र्यनौदिताम् ॥१५५॥
अवतीर्याम्बरादास्तु पुत्रमालिङ्ग्य निर्मरम् । सुखमीलितनेत्रोऽसौ चणां मूर्च्छासुपागतः ॥१५६॥
प्रबुध्य च विशालेन वक्षुषा बाष्पवारिणा । आसेचनकर्मैश्चिष्ट तनयं पाणिना स्पृशन् ॥१५७॥
माता तं मूर्छिता दृष्ट्वा परिष्वज्य प्रबोधिनी । आचक्रन्द सुकारुण्यं तिरश्चामपि कुर्वती ॥१५८॥
परिदेवनमेवं च चक्रे पुत्रक हा कयम् । हृतोऽसि जातमात्रस्त्वं केनाप्युत्तमवैरिणा ॥१५९॥
त्वदीयाचिन्तया देहो दग्धोऽयं बह्निवुत्थया । भवदृशनतोयेन चिराज्जिवोपितोऽग्रे मे ॥१६०॥
धन्या पुष्पवती सुखी या तेऽज्ञानि शैशवे । क्रीडता धूसराण्यंके निहितानि सुचुम्बितम् ॥१६१॥
चन्दनेन विलिप्तस्य कुङ्कुमस्यासकाञ्चितम् । दधत्तः शैशवं दृष्टं कौमारं ते तथा वपुः ॥१६२॥
नेत्राभ्यामजस्रमुत्सृज्य स्तनान्यां च पचद्विचरम् । सुपुत्रं सङ्गमानन्दं विदेहा परमं गता ॥१६३॥

यह स्वप्न है ? अथवा जाग्रत दशामे होनेवाला प्रत्यक्ष ज्ञान है ! आओ, आओ मैं तुम्हारा आलिङ्गन करूँ ॥१५०॥ इतना कहकर आनन्दके आँसुओंसे जिनके नेत्रोंकी पुतलियाँ चञ्चल हो रही थीं ऐसे राजा जनकने उस पत्रवाहक विद्याधरका ऐसा आलिङ्गन किया मानो साक्षात् पुत्र ही आ गया हो ॥१५१॥ उन्होंने इस हर्षसे नृत्य करते हुए की तरह उस विद्याधरके लिए अपने शरीरपर स्थित समस्त वस्त्राभूषण दे दिये । शरीरपर केवल उतने ही वस्त्र शेष रहने दिये जिससे कि वे नग्न न दिखे ॥१५२॥ हर्षकी वृद्धि करनेवाले राजा जनकके बन्धुवर्ग जब तक इकट्ठे होते हैं तब तक अपनी कान्तिसे आकाशको आच्छादित करता हुआ आमण्डलका विमान वहाँ आ पहुँचा ॥१५३॥ राजा जनकने अवृत्त हो बार-बार आमण्डलका वृत्तान्त पूछा और विद्याधरोने सब वृत्तान्त ज्योंका-त्यों बढ़े विस्तारसे कहा ॥१५४॥

तदनन्तर राजा जनक समस्त आई-बन्धुओंके साथ विमानपर आरुढ़ हो निमेषमात्रमें अयोध्या जा पहुँचे । उस समय अयोध्या तुरहीके मधुर शब्दसे शब्दायमान हो रही थी ॥१५५॥ आकाशसे शीघ्र ही उतरकर उन्होंने पुत्रका गाढ़ आलिङ्गन किया । आलिङ्गनजन्य सुखसे उनके नेत्र निमीलित हो गये और क्षण भरके लिए वे मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥१५६॥ सचेत होनेपर उन्होंने जिनसे अश्रु-जल भर रहा था ऐसे विशाल लोचनोंसे वृत्तिकर पुत्रका अवलोकन किया तथा हाथसे उसका स्पर्श किया ॥१५७॥ माता विदेहा भी पुत्रको देखकर तथा आलिङ्गन कर हर्षातिरेकसे मूर्छित हो गईं और सचेत होनेपर ऐसा रुदन करने लगी कि जिससे तिर्यञ्चोको भी दया उत्पन्न हो रही थी ॥१५८॥ वह विलाप करने लगी कि हाय पुत्र ! तू उत्पन्न होते ही किसी विकट वैरीके द्वारा क्यों अपहृत हो गया था ? ॥१५९॥ मेरा यह शरीर अग्निके समान तेरे देखनेकी चिन्तासे अब तक जलता रहा है । आज चिरकालके बाद तेरे दर्शनरूपी जलसे शान्त हुआ है ॥१६०॥ पुष्पवती बड़ी ही धन्य और भाग्यशालिनी उत्तम स्त्री है जिसने कि बाल्य अवस्थामें क्रीड़ासे धूलधूसरित तेरे अङ्ग अपनी गोदमें रक्खे हैं तथा चन्दनसे लिप्त और केशरके तिलकसे सुशोभित तेरे मुखका चुम्बन किया है एवं शैशव अवस्थाको धारण करनेवाले तेरे कुमारकालीन शरीरको देखा है ॥१६१-१६२॥ माता विदेहाके नेत्रोंसे आँसू और स्तनोंसे चिरकाल तक दूध निकलता रहा । वह उत्तम पुत्रका सङ्ग पाकर परम आनन्दको प्राप्त हुई ॥१६३॥

१. वृत्तमिवा-म० । २. थावद्विष्ट्यामिवर्द्धकः म० । ३. त्र्यनौदिता ख० । ४. 'तदासेचनकं वृत्ते वास्यन्तो यस्य दर्शनात्' ।

अहंछासनदेवीव जूम्भैरावतनामनि । सा तत्र लोचने कृत्वा तस्यौ मग्ना सुखाम्बुधौ ॥१६४॥
 भासमात्रमुपित्वातो बन्धुसङ्गममोदिता । पद्मो भामण्डलेनोच्चै विनयं विभ्रता^१ परम् ॥१६५॥
 वैदेह्याः शरणं देव त्वमेवोत्तमबान्धवः । छन्देऽस्या वर्ततां येन नो यात्युद्वेगमेपका ॥१६६॥
 स्वसारं च समालिङ्ग्य स्नेहादेवां^२ सुचेष्टिताम् । उपादिशद्सौ भूयो भूयः प्रवरमानसः ॥१६७॥
 मातालिङ्गयागदत् सीतां सुते स्वसुरयोः प्रिये । परिवर्गे च तत्कुर्याः श्लाघ्यतां येन गच्छसि ॥१६८॥
 सर्वनामन्य विन्यस्य कनके मिथिलेशिताम् । गृहीत्वा पितरौ यातः स्थानं भामण्डलो निजम् ॥१६९॥

इन्द्रवज्रा

वीक्षस्व माहात्म्यमिदं कृतस्य धर्मस्य पूर्वं भगवाधिराज ।
 विद्याधरेन्द्रो यदवापि बन्धुः सीता च पत्नी गुणरूपपूर्णा ॥१७०॥

उपजातिः

अधिष्ठते देवगणैश्च चापे सक्कटे सारिगदादियुक्ते ।
 लब्धे सुरैरप्यतिदुर्लभे ये पद्मेन लक्ष्मीनिलयश्च भृत्यः ॥१७१॥

उपेन्द्रवज्रा

इदं जनो यः सुविशुद्धचेताः शृणोति भामण्डलबन्धुयोगम् ।
 अभीष्टयोगानन्तरिचिराय रविप्रभोजसौ लभते शुभात्मा ॥१७२॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते भामण्डलसमागमामिधानं नाम त्रिशतमं पर्व ॥३०॥

जिस प्रकार ऐरावत क्षेत्रमें जूम्भा नामकी जिनशासनकी सेवक देवी रहती है उसी प्रकार वह भामण्डलपर दृष्टि लगाकर अर्थात् उसे देखती हुई सुखरूपी सागरमें निमग्न होकर रहने लगी ॥१६४॥ तदनन्तर एक मास तक अयोध्यामें रहनेके बाद भाई-बन्धुओंके समागमसे प्रसन्न एवं परम विनयको धारण करनेवाले भामण्डलने श्रीरामसे कहा कि ॥१६५॥ हे देव ! सीताके आप ही शरण हो और आप ही इसके सर्वोत्तम बान्धव हो । आप इसके हृदयमें इस प्रकार विद्यमान रहे कि जिससे यह उद्वेगको प्राप्त न हो ॥१६६॥ उत्कृष्ट हृदयके धारक भामण्डलने उत्तम चेष्टाओंसे सुशीमित वहिनका स्नेहवश आलिङ्गन कर उसे बार-बार उपदेश दिया ॥१६७॥ माता विदेहाने भी सीताका आलिङ्गन कर कहा कि हे बेटी ! तू अपने सास ससुरको प्रिय हो, तथा परिजनके साथ ऐसा व्यवहार कर कि जिससे प्रशंसाको प्राप्त हो ॥१६८॥ तदनन्तर भामण्डल सब लोगोंसे पूछकर तथा मिथिलाका राज्य कनकके लिए सौंपकर माता पिताको साथ ले अपने स्थानपर चला गया ॥१६९॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे भगवेश्वर ! पूर्व भवमें किये हुए धर्मका यह माहात्म्य देखो । धर्मके माहात्म्यसे ही रामने विद्याधरका राजा भामण्डल जैसा बन्धु प्राप्त किया, गुण तथा रूपसे परिपूर्ण सीता जैसी पत्नी प्राप्त की तथा देवोंके समूहसे अधिष्ठित कवच, हल, गदा आदिसे युक्त एवं देवोंके द्वारा दुर्लभ धनुष प्राप्त किये । लक्ष्मीका भाण्डार लक्ष्मण जैसा सेवक प्राप्त किया ॥१७०-१७१॥ जो मनुष्य अत्यन्त विशुद्ध हृदयसे भामण्डलके इस इष्ट समागमको सुनता है सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला वह शुभात्मा मनुष्य चिरकाल तक इष्ट जनोके साथ समागम और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७२॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें भामण्डलके समागमका वर्णन करनेवाला तीसरा पर्व समाप्त हुआ ॥३०॥

एकत्रिंशत्तमं पर्व

उवाच श्रेणिको भूपः सवन्धुरनररण्यजः । इमां विभूतिं सग्राप्य चक्रे किं गणनायक ॥१॥
पुरातनं च वृत्तान्तं रामलक्ष्मणयोस्तयोः । तथैव विदितं सर्वं तन्नो बृहि महायशः ॥२॥
इति पृष्टो महातेजा जगाद मुनिपुङ्गवः । निरवद्यं तथा तत्त्वं यथा सर्वज्ञभाषितम् ॥३॥
स्वसंशयमशेषज्ञं राजा दशरथोऽन्यदा । प्रणम्य साधुमप्राचीत् सर्वभूतहितं हितम् ॥४॥
मया जन्मानि भूरीणि परिप्राप्तानि यानि तु । वेद्यथैकमपि नो तेषां तत्सर्वं विदितं त्वया ॥५॥
तान्यहं ज्ञातुमिच्छामि भगवन्नुच्यतामिति । भवत्प्रसादतो मोहं निराकर्तुमहं यत्ने ॥६॥
श्रोतुं समुद्यतस्यैवं^१ भवान्^४ दशरथस्य तु । सर्वभूतहितः साधुरिदं वचनमब्रवीत् ॥७॥
शृणु राजन् प्रवचयामि यन्मां पृच्छसि सन्मते । त्वया पर्यव्य संसारे मतिरासादिता यथा ॥८॥
न त्वयैकेन संसारो आन्तोऽन्यैरपि संसृतः^२ । चिन्वानैः कर्मभिः कर्मदुःखसंजननो महान् ॥९॥
अस्मिन् जगत्त्रये राजन् जन्तूनां स्वहितैषिणाम् । स्थितयस्तिज उद्दिष्टा उत्तमाधममध्यमाः ॥१०॥
^३अभाष्यी च तथा^५ भाष्यी सैद्धी^६ च गतिपूत्तमा । पुनरावृत्तिनिर्मुक्ता कल्याणी जिनदेशिता ॥११॥
तेयं सिद्धगतिः शुद्धा सनातनसुखावहा । इन्द्रियव्रणरोगार्तमोहेनान्धैर्^७ दृश्यते ॥१२॥

अथानन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे पूछा कि हे गणनायक ! इष्टजनोसे सहित, राजा अनरण्यके पुत्र राजा दशरथने इस विभूतिको पाकर क्या किया ? ॥१॥ हे महायशके धारक ! राम और लक्ष्मणका पुरातन वृत्तान्त आपको ही विदित है इसलिए वह सब वृत्तान्त मुझसे कहिए ॥२॥ इस प्रकार पूछे गये महातेजस्वी मुनिराजने कहा कि हे राजन् ! इनका जैसा वृत्तान्त सर्वज्ञदेवने कहा है वैसा कहता हूँ तू सुन ॥३॥ वे कहने लगे कि किसी समय राजा दशरथने समस्त पदार्थोंको जाननेवाले सर्वभूतहित नामक हितकारी मुनिराजको प्रणाम कर उनसे अपना संशय पूछा ॥४॥ उन्होंने कहा कि हे स्वामिन् ! मैंने बहुतसे जन्म धारण किये हैं पर मैं उनसे एक भी भवको नहीं जानता जब कि आपके द्वारा सब विदित हैं ॥५॥ हे भगवन् ! मैं उन्हें जानना चाहता हूँ सो कहिए । आपके प्रसादसे^३ मोह नष्ट करनेके लिए मैं आपकी पूजा करता हूँ ॥६॥ इस प्रकार भवान्तर सुननेके लिए उद्यत राजा दशरथसे सर्वभूतहित मुनि निम्नाङ्कित वचन कहने लगे ॥७॥

उन्होंने कहा कि हे राजन् ! सुन । हे सद्बुद्धिके धारक ! तुमने जो पूछा है वह सब मैं कहूँगा । तुमने इस संसारसे समन्तात् भ्रमण कर जिस प्रकार सद्बुद्धि प्राप्त की है वह सब मैं निवेदन करूँगा ॥८॥ दुःख देनेवाले इस महान् संसारमें केवल तुमने ही भ्रमण नहीं किया है किन्तु कर्मोंका संचय करनेवाले अन्य लोगोंने भी कर्मोदयसे इसमें भ्रमण किया है ॥९॥ हे राजन् ! इस जगत्त्रयमें अपना हित चाहनेवाले प्राणियोंकी दशाएँ उत्तम मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन प्रकारकी वर्णित की गई हैं ॥१०॥ उनमेंसे अभव्य जीवकी दशा जघन्य है, भव्यकी मध्यम है और सिद्धोंकी उत्तम है । जिनेन्द्रभगवान्ने सिद्धगतिको पुनरागमनसे रहित तथा कल्याणकारिणी बतलाया है ॥११॥ यह सिद्धगति शुद्ध है तथा सनातन सुखको देनेवाली है ।

१. दशरथः । २. विदितं म० । ३. समुद्यतस्यैव म० । ४. पूर्वपर्यायान् । ५. संसरणविषयीकृतः । ६. अभव्यस्येयम् अभाष्यी । ७. भव्यस्यैव भाष्यी । ८. सिद्धानामिषं सैद्धी ।

श्रद्धासवेगहीनानां हिंसादिष्वनिवर्तिनाम् । चतुर्गतिकसवर्ता गतिरुग्रतमोरजाः ॥१३॥
 अभव्यानां गतिः विलुष्टा विनाशपरिवर्जिता ! भव्यानां तु परिज्ञेया गतिर्निवृत्तिभाविनी ॥१४॥
 धर्मादिद्रव्यपर्यन्तं लोकालोकमशेषतः । पृथिवीप्रभृतीन् कान्यानांश्रिताश्वेतनाभृतः ॥१५॥
 जीवराशिरनन्तोऽर्थं विद्यते नास्य संख्यः । दृष्टान्तः सिकताकाशचन्द्रादित्यकरादिकः ॥१६॥
 'अनाद्यमन्तनिर्मुक्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् । स्वकर्मनिचयोपेतं नानायोगिनृकताटनम् ॥१७॥
 सिद्धाः सिद्धयन्ति सेत्स्यन्ति कालेऽन्तपरिवर्जिते । जिनदृष्टेन धर्मेण नैवान्येन कथञ्चन ॥१८॥
 यः सन्देहकलङ्गेन निवृत्तः पापकर्मणा । 'अभावितस्य धर्मेण का तस्य श्रद्धावन्ता ॥१९॥
 कुतः श्रद्धाविमुक्तस्य धर्मो धर्मफलानि च । अत्यन्तदुःखमज्ञानं सम्यक्स्वरहितात्मनाम् ॥२०॥
 अत्युग्रकर्मनिर्मोकैर्वेष्टितानां समन्ततः । मिथ्याधर्माचुराणां स्वाहिताद्दूरवर्तिनाम् ॥२१॥
 सेनापुरेऽथ दीपिन्या उपास्तिर्नाम भावनः । सा च मिथ्याभिमानेन परिपूर्णा निरर्गलम् ॥२२॥
 'अश्रद्धाघाता संरंभस्तस्मिन्नेवधारिणी । दुर्भावा सततं साधुनिन्दनासकशब्दिका ॥२३॥
 प्रयच्छति स्वयं नाशं यच्छन्तं नानुमन्यते । निवारयति यत्नेन विद्यमानं सुभूर्यपि ॥२४॥

इन्द्रियरूपी व्रणरोगसे पीड़ित तथा मोहसे अन्धे मनुष्य इसे नहीं देख सकते हैं ॥१२॥ जो मनुष्य श्रद्धा और संवेगसे रहित हैं तथा हिंसादि पाँच पापोंसे निवृत्त नहीं हैं उनकी चतुर्गतिमें भ्रमण करनेवाली गति अर्थात् दशा होती है । उनकी यह गति अत्यन्त उग्र तमोगुण और रजोगुणसे युक्त रहती है ॥१३॥ अभव्य जीवोंकी गति अतिशय दुःखपूर्ण तथा विनाशसे रहित है और भव्य जीवोंकी गति मोक्ष प्राप्त करनेवाली है अर्थात् अभव्य जीव सदा चतुर्गतिमें ही भ्रमण करते हैं और भव्य जीवोंमें किन्हींका निर्वाण भी हो जाता है ॥१४॥ जहाँ तक धर्माधर्मादि द्रव्य पाये जाते हैं उसे लोक कहते हैं और वाकी समस्त आकाश अलोक कहलता है । संसारके समस्त प्राणी पृथिवी आदि पट्कायकी धारण करनेवाले हैं ॥१५॥ यह जीवराशि अनन्त है । इसका क्षय नहीं होता है । इसके लिए बालूके कण, आकाश अथवा चन्द्रमा सूर्य आदिकी किरणें दृष्टान्त हैं अर्थात् जिस प्रकार बालूके कणोंका अन्त नहीं है, आकाशका अन्त नहीं है और चन्द्र तथा सूर्यकी किरणोंका अन्त नहीं है उसी प्रकार जीवराशिका भी अन्त नहीं है ॥१६॥ चर अचर पदार्थों अर्थात् त्रस स्थावर जीवोंसे सहित वे तीनों लोक अनादि अनन्त हैं, स्वकीय कर्मोंके समूहसे सहित है तथा नाना योनियोंके जीव इनमें भ्रमण करते रहते हैं ॥१७॥ आज तक जितने सिद्ध हुए हैं, जो वर्तमानमें सिद्ध हो रहे हैं और जो अनन्त काल तक सिद्ध होंगे वे जिनैन्द्रदेवके द्वारा देखे हुए धर्मोंके द्वारा ही होंगे अन्य किसी प्रकारसे नहीं ॥१८॥ जो पाप कर्मोंके कारण संशयरूपी कलङ्कसे व्याप्त है तथा धर्मकी भावना अर्थात् संस्कारसे रहित है उसके सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है ? ॥१९॥ जो मनुष्य श्रद्धासे रहित है उसके धर्म और धर्मके फल कहाँसे प्राप्त हो सकते हैं ? जिनकी आत्मा सम्यग्दर्शनसे रहित है, जो अत्यन्त उग्र कर्मरूपी कौचलीसे सब ओरसे वेष्टित है, जो मिथ्या धर्ममें अनुरक्त हैं और जो आत्महितसे दूर रहते हैं उन प्राणियोंको अत्यन्त दुःख देनेवाला अज्ञान ही प्राप्त होता है ॥२०-२१॥

अथानन्तर हस्तिनापुर नगरमें एक उपास्ति नामका गृहस्थ था । उसकी दीपिनी नामकी स्त्री थी । वह दीपिनी मिथ्या अभिमानसे पूर्ण थी, श्रद्धासे रहित थी, क्रोध तथा मात्सर्यरूपी विषको धारण करनेवाली थी, दुष्ट भावोंसे युक्त थी, उसके शब्द सदा साधुओंकी निन्दा करनेमें तत्पर रहते थे । वह न कभी स्वयं किसीको आहार देती थी और न देते हुए किसी दूसरेकी

१. अनादिमन्त-म० । २. असंस्कृतस्व-धर्मभावनारहितस्येति यावत् । ३. विज्ञानं म० । ४. निर्मोकै वेष्टिताना म० । ५. दुःखवर्तिना । ६. गृहस्थः इति । ७. अश्रद्धाघाता म० ।

एवमादिमहादोषा कुतीर्थपरिभाविता । कालमेत्याभ्रमद्भौमे निष्पारे भवसागरे ॥२५॥
 उपास्तिर्देहि देहीति समम्यस्याधरद्वयम् । पुण्यकर्मानुभावेन पुरेऽन्द्रकपुराह्वये ॥२६॥
 सुतोऽमृद् भद्रधारिण्योभोग्यवान् बहुबान्धवः । धारणो नामतस्तस्य पत्नी नयनसुन्दरी ॥२७॥
 देशकालप्रपञ्चेभ्यः साधुभ्यः शुद्धभावतः । तत्वासौ पारणा सम्यक्काले संत्यज्य विग्रहम् ॥२८॥
 विदेहे धातकीखण्डे मेरोरुत्तरतः कुरौ । मुत्त्वः पत्यत्रयं भोगं समारूढस्त्रिविट्पम् ॥२९॥
 च्युतोऽतः पुष्कलावत्यां नगर्यां नन्दिघोषतः । वसुधायां समुत्पन्नो नामतो नन्दिवर्धनः ॥३०॥
 नन्दिघोषोऽन्यदा धर्मं श्रुत्वोद्यानं प्रवृद्धवान् । नन्दिवर्धनमाधाय पृथिवीपरिपालने ॥३१॥
 यशोधरमुनेः पार्वे प्रमज्ज्य सुमहत्तपः । कृत्वा स्वर्गं समारूढस्तनुं त्यक्त्वा यथाविधि ॥३२॥
 गृह्धर्मसमाप्तको नमस्कारपरायणः । पूर्वकोटीं महाभोगान् सुक्त्वा श्रीनन्दिवर्धनः ॥३३॥
 संन्यासेन तनुं त्यक्त्वा प्रयातः पञ्चमं दिवम् । ततश्च्युतो विदेहेऽस्मिन् गिरिराजस्य पश्चिमे ॥३४॥
 ख्यते शशिपुरे स्थाने विजयाद्धनगोचमे । सूर्यज्योऽभवद् विद्युल्लतायां रत्नमालिनः ॥३५॥
 अन्यदा सिंहनगरं रत्नमाली महाबलः । प्रस्थितो विग्रहं कर्तुं यत्रासौ वज्रलोचनः ॥३६॥
 रथैः प्रभास्वरैर्दिव्यैः पदातिगजवाजिभिः । नानाशस्त्रकृतघ्वान्तैः सामन्तैः सुमहाबलैः ॥३७॥

अनुमोदना करती थी । यदि कोई दानादि सत्कार्योमें प्रवृत्त होता था तो उसे वह प्रयत्नपूर्वक मना करती थी । इत्यादि अनेक महादोषोंसे युक्त थी और कुतीर्थकी भावनासे युक्त थी । इस प्रकार समय व्यतीत कर वह भयङ्कर तथा पाररहित संसार सागरमें भ्रमण करने लगी ॥२२-२५॥ इसके विपरीत उपास्ति 'देहि' 'देहि' अर्थात् 'देओ' 'देओ' इन दो अक्षरोंका अच्छी तरह अभ्यास कर—अत्यधिक दान देकर पुण्य कर्मके प्रभावसे अन्द्रकपुरनामा नगरमें मद्रनामा गृहस्थ और उसकी धारिणीनामा स्त्रीके धारण नामका भाग्यशाली एवं अनेक वन्धुजनोंसे युक्त पुत्र हुआ । उसकी नयनसुन्दरी नामकी स्त्री थी ॥२६-२७॥ वह योग्य देश तथा कालमें प्राप्त हुए साधुओंके लिए शुद्धभावसे आहार देता था । जिसके फलस्वरूप अन्तमें समाधिपूर्वक शरीर का त्यागकर धातकीखण्डद्वीप सम्वन्धी विदेह क्षेत्रमें मेरु पर्वतकी उत्तर दिशामें विद्यमान कुरुक्षेत्रमें आर्य हुआ । वहाँ तीन पत्य तक भोग भोगकर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥२८-२९॥ वहाँसे च्युत होकर पुष्कलावती नगरमें राजा नन्दिघोष और वसुधा रानीके नन्दिवर्धन नामका पुत्र हुआ ॥३०॥ एक दिन राजा नन्दिघोष उत्कृष्ट धर्म श्रवण कर प्रबोधको प्राप्त हुआ और नन्दि-वर्धनको पृथिवी-पालनका भार सौंप यशोधर मुनिराजके समीप दीक्षा लेकर महातप करने लगा । तथा अन्तमें विधिपूर्वक शरीर त्यागकर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥३१-३२॥

इधर नन्दिवर्धन गृहस्थका धर्म धारण करनेसे लीन एवं पञ्च-नमस्कार मन्त्रकी आराधना करनेमें तत्पर था । वह एक करोड़ पूर्वतक महाभोगोंको भोगकर तथा संन्याससे शरीर छोड़कर पञ्चम स्वर्गमें गया । वहाँसे च्युत होकर इसी विदेह क्षेत्रमें सुमेरु पर्वतके पश्चिमकी ओर विजयार्थ पर्वतपर स्थित शशिपुरनामा नगरमें राजा रत्नमाली और रानी विद्युल्लताके सूर्यज्य नामका पुत्र हुआ ॥३३-३५॥

अथानन्तर एक समय महा बलवान् राजा रत्नमाली युद्ध करनेके लिए उस सिंहपुर नगर की ओर चला जहाँ कि राजा वज्रलोचन रहता था ॥३६॥ वह देदीप्यमान सुन्दर रथ, पैदल सेना, हाथी, घोड़े तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंसे अन्धकार उत्पन्न करनेवाले अत्यन्त बलवान्

१. चन्द्रपुराह्वये म० । २. मद्रनामा पुरुषः, तस्य धारिणी नाम्नी स्त्री तयोः । ३. प्रयत्नेभ्यो म० । ४. स्वर्गम् । ५. पृथुलावत्यां ज० । ६. सुमेरोः ।

तं दृष्टोष्ठं धनुःपाणिं कवचावृतविग्रहम् । ^१दग्धुकाममरिस्थानं क्रोधादाग्नेयविद्यया ॥३८॥
 रथाग्रास्त्रुडमायान्तं वेगिनं भीषणाकृतिम् । नमस्यं सहसा कश्चिदमरोऽभिदर्धाविति ॥३९॥
 रत्नमालिन् किमरब्धामिदं संरंभमुत्सृज । विवृण्व्यस्व वदान्येष वृत्तान्तं तव पूर्वकम् ॥४०॥
 इहासीद् भारते वास्ये मांसादोऽवमकर्मकृत् । गान्धार्था भूतिरुर्वीश्रुतुपमन्युः पुरोहितः ॥४१॥
 साधोः कमलगर्भस्य श्रुत्वा ^२व्याकरणं च सः । नाचरामि पुनः पापमिति व्रतमुपाददे ॥४२॥
 पञ्चपत्न्येषामं स्वर्गं तेनायुः समुपाजितम् । उपमन्यूपदेशेन ^३भस्मसाम्राज्यावमाहृतम् ॥४३॥
 मुञ्चते सुकृतं चासाववस्कन्देन चारिमिः । प्रपत्य हिंसितः साकमुपमन्युः ^४पुरोधसा ॥४४॥
 पुरोहितो गजो जातो युद्धेऽसौ अर्जरीकृतः । सम्प्राप्य ^५जाप्यमप्राप्तमितरैर्दुःखभाजनैः ॥४५॥
 पुनस्तत्रैव गान्धार्था भूतिपुत्रस्य धीमतः । देव्यां योजनगन्धार्थां पुनोऽभूदरिसूदनः ॥४६॥
 इष्ट्वा कमलगर्भं च पूर्वं जन्म समस्मरत् । प्रव्रज्यासौ ततो मृत्वा ^६शतारंसेहं सुरोऽभवम् ॥४७॥
 स त्वं 'भूतिभूयो जातो मन्दारण्ये दुराकृतिः । अकामनिर्जरा तस्य दावदग्धस्य ^७भूकृता' ॥४८॥
 कम्बोजेन सताकारि यत्पया कर्म दाहणम् । ^८विलज्ज्याख्येन मृतत्वासीच्छर्करानरकं गतः ॥४९॥
^९मया स्नेहासुबन्धेन ततस्त्वं सम्प्रबोधितः । अयमुद्दृष्ट्य जातोऽसि रत्नमाली खगोश्वरः ॥५०॥

सामन्तांसे सहित था-॥३७॥ जो क्रोधके कारण ओंठ डस रहा था, जिसके हाथमे धनुष था, जिसका शरीर कवचसे आच्छादित था, जो आग्नेयविद्यासे शत्रुका स्थान जलाना चाहता था, जो रथके अग्रभागपर आरूढ़ था, जो वेगशाली था एवं भयङ्कर आकारका धारक था । ऐसे उस रत्नमालीको आकाशमे स्थित देख सहसा किसी देवने इस प्रकार कहा ॥३८-३९॥ कि हे रत्नमालिन् ! तूने यह क्या आरम्भ कर रक्खा है ? क्रोधको छोड़ और स्मरण कर, मैं तेरा पूर्व वृत्तान्त कहता हूँ ॥४०॥

'इसी भरत क्षेत्रकी गान्धारीनामा नगरीमें एक भूति नामका राजा था । उपमन्यु उसके पुरोहितका नाम था । राजा और पुरोहित दोनों ही मांसभोजी तथा नीचकार्य करनेवाले थे ॥४१॥ एक बार कमलगर्भनामा मुनिका व्याख्यान सुनकर राजा भूतिने व्रत लिया कि अब मैं ऐसे पापका आचरण फिर कभी नहीं करूँगा ॥४२॥ इस व्रतके प्रभावसे उसने इतने पुण्यका सञ्चय किया कि उससे स्वर्गकी पाँच पत्त्य प्रमाण आयुका बन्ध हो सकता था, परन्तु उपमन्यु पुरोहितके उपदेशसे उसका यह सब पुण्य भस्म-भावको प्राप्त हो गया अर्थात् नष्ट हो गया । उसने उस पुण्यभावको छोड़ दिया । उसी समय शत्रुओंने आक्रमण कर पुरोहितके साथ-साथ उसे मार डाला ॥४३-४४॥ पुरोहितका जीव मरकर हाथी हुआ सो युद्धमे घायल हो अन्य दुःखी जीवोंकी जिसका मिलना दुर्लभ था ऐसे पञ्च नमस्कार भन्त्रको पाकर उसी गान्धारीके राजा भूतिके बुद्धिमान पुत्रकी योजनगन्धा नामा स्त्रीके अरिसूदन नामका पुत्र हुआ ॥४५-४६॥ कमलगर्भ मुनिराजके दर्शन कर अरिसूदनको पूर्व जन्मका स्मरण हो आया जिससे विरक्त होकर उसने दीक्षा ले ली और मरकर शतार नामक ग्यारहवें स्वर्ग मे देव हुआ । इस तरह मैं वही पुरोहितका जीव देव हूँ और तू राजा भूतिका जीव मरकर मन्दारण्यनामा वनमे मृग हुआ सो वहाँ दावानलमे जलकर उसने अकामनिर्जरा की उसके फलस्वरूप वह विलज्ज नामका नीच पुरुष हुआ । उस पर्यायमे तूने जो दाहण कार्य किये—तीव्र पाप किये । उनके फलस्वरूप तू शर्कराप्रभा नामक दूसरे नरक गया ॥४७-४८॥ तदनन्तर स्नेहके संस्कारसे मैंने वहाँ

१ ऋग्वेद कामं 'तुं काममनसोरपि' इति मल्लोपः दग्धकामम० । २ जगाद । ३ व्याख्यानम् । ४ उपमन्यूपदेशेन व्रतं त्यक्तम् । ५ उपमन्युः पुरोधसा म० । ६ जप्य म० । ७ शतारस्वर्गः । ८ भूतिनाम-वृषः । ९ दायदग्धोऽयं म०, ख० । १० नीचपुत्रेण । ११ विलज्ज्याख्ये वने मृतः सन् शर्करानामनरकं प्राप्तः । १२ महा- म० ।

पर्याप्तानि न किं तानि दुःखान्तीत्युदितश्च सः । सूर्यज्ञयसुतं राज्ये विधाय कुलनन्दनम् ॥५१॥
 वृत्तान्तश्रवणात्तस्मात्परं निर्वन्दमीयुषा । सूर्यज्ञयेन सहितं सत्कर्मोदयचेतसा ॥५२॥
 रत्नमाली पुनर्नानादुर्गतित्रस्तमानसः । ययौ शरणमाचार्यं सौम्यं तिलकसुन्दरम् ॥५३॥
 सूर्यज्ञयस्तपः कृत्वा महाशुक्रमुपागमत् । च्युतोऽनरण्यराजर्षेः सुतो दशरथोऽभवत् ॥५४॥
 स्वल्पेन सुकृतेन त्वमुपास्तिप्रमुखैर्भवेः । न्यग्रोधबीजवद्वृद्धिं सम्प्राप्तोऽसि शुभोदयात् ॥५५॥
 नन्दिवर्धनकाले तैर् नन्दिघोषपिता च यः । सोऽहं ग्रैवेयकाद् भष्टः सर्वभूतहितोऽभवम् ॥५६॥
 यो भूतिरूपमन्युश्च तावेतौ तद्वशानुगौ । जनको कनकक्षेत्रि जातौ सुकृतचेतसा ॥५७॥
 संसारे न परः कश्चिन्नात्मीयः कश्चिदज्ञसा । तेषां शुभाशुभैर्जन्तो रूढतर्परिवर्तना ॥५८॥
 उदाहृतमिदं श्रुत्वा विनीतो वीतसंशयः । अनरण्यसुतो जातः प्रबुद्धः संयमोन्मुखः ॥५९॥
 सर्वादरसमेतश्च सम्पूज्य चरणौ पुरोः । प्रगम्य च विशुद्धात्मा प्रविशेत् सुकोशलम् ॥६०॥
 एवं च मानसे चक्रे सार्वभौमेश्वरं पदम् । पद्माय सुधिषे दत्त्वा माधवीयां श्रये गतिम् ॥६१॥
 धर्मात्मा सुस्थिरा रामश्चिसमुद्रां वसुन्धरात् । अनुपालयितुं शक्तौ भ्रातृभिः परिवारितः ॥६२॥
 धिन्तयत्येवमेवास्मिन् राज्यमोहपराद्मुखे । मुक्त्यर्थार्थहितचेतस्के श्रीमदशरथे नृपे ॥६३॥
 तिरोधान गता क्वापि स्वच्छज्योत्स्नापटा शरत् । चन्द्रास्याहिमर्भोतेव सरीसृहचिरिच्छाया ॥६४॥
 प्राष्ठः प्रालेयसंपातं विच्छायांकृतनोरजः । हेमन्तो जडवातेन व्याकुलीकृतविष्टपः ॥६५॥

जाकर तुमने सम्प्रोधा जिसके प्रभावसे निकल कर तू यह रत्नमाली विद्याधर हुआ है ॥५०॥
 तूने क्या वे दुःख नहीं पाये है ? इस प्रकार देवके कहते ही रत्नमालीका मन नाना दुर्गतियोंसे
 भयभीत हो गया । इस वृत्तान्तके सुननेसे रत्नमालीका पुत्र सूर्यज्ञय भी परम वैराग्यको प्राप्त हो
 गया इसलिए उस पुण्यात्माके साथ ही साथ राजा रत्नमाली, सूर्यज्ञयके पुत्र कुलनन्दको राज्य
 देकर तिलकसुन्दरनामा प्रशान्त आचार्यकी शरणमें पहुँचा ॥५१-५३॥ तदनन्तर सूर्यज्ञय तप कर
 महाशुक्र स्वर्गमें गया और वहाँसे च्युत होकर राजर्षि अनरण्यके दशरथ नामका पुत्र हुआ ॥५४॥
 सर्वभूतहित मुनि कहते हैं कि तू थोड़े ही पुण्यके द्वारा उपास्ति आदि भग्नोमें वटवीजकी तरह
 शुभोदयसे वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥५५॥ तू राजा दशरथ उपास्तिका जीव है और नन्दिवर्धनकी
 पर्यायमें जो तेरा पिता नन्दिघोष था वह तपकर ग्रैवेयक गया और वहाँसे च्युत होकर मैं सर्वभूत-
 हित हुआ हूँ ॥५६॥ तथा उसके अनुकूल रहनेवाले जो भूति और उपमन्युके जीव थे वे पुण्यके
 प्रभावसे क्रमशः राजा जनक एवं कनक हुए हैं ॥५७॥ वास्तवमें इस संसारमें न तो कोई पर है
 और न अपना है । शुभाशुभ कर्मोंके कारण जीवका यह जन्म-मरणरूप परिवर्तन होता रहता
 है ॥५८॥ इस प्रकार पूर्व भवका वृत्तान्त सुन अनरण्यका पुत्र राजा दशरथ प्रतिबोधको प्राप्त
 हुआ तथा सब प्रकारका संशय छोड़ विनीत हो संयम धारण करनेके सन्मुख हुआ ॥५९॥
 सम्पूर्ण आदरके साथ उसने गुरुके चरणोंकी पूजा की, उन्हें प्रणाम किया और तदनन्तर निर्मल
 हृदय हो नगरमें प्रवेश किया ॥६०॥ उसने मनमें विचार किया कि यह महामण्डलेश्वरका पद
 बुद्धिमान् रामके लिए देकर मैं मुनिव्रत धारण करूँ ॥६१॥ धर्मात्मा तथा स्थिर चित्तका धारक
 राम अपने भाइयोंके साथ जिसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिणमें तीन समुद्र हैं ऐसी इस भरत
 क्षेत्रकी पृथ्वीका पालन करनेमें समर्थ है ॥६२॥ इस प्रकार राज्यके मोहसे विमुख और मुक्तिके
 लिए चित्त धारण करनेवाले राजा दशरथ ऐसा विचार कर रहे थे कि उसी समय निर्मल चौदनी
 ही जिसका वस्त्र थी, चन्द्रमा ही जिसका मुख था और कमल ही जिसके नेत्र थे ऐसी शरद्-
 ऋतुरूपी स्त्री हिमसे ढरकर ही मानो कहीं जा छिपी ॥६३॥-६४॥ और लगातार हिमके पड़नेसे

स्कण्डिताधरपादान्ताः पृष्ठन्यस्तपटच्छराः । दन्तवोणाकृतस्वाना रुक्म्याकुलमूर्धजाः ॥६६॥
 तित्तिरच्छन्दनच्छायाक्रोडजङ्घा विभावसोः । सततासेवनात् कुक्षिपूरणाद्यूनचेतसः ॥६७॥
 शरीरच्छायाया तुल्याः प्रपकत्रपुणत्वचः । दुर्गेहिनीवचःशस्त्रैरत्यन्तं^१ तष्टमानसाः ॥६८॥
^२काष्ठाद्यानपनासका दिवाभास्करतापिताः । कुठारादिधराः स्कन्धो दधानाः किणककेशौ ॥६९॥
 शाकाम्लखलकाद्यन्तपरिपूरितकुक्षयः । दुर्खं नयन्ति तत्कालं^३ दुष्कुटीपु धनोन्मिताः ॥७०॥
 वरप्राप्ताद्यातास्तु शीतसङ्गमहारिभिः । सवीताङ्गा वरैर्वस्त्रैर्धूपामोदानुवन्धिभिः ॥७१॥
 पद्मरसं स्वादुसम्पन्नं हेमरुक्मादिपात्रगम् । मुञ्जानाः सुरमिस्निग्धमाहारं निजलीलया ॥७२॥
 कुङ्कुमप्रविलिप्ताङ्गा असितागुरुधूपिताः । अक्षीणधननिश्चिन्ता गवाक्षकृतवीक्षणाः ॥७३॥
 गीतनृत्यादिसम्प्राप्ता विनोद परमं सदा । सत्यभूषणसम्पन्नाः सुभाषितकथोद्यताः ॥७४॥
 विनीताभिः कलाज्ञाभिः सुरुपाभिः समं नराः । क्रीडन्ति वरनारीभिः तदा पुण्यानुभावतः ॥७५॥
 पुण्येन लभ्यते सौख्यमपुण्येन च दुःखिताः^४ । कर्मणामुचितं लोकः सर्वं फलमुपायतुते ॥७६॥
 तदा दशरथो भीतो भृशं संसारचासतः । “निर्द्वय्यालिङ्गनाकांक्षी विरक्तो भोगवस्तुतः”^५ ॥७७॥
 द्वाःस्थमाज्ञापयन्मन्यस्तजानुकरं द्रुतम् । भद्राङ्गस्य स्वसामन्तान् मन्त्रिभिः सहितानिति ॥७८॥
 निवृज्यामसमं द्वारे शासनं तेन तत्कृतम् । आगतास्ते नमस्कृत्य यथास्थानमवस्थिताः ॥७९॥

जिसने कमलोंको कान्तिरहित कर दिया था तथा शीतल वायुसे जिसने समस्त संसारको व्याकुल बना दिया था ऐसा हेमन्त काल आ पहुँचा ॥६५॥ जिनके ओठ तथा पैरोंके किनारे फट गये थे, जो पीठपर पुराने चिथड़े धारण किये हुए थे, जिनके दन्त वीणाके समान शब्द कर रहे थे, जिनके मस्तकके बाल खूबे तथा बिखरे हुए थे, निरन्तर अग्निके तापनेसे जिनकी गोद तथा जोंधे तीतरके पङ्क्तके समान मटमैली हो गई थीं, जिनका चित्त पेट भरनेकी चिन्तासे दुःखी रहता था, जो शरीरकी कान्तिसे पके हुए त्रपुषफलके बल्कलके समान श्यामवर्ण थे, दुष्ट भार्याके वचनरूपी शस्त्रोंसे जिनका हृदय छिल गया था, जो लकड़ी आदिके लानेमें लगे रहते थे, जो दिनभर सूर्यके द्वारा तपाये जाते थे, जो कुल्हाड़ी आदि हथियारोंको धारण करते थे तथा जो धट्ट पड़ जानेसे कठोर कर्णोंको धारण करते थे तथा जो शाकभाजी आदिसे पेट भरते थे, ऐसे निर्धन मनुष्य जीर्ण-शीर्ण कुटियोंमें उस हेमन्तकालको बड़े कष्टसे व्यतीत करते थे ॥६६-७०॥ और इनसे विपरीत जो अक्षीण धनके कारण निश्चिन्त थे वे उत्तमोत्तम महलोंमें रहते थे, शीतके समागमको हरनेवाले तथा धूपकी सुगन्धिसे सुवासित उत्कृष्ट वस्त्रोंसे उनके शरीर ढके रहते थे, स्वर्ण तथा चाँदी आदिके पात्रमें रखे हुए, छह रसके स्वादिष्ट, सुगन्धित तथा स्निग्ध आहारको लीलापूर्वक ग्रहण करते थे, उनके शरीर केशरसे लिप्त तथा कालागुरुकी धूपसे सुवासित रहते थे, उनके नेत्र भरोखोंकी ओर झोंका करते थे, वे गीत, नृत्य आदि परम विनोदको प्राप्त होते रहते थे, माला तथा आभूषणोंसे युक्त रहते थे, सुभाषितोंके कहनेमें तत्पर रहते थे और विनीत, कलानिपुण तथा सुन्दर रूपकी धारक उत्तम स्त्रियोंके साथ पुण्योदयसे क्रीड़ा करते थे ॥७१-७५॥ आचार्य कहते हैं कि इस संसारमें पुण्यसे सुख प्राप्त होता है और पापसे दुःख मिलता है । प्राणी अपने कर्मके अनुरूप ही सब प्रकारका फल प्राप्त करते हैं ॥७६॥

तदनन्तर उस समय संसारवाससे अत्यन्त भयभीत राजा दशरथ, मुक्तिरूपी स्त्रीके आलिङ्गनकी आकांक्षा करते हुए भोगवस्तुओंसे विरक्त हो गये ॥७७॥ जिसने पृथिवीपर घुटने और हस्त टेककर नमस्कार किया था ऐसे द्वारपालको उन्होंने तत्काल आज्ञा दी कि हे भद्र ! मन्त्रियोंसे सहित अपने सामन्तोंको बुला लाओ ॥७८॥ द्वारपालने द्वारपर अपने ही समान

१. नष्ट-ख० । २. काष्ठाद्यानयथाशक्त्या म० । ३. तत्कालं म० । ४. दुःखिनो भावो दुःखिता । ५. मुक्तिकान्ताश्लेषणामिलाषी । ६. भोगवस्तुन- ख०, ज०, व० ।

नाथाज्ञापय किं कृत्यमिति चोक्तेन भृशृता । विनीता जगते 'संसत् प्रज्जनामीति निश्चितम् ॥८०॥
ततस्तन्मन्त्रिणोऽत्रोचन् गण्यमानाश्च पार्थिवाः । नाथ किं कारणं जातं मतावस्थां तवाधुना ॥८१॥
जगादासौ समचं भो नन्वेतत्सकलं जगत् । शुष्कं वृणमिवाजलं दहते मृत्युवह्निना ॥८२॥
अग्राह्य यद्भव्यानां भव्यानां ग्रहणोचितम् । सुरासुरनमस्कार्यं प्रशस्यं शिवसौख्यदम् ॥८३॥
त्रिलोके प्रकटं सूक्ष्म विशुद्धमुपमोक्षितम् । श्रुतं तन्मुनितो जैनं श्रुतमद्य मयाचिरात् ॥८४॥
परमं सर्वभावानां सम्यक्त्वमतिनिर्मलम् । गुरुपादप्रसादेन प्राप्तोऽहं वर्त्म निवृत्ते ॥८५॥
नानाजन्ममहावर्ता मोहपङ्कसमाकुलाम् । कुतर्कग्राह्यसम्पूर्णा महादुःखोर्मिसन्तताम् ॥८६॥
मृत्युकल्लोलसयुक्तां कुदष्टिजलनिभराम् । समाक्रन्दमहारात्रां विधर्मजववाहिनीम् ॥८७॥
भवापगां मम स्मृत्वा नरकाम्भोधिगामिनीं । पश्यताह्वानि क्लमन्ते वित्रासेन समन्ततः ॥८८॥
दृष्ट्वावोचत मां किंकिदात्मानं मोहिता वृशम् । तमसः प्रकटे देशे कुतः स्थानं रवौ सति ॥८९॥
अभिपिबन्त मे पुत्रं प्रथमं राज्यपालने । त्वरितं येन निर्विघ्नं प्रविशामि तपोवनम् ॥९०॥
इत्युक्ते निश्चितं ज्ञात्वा महाराजस्य मन्त्रिणः । सामन्ताश्च परं शोकं प्राप्ता विनतमस्तकाः ॥९१॥
लिखन्तो भूमिसङ्कृत्वा वाष्पाकुलनिरीक्षणाः । क्षणेन निष्प्रभाभूतास्तस्थुर्मौनं समाश्रिताः ॥९२॥
प्राणेशं निश्चितं श्रुत्वा निर्ग्रन्थव्रतसंशयम् । एकीभूतं शुचं प्राप्तं सर्वमन्तःपुरं परम् ॥९३॥

हंसरे पुरुषको नियुक्त कर राजाज्ञाका पालन किया । सामन्त और मन्त्रीगण आकर तथा नमस्कार कर यथास्थान बैठ गये ॥७६॥ उन्होंने राजासे कहा कि हे नाथ ! आज्ञा दीजिए, क्या कार्य है ? तब राजाने विनयसे भरी सभासे कहा कि मैंने निश्चय किया है कि 'दीक्षा धारण कर्त्तुं' ॥८०॥ तदनन्तर मन्त्रियो तथा गण्यमान-प्रमुख राजाओंने कहा कि हे नाथ ! इस समय आपकी ऐसी बुद्धिके उत्पन्न होनेमे क्या कारण है ? ॥८१॥ तब राजाने कहा कि अये ! यह समस्त संसार सूखे वृणके समान निरन्तर मृत्युरूपी अग्निसे जल रहा है इस बातको आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं ॥८२॥ आज मैंने अभी-अभी मुनिराजके मुखसे जिनेन्द्रप्रणीत उस शास्त्रका श्रवण किया है कि जिसे अभव्य जीव ग्रहण नहीं कर सकते, जो भव्य जीवोंके ग्रहण करनेके योग्य है, सुर और असुर जिसे नमस्कार करते हैं, जो प्रशस्त है, मोक्षसुखको देनेवाला है, तीन लोकमे प्रकट है, सूक्ष्म है । विशुद्ध है तथा उपमासे रहित है ॥८३-८४॥ समस्त भावों मे सम्यक्त्व भाव ही उत्कृष्ट तथा निर्मल भाव है, यही मुक्तिका मार्ग है । गुरु चरणोंके प्रसादसे आज मैंने उसे प्राप्त किया है ॥८५॥ जिसमे नाना जन्मरूपी बड़े-बड़े भँवर उठ रहे हैं, जो मोहरूपी कोचढ़से भरी है, कुतर्करूपी मगरमच्छोंसे व्याप्त है, महादुःखरूपी तरङ्गोंसे युक्त है, मृत्युरूपी कल्लोलोंसे सहित है, मिथ्यात्वरूपी जलसे भरी है, जिसमें रुदनरूपी भयङ्कर शब्द हो रहा है, जो विधर्म अर्थात् मिथ्याधर्मरूपी वेगसे बह रही है तथा नरकरूपी समुद्रके पास जा रही है, ऐसी संसाररूपी नदीका स्मरण कर देखो । भयसे मेरे अङ्ग सब ओरसे कम्पित हो रहे हैं ॥८६-८८॥ आप लोग मोहके वशीभूत हो व्यर्थ ही कुछ मत कहिए अर्थात् मुझे रोकिए नहीं क्योंकि प्रकट स्थानमे सूर्यके विद्यमान रहते अन्धकारका निवास कैसे हो सकता है ? ॥८९॥ आप लोग मेरे प्रथम पुत्रका शीघ्र ही राज्याभिषेक कीजिए जिससे मैं निर्विघ्न हो तपोवन मे प्रवेश कर सकूँ ॥९०॥ ऐसा कहनेपर महाराजका हृद् निश्चय जानकर मन्त्री तथा सामन्तवर्ग परम शोकको प्राप्त हुए । सभीके मस्तक नीचे हो रहे ॥९१॥ वे अङ्गुली से भूमिको खोदने लगे, उनके नेत्र आसुओंसे व्याप्त हो गये और सभी क्षणभरमे प्रभाहीन हो चुपचाप बैठ रहे ॥९२॥ 'प्राणनाथ निश्चितरूपसे निर्ग्रन्थ व्रतको धारण करनेवाले हैं' यह सुनकर

विनोदान् प्रस्तुतान्मुक्त्वा वाष्पपुरितलोचनाः । भूषणस्वनभूयिष्ठं रुन्दुः प्रमदाङ्गनाः ॥६४॥
 पितरः तादृशं दृष्ट्वा भरतः प्रतिबुद्धवान् । अचिन्तयद्दहो कष्टं दुःखदेवं स्नेहबन्धनम् ॥६५॥
 अव्यापारेण तातस्य किमेतेन प्रबोधिनः । चिन्ता राज्यगता काश्य प्रव्रज्यां कर्तुमिच्छतः ॥६६॥
 आपृच्छया न मे किञ्चित्कार्यमाशु विशाम्यहम् । तपोवनं महादुःखसंसारचयकारणम् ॥६७॥
 देहेनापि किमेतेन व्याधिरोहेन नाशितः । बान्धवेषु तु कावस्था स्वकर्मफलभोगिषु ॥६८॥
 जन्तुरेकक एवायं भवपादपसङ्कुले । मोहान्धो दुःखविपिने कुस्ते परिवर्तनम् ॥६९॥
 ततः कलाकलापज्ञा भरतस्येक्षितादिभिः । केकया चिन्तितं ज्ञात्वा दधाना शोकमुत्तमम् ॥७०॥
 कथं मे न भवेद्भर्ता न च पुत्रो गुणालयः । एतयोर्वारणे कुर्वे कमुपायं सुनिश्चितम् ॥७१॥
 एव चिन्तामुपेतायाः परमं व्याकुलात्मनः । तस्या वरोऽभवत्स्वित्ते गत्वा च त्वरितं ततः ॥७२॥
 प्रीत्या परमया दृष्ट्वा सावधं नराधिपम् । जगादार्वासने स्थित्वा तेजसा पुरुषान्विता ॥७३॥
 सर्वेषां भूयतां नाथ पत्नीनां च पुरस्वया । मनीषितं ददामीति यदुक्ताहं प्रसादिना ॥७४॥
 वरं स्रग्प्रति तं यच्छ मया सत्यसमुज्ज्वला । दानेन तेऽखिलं लोकं कीर्तिर्नमति निर्मला ॥७५॥
 ततो दशरथोऽबोचद् ब्रूहि त्वं दक्षिणां प्रिये । प्रार्थयस्व यदिष्टं ते यच्छाव्येप वराशये ॥७६॥

समस्त अन्तःपुर एकत्रित हो परम शोकको प्राप्त हुआ ॥६३॥ स्त्रियोंने जो विनोद प्रारम्भ कर रखे थे उन्हें छोड़कर औसुओंसे नेत्र भर लिये तथा आभूषणोंका अत्यधिक शब्द करती हुई वे रुदन करने लगी ॥६४॥

पिताको विरक्त देख भरत भी प्रतिबोधको प्राप्त हुआ । वह विचार करने लगा कि अहो ! यह स्नेहका बन्धन बड़ा कष्टकारी तथा दुःखसे छेदने योग्य है ॥६५॥ वह सोचने लगा कि सम्यग्ज्ञानको प्राप्त हुए पिताको इस अव्यापार अर्थात् नहीं करने योग्य चिन्तासे क्या प्रयोजन है ? जब ये दीक्षा ही लेना चाहते हैं तब इन्हें राज्यकी चिन्ता क्यों होनी चाहिए ? ॥६६॥ मुझे किसीसे पूछनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, मैं तो तीव्र दुःखसे भरे संसारके क्षयका कारण जो तपोवन है उसमें शीघ्र ही प्रवेश करता हूँ ॥६७॥ रोगोंके घरस्वरूप इस नश्वर शरीरसे भी मुझे क्या प्रयोजन है ? फिर भाई-बन्धु जो अपने अपने कर्मका फल भोग रहे हैं उनसे क्या प्रयोजन हो सकता है ? ॥६८॥ मोहसे अन्धा हुआ यह प्राणी अकेला ही जन्मरूपी वृक्षोंसे व्याप्त इस दुःखदायी अटवीमें भ्रमण करता रहता है ॥६९॥

तदनन्तर कलाओंके कलापको जाननेवाली केकयी चेष्टाओंसे भरतका अभिप्राय जानकर अत्यधिक शोक करने लगी ॥७०॥ वह सोचने लगी कि भर्ता और गुणी पुत्र दोनों ही मेरे नहीं हो रहे हैं अर्थात् दोनों ही दीक्षा धारण करनेके लिए उद्यत हैं । इन दोनोंको रोकनेके लिए मैं किस निश्चित उपायका अवलम्बन करूँ ? ॥७१॥ इस प्रकार चिन्ताको प्राप्त तथा अत्यन्त व्याकुल हृदयको धारण करनेवाली केकयाके मनमें शीघ्र ही स्वीकृत वर भ्रूंगनेकी बात याद आ गई ॥७२॥ वह अपने विचारोंसे दृढ़ राजा दशरथके पास बड़ी प्रसन्नतासे गई और बहुत भारी तेजके साथ अर्द्धासनपर बैठकर बोली कि हे नाथ ! आपने उस समय प्रसन्न होकर समस्त राजाओं और पत्नियोंके सामने कहा था कि 'जो तु चाहेंगी दूंगा' । सो हे नाथ ! इस समय वह वर मुझे दीजिए । सत्यधर्मके कारण उज्ज्वल तथा निर्मल जो आपकी कीर्ति है, वह दानके प्रभावसे समस्त संसारमें फैल रही है ॥७३-७४॥ तदनन्तर राजा दशरथने कहा कि हे प्रिये ! तू अपना अभिप्राय बता । हे उत्कृष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाली प्रिये ! जो तुझे इष्ट हो सो

इत्युक्ते मुखती वाष्पमवोचज्ज्ञातनिश्चया । कथं नाथ त्वया चेतः कृतं निष्पुर्णदीर्घशर्म ॥१०७॥
 वद किं कृतमस्माभिर्मैनासि त्यक्तमुद्यतः । ननु जावितमायत्तमस्माकं त्वयि पार्थिव ॥१०८॥
 अत्यन्तं दुर्धरोद्दिष्टा प्रव्रज्या जिनसत्तमैः । कथमाश्रयितुं बुद्धिस्तामच्च भवता कृता ॥१०९॥
 देवेन्द्रसद्योर्मौर्गैरिदं ते लालित वपुः । कथं वक्ष्यति जीवेश आश्रयणं विविध परम् ॥११०॥
 एवमुक्ते जगादासौ कान्ते सत्वस्य को भरः । वाञ्छितं वद कर्तव्यं स्वयं यात्स्यामि साम्प्रतम् ॥१११॥
 इत्युक्ता लिखती क्षीणीं प्रदेशिन्या नतानना । जगाद नाथ पुत्राय मम राज्यं प्रदीयताम् ॥११२॥
 ततो दशरथोऽवोचप्रिये कास्मिन्नपत्रपा । न्यासस्त्वया मयि न्यस्तः साम्प्रतं गृह्यतामसौ ॥११३॥
 एवमस्तु शुचं मुखं निर्माणोऽहं त्वया कृतः । किं वा कदाचिदुक्तं ते मया जनितमन्यथा ॥११४॥
 पद्म लक्षणसयुक्तमाह्वयं च कृतानतिम् । ऊचे वितथसम्पन्न किञ्चिद्विगतमानसः ॥११५॥
 वत्स पूर्वं रणे घोरं कलापारंगयानया । कृतं केकयथा साधु सारथ्यं मम दत्तया ॥११६॥
 तदा तुष्टेन पत्नीनां भूभृतां च पुरो मया । मनीषितं प्रतिज्ञातं नातं न्यासत्वमेतया ॥११७॥
 देहि पुत्रस्य मे राज्यमिति तं याचतेऽधुना । किमप्याकृतमापन्ना निरपेक्षा मनस्विनी ॥११८॥
 प्रतिज्ञाय तदेवास्मिन् ददाम्यस्यै न चेन्मतम् । प्रव्रज्यां भरतः कुर्यात् संसारालम्बनोऽपि नः ॥११९॥
 इयं च पुत्रशोकेन कुर्यात् प्राणविवर्जनम् । अनेन मम लोकेऽस्मिन्नकीर्तिर्वितथोज्जवा ॥१२०॥

मोंग अभी देता हूँ ॥१०६॥ राजाके इस प्रकार कहनेपर जिसने उसका निश्चय जान लिया था ऐसी केकयी आसू डालती हुई बोली कि हे नाथ ! आपने ऐसा कठोर चित्त किस कारण किया है ? वताइए, हमलोगोंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है कि जिससे आप हमलोगोंको छोड़नेके लिए उद्यत हुए हैं । हे राजन् ! आप तो यह जानते ही हैं कि हमारा जीवन आपके आधीन है ॥१०७-१०८॥ जिनेन्द्रभगवान्के द्वारा कही हुई दीक्षा अत्यन्त कठिन है उसे धारण करनेकी आज आपने बुद्धि क्यों की ? ॥१०९॥ हे प्राणवल्लभ ! आपका यह शरीर इन्द्रके समान भोगोंसे पालित हुआ है सो अत्यन्त कठिन नाना प्रकारका मुनिपना कैसे धारण करेगा ? ॥११०॥

केकयीके इस प्रकार कहनेपर राजा दशरथने कहा कि प्रिये ! समर्थके लिए क्या भार है ? तू तो केवल अपना मनोरथ बता । जो मुझे करना है उसे मैं अब अवश्य ही प्राप्त होऊँगा ॥१११॥ पतिके इस प्रकार कहनेपर प्रदेशिनीनामा अङ्गुलिसे पृथिवीको खोदती हुई केकयीने मुख नीचा कर कहा कि हे नाथ ! मेरे पुत्रके लिए राज्य प्रदान कीजिए ॥११२॥ तब दशरथने कहा कि हे प्रिये ! इसमें लज्जाकी क्या बात है ? तुमने अपनी धरोहर मेरे पास रख छोड़ी थी सो इस समय जैसा तुम चाहती हो वैसा ही हो । शोक छोड़ो, आज तुमने मुझे ऋण मुक्त कर दिया । क्या कभी मैंने तुम्हारा कहा अन्यथा किया है ? ॥११३-११४॥ उसी समय उन्होंने उत्तम लक्ष्मणसे युक्त नमस्कार करते हुए विनयी रामको बुलाकर कुछ खिन्न चित्तसे कहा ॥११५॥ कि हे वत्स ! कलाकी पारगामिनी इस चतुर केकयीने पहले भयंकर युद्धमें अच्छी तरह मेरे सारथिका काम किया था ॥११६॥ उस समय संतुष्ट होकर मैंने पत्नियों तथा राजाशोके सामने प्रतिज्ञा की थी 'जो यह चाहे सो दूँ' । परन्तु उस समय-इसने वह वर मेरे पास न्यासरूपमें रख छोड़ा था ॥११७॥ अब किसीकी अपेक्षा नहीं रखनेवाली यह तेजस्विनी किसी खास अभिप्रायसे उस वरको इस प्रकार मोंग रही है कि 'मेरे पुत्रके लिए राज्य दीजिये' ॥११८॥ उस समय प्रतिज्ञा कर इस समय यदि इसके लिए इसकी इच्छास्वरूप वर नहीं देता हूँ तो संसारके आलम्बनसे उन्मुक्त होकर भरत दीक्षा ले लेगा ॥११९॥ और यह पुत्रके शोकसे प्राण छोड़ देगी तथा असत्य व्यवहारके कारण उत्पन्न हुई मेरी अपकीर्ति इस संसारमें सर्वत्र

मर्यादा न च नासेयं यद्विहायायज्ञं समम् । राज्यलक्ष्मीवधूस्त्रं कनीयान् प्राप्यते सुतः ॥१२१॥
 भरतस्याखिले राज्ये दत्ते स त्वं सलक्ष्मणः । क गच्छेत्परमं तेजो दधानः, सन्नगोचरम् ॥१२२॥
 तदहं वत्स नो वेष्टि किं करोमीति पण्डित । अत्यंतदुःखवेगोरुचिन्तावातान्तरस्थितः ॥१२३॥
 ततः पद्मो जगादैवं विभ्रद्विनयमुत्तमम् । सन्नावप्रीतिचेतस्कः पाद्वन्यस्तनिरीक्षणः ॥१२४॥
 तात रक्षाभनः सत्यं त्यजास्मत्परिचिन्तनम् । शक्रस्यापि श्रिया किं मे त्वय्यकीर्तिमुपागते ॥१२५॥
 जातेन ननु पुत्रेण तत्कर्तव्यं गृहेपिणा । येन नो पितरौ शोकं कनिष्ठमपि गञ्जुतः ॥१२६॥
 पुनाति त्रायते चायं पितरं येन शोकतः । एतत्पुत्रस्य पुत्रत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१२७॥
 सभापुरज्जनी यावत्कथेयं वर्तते तयोः । तावद्भवं चिह्नमीति^३ कठोरौकृतमानसः ॥१२८॥
 सौधाद्वतरन्वेगाह्लोकहाकारनादितः । निरुद्धो भरतः पित्रा स्नेहविकलवचेतसा ॥१२९॥
 उपविश्याङ्गमारोप्य परिष्वज्य सन्तुग्बलम् । इति चाभिदधे श्रुमौ^४ तिहासुवशगः पितुः ॥१३०॥
 राज्यं पालय वत्स त्वमहं यामि तपोवनम् । स जगौ न भजे राज्यं प्रात्रव्यं तु करोम्यहम् ॥१३१॥
 भज तावत्सुखं पुत्र सारं मनुजजन्मनः । नवेन वयसा कान्तः वृद्धः सम्प्रजलिष्यसि ॥१३२॥
 इत्थुक्तेऽभिदधे तात किं मोहयसि नां वृथा । मृत्युः प्रतीक्षते नैव वालं तरुणमेव वा ॥१३३॥
 गृहश्रमे महावत्स श्रूयते धर्मसञ्चयः । अशक्यः कुनरैः कर्तुं कुरुते राज्यसंगतः ॥१३४॥

कैल जावेगी ॥१२०॥ साथ ही यह मर्यादा मी नहीं है कि समर्थ वड़े पुत्रको छोड़कर छोटे पुत्रको राज्य-लक्ष्मीरूपी स्त्रीका समागम प्राप्त कराया जाय ॥१२१॥ जब भरतके लिए समस्त राज्य दे दिया जायगा तब क्षत्रिय-सम्बन्धी परम तेजको धारण करनेवाले तुम लक्ष्मणके साथ कहाँ जाओगे ? यह मैं नहीं जानता हूँ । तुम पण्डित-निपुण पुरुष हो । अतः बताओ कि इस दुःखपूर्ण वहुत भारी चिन्ताकी वातके मध्यमे स्थित रहनेवाला मैं क्या करूँ ? ॥१२२-१२३॥

तदनन्तर उत्तम अभिप्रायके कारण जिनका चित्त अतिशय प्रसन्न था और जो अपनी दृष्टि पैरो पर लगाये हुए थे ऐसे रामने उत्तम चिनयको धारण करते हुए इस प्रकार कहा कि हे पिता जी ! आप अपने सत्य-व्रतकी रक्षा कीजिए और मेरी चिन्ता छोड़िए । यदि आप अपकीर्तिको प्राप्त होते हैं तो मुझे इन्द्रकी लक्ष्मीसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥१२४-१२५॥ निश्चयसे उत्पन्न हुए तथा घरकी इच्छा रखनेवाले पुत्रको वही कार्य करना चाहिए कि जिससे माता-पिता किञ्चित् भी शोकको प्राप्त न हो ॥१२६॥ जो पिताको पवित्र करे अथवा शोकसे उसकी रक्षा करे यही पुत्रका पुत्रपना है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥१२७॥

इधर जब तक पिता-पुत्रके बीच समाको अनुरक्त करनेवाली यह कथा चल रही थी तब तक 'मैं संसारको नष्ट करूँ' ऐसा दृढ़ निश्चयकर भरत महलसे नीचे उतर पड़ा । यह देख लोग हाहाकार करने लगे । पिताने स्नेहसे दुःखी चित्त होकर उसे रोका । वह पिताका आह्लाकारी था अतः रुककर सामने पृथिवीपर खड़ा होना चाहता था; परन्तु पिताने उसे गोदमें बैठकर उसका आलिङ्गन किया, चुम्बन किया और इस प्रकार कहा कि 'हे पुत्र ! तू राज्यका पालन कर । मैं तपोवनके लिए जा रहा हूँ' । इसके उत्तरमे भरतने कहा कि मैं राज्यकी सेवा नहीं करूँगा, मैं तो दीक्षा धारण कर रहा हूँ ॥१२८-१२९॥ यह सुनकर पिताने कहा कि 'हे पुत्र ! अभी तू नवीन वयसे सुन्दर है अतः मनुष्य-जन्मका सारभूत जो सुख है उसकी उपासना कर । पीछे वृद्ध होनेपर दीक्षा धारण करना ॥१३०॥ पिताके इस प्रकार कहने पर भरतने कहा कि हे पिता जी ! मुझे व्यर्थ ही क्यों मोहित कर रहे हो । मृत्यु बालक अथवा तरुणकी प्रतीक्षा नहीं करती ॥१३१॥ इसके उत्तरमे पिताने कहा कि हे पुत्र ! गृहस्थाश्रममे भी तो धर्मका संचय सुना

इत्युक्तोऽभिदधे तात हृषीकेशवर्तिनः । कामक्रोधादिपूर्णस्थ का मुक्तिर्गृहसेविनः ॥१३५॥
 मुनीनां वत्स केपाद्भिज्जवेनैकेन जायते । नैव मुक्तिस्ततो धर्मं कुरु सधन्यवस्थितः ॥१३६॥
 इत्युक्तोऽभिदधे तात यद्यप्येवं तथापि किम् । गृहधर्मेण तस्मिन् हि मुक्त्यभावः सुनिश्चितः ॥१३७॥
 अपि चानुक्रमान्मुक्तिर्न ममान्यस्य सोचिता । गरुडः किं पतद्भानां वेगेन सदृशो भवेत् ॥१३८॥
 कामार्चिषा परं दाहं ब्रजन्तः कुत्सिता नराः । जिह्वाधमाह्नकार्याणि कुर्वन्ते न च निवृत्तिः ॥१३९॥
 निश्चिप्यते हि कामाग्नौ भोगसर्पिर्यथा यथा । नितरां वृद्धिमायाति तापकृत्स तथा तथा ॥१४०॥
 भुक्त्वा भोगान् दुरूपादान् दुरज्ञानं क्षणमंगिनः । निर्यतं दुर्गतिं याति पापात् परमदुःखदम् ॥१४१॥
 अनुमन्यस्व मां तात नितान्तं जन्मभीरुकम् । करोमि विधिनारण्ये तपोनिवृत्तिकारणम् ॥१४२॥
 अथ गेहेऽपि लभ्येत श्रेयो जनक नैवृत्तम् । त्वमेव कुरुष्व कस्मादस्य त्यागं महामते ॥१४३॥
 तार्यते दुःखतो यस्मात्तपश्चाभ्यनुमोदते । एतच्चातस्य तातत्वं प्रवदन्ति विचक्षणाः ॥१४४॥
 जीवितं वनितामिदं पितरं मातरं धनम् । आतरं च परित्यज्य याति जीवोऽयमेककः ॥१४५॥
 सुचिरं देवभोगोऽपि यो न ततो हताशकः । स कथं वृक्षिमागच्छेन्मनुष्यमवभोगकैः ॥१४६॥
 पिता तद्वचनं श्रुत्वा हृष्टोऽप्राप्नोदतः । जगाद वत्स धन्योऽसि विबुद्धो भग्यकेसरी ॥१४७॥

जाता है । यद्यपि बुद्ध मनुष्य इसे नहीं कर सकते हैं पर जो उत्तम पुरुष है वे तो राज्य पाकर भी करते ही हैं ॥१३४॥ पिताके इस प्रकार कहने पर भरतने कहा कि हे पिता जी ! जो इन्द्रियोके वशीभूत है तथा काम क्रोधादिसे परिपूर्ण है ऐसे गृहसेवी मनुष्यकी मुक्ति कैसे हो सकती है ? ॥१३५॥ इसके उत्तरमे पिताने कहा कि हे वत्स ! एक भवमे मुक्ति किन्हीं चिरले ही मुनियोंको प्राप्त होती है । अधिकांश मुनियोंको मुक्ति नहीं मिलती । इसलिए घरमे रहकर ही धर्म धारण करो ॥१३६॥ पिताके इस प्रकार कहनेपर भरतने कहा कि हे पिता जी ! यद्यपि ऐसा है तथापि गृहस्थाश्रमसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि उससे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती यह बिल्कुल निश्चित है ॥१३७॥ और दूसरी बात यह है कि मेरी मुक्ति अनुक्रमसे नहीं होगी । मैं तो इसी भवसे प्राप्त करूँगा । अनुक्रमसे होनेवाली मुक्ति दूसरे हीके योग्य है । क्या गरुड वेगसे अन्य पक्षियोंके समान होता है ? ॥१३८॥ बुद्ध मनुष्य कामरूपी ज्वालासे परम दाहको प्राप्त होते हुए जिह्वा और स्पर्शन इन्द्रिय-सम्बन्धी कार्य करते हैं पर उनसे उन्हें सन्तोष प्राप्त नहीं होता ॥१३९॥ कामरूपी अग्निमे ज्यों-ज्यों भोगरूपी बी डाला जाता है त्यों-त्यों वह अत्यन्त बुद्धिकी प्राप्त होती है और सन्तापको उत्पन्न करती है ॥१४०॥ प्रथम तो ये भोग बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होते हैं फिर इनकी रक्षा करना कठिन है । ये देखते-देखते क्षण भरमें नष्ट हो जाते हैं और इनको भोगनेवाला व्यक्ति पापके कारण नियमसे परम दुःख देनेवाली दुर्गतिकी प्राप्त होता है ॥१४१॥ हे पिता जी ! मैं संसारसे अत्यन्त भयभीत हो चुका हूँ इसलिए मुझे अनुमति दीजिए । जिससे मैं वनमें जाकर विधिपूर्वक मोक्षका कारण जो तप है उसे कर सकूँ ॥१४२॥ हे पिता जी ! यदि मोक्ष-सम्बन्धी सुख घरमे भी मिल सकता है तो फिर आप ही इसका त्याग क्यों कर रहे हैं ? आप तो महा बुद्धिमान् हैं ॥१४३॥ जो पुत्रको दुःखसे तारे और तपकी अनुमोदना करे यही तातका तातपना है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥१४४॥ यह जीव आयु, स्त्री, मित्रादि इष्टजन, पिता, माता, धन और भाई आदिको छोड़कर अकेला ही जाता है ॥१४५॥ जो अभागा चिरकाल तक देवोंके भोग भोगने पर भी सन्तुष्ट नहीं हो सका वह मनुष्य भवके तुच्छ भोगोंसे किस प्रकार सन्तोष प्राप्त करेगा ? ॥१४६॥

पिता दशरथ भरतके उक्त वचन सुनकर गद्गद हो गये । हर्षसे उनके शरीरमे रोमाञ्च

तथापि धीर नो भङ्गः कदाचित्पण्यस्य मे । त्वया कृतो विनीतानां भवान् हि शिरसि स्थितः ॥१४८॥
 शृणु सारथ्यतुष्टेन मयाजौ^१ जीवसंशये । प्रतिज्ञातं जनन्यास्ते वाञ्छितं नृपसाक्षिकम् ॥१४९॥
 ऋणतां तच्चिरं नीतमद्याहं^२ याचितोऽनया । राज्यं प्रयच्छ पुत्रस्य ममेति बहुमानतः ॥१५०॥
 स त्वं निष्कण्टकं तात राज्यं शक्नोमि कुरु । असत्यसंधा^३ कीर्तिर्मे माभ्रमीक्षितिलं जगत् ॥१५१॥
 इयं च तव शोकेन परमेयाभितापिता । माता भ्रियेत सौख्येन सततं लालिताङ्गिका ॥१५२॥
 न करोति यतः पातं पित्रोः शोकमहोदधौ । अपत्यत्वमपत्यस्य तद्वदन्ति सुमेधसः ॥१५३॥
 ततः पद्मोऽपि तत्पाणौ गृहीत्वैवमभाषत । प्रेमनिर्भरया पश्यन् इच्छा मधुरनिस्वनः ॥१५४॥
 तातेन आतर्क्य शक्तोऽन्यस्तद्गदितुं क्षमः । नहि सागररत्नानामुपपत्तिः सरसो भवेत् ॥१५५॥
 वयस्तपोऽधिकारे ते जायतेऽद्यापि नोचितम् । कुरु राज्यं पितुः कीर्तिरुद्यात् शशिनिर्मला ॥१५६॥
 इयं च शोकरसाह्या माता यद्याति पञ्चताम् । न तद्युक्तं महामोगे नन्दने त्वादयो सति ॥१५७॥
 पितुः पालयितुं सत्यं त्यजामोऽपि वयं तनुम् । कथं त्वं तु कृतं प्राज्ञः श्रियं न प्रतिपद्यसे ॥१५८॥
 नद्यां गिरावरण्ये वा तत्र वास करोम्यहम् । तत्र कश्चिन्न जानाति कुरु राज्यं यथेप्सितम् ॥१५९॥
 'भागं सर्वं परित्यज्य पन्थानमपि सञ्चितः । न करोमि पृथिव्यां ते कश्चित्प्रीडां गुणालय ॥१६०॥
 माश्वन्नीहीर्षमुष्णं च सुखं तावद्भवाङ्गयम् । कुरु वाक्यं पितुः क्षोणीं रच न्यायपरायणः ॥१६१॥

निकल आये । वे बोले कि हे वत्स ! तू धन्य है, सचमुच ही तू प्रतिबोधको प्राप्त हुआ है और तू उत्तम भव्य है ॥१४७॥ फिर भी हे धीर ! तूने कभी भी मेरे स्नेहका भंग नहीं किया । तू विनयी मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ है ॥१४८॥ सुन, एकबार युद्धमे मेरे प्राणोंका संशय उपस्थित हुआ था । उस समय तेरी माताने सारथिका कार्य कर मेरी रक्षा की थी । उससे सन्तुष्ट होकर मैंने अनेक राजाओंके समक्ष प्रतिज्ञा की थी कि 'यह जो कुछ चाहेगी वह दूँगा' ॥१४९॥ मेरे ऊपर इसका यह बहुत पुराना ऋण था सो इसने आज मुझसे भोगा है । इसने बड़े सम्मानके साथ कहा है कि मेरे पुत्रके लिए राज्य दीजिए ॥१५०॥ इसलिए हे पुत्र ! तू इन्द्रके समान यह निष्कण्टक राज्य कर जिससे असत्य प्रतिज्ञाके कारण मेरी अकीर्ति समस्त संसारमे भ्रमण नहीं करे ॥१५१॥ और जिसका शरीर सुखसे निरन्तर पालित हुआ है ऐसी यह तेरी माता इस महाशोकसे दुःखी होकर प्राण छोड़ देगी ॥१५२॥ अपत्य अर्थात् पुत्रका अपत्यपना यही है कि जो माता-पिताको शोकरूपी महासागरमें नहीं गिरने देता है ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥१५३॥

तदनन्तर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए रामने भी उसका हाथ पकड़कर मधुर शब्दोंमे इस प्रकार कहा कि हे भाई ! पिताजीने जो कहा है वह दूसरा कौन कह सकता है ? सो ठीक ही है क्योंकि समुद्रके रत्नोंकी उत्पत्ति सरोवरसे नहीं हो सकती ॥१५४-१५५॥ अभी तेरी अवस्था तप करनेके योग्य नहीं है । इसलिए राज्य कर जिससे पिताकी चन्द्रमाके समान निर्मल कीर्ति फैले ॥१५६॥ जिसका शरीर शोकसे सन्तप्त हो रहा है ऐसी यह तेरी माता तेरे समान भाग्यशाली पुत्रके रहते हुए यदि मरणको प्राप्त होती है तो यह ठीक नहीं होगा ॥१५७॥ पिताके सत्यकी रक्षा करनेके लिए हम शरीरको भी छोड़ सकते हैं । फिर तू बुद्धिमान् होकर भी लक्ष्मीको क्यों नहीं प्राप्त हो रहा है ? ॥१५८॥ मैं किसी नदीके किनारे पर्वत, अथवा वनमें नहीं निवास करूँगा जहाँ कोई जान नहीं सकेगा इसलिए तू इच्छानुसार राज्य कर ॥१५९॥ हे गुणोंके आलंय । मैं अपना सब भाग छोड़ मार्गका ही आश्रय ले रहा हूँ । मैं पृथ्वी पर तुझे कुछ भी पीड़ा नहीं पहुँचाऊँगा ॥१६०॥ इसलिए लम्बी और गरम सांस मत ले, संसारका भय छोड़, पिताकी बात

१. युद्ध, मयाजौ म० । २. प्रापितोऽनया म० । ३. असत्यसंधान- म० । ४. महामोगे ख० । ५. भोगं म० ।

इच्छाकृणां कुलं श्रीमद्भूपयामलविभ्रमम् । अत्यन्तविपुलं आतः शशी ग्रहकुलं यथा ॥१६२॥
 आजते प्रायमानः सन् वायव तपिवृक्षस्य यत् । लब्धवर्णैरिदं आतुर्मातुलं परिकीर्तितम् ॥१६३॥
 इत्युक्त्वा भावतः पादौ शिरसा मूलतस्तृणा । पितुः प्रणम्य तत्प्राप्तौ निर्वर्तते लक्ष्मणान्वितः ॥१६४॥
 अत्रान्तरे नृपो मूर्च्छां सम्प्राप्तोऽपि न केनचित् । ज्ञातः स्तम्भसमायुक्तधनुः पुत्रसमाकृतिः ॥१६५॥
 स तूर्णं पुरुरादाय गत्वा नत्वा च मातरम् । आधृच्छ च तां च गच्छामि तावदन्यमहीमिति ॥१६६॥
 सखीत्वं मूर्च्छया तस्या दुःखज्ञाननिवारणात् । कर्णं कृतं परिप्राप्तसंज्ञा चास्त्राकुलेक्षणा ॥१६७॥
 ऊचेऽपरजिता^१ हा त्वं नत्स कं प्रस्थितोऽसि माम् । कस्मात्प्रजसि सच्चटं चिप्त्वा शोकमहोदधौ ॥१६८॥
 मनोरथशतैः पुत्र त्वं प्राप्तो दुर्लभो मया । प्रारोह इव शाखाया मातुरालम्बनं सुतः ॥१६९॥
 परिदेवनमेवं तां कुर्वन्ती हृदयद्रमम् । जगाद् प्रणतः पद्मो मातुमक्तिपरायणः ॥१७०॥
 अम्ब मा शाब्दं विपादं त्व दक्षिणस्यामह दिशि । निरूप्य संभ्रमं योग्यं नेष्यामि त्वां विसंशयम् ॥१७१॥
 तातेन पृथिवीं दत्ता जननीवरदानतः । भरतायेति ते^२ कर्णजार्हं नूनमुपगतम् ॥१७२॥
 अन्ते तस्या महारण्ये विन्ध्याद्री मलयेश्वरा । अन्यस्मिन् चार्णवस्यान्ते पश्य मातः कृतं पदम् ॥१७३॥
 मयि स्थिते समोपेक्षिन्मू लोके भास्करसमते । आज्ञैश्वर्यमयी कान्तिर्भरतेन्दोर्न जायते ॥१७४॥
 ततः प्रवृत्ती माता जगादत्यन्तदुःखिता । पुत्रं विनतमाश्लिष्य स्नेहकातरलोचना ॥१७५॥

मान और न्यायमे तत्पर रहकर पृथ्वीकी रक्षा कर ॥१६१॥ हे भाई ! जिस प्रकार चन्द्रमा ग्रहोके समूहको अलंकृत करता है उसी प्रकार तू इच्छाकुलोके इस लक्ष्मीसम्पन्न, निर्मल एवं अत्यन्त विशाल कुलको अलंकृत कर ॥१६२॥ जो पिताके वचनकी रक्षा करता हुआ देवीप्यमान होता है वही भाईका भाईपन है ऐसा विद्वानोंने कहा है ॥१६३॥ इतना कहकर राम पृथ्वीतलका स्पर्श करनेवाले शिरसे भावपूर्वक पिताके चरणोंमें प्रणाम कर लक्ष्मणके साथ उनके पाससे चले गये ॥१६४॥ इसी बीचमें यद्यपि राजा दशरथ मूर्च्छाको प्राप्त हो गये तो भी किसीको इसका पता नहीं चला क्योंकि वे जिस खम्भासे टिककर बैठे हुए थे मूर्च्छाके समय भी पुतलेके समान उसी खम्भासे टिके बैठे रहे ॥१६५॥ राम रीझ ही धनुष उठा कर माताके पास गये और प्रणाम कर पूछने लगे कि मैं अन्य पृथ्वी अर्थात् देशान्तरको जाता हूँ ॥१६६॥ रामकी बात सुनकर माताको मूर्च्छा आ गई सो मानो दुःखका ज्ञान रोककर उसने सखीका कार्य किया । तदनन्तर क्षणभरके बाद जब मूर्च्छा दूर हुई तथा चैतन्य प्राप्त हुआ तब ओंखोंमें आँसू भरकर माता अपराजिता (कौसल्या) बोली कि हाय वत्स ! तू कहाँ जा रहा है ? हे उत्तम चेष्टाके धारक पुत्र ! तू मुझे शोकरूपी महासागरमें डालकर क्यों छोड़ रहा है ? ॥१६७-१६८॥ हे पुत्र ! तू बड़ा दुर्लभ है, सैकड़ों मनोरथोंके बाद मैंने तुम्हें पाया है । जिस प्रकार शाखाका आलम्बन प्रारोह अर्थात् पाया होता है उसी प्रकार माताका आलम्बन पुत्र होता है ॥१६९॥ इस प्रकार हृदयमें बुझनेवाला विलाप करती हुई माताको प्रणाम कर मातृभक्तिमें तत्पर रहनेवाले रामने कहा कि माता ! तुम विपादको प्राप्त मत होओ । मैं दक्षिण दिशामें योग्य स्थान देखकर तुम्हें ले जाऊँगा । इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१७०-१७१॥ 'पिताने, केकयी माताको वरदान देनेके कारण पृथ्वी भरतके लिए दे दी है' यह समाचार निश्चित ही आपके कर्णमूल तक आ गया होगा ॥१७२॥ अब यह पृथिवी जहाँ समाप्त होती है उसके अन्तमें किसी महाअटवीमें, विन्ध्याचलमें, मलयपर्वतपर अथवा समुद्रके निकट किसी अन्य देशमें हे माता ! अपना स्थान बनाऊँगा ॥१७३॥ सूर्यके समान जब तक मैं इस देशके समीप ही रहूँगा तब तक भरतरूपी चन्द्रमाकी आज्ञा ऐश्वर्यसे सम्पन्न नहीं हो सकेगी ॥१७४॥

तदनन्तर जो अत्यन्त दुःखी थी और जिसके नेत्र स्नेहसे कातर हो उठे थे ऐसी माता

१. कौसल्या, रामबननी । २. कर्णयोर्मूलमिति कर्णनाम् ।

तनयाद्यैव मे गन्तुमुचितं भवतो समम् । कथं त्वाहमपर्यन्ती प्राणान् धारयितुं क्षमा ॥१७६॥
 पिता नाथोऽथवा पुत्रः कुलबीजां त्रयी गतिः । पितातिक्रान्तकालो मे नाथो दीक्षासमुत्सकः ॥१७७॥
 जीवितस्य त्वमेवैकः साम्प्रतं मेऽवलम्बनम् । त्वयापि रहिता साह वद गच्छामि कां गतिम् ॥१७८॥
 सोऽब्रुवदुपलैरम्भ चित्तिरत्यन्तकर्मणः । भवत्या विपमा पद्मबां गंतुं सा शक्यते कथम् ॥१७९॥
 तस्मादेक एवाह विधाया सुखसाश्रयम् । यानेन केनचिन्नेत्ये भवन्तीं त्यजन्तं कुतः ॥१८०॥
 यथा स्पृशामि ते मातः पादावेप तथा ध्रुवम् । आगमिष्यामि नेतुं त्वां मुञ्च कार्यविचक्षणो ॥१८१॥
 एवमुक्ते विमुक्तः सन् परिसान्त्व्य सुभाषितैः । पुनश्च पितरं प्राप्तप्रबोधं प्रणिपत्य सः ॥१८२॥
 शेषं मातृजनं नत्वा परिसान्त्व्य सुभाषितैः । अविपण्णमहाचेताः सर्वन्यायविचक्षणः ॥१८३॥
 आतृबन्धुपरिवृद्धं कृत्वा सम्भाषणं तथा । सीतायाः सदनं प्राप्तः प्रेमनिर्मरमानसः ॥१८४॥
 प्रिये त्वं तिष्ठ चार्त्रं गच्छाम्यहं पुरान्तरम् । ततो जगात् साध्वी सा यत्र त्वं तत्र चाप्यहम् ॥१८५॥
 मन्त्रिणो नृपतीन् सर्वान् परिवर्गं च सादरम् । आपृच्छच्छ्रेयसं गेऽपि भाषणाज्जापताकुलः ॥१८६॥
 प्रीत्या संवर्धितं भूयः कृतालिङ्गनमादृतम् । मित्रवर्गं सवाण्याच्च पुनरुक्तं न्यवर्तयत् ॥१८७॥
 जिग्महेन चक्षुषा परयन् प्रधानान्वाजिवारणान् । निरगच्छत्पितुर्गोहान्मन्दरस्थिरमानसः ॥१८८॥

रोती हुई, नन्नीभूत पुत्रका आलिङ्गनकर बोली कि हे पुत्र ! मेरा आज ही तेरे साथ चला जाना उचित है क्योंकि तुम्हें बिना देखे मैं प्राण धारण करनेके लिए कैसे समर्थ हो सकूंगी ? ॥१७५-१७६॥ पिता, पति अथवा पुत्र ये तीन ही कुलवती स्त्रियोंके आधार हैं । इनमें मेरे पिता तो अपना समय पूरा कर चुके हैं और पति दीक्षा लेनेके लिए उत्सुक हैं इस प्रकार इस समय मेरे जीवनका आधार एक तू ही है सो यदि तू भी मुझे छोड़ रहा है तो बता मैं किस दशाको प्राप्त होऊँ ॥१७७-१७८॥ यह सुन रामने कहा कि हे माता ! पृथ्वी पत्यरासे अत्यन्त कठोर है आप इस ऊँचीन्नीची पृथ्वीपर पैरोंसे किस प्रकार चल सकोगी ? ॥१७९॥ इसलिए मैं अभी अकेला ही जाता हूँ फिर सुखकारी कोई स्थान ठीककर किसी यानके द्वारा आपको वहाँ ले जाऊँगा अतः आपका छोड़ना कैसे हुआ ? ॥१८०॥ हे माता ! मैं आपके चरणोंका स्पर्श कर कहता हूँ कि मैं आपको ले जानेके लिए अवश्य ही आऊँगा । हे कार्यके समक्षनेमे निपुण माता ! इस समय मुझे छोड़ दे ॥१८१॥ रामके ऐसा कहनेपर माताने उन्हें छोड़ दिया और अनेक हितकारी वचन कहकर उन्हें सान्त्वना दी । अब तक पिता दशरथ प्रबोधको प्राप्त हो चुके थे इसलिए रामने पुनः पास जाकर उन्हें प्रणाम किया ॥१८२॥ अपराजिताके सिवाय अन्य माताओंको नमस्कार कर अनेक मधुर वचनोंसे उन्हें सान्त्वना दी, भाई-बन्धुओंका आलिङ्गन कर उनके साथ मधुर संभाषण किया और तदनन्तर जिनका उदार हृदय विषादसे रहित था, तथा जो सर्व प्रकारके न्यायसे निपुण थे ऐसे राम हृदयको प्रेमसे भरकर सीताके महलमें पहुँचे ॥१८३-१८४॥ राम बोले—“कि हे प्रिये ! तुम यहीं पर रहो मैं दूसरे नगरको जाता हूँ” । तदनन्तर उस पतिव्रताने एक ही उत्तर दिया कि ‘जहाँ आप रहेंगे वहीं मैं भी रहूंगी’ ॥१८५॥

इसके पश्चात् रामने समस्त मन्त्रियोंसे, राजाओंसे तथा परिवारके अन्य लोगोंसे बड़े आदरके साथ पूछा । नगरमें जो बुद्धिमान् मनुष्य थे उनके साथ बड़ी तत्परतासे वार्तालाप किया ॥१८६॥ इस समय प्रीतिवश बहुतसे मित्र इकट्ठे हो गये थे जो बार-बार आलिङ्गन कर रहे थे, आदरसे भरे हुए थे तथा जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे । रामने अनेक बार कहकर उन्हें वापिस लौटाया ॥१८७॥ तदनन्तर जिनका मन मेरु पर्वतके समान स्थिर था ऐसे राम,

१. त्वं म० । २. परिसान्त्व्य म० । ३. गत्वा म०, ज्ञात्वा क०, ख० । ४. ज्ञानकीन्यस्तविस्तारिलो-
 चनप्रश्रयान्वितः म०, ब०, क०, ख० एषु पुस्तकेषु इतोमे ‘प्रिये त्वं तिष्ठ’ इत्यादिश्लोकौ नास्त्येव ।
 ५. चक्षुषवर्गोऽपि म० । ६. भीषणाज्जाप म० । ७. मारते म० ।

आहुतीकन् द्रुत^१ चारु^२ सामन्ता वाजिवारणम् । पञ्चन न गृहीतास्ते परमन्यायवेदिना ॥१८६॥
विदेशगमनोद्युक्तं दृष्ट्वा तं जानकी मृगम् । श्रीमदंशुकसंवीता विकसत्पद्मलोचना ॥१८७॥
प्रणम्य श्वसुरं श्वश्रूपावृच्छं च सुहृज्जनम् । विनीतानुययी नाथं पौलोमीवं सुराधिपम् ॥१८८॥
दृष्ट्वा तमुद्यतं गन्तुं स्नेहनिर्भरमानसः । लक्ष्मणोऽचिन्तयत् क्रोधं वहन्नयनलक्षकम्^३ ॥१८९॥
अन्यायमीदृशं कर्तुं कथं तातेन बाञ्छितम् । स्वार्थसंसक्तनित्याशं धिक् स्वैरणमनपेक्षितम् ॥१९०॥
अहो महानुभावोऽयं ज्यायान् पुरुषसत्तमः । सुनेरपीदृशं स्वान्तं दुष्करं जातु जायते ॥१९१॥
किमद्यैव करोम्यन्यां सृष्टिमुत्सृज्य दुर्जनान्^४ । भरतस्य बलादाहो करोमि विमुखां श्रियम् ॥१९२॥
विधातुरयं^५ सामर्थ्यं भनक्ति चिरमूर्जितम् । निरुद्धं पादयोर्ज्यैष्ठ करोमि श्रीसमुत्सुकम् ॥१९३॥
न युक्तमयवा चिरं जातक्रोधानुगत्य मे । क्रोधः करोति मोहान्धमपि दीक्षासुपाश्रितम् ॥१९४॥
किमनेन विचारेण कृतेनानुचितेन मे । ज्येष्ठस्तातश्च जानाति साम्प्रसासाम्प्रतं वदु ॥१९५॥
सितकीर्तिसमुपलिविधातव्या हि नः पितुः । तूष्णीमेवानुगच्छामि ज्यायान्सं साधुकारिणम् ॥१९६॥
प्रशमय्य स्वयं कोपनित्यादाय शरासनम् । प्रणम्यावृच्छं चाशेषं जर्नं गुरुपुरस्सरम् ॥१९७॥
महाविनयसम्पन्नो मार्गयोग्यकृताकृतिः । लक्ष्मीनिलयवत्स्कः पद्मस्यानुपदं वयी ॥१९८॥
पितरौ परिवर्गेण सहितौ तनयान्वितौ । वर्षेव कुत्राणी सौ धारामिर्नयनामभसा ॥१९९॥

मुख्य-मुख्य धोंडों तथा हाथियोंको स्नेह पूर्ण दृष्टिसे देखते हुए पिताके घरसे बाहर निकल पड़े ॥१८८॥ यद्यपि सामन्त लोग शीघ्र ही सुन्दर बोड़े और हाथी ले आये परन्तु परम न्यायके जाननेवाले रामने उन्हें ग्रहण नहीं किया ॥१८९॥ पतिको विदेश गमनके लिए उद्यत देख, जिसके शरीरपर सुन्दर वस्त्रका आवरण था जिसके नेत्र फूले हुए कमलके समान थे ऐसी सीता भी, सास श्वसुरको प्रणामकर तथा मित्र जनोसे पूछकर, जिस प्रकार इन्द्राणी इन्द्रके पीछे चलती है उसी प्रकार रामके पीछे चलने लगी ॥१९०-१९१॥

तदनन्तर जिसका चित्त स्नेहसे भरा हुआ था ऐसे लक्ष्मणने जब रामको जाते हुए देखा तो नेत्रोंमें झलकते हुए क्रोधको धारण करता हुआ वह चिन्ता करने लगा कि अहो ! पिताजी ऐसा अन्याय क्यों करना चाहते हैं ? जिसमें निरन्तर स्वार्थ साधनकी ही आशा लगी रहती है तथा जिसमें दूसरेकी कुछ भी अपेक्षा नहीं की जाती ऐसे स्त्री स्वभावको धिक्कार हो ॥१९२-१९३॥ अहो ! वड़े भाई राम महानुभाव हैं तथा पुरुषोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ है । इनके समान दुर्लभ हृदय तो मुनिके भी जव कभी ही होता है ॥१९४॥ क्या दुर्जनोको छोड़कर आज ही दूसरी सृष्टि रच डालूँ या बलपूर्वक लक्ष्मीको भरतसे विमुख कर दूँ ? ॥१९५॥ मैं आज विधाताकी बलवती सामर्थ्यको नष्ट करता हूँ और चरणोंमें पड़कर वड़े भाईको लक्ष्मीमें उत्सुक करता हूँ ॥१९६॥ अथवा क्रोधके वशीभूत हो मुझे ऐसा विचार करना उचित नहीं है क्योंकि क्रोध दीक्षा धारण करनेवाले मुनिको भी मोहसे अन्धा बना देता है ॥१९७॥ मुझे इस अनुचित विचार करनेसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि वड़े भाई राम तथा पिता ही 'यह कार्य उचित है अथवा अनुचित' यह अच्छी तरह जानते हैं ॥१९८॥ हमें पिताकी उज्ज्वल कीर्ति ही उत्पन्न करनी चाहिए अतः मैं चुपचाप उत्तम कार्य करनेवाले वड़े भाईके ही साथ जाता हूँ ॥१९९॥ इस प्रकार लक्ष्मण स्वयं ही क्रोध शान्तकर, धनुष लेकर तथा पिता आदि समस्त जनोसे पूछकर भी रामके पीछे चलने लगा । उस समय लक्ष्मण महा विनयसे सम्पन्न था, मार्गके योग्य उसकी वेष भूषा थी, तथा उसका वक्षःस्थल लक्ष्मीका घर था ॥२००-२०१॥ उस समयका दृश्य बढ़ा ही करण था । सीताके साथ राम लक्ष्मण आगे वड़े जाते थे और माता पिता परिवार तथा

१. चारुन् म० । २. सामन्तान् म० । ३. नयनलक्षणम् म० । ४. दुर्जनान् म० । ५. मय म० । ६. प्रशाम्य म० ।

परिसान्त्वनसूत्रिभ्यां प्राप्ताभ्यां निश्चयं परम् । कृच्छ्राच्चिवर्तिता ताभ्यां प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥२०३॥
 निवर्त्यमानवन्धूनां समूहेनान्विताविमौ । राजगेहाद्विनिष्क्रान्तौ देवाविव सुरालयात् ॥२०४॥
 वर्तते किमिदं माताः कस्येदं भतमीदृशम् । अभाययेयं पुरी कष्टमयवा सकला सही ॥२०५॥
 यामोऽनेन समं दुःखमेताभ्यां सह गम्यते । महाशक्तविमौ कृच्छ्राद्धरणीधरगह्वरात् ॥२०६॥
 पश्य शीता कथं याति नाथेनैवानुमोदिता । अस्याः सुविहितं सर्वं पतिभ्राता करिष्यति ॥२०७॥
 अहो परमवन्धेयं जानकी रूपशालिनी । विनयांशुकसंवीता भर्तारं याजुगच्छति ॥२०८॥
 अस्माकमपि नारीणामेवैव भवताद् गतिः । उदाहरणभूतेयं भर्तृदेवतयोपिताम् ॥२०९॥
 पश्य मातरमुज्जिता नेत्रांशुप्लविताननाम् । एष लक्ष्मीधरो गन्तुमुद्युक्तो ज्यायसा समम् ॥२१०॥
 अहो प्रीतिरहो भक्तिरहो शक्तिरहो क्षमा । अहो विनयसम्भारः श्रीमतोऽस्य विराजते ॥२११॥
 भरतस्य किमाकृतं कृतं दशरथेन किम् । रामलक्ष्मणयोरेषा का मनोपा व्यवस्थिता ॥२१२॥
 कालः कर्मेश्वरो देव स्वभावः पुरुषः क्रिया । नियतिर्वा करोत्येवं विचित्रं कः समीहितम् ॥२१३॥
 वर्ततेऽनुचितं बाढ कं गता स्थानदेवता^१ । एवमादिस्तदा जज्ञे ध्वनिर्जनसमूहतः ॥२१४॥
 कुमाराभ्यां समं गन्तुसुखे सकले जने । पुरी ब्रह्मगुह्या जाता नष्टशेषसमुत्सवा ॥२१५॥
 पुष्पप्रकरसंपूर्णाः समस्ता द्वारभूमयः । पिच्छलत्व समानीताः शोकपूर्णजनाश्रुभिः ॥२१६॥

शेष दो पुत्रोंके साथ धारा-प्रवाह-ऑसुओंसे मानो वर्षा कर रहे थे ॥२०२॥ परन्तु दोनों भाई
 दृढ़ निश्चयको प्राप्त थे और सान्त्वना देनेमें अत्यन्त निपुण थे इसलिए उन्होंने बार-बार चरणोंमें
 गिरकर माता-पिताको बड़ी कठिनाईसे वापिस किया ॥२०३॥ उन्होंने भाई-बन्धुओंको बहुत
 लौटाया फिर भी वे लौटे नहीं । अन्तमें जिस प्रकार स्वर्गसे देव बाहर निकलते हैं उसी प्रकार
 दोनों भाई राजमहलसे बाहर निकले ॥२०४॥ 'हे माता ! यह क्या हो रहा है ? यह ऐसा
 किसका मत था ? अर्थात् किसके कहनेसे यह सब हुआ है ? यह नगरी बड़ी अभागिन है
 अथवा नगरी ही क्यों समस्त पृथिवी अभागिन है ॥२०५॥ अब हम इनके साथ ही चलेंगे,
 इनके साथ रहनेसे सब दुःख दूर हो जायगा । ये दोनों ही दुःख रूपी पर्वतकी गुहासे उद्धार
 करनेसे अत्यन्त समर्थ है ॥२०६॥ देखो, यह सीता कैसी जा रही है ? पतिने इसे साथ चलने
 की अनुमति दे दी है । देवर इसका सब काम ठीक कर देगा ॥२०७॥ अहो ! जो विनय रूपी
 वस्त्रसे आवृत होकर पतिके पीछे-पीछे जा रही है ऐसी यह रूपवती जानकी अत्यन्त धन्य है—
 बड़ी भाग्यवती है ॥२०८॥ हमारी स्त्रियोंकी भी ऐसी ही गति हो । यह पतिभ्राता स्त्रियोंके लिए
 उदाहरण स्वरूप है ॥२०९॥ अहो ! देखो, जिसका मुख ऑसुओंसे भीग रहा है ऐसी माताको
 छोड़कर यह लक्ष्मण बड़े भाईके साथ जानेके लिए उद्यत हुआ है ॥२१०॥ अहो ! इस लक्ष्मण
 की प्रीति धन्य है, भक्ति धन्य है, शक्ति धन्य है, क्षमा धन्य है और विनयका समूह धन्य
 है ॥२११॥ भरतका क्या अभिप्राय था ? और राजा दशरथने यह क्या कर दिया ? राम लक्ष्मण
 के भी यह कौन-सी बुद्धि उत्पन्न हुई है ? ॥२१२॥ यह सब काल, कर्म, ईश्वर, देव, स्वभाव,
 पुरुष, क्रिया अथवा नियति ही कर सकती है । ऐसी विचित्र चेष्टाको और दूसरा कौन कर सकता
 है ? ॥२१३॥ यह सब बड़ा अनुचित हो रहा है । इस स्थानके देवता कहाँ गये ? उस समय
 लोगोंकी भीड़से इस प्रकारके शब्द निकल रहे थे ॥२१४॥

उस समय समस्त लोग रामलक्ष्मणके साथ जानेके लिए उत्सुक हो रहे थे इसलिए नगरीके
 समस्त घर सूने हो गये थे तथा नगरीका समस्त उत्सव नष्ट हो गया था ॥२१५॥ समस्त घरोंके
 दरवाजांकी जो भूमियाँ पहले फूलोंके समूहसे न्याप्त रहती थीं वे उस समय शोकसे भरे

जनस्योत्सार्यमाणस्य वरुणिन्यो नरोत्तमैः । वीचयः सागरस्येव विक्षोभयन्ते महांनिलैः ॥२१७॥
भक्तिभिः पूज्यमानोऽपि सम्भाषणसमुद्यतः । दाक्षिण्यपरमः पद्मो मेने विभ्रं पदे पदे ॥२१८॥
असक्त इव तं द्रष्टुमसमञ्जसमीदृशम् । मन्दं मन्दांश्चसङ्गातो रविरस्तसुपागमत् ॥२१९॥
रविणा दिवसस्यान्ते त्यक्ताः सर्वमरीचयः । २ ज्येष्ठवक्रधरेणैव सम्पदो मुक्तिमिच्छता ॥२२०॥
दधाना परमं रागमुचितान्म्वरयोगिनी । अन्विथाय रवि सन्ध्या सीता दाशरथिं यथा ॥२२१॥
ततो विशेषविज्ञानविध्वंसनविधायिना । रामव्रज्योद्भवैनेव तमसा व्याततं जगत् ॥२२२॥
अनुप्रयातुकामस्य कर्तुं लोकस्य वञ्चनम् । मसीती तावरेशस्य^३ स्थानं प्राप्नो जपामुखे ॥२२३॥
भवान्तकस्य भवनं नित्यालङ्कृतपूजितम् । चन्दनाम्भोजसुल्लिखितं^४ त्रिद्वारं तुङ्गतोरणम् ॥२२४॥
दर्पणादिविभूषं तत्ससीती समदक्षिणम् । प्रविष्टावनपेक्षो तौ यथाविधि विशारदौ ॥२२५॥
तृतीये तु जनो द्वारे प्रतिहारेण रुध्यते । कर्मणा मोहवीयेन शिवमिच्छन् कुदृष्टिवत् ॥२२६॥
स्थापयित्वा धनुर्वमं पुण्डरीकनिनेच्छणौ । जिनेन्द्रवदनं दृष्ट्वा तौ वरां धृतिमागतौ ॥२२७॥
मणिपीठस्थितं सौम्यं प्रलम्बितमुखद्वयम् । श्रीवत्सभासुरोरस्कं व्यकनिरूपलक्षणम् ॥२२८॥

मनुष्योंके आँसुओंसे पङ्क्ति अर्थात् कर्म युक्त हो गई थीं ॥२१६॥ जिस प्रकार महापवनसे समुद्रकी लहरें क्षोभको प्राप्त होती हैं उसी प्रकार उत्तम मनुष्योंके द्वारा दूर हटाये गये लोगोंकी पङ्क्तियाँ क्षोभको प्राप्त हो रही थीं ॥२१७॥ लोग पद-पदपर भक्तिवश रामकी पूजा करते थे और भक्तिवश उनके साथ वार्तालाप करनेके लिए उद्यत होते थे सो अत्यन्त सरल प्रकृतिके धारक राम उसे विघ्न मानते थे ॥२१८॥

तदनन्तर धीरे-धीरे जिसकी किरणें मन्द पड़ गई थीं ऐसा सूर्य अस्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो वह इस अनुचित कार्यको देखनेके लिए असमर्थ होनेसे ही अस्त हो गया था ॥२१९॥ जिस प्रकार मुक्तिकी इच्छा करनेवाले प्रथम चक्रवर्ती भरतने सब सम्पत्तियों छोड़ दी थीं उसी प्रकार उनके अन्तमे मर्यने सब किरणें छोड़ दीं ॥२२०॥ जिस प्रकार परम राग अर्थात् उत्कृष्ट प्रेमको धारण करनेवाली तथा उचित-अम्बर अर्थात् योग्य वस्त्रसे सुशोभित सीता रामके पीछे जा रही थी उसी प्रकार परम राग अर्थात् उत्कृष्ट लालिमा और उचित-अम्बर अर्थात् अभ्यस्त आकाशके समागमको प्राप्त सन्ध्या सूर्यके पीछे जा रही थी ॥२२१॥ तदनन्तर वस्तुओंके विशेष ज्ञानको नष्ट करनेवाले अन्धकारसे समस्त जगत् व्याप्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो रामके जानेसे उत्पन्न शोकसे ही व्याप्त हो गया हो ॥२२२॥ तत्पश्चात् पीछे चलनेके लिए उत्सुक मनुष्योंको धोखा देनेके लिए सीता सहित वे दोनों कुमार सार्यकालके समय अरहनाथ भगवान्के मन्दिरमे पहुँचे ॥२२३॥ संसारको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्का वह मन्दिर सदा अलङ्कृत रहता था, लोग उसकी निरन्तर पूजा करते थे, चन्दनके जलसे वहाँकी भूमि लिप्त रहती थी, उसमें तीन दरवाजे थे, ऊँचा तोरण था और दर्पणादि मङ्गल वस्तुओंसे वह विभूषित रहता था । सो अतिशय बुद्धिमान् तथा अन्यकी अपेक्षासे गहिरा राम-लक्ष्मणने सीताके साथ प्रदक्षिणा देकर उस मन्दिरमे विधिपूर्वक प्रवेश किया ॥२२४-२२५॥ दो दरवाजे तक तो सब मनुष्य चले गये परन्तु तीसरे दरवाजे पर द्वारपालने उन्हें उस प्रकार रोक दिया जिस प्रकार की मोक्षकी इच्छा करनेवाले मिथ्यादृष्टिको मोहनीय कर्म रोक देता है ॥२२६॥ कमलके समान नेत्रोंको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मण, अपने धनुष तथा कवच एक ओर रख भगवान्के दर्शन कर परम सन्तोषको प्राप्त हुए ॥२२७॥ तदनन्तर जो मणिमयी चौकीपर विराजमान थे, सौम्य थे, जिनकी दोनों भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं, जिनका वक्षस्थल श्रीवत्सके चिह्नसे

३. पङ्क्तयः । विरुणिन्यो म० । २. प्रथमचक्रवर्तिना भरतेन । ३. तौ + अरेशस्य = अरनाथस्य स्थानं मन्दिरम् । ४. चन्दनाम्भोजसुल्लिखितं

सम्पूर्णचन्द्रवदनं विबुद्धकमलेश्वरम् । असम्यमाणनिर्माणविम्वमष्टादशं जिनम् ॥२२१॥
 प्रणम्य सर्वभावेन समभ्यर्च्य च सादरी । स्थितो तत्र विभावर्था चिन्तयन्ती सुहृज्जनम् ॥२२०॥
 तत्र तादृषितौ ज्ञात्वा मातरः पुत्रवत्सलाः । एव्य वाष्पाकुलाः स्नेहात् परिवश्य पुनः पुनः ॥२३१॥
 पुत्राभ्यां सह सम्मन्य दर्शने तृप्तिवर्जिताः । दोलारूढसमात्मानौ^१ जग्मुर्दशरथं पुनः ॥२३२॥
 सर्वांसामेव शुद्धीनां मनःशुद्धिः प्रशस्यते । अन्यथालिङ्ग्यतेऽपत्यमन्यथालिङ्ग्यते पतिः ॥२३३॥
 ततस्तां गुणलावण्यरूपवेपमहोदयाः । जग्मुर्मधुरवादिन्यः प्रियं मन्दरनिश्चलम् ॥२३४॥
 कुलपोतं निमज्जन्तं प्रिय शोकमहाणवै । संधारय ससौमित्रि विनिवर्तय राघवम् ॥२३५॥
 सोऽनोचन्न ममायतं जगद्वात्र विकारिकम् । प्रमाणं चेन्मदीयेच्छा सुखमेवास्तु जन्तुषु ॥२३६॥
 जन्ममृत्युजराव्याधैर्मात्म कश्चिद्विवाध्यताम् । नाना कर्मस्थितौ त्वस्यां को नु शोचति कोविदः ॥२३७॥
 पर्याप्तिर्नास्ति मृष्टानामिष्टानां दर्शनेषु वा । बान्धवानां सुखानां च जीवितस्य धनस्य च ॥२३८॥
 असमाप्तेन्द्रियसुखं कदाचित्स्थितिसंक्षये । पक्षी वृक्षमिव त्यक्त्वा देहं जन्तुर्गमिष्यति ॥२३९॥
^२पुत्रवत्सो भवत्योऽत्र निवर्तयत सत्सुतौ ।^३उपसुद्धं सुविश्रब्धाः पुत्रभोगोदयद्युतिम् ॥२४०॥
 त्यक्त्वाव्याधिकारोऽहं विवृत्तः पापचेष्टितात् । अबाहुमं मयं प्राप्तः करोमि चरितं मुनेः ॥२४१॥

सुशोभित था, जिनके समस्त लक्षण स्पष्ट दिखाई देते थे, जिनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, जिनके नेत्र विकसित कमलके समान थे, और जिनके प्रतिबिम्बकी रचना भुलाई नहीं जा सकती थी। ऐसे अठारहवें अरनाथ जिनेन्द्रको सर्व भाव अर्थात् मन वचन कायसे प्रणाम कर तथा उनकी पूजा कर आदरसे भरे हुए राम-लक्ष्मण मित्रजनोंकी चिन्ता करते हुए रात्रिके समय उसी मन्दिरमें स्थित रहे ॥२२८-२३०॥ पुत्र वत्सल माताओंको जब पता चला कि राम-लक्ष्मण अर-जिनेन्द्रके मन्दिरमें ठहरे हैं तब वे तत्काल दौड़ी आईं। उस समय उनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे। उन्होंने बार-बार पुत्रोंका आलिङ्गन किया और बार-बार उनके साथ मन्त्रणा-सलाह की। उन्हें पुत्रोंको देखते-देखते दृष्टि ही नहीं होती थी और संकल्प-विकल्पके कारण उनकी आत्मा हिंडोले पर चढ़ी हुईके समान चञ्चल हो रही थी। अन्तमें वे पुनः राजा दशरथके पास चली गई ॥२३१-२३२॥ आचार्य कहते हैं कि सब शुद्धियोंमें मनकी शुद्धि ही सबसे प्रशस्त है। स्त्री पुत्र और पति दोनोंका आलिङ्गन करती है परन्तु परिणाम जुदे-जुदे रहते हैं ॥२३३॥

तदनन्तर गुण लावण्यरूप वेप आदि महा अभ्युदयको धारण करनेवाली चारों मिष्टवादिनी रानियों मेरुके समान निश्चल पतिके पास गई और बोलीं कि हे वत्सलभ । शोकरूपी समुद्रमें डूबते हुए इस कुलरूपी जहाजको रोको और लक्ष्मण सहित रामको वापिस बुलाओ ॥२३४-२३५॥ इसके उत्तरमें राजा दशरथने कहा कि यह विकार रूप जगत् मेरे आधीन नहीं। मेरी इच्छानुसार यदि काम हो तो मैं तो चाहता हूँ कि समस्त प्राणियोंमें सदा सुख ही रहे ॥२३६॥ जन्म जरा और मरणरूपी व्याधियोंके द्वारा किसीका पात नहीं हो परन्तु कर्मोंकी स्थिति नाना प्रकारकी है अतः कौन विवेकी शोक करे ॥२३७॥ बान्धवादि क इष्ट पदार्थोंके देखनेमें किसीको दृष्टि नहीं है सांसारिक सुख, धन और जीवनके विषयमें भी किसीको सन्तोष नहीं है ॥२३८॥ कदाचित् इन्द्रिय सुखकी पूर्णता न हो और आयु समाप्त हो जावे तो यह प्राणी जिस प्रकार पक्षी एक वृक्षको छोड़कर दूसरे वृक्षपर चला जाता है उसी प्रकार एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरको प्राप्त हो जाता है ॥२३९॥ आप लोग पुत्रवाली हैं अर्थात् आपके पुत्र हैं इसलिए गुणी पुत्रोंको लौटा लो और निश्चिन्त होकर पुत्र भोगका अभ्युदय भोगो ॥२४०॥ मैं तो राज्यका अधिकार छोड़ चुका हूँ, इस पाप पूर्ण चेष्टासे निवृत्त हो गया हूँ और संसारसे तीव्र भय प्राप्त कर चुका

आर्याञ्छन्दः

एवं निश्चितचित्तो दशरथनृपतिस्समग्रौदासीन्यम् ।

भेजे रविसमतेजाः सकलकुमावामिलाषदोषविमुक्तः ॥२४२॥

इत्यार्षे रविषेणान्वार्यगोके पञ्चचरिते दशरथप्रव्रज्यामिधानं
नामैकत्रिंशत्तमं पर्व ॥३१॥



हूँ इसलिए मुनिव्रत धारण करूँगा ॥२४१॥ इस प्रकार जिन्होंने अपने चित्तमें हठ निश्चय कर लिया था, जो सूर्यके समान तेजस्वी थे और जो समस्त मिथ्याभावोंकी अभिलाषारूपी दोषसे रहित थे ऐसे राजा दशरथने सब प्रकारकी उदासीनता धारण कर ली ॥२४०॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविषेणान्वार्यके द्वारा कथित
पञ्चचरितमें राजा दशरथके वैराग्यका वर्णन करनेवाला
इकतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३१॥

द्वात्रिंशत्तमं पर्व

अथ तत्र क्षणं नीत्वा निद्रान्तौ घटकङ्कटौ । अधराग्रे महाध्वान्ते निश्शब्दे शान्तमानवे ॥१॥
 विधाय जानकीं मध्ये जिनं नत्वा सकासुको । सुवेपौ प्रस्थितौ दंपिः पश्यन्ताविव^१ कामिनः ॥२॥
 कश्चित् सुरतखिन्नाहो बाहुपञ्जरवर्तिनीम् । कृत्वा प्राणसमां निद्रामतिगाढां निपेवते ॥३॥
^२कृत्वा पराधकः पूर्वं कोपिनी कश्चिदङ्गनाम् । प्रत्याययत्यलीकेन शपथेन पुनः पुनः ॥४॥
 अपरो सानमुत्सृज्य कान्तया स्मरतसया । कृतकं कौपमायातः सुवाग्भिः परिसांत्व्यते ॥५॥
 सुरतायासखिन्नाहो देहे कस्यचिदङ्गना । लीना तत्त्वमिव प्राप्ता गाढां निद्रां निपेवते ॥६॥
 नवसङ्गमनां कश्चिज्जायां विमुखवर्तिनीम् । कृच्छ्रात् अस्तावमानाय सम्भाषयति संमदी ॥७॥
 कस्मैचित्पूर्ववैगुण्यं कथयत्यङ्गनाखिलम् । अपरो वेद्यत्यस्मै विजगन्धः कृतमाननः ॥८॥
 कश्चित् परगृहं प्राप्ते धूर्तः सङ्कुचिताङ्गकः । उद्भासयति भाजारं वातायनकृतस्थितिम् ॥९॥
 अपरः कृतसंकेता शून्यदेवकुलान्तरे । कुलदामाकुलीभूतो मुहुर्लुथाय वीक्षते ॥१०॥
 चिरादुपगतं कश्चिद् घनरोपाभिसारिका । ताडयत्युत्तरीयेण बध्वा मेखलया खलम् ॥११॥
 अभिसारिकया साकमन्यः प्राप्य समागमम् । शुनोऽपि पदशब्देन याति त्रासमनुत्तमम् ॥१२॥

अथानन्तर राम-लक्ष्मण उस मन्दिरमे कहीं क्षण एक निद्रा लेकर अर्ध रात्रिके समय जब घोर अन्धकार फैल रहा था, लोगोंका शब्द मिट गया था, और मनुष्य शान्त थे तब जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर कवच धारण कर तथा धनुष उठाकर चले । वे सीताको बीचमे करके चल रहे थे । दोनों ही उत्तम वेपके धारक थे तथा दीपक हाथमे लिये थे जिससे ऐसे जान पड़ते थे मानो मण्डपादि स्थानोमे कामी जनोको देख ही रहे थे ॥१-२॥ उन्होंने देखा कि जिसका शरीर संभोगसे खिन्न हो रहा है ऐसा कोई पुरुष अपनी प्राणवल्लभाको भुजारूप पञ्जरके मध्य रखकर अत्यन्त गाढ निद्राका सेवन कर रहा है ॥३॥ अपराध करनेवाले किसी पुरुषने पहले तो अपनी स्त्रीको कुपित कर दिया और पीछे बार-बार मूठी शपथके द्वारा उसे विश्वास दिला रहा है ॥४॥ कोई एक पुरुष कृत्रिम कोपकर जुदा बैठे हैं और उसकी स्त्री कामसे संतप्त हो उसे मधुर वचनोंसे शान्त कर रही है ॥५॥ सुरतके श्रमसे जिसका शरीर खिन्न हो रहा था ऐसी कोई स्त्री पतिके शरीरमे इस तरह लीन होकर गाढ निद्रा ले रही है जिस तरह कि मानो वह पतिके साथ अमेदको ही प्राप्त हो चुकी हो ॥६॥ कोई एक पुरुष लज्जाके कारण विमुख बैठे नवोढा पत्नीको बड़ी कठिनाईसे अनुकूल कर हर्ष पूर्वक उसके साथ वार्तालाप कर रहा है ॥७॥ कोई एक स्त्री अपने पतिके लिए उसके द्वारा पहले किये हुए सब अपराध बता रही है और वह उसे मनाकर निश्चिन्ततासे उसका समाधान कर रहा है ॥८॥ कोई एक धूर्त पुरुष अपने शरीरको संकुचित कर दूसरेके घर पहुँचा है और वहाँ भरोखेमें बैठे खिलावको वहाँसे हटा रहा है ॥९॥ किसी पुरुषने अपनी कुलटा प्रेमिकाको सूते मठमे आनेका संकेत दिया था पर उसने आनेमें विलम्ब किया इसलिए वह व्याकुल हो बार-बार उठकर उसे देख रहा है ॥१०॥ किसी अभिसारिकाका प्रेमी देरसे आया था इसलिए वह अत्यन्त कुपित हो उसे मेखलासे बाँधकर उत्तरीय वस्त्रसे पीट रही है ॥११॥ और कोई एक मनुष्य अभिसारिकाके साथ समागम प्राप्तकर कुत्तेके

इति^१ निर्यूहदेशेषु मण्डपेषु च कामिनाम् । शृण्वन्तौ^२ वीक्ष्यमाणौ च^३ वृत्तान्तौ जग्मतुः शनैः ॥१३॥
 अवहारेण^४ निर्गत्य पुरीतः पश्चिमेन तौ । आश्रितौ मार्गयोगेन दक्षिणौ दक्षिणौ दिशम् ॥१४॥
 त्रियामान्ते ततोऽप्यष्टे सामन्ता वेगवाहिनः । राघवेण समं गन्तुमुत्सुका भक्तिनिर्भराः ॥१५॥
 यथाश्रुति परिज्ञाय बन्धुवञ्जनकारिणः । समीपं रामदेवस्य प्राप्नुर्मन्थरगामिनः ॥१६॥
 ते चक्षुर्गोचरीवृत्त्य समेतौ रामलक्ष्मणौ । महाविनयसम्पन्नाः पद्म्यामेव डुडौकिरे ॥१७॥
 प्रणिपत्य च भावेन सक्रमं सम्बभाषिरे । यावत्तावन्महासैन्यं तद्गवेषार्थमाययौ ॥१८॥
 प्रशशंसुश्च ते सीतामिति निर्मलचेतसः । वयमस्याः प्रसादेन राजपुत्रौ समागताः ॥१९॥
 अयास्यद्यदि नैताभ्यां सममेपा सुमन्थरा । ततः कयमिव प्राप्स्यामेतौ पवनरहसौ ॥२०॥
 इयं नः सुसती माता परमप्रियकारिणी । एतस्याः सदृशी नान्या प्रशस्तास्ति क्षिताविह ॥२१॥
 तौ सीतागतिचिन्तित्वान्मन्दमन्दं नरोत्तमौ । गन्तुमिमात्रमध्वानं सुखयोगेन जग्मतुः ॥२२॥
 सस्यानि बहुरूपाणि पश्यन्तौ क्षितिमण्डले । सरांसि कञ्जरम्याणि तर्लुंश्च गगनस्पृशः ॥२३॥
 आर्य्यमाणपर्यन्तौ वेगवर्जिनिराधिपैः^५ । घनागमे नदैर्गङ्गाकालिन्दीप्रवहाविव ॥२४॥
 ग्रामखेटमट्येषु घोषेषु नगरेषु च । लोकेन पूजितौ वीरौ भोजनादिभिरुत्तमौ ॥२५॥
 केचिदध्वजखेदेन सामन्ता ब्रजतोस्तयोः । पश्चाद्गङ्गापिपयत्वेन विवृत्ता ज्ञातनिश्चयाः ॥२६॥

भी पैरकी आहट सुनकर अत्यधिक भयको प्राप्त हो रहा है ॥१२॥ इस प्रकार बाह्य भरोखो और मण्डपोमे कामीजनोको देखते तथा उनके वृत्तान्तको सुनते हुए राम और लक्ष्मण धीरे-धीरे जा रहे थे ॥१३॥ वे अतिशय सरल थे और वे नगरीके पश्चिम द्वारसे बाहर निकलकर आगे मिलनेवाले मार्गसे दक्षिण दिशाकी ओर चले गये ॥१४॥

इधर जब भक्तिसे भरे तथा रामके साथ जानेके लिए उत्सुक सामन्तोंको कानोकान यह पता चला कि राम तो बन्धुजनोको घोखा देकर चले गये हैं तब वे प्रातःकाल होनेके पूर्व जय कुङ्कु-कुङ्कु अंधेरा था वेगसे घोड़े दौड़ाकर मन्थर गतिसे चलनेवाले रामके पास जा पहुँचे ॥१५-१६॥ जब उन्हें साथ-साथ चलनेवाले राम-लक्ष्मण नेत्रोंसे दिखने लगे तब वे महाविनयसे युक्त हो पैदल ही चलने लगे ॥१७॥ सामन्त लोग भावपूर्वक प्रणामकर जब तक उनके साथ यथा क्रमसे वार्तालाप करते हैं तब तक उन्हें खोजनेके लिए बड़ी भारी सेना वहाँ आ पहुँची ॥१८॥ अत्यन्त निर्मल चित्तके धारक सामन्त लोग सीताकी इस प्रकार स्तुति करने लगे कि हम लोग इसके प्रसादसे ही राजपुत्रोको प्राप्त कर सके हैं ॥१९॥ यदि यह इनके साथ धीरे-धीरे नहीं चलती तो हम पवनके समान वेगशाली राजपुत्रोको किस तरह प्राप्त कर सकते ? ॥२०॥ यह माता अत्यन्त सती तथा हम सबका बहुत भारी भला करनेवाली है । इस पृथिवीपर इसके समान दूसरी पवित्र स्त्री नहीं है ॥२१॥ मनुष्योंमें उत्तम रामलक्ष्मण सीताकी गतिका ध्यानकर गन्तुति प्रमाण मार्गको ही सुखसे तय कर पाते थे ॥२२॥ वे पृथिवीमण्डलपर नाना प्रकारके धान, कमलोसे सुशोभित तालाव और गगनचुम्बी वृक्षोंको देखते हुए जा रहे थे ॥२३॥ जिस प्रकार वर्षा ऋतुमे गङ्गा और यमुनाके प्रवाह अनेक नदियोंसे मिलते रहते हैं उसी प्रकार राम-लक्ष्मणके पर्यन्त भाग भी अनेक वेगशाली राजाओंसे मिलते रहते थे ॥२४॥ ग्राम, खेट, मटव, घोष तथा नगरोंमें लोग उन उत्तम वीरोका भोजनादि सामग्रीके द्वारा सत्कार करते थे ॥२५॥ दोनों ही भाई आगे बढ़ रहे थे, और सामन्त लोग मार्गके खेदसे दुःखी हो रहे थे । जब उन्हें इस बातका दृढ़ ज्ञान हो गया कि राम-लक्ष्मण लौटनेवाले नहीं हैं तब वे उनसे कहे

१. गवाक्षप्रदेशेषु । २. वीक्ष्यमाणौ म० । ३. वृत्तान्तौ म० । ४. लघुनाहारेण, अपहारेण (?) म०
 ५. वेगवर्जिनिराधिपैः म० । ६. पनागमेनदी गंगा म० ।

अपरे त्रपया केचिद्गीत्यान्ये भक्तितत्पराः । अम्रजन् विनयात् पद्मयां दत्त्वा दुःखस्य मानसम् ॥२७॥
 ततो हरिगजघातसङ्कुलारावभैरवाम् । परियात्राटवी प्राप्ता लीला रामलक्ष्मणौ ॥२८॥
 तस्यां बहुलशर्व्यां तुल्यध्वान्तां महानगैः । निम्नहां शर्वरीमेतौ शबराभितरोधसाम् ॥२९॥
 तस्या रोधसि विश्रम्य नानास्वादुफलोचिते । कांश्चिन्न्यवर्तयद्भूपान् पद्मः सुप्रतिबोधनः ॥३०॥
 महतापि प्रयत्नेन निवृत्ता नापरे नृपाः । पद्मेन सहितं गन्तुं किल सञ्जातनिश्रयाः ॥३१॥
 ततस्ते निम्नहां दृष्ट्वा महानीलावभासिनीम् । चण्डवेगोर्मिसंचातनिर्मितोदरनिश्रिताम् ॥३२॥
 उन्मज्जत्प्रबलग्राहकृतकल्लोलसङ्कुलाम् । वीचीमालासमाघातनिपतन्मृदुरोधसम् ॥३३॥
 महाद्रिकन्दरास्फालप्रतिसूत्कारनादिनीम् । उद्वर्तमानमीनांगस्फुरन्नास्फुररोचिषम् ॥३४॥
 उद्बृत्तनक्रसूत्कारजातदूरगशीकराम् । उड्डीयमाननिश्चेषभयपूर्णपतत्रङ्गाम् ॥३५॥
 सन्त्रासकम्पमानाङ्गा जगूरां सलचमणम् । समुत्तारय चाथास्मानपि पद्मप्रसादवान् ॥३६॥
 भृत्यानां भक्तिपूर्णाणां प्रसादं कुरु लक्ष्मण । देवि ते कुरुते वाक्यं जानकि ब्रूहि लक्ष्मणम् ॥३७॥
 एवमादिगदन्तस्ते कृपणा बहु तां नदीम् । ह्रौकिरे प्रसन्नश्च नानाचेष्टाविधायिनः ॥३८॥
 ततस्तां राजबोडोचद्विभ्रवो रोधसि स्थितः । अशुना विविवर्तष्वं भद्रा भीमसिद्ध वनम् ॥३९॥
 अस्माभिः सह युध्माकमियानैवैष सङ्गमः । एषा नद्यवधिजाता भवतौस्तुक्वयजिता ॥४०॥

बिना ही लौट गये ॥२६॥ भक्तिमें तत्पर रहनेवाले कितने ही सामन्त लज्जासे और कितने ही भयसे अपने मनको दुःखी कर विनय पूर्वक उनके साथ पैदल चल रहे थे ॥२७॥

तदनन्तर रामलक्ष्मण लीला पूर्वक परियात्रा नामकी उस अटवीमें पहुँचे जो कि सिंह और हस्ति समूहके उच्च शब्दोंसे भयंकर हो रही थी ॥२८॥ उस अटवीमें बड़े-बड़े वृक्षोंसे कृष्ण-पक्षकी निशाके समान घोर अन्धकार व्याप्त था । वही, जिसके किनारे अनेक शबर अर्थात् भील रहते थे ऐसी एक शर्वरी नामकी नदी थी । रामलक्ष्मण वहाँ पहुँचे ॥२९॥ नाना प्रकारके मधुर फलोंसे युक्त उस नदीके तटपर विश्रामकर रामने समझा-बुझाकर कितने ही राजाओंको तो वापिस लौटा दिया ॥३०॥ पर जिन्होंने रामके साथ जानेका निश्चय ही कर लिया था ऐसे अन्य अनेक राजा बहुत भारी प्रयत्न करनेपर भी नहीं लौटे ॥३१॥

तदनन्तर जो नदी महानील मणिके समान सुशोभित हो रही थी, अत्यन्त वेगशाली लहरोंके समूहसे जिसका मध्य भाग व्याप्त था, जो उखरते हुए बलवान् मगरमच्छोंकी टक्करसे उत्पन्न होनेवाली तरङ्गोंसे व्याप्त थी, लहरोंके समूहका आघातपर जिसके कोमल किनारे उसीमें दृढ़-दृढ़कर गिर रहे थे, बड़े-बड़े पर्वतोंकी गुफाओंमें टकरानेसे जिसमें 'सू-सू' शब्द हो रहा था, जिसमें ऊपर तैरनेवाली मछलियोंके शरीरमें सूर्यकी किरणें प्रतिबिम्बित हो रही थी, जिसमें उत्पात करनेवाले नाकोंकी सूत्कारसे जलके छींटे दूर-दूर तक उड़ रहे थे, और जिसके पाससे समस्त पक्षी भयभीत होकर उड़ गये थे ऐसी उस नदीको देखकर सब सामन्तोंके शरीर भयसे काँपने लगे । वे लक्ष्मण सहित रामसे बोले कि 'हे नाथ ! हम लोगोंको भी नदीसे पार उतारो । हे पद्म ! प्रसन्न होओ, हे लक्ष्मण ! भक्तिसे भरे हुए हम सेवकोंपर प्रसन्नता करो । हे देवि ! लक्ष्मण तुम्हारी बात मानते हैं इसलिये इनसे कह दो' ॥३२-३७॥ इत्यादि अनेक शब्दोंका उच्चारण करते हुए वे दीन सामन्त उस नदीमें कूद पड़े तथा नाना प्रकारको चेष्टाएँ करते हुए वहने लगे ॥३८॥ तब किनारेपर निश्चिन्ततासे खड़े हुए रामने उन सबसे कहा कि हे भले पुरुषो ! अब तुम लौट जाओ । यह वन बहुत भयङ्कर है ॥३९॥ हमलोगोंके साथ तुम्हारा

१. एतन्नामाटवी । २. काश्चित्प्रावर्तयद् म० । ३. महीन्द्र, म० । ४. प्राप्ते सूत्कार म० । ५. मियानैवैव म० ।

ततैन भरतः स्वामी सर्वेषां यो निवेदितः । विसाध्वसास्तमावृत्य तिष्ठत चित्तिपालिनः ॥४१॥
ततस्ते पुनरिष्यन्तुर्नाथास्माकं भवान् गतिः । प्रसादं कुरु मा त्वाक्षीरस्मान् काव्यकोविद ॥४२॥
निराश्रयाकुलीभूता त्वयेयं रहिता प्रजा । बद्ध कं शरणं यातु सद्यः कस्तवापरः ॥४३॥
व्याघ्रसिंहगजेन्द्रादिव्यालज्वालसमाकुले । जसामो भवता सार्धमरण्ये न विना द्विवि ॥४४॥
न नो निर्वर्तते चित्तं प्रतिग्रामं कथं वयम् । महत्तरत्वमेतेन हृषीकेशजितं ननु ॥४५॥
किं नो गृहेण किं भोगैः किं दारैः किं नु बन्धुभिः । भवता नरत्वेन मुक्तानां पापकर्मणाम् ॥४६॥
क्रीडास्वपि त्वया देव वञ्चिता स्मो न जातु चित् । सम्मानेनाधुना कस्माज्जातोऽत्यन्तनिष्ठुरः ॥४७॥
कोऽपराधो बदास्माकं भवत्तरणरेषुना । परमां बुद्धिमेतानां भक्तानां श्रुत्यवत्सल ॥४८॥
अहो जानकि लक्ष्मीश रचितोऽयं शिरोज्जलिः । प्रसाद्यतमीशं नः प्रसादी भवतोरयम् ॥४९॥
सीता लक्ष्मीधरश्चैवमुच्यमानौ सुदक्षिणौ । तस्थतुः पद्मपादाग्रन्यस्तनेत्रौ निरुत्तरौ ॥५०॥
ततः पद्मो जगादेवं भवतामुत्तर स्फुटम् । निवर्तन्मयं मद्रा यातोऽस्मि सुखमाम्भयम् ॥५१॥
इत्युक्त्वा निरपेक्षौ तौ परमोत्साहसङ्गतौ । अवतेरतुरत्यन्तगम्भीरां तां महापगाम् ॥५२॥
उत्तीर्णः सरित पद्मो जानकी विकचेक्षणाम् । करेण सुखमादाय पश्चिमीमिव दिग्गजः ॥५३॥
अन्मोविहारविज्ञानबुधयोः सा तयोर्बुनी । नामिदृक्कां बभूवोद्वां क्रीडामाचरतोश्चिरम् ॥५४॥

इतना ही समागम था । अब हमारे और तुम्हारे बीचमें यह नदी सीमा बन गई है इसलिए उत्सुकतासे रहित होओ ॥४०॥ पिताने तुम सबके लिए भरतको राजा बनाया है सो तुम सब निर्भय होकर उसीके शरणमें रहो ॥४१॥

तदनन्तर उन्होंने फिर कहा कि हे नाथ ! हमारी गति तो आप ही है इसलिए हे व्या-
निपुण ! प्रसाद करो और हमलोगोंको नहीं छोड़ो ॥४२॥ तुम्हारे बिना यह प्रजा निराधार होकर
व्याकुल हो रही है आप ही कहो किसकी शरणमें जावे ? आपके समान दूसरा है ही कौन ?
॥४३॥ हम आपके साथ व्याघ्र, सिंह, गजेन्द्र आदि दुष्ट जीवोंके समूहसे भरे हुए बनमें रह
सकते हैं पर आपके बिना स्वर्गमें भी नहीं रहना चाहते ॥४४॥ हमारा चित्त ही नहीं लौटता
है फिर हम कैसे लौटें ? यह चित्त ही तो इन्द्रियोंमें प्रधान है ॥४५॥ जब आप जैसे नर-रत्न
हमें छोड़ रहे हैं तब हम पापी जीवोंको घरसे क्या प्रयोजन है ? भोगोंसे क्या मतलब है ?
छियोंसे क्या अर्थ है ? और बन्धुओंकी क्या आवश्यकता है ? ॥४६॥ हे देव ! क्रीडाओमें भी
कभी आपने हम लोगोंको सम्मानसे वञ्चित नहीं किया फिर इस समय अत्यन्त निष्ठुर क्यों हो
रहे हो ? ॥४७॥ हे श्रुत्यवत्सल ! हमलोग आपके चरणोंकी धूलिसे ही परम बुद्धिको प्राप्त हुए हैं ।
बताइये, हमारा क्या अपराध है ? ॥४८॥ रामसे इतना कहकर उन्होंने सीता और लक्ष्मणको
भी संवोधित करते हुए कहा कि हे जानकि ! हे लक्ष्मण ! मैं आप दोनोंके लिए हाथ जोड़कर
मस्तकपर लगता हूँ आप हमारे विषयमें स्वामीको प्रसन्न कीजिए क्योंकि ये आप दोनोंपर
प्रसन्न हैं—आपकी बात मानते हैं ॥४९॥ लोग सीता तथा लक्ष्मणसे इस प्रकार कह रहे थे और
अत्यन्त सरल प्रकृतिके धारक वे दोनों रामके चरणकमलोंके आगे दृष्टि लगाये हुए चुपचाप
खड़े थे—‘क्या उत्तर दिया जाय’ यह उन्हें सूझ नहीं पड़ता था ॥५०॥

तदनन्तर रामने कहा कि हे मद्रपुरुषो ! आप लोगोंके लिए यही एक स्पष्ट उत्तर है कि
अब आप यहाँसे लौट जाइये, मैं जाता हूँ, आप लोग अपने घर सुखसे रहें ॥५१॥ इतना कहकर
किसीकी अपेक्षा नहीं करनेवाले दोनों भाई बड़े भारी उत्साहसे उस अतिशय गहरी महा नदीमें
उतर पड़े ॥५२॥ जिस प्रकार दिग्गज अपने कर (खंड) में कमलिनीको लेकर तैरता है उसी
प्रकार राम विकसित नेत्रोंवाली सीताको हाथमें लेकर नदीको पार कर रहे थे ॥५३॥ दोनों ही

तदातिशोभते सीता पद्महस्ततलस्थिता । सुधीरा श्रीरिवोत्तुङ्गशतपत्रमृहस्थिता ॥५५॥
 पारगाः सीतया सार्धं लक्ष्मणेन च स चणात् । वृक्षैरन्तर्निभायातश्चेतस्तंभनविप्रहः ॥५६॥
 विप्रलापं ततः कृत्वा महान्त साधुलोचनाः । भवनामिमुखीभृताः केचिक्लृष्टेण भूभृतः ॥५७॥
 तदाशान्द्यस्तनेत्रास्तु केचित्पुस्तमया इव । तस्थुः प्राच्यापरे मूर्ध्ना निपेगुर्धरणीतले ॥५८॥
 विबोध्य केचिदत्रोत्थिक् ससारमसारकम् । धिग्भोगान्भोगिर्भोगाभ्यान् भद्रुरान्मीतिभाविनः ॥५९॥
 ईदृशमपि शूराणां यत्रावस्थेयमीदृशी । तत्र ग्रहणमस्मासु किमेरण्डप्रफल्गुषु ॥६०॥
 विधोगमरणव्याधितराव्यसनभाजनम् । जलबुद्बुदनिस्सारं कृतघ्नं धिक् शरीरकम् ॥६१॥
 भाग्यवन्तो महासत्त्वास्ते नराः श्लाघ्यचेष्टिताः । कपिभ्रमभुरां लक्ष्मीं ये तिरस्कृत्य दीक्षिताः ॥६२॥
 इति निर्वेदमापन्ना बहवो नरसत्तमाः । प्रज्ज्यामिमुखीभृता बभ्रुस्तत्र रोधसि ॥६३॥
 अथेचाञ्चकिरे तुङ्गं विशालं शुभमालयम् । परिवीतमतिरयाममहानोकहमालया ॥६४॥
 अनुसन्नुष्य तं नानापुष्पजातिसमाकुलम् । मकरन्दरसास्वादगुञ्जलसम्प्राप्तपदपद्मम् ॥६५॥
 दृष्ट्वा विविक्तेषु देशेषु समवस्थितान् । साधून् स्वाध्यायसक्तमानसान् पुस्ततेजसः ॥६६॥
 क्रमेण ताक्षमस्यन्तः शनैर्मस्तकपाणयः । विविशुज्जिननाथस्य भवनं भुशमुज्ज्वलम् ॥६७॥
 रम्येष्विजिनितम्बेषु काननेषु सरिस्तु च । तत्र काले मही प्रायो भूषितासीजिज्जनालयैः ॥६८॥

जल-क्रीड़ाके ज्ञानमें निपुण थे अतः चिरकाल तक उत्तम क्रीड़ा करते हुए जा रहे थे । उनके लिए वह नदी नामि प्रमाण गहरी हो गई थी ॥५४॥ उस समय रामकी इच्छेलापर स्थित धैर्यशालिनी सीता ऐसी सुशोभित हों रही थी मानो ऊँचे उठे हुए कमलरुही घरमें स्थित लक्ष्मी ही हो ॥५५॥ इस प्रकार जिनका शरीर चित्तको रोकनेवाला था ऐसे राम सीता और लक्ष्मणके साथ नदीको पारकर क्षणभरमें वृक्षोंसे अन्तर्हित हो गये ॥५६॥

तदनन्तर जिनके नेत्रोंसे आँसू भर रहे थे ऐसे कितने ही राजा बहुत भारी विलाप कर अपने भवनकी ओर उन्मुख हुए ॥५७॥ कितने ही लोग उसी दिशामें नेत्र लगाये हुए मिट्टी आदि के पुतलोंके समान खड़े रहे । कितने ही मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥५८॥ और कितने ही प्रबोधको प्राप्त होकर कहने लगे कि इस असार संसारको धिक्कार है तथा सोंपके शरीरके समान भय उत्पन्न करनेवाले नरवर भोगोंको धिक्कार है ॥५९॥ जहाँ इन जैसे शूर वीरोंकी भी यह अवस्था है वहाँ एरण्डके समान निःसार हमलोगोंकी तो गिनती ही क्या है ? ॥६०॥ वियोग, मरण, व्याधि और जरा आदि अनेक कष्टोंके पात्र तथा जलके बबूलके समान निःसार इस कृतघ्न शरीरको धिक्कार है ॥६१॥ उत्तम चेष्टाके धारक जो मनुष्य वानरकी भौहके समान चञ्चल लक्ष्मीकी छोड़कर दीक्षित हो गये हैं वे महाशक्तिके धारक भाग्यवान् हैं ॥६२॥ इस प्रकार वैराग्यको प्राप्त हुए अनेक उत्तम मनुष्य दीक्षा लेनेके सन्मुख हो नदीके उसी तटपर घूमने लगे ॥६३॥

तदनन्तर उन्होंने दूरे भरे वृक्षांकी पङ्क्तिसे घिरा हुआ एक ऊँचा, विशाल तथा शुभ मन्दिर देखा ॥६४॥ मन्दिरका वह स्थान नाना प्रकारके पुष्पोंकी जातिवर्षोंसे व्याप्त था तथा मकरन्दरसके आस्वादसे पूँजते हुए भ्रमर वहाँ भ्रमण कर रहे थे ॥६५॥ उन लोगोंने वहाँ एकान्त स्थानोंमें बैठे हुए, स्वाध्यायमें लीन तथा विशाल तेजके धारक मुनियोंको देखा ॥६६॥ मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर सब लोगोंने उन्हें धीरे-धीरे यथा क्रमसे नमस्कार किया । तदनन्तर अत्यन्त उज्ज्वल जिनमन्दिरमें प्रवेश किया ॥६७॥ उस समय भूमि प्रायः कर पर्वतोंके सुन्दर नितम्बोंपर, वनोंमें तथा नदियोंके तटोंपर बने हुए जिनमन्दिरोंसे विभूषित थी ॥६८॥

तत्र कृत्वा नमस्कारं जिनानां शुभ्रभावाणाः । १ त्वत्सम्भवगम्भीरं संयतेन्द्रं जुहौकिरे ॥६१॥
 प्रणम्य शिरसा तस्य संवेगभरवाहिनः २ । नाथोच्चारय संसारादस्मादिति बभाषिरे ॥७०॥
 सत्यकेतुगणीशेन तथास्त्रिजितं कृतध्वनौ । जम्बुस्ते परमं तोषं निर्गताः स्मो भवादिति ॥७१॥
 ३ विदग्धो विजयो मेरुः क्रूरः संग्रामलोलुपः । श्रीनागदमनो धीरः शठः शत्रुदमो धरः ॥७२॥
 विनोदः कण्टकः सत्यः कठोरः प्रियवर्धनः । एवमाद्या नृपा धर्मं नैर्ग्रन्थं समशिश्रियन् ॥७३॥
 साधनानि भटास्तेषां गृहीत्वा नगरां गताः । द्रुतमर्पयितुं दीनाः पुत्रादीनां त्रपान्विताः ४ ॥७४॥
 अणुव्रतानि संगृह्य केचिन्नियमधारिणः । आराधयितुमुद्युक्ता बोधिवुद्धिर्विमूढाः ॥७५॥
 सम्यग्दर्शनमात्रेण सन्तोषमपरे गताः । श्रुत्वातिविमलं धर्मं जिनानां जितजन्मनाम् ॥७६॥
 सामन्तेर्बहुभिर्गत्वा भरताय निवेदितः । वृत्तान्तो सुस्थितश्चायं ध्यायन् किमपि दुःखितः ॥७७॥
 अथानरण्यराजस्य ५ तनयः सुप्रबोधनः । राज्याभिषिञ्चनं कृत्वा भरतस्य सुचेतसः ॥७८॥
 किञ्चिद्विद्वन्नियोगेन सन्तप्तं चित्तमुदहन् । शोकाम्भोधिचिमग्नेन परिवर्गेण वीक्षितः ॥७९॥
 कृतसान्त्वनमप्युच्चैर्विलपत्स समाकुलम् । अन्तःपुरं परित्यज्य नगरीतो विनिर्गतः ॥८०॥
 गुह्यपूजां परां कृत्वा द्वातसतिनृपान्वितः । सर्वभूतहितस्यान्ते शिश्रिये श्रमणश्रिया ॥८१॥
 अथाप्येकविहारस्य शुभं ध्यानमभीप्सतः । मानसं पुत्रशोकेन कलुषं तस्य जन्यते ॥८२॥
 अन्यदा योगमाश्रित्य दध्यावेव विचक्षणः । चिक् स्नेहं भवदुःखानां मूलं वन्धमिमं सम ॥८३॥

वहाँ उज्ज्वल भावनाको धारण करनेवाले सब लोग जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कारकर समुद्रके समान गम्भीर मुनिराजके पास गये ॥६६॥ वहाँ जाकर वैराग्यको धारण करनेवाले सब लोगोंने शिर झुकाकर मुनिराजको नमस्कार किया और तदनन्तर यह कहा कि हे नाथ । हम लोगोको इस संसार-सागरसे पार कीजिये ॥७०॥ इसके उत्तरमे मुनियोके अधिपति सत्यकेतु आचार्यने ज्योही 'तथास्तु' यह शब्द कहा त्योंही 'अब तो हम संसारसे पार हो गये' यह कहते हुए सब लोग परम सन्तोषको प्राप्त हुए ॥७१॥ विदग्ध, विजय, मेरु, क्रूर, संग्रामलोलुप, श्रीनागदमन, धीर, शठ, शत्रुदम, धर, विनोद, कण्टक, सत्य, कठोर और प्रियवर्धन आदि अनेक राजाओंने दिग्म्वर दीक्षा धारण की ॥७२-७३॥ इनके जो सेवक थे वे हाथी घोड़ा आदि सेनाको लेकर उनके पुत्रोको सौंपनेके लिए शीघ्र ही नगरकी ओर गये । उस समय वे सेवक अत्यन्त दीन तथा लज्जासे युक्त हो रहे थे ॥७४॥ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाले कितने ही लोग अणुव्रत ग्रहणकर निर्ग्रन्थमुद्राके धारकोकी सेवा करनेके लिए उद्यत हुए ॥७५॥ तथा कितने ही लोग संसारको जीतनेवाले जिनेन्द्र भगवान्का अत्यन्त निर्मल धर्म श्रवणकर मात्र सम्यग्दर्शन से ही सन्तोषको प्राप्त हुए ॥७६॥ अनेक सामन्तोंने जाकर यह समाचार भरतके लिए सुनाया सो भरत कुछ ध्यान करता हुआ सुखसे बैठे था परन्तु यह समाचार सुन दुःखी हुआ ॥७७॥

अथानन्तर सम्यक् प्रबोधको प्राप्त हुए राजा दशरथ स्वस्थ चित्तको धारण करनेवाले भरतका राज्याभिषेक कर रामके वियोगसे कुछ सन्तप्त चित्तको धारण करते हुए, सान्त्वना देने पर भी जो अत्यन्त विलाप कर रहा था ऐसे व्याकुल अन्तःपुरको छोड़ नगरीसे बाहर निकले । उस समय शोकरूपी सागरमे डूबे हुए परिजन उनकी ओर निहार रहे थे ॥७८-८०॥ नगरीसे निकलकर वे सर्वभूतहित नामक गुरुके समीप गये और वहाँ बहुत भारी गुरु पूजाकर बहत्तर राजाओंके साथ दीक्षित हो गये ॥८१॥ यद्यपि मुनिराज दशरथ एकाकी विहार करते हुए सदा शुभ ध्यानकी इच्छा रखते थे तथापि पुत्र शोकके कारण उनका मन कलुषित हो जाता था ॥८२॥ एक दिन योगारूढ होकर बुद्धिमान् दशरथ विचार करने लगे कि संसार सम्बन्धी दुःखों

१. सागर इव गम्भीरस्तम् । २. वादिनः म० । ३. निदग्धो म० । निर्दग्धो क०, ख० ।

४. त्रपान्विताः म० । ५. दशरथः ।

अन्यजन्मसु ये दारा पितृभ्रातृसुतादयः । क गतास्ते ममानादौ संसारे गणनोष्मिताः ॥८३॥
 अनेकशो मया प्राप्ता विविधा विषया दिवि । नरकानलदाहाश्च सप्राप्ता भोगहेतवः ॥८४॥
 अन्योन्यभक्षणोदीनि तिर्यक्त्वे च चिरं मया । प्राप्तानि दुःखशल्यानि बहुरूपास्तु योनिषु ॥८५॥
 श्रुताः सङ्गीतनिस्वाना वंशवीणातुगायिनः^१ । भूयश्च परमाक्रन्दश्चित्तदारणकारिणः ॥८६॥
 स्तनेष्वप्यप्सरसां पाणिर्लोलितो नेत्रहारिषु । पुनः कुठारघातेन दुर्दृष्टेन पृथक्कृतिः ॥८७॥
 आस्वादितं महावीर्यमन्नं सुरभि पट्टरसम् । त्रपुसीसादिकललं पुनश्च नरकावनी ॥८८॥
 वीक्षितं परमं रूपं मनोज्ञवर्णकारणम् । पुनश्चात्यन्तवित्रासकारण दत्तवेषधु ॥८९॥
 आघातः स चिरामोदो गन्धो मुदितषट्पदः । पुनश्च पूतिरत्यन्तमुद्गासितमहाजनः ॥९०॥
 आलिङ्गिता मनश्चोर्यो नार्यो लीलाविभूषणाः । पुनश्च कृष्टशाल्मस्यः तीक्ष्णकण्टकसङ्घाताः ॥९१॥
 किं न स्पृष्टं न किं दृष्टं किं प्राप्तं न किं अन्तम् । सुहृदास्वादितं किं न भवे दासेन कर्मणाम् ॥९२॥
 न सा क्षितिर्न तत्तोर्यो नास्ती वङ्गिर्न सोऽनिलः । देहतां यो न मे प्राप्नो भवे संक्रामतश्चिरम् ॥९३॥
 त्रैलोक्ये स न जीवोऽस्ति यो न प्राप्नोः सहस्रशः । पितादितां मम स्थानं न तद्यत्रोपितोऽस्मि न ॥९४॥
 अभुवं देहभोगादिशरणं नास्ति विद्यते । सत्सरोऽयं चतुःस्थान एकोऽहं दुःखमुक्तिषु ॥९५॥

का मूल कारण तथा मुझे बन्धनमे डालनेवाले स्नेहको धिक्कार है ॥८३॥ अन्य जन्मोमे जो मेरे स्त्री, पिता, भाई तथा पुत्र आदि सम्बन्धी थे वे सब कहीं गये ? यथार्थमें इस अनादि संसारमे सभी सम्बन्धी इतने हो चुके हैं कि उनकी गणना नहीं की जा सकती ॥८४॥ मैंने अनेको बार स्वर्गमे नाना प्रकारके विषय प्राप्त किये हैं और भोगोंके निमित्त नरकाग्निके सन्ताप भी सहन किये हैं ॥८५॥ तिर्यश्च पर्यायमे मैंने चिरकाल तक परस्पर एक दूसरेका खाया जाना आदि दुःख उठाये हैं । इस प्रकार नाना योनियोंमें मैंने दुःख रूपी अनेक शल्य प्राप्त किये हैं ॥८६॥ मैंने बोंसुरी वीणा आदि मधुर बाजोंका अनुगमन करनेवाले सङ्गीतके शब्द सुने हैं और हृदयको विदाण करनेवाले तीव्र रुदनके शब्द भी अनेक बार श्रवण किये हैं ॥८७॥ मैंने अपना हाथ अप्सराओके सुन्दर स्तनोंपर लड़ाया है और कभी कुठारकी तीक्ष्ण धारासे उसके टुकड़े-टुकड़े भी किये हैं ॥८८॥ मैंने महाशक्ति वर्धक, सुगन्धित छहरसोसे युक्त आहार ग्रहण किया है और नरककी भूमिमें रोंगा सीसा आदिका कलल भी बार-बार पिया है ॥८९॥ मनको द्रवीभूत करनेवाला अत्यन्त सुन्दर रूप देखा है और अत्यन्त भयका कारण तथा कम्पन उत्पन्न करनेवाला घृणित रूप भी अनेक बार देखा है ॥९०॥ जिसकी सुवास चिरकाल तक स्थित रहती है ऐसा भ्रमरोको आनन्दित करनेवाला मनोहर गन्ध सूँघा है और जिसे देखते ही महाजन दूर हट जाते हैं ऐसा तीव्र दुर्गन्ध उत्पन्न करनेवाला सड़ा कलेवर भी बार-बार सूँघा है ॥९१॥ मनको क्षुरानेवाली तथा लीला रूपी आभूषणोसे सुशोभित स्त्रियोंका आलिङ्गन किया है और तीक्ष्ण कंटोसे व्याप्त सेमरके मायामयी वृद्धोंका भी बार-बार आलिङ्गन किया है ॥९२॥ कर्मोंका दास बनकर मैंने इस संसारमे क्या नहीं किया है ? क्या नहीं देखा है ? क्या नहीं सूँघा है ? क्या नहीं सुना है ? और बार-बार क्या नहीं खाया है ? ॥९३॥ न वह पृथिवी है, न वह जल है, न वह अग्नि है और न वह वायु है जो चिर कालसे संसारमे भ्रमण करते हुए मेरी शरीर-दशा को प्राप्त नहीं हुआ है ॥९४॥ तीनों लोकोंमे वह जीव नहीं है जो हजारों बार मेरा पिता आदि नहीं हुआ हो और वह स्थान भी नहीं है जहाँ मैंने निवास नहीं किया हो ॥९५॥ शरीर भोग आदि अनित्य है, कोई किसीका शरण नहीं है, यह संसार चतुर्गति रूप है, मैं अकेला ही दुःख भोगता हूँ, यह शरीर अशुचि है तथा उससे मैं जुदा हूँ, इन्द्रियों कर्मोंके अनेका द्वार है,

अशुचेः कायतोऽन्योऽहं द्वारमन्त्राणि कर्मणाम् । संवरो वारणं तेषां निर्जरा जायते ततः ॥६७॥
 लोको विचित्ररूपोऽयं दुर्लभः बोधिरुच्यमा । स्वास्थ्यातोऽयं जिनैर्धर्मः कृच्छ्रेणाधिगतो मया ॥६८॥
 ध्यानेन मुनिदृष्टेन विशुद्धेनैवमादिना । आर्तध्यानमसौ धीरः क्रमेण निरनीयशयः ॥६९॥
 येष्टुच्छ्रितसितच्छत्रो वरस्तस्यैवमाश्रितः । महाजिषु पराजिग्ये शत्रून्त्यन्तमुद्धतान् ॥७०॥
 विपमानथिकुर्वाणः परीपहणान् शृणुम् । शान्तस्तेष्वेव देशेषु निर्ग्रन्थो विजहार सः ॥७१॥
 माथे तथा स्थिते तस्मिन् विदेशे च गतेऽङ्गजे । परं सुमित्रया सत्रा शोकं मेनेऽपराजिता ॥७२॥
 ते दृष्ट्वा दुःखिते वाढमजन्वास्तलोचने^१ । भरतामार्गं श्रियं मेने भरतो विपदारुणाम् ॥७३॥
 अथैवं दुःखमापन्ने भृशं ते वीक्ष्य केकया । पश्चादुत्पन्नकारुण्यात् पुत्रमेवमभापत ॥७४॥
 पुत्रं राक्षसं स्वया लब्धं प्रणताखिलराजकम् । पद्मलक्ष्मणनिर्मुक्तमलमेतन्न शोभते ॥७५॥
 विना ताम्बां विनीताभ्यां किं राक्षसं का सुखासिका । का वा जनपदे शोभा तत्र का वा सुवृत्तता ॥७६॥
 राजपुत्रया ससं बाह्वौ क तौ यातां सुखैथितौ । विमुक्तबाह्वौ मार्गे पाषाणादिभिराकुले ॥७७॥
 मातरी दुःखिते पते तयोर्गुणसमुद्रयोः । विरहे मापतां^३ मृत्युमजस्रपरिदेवते ॥७८॥
 तस्मादानय तौ चिरं ससं ताम्बां महासुखः । सुचिरं पालय चोर्णामेवं सर्वं विराजते ॥७९॥
 ब्रजं तावत्समारुहं नुराजं जातरंहसम् । आब्रजाम्यहमप्येषा सुपुत्रानुपदं तव ॥८०॥
 इत्युक्तो धृतिमासाद्य साध्वेवमिति सत्त्वनः । सम्भ्रान्तोऽध्वसहस्रेण भरतस्तत्पथं श्रितः ॥८१॥

कर्मोंको रोक देना संवर है, संवरके बाद कर्मोंकी निर्जरा होती है, यह लोक विचित्र रूप है, उत्तम रत्नत्रयकी प्राप्ति होना दुर्लभ है, और जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कहा हुआ यह धर्म मैंने बड़े कष्टसे पाया है ॥६६-६८॥ इस प्रकार मुनियोंके द्वारा अनुभूत विशुद्ध ध्यानसे धीरवीर दशरथ मुनिने क्रमसे पूर्वोक्त आर्तध्यानको नष्ट कर दिया ॥६९॥ जिनके ऊपर सफेद छत्र फिर रहा था तथा जो उत्तम हाथीपर सवार थे ऐसे राजा दशरथने पहले जिन देशोंमें महायुद्धोंके बीच अत्यन्त उद्धत शत्रुओंको जीता था अब उन्हीं देशोंमें वे अत्यन्त शान्त निर्ग्रन्थ मुनि होकर विषम परिपहोंको सहते हुए विहार कर रहे थे ॥१००-१०१॥

तदनन्तर पतिके मुनि हो जाने और पुत्रके विदेश चले जानेपर अपराजिता (कौशल्या) सुमित्राके साथ परम शोकको प्राप्त हुई ॥१०२॥ जिनके नेत्रोंसे निरन्तर अश्रु भरते रहते थे ऐसी दोनों विमाताओंको दुःखी देखकर भरत, भरत चक्रवर्तीकी लक्ष्मीके समान विशाल राज्यलक्ष्मी को विपके समान दारुण मानता था ॥१०३॥ अध्यानन्तर इस तरह उन्हें अत्यन्त दुखी देख केकयीके मनमें दया उत्पन्न हुई जिससे प्रेरित होकर उसने अपने पुत्र भरतसे इस प्रकार कहा कि हे पुत्र ! यद्यपि तूने जिसमें समस्त राजा नम्रीभूत है ऐसा राज्य प्राप्त किया है तथापि वह राम और लक्ष्मणके बिना शोभा नहीं देता है ॥१०४-१०५॥ नियमसे भरे हुए उन दोनों भाइयोंके बिना राज्य क्या है ? देशकी शोभा क्या है ? और तेरी धर्मज्ञता क्या है ? ॥१०६॥ सुख पूर्वक वृद्धिको प्राप्त हुए दोनों बालक, बिना किसी बाह्यके पाषाण आदि विषम मार्गमें राजकुमारी सीताके साथ कहाँ भटकते होंगे ? ॥१०७॥ गुणोंके सागर स्वरूप उन दोनोंकी ये माताएँ अत्यन्त दुःखी हैं, निरन्तर विलाप करती रहती हैं सो उनके विरहमें मृत्युको प्राप्त न हो जावें ॥१०८॥ इसलिए तू शीघ्र ही उन दोनोंको वापिस ले आ । ऊँहीके साथ सुखपूर्वक चिरकाल तक पृथिवीका पालन कर । ऐसा करनेसे ही सबकी शोभा होगी ॥१०९॥ हे सुपुत्र ! तू वेगशाली घोड़ेपर सवार होकर जा और मैं भी तेरे पीछे ही आती हूँ ॥११०॥

माताके इस प्रकार कहनेपर भरत बहुत प्रसन्न हुआ वह 'साधु-साधु ठीक-ठीक' इस

कृत्वा पुरस्सरान् पद्मपार्थात् प्रत्यागताञ्जरान् । पवनाब्धसमारुहः स यथौ शृशुमुत्सुकः ॥११२॥
 प्रासश्च तामरण्यानीमनेकपर्ककुलाकुलाम् । नानावृक्षावृतादित्यां गिरिगङ्गारभीपणाम् ॥११३॥
 वन्यपित्वा महावृक्षैरुडुपानां^२ सुसहतीः^३ । तां^४ पुनीमुत्तारासीं क्षणेन सहवाहने ॥११४॥
 इतो दृष्टवितो दृष्टौ पुरुषौ सह योपिता । इति पृच्छन्स शृण्वंश्च जगामानन्यमानसः ॥११५॥
 अथ तौ परमारण्ये विश्रान्तौ सरसस्तटे । ससीतौ भरतोऽपश्यत् पार्श्वन्यस्तशरासनौ ॥११६॥
 प्रभृतदिवसप्रासे ताभ्यां सीतान्यपेक्षया । षड्भिर्दिनैस्तमुद्देशं भरतः प्रतिपन्नवान् ॥११७॥
 अवतार्य तुरङ्गाच्च मार्गं लोचनगोचरम् । गत्वा पद्म्यां^५ समाश्लिष्य पादौ^६ पद्मस्य मूर्छितः ॥११८॥
 ततो विबोधितस्तेन कृत्वा सम्भाषणं क्रमात् । मूर्द्धांश्चलिजगदादेव पद्मं विनतविग्रहः ॥११९॥
 विडम्बनमिदं कस्माद्वाच मे भवता कृतम् । परं राज्यपदेशेन न्यायसर्वस्व कोविद ॥१२०॥
 आस्तां तावदिदं राज्यं जीवितेनापि किं मम । भवता विप्रयुक्तस्य गुरुक्षेष्टकारिणा ॥१२१॥
 उत्तिष्ठ स्वपुरी यामः प्रसादं कुरु मे प्रभो । राज्यं पालय निश्शेषं यच्छ मेति सुखासिकाम् ॥१२२॥
 भवामि छत्रधारस्ते रुद्रभ्रमराश्रितः । लक्ष्मणः परमो मन्त्री सर्वं सुविहितं ननु ॥१२३॥
 पश्चात्तापानलेनालं संस्तप्ता जवनी मम । तत्र लक्ष्मीधरस्यापि वर्तते शोककारिणी ॥१२४॥
 प्रवीत्येवमसौ यावत्केकया तावदागता । वेनिनं^७ रथामारुह्य सामन्तशतमध्यगा ॥१२५॥

प्रकारके शब्द कहने लगा तथा शीघ्र ही एक हजार घोड़ोंसे युक्त हो रामके मार्गमें चल पड़ा ॥१११॥ वह रामके पाससे लौटकर आये हुए लोगोको आगेकर बढ़ी उत्कण्ठासे पवनके समान शीघ्रगामी घोड़ेपर सवार होकर चला ॥११२॥ तथा कुछ ही समयमें उस महाअटवीमें जा पहुँचा जो हाथियोके समूहसे व्याप्त थी, नाना वृक्षोंसे जहाँ सूर्यका प्रवेश रुक गया था तथा जो पर्वत और गर्तोंसे अत्यन्त भयंकर थी ॥११३॥ सामने भयंकर नदी थी सो वृक्षोंके बड़े-बड़े लहोसे नावोंके समूहको बौधकर उनका पुल बना बाहनोके साथ-साथ क्षण भरमें पार कर गया ॥११४॥ वह मार्गमें मिलनेवाले लोगोसे पूछता जाता था कि क्या यहाँ आप लोगोंने एक स्त्रीके साथ दो पुरुष देखे हैं और उनके उत्तरको एकाम्र मनसे सुनता हुआ आगे बढ़ता जाता था ॥११५॥

अथानन्तर जो सवन वनमें एक सरोवरके तीरपर विश्राम कर रहे थे तथा जिनके पास ही धनुष रखे हुए थे ऐसे सीता सहित रामलक्ष्मणको भरतने देखा ॥११६॥ रामलक्ष्मण, सीताके कारण जिस स्थानपर बहुत दिनमें पहुँच पाये थे भरत उस स्थानपर छह दिनमें ही पहुँच गया ॥११७॥ वह घोड़ेसे उतर पड़ा और जहाँसे राम दिख रहे थे उतने मार्गमें पैदल ही चलकर उनके समीप पहुँचा तथा उनके चरणोका आलिङ्गन कर मूर्च्छित हो गया ॥११८॥ तदनन्तर रामने सचेत किया सो क्रमसे वार्तालाप कर नशीभूत हो हाथ जोड़ शिरसे लगाकर इस प्रकार कहने लगा कि हे नाथ ! राज्य देकर आपने मेरी यह क्या विडम्बना की है ? आप ही न्यायके जाननेवाले अतिशय निपुण हो ॥११९-१२०॥ उत्तम चेष्टाओंके धारण करनेवाले आपसे पृथक् रहकर मुझे यह राज्य तो दूर रहे जीवनसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥१२१॥ हे प्रभो ! ठहो, अपनी नगरीको चले, मुझपर प्रसन्नता करो, समस्त राज्यका पालन करो और मुझे सुखकी अवस्था देओ ॥१२२॥ मैं आपका छत्र धारक होऊँगा, शत्रुत्र चमर डोलेंगा और लक्ष्मण उत्कृष्ट मन्त्री होगा, ऐसा करनेसे ही सब ठीक होगा ॥१२३॥ मेरी माता पश्चात्तापारुपी अग्निसे अत्यन्त संतप्त हो रही है तथा आपको और लक्ष्मणकी माता भी निरन्तर शोक कर रही है ॥१२४॥ जब तक भरत इस प्रकार कह रहा था तब तक सैकड़ों सामन्तोंके मध्य गमन करने-

दृष्ट्वा परमशोकेन निर्भरीकृतमानसा । हाकारमुखरा चेतावालिंभ्य रुदिता चिरम् ॥१२६॥
ततोऽखलरितशङ्खे विप्रलापेऽतिखेदिता । क्रमात्सम्भाषणं कृत्वा केकयैवमभाषत ॥१२७॥
पुत्रोत्तिष्ठ पुरी यामः कुरु राज्यं सहानुजः । ननु त्वया विहीनं मे सकलं विपिनायते ॥१२८॥
भरतः शिष्याणीषोऽयं तवात्यन्तमनीषिणः । खौणेन नष्टबुद्धेर्मे क्षमस्व दुरनुष्ठितम् ॥१२९॥
ततः पद्मो जगादैवं किं न वेत्ति त्वमम्बिके । क्षत्रिया ननु कुर्वन्ति सकृत्कार्यमनन्यथा ॥१३०॥
उक्तं तातेन यस्तस्य तत्कर्तव्यं भया त्वया । भरतेन च दुष्कीर्तिर्माभूदस्य जगत्त्रये ॥१३१॥
पुनश्चोवाच भरत भ्रातर्मां गा विचिन्तताम् । शङ्कते यथनाचारात्त्रायं मदनुमोदनात् ॥१३२॥
इत्युक्त्वा पुनरप्यस्य पद्मो राज्याभिषेचनम् । चकार कानने रम्ये समचं सर्वभूभृताम् ॥१३३॥
प्रणम्य केकया सान्त्व सम्भाष्य च पुनः पुनः । भ्रातरं च परिप्लव्य प्राहिणोत् सोऽतिकृच्छृतः ॥१३४॥
तौ विधाय यथायोग्यमुपचारं सलीतयोः । रामलक्ष्मणयोर्धातौ मातापुत्रौ यथागतम् ॥१३५॥
परिहस्ताखिलद्वेयं सर्वप्रकृतिसौख्यदम् । चकार भरतो राज्यं प्रजासु जनकोपमः ॥१३६॥
राज्ये तथाविधेऽप्यस्य धृतिर्नाभूदपि क्षणम् । दुस्सहं दधमानस्य शोकशल्यं मनस्विनः ॥१३७॥
त्रिकालमरनाथस्य वन्दारुर्भोगमन्वधीः । ययौ श्रोतुं च सद्धर्मं चैत्यमन्येयतीं हृति ॥१३८॥

वाली केकयी वैगशाली रथपर सवार हो वहाँ आ पहुँची ॥१२६॥ राम लक्ष्मणको देखकर उसका हृदय बहुत भारी शोकसे भर गया । हा हा कार करती हुई वह दोनोका आलिङ्गन कर चिर काल तक रोती रही ॥१२६॥

तदनन्तर जो बिलाप करती-करती अत्यन्त खिन्न हो गई थी ऐसी केकयी अश्रुरूपी नदीकी धारा दृटनेपर क्रमसे वार्तालाप कर इस प्रकार बोली कि हे पुत्र ! ठहो, नगरीको चले, छोटे भाइयोके साथ राज्य करो, तुम्हारे बिना मुझे यह सब राज्य वनके समान जान पड़ता है ॥१२७-१२८॥ तुम अतिशय बुद्धिमान् हो, यह भरत तुम्हारी शिक्षाके योग्य है अर्थात् इसे शिक्षा देकर ठीक करो, खौपनाके कारण मेरी बुद्धि नष्ट हो गई थी अतः मेरे इस कुकृत्यको क्षमा करो ॥१२९॥ तदनन्तर रामने कहा कि हे माता ! क्या तुम यह नहीं जानती हो कि क्षत्रिय स्वीकृत कार्यको कभी अन्यथा नहीं करते हैं—एक बार कार्यको जिस प्रकार स्वीकृत कर लेते हैं उसी प्रकार उसे पूर्ण करते हैं ॥१३०॥ पिताने जो सत्य वचन कहा था उसको पूर्ति मुझे तुम्हें तथा भरत-सभीको करनी चाहिये । 'पिताकी अपकीर्ति जगत्त्रयमे न फैले' इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है ॥१३१॥ केकयीसे इतना कहकर उन्होंने भरतसे कहा कि हे भाई ! तू वैचित्य अर्थात् द्विविधाको प्राप्त मत हो । यदि तू अनाचारसे डरता है तो यह अनाचार नहीं है क्योंकि मैं स्वयं इस कार्यकी तुम्हें अनुमति दे रहा हूँ ॥१३२॥ इतना कहकर रामने मनोहर वनमें सव राजाओंके समक्ष भरतका पुनः राज्याभिषेक किया ॥१३३॥ तदनन्तर केकयीको प्रणामकर सान्त्वना देते हुए बार-बार सम्भाषण कर और भाईका आलिङ्गन कर बड़े कष्टसे सबको वापिस बिदा किया ॥१३४॥ इस प्रकार माता और पुत्र अर्थात् केकयी और भरत, सीता सहित रामलक्ष्मणका यथा योग्य उपचार कर जैसे आये थे वैसे लौट गये ॥१३५॥

अथानन्तर भरत, पिताके समान, प्रजापर राज्य करने लगा । उसका राज्य समस्त शत्रुओंसे रहित तथा समस्त प्रजाको सुख देनेवाला था ॥१३६॥ तेजस्वी भरतने अपने मनमें असहनीय शोकरूपी शल्यको धारण कर रहा था इसलिए ऐसे व्यवस्थित राज्यमें भी उसे क्षणभरके लिए संतोष नहीं होता था ॥१३७॥ वह तीनों काल अरनाथ भगवान्की वन्दना करता था भोगोंसे सदा उदास रहता था और समीचीन धर्मका श्रवण करनेके लिए मन्दिर जाता था

तत्राचार्यो धुतिर्नाम^१ स्वपरागमपारगः । महता साधुसधेन सततं कृतसेवनः ॥१३१॥
 अग्रतोऽवग्रहं तस्य चकार भरतः सुधीः । पद्मदर्शनमात्रेण^२ करिष्ये मुनितामिति ॥१३०॥
 कृतावग्रहमेवं तमुवाच भगवान् धृतिः । कुर्वन् मयूरवृन्दानां नर्तनं धीरया गिरा ॥१३१॥
 भव्य ओ यावदायाति पद्मः पद्मनिरीक्षणः । तावद्गृहस्थधर्मेण^३ भवासपरिकर्मकः ॥१३२॥
 अत्यन्तदुस्सह्य चेष्टा निर्ग्रन्थानां महात्मनाम् । परिकर्मं विशुद्धस्य जायते सुखसाधना ॥१३३॥
 उपरिष्टान् करिष्यामि काले तप इति ब्रुवन् । अनेको मृत्युमायाति नरोतिजडमानसः ॥१३४॥
 अनर्घ्यरत्नसदृश तपो दिग्वाससामिति । एवमप्युत्तम वज्रु परस्तस्योपमा कृतः ॥१३५॥
 कनीयास्तस्य धर्मोऽयमुक्तोऽय गृहिणां जिनैः । अग्रमाद्री भवेत्तस्मिन्नितो बोधदायिनि ॥१३६॥
 यथा रत्नाकरद्वीप मानवः कश्चिदागतः । रत्नं यत्किञ्चिदादत्ते यात्यस्य तदनर्घताम् ॥१३७॥
 तथास्मिन्नियमद्वीपे शासने धर्मचक्रिणाम् । य एव नियमः कश्चिद् ग्रहीतो यात्यनर्घताम् ॥१३८॥
 अहिंसास्नमादाय विपुलं यो जिनाधिपम् । भक्त्यार्चयत्यसौ^४ नाके परमां वृद्धिमश्नुते ॥१३९॥
 सत्यव्रतधरः क्षत्रियः करोति जिनार्चनम् । भक्त्यादेयवाक्योऽसौ सत्कीर्तिव्याप्तविष्टपः ॥१४०॥
 अदत्तादाननिमुक्तो जितेन्द्रान् यो नमस्यति । जायते रत्नपूर्णानां^५ निधीनां स विभुर्नरः ॥१४१॥
 यो रतिं परनारोषु न करोति जिनाश्रितः । सोऽय गच्छति सौभाग्यं सर्वनेत्रमलिम्लुचः^६ ॥१४२॥
 जिनानर्चति यो भक्त्या कृतावधिपरिग्रहः । लभतेऽसावतिस्कीतान् लाभान् लोकस्य पूजितः ॥१४३॥

यही इसका नियम था ॥१३८॥ वहाँ स्व और पर शास्त्रोंके पारगामी तथा अनेक मुनियोंका संघ जिनकी निरन्तर सेवा करता था ऐसे धुति नामके आचार्य रहते थे ॥१३९॥ उनके आगे बुद्धिमान् भरतने प्रतिज्ञा की कि मैं रामके दर्शन मात्रसे मुनिव्रत धारण करूँगा ॥१४०॥ तदनन्तर अपनी गम्भीर वाणीसे मयूर समूहको वृत्त्य कराते हुए भगवान् धृति भट्टारक इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करनेवाले भरतसे बोले ॥१४१॥ कि हे भव्य । कमलके समान नेत्रोंके धारक राम जब तक आते तब तक तू गृहस्थ धर्मके द्वारा अभ्यास कर ले ॥१४२॥ महात्मा निर्ग्रन्थ मुनियोंकी चेष्टा अत्यन्त कठिन है पर जो अभ्यासके द्वारा परिपक्व होते हैं उन्हें उसका साधन करना सरल हो जाता है ॥१४३॥ 'मैं आगे तप करूँगा' ऐसा कहनेवाले अनेक जड़बुद्धि मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं पर तप नहीं कर पाते हैं ॥१४४॥ निर्ग्रन्थ मुनियोंका तप अमूल्य रत्नके समान है' ऐसा कहना भी अशक्य है फिर उसकी अन्य उपमा तो ही क्या सकती है ? ॥१४५॥ गृहस्थोंके धर्मको जितेन्द्र भगवान्ने मुनिधर्मका छोटा भाई कहा है सो बोधिको प्रदान करनेवाले इस धर्ममें भी प्रमाद रहित होकर लीन रहना चाहिये ॥१४६॥ जैसे कोई मनुष्य रत्नद्वीप में गया वहाँ वह जिस किसी भी रत्नको उठाता है वही उसके लिए अमूल्यताको प्राप्त हो जाता है इसी प्रकार धर्मचक्रकी प्रवृत्ति करनेवाले जितेन्द्र भगवान्के शासनमें जो कोई इस नियमरूपी द्वीपमें आकर जिस किसी नियमको ग्रहण करता है वही उसके लिए अमूल्य हो जाता है ॥१४७-१४८॥ जो अत्यन्त श्रेष्ठ अहिंसारूपी रत्नको लेकर भक्तिपूर्वक जितेन्द्रदेवकी पूजा करता है वह स्वर्गमें परम वृद्धिको प्राप्त होता है ॥१४९॥ जो सत्य व्रतका धारी होकर मालाओं से भगवान्की अर्चा करता है उसके वचनोंको सब ग्रहण करते हैं तथा उज्ज्वल कीर्तिसे वह समस्त संसारको व्याप्त करता है ॥१५०॥ जो अदत्तादान अर्थात् चोरीसे दूर रहकर जितेन्द्र भगवान्की पूजा करता है वह रत्नोंसे परिपूर्ण निधियोंका स्वामी होता है ॥१५१॥ जो जितेन्द्र भगवान्की सेवा करता हुआ परस्त्रियोमें प्रेम नहीं करता है वह सबके नेत्रोंको हरण करनेवाला परम सौभाग्यको प्राप्त होता है ॥१५२॥ जो परिग्रहकी सीमा नियतकर भक्तिपूर्वक जितेन्द्र

१. स्वकीयपरकीयशास्त्रपारगामी । २. प्रतिज्ञाम् । ३. प्राप्ताभ्यासः । ४. स्वर्ग । ५. नदीनाम० (१) । ६. सर्वजनमनोहरः ।

आहारदानपुण्येन जायते भोगनिर्भरः । विदेशमपि यातस्य सुखिता तस्य सर्वदा ॥१५३॥
 अभीतिदानपुण्येन जायते भयवर्जितः । महासङ्कटयातोऽपि निरुपद्रवविग्रहः ॥१५४॥
 जायते ज्ञानदानेन विशालसुखभाजनम् । कलार्णवामृतं चासौ गम्धूपं कुरुते नरः ॥१५५॥
 यः करोति विभावयामाहारपरिवर्जनम् । सर्वात्मप्रवृत्तोऽपि वात्यसौ सुखदां गतिम् ॥१५७॥
 वन्दनं यो जिनेन्द्राणां त्रिकालं कुरुते नरः । तस्य भावविशुद्धस्य सर्वं नश्यति दुष्कृतम् ॥१५८॥
 सामोदैर्भूजलोद्भूतैः पुष्पैर्यो जिनमर्चति । विमानं पुष्पकं प्राप्य स ऋडति यथेप्सितम् ॥१५९॥
 भावपुष्पैर्जिनं यस्तु पूजयत्यतिनिर्मलैः । लोकस्य पूजनीयोऽसौ जायतेऽर्थन्तसुन्दरः ॥१६०॥
 धूपं यश्चन्दनाद्युप्रागुवादिप्रसन्न सुधीः । जिनानां हौकथत्येव जायते सुरभिः सुरः ॥१६१॥
 यो जिनेन्द्रालये दीपं दद्याति शुभभावनः । स्वयम्प्रभशरीरोऽसौ जायते सुरसन्निभः ॥१६२॥
 छत्रचामरलम्बूपताकादर्पणादिभिः । भूषयित्वा जिनस्थानं याति विस्मयिनीं श्रियम् ॥१६३॥
 समालम्ब्य जिनान् गन्धैः सौरभ्यव्याप्तविद्भुजैः । सुरभिः प्रमदानन्दो जायते दयितः पुमान् ॥१६४॥
 अभिषेकं जिनेन्द्राणां कृत्वा सुरभिधारिणा । अभिषेकमवाप्नोति यत्र यत्रोपजायते ॥१६५॥
 अभिषेकं जिनेन्द्राणां विधाय चौरधारया । विमाने चौरध्वजे जायते परमद्युतिः ॥१६६॥
 दधिकुम्भैर्जिनेन्द्राणां यः करोत्यभिषेचनम् । दध्यामकुट्टमे स्वर्गं जायते स सुरोत्तमः ॥१६७॥
 सर्पिषा जिननाथानां कुरुते योऽभिषेचनम् । कान्तिद्युतिप्रभावाढ्यो विमानेशः स जायते ॥१६८॥

जिनेन्द्र भगवान्की अर्चा करता है वह अतिशय विस्तृत लाभोको प्राप्त होता है तथा लोग उसकी पूजा करते हैं ॥१५३॥ आहार-दानके पुण्यसे यह जीव भोग-निर्भर होता है अर्थात् सब प्रकारके भोग इसे प्राप्त होते हैं । यदि यह परदेश भी जाता है तो वहाँ भी उसे सदा सुख ही प्राप्त होता है ॥१५४॥ अभयदानके पुण्यसे यह जीव निर्भय होता है और बहुत भारी संकटमें पड़कर भी उसका शरीर उपद्रवसे शून्य रहता है ॥१५५॥ ज्ञानदानसे यह जीव विशाल सुखों का पात्र होता है और कलारूपी सागरसे निकले हुए अमृतके कुल्ले करता है ॥१५६॥ जो मनुष्य रात्रिमें आहारका त्याग करता है वह सब प्रकारके आरम्भमे प्रवृत्त रहनेपर भी सुखदायी गतिको प्राप्त होता है ॥१५७॥ जो मनुष्य तीनों कालमें जिनेन्द्रभगवान्की वन्दना करता है उसके भाव सदा शुद्ध रहते हैं तथा उसका सब पाप नष्ट हो जाता है ॥१५८॥ जो पृथिवी तथा जलमें उत्पन्न होनेवाले सुगन्धित फूलोंसे जिनेन्द्रभगवान्की अर्चा करता है वह पुष्पक विमानको पाकर इच्छानुसार क्रीड़ा करता है ॥१५९॥ जो अतिशय निर्मल भावरूपी फूलोंसे जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है वह लोगोके द्वारा पूजनीय तथा अत्यन्त सुन्दर होता है ॥१६०॥ जो बुद्धिमान् चन्दन तथा कालागुरु आदिसे उत्पन्न धूप जिनेन्द्रभगवान्के लिए चढ़ाता है वह मनोह्र देव होता है ॥१६१॥ जो जिनमन्दिरमें शुभ भावसे दीपदान करता है वह स्वर्गमें देदीप्यमान शरीरका धारक होता है ॥१६२॥ जो मनुष्य छत्र, चमर, फन्नुस, पताका तथा दर्पण आदिके द्वारा जिनमन्दिरको विभूषित करता है वह आश्चर्यकारक लक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥१६३॥ जो मनुष्य सुगन्धिसे दिशाओको व्याप्त करनेवाली गन्धसे जिनेन्द्रभगवान्का लेपन करता है वह सुगन्धिसे युक्त, स्त्रियोको आनन्द देनेवाला प्रिय पुरुष होता है ॥१६४॥ जो मनुष्य सुगन्धित जलसे जिनेन्द्रभगवान्का अभिषेक करता है वह जहाँ-जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ अभिषेक को प्राप्त होता है ॥१६५॥ जो दूधकी धारासे जिनेन्द्रभगवान्का अभिषेक करता है वह दूधके समान धवल विमानसे उत्तमकान्तिका धारक होता है ॥१६६॥ जो दहीके कलशसे जिनेन्द्रभगवान्का अभिषेक करता है वह दहीके समान फर्सवाले स्वर्गमें उत्तम देव होता है ॥१६७॥ जो घीसे जिनदेवका अभिषेक करता है वह कान्ति द्युति और प्रभावसे युक्त विमानका स्वामी

अभिषेकप्रभावेण श्रयन्ते बहवो बुधाः । पुराणेऽनन्तवीर्याश्च^१ युभूलब्धभिषेचनाः ॥१६६॥
 भक्त्या बल्युपहारं यः कुरुते जिनसन्नि । सम्प्राप्नोति परां भूतिमारोग्य स सुमानसः ॥१७०॥
 गीतनर्तनवादित्रैर्यः करोति महोत्सवम् । जिनसन्निभस्वै स्वर्गं लभते परमोत्सवम् ॥१७१॥
 भवनं यस्तु जैतेन्द्रं निर्मापयति मानवः । तस्य भोगोत्सवः शक्यः केन वक्तुं सुचेतसः ॥१७२॥
 प्रतिमां यो जिनेन्द्राणां कारयत्यचिरादसौ । सुरासुरोत्तमसुखं प्राप्य याति परं पदम् ॥१७३॥
 व्रतज्ञानतपोदानैर्योन्युपात्तानि देहिनः । सर्वैश्चिन्त्यपि कालेषु पुण्यानि भुवनत्रये ॥१७४॥
 एकस्मादपि जैनेन्द्रविम्बाद् भावेन कारितात् । यत्पुण्यं जायते तस्य न सम्मान्यतिमात्रतः ॥१७५॥
 फलं यदेतदुद्दिष्टं स्वर्गं सम्प्राप्य जन्तवः । चक्रवर्त्यादित्तां लब्ध्वा तन्मर्त्यत्वेपि भुङ्गते ॥१७६॥
 धर्ममेवं विधानेन यः कश्चित्प्राप्य मानवः । संसारार्णवमुत्तीर्य त्रिलोकाग्नेऽवतिष्ठते ॥१७७॥
 फलं ध्यानाच्चतुर्थस्य^२ पृथग्योचानमात्रतः । अष्टमस्य तदारम्भे गमने दशमस्य तु ॥१७८॥
 द्वादशस्य ततः किञ्चिन्मप्ये पक्षोपवासजम् । फलं मासोपवासस्य लभते चैत्यदर्शनात् ॥१७९॥
 चैत्याद्वाग्नं समासाद्य याति पाप्मासिकं फलम् । फलं वर्षोपवासस्य प्रविश्य द्वारमरनुते ॥१८०॥
 फलं प्रदक्षिणीकृत्य भुङ्क्ते वर्षशतस्य तु । दृष्ट्वा जिनास्यमान्नोति फलं वर्षसहस्रजम् ॥१८१॥
 अनन्तफलमान्नोति स्तुतिं कुर्वन् स्वभावतः । नहि भक्तेजिनेन्द्राणां विद्यते परमुत्तमम् ॥१८२॥
 कर्म भक्त्या जिनेन्द्राणां चय भरत गच्छति । ज्ञानकर्मा पदं याति यस्मिन्ननुपम सुखम् ॥१८३॥

देव होता है ॥१६८॥ पुराणमें सुना जाता है कि अभिषेकके प्रभावसे अनन्तवीर्य आदि अनेक विद्वज्जन, स्वर्गकी भूमिमें अभिषेकको प्राप्त हुए हैं ॥१६९॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जिनमन्दिरमें रङ्गावलि आदि का उपहार चढ़ाता है वह उत्तम हृदयका धारक होकर परम विभूति और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७०॥ जो जिनमन्दिरमें गीत, नृत्य तथा वादित्रोंसे महोत्सव करता है वह स्वर्गमें परम उत्सवको प्राप्त होता है ॥१७१॥ जो मनुष्य जिनमन्दिर बनवाता है उस सुचेताके भोगोत्सवका वर्णन कौन कर सकता है ? ॥१७२॥ जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान्की प्रतिमा बनवाता है वह शीघ्र ही सुर तथा असुरोंके उत्तम सुख प्राप्तकर परम पदको प्राप्त होता है ॥१७३॥ तीनों कालों और तीनों लोकोंमें व्रत, ज्ञान, तप और दानके द्वारा मनुष्यके जो पुण्य-कर्म संचित होते हैं वे भावपूर्वक एक प्रतिमाके बनवानेसे उत्पन्न हुए पुण्यकी बराबरी नहीं कर सकते ॥१७४-१७५॥ इस कहे हुए फलको जीव स्वर्गमें प्राप्तकर जब मनुष्य पर्यायमें उत्पन्न होते हैं तब चक्रवर्ती आदिका पद पाकर वहाँ भी उसका उपभोग करते हैं ॥१७६॥ जो कोई मनुष्य इस विधिसे धर्मका सेवन करता है वह संसार-सागरसे पार होकर तीन लोकके शिखरपर विराजमान होता है ॥१७७॥ जो मनुष्य जिनप्रतिमाके दर्शनका चिन्तन करता है वह वेलाका, जो वद्यमका अभिलाषी होता है वह तेलाका, जो जानेका आरम्भ करता है वह चौलाका, जो जाने लगता है वह पाँच उपवासका, जो कुछ दूर पहुँच जाता है वारह उपवासका, जो बीचमें पहुँच जाता है वह पन्द्रह उपवासका, जो मन्दिरके दर्शन करता है वह मासोपवासका, जो मन्दिरके आँगनमें प्रवेश करता है वह छहमासके उपवासका, जो द्वारमें प्रवेश करता है वह वर्षोपवासका, जो प्रदक्षिणा देता है वह सौ वर्षके उपवासका, जो जिनेन्द्रदेवके सुखका दर्शन करता है वह हजार वर्षके उपवासका और जो स्वभावसे स्तुति करता है वह अनन्त उपवासके फलको प्राप्त करता है । यथार्थमें जिनभक्तिसे बढ़कर उत्तम पुण्य नहीं है ॥१७८-१८२॥ आचार्य द्युति कहते हैं कि हे भरत ! जिनेन्द्रदेवकी भक्तिसे कर्म ज्ञयको प्राप्त हो जाते हैं और जिसके कर्म क्षीण हो जाते हैं वह अनुपम सुखसे सम्पन्न परम पदको प्राप्त होता

दत्तुकेऽन्यन्तसङ्गतिः प्रणम्य चरणौ गुरोः । जग्राह भरतो धर्मं सागारं सुविधानतः ॥१८३॥
बहुश्रुतोऽतिधर्मज्ञो विनीतः श्रद्धयान्वितः । विशेषतो ददौ दानं स साधुषु यथोचितम् ॥१८५॥
सम्यग्दर्शनरत्नं स हृदयेन सदा बहन् । चकार विपुलं राज्यं साधुचेष्टापरायणः ॥१८६॥
प्रतापश्चातुरागश्च समस्तां तस्य मेदिनीम् । वज्राम प्रतिघातेन रहितां गुणवारिधेः ॥१८७॥
अभ्यर्द्धं तस्य पत्नीनां शक्तं देवीसमन्विताम् । न तत्रासक्तिमायाति शतपत्रं यथाम्भसि ॥१८८॥

उपजातिः

चिन्तास्य नित्यं मगधाधिपासीत् कदा नु लप्स्ये निरगारदीक्षाम् ।
तपः करिष्यामि कदा नु घोरं संवेर्षिमुक्तो बिहरन् पृथिव्याम् ॥१८९॥

इन्द्रवज्रा

धन्या मनुष्या धरणीतले ते ये सर्वसङ्गाद् परिवर्ज्य धीराः।
दग्धाखिलं कर्म तपोबलेन प्राप्ताः पदं निर्द्वितिसौख्यसारम् ॥१९०॥

उपजातिः

तिष्ठामि पापो भवदुःखमयः पर्यवस्ये चणिकं समस्तम् ।
पूर्वाह्णदण्डोऽत्र जनोऽपराह्णे न द्रव्यते कश्चिद्दोऽस्मि मूढः ॥१९१॥

इन्द्रवज्रा

व्यालाञ्जलाद् वा विपतोऽनलाद् वा वज्राद् विमुक्तादहितेन शब्दात् ।
धृलाद् वराद् वा मरणं जनोऽयं प्राप्नोति दीनाननबन्धुमन्ये ॥१९२॥

है ॥१८३॥ ऐसा कहनेपर अत्यन्त समीचीन भक्तियुक्त भरतने गुरुके चरणोंको नमस्कार कर विधिपूर्वक गृहस्थ धर्म ग्रहण किया ॥१८४॥ अनेक शास्त्रोंका ज्ञाता, धर्मके मर्मको जाननेवाला, विनयवान् और श्रद्धा गुणसे युक्त भरत अब साधुओंके लिए विशेष रूपसे यथायोग्य दान देने लगा ॥१८५॥ उत्तम आचरणके पालनमें तत्पर रहनेवाला भरत हृदयमें सम्यग्दर्शनरूपी रत्नको धारण करता हुआ विशाल राज्यका पालन करता था ॥१८६॥ गुणोंके सागरस्वरूप भरतका प्रताप और अनुराग दोनों ही बिना किसी रुकावटके समस्त पृथिवीमें भ्रमण करते थे ॥१८७॥ उसके देवियोंके समान कान्तिको धारण करनेवाली डेढ़ सौ स्त्रियाँ थीं फिर भी वह उनमें आसक्तिको प्राप्त नहीं होता था । जिस प्रकार कमल जलमें रहकर भी उसमें आसक्त नहीं होता है उसी प्रकार वह उन स्त्रियोंके बीच रहता हुआ भी उनमें आसक्त नहीं था ॥१८८॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेष्ठिक ! भरतके मनमें सदा यही चिन्ता विद्यमान रहती थी कि मैं निर्धन्य दीक्षा कब धारण करूँगा और परिग्रहसे रहित हो पृथिवीपर विहार करता हुआ घोर तप कब करूँगा ? ॥१८९॥ पृथिवीतलपर वे धीर-वीर मनुष्य धन्य हैं जो सर्व परिग्रहका त्यागकर तथा तपोबलसे समस्त कर्मोंको मम्म कर सन्तोषरूपी सुखसे श्रेष्ठ मोक्ष पदको प्राप्त हो चुके हैं ॥१९०॥ एक मैं पापी हूँ जो समस्त जगत्को क्षणभङ्गुर देखता हुआ भी संसारके दुःखमें मग्न हूँ । इस संसारमें जो मनुष्य पूर्वाह्न कालमें देखा गया है वही अपराह्न कालमें नहीं दिखाई देता फिर भी आश्चर्य है कि मैं मूढ़ बना हूँ ॥१९१॥ दीन हीन सुखको धारण करनेवाले बन्धुजनोके बीचमें वैठा हुआ यह प्राणी सर्पसे, जलसे, विषसे, अग्निसे, वज्रसे, शत्रुके

उपजातिः

बहुप्रकारैर्मरणैर्वनोऽयं प्रतव्यते दुःखसहस्रभागी ।

क्षारार्णवस्येव तटे प्रसुप्तो मत्तोऽतिवेगप्रसृतोमिनालैः ॥११३॥

विधाय राज्यं घनपापदिग्धो हा कं प्रपत्ये नरकं तु घोरम्^१ ।

शरासिचक्रागनगान्धकारं किं वा^२ तु तिर्यक्त्वमनेकयोनिम् ॥११४॥

लब्ध्वापि जैनं समयं यदेतन्मनो मदीयं^३ दुरितानुबद्धम् ।

करोति नो निस्पृहतासुपेत्य विमुक्तिदत्तं निरगार्थमम् ॥११५॥

एवं च चिन्तां सततं प्रपन्नो दुष्कर्मविध्वंसनहेतुभूताम् ।

पुराणनिर्ग्रन्थकथाप्रसक्तो ददर्श^४ राजा न रधिं न चन्द्रम् ॥११६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथरामभरतानां प्रमज्ज्यावनप्रस्थानराज्याभिधानं
नाम द्वाविंशत्तमं पर्व ॥३२॥

द्वारा छोड़ै हुए शस्त्रसे, अथवा तीक्ष्ण शूलसे मरणको प्राप्त हो जाता है ॥११३॥ यह प्राणी अनेक प्रकारके मरणासे हजारों प्रकारके दुःख भोगता हुआ भी निश्चिन्त बैठता है सो ऐसा जान पड़ता है मानो कोई मत्त मनुष्य वेगसे फैलनेवाली लहरोके समूहसे निर्भय हो लवणसमुद्रके तटपर सोया है ॥११४॥ हाय हाय, मैं राज्य कर तीव्र पापसे लिप्त होता हुआ जहाँ बाण, खड्ग, चक्र आदि शस्त्र, तथा शाल्मली आदि वृक्षों और पहाड़ोंके कारण घोर अन्धकार व्याप्त है ऐसे किस भयंकर नरकमें पहुँचा अथवा अनेक योनियोंसे युक्त तिर्यञ्च पर्यायको प्राप्त होऊँगा ? ॥११५॥ मेरा यह मन जैनधर्मको पाकर भी पापोंसे लिप्त हो रहा है तथा निःस्पृहताको प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करानेमें समर्थ मुनिधर्मको धारण नहीं कर रहा है ॥११६॥ इस प्रकार जो पापकर्मके नाशने कारणभूत चिन्ताको निरन्तर प्राप्त था तथा जो प्राचीन मुनियोंकी कथामें सदा लीन रहता था ऐसा राजा भरत न सूर्यकी ओर देखता था न चन्द्रमाकी ओर ॥११६॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें राजा दशरथकी दीक्षा, रामका वनगमन और भरतके राज्याभिषेकका वर्णन करनेवाला बत्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशत्तमं पर्व



ततो जनोपभोग्यानां प्रदेशानां समीपतः । रमणीयान् परिप्राप पद्मस्तापससश्रयान् ॥११॥
 तापसा जटिलास्तत्र नानावल्कलधारिणः । सुस्ताहुफलसम्पूर्णाः पादपा इव भूरयः ॥१२॥
 विशालपत्रसन्तुष्टा मठकाः सवितर्हिकाः । पलाशोदुम्बरैधानां पूलकाभिर्युताः क्वचित् ॥१३॥
 अकृष्टपत्र्यबीजेन शुष्यता पूरिताङ्गणाः । वतैर्यज्ञिः सुविश्रब्धैः रोमन्थं राजिता मृगैः ॥१४॥
 सजटैर्वृद्धभिर्मुक्ता रटङ्गिः सततं पट्ट । ललितोच्छ्रितपुच्छेन तार्णकेन कृताङ्गिराः ॥१५॥
 पठङ्गिर्विशदं युक्ताः शारिकाशुककौशिकैः । वीरुधां पुष्परम्याणां छायासु समवस्थितैः ॥१६॥
 कन्याभिर्घटकैः स्वाहु वारिणा आरुतेक्षितैः । पूर्णालवालकैर्बालैस्तर्हिभिः कृतराजनाः ॥१७॥
 फलैर्बहुविधैः पुष्पैर्वासितैः स्वाहुवारिभिः । सादरैः स्वागतस्वान्नैः सार्धदानैस्तथाशनैः ॥१८॥
 सम्भाषणैः कुटीदानैः शयनैर्दुपह्वयैः । तापसैरुपचरैस्ते पूजिता श्रमहारिभिः ॥१९॥
 "आतिथेयाः स्वभावेन ते हि सर्वत्र तापसाः । रूपेणैवं प्रकाशेयु विशेपेण सुवृत्तयः ॥१०॥
 उपित्वा गच्छतां तेषां यत्पुमैर्गणं तापसाः । पाषाणानपि तद्रूपं द्रवीकृत्यान् किमन्यकैः ॥११॥
 शुष्कपत्राशिनस्तत्र तापसा वायुपायिनः । सीतारूपहृतस्वान्ता धृतिं दूरेण तत्पुञ्जः ॥१२॥

अथानन्तर राम मनुष्योंके उपभोगके योग्य स्थानोंसे हटकर तपस्वियोंके सुन्दर आश्रममें पहुँचे । वहाँ वृक्षोंके समान जटिल अर्थात् जटाधारी (पद्ममें जड़ोंसे युक्त), नाना प्रकारके वल्कलोकी धारण करनेवाले और स्वादिष्ट फलोंसे युक्त बहुतसे तापस रहते थे ॥१-२॥ उस आश्रममें अनेक मठ बने हुए थे जो विशाल पत्तोंसे छाये थे । सबके आगे बैठनेके लिए चबूतरे थे, जो एक ओर कहीं रखी हुई पलाश तथा ऊमरकी लकड़ियोंकी गाड़ियोंसे सहित थे ॥३॥ बिना जोते बोये अपने आप उत्पन्न होनेवाले घान उनके आँगनोंमें सूख रहे थे तथा निश्चिन्ततासे रोमन्थ करते हुए हरिणोंसे वे सुशोभित थे ॥४॥ निरन्तर जोर-जोरसे रटनेवाले जटाधारी वालकोंसे युक्त गायोंके वल्लड़े अपनी सुन्दर पूँछ ऊपर उठाकर उन मठोंके आँगनोंमें चौकड़ियाँ भर रहे थे ॥५॥ फूलोंसे सुन्दर लताओंकी छायामें बैठकर स्पष्ट उच्चारण करनेवाले तोता मैना तथा बल्लक आदि पक्षियोंसे वे मठ सहित थे ॥६॥ कन्याओंने भाई समझ कर वहाँ द्वारा मधुर जलसे जिनकी क्यारियाँ भर दी थीं ऐसे छोटे-छोटे वृक्ष उन मठोंकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥७॥ उन तपस्वियोंने नाना प्रकारके मधुर फल, सुगन्धित पुष्प, सीठा जल, आदरसे भरे स्वागतके शब्द, अर्थके साथ दिये गये भोजन, मधुर संभाषण, कुटीका दान और कोमल पत्तोंकी शय्या आदि थाकावटकी दूर करनेवाले उपचारसे उनका बहुत सम्मान किया ॥८-९॥ तापस लोग स्वभावसे ही सर्वत्र अतिथि-सत्कार करनेमें निपुण थे फिर इस प्रकारके सुन्दर पुरुषोंके मिलनेपर तो उनका वह गुण और भी अधिक प्रकट हो गया था ॥१०॥ रामलक्ष्मण वहाँ वसकर जब आगे जाने लगे तब वे तापस उनके मार्गमें आ गये सो ठीक ही है क्योंकि उनका रूप पाषाणोंकी भी द्रवीभूत कर देता था फिर औरोंकी तो बात ही क्या थी ? ॥११॥ उस आश्रममें जो तापस रहते थे उन्होंने सुन्दर रूप कहाँ देखा था ? वे सूखे पत्ते खाकर तथा वायुका पानकर जीवन बिताते थे इसलिए सीताका रूप देखते ही उनका चित्त हरा गया जिससे उन्होंने धीरजको

तामुत्तुतापसा बृद्धाः सान्त्ववाचा पुनः पुनः । तिष्ठतं यदि नास्माकमाश्रमे शृणुतं ततः ॥१२॥
 सर्वोत्थित्यसमेतास्त्वप्यटवोषु विचक्षणौ । विश्रम्भं जातु मा गातां नारीष्विव नदीष्विव ॥१३॥
 तापसप्रमदा दृष्ट्वा पश्यं पद्मनिरीक्षणम् । लक्ष्मणं च जहुः सर्वं कर्तव्यं भूयस्विग्रहाः ॥१५॥
 काश्चिदुत्कण्ठया युक्तास्तन्मागोहितलोचनाः । ब्रजन्यन्यापदेशेन सुदूरं विह्वलात्मिकाः ॥१६॥
 मधुरं ब्रुवते काश्चिद्भवन्तोऽस्माकमाश्रमे । किं न तिष्ठन्तु सर्वं नः करिष्यामो यथोचितम् ॥१७॥
 अर्तास्य श्रीनितः कोशानरण्यानी जनोत्थिता । महानोकहसन्वृक्षा हरिशार्दूलसङ्कुला ॥१८॥
 समिक्कलप्रसूनार्थं तापसा अपि तां सुवम् । न ब्रजन्ति महाभोमां दर्मसूचीभिराचिताम् ॥१९॥
 चित्रकूटः सुदुर्लभः प्रविशालो महाधरः । भवद्भिः किं न विज्ञातः प्रकोपं येन गच्छतः ॥२०॥
 तापस्योऽवरयमस्माभिर्गन्तव्यमिति चोदिताः । कृच्छ्रेण ता न्यवर्तन्त कुर्वाणास्तत्कर्यां चिरम् ॥२१॥
 ततस्ते भूमहोऽप्राप्रप्रवन्नातसुकर्कशम् । महातरुसमारूढवह्नीजालसमाकुलम् ॥२२॥
 क्षुद्रतिक्रुद्दशार्दूलनखविंशतपादपम् । सिंहाह्वतद्विपोद्गोर्परकमौक्तिकपिच्छलम् ॥२३॥
 उन्मत्तवारणस्कन्धतट्टस्कन्धमहातरुम् । नैसरिष्वनिविश्रस्तसमुत्कीर्णकुरङ्गकम् ॥२४॥
 सुसाजगरनिभासवायुपूरितगह्वरम् । बराहयूथपोताग्रविपरीकृतपत्तलम् ॥२५॥
 महामहिषमृगप्रभग्नवल्मीकसानुकम् । ऊर्ध्वीकृतमहामोगसञ्चरजोगिभीषणम् ॥२६॥

दूर छोड़ दिया ॥१२॥ बृद्ध तपस्वियोंने शान्त वचनोंसे उनसे बार-बार कहा कि यदि आप लोग हमारे आश्रममें नहीं ठहरते हैं तो भी हमारे वचन सुनिये ॥१३॥ यद्यपि ये अटवियों सर्व प्रकारके आसिध्य-सत्कारसे सहित हैं तो भी नारियों और नदियोंके समान इनका विश्वास नहीं कीजिये । आप स्वयं बुद्धिमान हैं ॥१४॥ तपस्वियोंकी स्त्रियोंने कमलके समान नेत्रोंवाले राम और लक्ष्मणको देखकर अपने सब काम छोड़ दिये । उनका सर्व शरीर शून्य पड़ गया ॥१५॥ उत्कण्ठासे भरी कितनी ही विह्वल स्त्रियाँ उनके मार्गमें नेत्र लगाकर किसी अन्य कार्यके बहाने बहुत दूर तक चली गई ॥१६॥ कोई स्त्रियाँ मधुर शब्दोंमें कह रही थीं कि आप लोग हमारे आश्रममें क्यों नहीं रहते हैं ? हम आपका सब कार्य यथा योग्य रीतिसे कर देंगी ॥१७॥ यहाँसे तीन कोश आगे चलकर मनुष्योंके संचारसे रहित, बड़े-बड़े वृक्षोंसे भरी तथा सिंह, व्याघ्र आदि जन्तुओंसे व्याप्त एक महाअटवी है ॥१८॥ वह अत्यन्त भयंकर है तथा डामकी सूचियोंसे व्याप्त है । ईधन तथा फल-फूल लानेके लिए तपस्वी लोग भी वहाँ नहीं जाते हैं ॥१९॥ आगे अत्यन्त दुर्लभ, तथा बहुत भारी चित्रकूट नामका पर्वत है सो क्या आप जानते नहीं हैं जिससे क्रोधको प्राप्त हो रहे हैं ॥२०॥ इसके उत्तरमें राम-लक्ष्मणने कहा कि हे तपस्वियो ! हम लोगोंको अवश्य ही जाना है । इस प्रकार कहने पर वे बड़ी कठिनाईसे लौटी और लौटतो हुई भी चिरकाल तक उन्हींकी कथा करती रहीं ॥२१॥

अथानन्तर उन्होंने ऐसे महावनमें प्रवेश किया कि जो पृथिवी और पर्वतोंके अग्रभाग के चट्टानोंके समूहसे अत्यन्त कर्कश था तथा बड़े-बड़े वृक्षोंपर चढ़ी हुई लताओंके समूहसे जो व्याप्त था ॥२२॥ जहाँ मूखसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए व्याघ्र नखोंसे वृक्षोंको क्षत-विक्षत कर रहे थे । जो सिंहोंके द्वारा मारे गये हाथियोंके गण्डस्थलसे निकले रधिर तथा मोतियोंकी कीच से युक्त था ॥२३॥ जहाँ उन्नत हाथियोंने अपने स्कन्धोंसे बड़े-बड़े वृक्षोंके स्कन्ध छील दिये थे । जहाँ सिंहोंकी गर्जनासे भयभीत हुए मृग इधर-उधर दौड़ रहे थे ॥२४॥ जहाँ सोये हुए अज-गोंकी श्वासोच्छ्वास वायुसे गुफाएँ भरी हुई थीं । तथा सूकर समूहके मुखोंके अग्रभागके आघात से छोटे-छोटे जलाशय ऊँचे-नीचे हो रहे थे ॥२५॥ बड़े-बड़े भैंसाओंके सींगोंके अग्रभागसे जहाँ

तरकुत्तसारङ्गरुधिरभ्रान्तमचिकम् । कण्टकासक्तपुच्छाग्रप्रताम्यचमरीगणम् ॥२७॥
 दर्पसम्पूरितश्राविन्मुक्तसूचीविचित्रितम् । विपपुष्परजोप्राणभूर्णितानेकजन्तुकम् ॥२८॥
 खड्गसङ्गसमुल्लोदतरुस्कन्धच्युतद्रवम् । उद्भ्रान्तगवयवातभग्नपङ्खजवालकम् ॥२९॥
 'नानापक्षिकुलकूरकृजितप्रतिनादितम् । शाखासृगकुलक्रान्तचलत्प्राम्भारपादपम् ॥३०॥
 तीव्रवेगगिरिलोतःशतनिर्दारितचैमम् । वृक्षाग्रविस्तृतस्फीतदिवाकनकरोत्करम् ॥३१॥
 नानापुष्पगलाकीर्णं विचित्रामोदवासितम् । विविधौषधिसम्पूर्णं वनसस्यसमाकुलम् ॥३२॥
 क्वचिन्नोल क्वचिपीतं क्वचिद्रक्तं हरित्वचिवत् । पिञ्जरच्छायमन्यत्र विविशुर्विपिनं महत् ॥३३॥
 तत्र ते चित्रकूटस्य निर्मलैश्वरिचारुपु । क्रीडन्तो दर्शयन्तश्च सद्गस्तुनि परस्परम् ॥कुलकं (द्वादशभिः)
 फलानि स्वादुहारीणि स्वदमानाः पदे पदे । गायन्तो मधुरं हारि किन्नरीणां त्रपाकरम् ॥३५॥
 पुष्पैर्जलस्थलोद्भूतैर्सुपथ्यन्तः परस्परम् । सुगन्धिभिर्द्रवैरङ्गं लिम्पन्तस्तत्सम्भवैः ॥३६॥
 उद्यानमिव निर्याता विकसलान्तिलोचनाः । स्वच्छन्दकृतसंस्काराः सखलोचनतस्कराः ॥३७॥
 लतागुहेषु विश्रान्ता सुहृन्नयनहारिण्यु । कृतनानाकथासङ्गा किञ्चिन्नर्मविधायिनः ॥३८॥
 व्रजन्तो लीलया युक्ता निसर्गादतिरम्यया । पर्यटन्तो वन चारु त्रिदशा इव नन्दनम् ॥३९॥
 पक्षोऽनैः पञ्चभिर्मासैस्तुष्टेशमतीत्य ते । जनैः समाकुलं प्रापुर्देशमत्यन्तसुन्दरम् ॥४०॥

वामियोंके शिखर खुद गये थे तथा जो बड़े-बड़े फण ऊँचे उठाकर चलनेवाले सोंपोंसे भयङ्कर था ॥२६॥ जहाँ भेड़ियोंके द्वारा मारे गये मृगोंके रुधिरपर मक्खियों भिन-भिना रहीं थीं और कटीली भाइियोंमें पूँछके बाल उलझ जानेसे जहाँ चमरी मृगोंके मुण्ड वेचैन हो रहे थे ॥२७॥ जो अहङ्कारसे भरी सेहियोंके द्वारा छोड़ी हुई सूचियोंसे चित्रविचित्र था तथा विषपुष्पोंकी परागके सँघनेसे जहाँ अनेक जन्तु इधर-उधर घूम रहे थे ॥२८॥ जहाँ गेंडा हाथियोंके गण्ड-स्थलोंके आघातसे खण्डित हुए वृक्षोंके तनोंसे पानी झर रहा था तथा इधर-उधर दौड़ते हुए गवय-समूहने जहाँ वृक्षोंके पङ्खव तोड़ डाले थे ॥२९॥ जहाँ नाना पक्षियोंके समूहकी क्ररध्वनि गुँज रही थी तथा बानर समूहके आक्रमणसे जहाँ वृक्षोंके ऊर्ध्वभाग हिल रहे थे ॥३०॥ तीव्र वेग से वहनेवाले सैकड़ों पहाड़ी झरनोंसे जहाँ पृथिवी विदीर्ण हो गई थी तथा वृक्षोंके अग्रभागपर जहाँ सूर्यकी किरणोंका समूह देदीप्यमान होता था ॥३१॥ जो नाना प्रकारके फूलों और फलोंसे व्याप्त था, विचित्र प्रकारकी सुगन्धिसे सुवासित था, नाना औषधियोंसे परिपूर्ण था, और जङ्गली धान्योंसे युक्त था ॥३२॥ जो कहीं नीला था, कहीं पीला था, कहीं लाल था, कहीं हरा था, और कहीं पिङ्गल वर्ण था ॥३३॥ वे तीनों महानुभाव वहाँ चित्रकूटके सुन्दर निर्मलरौमें क्रीड़ा करते, सुन्दर वस्तुएँ परस्पर एक दूसरेको दिखाते, स्वादिष्ट मनोहर फल खाते, पद-पदपर किन्नरियोंको लजित करनेवाला हृदयहारी मधुर गान गाते, जल तथा स्थलमें उत्पन्न हुए पुष्पों से परस्पर एक दूसरेको भूषित करते और वृक्षोंसे निकले हुए सुगन्धित द्रवसे शरीरको लिप्त करते हुए इस प्रकार भ्रमणकर रहे थे मानो उद्यानकी सैर करनेके लिए ही निकले हों । उनके सुन्दर नेत्र विकसित हो रहे थे, वे इच्छानुसार शरीरकी सजावट करते थे तथा प्राणियोंके नेत्रों का अपहरण करते थे ॥३४-३७॥ वे बार-बार नेत्रोंको हरण करनेवाले निकुञ्जोंमें विश्राम करते थे, नाना प्रकारकी कथावाता करते थे और तरह-तरहकी क्रीड़ाएँ करते थे ॥३८॥ स्वभावसे ही अत्यन्त सुन्दर लीलाके साथ गमन करते हुए वे उस सुन्दर वनमें इस प्रकार भ्रमण कर रहे थे जिस प्रकार कि नन्दन वनमें देव । ॥३९॥ इस प्रकार एक पक्ष कम पाँच मासमें वे उस स्थान को पारकर मनुष्योंसे भरे हुए अत्यन्त सुन्दर अवन्ती देशमें पहुँचे । वह देश गायोंकी गरदनो

गोघण्टारवसम्पूर्णं नानासस्योपशोभितम् । अवन्तीविषयं स्फूर्तं ग्रामपत्तनसङ्कुलम् ॥४१॥
 मार्गं तत्र क्रियन्तं चिदतिक्रम्य जनोद्धिक्तम् । विषयैकान्तमापुस्ते पृथुं स्वाकारधारिणः ॥४२॥
 जातान् न्यग्रोधजां श्रित्वा विश्रान्तास्ते परस्परम् । जगुः कस्मादर्थं देशो दृश्यते जनवर्जितः ॥४३॥
 सस्यानि कृष्टपश्यानि दृश्यन्तेऽर्जातिभूरिशः । उद्यानपादपाश्र्वेत्ये फलैः पुष्पैश्च शोभिताः ॥४४॥
 पुण्ड्रेक्षुवाटसम्पन्ना ग्रामास्तुङ्गान्विस्थिताः । सरांस्यच्छिन्नपश्यानि युक्तानि विविधैः खगैः ॥४५॥
 अन्वायं घटकैर्भग्नैः शकटैश्च विसङ्कटः । करण्डैः कुण्डकैर्दण्डैः कुण्डिकाभिः कटासनैः ॥४६॥
 विक्रीणास्तण्डुला माषां मुद्गाः सर्पादयस्तथा । वृद्धोद्योयं मृतो जीर्णगोण्यस्योपरि तिष्ठति ॥४७॥
 देशोऽयमतिविस्तीर्णः शोभने न जनोद्धिक्तः । अत्यन्तविषयासङ्गो यथा दीक्षासमाश्रितः ॥४८॥
 ततोऽन्यन्तसमुदुस्पर्शं निषण्णं रत्नकम्बले । देशोद्वासकृतालाप राम पार्श्वस्थकामुक्तम् ॥४९॥
 पद्मगर्भदमाभ्या पाणिभ्यां पृजितेहिता । द्रान्विभ्रमयितुं सक्ता सीता प्रेमाश्रुदीर्घिका ॥५०॥
 उत्सार्य 'बोरुलक्षां तां सादरक्रमकोविदः । सबाह्वितुमासको लक्ष्मणो ज्वायसोदितः ॥५१॥
 निरूपय कचित्तावद् ग्रामं नगरमेव वा । वोपं वा लक्ष्मण क्षिप्रं श्रान्तेयं हि प्रजावती ॥५२॥
 ततोऽन्यस्यातितुङ्गस्थं वृक्षस्योर्ध्वसमाश्रितः । दृश्यते किञ्चिदत्रेति पद्मोनेच्यत लक्ष्मणः ॥५३॥
 सोबोचदेव पश्यामि रूपपर्वतसन्निभान् । शारदाभ्रसमुच्चैः शृङ्गनालैर्विराजितान् ॥५४॥

मे बँचे घण्टाओंके शब्दसे परिपूर्ण था, नाना प्रकारके धान्यके सुशोभित था, विस्तृत था और, ग्राम तथा नगरोसे व्याप्त था ॥४०-४१॥

तदनन्तर सुन्दर आकारको धारण करनेवाले वे तीनो, कितना ही मार्ग उल्लंघनकर एक अतिशय विस्तृत ऐसे स्थानमें पहुँचे जिसे मनुष्य छोड़कर भाग गये थे ॥४२॥ एक बट वृक्षकी छायामें बैठकर विश्राम करते हुए वे परस्पर कहने लगे कि यह मनुष्योंसे रहित क्यों दिखाई देता है ? ॥४३॥ यहाँ अनेको धानके पके खेत दिखाई दे रहे हैं, बगीचोंके ये वृक्ष फलों और फूलोंसे सुशोभित हैं ॥४४॥ ऊँची भूमिपर बसे गाँव पौडों और ईखोंके बागोंसे युक्त है, जिनके कमलोंकी किसीने तोड़ा नहीं है ऐसे सरोवर नाना प्रकारके पक्षियोंसे युक्त है ॥४५॥ यह मार्ग फूटे घड़ों, गाड़ियों, पिटारों, कूँडों, कुण्डिकाओं और चटाई आदि आसनोंसे व्याप्त है ॥४६॥ यहाँ चावल, उड़द, मूँग तथा सूप आदि बिखरे हुए हैं और इधर यह बूढ़ा बैल मरा पड़ा है तथा इसके ऊपर फटी पुरानी गोन लदी हुई है ॥४७॥ यह इतना बड़ा देश मनुष्योंसे रहित हुआ ठीक उस तरह शोभित नहीं होता जिस प्रकार कि कोई दीक्षा लेनेवाला साधु विषयोकी आसक्तिमें पड़कर शोभित नहीं होता ॥४८॥

तदनन्तर देशके ऊजड़ होनेकी चर्चा करते हुए राम अत्यन्त कोमल स्पर्शवाले रत्नकम्बल पर बैठ गये और पास ही उन्होंने अपना धनुष रख लिया ॥४९॥ जो प्रशस्त चेष्टाकी धारक और प्रेमरूपी जलकी मानो वापिका ही थी ऐसी सीता कमलके भीतरी दलके समान कोमल हाथोंसे शीघ्र ही रामको विश्राम दिलाने अर्थात् उनके पाद मर्दन करनेके लिए तैयार हुई ॥५०॥ तब आदरपूर्ण क्रमको जाननेवाला लक्ष्मण, बड़े भाईकी आज्ञा प्राप्त कर जोँघोंसे लगी सीताको अलग कर स्वयं पादमर्दन करने लगा ॥५१॥ रामने लक्ष्मणसे कहा कि हे भाई ! तेरी यह भावज बहुत थक गई है इसलिए शीघ्र ही किसी गाँव, नगर अथवा अहीरोकी बस्तीको देखो ॥५२॥ तब लक्ष्मण एक बड़े वृक्षकी शिखरपर चढ़ा रामने उससे पूछा कि क्या यहाँ कुछ दिखाई देता है ? ॥५३॥ लक्ष्मणने कहा कि हे देव ! जो चोँदीके पर्वतके समान हैं, शरद् ऋतुके

प्राग्भारसिंहकणस्थजिनविम्बोपलक्षितान् । प्रासादान् परमोद्यानान्^१ प्रचलद्धवलध्वजान् ॥५५॥
 ग्रामांश्चायत्तवार्पिभिः सस्यैश्च कृतवेष्टनान् । नगराणि च गन्धर्वपुरैर्विभ्रन्ति तुल्यताम् ॥५६॥
 दृष्टिगोचरमात्रे तु सन्निवेशाः सुभूरयः । दृश्यन्ते न पुनः कश्चिदेकोऽप्यालोच्यते जनः ॥५७॥
 समं किं परिवर्गेण विनष्टाः स्युरिह प्रजाः । उपानांताः किमु स्लेच्छैवन्दिर्वं क्रूरकर्मभिः ॥५८॥
 एकस्तु पुरुषाकारो दृश्यते चातिदूरतः । स्थाणुर्न पुरुषो य तु ननु सैष चलाकृतिः ॥५९॥
 याऽयेष किमुतायाति पश्याम्यागच्छतीत्ययम् । तावदायातु मार्गेण जानाम्येनं विशेषतः ॥६०॥
 अयं मृग इवोद्विग्नो द्रुतमायाति मानवः । रूचोर्द्धमूर्धजो दीनो मलोपहतविग्रहः ॥६१॥
 कूर्वाच्छादितवचस्को वसानश्चौरखण्डकम् । स्फुटिताग्निः स्रवस्त्वेदो दर्शयन् पूर्वदुष्कृतम् ॥६२॥
 आनयेममिति चिप्रमिति पद्मेन भाषितः । अवतीर्य गतस्तस्य सविस्मय इवान्तिकम् ॥६३॥
 दृष्ट्वा तु पुरुषो हृष्टरोमा बिस्मयपूरितः । विलम्बितगतिः किञ्चिदकरोदिति मानसे ॥६४॥
 समाकण्ठितवृक्षोऽग्रमवतीर्य समागतः । किमिन्द्रो वरुणो दैत्यः किं नागः किन्नरो नरः ॥६५॥
 वैवस्वतः शशाङ्को नु बह्विवैश्रवणो नु किम् । भास्क्रो नु सुवं प्राप्तः कोऽयमुत्तमविग्रहः ॥६६॥
 इति ध्यायन् महाभीत्या मुकुलोद्धृत्य लोचने । निश्चेष्टावयवो मृगौ पपाताव्यकचेतनः ॥६७॥
 उत्तिष्ठोच्छिष्ट भद्र त्व मा भैषीरिति आपितः । प्रत्यागतदृष्टिर्नीतो लक्ष्मणेनान्तिकं गुरोः^३ ॥६८॥

वाङ्मूर्ति के समान ऊँचे शिखरोंसे सुशोभित हैं, जो उपरितन अग्र भागपर जिन-प्रतिमाओंसे सहित हैं, उत्तमोत्तम बगीचोंसे युक्त हैं तथा जिनपर सफेद ध्वजाएँ फहरा रही हैं ऐसे जिनमन्दिरों को देख रहा हूँ ॥५४-५५॥ लम्बी-चौड़ी वापिकाओं तथा धानके हरे-भरे खेतोंसे घिरे गाँव और गन्धर्वनगरोंकी तुलना धारण करनेवाले नगर भी दिखाई दे रहे हैं। इस प्रकार बहुत भारी वसतिगाँव दिखाई दे रही हैं परन्तु उनसे आदमी एक भी नहीं दिखाई देता ॥५६-५७॥ क्या यहाँकी प्रजा अपने समस्त परिवारके साथ नष्ट हो गई है अथवा क्रूर कर्म करनेवाले स्लेच्छोंने उसे बन्दी बना लिया है ? ॥५८॥ बहुत दूर, एक पुरुष जैसा आकार दिखाई देता है जो ठूँठ नहीं है पुरुष ही मालूम होता है क्योंकि उसकी प्रकृति बञ्चल है ॥५९॥ परन्तु यह जा रहा है या आ रहा है इसका पता नहीं चलता। कुछ देर तक गौरसे देखनेके बाद लक्ष्मणने कहा कि 'यह आ रहा है' यही जान पड़ता है, अच्छा, मार्गपर आने दो तभी इसे विशेषतासे जान सकूँगा ॥६०॥ लक्ष्मणने फिर देखकर कहा कि यह पुरुष मृगके समान भयभीत होकर शीघ्र ही आ रहा है, इसके शिरके बाल रूखे तथा खड़े हैं, दीन है, इसका शरीर मैलसे दूषित है, लम्बी दाढ़ीसे इसका वक्षस्थल ढक रहा है, यह फटे चिथड़े पहिने है, इसके पैर फटे हुए हैं, पसीना भर रहा है और पूर्वोपार्जित पाप कर्मको दिखा रहा है ॥६१-६२॥ रामने लक्ष्मणसे कहा कि इसे शीघ्र ही यहाँ बुलाओ। तब लक्ष्मण नीचे उतरकर आश्वयके साथ उसके पास गया ॥६३॥ लक्ष्मणको देखकर उस पुरुषको रोमाञ्च उठ आये। वह आश्चर्यसे भर गया और अपनी गति कुछ धीमी कर मनमें इस प्रकार विचार करने लगा ॥६४॥ कि यह जो वृत्तको कम्पित करनेवाला नीचे उतरकर आया है तो क्या इन्द्र है ? या वरुण है ? या दैत्य है ? या नाग है ? या किन्नर है ? या मनुष्य है ? या यम है ? या चन्द्रमा है ? या अग्नि है ? या कुबेर है ? या पृथिवी पर आया सूर्य है ? अथवा उत्तम शरीरका धारी कौन है ? ॥६५-६६॥ इस प्रकार विचार करते-करते उसके नेत्र महाभयसे बन्द हो गये, शरीर निश्चेष्ट पड़ गया और वह मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥६७॥ यह देख लक्ष्मणने कहा कि भद्र ! उठ-उठ डर मत। कुछ देर बाद जब चैतन्य हुआ तब लक्ष्मण उसे रामके पास ले गया ॥६८॥

पापकर्मपरिक्षिप्तैर्गैरिव निरङ्कुशैः । तत्र दुःखसहस्राणि प्राप्यन्ते पुरुषाधमैः ॥६६॥
 भवन्तमेव पृच्छामि त्वादृशैर्विषयातुरैः । क्रियते पापसंसक्तैः कौटशं हितमात्मनः ॥१००॥
 इन्द्रियप्रभवं सौख्यं किम्पाकसदृशं कथम् । अहन्यहन्मुपादाय मन्यसे हितमात्मनः ॥१०१॥
 हितं करोत्यसौ स्वस्थ भूतानां यो दयापरः । दीक्षितो गृहयातो वा बुधो निर्मलमानसः ॥१०२॥
 कृतं तैरात्मनः श्रेयो ये महाव्रततत्परः । अथवाणुव्रतैर्मुक्ताः शेषा दुःखस्य भाजनम् ॥१०३॥
 परलोकादि^१हैतत्त्वं कृत्वा सुकृतमुत्तमम् । इहलोकेऽनुना पापं कृत्वा यात्यसि दुर्गतिम् ॥१०४॥
 भग्नो निरागसः क्षुद्रा घराकाः क्षितिशायिनः । अनाथा लोलनयना नित्योद्विग्ना वने मृगाः ॥१०५॥
 आरण्यतृणपानीयकृतविग्रहधारिणः । अनेकदुःखसंछन्नाः पूर्वदुष्कृतभोगिनः ॥१०६॥
 रात्रावपि न विन्दन्ति निद्रां चकितचेतसः । साध्वाचारैर्न युक्तं ते कुलजैर्हिसिंहुं नरैः ॥१०७॥
 भग्नो ब्रवीमि राज्ञस्त्वं यदोच्छ्रित्यात्मनो हितम् । त्रिधा हिंसां परित्यज्य कुर्वहिंसां प्रयत्नतः ॥१०८॥
 जडैरित्युपदेशोऽयं दासो प्रतिबोधितः । तदा प्रणतिमायातः फलैरिव महीरुहः ॥१०९॥
 उत्तरीयं प्रसृतं संसेजानुपादितभूतलः । प्रणनामोत्तमाह्वेन सुसाधुं रचिताक्षलिः ॥११०॥
 निरीक्ष्य सौम्याया दृष्ट्या तमेवं चाभ्यनन्दयत् । श्लाघ्योऽयं वीक्षितः सिद्धो मुनिर्यत्कपरिग्रहः ॥१११॥
 शकुन्तयो मृगास्त्राभी धन्या वननिवासिनः । शिलातलनिपण्ण ये पश्यन्तीमं समाहितम् ॥११२॥
 अतिथिन्योऽहमप्यद्य सुखं पापेन कर्मणा । यदेतं त्रिजगद्व्यं प्राप्तः साधुसमागमस्य ॥११३॥

वनसे आच्छादित हैं और अत्यन्त खारे जलसे भरी नदियोंसे युक्त हैं ॥६८॥ जो पाप कार्योंसे संक्लेशको प्राप्त होके रहते हैं तथा जो हाथियोंके समान निरङ्कुश अर्थात् स्वच्छन्द रहते हैं ऐसे नीच पुरुष उन पृथिवियोंसे हजारों दुःख प्राप्त करते हैं ॥६९॥ मैं आपसे ही पूछता हूँ कि तुम्हारे समान विषयोंसे पीड़ित तथा पापोंसे लीन मनुष्य आत्माका कैसा हित करते हैं ? ॥१००॥ किंपाक फलके समान जो इन्द्रियजन्य सुख है उसे प्रतिदिन प्राप्त कर तू आत्माका हित मान रहा है ॥१०१॥ अरे ! आत्माका हित तो वह करता है जो प्राणियोंपर दया करनेमें तत्पर रहता हो, विवेकी हो, निर्मल अभिप्रायका धारक हो, मुनि हो अथवा गृहस्थ हो ॥१०२॥ आत्माका कल्याण तो उन्होंने किया है जो महाव्रत धारण करनेमें तत्पर रहते हैं अथवा जो अणुव्रतोसे युक्त होते हैं, शेष मनुष्य तो दुःखके ही पात्र हैं ॥१०३॥ तू परलोकमें उत्तम पुण्य कर यहाँ आया है और अब इस लोकमें पाप कर दुर्गतिको जायगा ॥१०४॥ ये वनके निरपराधी, लुट, दयनीय मृग, जो अनाथ हैं, चञ्चल नेत्रोंके धारक हैं, निरन्तर उद्विग्न रहते हैं, जङ्गलके तृण और पानी से बने शरीरको धारण करते हैं, अनेक दुःखोंसे व्याप्त हैं, पूर्व भवमें किये पापको भोग रहे हैं और भयभीत होनेके कारण जो रात्रिमें भी निद्राको नहीं प्राप्त होते हैं, उत्तम आचारके धारक कुलीन मनुष्योंके द्वारा मारे जानेके योग्य नहीं हैं ॥१०५-१०७॥ इसलिए हे राजन् ! मैं तुमसे कहता हूँ कि यदि तू अपना हित चाहता है तो मन वचन कायसे हिंसा छोड़कर प्रयत्नपूर्वक अहिंसाका पालन कर ॥१०८॥ इस प्रकार हितकारी उपदेशात्मक वचनोंसे जय राजा सम्बोधित गया तब वह फलोसे वृक्षके समान नम्रताको प्राप्त हो गया ॥१०९॥ वह घोड़ेसे उतरकर पैदल चलने लगा तथा पृथिवीपर घुटने टेक, हाथ जोड़ शिर झुकाकर उसने उन उत्तम मुनिराजको नमस्कार किया ॥११०॥ सौम्य दृष्टिसे दर्शन कर उनका इस प्रकार अभिनन्दन किया कि अहो ! आज मैंने परिग्रहहित प्रशंसनीय तपस्वी मुनिराजके दर्शन किये ॥१११॥ वनमें निवास करने वाले ये पक्षी तथा हरिण धन्य हैं जो शिलातलपर विराजमान इन ध्यानस्थ मुनिका दर्शन करते हैं ॥११२॥ आज जो मैं त्रिभुवनके द्वारा वन्दनीय इस साधु समागमको प्राप्त हुआ हूँ सो धन्य

बन्धुस्नेहमय बन्धं क्षित्वा ज्ञाननखैरयम् । केसरां व विनिष्क्रान्तः प्रभुः संसारपञ्जरात् ॥११४॥
 अनेन साधुना परमं वशीकृतमनोरिपुम् । नाग्न्योपकारयोगेन शीलस्थानं प्रप्राप्त्यते ॥११५॥
 अहं पुनरतृप्तात्मा तावदस्मिन् गृहाश्रमे । अणुव्रतविधौ रम्ये करोमि परमां वृत्तिम् ॥११६॥
 इति सखिन्य जग्राह तस्मात्साधोगृहस्थितिम् । चकारावग्रहं^१ चैवं भावप्लावितमानसः ॥११७॥
 देवदेवं जिनं मुक्त्वा परमात्मानमच्युतम् । निर्ग्रन्थांश्च महाभागात् नमाम्यपरानिति ॥११८॥
 प्रीतिवर्धनसंज्ञस्य मुनेस्तस्य महादरः । चकार महती पूजामुपवासं समाहितः ॥११९॥
 उपासनस्य चाख्यातं परम साधुना हितम् । यत्समाराध्य मुच्यन्ते संसाराद् भव्यदेहिनः ॥१२०॥
 सागारं निरगारं च द्विधा चारित्रमुत्तमम् । सावलम्बं गृहस्थानां निरपेक्षं^२ खवाससाम् ॥१२१॥
 दर्शनस्य विशुद्धिश्च तपोज्ञानसमन्विता । प्रथमाधनुयोगाश्च प्रसिद्धा जिनशासने ॥१२२॥
 सुदुष्करं विगोहानां चारित्रमवधार्य सः । पुनः पुनर्मति चक्रेऽणुव्रतेष्वेव पार्थिवः ॥१२३॥
 निधानमध्वनेनैव प्राप्तं विशद्भुत्तमम् । धर्मध्यानमसौ बुद्ध्वा परमां वृत्तिमागतः ॥१२४॥
 नितान्तक्रूरकर्मायमुपशान्तो महीपतिः । इति प्रमोदमायातः सयतोऽपि विशेषतः ॥१२५॥
 गते साधौ तपोयोग्य स्थान सुकृतसत्रिणि । विभूत्या परया युक्तः सुखामः सुखतर्पितः ॥१२६॥
 विहितानिधिसन्मानोऽपरेषुः कृतपारणः । प्रणम्य चरणौ साधोः स्वस्थानमविशान्नुपः ॥१२७॥

हो गया हूँ, पाप कर्मसे छूट गया हूँ ॥११३॥ ये प्रभु सिंहके समान ज्ञानरूपी नखोंके द्वारा बन्धुओंके स्नेहरूपी बन्धनको छोड़कर संसाररूपी पिंजड़ेसे बाहर निकले हैं ॥११४॥ देखो, इन साधुके द्वारा मनरूपी शत्रुको वशकर नग्नताके उपकारसे शील स्थानकी किस प्रकार रक्षा की जा रही है ? ॥११५॥ किन्तु मेरी आत्मा अभी तृप्त नहीं हुई है । अतः मैं इस गृहस्थाश्रममें रहकर रमणीय अणुव्रतके पाठनमें ही सन्तोष धारण करता हूँ ॥११६॥

इस प्रकार विचार कर उसने उन मुनिराजसे गृहस्थ धर्म अङ्गीकार किया और भावसे प्लावित मन होकर इस प्रकार प्रतिज्ञा की कि मैं देवाधिदेव तथा गुणोंसे अच्युत परमात्मा जिनैन्द्रदेव और उदार अभिप्रायके धारक निर्ग्रन्थ मुनियोंको छोड़कर अन्य किसीको नमस्कार नहीं करूँगा ॥११७-११८॥ इस प्रकार उसने बड़े आदरसे उन प्रीतिवर्धन मुनिराजकी बड़ी भारी पूजा की और स्थिरचित्त होकर उस दिनका उपवास किया ॥११९॥ समीपमें बैठे हुए राजा वज्रकर्णको मुनिराजने उस परम हितका उपदेश दिया कि जिसकी आराधना कर भव्य प्राणी संसारसे मुक्त हो जाते हैं ॥१२०॥ उन्होंने कहा कि उत्तम चरित्रके दो भेद हैं एक सागार और दूसरा अनगार । इनमेंसे पहला चारित्र बाह्य वस्तुओंके आलम्बनमें सहित है तथा गृहस्थोंके होता है और दूसरा चारित्र बाह्य वस्तुओंकी अपेक्षासे रहित है तथा आकाशरूपी वस्त्रके धारक मुनियोंके ही होता है ॥१२१॥ उन्होंने यह भी बताया कि तप तथा ज्ञानके संयोगसे दर्शनमें विशुद्धता उत्पन्न होती है । साथ ही साथ उन्होंने जिनशासनमें प्रसिद्ध प्रथमानुयोग आदिका वर्णन भी किया ॥१२२॥ यह सब सुननेके बाद भी राजाने निर्ग्रन्थ मुनियोंका चरित्र अत्यन्त कठिन समझकर अणुव्रत धारण करनेका ही बार-बार विचार किया ॥१२३॥ यह जानकर राजा परम संतोषको प्राप्त हुआ कि मुझे उत्कृष्ट धर्म ध्यान क्या प्राप्त हुआ मानो किसी निर्धनको उत्तम खजाना ही मिल गया ॥१२४॥ अत्यन्त क्रूर कार्य करनेवाला यह राजा शान्त हो गया है यह देख मुनिराज भी बहुत हर्षको प्राप्त हुए ॥१२५॥ तदनन्तर पुण्यरूपी यज्ञके धारक मुनिराज तपके योग्य दूसरे स्थान पर चले गये और राजा परम विभूतिसे युक्त हो वहीं रहा आया । उसे उत्तम लाभकी प्राप्ति हुई थी इसलिए सुखसे संवृत्त था ॥१२६॥ दूसरे दिन अतिथिका

वहन् परमभावेन वज्रकर्णः सदा गुरुम् । बभूव वीतसन्देहश्चिन्तामैवमुपागतः ॥१२८॥
भूयो भूत्वा विपुण्योऽहं सिंहोदरमहीभृतः । अकृत्वा विनयं भोगान् कथं सेवे 'निकारिणः ॥१२९॥
इति चिन्तयत्तस्तस्य प्रसन्नेनान्तरात्मना । विधिना प्रेषमाणस्य मतिरेवं समुदगतः ॥१३०॥
कारयाम्यूर्मिकां स्वार्णीं सुमतस्वामिबिम्बिनीम् । दधामि दक्षिणाङ्गुष्ठे तां नमस्कारभाणिनीम् ॥१३१॥
घटिता सा ततस्तेन पाणिभासुरपीठिका । पिनद्धा चातिहृष्टेन नयप्रवणचेतसा ॥१३२॥
स्थित्वा सिंहोदरस्याग्रे कृत्वाङ्गुष्ठं पुरः कृती । प्रतिमां तां महामागो नमस्यति स सन्ततम् ॥१३३॥
रन्ध्रविन्यस्तचित्तेन वैरिणा कथितेऽन्यदा । वृत्तान्तेऽत्र परं कोप पापः सिंहोदरोजामत् ॥१३४॥
माययाह्वयचैवं दशाङ्गनगरस्थितम् । वधार्थमुद्यतो मानी मत्तो विक्रमसम्पदा ॥१३५॥
बृहद्गतितनूजस्तु प्रगुणेनैव चेतसा । प्रवृत्तोऽधतेनास्य विनीतो गन्तुमन्तिकम् ॥१३६॥
दण्डपाणिरुवाचैकः पीवरोदारविग्रहः । कुङ्कुमस्यासकोङ्गासी तमागल्यैवमुक्तवान् ॥१३७॥
यदि भोगशरीराभ्यां सुनिर्विण्णोऽसि पार्थिव । तत उज्जयिनीं गच्छ नोचेन्नो गन्तुमर्हसि ॥१३८॥
क्रुद्धः सिंहोदरो यत्ते वधं कर्तुं समुद्यतः । अनमस्कारदोषेण क्रुह राजन्नभीप्सितम् ॥१३९॥
एवं स गदितो दभ्यो केनाप्येष दुरात्मना । मात्सर्यहृतचित्तेन भेदः कर्तुमभीप्सितः ॥१४०॥
त विसर्पमदामोदं किञ्चित्सेदमुपागतम् । सोऽपृच्छकोऽसि किंनामा कुतो वासि समागतः ॥१४१॥

सत्कार कर उसने पारणा की और फिर मुनिराजके, चरणोंको प्रणाम कर अपने नगरमें प्रवेश किया ॥१२७॥

अथानन्तर जो परम भक्ति-भावसे गुरुको सदा हृदयमें धारण करता था तथा जिसे किसी प्रकारका सन्देह नहीं था ऐसा राजा वज्रकर्ण इस प्रकार चिन्ता करने लगा ॥१२८॥ कि मैं पुण्यहीन, राजा सिंहोदरका सेवक होकर यदि उसकी विनय नहीं करता हूँ तो वह दमन करेगा—दण्ड देवेगा तब इस दशार्में भोगोंका सेवन किस प्रकार करूँगा ॥१२९॥ इस प्रकार चिन्ता करते-करते भाग्यसे प्रेरित राजा वज्रकर्णको अपनी स्वच्छ अन्तरात्मासे यह बुद्धि उत्पन्न हुई ॥१३०॥ कि मैं मुनिसुव्रत भगवानकी प्रतिमासे युक्त एक स्वर्णकी अंगूठी बनवा कर दाहिने हाथके अंगूठामें धारण करूँ तो मेरा नमस्कार उसीको कहलावेगा ॥१३१॥ इस प्रकार विचारकर उस नोतिनिपुण राजाने, जिसकी पीठिका हाथमें सुशोभित थी ऐसी अंगूठी बनवाई और अत्यन्त हर्षित होकर धारण की ॥१३२॥ अब वह बुद्धिमान्, राजा सिंहोदरके आगे खड़ा होकर तथा अंगूठेको आगे कर सदा उस प्रतिमाको नमस्कार करने लगा ॥१३३॥ किसी एक दिन छिद्रान्वेषी वैरीने यह समाचार सिंहोदरसे कह दिया जिससे वह पापी परम कोपको प्राप्त हुआ ॥१३४॥ तदनन्तर पराक्रमरूपी सम्पदासे मत्त मानी सिंहोदर उसका वध करनेके लिए उद्यत हो गया और उसने दशाङ्गपुरमें रहनेवाले वज्रकर्णको छलसे अपने यहाँ बुलाया ॥१३५॥ बृहन्नृतिका पुत्र वज्रकर्ण सरल चित्त था इसलिए वह सौ धुइसवार साथ ले उसके पास जानेके लिए तैयार हो गया । उसी समय जिसके हाथमें लाठी थी, जिसका मोटा तथा ऊँचा शरीर था और जो केशरके तिलकसे सुशोभित हो रहा था ऐसा एक पुरुष आकर उससे इस प्रकार बोला ॥१३६-१३७॥ कि हे राजन् ! यदि तुम भोग और शरीरसे उदासीन हो चुके हो तो तुम उज्जयिनी जाओ अन्यथा जाना योग्य नहीं है ॥१३८॥ हे राजन् ! तुम सिंहोदरको नमस्कार नहीं करते हो इस अपराधसे वह क्रुद्ध होकर तुम्हारा वध करनेके लिए तैयार हुआ है । अतः जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करो ॥१३९॥ उस पुरुषके ऐसा कहने पर वज्रकर्णने विचार किया कि किसी ईर्ष्यालु दुष्ट मनुष्यने भेद करना चाहा है अर्थात् मुझमें और सिंहोदरमें फूट डालनेका उद्योग किया है । इस प्रकार

कथं वा तव मन्त्रोऽयं विदितोऽप्यन्तर्दुर्गमः । एतन्मद्र समाचक्ष्व ज्ञातुमिच्छाम्यशेषतः ॥१४२॥
 सोऽनोचत् कुन्दनगरे वणिघनपरायणः । समुद्रसङ्गमो नामा यमुना तस्य सामिनी ॥१४३॥
 विद्युज्ज्वालाकुले काले प्रसूता जननी च माम् । बन्धुमिविद्युदङ्गाख्या मयि तेन नियोजिता ॥१४४॥
 क्रमाच्च यौवनं विभ्रदवन्तीनगरीमिमाम् । आगतोऽस्यर्थलाभाय युक्तो वाणिज्यविधया ॥१४५॥
 वैद्योऽ कामलतां दृष्ट्वा कामवाणेन ताडितः । न रात्रौ न दिवा यामि निर्वृतिं परमाकुलः ॥१४६॥
 एकां रात्रिं वसामीति तया कृतसमागमः । प्रीत्या दृढतरं बद्धो यथा वागुरया मृगः ॥१४७॥
 जनकेन ममासक्त्यैर्यद्वैरजितं धनम् । तन्मयास्य सुपुत्रेण पद्भिर्मसैर्विनाशितम् ॥१४८॥
 पद्मे द्विरेफवत् सकं कामतद्गतमानसः । साहसं कुरुते किं न मानवो योपितां कृते ॥१४९॥
 अन्यदा सा पुरः सख्या निन्दन्ती कुण्डलं निजम् । श्रुता मयेति भारेण किं कर्णस्यामुना मम ॥१५०॥
 धन्या सा श्रीधरा देवी महासौभाग्यभाविनी । यस्यास्तत्राजते कर्णे मनोज्ञं रत्नकुण्डलम् ॥१५१॥
 चिन्तितं च मया तच्चेद्वपहृत्य सकुण्डलम् । आशां न पूरयाम्यस्यस्तदा किं जीवितेन मे ॥१५२॥
 ततो निहरीर्या तस्य दयितं प्रोह्य जीवितम् । गतोऽहं भवनं रात्रौ रजन्त्या तमसावृतः ॥१५३॥
 पृच्छन्ती श्रीधरा तस्य मया सिंहोदरं धृता । निद्रां न लभसे कस्मान्नायोद्विग्न इवाधुना ॥१५४॥
 सोऽबोवहेवि निद्रा मे कृतो व्याकुलचेतसः । न मारितो रिपुराविग्रहस्कारपराङ्मुखः ॥१५५॥

विचार कर उसने जिसे अत्यधिक हर्ष हो रहा था तथा जो किञ्चित् खेदको प्राप्त था ऐसे उस दूसरे पृष्ठों कि तू कौन है ? कहाँसे आया है ? ॥१४०-१४१॥ और इस अत्यन्त दुर्गम मन्त्रका तुमसे कैसे पता चला है ? हे भद्र ! यह कह मैं सब जानना चाहता हूँ ॥१४२॥

वह बोला कि कुन्दनगरमे धनसञ्चय करनेमें तत्पर एक समुद्रसंगम नामक वैश्य रहता था । उसकी स्त्रीका नाम यमुना था । मैं उन्हींका पुत्र हूँ । चूँकि मेरी माताने मुझे उस समय जन्म दिया जो विजलीकी ज्वालाओंसे व्याप्त रहता है इसलिए बन्धुजनोंने मेरा विद्युदङ्ग नाम रक्खा ॥१४३-१४४॥ क्रमसे यौवनको धारण करता हुआ मैं व्यापारकी विद्यासे युक्त हो धनोपार्जन करनेके लिए इस उल्लयिनी नगरीमें आया था ॥१४५॥ सो यहाँ कामलता नामक वैश्याको देख कर कामवाणसे ताड़ित हुआ जिससे व्याकुल होकर न दिनमें चैनको पाता हूँ और न रात्रिमें ॥१४६॥ 'मैं एक रात उसके साथ समागम कर रह लूँ' इस प्रीतिने मुझे इस प्रकार अत्यन्त मजबूत बौध रक्खा जिस प्रकार कि जाल किसी हरिणको बौध रखता है ॥१४७॥ मेरे पिताने अनेक वर्षोंमें जो धन सञ्चित किया था मुझ सुपूत ने उसे केवल छह साहमें नष्ट कर दिया ॥१४८॥ जिस प्रकार भ्रमर कमलमे आसक्त रहता है उसी प्रकार मेरा मन कामसे दुःखी हो उस वैश्यामें आसक्त रहता था सो ठीक ही है क्योंकि यह पुरुष स्त्रियोंके लिए कौन-सा साहस नहीं करता है ? ॥१४९॥ एक दिन मैंने सुना कि वह वैश्या सखीके सामने अपने कुण्डलकी निन्दा करती हुई कह रही है कि कानोंके भारस्वरूप इस कुण्डलसे मुझे क्या प्रयोजन है ? वह महा-सौभाग्यका उपभोग करनेवाली श्रीधरा रानी धन्य है जिसके कानमें वह रत्नमयी मनोहर कुण्डल शोभित होता है ॥१५०-१५१॥ मैंने सुनकर विचार किया कि यदि मैं उस उत्तम कुण्डलको चुरा कर इसकी आशा पूर्ण नहीं करता हूँ तो मेरा जीवन किस काम का ? ॥१५२॥ तदनन्तर उस कुण्डलको अपहरण करनेकी इच्छासे मैं अपने मित्र जीवन्की उपेक्षा कर रात्रिके समय अन्धकारसे आवृत होकर राजाके घर गया ॥१५३॥ वहाँ मैंने रानी श्रीधराको सिंहोदरसे यह पृष्ठती हुई सुना कि हे नाथ ! आज नींदको क्यों नहीं प्राप्त हो रहे हो तथा उद्विग्नसे क्यों मादुर्य होते हो ? ॥१५४॥ उसने कहा कि हे देवि ! जब तक मैं नमस्कारसे विमुख रहनेवाले

अपमानेन दग्धस्य व्याकुलस्पर्शान्वितया^१ । अजितप्रत्यनीकस्य विद्राकान्तावलस्य च ॥१५६॥
 सशल्यस्य द्रिद्रस्य भीरोश्च^२ भवदुःखतः । निद्रा कृपापरीतेव सुदग्धेन पलायते ॥१५७॥
 निहन्तास्मि न चेदेनं नमस्कारपराङ्मुखम् । वज्रकर्णं ततः किं मे जीवितेन हतौजसः ॥१५८॥
 ततोऽहं कुलिशेनेव हृदये कृतताडनः । रहस्यरत्नमादाय त्यक्त्वा कुण्डलगेमुप्री ॥१५९॥
 धर्मोद्यतमनस्कस्य सततं साधुसेविनः । भवतोऽन्तिकमायातो ज्ञात्वा कुरु निवर्तनम् ॥१६०॥
 नागैरञ्जनशैलामैः प्रचरद्गण्डभित्तिभिः । सक्षिप्तश्च महावेगैर्मटैश्च कवचावृतैः ॥१६१॥
 तदाज्ञापनया मार्गो निरुद्धोऽयं पुरोऽखिलः । सामन्तैः परमं क्रूरैर्भवन्तं हन्तुमुद्यतैः ॥१६२॥
 प्रसादं कुरु गच्छाशु प्रतीप धर्मवत्सल । पतामि पादयोरेव तव भद्रचर्चनं कुरु ॥१६३॥
 अर्थं प्रत्येपि नो राजन् ततः परयैतदागतम् । धूलीपटलसंच्छन्नं परचक्रं महारवम् ॥१६४॥
 तावत्परागतं दृष्ट्वा साधनं कुलिशश्चरैः । समेतो विद्युदङ्गेन निवृत्तो वेगिवाहनः ॥१६५॥
 प्रविश्य च पुरं दुर्गं सुवीरः प्रत्यवस्थितः । निधाय वञ्चितारोषं मामन्ताश्चावतस्थिरं ॥१६६॥
 प्रविष्टं नगरं श्रुत्वा वज्रकर्णं रुपा ज्वलन् । सिंहोदरः समायातः सर्वसाधनसंयुतः ॥१६७॥
 पुरस्थात्यन्तदुर्गावाद् साधनचयकातरः । न स तद्ग्रहणे बुद्धिं चकार सहसा नृपः ॥१६८॥
 समावास्थ समीपे च त्वरितं प्राहिणोन्नरम् । वज्रकर्णं स गत्वेति बभाणत्यन्तनिष्कुरम् ॥१६९॥

शत्रु वज्रकर्णको नहीं मारता हूँ तब तक मेरा चित्त व्याकुल है अतः निद्रा कैसे आ सकरी है ? ॥१५६॥ जो अपमानसे जल रहा हो, जो ऋणकी चिन्तासे व्याकुल हो, जो शत्रुको नहीं जीत सका हो, जिसकी स्त्री विटपुरुषके चक्रमें पड़ गई हो, जो शल्यसे सहित द्रिद्र हो तथा जो संसारके दुःखसे भयभीत हो ऐसे मनुष्यसे दयायुक्त होकर ही मानो निद्रा दूर भाग जाती है ॥१५६-१५७॥ यदि मैं नमस्कारसे विमुख रहनेवाले इस वज्रकर्णको नहीं मारता हूँ तो मुझ निस्तेजको जीवनेसे क्या प्रयोजन है ? ॥१५८॥

तदनन्तर यह सुनकर जिसके हृदयमें मानो वज्रकी ही चोट लगी थी ऐसा मैं इस रहस्य-रूपी रत्नको लेकर और कुण्डलकी भावना छोड़कर आपके पास आया हूँ क्योंकि आपका मन संदा धर्ममें तत्पर रहता है तथा आप सदा साधुओंकी सेवा करते हैं । हे नाथ ! यह जान कर आप लौट जाइए उज्जैन मत जाइए ॥१५९-१६०॥ उसकी आज्ञा पाकर नगरका यह समस्त मार्ग, जिनके गण्डस्थलसे मद भर रहा है ऐसे अञ्जनगिरिके समान आभावाले हाथियों, महावेगशाली घोड़ों, कवचासे आवृत योद्धाओं तथा आपको मारनेके लिए उद्यत क्रूर सामन्तोंसे घिरा हुआ है ॥१६१-१६२॥ अतः हे धर्मवत्सल ! प्रसन्न होओ, शीघ्र ही उल्टा वापिस जाओ, मैं आपके चरणोंमें पड़ता हूँ आप मेरा वचन मानो ॥१६३॥ हे राजन् ! यदि आपको विश्वास नहीं हो तो देखो, धूलीके समूहसे व्याप्त तथा महा कलंकल शब्द करता हुआ यह शत्रुका ढल आ पहुँचा है ॥१६४॥ इतनेमें शत्रुदलको आया देख वज्रकर्ण विद्युदङ्गके साथ वेगशाली घोड़ेसे वापिस लौटा ॥१६५॥ और अपने दुर्गमें नगरमें प्रवेश कर धीरताके साथ युद्धकी तैयारी करता हुआ स्थित हो गया । बड़े-बड़े सामन्त गोपुरोंको रोक कर खड़े हो गये ॥१६६॥

तदनन्तर वज्रकर्णको नगरमें प्रविष्ट सुन, क्रोधसे जलता हुआ सिंहोदर अपनी सर्व सेनाके साथ वहाँ आया ॥१६७॥ वज्रकर्णका नगर अत्यन्त दुर्गम था । इसलिए सेनाके न्यसे भयभीत हो राजा सिंहोदरने उसपर तत्काल ही आक्रमण करनेकी इच्छा नहीं की ॥१६८॥ किन्तु सेनाको समीप ही ठहराकर शीघ्र ही एक दूत भेजा । वह दूत वज्रकर्णके पास जाकर बड़ी

१. ऋणसम्बन्धित्वान्विता । २. भवदुःखितः म० । ३. विश्वासं नो करोषि । ४. वज्रकर्णः मे० ।

५. समवस्थितः म० । ६. प्रतोलिरोध ।

जिनशासनवर्गेण सदावष्टब्धमानसः । ऐश्वर्यकटकस्त्वं मे जातः सद्गन्धर्वजितः ॥१७०॥
 कुटुम्बभेदेन दक्षैः श्रमणैर्दुर्विचेष्टितैः । प्रोत्साहितो गतोऽस्येतामवस्थां नयवर्जितः ॥१७१॥
 सुखे देश मया दत्तमर्हन्तं च नमस्यति । अहो ते परमा माया जातेयं दुष्टचेतसः ॥१७२॥
 आगच्छाशु ममाभ्याशं प्रणम कुरु सन्मतिः । अन्यथा पश्य यातोऽसि मृत्युना सह सङ्गतम् ॥१७३॥
 ततस्तद्वचनाद्गत्वा दूतोऽवददिदं पुनः । एवं वज्रैश्चरितार्थं ब्रवीति कृतनिश्चयः ॥१७४॥
 नगरं साधनं कोपं गृहाण विषय त्रिमो । धर्मद्वारं समार्यस्य यच्छ्व मे केवलस्य वा ॥१७५॥
 कृता मया प्रतिज्ञेयं सुब्राम्हेनां मृतोऽपि न । द्रविणस्य भगवान् स्वामी शरीरस्य तु नो मन ॥१७६॥
 इत्युक्तोऽन्यपरिव्यक्तक्रोधः सिंहोदरः पुरः । कृत्वा रोषमिमं देशमुदैवासंयदुज्ज्वलम् ॥१७७॥
 इदं ते कथितं देव देशोद्वासनकारणम् । गच्छामि साम्प्रतं ब्रूयन्नामधावमितोऽन्तिकम् ॥१७८॥
 तस्मिन् विमानतुल्येषु दृशमानेषु सद्यः । मदीया दुष्कृती दृग्धा तृणकाष्ठविनिर्मिता ॥१७९॥
 तत्र गोपायितं सूर्पं घटं पिडरमेव च । आनयामि कुम्भैः प्रेरितः कूरवाक्यया ॥१८०॥
 गृहोपकरणं भूरि ब्रूयन्नामेषु लभ्यते । आनयस्व त्वमेवेति सा तु मां मापते मुहुः ॥१८१॥
 अथवात्यन्तमेवेदं तथा मे जनितं हितम् । देव कोऽपि भवान् दृष्टो मया येन सुकर्मणा ॥१८२॥
 इत्युक्ते कण्ठाच्छिष्टः पथिकं वीथय दुःखितम् । पचोऽस्मै रत्नसंयुक्तं ददौ काञ्चनसूत्रकम् ॥१८३॥
 प्रसीतः प्रणिपत्यास्ती तदादाय त्वरान्वितम् । प्रसियातो निजं धाम बभूव च नृपोपमः ॥१८४॥

निष्ठुरतासे बोला ॥१६६॥ कि जिन शासनके वर्गसे जिसका मन सदा अहङ्कार पूर्ण रहता है तथा जो समीचीन भावोंसे रहित है ऐसा तू मेरे ऐश्वर्यका कण्टक बन रहा है ॥१७०॥ कुटुम्बों के भेदन करनेमें चतुर, तथा खोटी चेष्टाओंसे युक्त मुनियोंके द्वारा प्रोत्साहित होकर तू इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है, स्वयं नीतिसे रहित है ॥१७१॥ मेरे द्वारा प्रदत्त देशका उपयोग करता है और अरहन्तको नमस्कार करता है। अहो, तुम दुष्ट हृदयकी यह वड़ी माया ॥१७२॥ तू सुखी है अतः शीघ्र ही मेरे पास आकर प्रणामकर अन्यथा देख, अभी मृत्युके साथ समागम को प्राप्त होता है ॥१७३॥

तदनन्तर वज्रकर्णका उत्तर ले दूतने वापिस जाकर सिंहोदरसे कहा कि हे नाथ ! निश्चय को धारण करनेवाला वज्रकर्ण इस प्रकार कहता है कि हे त्रिमो ! नगर, सेना, खजाना और देश सब कुछ ले लो पर भार्या सहित केवल मुझे धर्मका द्वार प्रदान कीजिए अर्थात् मेरी धर्मा-राधनामें बाधा नहीं डालिए ॥१७४-१७५॥ मैंने जो यह प्रतिज्ञा की है कि मैं अरहन्त देव और निर्ग्रन्थ गुरुको छोड़ अन्य किसीको नमस्कार नहीं करूँगा सो भरते-भरते इस प्रतिज्ञाको नहीं छोड़ूँगा । आप मेरे घनके स्वामी हैं शरीरके नहीं ॥१७६॥ इतना कहनेपर भी सिंहोदरने क्रोध नहीं छोड़ा और नगरपर घेरा डालकर तथा आग लगाकर इस देशको उजाड़ दिया ॥१७७॥ इस प्रकार हे देव ! मैंने आपसे इस देशके ऊजड़ होनेका कारण कहा है अब यहाँ पास ही अपने सजड़े गोंधको जाता हूँ ॥१७८॥ उस गोंधमे विमानके तुल्य जो अच्छे-अच्छे महल थे वे जल गये और उनके साथ तृण तथा काष्ठसे निर्मित मेरी दूटी फूटी कुटिया भी जल गई ॥१७९॥ उस कुटियामें एक जगह सूपा घट तथा भटका छिपाकर रखे थे सो दुष्ट वचन बोलनेवाली स्त्री से प्रेरित हो उन्हें लेने जा रहा हूँ ॥१८०॥ 'सूने गोंधोमें घर गृहस्थीके बहुतसे उपकरण मिल जाते हैं इसलिए तू भी उन्हें ले आ' इस प्रकार वह बार-बार मुझसे कहती रहती है ॥१८१॥ अथवा उसने मेरा यह बहुत भारी हित किया है कि हे देव ! पुण्योदयसे मैं आपके दर्शन कर सका हूँ ॥१८२॥ इस प्रकार उस पथिकको दुःखी देख दयासे स्वयं दुःखी होते हुए रामने उसके लिए अपना रत्नसूत्र दे दिया ॥१८३॥ वह पथिक उसे लेकर तथा विश्वास पूर्वक

१. पश्य जातोऽसि मृत्युना सहसंगतः ज०, व० । २. वज्रकर्णः । ३. जनरहितमकरोत् ।

अथावोचत्तत. पद्मो^१ लक्ष्मणाय दिवाकरः । नैदाघो यावदत्यन्तं दुस्सहत्वं न गच्छति ॥१८५॥
 तावदुत्तिष्ठ गच्छावः पुरस्यास्यान्तिकं भुवम् । जानकीयं तृपाश्रान्ता कुर्वाहारविधिं द्रुतम् ॥१८६॥
 एवमित्युदिते याता^२ दशाङ्गनगरस्य ते । समीपे चन्द्रमालस्य चैत्यालयमनुत्तमम् ॥१८७॥
 तस्मिन् सजानकशरामः प्रणम्यावस्थितः सुखम् । तदाहारोपलम्भाय लक्ष्मणः सधनुर्गतः ॥१८८॥
 विशन् सिंहोदरस्यासौ शिबिरं रक्षिमानवैः^३ । निरुद्धः कृतनिस्वानैः समीरण इवाद्रिभिः ॥१८९॥
 'इमकैर्दुःकुलोत्पन्नैः किं विरोधेन मे समम् । इति सञ्चित्य यातोऽसौ नगरं तेन पण्डितः ॥१९०॥
 गोपुरं च समासीदद्नेकभट्टरचितम् । यस्योपरि स्थितः साक्षाद्भजकः प्रयत्नवान् ॥१९१॥
 ऊचिरे तस्य भृत्यास्तं कस्त्वमेतः कुतोऽपि वा । किमर्थं वेति सोऽबोचद्दूरात्प्राप्स्यन्नलिप्तया ॥१९२॥
 ततस्तं बालकं कान्तं द्रष्टुं विस्मयसङ्गतः । आगच्छ प्रविश चिप्रमिति वज्रश्रवा जगौ ॥१९३॥
 ततस्तुष्टः प्रयातोऽसौ समीपं कुलिशश्रुतेः । विनीतवेषसम्पन्नो बौक्षित सादरं नरैः ॥१९४॥
 जगाद् वज्रकर्णश्च नरमासमयं द्रुतम् । अन्नं प्रसाधितं सदा भोजयतां रचिततादरः ॥१९५॥
 सोऽबोचन्नात्र भुञ्जेऽहमिति मे गुरुरन्तिके । तनादौ भोजयाम्यन्नं नयाम्यस्याहमन्तिकम् ॥१९६॥
 एवमस्त्विति सम्भाष्य नृपोऽन्नमतिपुष्कलम् । अदीदपद् वरं तस्मै चारुष्वन्नपानकम् ॥१९७॥
 लक्ष्मीधरस्तदादाय गतो द्विगुणरंहसा । मुक्तं च तैः क्रमेणैतत्सृष्टिं च परमां गताः ॥१९८॥

उन्हें प्रणामकर अपने घर वापिस लौट गया और राजाके समान सम्पन्न हो गया ॥१८४॥

अथानन्तर रामने कहा कि हे लक्ष्मण ! यह ग्रीष्मकालका सूर्य जब-तक अत्यन्त दुःसह अवस्थाको प्राप्त नहीं हो जाता है तब-तक उठो इस नगरके समीपवर्ती प्रदेशमें चले । यह जानकी प्यासे पीड़ित है इसलिए शीघ्र ही आहारकी विधि मिलाओ ॥१८५-१८६॥ इस प्रकार कहनेपर वे तीनों दशाङ्गनगरके समीप चन्द्रमाल भगवानके उत्तम चैत्यालयमें पहुँचे ॥१८७॥ वहाँ जिनैन्द्र-देवको नमस्कार कर सीता सहित राम तो उसी चैत्यालयमें सुखसे ठहर गये और लक्ष्मण धनुष लेकर आहार प्राप्तिके लिए निकला ॥१८८॥ जब वह राजा सिंहोदरकी छावनीमें प्रवेश करने लगा तब रक्षक पुरुषोंने जोरसे ललकार कर उसे उस तरह रोका जिस तरह कि पर्वत वायुको रोक लेते हैं ॥१८९॥ 'इन नीच कुली लोगोंके साथ विरोध करनेसे मुझे क्या प्रयोजन है' ऐसा विचार कर वह बुद्धिमान् लक्ष्मण नगरकी ओर गया ॥१९०॥ जब वह अनेक योद्धाओंके द्वारा सुरक्षित उस गोपुर द्वार पर पहुँचा जिसपर कि साक्षात् वज्रकर्ण बड़े प्रयत्नसे बैठा था ॥१९१॥ तब उसके भृत्योंने कहा कि तुम कौन हो ? कहाँसे आये हो ? और किसलिए आये हो ? इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि मैं बहुत दूरसे अन्न प्राप्त करनेकी इच्छासे आया हूँ ॥१९२॥ तदनन्तर उस बालकको सुन्दर देख आश्चर्यचकित हो वज्रकर्णने कहा कि आओ, शीघ्र प्रवेश करो ॥१९३॥ तत्पश्चात् सन्तुष्ट होकर लक्ष्मण विनीत वेषमें वज्रकर्णके पास गया । वहाँ सब लोगोंने उसे बड़े आदरसे देखा ॥१९४॥ वज्रकर्णने एक आन्न पुरुषसे कहा कि जो अन्न मेरे लिए तैयार किया गया है वह इसे शीघ्र ही आदरके साथ खिलाओ ॥१९५॥ यह सुन लक्ष्मणने कहा कि मैं यहाँ भोजन नहीं करूँगा । पास ही मैं मेरे गुरु अन्न ठहरे हुए हैं पहले उन्हें भोजन कराऊँगा इसलिए मैं यह अन्न उनके पास ले जाता हूँ ॥१९६॥ 'एवमस्तु-ऐसा ही हो' कहकर राजाने उसे उत्तमोत्तम व्यञ्जन और पेय पदार्थोंसे युक्त बहुत भारी अन्न दिला दिया ॥१९७॥ लक्ष्मण उसे लेकर दूने वेगसे रामके पास गया । सचने उसे यथा क्रमसे खाया और खाकर परम वृत्तिको प्राप्त हुए ॥१९८॥

तत्सुष्टोऽवदत् पथाः पथ्य लक्ष्मण भद्रताम् । वज्रकर्णस्य येनेदं कृतं परिचयाद् विना ॥११६॥
जामात्रेऽपि सुसम्पन्नमीदृगन्तं न दीयते । पानकानामहो शैत्यं व्यञ्जनात् न च सुष्टया ॥२००॥
अनेनामृतकल्पेन भुक्तेनान्नेन मार्गाजः । नैदाघोऽपहृतः सद्यः श्रमोऽस्माकं समन्ततः ॥२०१॥
चन्द्रविश्वमिवाचूर्ण्य शालग्रामी विनिर्मिताः । धवलत्वेन विभ्राणां मार्दवं भिन्नसिक्थकाः ॥२०२॥
दुग्धैव दीक्षितरीन्दोः कृतमेतच्च पानकम् । नितान्तमच्छतायुक्तं सौरमाकृष्टपदम् ॥२०३॥
भृत्क्षीरमिदं जातं कक्षधेनुस्तनादिव । रसनामीदृशी व्यक्तियज्ञनेषु सुदुस्तरा ॥२०४॥
अणुव्रतधरः साधुर्वर्णितः पथिकेन सः । अतिथीनां करोत्यन्यः संविभाजं क ईदृशम् ॥२०५॥
शुद्धात्मा श्रूयते सोऽयमनन्यप्रणतिः सुधीः । भवात्तिमयनं नार्थं जिनेन्द्रं यो नमस्यति ॥२०६॥
इदं शीलगुणोपेतो यद्येषोऽस्माकमग्रतः । सिद्धत्वरतिना रुद्धस्ततो नो जीवितं वृथा ॥२०७॥
अपराधविमुक्तस्य साधुत्वेवापितस्मनः । समस्ताश्चास्य सामान्ता एकनाथाविरोधिनः ॥२०८॥
तोयमानमिमं नृनं सिंहोदरकुभूसृता । भरतोऽपि न शक्नोति रक्षितुं नूतनेशतः ॥२०९॥
तस्मान्दन्त्यपरित्राणरहितस्यास्य सन्मतेः । क्षिप्रं कुरु परित्राणं ब्रज सिंहोदरं वद ॥२१०॥
इदं वाच्यमिदं वाच्यमिति किं शिष्यते भवान् । उत्पन्नः प्रज्ञया साकं प्रभयेव महामणिः ॥२११॥
गुणोच्चारणसज्जीतः कृत्वा शिरसि शासनम् । यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा प्रणम्य प्रमदान्वितः ॥२१२॥

तदनन्तर रामने सन्तुष्ट होकर कहा कि हे लक्ष्मण ! वज्रकर्णकी भद्रता देखो जो इसने परिचयके बिना ही यह किया है ॥११६॥ ऐसा सुन्दर भोजन तो जमाईके लिए भी नहीं दिया जाता है । अहो ! पेय पदार्थोंकी शीतलता और व्यञ्जनोंकी मधुरता तो सर्वथा आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली है ॥२००॥ इस अमृत तुल्य अन्नके खानेसे हमारा मार्गसे उत्पन्न हुआ गर्मीका समस्त श्रम एक साथ नष्ट हो गया है ॥२०१॥ जो कोमलताको धारण कर रहे हैं, जिनका एक-एक सीत अलग-अलग है, और जो सफेदीके कारण ऐसे जान पड़ते हैं मानो चन्द्रमाके चिम्बको चूर्ण कर ही बनाये गये हैं ऐसे ये धानके चावल हैं ॥२०२॥ जो अत्यन्त स्वच्छतासे युक्त है तथा जो अपनी सुराब्धिसे भ्रमरोंको आकृष्ट कर रहा है ऐसा यह पानक, जान पड़ता है चन्द्रमाकी किरणोंको दुहकर ही बनाया गया है ॥२०३॥ यह घी और दूध तो मानो कामधेनुके स्तनसे ही उत्पन्न हुआ है अन्यथा व्यञ्जनोमें रसोंकी ऐसी व्यक्तता कठिन ही है ॥२०४॥ पथिकने यह ठीक ही कहा था कि वह सत्पुरुष अणुव्रतोंका धारी है अन्यथा अतिथियोंका ऐसा सत्कार दूसरा कौन करता है ? ॥२०५॥ जो संसारकी पीड़ाको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार करता है उनके सिवाय किसी दूसरेको नमस्कार नहीं करता ऐसा वह बुद्धिमान् शुद्ध आत्माका धारक सुना जाता है ॥२०६॥ ऐसे शील और गुणोंसे सहित होने पर भी यदि यह हम लोगोंके आगे शत्रुसे घिरा रहता है तो हमारा जीवन व्यर्थ है ॥२०७॥ यह अपराधसे रहित है, अपने आपको सदा साधुओंकी सेवामें तत्पर रखता है तथा इसके समस्त सामन्त अपने इस अद्वितीय स्वामीके अनुकूल हैं ॥२०८॥ दुष्ट राजा सिंहोदरके द्वारा पीड़ित हुए इस वज्रकर्णकी रक्षा करनेके लिए भरत भी समर्थ नहीं है क्योंकि वह अभी नवीन राजा है ॥२०९॥ इसलिए अन्य रक्षकोंसे रहित इस बुद्धिमान्की रक्षा शीघ्र ही करो, जाओ और सिंहोदरसे कहो ॥२१०॥ 'यह कहना, यह कहना' यह तुम्हें क्या शिक्षा दी जाय क्योंकि जिस प्रकार महामणि प्रमाके साथ उत्पन्न होता है उसी प्रकार तुम भी ब्रह्माके साथ ही उत्पन्न हुए हो ॥२११॥

अथानन्तर अपने गुणोंकी प्रशंसा सुन जिसे लज्जा उत्पन्न हो रही थी ऐसा लक्ष्मण रामकी

विनीतं धारयन् वेपमनुपादाय कार्मुकम् । प्रयातो रयसम्पन्नो लक्ष्मणः कम्पितक्षितिः ॥२१३॥
 दृष्ट्वा सरन्वकैः पृष्टः कतरस्य पुमान् भवान् । सोऽजोचद् भरतस्याहमेतो दूतस्य कर्मणा ॥२१४॥
 क्रमेणातीत्य शिविरं शूरि प्राप्नो नृपास्पदम् । अविशद्देदितो द्वाःस्थैः सद्ः सिंहोदरस्य सः ॥२१५॥
 प्रस्पष्टमिति चेवाच मन्यमानस्तृणं नृपम् । ज्येष्ठभ्रातृवचोवाहं सिंहोदरं विनोद्य माम् ॥२१६॥
 आज्ञापयत्यसौ देवो भवन्तमिति सद्गुणः । यथा किल किमेतेव विरोधेन विहेतुना ॥२१७॥
 ततः सिंहोदरोऽजादीन्मनः कर्कशमुद्वहन् । दूतं श्रुतां विनीतेशमिति मद्बचनाद् भवान् ॥२१८॥
 यथा किलाविनीतानां श्रुत्यानां विनयाहृतौ । कुर्वन्ति स्वामिनो यत्नं विरोधः कोऽत्र दृश्यते ॥२१९॥
 वज्रकर्णो दुरात्मायं मानी नैकृतिकः परः । पिशुनः क्रोधनः क्षुद्रः सुहृन्निन्दापरायणः ॥२२०॥
 आलस्योपहतो मूढो वायुग्रहगृहीतधीः । विनयाचारनिर्मुक्तो दुर्विदग्धो दुरिहितः ॥२२१॥
 एतं मुञ्चन्मनी द्रोषा दमेन मरणेन वा । तमुपायं करोम्यस्य स्वैरसत्रास्थितां त्वया ॥२२२॥
 ततो लक्ष्मणोऽजोचत् किमत्र प्रत्युरोत्तरैः । कुरुतेऽयं हितं यस्मात् सन्मयां सर्वमस्य तत् ॥२२३॥
 इत्युक्तः प्रकटक्रोधः सन्धिदूरपराङ्मुखः । सिंहोदरोऽवदत्तारं वीक्ष्य सामन्तसंहतिम् ॥२२४॥
 न केवलमसौ मानी हतात्मा वज्रकर्णकः । तत्कार्यवाङ्मया प्राप्नो भवानपि तथाविधः ॥२२५॥
 पापाण्येनैव ते गात्रमिदं दूतं विनिमित्तम् । न नाममीपदप्येतं दुष्ट्यः कोशलपतेः ॥२२६॥

आज्ञा शिरोधार्य कर 'जैसी आपकी आज्ञा' यह कहकर तथा प्रणाम कर हार्पित होता हुआ चला । वह उस समय विनीत वेपको धारण कर रहा था, धनुष साथमें नहीं ले गया था, वेगसे सम्पन्न था और पृथ्वीको कँपाता हुआ जा रहा था ॥२१२-२१३॥ रत्नक पुरुषोंने देखकर उससे पूछा कि आप किसके आदमी हैं ? इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि मैं राजा भरतका आदमी हूँ और दूतके कार्यसे आया हूँ ॥२१४॥ क्रम-क्रमसे बहुत बढ़ी छावनीको उल्लंघन कर वह राजाके निवास-स्थानमें पहुँचा और द्वारपालोंके द्वारा खबर देकर राजा सिंहोदरकी सभामें प्रविष्ट हुआ ॥२१५॥ वहाँ जाकर राजाको वृणके समान तुच्छ समझते हुए उसने स्पष्ट शब्दोंमें इस प्रकार कहा कि हे सिंहोदर ! तू मुझे वड़े भाईका सन्देशवाहक समझ ॥२१६॥ उत्तमगुणोंको धारण करनेवाले राजा भरत आपको इस प्रकार आज्ञा देते हैं कि इस निष्कारण वैसे क्या लाभ है ? ॥२१७॥

तदनन्तर कठोर मनको धारण करनेवाला सिंहोदर बोला कि हे दूत ! तू मेरी ओरसे अयोध्याके राजा भरतसे इस प्रकार कहो कि अविनीत सेवकोंको विनयमें लानेके लिए स्वामी प्रयत्न करते हैं इसमें क्या विरोध दिखाई देता है ? ॥२१८-२१९॥ यह वज्रकर्ण दुष्ट है, मानी है, मायावी है, अत्यन्त नीच है, क्रोधी है, क्षुद्र है, मित्रकी निन्दा करनेमें तत्पर है, आलस्यसे युक्त है, मूढ है, वायु अथवा किसी पिशाचने इसकी बुद्धि हर ली है, यह विनयाचारसे रहित है, पण्डितम्मान्य है, और दुष्ट चेष्टाओंसे युक्त है । ये गोप इसे या तो दमनसे छोड़ सकते हैं या मरणसे, इसलिए इसका उपाय करता हूँ इस विषयमें आप चुप बैठिये ॥२२०-२२२॥ तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि इस विषयमें उत्तर-प्रत्युत्तरोंसे क्या प्रयोजन है ? चूँकि यह सबका हित करता है अतः इसका यह सब अपराध क्षमा कर दिया जाय ॥२२३॥ लक्ष्मणके इस प्रकार कहते ही जिसका क्रोध उबल पड़ा था, और जो सन्धिसे विमुख था ऐसा सिंहोदर अपने सामन्तोंकी ओर देख गरजकर बोला कि न केवल यह दुष्ट वज्रकर्ण ही मानी है किन्तु उसके कार्यकी इच्छासे आया हुआ यह दूत भी वैसा ही मानी है ॥२२४॥ अरे दूत ! जान पड़ता है तेरा यह शरीर पापाण्यसे ही बना है अयोध्यापतिका यह दुष्ट श्रुत्य, रञ्ज मात्र भी नम्रताको

तत्र देशे नरा नूनं मर्व एव भवद्भिवाः । स्थालीपुलाकवर्मणं परोक्षं ज्ञायते ननु ॥२२७॥
 इत्युक्ते कोपमायातः किञ्चिद्बलभीषरोऽवदत् । साम्यहेतोरहं प्राप्तो न ते कर्तुं नमस्कृतम् ॥२२८॥
 बहुनात्र किमुक्तेन हरे सक्षेपतः शृणु । प्रतीच्छ सन्धिमद्यैव मरणं वा समाश्रय ॥२२९॥
 इत्युक्ते परिपत्सर्वा परं क्षोभमुपागता । नानाप्रकारदुर्वक्त्या नानाचेष्टाविधायिनी ॥२३०॥
 आकृष्य क्षुरिकां केचिन्निश्चिन्तयन्तः भटाः । वधार्थमुद्यतास्तस्य कोपकम्पितमूर्त्यः ॥२३१॥
 वेगनिर्मुक्तदुःखाराः परस्परसमाकुलाः । ते तं समन्ततो ब्रन्नुर्मैशका इव पर्वतम् ॥२३२॥
 अप्राप्तानेव धीरोऽसौ क्रियालाघवपण्डितः । विधेय चरणाघातैर्दूरं तान् विह्वलान् समम् ॥२३३॥
 जयान जानुना कांश्चिक्परेणापरान् अमन् । कांश्चिन्मुष्टिप्रहारेण चकार शतशर्करान् ॥२३४॥
 कचेषु कांश्चिदाकृष्य निपात्य धरणीतले । पादेनार्चयन् कांश्चिदंघ्रातैरपातयत् ॥२३५॥
 कांश्चिदभ्योन्यघातेन परिचूर्णितमस्तकान् । चकार जंघया कांश्चिद्वरं प्राप्तविमूर्छनान् ॥२३६॥
 पृथ्वेकाकिना तेन परिपत्सा तथाविधा । महाबलेन विष्वंसं नीता भयसमाकुला ॥२३७॥
 एवं विध्वंसयन् यावन्निष्क्रान्तो भवनाजिरम् । तावद्योयशतैरन्यैः लक्ष्मणः परिवेष्टितः ॥२३८॥
 सामन्तैरथ सन्नद्धैर्वारणैः ससिभी रयैः । परस्परविमर्देन अमूढाकुलता परा ॥२३९॥
 नानाशस्त्रकरेभ्यो लक्ष्म्यालिङ्गितविग्रहः । चकार चेष्टितं वीरः श्रृगालेणिव केसरी ॥२४०॥

प्राप्त नहीं है—अर्थात् इसने विलकुल भी नमस्कार नहीं किया ॥२२६॥ सचमुच ही उस देशके सब लोग तेरे ही जैसे हैं जिस प्रकार बटलौईके दो चार सीध जाननेसे सब सीधोंका ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार तेरे द्वारा वहाँके सब लोगोका परोक्ष ज्ञान हो रहा है ॥२२७॥

सिंहोदरके इस प्रकार कहने पर कुछ क्रोधको प्राप्त हुआ लक्ष्मण बोला कि मैं साम्यभाव स्थापित करनेके लिए यहाँ आया हूँ तुम्हें नमस्कार करनेके लिए नहीं ॥२२८॥ सिंहोदर ! इस विषयमे बहुत कहनेसे क्या ? संक्षेपसे सुन, या तो तू सन्धि कर या आज ही मरणका आश्रय ले ॥२२९॥ यह कहते ही समस्त सभा परम क्षोभको प्राप्त हो गई, नाना प्रकारके दुर्वचन बोलने लगी तथा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करने लगी ॥२३०॥ जिनके शरीर क्रोधसे कोप रहे थे ऐसे कितने ही योधा छुरी खींचकर और कितने ही योधा तलवारें निकालकर उसका वध करनेके लिए उद्यत हो गये ॥२३१॥ जो वेगसे हुंकार छोड़ रहे थे तथा जो परस्पर अत्यन्त व्याकुल थे ऐसे उन योद्धाओंने लक्ष्मणको चारों ओरसे उस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि मच्छर किसी पर्वतको घेर लेते हैं ॥२३२॥ शीघ्रतासे कार्य करनेमें निपुण धीर-वीर लक्ष्मणने जो पासमे नहीं आ पाये थे ऐसे उन योद्धाओंको चरणोंकी चपेटसे विह्वल कर एक साथ दूर फेंक दिया ॥२३३॥ शीघ्रतासे घूमते हुए लक्ष्मणने कितने ही लोगोको घुटनोसे, कितने ही लोगोको कोहनोसे, और कितने ही लोगोको मुट्टियोंके प्रहारसे शतखण्ड कर दिया अर्थात् एक-एकके सौ-सौ टुकड़े कर दिये ॥२३४॥ कितने ही लोगोके ढाल खींचकर तथा पृथिवी पर पटक कर उन्हें पैरोंसे चूर्ण कर डाला और कितने ही लोगोको कन्धेके प्रहारसे गिरा दिया ॥२३५॥ कितने ही लोगोको परस्पर भिड़ाकर उनके शिर एक दूसरेके शिरकी चोटसे चूर्ण कर डाले और कितने ही लोगोको जङ्घाके प्रहारसे मूर्च्छित कर दिया ॥२३६॥ इस प्रकार महाबलवान् एक लक्ष्मणने सिंहोदरकी उस सभाको भयभीत कर विध्वस्त कर दिया ॥२३७॥

इस प्रकार सभाको विध्वस्त करता हुआ लक्ष्मण जब भवनसे बाहर आङ्गणमे निकला तब सैकड़ों अन्य योद्धाओंने उसे घेर लिया ॥२३८॥ तदनन्तर युद्धके लिए तैयार खड़े हुए सामन्तो, हाथियो, घोड़ों और रथोंके द्वारा उत्पन्न परस्परकी धक्काधूसीसे बहुत भारी आकुलता उत्पन्न हो गई ॥२३९॥ हाथोमे नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले उन सामन्तोंके साथ वीर

ततोऽनेकपमारुह्य प्राहृपेण्यधनाकृतिम् । स्वयं सिंहोदरो रोद्धुं लक्ष्मीनिलयमुद्यतः ॥२४१॥
 तस्मिन् रणशिरोयाते किञ्चिदैर्यमुपागताः । दूरगाः पुनराजग्मुः सामन्ता लक्ष्मणं प्रति ॥२४२॥
 धनानामिव सङ्घाते बबुस्तं शशिनं यथा । वातूल इव तानेष तूलराशीनिवाकिरत् ॥२४३॥
 उदारभटकामिन्यो गण्डविन्यस्तपाणयः । जगुराकुलतामाजः प्रविलोलविलोचनाः ॥२४४॥
 पश्यतेनं महाभीमं सस्यः पुरुमेककम् । वेष्टितं बहुभिः क्रूरैरसाप्रतमिदं परम् ॥२४५॥
 अन्यास्तत्रोदुरे कोऽपि केनायं परिभूयते । पश्यतानेन विक्रान्ता बहवो विह्वलीकृताः ॥२४६॥
 आस्तृणानमथो दृष्ट्वा लक्ष्मणोऽभिमुखं बलम् । विहस्य वारणस्तमं महान्तमुदमूलयत् ॥२४७॥
 ततः सरभसस्तत्र सान्द्रदुङ्कारभाषणः । जन्मृमे लक्ष्मणः कक्षे यथोच्चैराद्युद्युज्जिः ॥२४८॥
 विस्मितो गोपुगप्रस्यो दशाङ्गनगराधिपः । पाण्वर्चसिभिरित्यूचे सामन्तैर्विकचेवणैः ॥२४९॥
 कोऽप्येव पुरुषो नाथ पश्य सैहोदरं बलम् । भग्नध्वजरथच्छत्रं करोति परमद्यतिः ॥२५०॥
 एष खड्गधनुच्छायमध्यवर्ती सुविह्वलः । आवर्त इव निचिस्रो आन्यतीर्माहितोदरः ॥२५१॥
 इतश्चेतश्च विस्तीर्णमेतत्सन्धं पलायते । एतस्मात्प्रासमागत्य सिंहान् मृगकुलं यथा ॥२५२॥
 वदन्त्यन्योन्यमत्रैत सामन्ता दूरवतिनः । अवतारय सन्नाहं मण्डलाग्रो विमुच्यताम् ॥२५३॥

लक्ष्मण ऐसी चेष्टा करने लगा जैसी कि शृगालोंके साथ सिंह करता है ॥२४०॥ तदनन्तर वर्षा ऋतुके मेघके समान आकारको धारण करनेवाले हाथीपर सवार होकर सिंहोदर स्वयं लक्ष्मणको रोकनेके लिए उद्यत हुआ ॥२४१॥ जो सामन्त पहले दूर भाग गये थे वे सिंहोदरके रणाग्रमे आते ही कुछ-कुछ धैर्य धारणकर फिरसे वापिस आ गये ॥२४२॥ जिस प्रकार मेघोंके झुण्ड चन्द्रमाको घेरते हैं उसी प्रकार उन सामन्तोंने लक्ष्मणको घेरा परन्तु जिस प्रकार तीव्र वायु रुईके ढेरको उड़ा देती है उसी प्रकार उसने उन सामन्तोंको उड़ा दिया—दूर भगा दिया ॥२४३॥ जिन्होंने गालोंपर हाथ लगा रखे थे, जो अत्यन्त आकुलताको प्राप्त थीं, तथा जिनके नेत्र भयसे चञ्चल हो रहे थे ऐसी उत्तम थोड़ाओंकी खियों परस्परमे कह रही थी कि हे सखियों ! इस महा-भयङ्कर पुरुषको देखो । इस एकको बहुतसे क्रूर सामन्तोंने घेर रक्खा है यह अत्यन्त अनुचित बात है ॥२४४-२४५॥ उन्हींमे कुछ खियों इस प्रकार कह रहीं थीं कि यद्यपि यह अकेला है फिर भी इसे कौन परिभूत कर सकता है ? देखो, इसने अनेक थोड़ाओंको चपेटकर विह्वल कर दिया है ॥२४६॥

अथानन्तर सामने सेनाको इकट्ठी होती देख लक्ष्मणने हँसकर हाथी बाँधनेका एक बड़ा खम्भा उखाड़ा ॥२४७॥ और जिस प्रकार वनमें जोरदार अग्नि वृद्धिज्ञत होती है उसी प्रकार सधन हुंकारोसे भयङ्करताको प्राप्त करता हुआ लक्ष्मण उस सेनापर वेगसे दूट पड़ा ॥२४८॥ दशाङ्गपुरका राजा बजरर्ष गोपुरके अग्रभाग पर बैठा-बैठा इस दृश्यको देख आश्चर्यसे चकित हो गया । जिनके नेत्र हर्षसे विकसित हो रहे थे ऐसे समीपवर्ती सामन्तोंने उससे कहा कि हे नाथ ! देखो, परम तेजको धारण करनेवाला यह कोई पुरुष सिंहोदरकी सेनाको नष्ट कर रहा है । उसने उसकी सेनाके ध्वज, रथ तथा छत्र आदि सभी तोड़ डाले हैं ॥२४९-२५०॥ तलवारों और धनुषोंकी छायाके बीच खड़ा हुआ यह सिंहोदर, अत्यन्त विह्वल हो भँवरमे पड़े हुए के समान इधर-उधर घूम रहा है ॥२५१॥ जिस प्रकार सिंहसे भयभीत होकर मृग समूह इधर-उधर भागता फिरता है उसी प्रकार सिंहोदरकी सेना इससे भयभीत होकर इधर-उधर भागती फिरती है ॥२५२॥ ये दूर खड़े हुए सामन्त परस्पर कर रहे हैं कि कवच उत्तार दो, तलवार छोड़

कार्मुकं क्षिप मुञ्चाश्च वारणादवतीर्यताम् । गदां निरस्य गतायां साकारैरवमुत्तमम् ॥२५४॥
 आलोक्य शस्त्रसङ्घातं श्रुत्वा वा रभसान्वितः । क्रोध्येव पुरुषोऽस्माकमासदतिदारुणः ॥२५५॥
 अपसर्पमुतो देशादेहि मार्गमहो भट । वारणं सारयैतस्मात्किमत्र स्तमितोऽपि ते ॥२५६॥
 अयं प्रातोऽयमायातो दुःसुत स्यन्दनं त्यज । तुरङ्गाश्चोत्रय क्षिप्रं धातिता स्मो न संशयम् ॥२५७॥
 एवमादिकृतालापाः केचित्सङ्घटमायताः । परित्यज्य भद्राकल्पमेते पण्डितवत् स्थिताः ॥२५८॥
 किमेव रमते युद्धे कोऽपि त्रिदशसम्भवः । विद्याधरो नु वान्यस्य कस्येयं शक्तिरिदृशा ॥२५९॥
 कालो नाम यमो वायुः कोऽपि लोके प्रकल्पते । सोऽयं किमु भवेन्नृणो विद्युद्वृण्वलाचलः ॥२६०॥
 कृत्वेदमीदृशं सैन्यं पुनरेव करिष्यति । किमित्येवं मनोऽस्माक नाय शङ्कामुपागतम् ॥२६१॥
 निरीक्षत्स्वनमुत्पत्य संग्रामे रोमहर्षणे । सिंहोदरं समाकृत्य विह्वलं वरवारणात् ॥२६२॥
 गले तदंशुक्येनैव प्राञ्चकृत्य सुविस्मितः । एष यान्ति पुरःकृत्वा बलीवर्द यथा वशम् ॥२६३॥
 एवमुक्तः स तैरुक्ते स्वस्या भवत मानवाः । देवाः शान्तिं करिष्यन्ति किमत्र बहुचिन्तया ॥२६४॥
 स्थिता ॥२६५॥ हर्म्याणां दृशाङ्गनगराङ्गनाः । परं विस्मयमापन्ना जगुरेवं परस्परम् ॥२६६॥
 सखि पश्यास्य वीरस्य चेष्टितं परमाद्भुतम् । येनैकेन नरेन्द्रोऽयमानोतौऽशुकवन्धनम् ॥२६७॥
 अहो कान्तिरमुष्येयं द्रुतिश्चातिशतान्विता । अहो शक्तिरियं कोऽयं भवेत् पुरुषसत्तमः ॥२६८॥
 भूतोऽयं भविता वापि पुण्यवत्याः सुयोपितः । पतिः कस्याः प्रशस्तायाः समस्तजगतीरवरः ॥२६९॥
 सिंहोदरमहिष्योऽयं वृद्धचालसमन्विता । रुदत्यः पादयोः पेतुर्लक्षमणस्यातिविह्वलाः ॥२७०॥

दो, धनुष फेक दो, घोड़ा छोड़ दो, हाथीसे नीचे उतर जाओ, गदा गड्डेमे गिरा दो, ऊँचा शब्द मत करो, शस्त्रोंका समूह देखकर यह अतिशय भयङ्कर पुरुष वेगसे कहीं हमारे ऊपर न आ पड़े; इस स्थानसे हट जाओ, अरे भट ! रास्ता दे, हाथीको यहाँसे दूर हटा, चुपचाप क्या खड़ा है ? अरे दुष्ट सारथि ! देख, यह आया, यह आया, रथ छोड़, घोड़े जल्दी बढ़ा, मारे गये इसमें संशय नहीं, इत्यादि वार्तालाप करते हुए, संकटमे पड़े कितने ही योद्धा, योद्धाओंका वेष छोड़ कर नपुसकोंके समान एक ओर स्थित हैं ॥२५३-२५८॥ क्या युद्धमे यह कोई देव क्रीड़ा कर रहा है अथवा विद्याधर, वायु नामका कोई व्यक्ति संसारमे प्रसिद्ध है सो क्या यह वही है ? यह अन्यन्त तीक्ष्ण और विजलीके समान चञ्चल है ॥२५९-२६०॥ सेनाको इस प्रकार नष्ट भ्रष्ट करके अब यह आगे क्या करेगा ? हे नाथ ! इस प्रकार हमारा मन शङ्काको प्राप्त हो रहा है ॥२६१॥ देखो, रोमाञ्चकारी युद्धमे उछलकर भयभीत सिंहोदरको हाथीसे खींचकर उसीके बख्से गलेमें बाँध लिया है और यह वैलकी तरह वशकर उसे आगे कर आश्चर्यसे चकित होता हुआ आ रहा है ॥२६२-२६३॥ इस प्रकार सामन्तोंके कहनेपर वज्रकर्णने कहा कि हे मानवो ! स्वस्थ होओ, देव शान्ति करेंगे, इस विषयमे बहुत चिन्ता करनेसे क्या लाभ है ? ॥२६४॥ महलोंके शिखरों पर बैठे दृशाङ्गनगरकी स्त्रियों परम आश्चर्यको प्राप्त हो परस्पर इस प्रकार कह रही थी ॥२६५॥ कि हे साथी ! इस वीरकी परम अद्भुत चेष्टा देखो जिसने अकेले ही इस राजाको बख्से बाँध लिया ॥२६६॥ धन्य इसकी कान्ति, धन्य इसका अतिशय पूर्ण तेज, और धन्य इसकी शक्ति । अहो ! यह उत्तम पुरुष कौन होगा ? ॥२६७॥ यह किस भाग्यशालिनी गुणवती स्त्रीका पति है ? अथवा आगे होगा ? यह समस्त पृथिवीका स्वामी है ॥२६८॥

अथानन्तर वृद्ध और बालकोसे सहित सिंहोदरकी रानियाँ भयसे अत्यन्त चिह्नल हो रोती

- १ मा पतदतिदारुणः म० । २. अपसर्प्या म० । ३. योववेषम् । ४. नपुंसकवत् स्थिताः । ५. भवेन्नृणो (१) म० । ६. त्ययेद- म० । ७. निरीक्षस्व + एनम् । ८. वृद्धा । ९. परः कृत्वा ज०, ख० । १०. वज्रकर्णः । ११. हर्म्याणां प्रासादाना मूर्धसु पृष्ठेपु ।

ऊचुश्च देव मुञ्चैनं भर्तृभिर्चां प्रयच्छ नः । अथ प्रभृतिभृत्योऽयं तवाज्ञाकरणोद्यतः ॥२७०॥
 सोऽबोचत् पश्यतोदार द्रुमखण्डमिमं पुरः । अत्र नीत्वा दुराचारमेतमुल्लम्बयाम्यहम् ॥२७१॥
 करुणं बहु कुर्वन्त्यः पुनः साज्जल्योऽवदन् । रुष्टोऽसि यदि देवास्मान् जहि निर्धार्यतामयम् ॥२७२॥
 प्रसादं कुरु मा दुःखं दर्शय प्रियसम्भवम् । ननु योषित्सु कारुण्यं कुर्वन्ति पुरुषोत्तमाः ॥२७३॥
 पुरो मोक्षयामि सेवध्वं स्वस्थतामित्यसौ वदन् । ययौ चैत्यालयं यत्र ससीतो राघवः स्थितः ॥२७४॥
 अबोचल्लक्ष्मणः पद्मं सोऽयं वज्रश्रुतेरिरः । आनीतोऽस्याधुना देव कृत्यं वदतु यन्मया ॥२७५॥
 ततः सिंहोदरो मूर्ध्नां करकुड्मलयोगिना । पपात वेपमानाङ्गः पद्मस्य क्रमपद्मयोः ॥२७६॥
 जगाद् च न देव त्वां वेद्वि कोऽसीति कान्तिमान् । परेण तेजसा युक्तो महीप्रपतिसन्निभः ॥२७७॥
 मानवो भव देवो वा गम्भीरपुरुषोत्तम । अत्र किं बहुभिः प्रोक्तैरहमाज्ञाकरस्तव ॥२७८॥
 गृह्णातु हस्वितस्तुभ्यं राज्यमिन्द्रायुधश्रुतिः । अहं तु पादशुश्रूषां करोमि सततं तव ॥२७९॥
 ३धवभिर्चां प्रयच्छेति योषितोऽन्यस्य पादयोः । रुदत्यः प्रणिपत्योच्चः कुर्वन्त्यः करुणं बहु ॥२८०॥
 देवि स्त्रैणास्वसमाकं कारुण्यं कुरु शोभने । इत्युदित्वा च सीतायाः पतितास्ताः क्रमाब्जयोः ॥२८१॥
 ततः सिंहोदरं पद्मो जगाद् विनताननम् । कुर्वन् वापीषु हंसानां मेघवादोद्भव भयम् ॥२८२॥
 शक्रायुधश्रुतिर्यत्ते ब्रवीति कुरु तत्सुधीः । एवं ते जीवितं मन्ये प्रकारोऽन्यो न विद्यते ॥२८३॥
 आहूतोऽथ हितैः पुग्भिः कृतदण्ड्यादिवर्धनः । वज्रकर्णः परीवारसहितश्चैत्यमागमत् ॥२८४॥
 स त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य सूर्ध्वपाणिर्जिनालयम् । स्तुत्वा नगान् चन्द्रामं भक्तिदृष्टस्तनूरुहः ॥२८५॥

हुई लक्ष्मणके चरणोंमें आ पड़ी ॥२६६॥ वे बोलीं कि हे देव ! इसे छोड़ो, हमारे लिए पतिकी भिन्ना देओ, आजसे यह आपका आज्ञाकारी भृत्य है ॥२७०॥ लक्ष्मणने कहा कि देखो यह सामने ऊँचा वृक्षखण्ड है वहाँ ले जाकर इस दुराचारीको उसपर लटकाऊँगा ॥२७१॥ तदनन्तर बहुत करुण रुदन करती तथा बार-बार हाथ जोड़ती हुई बोलीं कि हे देव ! यदि रुष्ट हो तो हम लोगोंको मारो और इसे छोड़ दो ॥२७२॥ प्रसन्नता करो, हम लोगोको पतिका दुःख न दिखाओ उत्तम पुरुष स्त्रियों पर दया करते ही है ॥२७३॥ तब लक्ष्मणने कहा कि अच्छा आगे चलकर छोड़ देगे आप लोग स्वस्थताको प्राप्त होओ । इस प्रकार कहता हुआ लक्ष्मण उस चैत्यालयमें गया जहाँ कि सीता सहित राम ठहरे हुए थे ॥२७४॥ वहाँ जाकर लक्ष्मणने रामसे कहा कि यह वज्रकर्णका शत्रु है इसे मैं ले आया हूँ । अब हे देव ! जो करना हो सो आज्ञा करो ॥२७५॥ तब जिसका शरीर काँप रहा था ऐसा सिंहोदर हाथ जोड़ मस्तकसे लगा रामके चरणकमलोंमें गिरा ॥२७६॥ और बोला कि हे देव ! आप कौन हैं ? यह मैं नहीं जानता । आप कान्तिमान् हैं उत्कृष्ट तेजसे युक्त हैं और सुमेरुके समान स्थिर हैं ॥२७७॥ हे गम्भीर पुरुषोत्तम ! आप मनुष्य रहो चाहे देव । इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? मैं आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ ॥२७८॥ वज्रकर्ण आपको रुचता है सो वह यह राज्य ग्रहण करे मैं तो सदा आपके चरणोंकी शुश्रूषा ही करता रहूँगा ॥२७९॥ सिंहोदरकी स्त्रियों भी अत्यन्त करुण विलाप करती हुई, रामके चरणों में प्रणाम कर बोलीं कि हमारे लिए पतिकी भिन्ना दीजिए ॥२८०॥ 'हे देवि' । तुम तो स्त्री हो अतः हे शोभने ! हम पर दया करो' इस प्रकार कहकर वे सीताके चरणकमलोंमें भी पड़ीं ॥२८१॥

तदनन्तर वापिकायोंमें स्थित हँसोको मेघध्वनिसे होनेवाला भय उत्पन्न करते हुए रामने नीचा मुखकर बैठे हुए सिंहोदरसे कहा ॥२८२॥ कि हे सुधी ! तुम्हें वज्रकर्ण जो कहे सो कर । इसी तरह तेरा जीवन रह सकता है और दूसरा उपाय नहीं है ॥२८३॥ तदनन्तर जिसकी भाग्य-वृद्धि हो रही थी ऐसा वज्रकर्ण हितकारी पुरुषोके द्वारा बुलाया गया जो परिवार सहित उस चैत्यालयमें आया ॥२८४॥ उसने हाथ जोड़ मस्तकसे लगा जिनालयकी तीन प्रदक्षिणाएँ दीं

ततश्च विनयी गत्वा स्तुत्वा तौ आतरौ क्रमात् । अपृच्छद् वपुरारोग्यं सीतां च विधिकोविदः ॥२८६॥
 भद्र ते कुशलेनाद्य कुशलं नः समन्ततः । इति तं राघवोऽवोचक्षितवान् मधुरध्वनिः ॥२८७॥
 सङ्क्षेपं तयोर्थावद् वर्तते शुभलीलयोः । चारुवेषोऽय सैन्येन विद्युदङ्गः समागतः ॥२८८॥
 स तयोः प्रणतिं कृत्वा स्तुत्वा च क्रमपण्डितः । समीपे वज्रकर्णस्य सन्निविष्टः प्रतापवान् ॥२८९॥
 विद्युदङ्गः सुधी सोऽय वज्रकर्णसुहृत्परः । इति शब्दः समुत्तस्थौ तदा सदसि मांसलः ॥२९०॥
 पुनश्च राघवोऽवोचत् कृत्वा स्मितसितं मुखम् । वज्रकर्ण ! समीचीना तव दृष्टिरियं परा ॥२९१॥
 कुमतैस्तव धीरेषा मनागपि न कम्पिता । उत्पातवातसङ्घातैः मन्दरस्येव चूलिका ॥२९२॥
 ममापि सहसा दृष्ट्वा न ते भूयार्थमानतः । अहो परमिदं चाह तव शान्तं विचेष्टितम् ॥२९३॥
 अथवा शुद्धतत्त्वस्य किमु पुतोऽस्ति दुस्तरम् । धर्मानुरागचित्तस्य सम्यग्दृष्टेर्विशेषतः ॥२९४॥
 प्रणम्य त्रिजगद्गन्धं जिनेन्द्रं परमं शिवम् । जुद्धेन शिरसा तेन कथमन्यः प्रणम्यते ॥२९५॥
 मकरन्दरसस्वादलब्धवर्णो मधुवतः^१ । रासमस्य पदं पुच्छे प्रमथोऽपि करोति किम् ॥२९६॥
 बुद्धिमानसि धन्योऽसि द्वाधास्यासन्नमन्यताम् । चन्द्रादपि सिता कीर्तिस्त्वव आस्यति विष्टपे ॥२९७॥
 विद्युदङ्गोऽप्ययं मित्रं परं ते विदितं मया । मन्व्योऽयमपि यः सेवां तव कर्तुं समुद्यतः ॥२९८॥
 सन्नतगुणसत्कीर्तय लज्जामुपागतः । किञ्चित्तानन्योऽवोचच्छुनाशीरायुधश्रवाः ॥२९९॥
 अत्रावसीदतो देव प्रासस्य व्यसनं महत् । सज्जातोऽसि महाभाग त्वं मे^२ परमबान्धवः ॥३००॥

फिर भक्तिसे रोमाञ्चित हो चन्द्रप्रभ भगवान्को नमस्कार किया ॥२८५॥ तत्पश्चात् विधि-
 विधानके जानकार वज्रकर्णने विनयपूर्वक जाकर राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंकी क्रमसे स्तुति की
 और सीतासे शरीर-सम्बन्धी आरोग्य पूछा ॥२८६॥ तदनन्तर रामने अत्यन्त मधुर ध्वनिमें
 उससे कहा कि हे भद्र ! आज तो तेरी कुशलसे ही हम सबकी कुशल है ॥२८७॥ इस प्रकार
 शुभलीलाके धारक राम और वज्रकर्णके बीच जब-तक यह वार्तालाप चलता है तब-तक सुन्दर
 वेषका धारक विद्युदङ्ग सेनाके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥२८८॥ क्रमके जाननेसे पण्डित प्रतापी
 विद्युदङ्ग राम लक्ष्मणको प्रणाम कर वज्रकर्णके पास आ बैठा ॥२८९॥ उसी समय सभामे यह
 जोरदार शब्द गूँजने लगा कि यह बुद्धिमान् विद्युदङ्ग वज्रकर्णका परम मित्र है ॥२९०॥

तदनन्तर रामने मन्द हास्यसे मुखको धवल कर वज्रकर्णसे कहा कि हे वज्रकर्ण ! तेरी यह
 दृष्टि अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥२९१॥ जिस प्रकार मेरुपर्वतकी चूलिका, प्रलयकालकी वायुके आघातसे
 कम्पित नहीं होती, उसी प्रकार तेरी यह बुद्धि मिथ्या मतोंसे रज्जमात्र भी कम्पित नहीं हुई
 ॥२९२॥ मुझे देखकर भी तेरा यह मस्तक नम्रीभूत नहीं हुआ सो तेरी यह चेष्टा अत्यन्त मनोहर
 तथा शान्त है ॥२९३॥ अथवा शुद्ध तत्त्वके जानकार पुरुषको क्या कठिन है ? खासकर धर्मा-
 नुरागी सम्यग्दृष्टिके मनुष्य को ॥२९४॥ जिस उन्नत शिरसे तीन लोकके द्वारा बन्धनीय परम
 कल्याणस्वरूप जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार किया जाता है उसी शिरसे दूसरे लोगोंको कैसे
 प्रणाम किया जाय ? ॥२९५॥ मकरन्द रसके आस्वादनमे निपुण भौरा उन्मत्त होने पर भी क्या
 गधेके पूँछपर अपना स्थान जमाता है ? ॥२९६॥ तुम बुद्धिमान् हो, धन्य हो, निकट भव्यपना
 धारण कर रहे हो और चन्द्रमासे भी अधिक धवल तुम्हारी कीर्ति संसारमें भ्रमण कर रही है
 ॥२९७॥ मुझे मालूम है कि यह विद्युदङ्ग भी तुम्हारा मित्र है । सो यह भी मन्व्य है जो कि
 तुम्हारी सेवा करनेके लिये उद्यत रहता है ॥२९८॥

अथानन्तर यथार्थ गुणोंके कथनसे जो लज्जाको प्राप्त था तथा जिसका मुख कुल्ल नीचेकी
 ओर मुक रहा था ऐसा वज्रकर्ण बोला कि हे देव ! यद्यपि आपकी यहाँ रहते बहुत कष्ट हुआ है

नियमस्त्वर्थासादेन समार्य जीवतोऽधुना । ^१पालितो मम भाग्येन ^२त्वमानीतो नरोत्तमः ॥३०१॥
 वदन्नेवमसा ऊचे लक्ष्मणेन विचक्षणः । वदामिहचितं यत्ते क्षिप्रं सम्पादयाम्यहम् ॥३०२॥
 सोऽनोचत् सुहृदं प्राप्य भवेन्तमतितुल्यमम् । न किञ्चिदस्ति लोकेऽस्मिन्निदं तु प्रवदाम्यहम् ॥३०३॥
 तृणस्यापि न बान्ध्वमि पीडां जिनमताश्रितः । अतो विमुच्यतामेष मम सिंहोदरप्रभुः ॥३०४॥
 इत्युक्ते लोकवन्द्येभ्यः साधुकारः समुद्ययौ । प्राप्तुद्वेषेऽपि पश्याथ मतिं घत्ते शुभामिति ॥३०५॥
 अपकारिणि कारुण्यं यः करोति स सज्जनः । मध्यो कृतोपकारे वा प्रीतिः कस्य न जायते ॥३०६॥
 एवमस्त्विति भापित्वा लक्ष्मणेन तयोः कृता । हस्तग्रहणसम्पन्ना प्रीतिः समयपूर्विका ॥३०७॥
 उज्जयिन्या ददावर्धं वज्रकर्णाय शुद्धधीः । सिंहोदरो हृतं पूर्वं विषयोद्वासने च यत् ॥३०८॥
 चतुरङ्गस्य देशस्य गणिकानां धनस्य च । विभागं समभागेन निजस्याप्यकरोदसौ ॥३०९॥
 बाह्यद्वारप्रसादेन तां वेश्यां तच्च कुण्डलम् । लेभे सेनाधिपत्यं च विद्युदङ्गः शुविश्रुतः ^४ ॥३१०॥
 वज्रकर्णस्ततः कृत्वा रामलक्ष्मणयोः पराम् । पूजामानाययत्क्षिप्रमष्टौ दुहितरो वराः ॥३११॥
 "सजायो दृश्यते ज्यायानिति तास्तेन ढौकितः । लक्ष्मीधरं कृतोदारविभूषाविनयान्विताः ॥३१२॥
 नृपाः सिंहोदराद्याश्च ददुः परमकन्यकाः । एवं सन्निहितं तस्य कुमारीणां शतत्रयम् ॥३१३॥
 ढौकित्वा वज्रकर्णस्ताः समं सिंहोदरादिभिः । जगाद् लक्ष्मणं देव तवैता वनिता इति ॥३१४॥

तो भी हे महाभाग ! आप मेरे परम बान्धव हुए हैं ॥२८६-३००॥ इस समय मेरे जीवित रहते हुए मेरे इस नियमका पालन आपके ही प्रसादसे हुआ है और मेरे भाग्यसे ही आप पुरुषोत्तम 'यहाँ पधारे है ॥३०१॥ इस प्रकार कहते हुए बुद्धिमान् वज्रकर्णसे लक्ष्मणने कहा कि जो तेरी अभिलाषा हो वह कह मैं शीघ्र ही पूर्ण कर दूँ ॥३०२॥ यह सुनकर वज्रकर्णने कहा कि आप जैसे अत्यन्त दुर्लभ मित्रको पाकर इस ससारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है । अतः मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि मैं जिनमतका धारक होनेसे यह नहीं चाहता हूँ कि तृणको भी पीड़ा हो । इसलिए यह मेरा स्वामी राजा सिंहोदर छोड़ दिया जाय ॥३०३-३०४॥ वज्रकर्णके इतना कहते ही लोगोके मुखसे 'धन्य धन्य' शब्द निकल पड़ा । देखो यह भद्र पुरुष शत्रुके ऊपर भी शुभ बुद्धि धारण कर रहा है ॥३०५॥ अपकारीके ऊपर जो दया करता है वही सज्जन है । वैसे मध्यस्थ अथवा उपकार करनेवाले पर किसे प्रेम उत्पन्न नहीं होता ॥३०६॥

तदनन्तर 'एवमस्तु' कह लक्ष्मणने हाथ मिलाकर तथा कभी शत्रुता नहीं करेगे, इस प्रकार शपथ दिलवाकर दोनोकी मित्रता करा दी ॥३०७॥ निर्मल बुद्धिके धारक सिंहोदरने उज्जयिनीका आधा भाग तथा देशको उजाड़ करते समय जो कुछ पहले हरा था वह सब वज्रकर्णके लिए दे दिया ॥३०८॥ अपनी चतुरङ्ग सेना, देश, गणिका तथा धनका भी उसने बराबर-बराबर आधा भाग कर दिया ॥३०९॥ जिनमत्तिके प्रसादसे अतिशय प्रसिद्ध विद्युदङ्गने भी वह वेश्या, वह रत्नमयी कुण्डल और सेनापतिका पद प्राप्त किया ॥३१०॥ तदनन्तर वज्रकर्णने राम-लक्ष्मणकी परम पूजा कर शीघ्र ही अपनी आठ पुत्रियाँ बलवाई ॥३११॥ जूँकि बड़े भाई राम स्त्रीसे सहित दिखाई देते थे इसलिए उसने उत्तम आभूषणोंको धारण करनेवाली तथा विनयसे युक्त अपनी पुत्रियाँ लक्ष्मणको व्याह दीं ॥३१२॥ इनके सिवाय सिंहोदर आदि राजाओंने भी उत्तमोत्तम कन्याएँ दीं । इस तरह सब मिलाकर लक्ष्मणको तीन सौ कन्याएँ प्राप्त हुईं ॥३१३॥ उन सबको खड़ी कर वज्रकर्णने सिंहोदर आदि राजाओंके साथ लक्ष्मणसे कहा कि हे देव !-ये आपकी स्त्रियाँ हैं ॥३१४॥

१. जीविताधुना क०, ख०, ज० । २. पालिता क० । ३. भागेन म० । ४. शुविश्रुतः म० ।

५. 'तव ज्यायान् ज्येष्ठो भ्राता रामः सजायो सवत्सलो दृश्यते अतस्त्वमपि सजाया भव' इति निर्दिश्य तेन ता दुहितरो लक्ष्मणं प्रापिता इति भावः ।

लक्ष्मीधरस्ततोऽबोचद् दारसङ्गं करोम्यहम् । न तावन्न कृतं यावत् पदं भुजवल्गार्जितम् ॥३१५॥
 पद्मश्च तानुवचैवं नास्माकं वसतिः क्वचित् । भरतस्याधिराज्येऽस्मिन् देशे स्वर्गतलोपमे ॥३१६॥
 देशान् सर्वान् समुल्लङ्घ्य करिष्याम्यालयं ततः । आश्रित्य चन्दनगिरिं दक्षिणार्णवमेव वा ॥३१७॥
 एकां वेलामिह ततो जन्मयौ नेतुमुत्सुके । आगन्तव्यं मयावश्यं द्रुगयोध्यामनेन वा ॥३१८॥
 काले तत्रैव नेत्यन्ते कन्यका अपि सो नृपाः । अज्ञातनिलयस्यास्य कीदृशो दारसंग्रहः ॥३१९॥
 एवमुक्ते कुमारीणां तद्वृन्दं शशमे न च । आकुलं पङ्कजवनं हिमवाताहतं यथा ॥३२०॥
 प्रियस्य विरहे प्राणान् त्यक्त्यामो यदि तत्पुनः । अवाप्स्यामः कुतोऽनेन समागमरसायनम् ॥३२१॥
 प्राणांश्च धारयन्तीनां कैतवं मन्यते जनः । दहते च समिद्धेन मनो विरहवह्निना ॥३२२॥
 सुमहान् शृगुरेकत्र व्याघ्रोऽन्यत्रातिदारुणः । अहो कष्टं कमाधारं ब्रजामोऽत्यन्तदुस्सहः ॥३२३॥
 अथवा विरहव्याघ्रं सङ्गमाशयविषया । संस्तंभ्य धारयिष्यामः शरीरमिति साम्प्रतम् ॥३२४॥
 एवं विचिन्तयन्तीभिः सार्धं तामिर्महीभृतः । गता यथागतं कृत्वा रामादीनां ययौचितम् ॥३२५॥
 सचचेष्टाः पूज्यमानास्ताः पितृवर्गेण कन्यकाः । नानाविनोदनासकास्तत्स्थितद्वतमानसाः ॥३२६॥
 आनायितः पिता भूत्वा सबन्धुर्देशमात्मनः । विद्युदङ्गेन चक्रे च परमः सङ्गमोत्सवः ॥३२७॥
 परमेश्च निशीथे ते नत्वा चैत्यालयात्ततः । शनैर्निर्गत्य पादाम्नां स्वेच्छया सुधियो ययुः ॥३२८॥
 चैत्यालयं प्रभाते सं दृष्ट्वा शून्यं जनोऽखिलः । रहितारोपकर्तव्यो वित्तानहृदयस्थितः ॥३२९॥

तदनन्तर उसके उत्तरमें मैं लक्ष्मणने कहा कि मैं जब तक अपने बाहुबलसे अर्जित स्थान प्राप्त नहीं कर लेता हूँ तब तक खी समागम नहीं करूँगा ॥३१५॥ रामने भी उनसे इसी प्रकार कहा कि अभी हमारा कहीं निश्चित निवास नहीं है । स्वर्गके समान भरतके राज्यमें जो देश हैं उन सवको पार कर हम मलयगिरि अथवा दक्षिण समुद्रके आत-पास अपना घर बनावेगे । वहाँ उत्कण्ठासे भरी अपनी माताओंको ले जानेके लिए एक बार हम अथवा लक्ष्मण अवश्य ही अयोध्या आवेंगे । हे राजाओ ! उसी समय आपकी इन कन्याओंको ले जावेंगे । तुम्हीं कहो जिसके रहनेका ठिकाना नहीं उसका स्त्री-संग्रह कैसा ? ॥३१६-३१८॥ इस प्रकार कहने पर वह कन्याओंका समूह तुषार वायुसे आहत कमलवनके समान आकुल होता हुआ शोभित नहीं हुआ ॥३२०॥ कन्याएँ विचार करने लगीं कि यदि हम पतिके विरहमें प्राण छोड़ देवेगी तो फिर इसके साथ समागमरूपी रसायनको कैसे प्राप्त कर सकेंगी ? ॥३२१॥ और यदि प्राण धारण करती हैं तो लोग कपट मानते हैं तथा वेदोप्यमान विरहानलसे मन जलता है ॥३२२॥ अहो ! एक ओर तो बड़ी भारी ढालू चट्टान है और दूसरी ओर अत्यन्त निर्दय व्याघ्र है । अतः अत्यन्त दुःखसे भरी हुई हम किस आधारको प्राप्त हों ? ॥३२३॥ अथवा इस समय हम समागमकी अभिलाषारूपी विद्यासे विरहरूपी व्याघ्रको कीलकर शरीर धारण करेंगी ॥३२४॥ इस प्रकार विचार करती हुई उन कन्याओंके साथ राजा लोग राम आदिका यथोचित सत्कार कर जैसे आये थे वैसे चले गये ॥३२५॥ जिनकी उत्तम चेष्टा थी, पितृवर्ग जिनका निरन्तर सत्कार करता था और जो नाना प्रकारके विनोदमें आसक्त थीं ऐसी कन्याएँ लक्ष्मणमें मन लगा कर रह गईं ॥३२६॥ तदनन्तर विद्युदङ्गने भाई-बान्धवोंसे सहित पिताको वड़े ठाट-बाटसे अपने देशमें बुलाया और पहुँचनेपर उनके समागमका बहुत भारी उत्सव किया ॥३२७॥

अथानन्तर बुद्धिमान् राम-लक्ष्मण सीताके साथ-साथ घनघोर आधी रातके समय भगवान्को नमस्कार कर चुपके-चुपके चैत्यालयसे निकलकर इच्छानुसार पैदल चले गये ॥३२८॥ प्रभात होनेपर चैत्यालयको शून्य देख सबलोग अपना-अपना कर्तव्य भूलकर शून्य हृदय हो

समं कुलिशं कर्णेन जातो प्रीतिरनुचराः । सिंहोदरस्य सन्मानगत्यागमनवर्धिता ॥३३०॥

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

स्वैरं स्वैरं जनकतनयां तौ च सञ्चारयन्तौ स्थायं स्थायं विकटसरसी काननानां तलेषु ।

पायं पायं रसमभिमतं स्वादुभाजां फलानां क्रीडं क्रीडं सुरसवचनं चारुचेष्टासमेतम् ॥३३१॥

प्राप्तौ नानारचनभवोत्तुङ्गशृङ्गाभिरामं रम्योद्यानावततवसुधं चैत्यसङ्घातपूतम् ।

^१नाकच्छायं सततजनितात्युत्सवोदारपौरं श्रीमत्त्वानं रविसमरुचिख्यैतिमत्कृवराख्यम् ॥३३२॥

इत्यायं रविवेणाचार्यप्रोक्ते पञ्चचरिते वज्रकर्णोपाख्यानं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमं पर्व ॥३३३॥

गये ॥३२६॥ सिंहोदरकी वज्रकर्णके साथ जो उत्तम प्रीति उत्पन्न हुई थी वह पारस्परिक सम्मान तथा आने-जानेसे वृद्धि को प्राप्त हुई ॥३३०॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि राम लक्ष्मण सीताको धीरे-धीरे उसकी इच्छानुसार चलाते हुए, विशाल सरोवरोंसे युक्त बनोके मध्यमें ठहरते हुए, स्वादिष्ट फलोंका इच्छित रस पीते हुए, तथा उत्तम वचन और सुन्दर चेष्टाओंके साथ क्रीड़ा करते हुए, कूबरनामक उस देशमें पहुँचे जो नाना प्रकारके भवनोंके ऊँचे-ऊँचे शिखरोंसे सुन्दर था, जिसकी वसुधा मनोहर उद्यानोंसे व्याप्त थी, जो मन्दिरोंके समूहसे पवित्र था, स्वर्गके समान कान्तिवाला था, जहाँके नगरवासी लोग निरन्तर होनेवाले उत्सवोंसे उत्कृष्ट-थे, श्रीमानोंके शब्दसे युक्त था तथा सूर्यके समान कान्ति और प्रसिद्धिसे युक्त था ॥३३१-३३२॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविवेणाचार्य रचित पञ्चचरितमें
वज्रकर्णका वर्णन करनेवाला तैत्तिरीय पर्व समाप्त हुआ ॥३३३॥

चतुस्त्रिंशत्तमं पर्व

परम सुन्दरे तत्र फलपुष्पभरानते । गुञ्जदभ्रमरसहाते मत्तकोकिलनादिते ॥१॥
 कानने शीतया साकमग्रलेन्मा स्थितः सुखम् । अन्तिकं सलिलार्थी तु लक्ष्मणः सरसी गतः ॥२॥
 भवान्तरे सुरुपाख्यो नेत्रतस्करविभ्रमः । एकोऽपि सर्वलोकस्य हृदयेषु समं वसन् ॥३॥
 महाविनयसम्पन्नः कान्तिनिर्भरपर्वतः । धरवारणमारुहश्चास्पादातमध्वगः ॥४॥
 तामेव सरसीं रम्यां क्रीडनाहितमानसः । प्राप्तः कल्याणमालाख्यो जनस्तत्रगराधिपः ॥५॥
 महतः सरस्तस्य दृष्ट्वा तं तारवर्तिनम् । नीलोत्पलचयश्यामं लक्ष्मणं चास्लक्ष्मणम् ॥६॥
 ताडितः कामबाणेन स जनोज्ज्वलमाकुलः । मनुष्यमग्रवीदेकमयमानीयतामिति ॥७॥
 गतश्च कृत्वाञ्जलीर्द्वयः स तमेवमभाषत । एवञ्च राजपुत्रस्ते प्रसादात् सङ्गमिच्छति ॥८॥
 को दोष इति सखिलस्य ध्यानः कौतुकं परम् । जगाम लीलया चान्यां समीपं तस्य लक्ष्मणः ॥९॥
 उत्तीर्य स जनो नागात् पद्मपुत्रयेन पाणिना । करे लक्ष्मणमालम्ब्य प्राविशद् गृहमाग्न्यम् ॥१०॥
 एकासने च तेनातिप्रसीतः सहितः स्थितः । अपृच्छञ्च सखे कस्त्वं कुतो वा समुपागतः ॥११॥
 सोऽब्रवीच्च विप्रयोगान्मे ज्येष्ठो दुःखेन तिष्ठति । तावन्नयासि तस्याद्यं कथयिष्यामि ते तत् ॥१२॥
 ततः शाख्योदयः सूप उपदर्शनव घृतम् । अपूपा घनबन्धानि व्यञ्जवानि पयो दधि ॥१३॥

अथानन्तर जो फल और फूलोंके भारसे नत हो रहा था, जहाँ भ्रमरोंके समूह गूँज रहे थे और जहाँ मत्त कोकिलाएँ शब्द कर रही थीं ऐसे अत्यन्त सुन्दर वनमें राम तो सुखसे विराजमान थे और लक्ष्मण पानी लेनेके लिए समीपवर्ती सरोवरमें गये ॥१-२॥ इसी अवसरमें जो अत्यन्त सुन्दर रूपसे सहित था, जिसके विभ्रम नेत्रोंको चुरानेवाले थे, जो एक होनेपर भी सर्व लोगोंके हृदयमें एक साथ निवास करता था, महाविनय सम्पन्न था। कान्तिरूपी निर्भरके उत्पन्न होनेके लिए पर्वतस्वरूप था, उत्तम हाथीपर सवार था। मनोहर पैदल सैनिकोंके बीच चल रहा था, जिसका मन क्रीड़ा करनेमें लीन था। जिसका कल्याणमाला नाम था तथा जो उस नगरका स्वामी था, ऐसा एक पुरुष उसी सरोवरमें क्रीड़ा करनेके लिए आया ॥३-४॥ सो उस महासरोवरके तटपर विद्यमान, नील कमलके समूहके समान श्याम और सुन्दर लक्ष्मणोंसे युक्त लक्ष्मणको देख वह मनुष्य कामबाणसे ताडित होकर अत्यन्त आकुल हो गया। फलस्वरूप उसने अपने एक आदमीसे कहा कि इस पुरुषको ले आओ ॥५-७॥ वह चतुर मनुष्य जाकर तथा हाथ जोड़कर लक्ष्मणसे इस प्रकार बोला कि 'आइये, यह राजकुमार प्रसन्नतासे आपके साथ मिलना चाहता है' ॥८॥ 'क्या दोष है' इस प्रकार विचारकर परम कौतुकको धारण करते हुए लक्ष्मण सुन्दर लीलासे उसके पास गये ॥९॥ तदनन्तर वह राजकुमार हाथीसे उतरकर तथा कमलके समान कोमल हाथसे लक्ष्मणको पकड़ अपने वस्त्र निर्मित तन्मूमें भीतर चला गया ॥१०॥ वहाँ अत्यन्त विश्रुत हो एक ही आसनपर लक्ष्मणके साथ सुखसे बैठा। कुछ समय बाद उसने लक्ष्मणसे पूछा कि हे सखे! तुम कौन हो? और कहाँसे आये हो? ॥११॥ लक्ष्मणने कहा कि मेरे वियोगसे मेरे बड़े भाई दुःखी होंगे इसलिए मैं पहले उनके पास भोजन ले जाता हूँ पश्चात् तुम्हारे लिए सब समानाचार कहेगा ॥१२॥

अथानन्तर शालिके चावलोंका भात, दाल, ताजा घृत, पुप, घेवर, नानाप्रकारके व्यञ्जन, दूध, दही, अनेक प्रकारके पानक, शकर और खोंडके लड्डू, पूडियाँ, कचौडियाँ, साधारण पूडियाँ,

पानकानि विचित्राणि शर्कराखण्डमोदकाः^१ । शङ्कुस्थो घृतपूर्णानि पूरिका गुडपूर्णिकाः ॥१४॥
 वस्त्रालङ्कारमास्यानि लेपनप्रभृतीनि च । अमन्त्राणि च चित्राणि हस्तमार्जनकानि च ॥१५॥
 सर्वमेतत् समासैन्नपुरुषैः सुमहाजवैः । भाविनानायितं तेन जनेनान्तिकमात्मनः ॥१६॥
 अन्तरङ्गः प्रतीहारी जनस्य वचनात् ततः । गत्वा सीतान्वितं पद्मं प्रणम्यैवमभापत ॥१७॥
 अमुष्मिन् वस्त्रभवने आता ते देव तिष्ठति । एतन्नगरनाथश्च विज्ञापयति सादरः ॥१८॥
 प्रसादं कुरु तच्छ्रद्धया शीतलेयं मनोहरा । तस्मादियन्तमध्वानं स्वेच्छया गन्तुमर्हथ ॥१९॥
 इत्युक्ते सीतया सार्धं ज्योत्स्नयेव निशाकरः । पद्मः समाययौ विभ्रन् मत्तद्विरद्विभ्रमम् ॥२०॥
 दूरादेव समालोक्य लक्ष्मणेन समं ततः । अभ्युत्थानं चकारास्य जनः प्रत्युद्गतिं तथा ॥२१॥
 सीतया सहितस्तस्थौ पद्मोऽप्यन्तवरासने । अर्घदानादिसन्मानं प्राप्तुं जनकल्पितम् ॥२२॥
 ततः कर्मणि निवृत्ते स्वैरं स्नानाशनादिके । समुत्सार्याखिलं लोकमात्मा नीतस्तुरीयताम् ॥२३॥
 वृतः पितुः सकाशात्मे प्राप्त इत्युपदेशनः^२ । प्रयत्नपरमं कथं प्रविश्यानन्धगोचराम् ॥२४॥
 नानाप्रहरणान् वीरान् नियुज्य द्वारि भूयसः । प्रविष्टो योऽन्नं मध्योऽसौ ममेति कृतभाषणः ॥२५॥
 सन्नावशापने लज्जां दूरीकृत्य सुमानसः । व्यपाटयदसौ तेषां समक्षं कञ्चुकं जनः ॥२६॥
 स्वर्गादिव ततोऽपसत् काऽप्यसौ वरकन्यका । उपयातेव पातालात् क्विञ्चिज्जानतानना ॥२७॥
 तत्कान्त्यां भवनं लिप्तं लग्नानिलमिवाभवत् । उद्योतमिव चन्द्रेण लज्जास्मितसितान्धुभिः ॥२८॥

गुडमिश्रित पूडियों, वस्त्र, अलंकार, मालाएँ, लेपन आदि की सामग्री, नानाप्रकारके बर्तन और हाथ धोनेका सामान, यह सब सामग्री निकटवर्ती शीघ्रगामी पुरुष भेजकर उसने अपने पास मँगवा ली ॥१३-१६॥ तदनन्तर उसकी आज्ञा पाकर अन्तरङ्ग द्वारपाल वहाँ गया जहाँ सीता सहित राम विराजमान थे, सो उन्हें प्रणाम कर वह इस प्रकार बोला ॥१७॥ कि हे देव । उस तम्बूमें आपके भाई विराजमान हैं वहाँ इस नगरका राजा भी विद्यमान है सो वह आदरके साथ प्रार्थना करता है कि चूँकि इस तम्बूकी छाया शीतल तथा मनको हरण करनेवाली है इसलिए प्रसन्न होइए और इतना मार्ग स्वेच्छासे चलकर आप यहाँ पधारिये ॥१८-१९॥ प्रतिहारीके इतना कहने पर मत्त हाथीकी शोभाको धारण करते हुए रामचन्द्र सीताके साथ चल पड़े उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे मानो चाँदनीके सहित चन्द्रमा ही हों ॥२०॥ रामको दूरसे ही आते देख राजकुमारने लक्ष्मणके साथ खड़े होकर तथा कुछ आगे जाकर उनका स्वागत किया ॥२१॥ राम सीताके साथ अत्यन्त उत्कृष्ट आसन पर विराजमान हुए तथा राजकुमारके द्वारा प्रदत्त अर्घदान आदि सन्मानको प्राप्त हुए ॥२२॥ तदनन्तर इच्छानुसार स्नान, भोजन आदि समस्त कार्य समाप्त होने पर राजकुमारने अन्य सब लोगोको दूर कर दिया । वहाँ राम, लक्ष्मण, सीता तीन और चौथा राजकुमार ये ही चार व्यक्ति रह गये ॥२३॥ 'मेरे पिताके पाससे दूत आया है' ऐसा कहता हुआ वह राजकुमार प्रयत्नपूर्वक सजाये हुए एक दूसरे कमरेमे गया । वहाँ उसने नाना-प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले अनेक योद्धाओंको द्वार पर नियुक्त कर यह आदेश दिया कि यहाँ जो कोई प्रवेश करेगा वह मेरे द्वारा वध्य होगा ॥२४-२५॥

तदनन्तर यथार्थ भावके प्रकट करनेमें जो लज्जा थी उसे दूर कर उस सुचेताने राम लक्ष्मण और सीताके सामने बीचका आवरण फाड़ डाला ॥२६॥ तत्पश्चात् आवरणके दूर होते ही ऐसा लगने लगा मानो स्वर्गसे ही कोई उत्तम कन्या नीचे आकर पड़ी है । अथवा पातालसे ही निकली है । उस कन्याका मुख लज्जाके कारण कुछ-कुछ नमीभूत हो रहा था ॥२७॥ उसकी

१. मोदकान् म० । २. पात्राणि । ३. समासन्नपुरुषैः क०, ख० । ४. समहानपैः म० । ५. इत्यु-पदेशतः क०, ख०, प्रसन्नः परमो-म० । ६. मध्योऽसौ समेति म०, ख० ।

लेकहंताश्रितं त्रस्ताश्रुक्षुपी समचक्रुवन् । लक्ष्मीरिव स्थिता साक्षात् श्रीरिवोष्मितापङ्कजा ॥२६॥
गृहं प्लावितुमारब्धामिव लावण्यवारिधौ । उत्कीर्णामिव रत्नानां रजसा काञ्चनस्य वा ॥२७॥
कल्लोला इव निर्जग्मुः स्तनभ्यां कान्तिवारिणः । तरङ्गा इव सञ्जाता मध्ये त्रिवलिराजिते ॥२८॥
चण्डातकं समुद्भिद्य जघनस्य धनं महः । निर्जगामापरं छातं जम्बूतं शशिनो यथा ॥२९॥
सुचिरं प्रथितं लोके चञ्चलत्वायशोमलम् । गृहजीमूतवर्तिन्या निर्धौतमिव विद्युता ॥३०॥
अत्यन्तस्निग्धया तन्म्या रामराज्या विराजिता । नितम्बाज्जातया हैमान् महानोल्लसिषा यथा ॥३१॥
ततोऽसौ सहसामुकनररूपा सुलोचना । दौकिता जानकी तेन रतिश्रीरिव लज्जया ॥३२॥
भन्ते लक्ष्मणस्तत्र परिवक्तो मनोयुवा । अवस्थां कामपि प्रापच्चलमन्यरलोचनः ॥३३॥
ततो विशुद्धया बुद्ध्या पद्मसामित्यभापत । इक्ष्वाणा विविधं वेपं का त्वं कीदृशि कन्यके ॥३४॥
ततोऽशुकेन संवीर्य गात्रं प्रवरभाषिणी । जगाद् देव ! वृक्षान्तं शृणु सद्भाववेदिनम् ॥३५॥
बालिखिल्य इति ज्ञेयातः पुरस्यास्य पतिः सुधीः । सदाचारपरो नित्यं मुनिवह्नोऽकवत्सलः ॥३६॥
पृथिवीति मित्रा तस्य गर्भाधानमुपागता । स्नेच्छाधिपतिना चासौ गृहीतः संयुगे नृपः ॥३७॥

कान्तिसे लिप्त हुआ कपड़ेका तन्मू ऐसा दीखने लगा मानो उसमें आग ही लग गई हो तथा लज्जासे युक्त भन्द सुसकानकी किरणोंसे लिप्त होने पर ऐसा जान पड़ने लगा मानो उसमें चन्द्रमा का ही प्रकाश फैल गया हो ॥२८॥ उसे देख, चतुर हंसोंने चिरकाल तक भयभीत हो अपने नेत्र संकुचित कर लिये । वह कन्या ऐसी जान पड़ती थी मानो कमलको छोड़कर साक्षात् लक्ष्मी ही वहाँ आ बैठी हो ॥२९॥ उसकी कान्तिसे वह घर ऐसा मालूम होता था मानो सौन्दर्यके सागरमें उसने तैरना ही शुरू किया हो अथवा रत्नों और स्वर्णकी परागसे मानो आच्छादित हो किया गया हो ॥३०॥ उसके स्तनोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो कान्तिरूपी जलके कल्लोल ही निकल रहे हों और त्रिवलिसे शोभित मध्यभागमें ऐसा लगता था मानो तरङ्गे ही उठ रही हों ॥३१॥ जिस प्रकार मेघके पतले आवरणको लोप कर चन्द्रमाका प्रकाश बाहर फूट पड़ता है उसी प्रकार लहंगाको भेदकर उसके नितम्बस्थलका सघन तेज बाहर फूट पड़ा था ॥३२॥ वह घर, एक मेघके समान जान पड़ता था और उसमें बैठी हुई वह कन्या विजलीके समान प्रतिभासित होती थी । ऐसा लगता था कि लोकमें चञ्चलताके कारण विजलीके यशमें जो मल चिरकालसे लगा हुआ था उसने उसे विलकुल ही धो डाला था ॥३३॥ वह स्वर्णनिर्मित की तरह देदीप्यमान नितम्बस्थलसे उज्ज्वल महानीलमणिके समान श्याम, अत्यन्त चिकनी एवं पतली रोमराजिसे सुशोभित थी ॥३४॥

तदनन्तर जिसने सहसा पुरुषका वेष छोड़ दिया था तथा जिसके नेत्र अत्यन्त सुन्दर थे, ऐसी वह कन्या सीताके पास आ बैठी जिससे वह उस प्रकार सुशोभित होने लगी जिस प्रकारकी लज्जासे रतिकी श्री सुशोभित होती है ॥३५॥ लक्ष्मण उसके पास ही बैठे थे, सो कामसे युक्त हो किसी अनिर्वचनीय अवस्थाको प्राप्त हुए । उस समय उनके चञ्चल नेत्र धीरे-धीरे चल रहे थे ॥३६॥ तदनन्तर निर्मल बुद्धिसे युक्त रामने उससे इस प्रकार कहा कि हे कन्ये ! विविध वेपको धारण करनेवाली तू कौन है ? जो इस तरह क्रीड़ा करती है ? ॥३७॥ इसके उत्तरमें मधुर भाषण करनेवाली कन्याने वस्त्रसे शरीर ढँक कर कहा कि हे देव ! सद्भावको सूचित करनेवाला मेरा वृत्तान्त सुनिये ॥३८॥

इस नगरका स्वामी 'बालिखिल्य' इस नामसे प्रसिद्ध है जो अतिशय बुद्धिमान्, मुनियोंके समान निरन्तर सदाचारका पालन करनेवाला और लोगोंके साथ स्नेह करने वाला है ॥३९॥ उसकी

१. 'लहंगा' इति प्रसिद्ध जीवजम् । २. चञ्चलत्वायशोमलं (१) म० । ३. कन्या म० । ४. रति श्रीरिव म० ।

उक्तं च स्वामिना तस्य सिंहोदरमहीमृता । पुत्रश्चेद् भविता गर्भे कर्ता राज्यमसाविति ॥४१॥
 ततोऽहं पापिनी जाता मन्त्रिणा वसुवुद्धिना^१ । सिंहोदराय पौम्नेन कथिता राज्यकाञ्चया ॥४२॥
 नीता कल्याणमालाख्यां जनन्या रहितार्थिकाम्^२ । प्रायो^३ भाङ्गलिके लोको व्यवहारे प्रवर्तते ॥४३॥
 मन्त्री माता च मे वेत्ति कन्येयमिति नापरः । ह्यन्तं कालमधुना भवन्तः पुण्यवीक्षिताः ॥४४॥
 दुःखं तिष्ठति मे तातः प्राप्तश्चाश्रयकवासिताम् । सिंहोदरोऽपि नो सक्तस्तस्य कर्तुं विमोचनम् ॥४५॥
 यदत्र द्रविणं किञ्चिद्देशे समुपजायते । तन्म्लेच्छस्वामिने सर्वं प्रेष्यते-दुर्गमोद्युपे ॥४६॥
 वियोगवह्निनात्यन्तं तप्यमाना ममाश्रिका । जाता कलावशेषेव चन्द्रमूर्तिर्गतप्रभा ॥४७॥
 हृत्युक्त्वा दुःखभारेण पीडितारोपगात्रिका । सद्यो विच्छाद्यतां प्राप्ता मुक्तकण्ठं रुद सा ॥४८॥
 अत्यन्तमधुरैर्वाक्यैः पद्मेनाश्रवासिता ततः । सीतया च निधायार्द्धं कुर्वन्त्या मुखधाननम् ॥४९॥
 सुमित्रासुनुना चोक्ता शुचं विसृज सुन्दरि । कुरु राज्यमनेनैव वेपेणोचितकारिणी ॥५०॥
 शुभे काश्चिद्यतीवस्व दिवसान् वैर्यसङ्गतान् । म्लेच्छेषग्रहणं किं मे पितरं पश्य मोचितम् ॥५१॥
 हृत्युक्ते परमं तोष ताते मुक्त इवांगताः । समुहसितसर्वाङ्गा कन्यका द्युतिपूरिता ॥५२॥
 तत्र ते कानने रम्ये विचित्रालापविभ्रमः । देवा इव सुखं तस्थुः स्वच्छन्दा दिवसत्रयम् ॥५३॥
 ततः "सुसजने काले रजन्यां रामलक्ष्मणौ । ससीतौ रन्ध्रमाश्रित्य निष्कान्तौ काननालयात् ॥५४॥

प्रियाका नाम पृथिवी है । जिस समय पृथिवी गर्भाधानको प्राप्त हुई उसी समय राजा बालखिल्य का म्लेच्छ राजाके साथ युद्ध हुआ, सो युद्धमे म्लेच्छ राजाने उसे पकड़ लिया ॥४०॥ राजा सिंहोदर बालखिल्यके स्वामी हैं सो उन्होंने कहा कि बालखिल्यकी रानी गर्भवती है यदि उसके गर्भमें पुत्र होगा तो वह राज्य करेगा ॥४१॥ तदनन्तर दुर्भाग्यसे पुत्र न होकर मैं पापिनी पुत्री उत्पन्न हुई परन्तु वसुवुद्धि मन्त्रीने राज्यकी आकांक्षासे सिंहोदरके लिए पुत्र उत्पन्न होनेकी खबर दी ॥४२॥ माताने मेरा कल्याणमाला यह अर्थहीन नाम रक्खा, सो ठीक ही है क्योंकि लोग प्रायः मङ्गलमय व्यवहारमें ही प्रवृत्त होते हैं ॥४३॥ अब तक मन्त्री और मेरी माता ही जानती है कि यह कन्या है दूसरा नहीं । आज पुण्योदयसे आप लोगोके दर्शन हुए ॥४४॥ बन्दीगृहके निवास को प्राप्त हुए हमारे पिता बहुत कष्टमें हैं । सिंहोदर भी उन्हें छुड़ानेके लिए समर्थ नहीं है ॥४५॥ इस देशमे जो कुछ धन उत्पन्न होता है वह सब दुर्गकी रक्षा करनेवाले म्लेच्छ राजाके लिए भेज दिया जाता है ॥४६॥ वियोगरूपी अग्निसे अत्यन्त सन्तापको प्राप्त हुई मेरी माता सुखकर कला मात्रसे अवशिष्ट चन्द्रमाके समान कान्तिहीन हो गई है ॥४७॥ इतना कहकर दुःखके समान भारसे जिसका समस्त शरीर पीड़ित हो रहा था ऐसी वह कल्याणमाला शीघ्र ही कान्तिरहित हो गई तथा गला फाड़कर रोने लगी ॥४८॥

तदनन्तर रामने अत्यन्त मधुर शब्दोंमे उसे सान्त्वना दी, सीताने गोदमे बैठकर उसका मुँह धोया और लक्ष्मणने कहा कि हे सुन्दरि ! शोक छोड़ो, इसी वेपसे राज्य करो, तुम उचित कार्य कर रही हो ॥४९-५०॥ हे शुभे ! हे कल्याणरूपिणि ! वैर्यके साथ कुछ दिन तक प्रतीक्षा करो । मेरे लिए म्लेच्छराजका पकड़ना कौनसी बात है ? तुम शीघ्र ही अपने पिताको छुड़ा देखोगी ॥५१॥ इस प्रकार कहने पर उसे इतना सन्तोष हुआ मानो पिता छूट ही गया हो । उस कन्याके समस्त अङ्ग हर्षसे जल्लसित हो उठे और वह कान्तिसे भर गई ॥५२॥ तदनन्तर उस मनोहर वनसे नाना प्रकारका वार्तालाप करते हुए वे सब तीन दिन तक देवोंके समान स्वतन्त्र हो सुखसे रहे ॥५३॥ तत्पश्चात् रात्रिके समय जब सब लोग सो गये तब सीता सहित

१. सुवुद्धिना म० । च सुवुद्धिना क०, ख० । २. रहितार्थिकं म० । ३. प्रायौ म० । ४. प्रेष्यते म० ।
 ५. सुपूजने म० ।

विबुद्धा तानपश्यन्ती कन्या व्याकुलमानसा । हाकारमुखरा शोकं परमं समुपागता ॥५५॥
महापुरुषयुक्तं ते स्तेनयित्वा मनो मम । गन्तुं निद्रासमेताया निर्धृणेत मनस्विनी ॥५६॥
कृच्छ्रक्षिप्य शोकं च चरवारणवर्तिनी । प्रविश्य कूवरं तस्थौ पूर्ववद्दीनमानसा ॥५७॥
ततः कल्याणमालाया रूपेण विनयेन च । हृतचिन्ता क्रमेणैते प्राप्नुमैकनिम्नगाम् ॥५८॥
उत्तरीयं विहितक्रोडास्तां मुखेन मनोहरान् । बहून् देशानतिक्रम्य प्राप्ता त्रिन्ध्यामहाटवीम् ॥५९॥
स्कन्धावारमहासार्धपरिक्षुण्णेन^१ वर्त्मना । प्रयान्तः पथिकैर्गोपैः कीनामैश्वं निवारिताः ॥६०॥
क्वचित्सात्तादिभिर्वृक्षैस्तालिङ्गितमूर्तिभिः । तद्वनं शोभतेऽत्यन्तं स्वामोदं नन्दनं यथा ॥६१॥
क्वचिद्वावेन^२ निर्दग्धप्रान्तस्थितमहीरुहम् । न शोभते यथा गोत्रं दुष्पुत्रेण कलङ्कितम् ॥६२॥
अथाबोचत् ततः सीता कर्णिकारवचनान्तरे । वामतोऽय स्थितो ध्वाङ्क्षो मूर्ध्नि कण्ठकिनस्तरोः ॥६३॥
वासमानो मुहुः क्रूरं कलहं कथयत्यरम् । अन्योऽपि चोरवृत्तस्थो जयं शसति वायसः ॥६४॥
तस्मात् तावत् प्रतीक्षेतां मुहुर्तं कलहात् परम् । जयोऽपि नैव मे चित्ते प्रतिभात्यतिसुन्दरः ॥६५॥
ततः क्षणं विलम्बयैतौ प्रयातौ पुनरुद्यतौ । तदेव च पुनर्जातं निमित्तं निकटेऽन्तरे ॥६६॥
श्रुत्वा अपि सीताया अवकर्ण्य वचस्ततः । प्रवृत्तौ गन्तुमग्रे च स्लेच्छानां सैन्यमुद्रतम् ॥६७॥
तौ निरीक्ष्यैव निर्भितावायान्तौ वरकामुकौ । क्षणेनैकेन तत्सैन्यं कान्दिशीकं पलायितम् ॥६८॥

राम, लक्ष्मण, छिद्र पाकर वनके उस तम्बूसे बाहर निकल गये ॥५४॥ जागने पर जब कन्याने उन्हें नहीं देखा तब उसका मन बहुत ही व्याकुल हुआ । वह हाहाकार करती हुई परम शोकको प्राप्त हुई ॥५५॥ वह मनस्विनी मन ही मन यह कह रही थी कि हे महापुरुष ! मेरा मन चुराकर तथा मुझे सोती छोड़ क्या तुम्हें जाना उचित था ? तुम बड़े निर्दय हो ॥५६॥ अन्तमें बड़े दुःखसे शोकको रोककर तथा उत्तम हाथीपर सवार हो उसने कूबर नगरमें प्रवेश किया और वहाँ पहलेके समान दीन हृदयसे वह निवास करने लगी ॥५७॥

अथानन्तर कल्याणमालाके रूप और विनयसे जिनके चित्त हरे हो गये थे ऐसे राम, सीता तथा लक्ष्मण क्रम-क्रमसे नर्मदा नदीको प्राप्त हुए ॥५८॥ क्रीडा करते हुए उस नदीको पारकर तथा अनेक सुन्दर देशोंको उल्लंघन कर वे विन्ध्याचलकी महाअटवीमें पहुँचे ॥५९॥ वे बड़ी भारी सेनाके संचारसे खुदे हुए मार्गसे जा रहे थे, इसलिए मार्गमें चलनेवाले ग्वालों तथा हलवाहकोने उन्हें रोका कि इस मार्गसे आगे न जाओ पर वे रुके नहीं ॥६०॥ बहुत भारी सुगन्धिसे भरा हुआ यह वन कहीं तो लताओंसे आलिङ्गित सागौन आदिके वृक्षोंसे नन्दनवनके समान अत्यन्त सुशोभित है और कहीं दावानलके कारण समीप स्थित वृक्षोंके जल जानेसे कुपुत्रके द्वारा कलंकित गोत्रके समान सुशोभित नहीं है, इस प्रकार कहते हुए वे आगे बढ़ रहे थे ॥६१-६२॥ तदनन्तर कुछ आगे बढ़नेपर सीताने कहा कि देखो, कनेर वनके बीचमें वाई और कदीले वृक्षकी चौटीपर बैठा कौआ बार-बार क्रूर शब्द कर रहा है सो 'शीघ्र ही कलह होनेवाली है' यह कह रहा है और इधर चौर वृक्षपर बैठा दूसरा कौआ 'हम लोगोकी विजय होगी' यह सूचित कर रहा है ॥६३-६४॥ इसलिए आपलोग मुहूर्तमात्र प्रतीक्षा कर ले क्योंकि कलहान्तर जय प्राप्त करना भी मेरे मनमें बहुत अच्छा नहीं जँचता ॥६५॥ तदनन्तर क्षण भर विलम्ब कर वे पुनः आगे गये तो कुछ ही अन्तर पर वहाँ निमित्त फिर हुआ ॥६६॥ यद्यपि सीता कह रही थी फिर भी उसका कहा अनसुना कर राम-लक्ष्मण आगे बढ़ते गये । कुछ दूरी पर उन्हें स्लेच्छोंकी सेना मिली, सो उत्तम धनुषके धारक तथा निर्भय राम-लक्ष्मणको आते देख वह सेना भयभीत हो

१. निद्रां समेतायां म० । २. नर्मदा । ३. परिक्षुण्णेन (?) म० । ४. हलिभिः । ५. निर्दग्धं प्रान्त म० । ६. कण्ठकिनस्तौ म० । ७. शब्दं कुर्वन् । ८. परः म० ।

अवगत्य ततस्तस्मात् सन्नह्यान्धे समागताः । प्रावृद्धमेवसमानेन तेऽपि हासेन निजिताः ॥६६॥
 ततस्तेऽत्यन्तविरत्रतां म्लेच्छाः पतितकार्मुकाः । कुबन्तः परम राव गत्वा पत्ये न्यवेदयन् ॥७०॥
 ततोऽसौ परमं क्रोधं वहश्चापं च दारुणम् । निर्जगाम महासैन्यः शस्त्रसन्तमसावृतः ॥७१॥
 काकोनदा इति ख्याता म्लेच्छास्ते धरणीतले । दारुणाः सर्वमांसादो दुर्जयाः पार्थिवैरपि ॥७२॥
 तैरावृतां दिशं प्रेक्ष्य पुरो धनकुलासितैः । धनुरारोपयत् कोप किञ्चिन्नक्ष्मीधरो भजन ॥७३॥
 तथा चास्फालितं सर्ववनमाकम्पितं यथा । ज्वरश्च वनसत्त्वानां जज्ञे प्रकटपेयधुः ॥७४॥
 सन्दधानं शरं वीक्ष्य लक्ष्मणं त्रस्तचेतसः । वज्रमुश्रक्ततां प्राप्ता म्लेच्छा निश्चक्षुषो यथा ॥७५॥
 ततः साध्वससम्पूर्णो म्लेच्छानामधिपो भृशम् । अवतीर्य रथादेतौ प्रणम्य रचिताक्षलिः ॥७६॥
 अब्रवीदस्ति कौशाम्बी नगरी प्रथिता प्रभुः । आहिताग्निर्द्विजस्तत्र नाम्ना विश्वानलः शुचिः ॥७७॥
 प्रतिसन्ध्येति तं जाया जातोऽहं तनयस्तयोः । रौद्रभूतिरिति ख्यातः शस्त्रयुतकलान्वितः ॥७८॥
 बाह्यात् प्रवृत्तिं दुष्कर्मनित्यानुष्ठानकोविदः । प्राप्तश्चौर्ये कदाचिच्च शूले भेत्तुमभीप्सितः ॥७९॥
 धनिनैकेन तत्राहं श्रद्धधानेन साधुना । मोचितो वेपमानाहः त्यक्त्वा देशमिहागतः ॥८०॥
 प्राप्तः कर्मानुभावेन काकोनदजनेशताम् । अष्टस्तिग्ममि सद्बृहत्तात् पशुभिः समर्ता गतः ॥८१॥
 द्रव्यन्तं यस्य मे कालं सैन्याख्या अपि पार्थिवाः । चक्षुषो गोचरोभावमासन् शक्ता न लेखितुम् ॥८२॥
 सोऽहं दर्शनमात्रेण कृतो देवेन विक्लवः । धन्योऽस्मि वीक्षितौ येन भवन्तौ पुष्टपोत्तमौ ॥८३॥

क्षणभरमे भाग गई ॥६७-६८॥ तदनन्तर भागती सेनासे समाचार जानकर दूसरे म्लेच्छ तैयार हो सामने आये परन्तु वर्षाकालीन मेघके समान श्याम लक्ष्मणने उन्हें हँसते-हँसते पराजित कर दिया ॥६९॥ तदनन्तर जो अत्यन्त भयभीत थे, जिन्होंने धनुष छोड़ दिये थे और जो जोरसे चिल्ला रहे थे ऐसे उन म्लेच्छोंने जाकर अपने स्वामीसे निवेदन किया ॥७०॥ तब परम क्रोध और भयंकर धनुषको धारण करता हुआ म्लेच्छोका स्वामी निकला । बड़ी भारी सेना उसके साथ थी और वह शस्त्ररूपी अन्धकारसे आच्छादित था ॥७१॥ वे म्लेच्छ पृथिवीपर 'काकोनद' इस नामसे प्रसिद्ध थे, अत्यन्त भयंकर थे, सब जन्तुओंका मांस खाने वाले थे और राजाओंके द्वारा भी दुर्जेय थे ॥७२॥ जब लक्ष्मणने देखा कि आगेकी दिशा मेघसमूहके समान श्यामवर्ण म्लेच्छोंसे आच्छादित हो रही है तब उन्होंने कुछ क्रुपित हो धनुषकी डोरी चढ़ा ली ॥७३॥ और उस प्रकारसे उसका आस्फालन किया कि समस्त वन काँप उठा तथा जंगली जानवरोंको कँपकँपी उत्पन्न करनेवाला ज्वर उत्पन्न हो गया ॥७४॥ लक्ष्मणको डोरीपर बाण चढ़ाते देख जिनका चित्त भयभीत हो गया था ऐसे वे म्लेच्छ नेत्रहीनके समान चक्राकार घूमने लगे ॥७५॥ तदनन्तर अत्यन्त भयसे भरा म्लेच्छोंका स्वामी रथसे उतर कर हाथ जोड़ता हुआ इनके पास आया और प्रणाम कर बोला कि एक कौशाम्बी नामकी प्रसिद्ध नगरी है निरन्तर अग्निमें होम करने वाला विश्वानल नामका पवित्र ब्राह्मण उसका स्वामी है । विश्वानलकी स्त्रीका नाम प्रतिसंध्या है । मैं उन्हीं दोनोंका पुत्र हूँ, रौद्रभूति नामसे प्रसिद्ध हूँ, शस्त्र तथा जुएके कलाका पारगामी हूँ ॥७६-७८॥ मैं बाल्य अवस्थासे ही निरन्तर खोदे कार्य करनेमें निपुण था । किसी समय चोरीके अपराधमें पकड़ा गया और मुझे शूलीपर चढ़ानेका निश्चय किया गया ॥७९॥ शूलीका नाम सुनते ही मेरा शरीर काँप उठा तब विश्वास रखनेवाले एक भले धनिकने जमानत देकर मुझे छुड़ा दिया । तदनन्तर देश छोड़कर मैं यहाँ आ गया ॥८०॥ 'कर्मोंके प्रभावसे इन काकोनद म्लेच्छोंकी स्वामिताकी प्राप्ति हो गया हूँ तथा सदाचारसे अश्रु हो पशुओंके समान यहाँ रहता हूँ ॥८१॥ इतने समय तक बड़ी-बड़ी सेनाओंसे युक्त राजा भी जिसके दृष्टिगोचर होनेके लिए समर्थ नहीं हो सके उस शुभकी आपने दृष्टिमात्रसे ही दीन कर दिया । मैं धन्य हूँ जिससे

शासनं यच्छतां नाथी किं करोमि यथोचितम् । शिरसा पादुके किं वा सहे पावनपण्डिते ॥८४॥
 'विन्ध्योऽयं निधिमिः पूर्णो वरयोपिच्छतैस्तथा । मुजिष्यमिच्छतां देवौ मामतो निभृतं परम् ॥८५॥
 इत्युक्त्वा प्रणतिं कुर्वन् पुनराति परां गतः । पपात विह्वलो भूमौ क्षिप्तमूलस्तत्स्थथा ॥८६॥
 कटावस्थां ततः प्रापुं तमेवं राघवोऽब्रुत् । कृपालतापरिष्वकवीरकल्पमहातरः ॥८७॥
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा मैयोर्वालिलित्वं विबन्धनम् । कृत्वाऽऽनय द्रुतं प्राप्य सन्मानं परमं सुधीः ॥८८॥
 तस्यैवाभिमतो भूत्वा सचिवः स्रज्जनान्वितः । विहाय सङ्गतिं श्लेच्छैर्विपचस्य ^१हितोऽभवत् ॥८९॥
 एतत् चेत् कुरूपे सर्वमन्यथात्वविवर्जितम् । ततस्ते विद्यते शान्तिरथैव त्रियसेऽन्यथा ॥९०॥
 एवं प्रभो करोमीति कृत्वा प्रणतिमादृतः । महारथसुतं गत्वा सुमोक्ष विनयान्वितः ॥९१॥
 अभ्यङ्गोद्भूत्य ^२सुस्तातं भोजयित्वा स्वल्ङ्कृतम् । आरोप्य स्यन्दने नेतुमारेमे तं तदन्तिकम् ॥९२॥
 स दध्यौ नीयमानः सन् विस्मयं परमं गतः । इतोऽपि गहनावस्थां प्रायो मेऽज्झ भविष्यति ॥९३॥
 कार्यं श्लेच्छो महाशत्रुः कुकर्मात्यन्तनिर्दयः । क चायमतिस्नमानो न मन्येऽष्टासुधारणम् ॥९४॥
 इति दोषमना गच्छन् सहसा पद्मलक्ष्मणौ । दृष्ट्वा परां छतिं प्रातोऽवतीर्य सनमस्कृतिः ॥९५॥
 अग्रीवौ तौ युवां नाथावागतावतिसुन्दरौ । मम पुण्यानुभावेन मुक्तो येनास्मि बन्धनात् ॥९६॥
 गच्छ विमं निर्जं धाम लभस्वाभीष्टसङ्गमम् । तत्र नौ ज्ञास्यसीत्युक्ते वालिलित्वः सुधीर्गतः ॥९७॥

पुरुषोमे उत्तम आप महाबुभावोंके दर्शन किये ॥८२-८३॥ हे नाथ ! आन्ना दीजिए मैं क्या योग्य सेवा करूँ ? क्या पवित्र करनेसे निपुण आपकी पादुकाएँ शिर पर धारण करूँ ? ॥८४॥ यह विन्ध्याचल निधियो तथा उत्तमोत्तम सैकड़ों स्त्रियोंसे परिपूर्ण है इसलिए हे देव ! मुझसे किसी अच्छे भारी राजस्वकी इच्छा प्रकट करो ॥८५॥ इतना कहकर प्रणाम करता हुआ वह पुनः परम पीड़ाको प्राप्त हुआ और विह्वल हो कटे वृक्षके समान भूमि पर गिर पड़ा ॥८६॥

तदनन्तर जो वीरजनोंके लिए दयारूपी लतासे आलिङ्गित कल्पवृक्षके समान थे ऐसे राम दुःखमय अवस्थाको प्राप्त हुए श्लेच्छ राजासे इस प्रकार बोले कि हे सुवृद्धि ! उठ-उठ, डर मत, वालिलिल्यको बन्धन रहित कर तथा उत्तम सन्मानको प्राप्त करा कर शीघ्र ही यहाँ ला ॥८७-८८॥ उसीका इष्ट मन्त्री ही सज्जनोंकी संगति कर और श्लेच्छोंकी संगति छोड़, देशका हितकारी हो ॥८९॥ यदि तू यह सब काम ठीक-ठीक करता है तो उससे तुम्हें शान्ति प्राप्त होगी अन्यथा आज ही मारा जायगा ॥९०॥ 'हे प्रभो ! ऐसा ही करता हूँ' इस प्रकार कहकर उसने वड़े आदरसे, रामको प्रणाम किया और विनयके साथ जाकर महारथके पुत्र बालखिल्यको छोड़ दिया ॥९१॥

तदनन्तर जिसे तेल उबटन लगाकर अच्छी तरह स्नान कराया गया था और भोजन कराकर जिसे अलंकारोंसे अलंकृत किया गया था । ऐसे बालखिल्यको रथपर बैठाकर वह रामके पास ले जानेके लिए उद्यत हुआ ॥९२॥ जो इस तरह आदरके साथ लाया जा रहा था ऐसा बालखिल्य परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ और मन ही मन सोचता जाता था कि प्रायः अब मेरी अवस्था इससे भी गहन होगी ॥९३॥ कहीं तो यह कुर्म करनेवाला अत्यन्त निर्दय महावीर श्लेच्छ ? और कहीं यह भारी सम्मान ? जान पड़ता है कि आज प्राण नहीं बचेगे ॥९४॥ इस प्रकार बालखिल्य दीन चिन्त होकर जा रहा था कि सहसा राम-लक्ष्मणको देखकर वह परम सन्तोषको प्राप्त हुआ । उसने रथसे उतरकर नमस्कार करते हुए कहा कि हे नाथ ! मेरे पुण्योदयसे अतिशय सुन्दर रूपको धारण करनेवाले आप दोनों महानुभाव पधारें हैं इसीलिए मैं बन्धनसे मुक्त हुआ हूँ ॥ ९५-९६॥ राम लक्ष्मणने उससे कहा कि शीघ्र ही अपने घर जाओ और इष्टजनोंके साथ

कृत्वा सुनिश्चितं श्रुत्यं तस्य विश्वानलद्वाजम् । यातौ सीतान्वितौ स्वेष्टं कृतिनौ रामलक्ष्मणी ॥६८॥
 बालिखिल्यस्तु सम्प्राप्तः समं रौद्रविभूतिना । स्वपुरस्यान्तिकां क्षोणी स्मरन् बान्धवचेष्टितम् ॥६९॥
 प्रत्यासन्नं ततः कृत्वा विभूत्या परयान्वितम् । पितरं निरगात्तुष्टा पुरात् कल्याणमालिनी ॥७०॥
 प्रतीतां सनमस्कारां तां समाग्राह्यं मस्तके । निजयाने पुनः कृत्वा प्रविष्टः कूबरं नृपः ॥७१॥
 पृथिवीं महिषी तोपसञ्जातपुलका क्षणात् । पुरातनीं तनुं भेजे कान्तिसागरवर्तिनीम् ॥७२॥
 सिंहोदरप्रभृतयो नृपा प्रभृतयोऽखिलाः । गुणैः कल्याणमालायाः परम् विस्मयं गताः ॥७३॥

उपजातिवृत्तम्

यद्रौद्रभूतिः सुचिरं विचित्रं समार्ज्यचौर्यपरायणः स्वम् ।
 अनेकदेशप्रभवं विशालं तद्वालिखिल्यस्य गुहं विवेश ॥७४॥
 जातेऽस्य बान्धवतिनि रौद्रभूती वशीकृतं म्लेच्छसुदुर्गभूमौ ।
 सिंहोदरोऽपि प्रतिपन्नशङ्कः स्नेहं ससन्मानमलङ्घकार ॥७५॥
 सोऽयं समासाद्य परं विभूतिं प्रसादतो राघवसत्तमस्य ।
 महारथी प्राणसत्तासमेतो रविर्यथैव शरदा रराज ॥७६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते बालिखिल्योपाख्यानं नाम चतुर्ल्लिखितम् पर्व ॥३४॥

समागम प्राप्त करो । वहाँ पहुँचने पर तुम हम लोगोको जान सकोगे । इस प्रकार कहनेपर बुद्धि-
 मान् बालिखिल्य अपने घर चला गया ॥६७॥

तदनन्तर विश्वानलके पुत्र रौद्रभूतिको बालिखिल्यका निश्चल मित्र बनाकर अतिशय
 कुशल राम-लक्ष्मण सीताके साथ अपने इष्ट स्थानको चले गये ॥६८॥ बान्धवजनौकी चेष्टाका
 स्मरण करता हुआ बालिखिल्य, रौद्रभूतिके साथ जब अपने नगरकी समीपवर्ती भूमिमें पहुँचा
 तब निकटवर्ती पिताको परम विभूतिसे युक्तकर पुत्री कल्याणमालिनी सन्तुष्ट हो उसका सत्कार
 करनेके लिए नगरसे बाहर निकली ॥६९-७०॥ तदनन्तर नमस्कार करती हुई पुत्रीको पहिचान
 कर राजा बालिखिल्यने उसका मस्तक सूँघा फिर अपने रथपर बैठाकर कूबर नगरमें प्रवेश किया
 ॥७१॥ बालिखिल्यकी रानी पृथिवीके शरीरमें हर्षोत्तिरेकसे रोमाञ्च निकल आये और वह
 कान्तिरूपी सागरमें वर्तमान अपने पुराने शरीरको क्षण भरमें पुनः प्राप्त हो गई ॥७२॥
 सिंहोदर आदि समस्त राजा कल्याणमालाके गुणांसे परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥७३॥ रौद्रभूतिने
 चिरकाल तक चोरीमें तत्पर रहकर नाना देशोंमें उत्पन्न जो विविध प्रकारका विशाल धन
 इकट्ठा किया था वह सब बालिखिल्यके घरमें प्रविष्ट हुआ ॥७४॥ जब म्लेच्छोंकी सुदुर्गम
 भूमिको वश करनेवाला रौद्रभूति बालिखिल्यका आज्ञाकारी हो गया तब शङ्काको प्राप्त हुआ
 सिंहोदर भी सम्मान सहित उसके साथ बहुत स्नेह करने लगा ॥७५॥ इस प्रकार महारथी बाल-
 खिल्य राम-लक्ष्मणके प्रसादसे परम विभूतिको पाकर अपनी प्राण प्रियासे इस तरह सुशोभित
 होने लगा जिस तरह कि शरद्वर्षसे सूर्य सुशोभित होता है ॥७६॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें बालिखिल्यका वर्णन
 करनेवाला चौतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३४॥

पञ्चत्रिंशत्तमं पर्व

अथ ते विदशभिख्याः काननं नन्दनोपमम् । विहरन्तः सुखं प्राप्ता देशमत्यन्तमुज्ज्वलम् ॥१॥
 मध्ये यस्य नदी माति प्रसिद्धजलवाहिनी । तापीति विश्रुता नानापवित्रगानुनादिता ॥२॥
 अरण्ये तत्र निस्तोये सिताभ्यन्तश्रमान्विता । जगाद् राघवं नाथ कण्ठशोषो समोत्तमः ॥३॥
 यथा भवशतैः स्त्रियो अन्यो दर्शनमर्हत् । बाष्कल्यैवमहं तीव्रतृणयाऽऽकुलिता जलम् ॥४॥
 इत्युक्त्वा वार्यसाणापि निपण्णा सुतरोरुचः । रामेण जगदे देवि विषादं मागमः शुभे ॥५॥
 भासन्नोऽयं महाप्राप्तो हरयते विकटालयः । उत्तिष्ठाशु प्रयामोऽत्र शिशिरं वारि पास्यति ॥६॥
 एवमुक्ते तथा स्वैरं स्वैरं प्रस्थितया समम् । प्रातौ तावत्क्षणमामं महाधनकुटुम्बिकम् ॥७॥
 आहिताग्निर्द्विजस्तत्र कपिलो नाम विश्रुतः । गेहे तस्यावतीर्णौ तौ यथाक्रममुपागते ॥८॥
 अत्राग्निहोत्रशालायामपनीय श्रमं क्षणम् । तद्ब्राह्मण्या जलं दत्तं पपी सीता सुशीतलम् ॥९॥
 पावत् तिष्ठन्ति ते तत्र द्विजस्तावदरण्यतः । विस्वाश्रयपलार्थौधोभारवाही समागतः ॥१०॥
 दावानलसमं यस्य मानसं नित्यकोपिनः । कालकूटविषं वाक्यमुलकसदृशं मुखम् ॥११॥
 कमण्डलुशिखाकूचवालसूत्रादिभिः परम् । विभ्राणः कुटिलं वेपमुन्मृश्रुत्तुचि मज्ज किं ॥१२॥
 दृष्ट्वा तान् कुपितोऽभ्यन्तश्रुद्विजकुटिलाननः । उवाच ब्राह्मणीं वाचा तद्वन्नित्य सुतीक्ष्णया ॥१३॥

अथानन्तर देवोके समान शोभाको धारण करनेवाले वे तीनो, नन्दन वनके समान सुन्दर वनमें सुखसे विहार करते हुए एक ऐसे अत्यन्त उज्ज्वल देशमें पहुँचे, जिसके मध्यमें प्रसिद्ध जलको बहानेवाली, पक्की समूहसे शब्दायमान तापी नामकी प्रसिद्ध नदी सुशोभित है ॥१-२॥ वहाँके निर्जल वनमें जब सीता अत्यन्त थक गई तब रामसे बोली कि नाथ ! मेरा कण्ठ बिलकुल सूख गया है ॥३॥ जिस प्रकार सैकड़ों जन्म धारण करनेसे खेदको प्राप्त हुआ भव्य, अरहन्त भगवान्के दर्शन चाहता है उसी प्रकार तीव्र पिपासासे आकुलित हुई मैं जल चाहती हूँ ॥४॥ इतना कहकर वह रोकनेपर भी एक उत्तम वृक्षके नीचे बैठ गई । रामने कहा कि हे देवि ! हे शुभे ! विषादको प्राप्त मत होओ ॥५॥ यह पास ही बड़े-बड़े महलोंसे युक्त बड़ा भारी ग्राम दिखाई दे रहा है, उठो, शीघ्र ही चलो, वहीं शीतल पानी पीना ॥६॥ इस प्रकार कहने पर धीरे-धीरे चलती हुई सीताके साथ चलकर वे दोनों, जहाँ अनेक धनिक कुटुम्ब रहते थे, ऐसे अरुण ग्राममें पहुँचे ॥७॥ वहाँ प्रतिदिन होम करनेवाला एक कपिल नामका ब्राह्मण रहता था सो वे दोनों यथा क्रमसे प्राप्त हुए, उसीके घर उदरे ॥८॥ वहाँ यज्ञ-शालामें क्षण भर विश्राम कर सीताने उसकी ब्राह्मणीके द्वारा दिया शीतल जल पिया ॥९॥ वे सब वहाँ ठहर ही रहे थे कि इतनेमें बैठ, पीपल और पलाशकी लकड़ियोंका भार लिये ब्राह्मण जङ्गलसे वापिस आ पहुँचा ॥१०॥ निरन्तर क्रोध करनेवाले उस ब्राह्मणका मन दावानलके समान था, वचन कालकूटके समान थे, और मुख उल्लूके सदृश था ॥११॥ वह हाथमें कमण्डलु लिये आ, उसने शिर पर बड़ी चोटी रख छोड़ी थी, मुख पर लम्बी चौड़ी दाढ़ी बढ़ा ली थी और कन्धेपर यज्ञोपवीतका सूत्र धारण किया था, इन सब चीजोंसे वह अत्यन्त कुटिल वेपको धारण कर रहा था तथा उज्ज दृष्टिसे अपनी जीविका चलाता था ॥१२॥ उन्हें देखते ही उसका क्रोध उमड़ पड़ा, उसका मुख मौँहोंसे अत्यन्त कुटिल हो गया और वह ब्राह्मणीसे इस प्रकार बोला, मानो तीक्ष्ण वचनोंसे

अयि पापे किमित्येवामिह दत्तं प्रवेशनम् । प्रयच्छाम्यद्य ते दुष्टे बन्धं गोरपि दुस्सहम् ॥१४॥
 परयेमे निरुत्प्रा पृष्टाः केऽपि पांशुलपाण्डुकाः । अग्निहोत्रकुटीं पापा कुर्वन्त्युपहृतां मम ॥१५॥
 ततः सीताऽब्रवीत् पद्ममार्गपुत्र कुकर्माणः । अत्येदमस्पर्धं दग्धं परमाक्रोशकारिणः ॥१६॥
 वरं पुष्पफलच्छन्नैः पादपैरुपशोमिते । सरोमिश्रातिविमलैः पद्मादिपिहितैर्वने ॥१७॥
 सारङ्गैरुपितं सार्धं क्रीडन्निजयेच्छया । श्रूयते नेदशं तत्र नितान्तं परुषं वचः ॥१८॥
 अस्मिन् राघव नाकाभे देशे धनसमुज्ज्वले । समस्तो निष्ठुरो लोको ग्रामवासी विशेषतः ॥१९॥
 विप्रस्य रूच्या वाचा क्षोमितोऽसौ ततोऽखिलः । ग्रामः समागतो दृष्ट्वा तेषां रूपं सुरोपमम् ॥२०॥
 अब्रवीद् ब्राह्मणैकान्तं पथिकाः क्षणमेककम् । तिष्ठन्तु किमिमे दोषं कुर्वन्ति विनयान्विताः ॥२१॥
 ततो निर्भत्स्य सकलं तं लोकं कोपलोहितः । वभापे तौ द्विजः प्राप सारमेयो गजाविव ॥२२॥
 निष्कामत परं गेहान्मदीयादपवित्रको । एवमादिवचोघातैर्लक्ष्मीमान् कुपितस्ततः ॥२३॥
 ऊर्ध्वपादमयोऽग्रीवं कृत्वा तं ब्राह्मणाधमम् । अन्नह्रण्यं प्रकृजन्तं शोणितारुणलोचनम् ॥२४॥
 भ्रमयित्वा क्षितौ यावदास्फालयितुमुद्यतः । रामेण वारितस्तावदिति कारुण्यधारिणा ॥२५॥
 सौमित्रे किमिदं कृष्ये प्रारब्धं भवतेदृशम् । मारितेन किमेतेन जीवत्येतेन ते ननु ॥२६॥
 सुञ्चैतं त्वरितं भुङ्क्ष्व यावत्प्राणैर्न मुच्यते । अयशः परमेतस्मिन्नभ्यते केवलं मृते ॥२७॥
 अमणा ब्राह्मणा गावः पशुस्त्रीवालवृद्धकाः । सदोषा अपि अरुणां नैते बन्धाः किलोदिताः ॥२८॥

उसे छोड़ ही रहा हो ॥१२॥ उसने कहा कि हे पापिन ! तूने इन्हें यहाँ प्रवेश क्यों दिया है ? अरी दुष्टे ! मैं आज तुम्हें पशुसे भी अधिक दुःसह बन्धनमें डालता हूँ ॥१४॥ देख, जिनका शरीर धूलिसे धूसर हो रहा है, ऐसे ये निर्लज्ज, पापी, ढाँठ व्यक्ति मेरी यज्ञ शालाको दूषित कर रहे हैं ॥१५॥

तदनन्तर सीताने रामसे कहा कि हे आर्यपुत्र ! इस कुकर्मा तथा अतिशय अपराध कहनेवाले इस ब्राह्मणका यह अधम स्थान छोड़ो ॥१६॥ फूलों और फलोंसे आच्छादित वृक्षों तथा कमल आदिसे युक्त अत्यन्त निर्मल सरोवरोसे सुशोभित वनमें स्वेच्छासे साथ-साथ क्रीड़ा करनेवाले हरिणोंके साथ निवास करना अच्छा, जहाँ इस प्रकारके अत्यन्त कठोर शब्द सुनाई नहीं पड़ते ॥१७-१८॥ हे राघव ! स्वर्गके समान आभावाले इस अतिशय सुन्दर देशमें समस्त लोग निष्ठुर हैं और खासकर ग्रामवासी तो अत्यन्त निष्ठुर हैं ही ॥१९॥ ब्राह्मणके रूक्ष वचनोंसे क्षोभको प्राप्त हुआ समस्त गाँव उनका देवतुल्य रूप देखकर वहाँ आ गया ॥२०॥ गाँवके लोगोंने कहा कि हे ब्राह्मण ! यदि ये पथिक तेरे भ्रमकानमें एक ओर क्षण भरके लिए ठहर जाते हैं तो क्या दोष उत्पन्न कर देंगे ? ये सब बड़े विनयी जान पड़ते हैं ॥२१॥ उसने क्रोधसे लाल होकर सब लोगोंको डाँटते हुए, राम-लक्ष्मणसे कहा कि तुम लोग अपवित्र हो, अतः मेरे घरसे निकलो । ब्राह्मणका राम-लक्ष्मणके प्रति रोष दिखाना ऐसा ही था जैसा कि कोई एक कुत्ता दो हाथियोंके प्रति रोष दिखाता है—उन्हें देखकर भौंकता है । तदनन्तर उसके इस प्रकारके वचन सम्बन्धी आधातसे लक्ष्मणको क्रोध आ गया, वे रुधिरके समान लाल-लाल नेत्रोंके धारक तथा अमाङ्गलिक अपराध वकनेवाले उस नीच ब्राह्मणको ऊर्ध्वपाद और अधोग्रीव कर घुमाकर ज्यों ही पृथिवी पर पड़ाइनेके लिए उद्यत हुए त्यों ही करुणके धारी रामने उन्हें यह कहते हुए रोका ॥२२-२५॥ कि हे लक्ष्मण ! तुम इस वेचारे दीन प्राणी पर यह क्या करने जा रहे हो ? यह तो जीवित रहते हुए भी मृतकके समान हैं, इसके मारनेसे क्या लाभ है ? ॥२६॥ जब तक यह निष्पाण नहीं होता है तब तक इस छुट्टको शीघ्र ही छोड़ दो । इसके मरने पर केवल अपयश ही प्राप्त होगा ॥२७॥ मुनि, ब्राह्मण, गाय, पशु, स्त्री, बालक और वृद्ध ये सदोष होने पर

इत्युक्त्वा मोचयित्वा तं कृत्वा लक्ष्मणमग्रतः । सीतयाऽनुगतो रामः कुटीराभिरगात्ततः ॥२६॥
 धिग् धिग् नीचसमासङ्गं दुर्वचःश्रुतिकारणम् । मनोविकारकरणं महापुरुषवर्जितम् ॥२७॥
 वर तरुतले शीते^१ दुर्गमे विपिने स्थितम् । परित्यज्यास्त्रिलं ग्रन्थं विहृतं^२ भुवने वरम् ॥२८॥
 वरमाहारमुत्सृज्य भ्रमणं सेवितुं^३ सुखम् । अवज्ञातेन नान्यस्य गृहे क्षणमपि स्थितम् ॥२९॥
 कृत्तेषु सरितामद्रेः कुक्षिष्वत्यन्तहारिषु । स्थास्यामो न पुनर्भूयः प्रवेक्ष्यामः खलालयम् ॥३०॥
 निन्दन्नेवं खलासङ्गमभिमानं पर वहन् । निर्गत्य ग्रामतः पद्मो वनस्य पदवीं श्रितः ॥३१॥
 घनकालस्ततः प्राप्नो नीलयन्त्रखिलं नभः । पदगर्जितसन्तानप्रतिनादितगह्वरः ॥३२॥
 ग्रहनक्षत्रपटलमुपगुह्य समन्ततः । सरावविद्युदुद्योतं जहासेव नभःस्फुटम् ॥३३॥
 ग्रीष्मढामरक घोर समुत्सार्य घनाघनः । जगज्ज विद्युदङ्कुल्या प्रीपितानिव तर्जयन् ॥३४॥
 नभोऽन्धकारितं कुर्वन् धाराभिर्नीलतोयदः । अभिप्रेक्तुं समारमे सीतां गज इव श्रियन् ॥३५॥
 तिम्बन्तस्तत् ततोऽभ्यग्न पृथुन्यग्रोधपादपम् । उपसन्नः पुरो गेहसमानस्कन्धमुन्नतम् ॥३६॥
 इभकर्णो गणस्तेषामभिभूतोऽथ^४ तेजसा । गत्वा स्वामिनमित्यूचे नत्वा विन्ध्यर्वनाश्रितम् ॥३७॥
 आगत्य नाकतः केऽपि मदोये नाथ सद्य नि । स्थिता यैस्तेजसैर्बाहं तस्मान्नुद्वासितो व्रुतम् ॥३८॥
 श्रुत्वा तद्वचनं स्मित्वा विनायकपतिः समम् । वद्भूमिः प्रस्थितो गन्तुं न्यग्रोधं वरलीलया ॥३९॥

भी शूर वीरोके द्वारा बध्य नहीं हैं, ऐसा कहा गया है ॥२८॥ इतना कहकर रामने उसे छोड़ाया और लक्ष्मणको आगेकर वे सीता सहित उस ब्राह्मणकी कुटियासे बाहर निकल आये ॥२६॥ 'जो दुर्वचन सुननेका कारण है, मनमे विकार उत्पन्न करनेवाला है और महापुरुष जिसे दूरसे ही छोड़ देते हैं ऐसी नीच मनुष्योंकी संगतिको धिक्कार है ॥२७॥ शीत ऋतुके समय दुर्गम वनमें वृत्तके नीचे बैठे रहना अच्छा है, समस्त परिग्रह छोड़कर संसारमे भ्रमण करते रहना अच्छा है और आहार छोड़कर सुख पूर्वक मर जाना अच्छा है परन्तु तिरस्कारके साथ दूसरेके घरमें एक क्षण भी रहना अच्छा नहीं है ॥३१-३२॥ 'हम नदियाँके तटों और पर्वतोंकी अतिशय मनोहर गुफाओमे रहेंगे परन्तु अब फिर दुर्जनोँके घरमें प्रवेश नहीं करेंगे' इस प्रकार दुर्जन संसर्गकी निन्दा करते तथा परम अभिमानको धारण करते हुए रामने गौवसे निकलकर वनका मार्ग लिया ॥३३-३४॥

तदनन्तर समस्त आकाशको नीला करता और तीव्र गर्जनाके समूहसे गुफाओंको प्रतिध्वनित करता हुआ वर्षा काल आया ॥३५॥ उस समय ग्रह और नक्षत्रोंके पटलको सब ओरसे झिपाकर कड़कती हुई बिजलीके प्रकाशके वहाने आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥३६॥ ग्रीष्म कालके भयंकर विस्तारको दूर हटाकर मेघ गरज रहा था और बिजली रूषी अंगुलीके द्वारा ऐसा जान पड़ता था मानो प्रवासी मनुष्योंको डाँट ही दिखा रहा हो ॥३७॥ धाराओंके द्वारा आकाशको अन्धकार युक्त करता हुआ श्यामल मेघ, सीताका अभिप्रेक करनेके लिए उस तरह तैयार हुआ जिस तरह हाथी लक्ष्मीका अभिप्रेक करनेके लिए तैयार होता है ॥३८॥ तदनन्तर वे भीगते हुए एक निकटवर्ती ऐसे विशाल वटवृत्तके नीचे पहुँचे कि जिसका स्कन्ध घरके समान सुरक्षित था तथा जो अत्यन्त ऊँचा था ॥३९॥

अथानन्तर उनके तेजसे अभिभूत हुआ इभकर्ण नामका यक्ष, विन्ध्याचलके वनमें रहने-वाले अपने स्वामीके पास जाकर तथा नमस्कार कर इस प्रकार बोला कि हे नाथ ! स्वर्गसे आकर कोई ऐसे तीन महानुभाव मेरे घरमे ठहरे हैं जिन्होंने अपने तेजसे अभिभूत कर मुझे शीघ्र ही घरके बाहर कर दिया है ॥४०-४१॥ इभकर्णके वचन सुनकर मन्दहास्य करता हुआ

१. सीते म०, व० । २. भावे कः, विहरणमित्यर्थः । ३. सेविते म० । ४. निन्दन्नेव म० । ५. प्रेपिता-मिव म० । ६. इभकर्णनामप्रेयो यक्षः । ७. भूतोऽपि व०, म० । ८. विन्ध्यमुपाश्रितम् ।

अधीश्वरः स यक्षाणां महाविभवसङ्गतः । रम्यकाननसंसक्तः क्रीडन्पुननसङ्गः ॥४३॥
 वृन्दादेव च तौ दृष्ट्वा महारुणौ गणाधिपः । प्रयुज्याद्यधिमञ्जालीदृ बलनारायणाविति ॥४४॥
 ततस्तदनुभावेन वात्सल्येन च श्रूयसा । क्षणेन नगरी तेषां तेन रम्या विनिर्मिता ॥४५॥
 ततस्ते सुखसम्पन्नं सुताः किल सुचारुणा । प्रभाते गीतशब्देन प्रबोधं समुपागताः ॥४६॥
 तत्प्रेष्वस्थितमात्मानमपश्यन् रत्नराजिते । प्रासादं च महारम्यं बहुभूमिकमुज्ज्वलम् ॥४७॥
 देहोपकारणव्यग्रं परिवर्गं च सादरम् । नगरं च महाशब्दशालगोपुरशोभितम् ॥४८॥
 तेषां महानुभावानां दृष्टेऽस्मिन् सहसा पुरे । न मनो विस्मयं प्राप तद्दि क्षुद्रविचेष्टितम् ॥४९॥
 अशेषवस्तुसम्पन्नास्तत्र ते चारुचेष्टिताः । अवस्थानं सुखं चक्रुरमरा इव भोगिनः ॥५०॥
 यथाधिपेन रामस्य पुरी यस्मात् प्रकल्पिता । ततो महींतले ख्यातिं गता रामपुरीति सा ॥५१॥
 प्रतीहारा भटाः क्षूरा अमात्याः सस्रयो गजाः । पौराश्च विविधास्तस्यामयोध्यायामिवाभवन् ॥५२॥
 कुशाग्रनगरोऽयं गणिल पृष्ठवाविति । तयोर्नाथं तथाभूतो स द्विजः किमु चेष्टितः ॥५३॥
 उवाच च गणस्वामी शृणु श्रेणिक स द्विजः । प्रथातः प्रातस्तथाय दाग्रहस्तो वनस्थलीम् ॥५४॥
 अमंश्च समिदाधर्मकस्मादूर्ध्वलोचनः । नातिदूरे पुरी पृथ्वीमपश्यद् विस्मिताननः ॥५५॥
 असिताभिः सिताभिश्च पताकाभिर्विराजिताम् । शरम्भेवसमानैश्च भवनैरतिमासुरैः ॥५६॥

यक्षराज, अपनी स्त्रियोंके साथ लीलापूर्वक उस वटवृक्षके पास जानेके लिए चला ॥४२॥ यक्षोंका वह अधिपति महावैभवसे युक्त था, रम्य वनोंमें क्रीड़ा करता आ रहा था और 'पूतन' नामसे सहित था ॥४३॥ यक्षराजने अत्यन्त सुन्दर रूपके धारक राम-लक्ष्मणकी दूरसे ही देख अवधि ज्ञान जोड़कर जान लिया कि ये बलभद्र और नारायण हैं ॥४४॥ तदनन्तर उनके प्रभाव एवं बहुत भारी वात्सल्यसे उसने उनके लिए क्षण भरमें एक सुन्दर नगरीकी रचना कर दी ॥४५॥ तत्पश्चात् वे वहाँ सुखसे सोये और प्रातःकाल अतिशय मनोहर संगीतके शब्दसे प्रबोधको प्राप्त हुए ॥४६॥ उन्होंने अपने आपको रत्नोसे सुशोभित शय्यापर अवस्थित देखा, अनेक खण्डका अत्यन्त रमणीय उज्ज्वल महल देखा, आदरके साथ शरीरकी सेवा करनेमें व्यग्र सेवकोंका समूह देखा और महाशब्द प्राकार तथा गोपुरोंसे शोभित नगर देखा ॥४७-४८॥ सहसा इस नगरको देखने पर उन महानुभावोंका मन आश्चर्यको प्राप्त नहीं हुआ सो ठीक ही है क्योंकि यह सब चमत्कार छुद्र चेष्टा थी ॥४९॥ सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाले राम सीता और लक्ष्मण समस्त वस्तुओंसे युक्त हो देवोंके समान भोग भोगते हुए उस नगरीमें सुखसे रहने लगे ॥५०॥ चूँकि वह नगरी यक्षराजने रामके लिए बनाई थी इसलिए महींतल पर रामपुरी इसी नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुई ॥५१॥ द्वारपाल, भट, शूरवीर, मन्त्री, घोड़े, हाथी तथा नाना प्रकारके नगरवासी जिस प्रकार अयोध्यामें थे उसी प्रकार इस रामपुरीमें भी थे ॥५२॥ तदनन्तर राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे पूछा कि हे नाथ ! राम लक्ष्मणके साथ उस प्रकारका व्यवहार करनेवाले उस कपिल ब्राह्मणका क्या हाल हुआ ? सो कहिये ॥५३॥ तब गौतम स्वामी बोले कि हे श्रेणिक ! सुन, वह ब्राह्मण प्रभात काल उठकर तथा हँसिया हाथमें लेकर वनकी ओर चला ॥५४॥ वह इन्धन आदिकी प्राप्तिके लिए इधर-उधर घूम रहा था कि अकस्मात् ही दृष्टि ऊपर उठाने पर उसने एक विशाल नगरी देखी । देखकर उसका मुख आश्चर्यसे चाकित हो गया ॥५५॥ वह नगरी सफेद तथा अन्य रङ्गोंकी अनेक पताकाओं और शरद् ऋतुके मेघोंके समान अतिशय देदीप्यमान भवनोंसे सुशोभित थी ॥५६॥ नगरीके मध्यमें सफेद कमल रूपी छत्रसे सहित एक बड़ा भवन था जो ऐसा जान पड़ता था मानो कैलासका बचा ही हो ॥५७॥ यह सब देख,

पुण्डरीकातपत्रेण मध्ये समुपलक्षितम् । महाप्रासादमेकं च कैलासस्यैव शावकम् ॥५७॥
 अचिन्तयच्च द्यौरेषा अटव्यासीन्मृगाश्रिता । यस्यां समितकुशाभयं दुःखं पर्यटिष्यं सदा ॥५८॥
 अकस्मात् सेयमुत्तद्गन्धमालोपशोभितैः । रत्नपर्वतसंकाशैर्विराजति पुरी गृहेः ॥५९॥
 सरांस्यभूति रम्याणि पद्मादिपिहितानि च । दृश्यन्ते यानि नो पूर्वं मया दृष्टानि जातुचित् ॥६०॥
 उद्यानानि सुरम्याणि सेवितानि जनैर्मृगैश्च । दृश्यन्ते देवघामानि लक्षितानि महाध्वजैः ॥६१॥
 वारणैः ससिभिर्गोभिर्महिषीभिश्च सङ्कटा । अस्योपकण्ठधरणी घण्टादिस्वनपूरिता ॥६२॥
 किमेषा नगरी नाकादवतार्या भवेदिह । पातालादुद्गताहोषित् कस्यापि शुभकर्मणः ॥६३॥
 स्वप्नमेवं तु पश्यामि मायेयं वत कस्यचित् । किमु गन्धर्वनगरं पितृव्याकुलितोऽस्मि किम् ॥६४॥
 'उपालिङ्गमिदं किं स्यात् प्रायेणास्यान्तिकस्थ मे । इति सञ्चिन्तयन् प्राप्नो विवादं परमं द्विजः ॥६५॥
 दृष्ट्वा च प्रमदामेकां नानालङ्कारधारिणीम् । अष्टच्छतुपस्येयं भद्रे कस्य पुरीत्यसौ ॥६६॥
 सा जगौ जातु पश्यस्व पुरीयं किं न ते श्रुता । यस्य लक्ष्मीधरो आता सीता च प्राणवल्गवा ॥६७॥
 एतत् पश्यासि यद् विप्र पुर्यां मध्ये महागृहम् । शरद्भ्रमसमच्छाद्यमन्त्रासौ पुरुषोत्तमः ॥६८॥
 श्लोको दुर्लभदर्शनं सर्वोन्नेतातिदुर्विधः । यच्छ्रुता बालिङ्गतं द्रव्यं जनितः पार्थिवोपमः ॥६९॥
 विभोऽनोचदुपपयेन केन पश्यामि सुन्दरि । पद्मं सद्भावतः पृष्ट्वा निवेदयितुमर्हसि ॥७०॥
 इत्युक्त्वा समिधाभारं निक्षिप्य भुवि साञ्जलिः । पपात पादयोस्तस्याः सा कस्य न मनोहरा ॥७१॥

वह ब्राह्मण विचार करने लगा कि क्या यह स्वर्ग है ? अथवा मृगोंसे सेवित वही अटवी है ? जिसमें मैं इन्धन तथा कुशा आदिके लिए निरन्तर दुःख पूर्वक भटकता रहता था ॥५८॥ यह नगरी ऊँचे-ऊँचे शिखरोंकी मालासे शोभायमान, तथा रत्नमयी पर्वतोके समान दीखनेवाले भवनोसे अकस्मात् ही सुरोभित हो रही है ॥५९॥ यहाँ कमल आदिसे आच्छादित जो ये मनोहर सरोवर दिखाई दे रहे हैं वे मैंने पहले कभी नहीं देखे ॥६०॥ यहाँ मनुष्योंके द्वारा सेवित सुरम्य उद्यान और बड़ी-बड़ी ध्वजाओसे युक्त मन्दिर दिखाई पड़ते हैं ॥६१॥ इस नगरकी निकटवर्ती भूमि, हाथियो, घोड़ो, गायो और भैंसोंसे संकीर्ण तथा घण्टा आदिके शब्दोंसे पूर्ण है ॥६२॥ क्या यह नगरी यहाँ स्वर्गसे अवतीर्ण हुई है ? अथवा किसी पुण्यात्माके प्रभावसे पातालमे निकली है ॥६३॥ क्या मैं ऐसा स्वप्न देख रहा हूँ ? अथवा यह किसीकी माया है ? या गन्धर्वका नगर है ? अथवा मैं स्वयं पित्तसे व्याकुलित हो गया हूँ ? ॥६४॥ अथवा क्या मेरा निकट कालमे मरण होनेवाला है सो उसका चिह्न प्रकट हुआ है ? इस प्रकार विचार करता हुआ वह ब्राह्मण अत्यधिक विवादको प्राप्त हुआ ॥६५॥ उसी समय उसे नाना अलंकार धारण करनेवाली एक स्त्री दिखी सो उसके पास जाकर उसने पूछा कि हे भद्रे ! यह किसकी नगरी है ? ॥६६॥ उसने कहा कि यह रामकी नगरी है, क्या तुमने कभी सुना नहीं ? उन रामकी कि लक्ष्मण जिनके भाई हैं और सीता जिनकी प्राणप्रिया है ॥६७॥ हे ब्राह्मण ! नगरीके बीचमे जो यह शरद् ऋतुके मेघके समान कान्तिवाला बड़ा भवन देख रहे हो इसीमें वे पुरुषोत्तम रहते हैं ॥६८॥ जिनका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसे इन पुरुषोत्तमने मन बाञ्छित द्रव्य देकर सभी दरिद्र मनुष्योंको राजाके समान बना दिया है ॥६९॥ ब्राह्मणने कहा कि हे सुन्दरि ! मैं किस उपायसे रामके दर्शन कर सकता हूँ ? मैं तुमसे सद्भावसे पूछ रहा हूँ अतः वतलानेके योग्य हो ॥७०॥ इतना कहकर उस ब्राह्मणने ईन्धनका भार पृथिवी पर रख दिया और स्वयं हाथ जोड़कर उस स्त्रीके चरणोंमे गिर पड़ा, सो ठीक ही है क्योंकि वह स्त्री किसका मन नहीं हरती थी ? ॥७१॥

ततोऽसौ कृपयाऽऽकृष्टा-सुमाया नाम यच्छिणी । जगाद् विभ्रं परमं त्वयेदं साहसं कृतम् ॥७२॥
 अस्याः पुरः सप्तासत्रां कथं त्वं भुवमागतः । आरक्षकैरल धोरैर्न नश्यति वीक्षितः ॥७३॥
 अस्या द्वारत्रयं पुर्याः दुष्प्रवेशं सुरैरपि । अशून्यं सर्वदा वारैः रक्षकैः सुनियामकैः ॥७४॥
 सिंहवारणशार्दूलतुल्यवक्त्रैर्महोऽज्जलैः । एभिर्विभीषिता मृग्यं मानुषा भान्यसंशयम् ॥७५॥
 पूर्वद्वारमदो यत्तु तस्य पश्यसि यान् बहिः । प्रासादानन्तिकानेतान् बलाकाच्छादनच्छिनीन् ॥७६॥
 मणितोरणरम्येषु विविधध्वजराजिषु । अर्हतामिन्द्रवन्धानाममीषु प्रतियातनाः ॥७७॥
 सामायिक पुरस्कृत्य तासां यस्तवनं नरः । नमोऽर्हस्तिद्वनिस्वानपूर्व पठति भावतः ॥७८॥
 गुरुपदेशयुक्तोऽसौ सभ्यदर्शनरचितः । विशतीन्द्रककुब्जद्वारं हन्यते त्वनमस्कृतिः ॥७९॥
 अणुव्रतधरो यो ना गुणशीलविभूषितः । तं रामः परया प्रीत्या बाञ्छितेन समर्चति ॥८०॥
 ततस्तस्या वचः श्रुत्वा द्विजोऽसावस्यतोपमम् । जगाम परमं हर्षं लब्धोपायं धनागमे ॥८१॥
 नमस्कारं च कृत्वाऽस्या भूयो भूयस्तुतिं तथा । रोमाञ्चाचित्सर्वाङ्गः परमाद्भुतभावितः ॥८२॥
 मुनेश्चरित्रशूरस्य गत्वासन्न कृताञ्जलिः । प्रणम्य शिरसाऽष्टच्छृङ्गपुत्रतथरक्रियाम् ॥८३॥
 ततस्तेन समुद्दिष्ट धर्मं सधनिवासिनाम् । स जग्राहानुयोगांश्च शुश्राव चतुरः सुवीः ॥८४॥
 धनलोभाभिभूतस्य धर्मं सुश्रूषतोऽस्य सः । ग्रहणे परमार्थस्य परिणाममुपागतः ॥८५॥
 अवगम्य ततो धर्मं द्विजोऽबोचत् सुमानसः । नाथ तेषोपदेशेन चक्षुर्धर्मालितं मम ॥८६॥

तदनन्तर दयासे आकृष्ट हुई उस सुमाया नामकी यक्षीने ब्राह्मणसे कहा कि तूने यह बड़ा साहस किया है ॥७२॥ तू इस नगरीकी समीपवर्ती भूमिमें कैसे आ गया ? यदि भयंकर पहरेदार तुझे देख लेते तो तू अवश्य ही नष्ट हो जाता ॥७३॥ इस नगरीके तीन द्वारोंमें तो देवोंकी भी प्रवेश करना कठिन है क्योंकि वे सदा सिंह, हाथी और शार्दूलके समान मुखवाले तेजस्वी, वीर तथा कठोर नियन्त्रण रखनेवाले रक्षकोंसे अशून्य रहते हैं । इन रक्षकोंके द्वारा डरवाये हुए मनुष्य निःसन्देह मरणको प्राप्त हो जाते हैं ॥७४-७५॥ इनके सिवाय जो वह पूर्व द्वार तथा उसके बाहर समीप ही बने हुए बगलाके पङ्क्तिके समान कान्तिवाले सफेद-सफेद भवन तू देख रहा है वे मणिमय तोरणोंसे रमणीय तथा नाना ध्वजाओंकी पङ्क्तिके सुशोभित जिन-मन्दिर हैं । उनमें इन्द्रोंके द्वारा बन्दनीय अरहन्त भगवान्की प्रतिमाएँ हैं जो मनुष्य सामायिक कर तथा 'अर्हत् सिद्धेभ्यो नमः' अर्थात् 'अरहन्त तथा सिद्धोंको नमस्कार हो' इस प्रकार कहता हुआ भाव पूर्वक उन प्रतिमाओंका स्तवन पढ़ता है तथा निर्मन्थ गुरुका उपदेश पाकर सन्यदर्शन धारण करता है वही उस पूर्वद्वारमें प्रवेश करता है । इसके विपरीत जो मनुष्य प्रतिमाओंको नमस्कार नहीं करता है वह मारा जाता है ॥७६-७८॥ जो मनुष्य अणुव्रतका धारी तथा गुण और शीलसे अलंकृत होता है, राम उसे बड़ी प्रसन्नतासे इच्छित वस्तु देकर संतुष्ट करते हैं ॥८०॥

तदनन्तर उसके अश्रुत तुल्य वचन सुनकर तथा धन प्राप्तिका उपाय प्राप्तकर वह ब्राह्मण परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८१॥ उसका समस्त शरीर रोमाञ्चोंसे सुशोभित हो गया तथा उसका हृदय अत्यन्त अद्भुत भावोंसे युक्त हो गया । वह उस स्त्रीको नमस्कार कर तथा वाग-द्वार उसकी स्तुति कर चारित्र्य पालन करनेमें शूर-वीर मुनिराजके पास गया और अञ्जलि बोंध शिरसे प्रणाम कर उसने उनसे अणुव्रत धारण करनेवालोंकी क्रिया पूछी ॥८२-८३॥ तदनन्तर उस चतुर बुद्धिमान् ब्राह्मणने मुनिराजके द्वारा उपदिष्ट गृहस्थ धर्म अङ्गीकृत किया तथा अनुयोगोका स्वरूप सुना ॥८४॥ पहले तो वह ब्राह्मण धनके लोभसे अभिभूत होकर धर्म श्रवण करना चाहता था पर अब वास्तविक धर्म ग्रहण करनेके भावको प्राप्त हो गया ॥८५॥ मुनिराजसे धर्मका स्वरूप

तृपार्तेनेव सत्तोयं छायेवाश्रयकांक्षिणा । क्षुधार्तेनेव मिष्टाब्धं रोगिणिव सुमेपजम् ॥८७॥
 दुष्पथप्रतिपन्नेन वर्मेवैप्सितदेशगम् । यानपात्रमिवाम्बोधौ व्याकुलेन निमज्जताम् ॥८८॥
 मयेदं शासनं जैनं सर्वदुःखविनाशनम् । लब्धं भवत्यसादेन दुर्लभं पुरुषार्थम् ॥८९॥
 जैलोच्येऽपि न मे कश्चिद्वचता विद्यते समः । येनाथमीदृशो मार्गो तोपितो जिनदेशनः ॥९०॥
 ह्युक्त्वा शिरसा पादौ बन्दित्राऽक्षलियोगिना । गुहं प्रदक्षिणीकृत्य द्विजः स भवन् गतः ॥९१॥
 जगाद् वाऽतिदृष्टस्तां प्रसन्नविकचेक्षणः । द्रियते परमाश्चर्यं गुरोरथ मया श्रुतम् ॥९२॥
 श्रुतं तव न तत्पित्रा जनकेनाथ वा पितुः । किं वाऽत्र बहुभिः प्रोक्तैर्गात्रिणापि न ते श्रुतम् ॥९३॥
 दृष्टं ब्राह्मणि यातेन यदरुणं मयाऽश्रुतम् । तद्गुरोरुपदेशेन नेदानी विस्मयाय मे ॥९४॥
 किं किं भो ब्राह्मण ब्रूहि दृष्टं किंवा त्वया श्रुतम् । उक्तोऽबोचन्न श्वनोमि हर्षात्कथयितुं प्रिये ॥९५॥
 आदरेणानुयुक्तश्च कौतुकिन्या पुनः पुनः । विप्रोऽबोचत श्रुत्वायं यन्मया श्रुतमश्रुतम् ॥९६॥
 सतिदर्थं प्रयातेन वनं तस्य समीपतः । दृष्टा पुरी मया रम्या यत्रासीद् गहनं वनम् ॥९७॥
 तदास्मन्ने मया चैका दृष्टा नारी विभूषिता । नूनं सा देवता कापि मनोहरणमापिता ॥९८॥
 दृष्टा च सा मयाऽप्यातं तया रामपुरीति च । ददाति श्रावकेभ्योऽत्र किल रामो महद्यनम् ॥९९॥

जानकर जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध हो गया था, ऐसा वह ब्राह्मण बोला कि हे नाथ ! आज आपके उपदेशसे तो मेरे नेत्र खुल गये हैं ॥८६॥ जिस प्रकार प्याससे पीडित मनुष्यको उत्तम जल मिल जाय, आश्रयकी इच्छा करनेवाले पुरुषको छाया मिल जाय, भूखसे पीडित मनुष्यको मिष्टान्न मिल जाय, रोगीके लिए उत्तम औषधि मिल जाय, कुमार्गमें भटकते हुएको इच्छित स्थान पर भेजनेवाला मार्ग मिल जाय, और बड़ी व्याकुलतासे समुद्रमें डूबनेवालोंको जहाज मिल जाय, वसी प्रकार आपके प्रसादसे सर्व दुःखोंको नष्ट करनेवाला यह जैन शासन मुझे प्राप्त हुआ है । यह जैन शासन नीच मनुष्योंके लिए सर्वथा दुर्लभ है ॥८७-८८॥ चूँकि आपने यह ऐसा जिनभ्रदर्शित मार्ग मुझे दिखलाया है इसलिये तीन लोकमें भी आपके समान मेरा हितकारी नहीं है ॥८९॥ इस प्रकार कहकर तथा अब्जलित्रय शिरसे मुनिराजके चरणोंमें नमस्कार कर प्रदक्षिणा देता हुआ वह ब्राह्मण अपने घर चला गया ॥९०॥

तदनन्तर जिसके नेत्र कमलके समान विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यन्त हर्षसे युक्त था ऐसा वह ब्राह्मण घर जाकर अपनी स्त्रीसे बोला कि हे प्रिये ! आज मैंने गुरुसे परम आश्चर्य सुना है ॥९२॥ ऐसा परम आश्चर्य कि जिसे तेरे पिताने, पिताके पिताने अथवा बहुत कहनेसे क्या तेरे गोत्र भरने नहीं सुना होगा ॥९३॥ हे ब्राह्मणि ! वनमें जाकर जो अद्भुत बात मैंने देखी थी अब वह गुरुके उपदेशसे आश्चर्य करनेवाली नहीं रही ॥९४॥ ब्राह्मणीने कहा कि हे ब्राह्मण ! तुमने क्या-क्या देखा है और क्या-क्या सुना है ? सो कहो । ब्राह्मणीके इस प्रकार कहने पर ब्राह्मण बोला कि हे प्रिये ! मैं हर्षके कारण कहनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ९५॥ तदनन्तर कौतुकसे भरी ब्राह्मणीने जब आदरके साथ बार-बार पूछा तब वह विप्र बोला कि हे आर्य ! जो आश्चर्य मैंने सुना है वह सुन ॥९६॥

मैं लकड़ियों लानेके लिए जङ्गल गया था सो उसके समीप ही जहाँ सघन वन था वहाँ एक मनोहर नगरी दिखी ॥९७॥ मैंने उस नगरीके पास एक-आभूषणोंसे विभूषित स्त्री देखी । जान पड़ता है कि मनोहर भाषण करनेवाली वह कोई देवी होगी ॥९८॥ मैंने उससे पूछा तो उसने कहा कि यह रामपुरी नामकी नगरी है, यहाँ राजा रामचन्द्र श्रावकोंके लिए बहुत भारी

ततो गत्वा मया साधोजिनेन्द्रवचनं श्रुतम् । आत्मा मे तर्पितस्तेन कुदृष्टिपरित्यागितः ॥१००॥
 मुनयो यं समाश्रित्य तप्यन्ते सुधियस्तपः । त्वुक्त्वा परिग्रहं सर्वं भुक्त्यालिङ्गनलालसाः ॥१०१॥
 सोऽहंभूमी मया लब्धस्त्रैलोक्यैकमहानिधिः । अमी यतो बहिर्भूताः क्लिश्यन्ते त्वन्यवादिनः ॥१०२॥
 यथाभूतो मुनेर्धर्मः श्रुतो धर्मेण तादृशः । ब्राह्मण्यै कथितः सर्वो मलवर्जितचेतसा ॥१०३॥
 ब्राह्मणी विनिश्चयैतं सुशर्मा वाक्यमब्रवीत् । मयापि त्वत्पसादेन लब्धो धर्मो जिनोदितः ॥१०४॥
 विधेः पश्य मया योग मोहाद् विषफलार्थिना । वीच्छेनापि त्वया लब्धमहंशामरसायनम् ॥१०५॥
 मयासीमन्दर्धीभाजा मणिहस्तगतो यथा । निजाङ्गणगतः साधुरपमानमुपाहृतः ॥१०६॥
 उपवासपरिश्रान्तश्रमणं तं निरम्बरम् । निराकृत्याज्वेलायां मार्गोऽन्यस्यैव वीक्षितः ॥१०७॥
 अहन्तं समतिक्रम्य पाकशासनवन्दितम् । उभोतिष्कन्यन्तरादीनां शिरसा प्रणतिः कृता ॥१०८॥
 अहिंसानिर्मलं सारमहंभूतं रसायनम् । अज्ञानात् समतिक्रम्य विषमं भक्षितं विषम् ॥१०९॥
 साधुपद्वीपमाद्य ल्यक्त्वा साधुपरीक्षितम् । धर्मरत्नं कृतः कष्ट विभोतकपरिग्रहः ॥११०॥
 सर्वसत्प्रवर्तेषु दिवारात्री च भोजिषु । अन्नतेषु विशीलेषु दत्तं फलविवर्जितम् ॥१११॥
 यं किलातिथिवेलायामागतं विभयोचितम् । यो नार्चयति दुर्बुद्धिस्तस्य धर्मो न विद्यते ॥११२॥
 परित्यक्तोऽस्त्वितिथिः सर्वस्वैकान्तनिस्पृहः । निकेतरहितः सोऽयमितिथिः श्रमणः स्तुतः ॥११३॥
 येषां न भोजनं हस्ते नाप्यासन्नपरिग्रहः । ते तारयन्ति निर्मन्थाः पाणिपात्रमुदाशिनः ॥११४॥

धन देते हैं ॥६६॥ तदनन्तर मैंने मुनिराजके पास जाकर जिनेन्द्र भगवान्के वचन सुने उससे मेरी आत्मा जो कि मिथ्या दर्शनसे संतप्त थी अत्यन्त सन्तुष्ट हो गई ॥१००॥ मुक्तिके आलिङ्गनकी लालसा रखनेवाले बुद्धिमान् मुनि जिस धर्मका आश्रय ले समस्त परिग्रहका त्यागकर तप करते हैं वह अहन्तका धर्म मैंने प्राप्त कर लिया । वह धर्म तीनों लोकोंकी महानिधि है, इससे बहिर्भूत जो अन्यवादी है वे व्यर्थ ही क्लेश उठाते हैं ॥१०१-१०२॥ तदनन्तर उस धर्मात्माने मुनिराजसे जैसा वास्तविक धर्म सुना था वह सब शुद्ध हृदयसे उसने ब्राह्मणीके लिए कह दिया ॥१०३॥ उसे सुन सुशर्मा ब्राह्मणी ब्राह्मणसे बोली कि मैंने भी तुम्हारे प्रसादसे जिनेन्द्र प्रतिपादित धर्म प्राप्त कर लिया है ॥१०४॥ मेरा यह भाग्यका योग तो देखो कि जो मोह वश विषफलकी इच्छा कर रहे थे तथा जिसे तद्विषयक रज्जुमात्र भी इच्छा नहीं थी ऐसे तुमने अहन्तका नामरूपी रसायन प्राप्त कर लिया ॥१०५॥ जिस प्रकार किसी मूर्खके हाथमें मणि आ जाय और वह तिरस्कार कर उसे दूर कर दे उसी प्रकार मूर्ख मूर्खके गृहाङ्गणमें साधु आये और मैंने उनका अपमान कर उन्हें दूर कर दिया ॥१०६॥ उस दिन आहारके समय उपवाससे खिन्न दिगम्बर मुनि घर आये सो उन्हें हटा कर मैंने दूसरे साधुका मार्ग देखा ॥१०७॥ जिन्हें इन्द्र भी नमस्कार करता है ऐसे अहन्तको छोड़कर मैंने ज्यौतिषी तथा व्यन्तरादिक देवोंको शिर झुका-झुकाकर नमस्कार किया ॥१०८॥ अहन्त भगवान्का धर्मरूपी रसायन अहिंसासे निर्मल तथा सारभूत है सो उसे छोड़कर मैंने अज्ञान वश विषम विषका भक्षण किया है ॥१०९॥ वड़े खेदकी बात है कि मैंने मनुष्य द्वीपको पाकर साधुओं द्वारा परीक्षित धर्मरूपी रत्न तो छोड़ दिया और उसके बदले बड़े-बड़ी अङ्गीकार किया ॥११०॥ जो इन्द्रियोंके विषयोमें प्रवृत्त है, रात दिन इच्छा-नुसार खाते हैं, व्रत रहित हैं तथा शीलसे शून्य हैं, ऐसे साधुओंके लिए मैंने जो कुछ दिया वह सब निष्फल गया ॥१११॥ जो दुर्बुद्धि मनुष्य आहारके समय आये हुए अतिथिका अपनी सामर्थ्यके अनुसार सन्मान नहीं करता है—उसे आहार आदि नहीं देता है उसके धर्म नहीं है ॥११२॥ जिसने उत्सवकी तिथिका परित्याग कर दिया है, जो सर्व प्रकारके परिग्रहसे विलङ्घल निःस्पृह है तथा घरसे रहित है ऐसा साधु ही अतिथि कहलाता है ॥११३॥ जिनके हाथमें न

स्वशरीरेऽपि निस्संगा ये क्षुभ्यन्ति न जातुचित् । ते निष्परिग्रहा ज्ञेया मुक्तिलक्षणभूयिताः ॥११५॥
 पद्मसुव्रतसदृष्टिः कुण्डलिलवर्जिता । सुशर्मा शुश्रूषे परमौ भरणीव जुघे परम् ॥११६॥
 पादमूले ततो नीत्वा गुरोस्तस्यैव सादरम् । अणुव्रतानि सामोदा ब्राह्मणी तेन लम्बिता ॥११७॥
 विज्ञाय कपिलं रक्त परमं जिनशासने । कुलान्याशोविप्रोप्राणि विप्राणां मेजिरे शमम् ॥११८॥
 मुनिसुव्रतनाथस्य सम्प्राप्य सुदृढं मतम् । बभूवुः श्रावकास्तीव्रा ऊचुरचैव सुवृद्धयः ॥११९॥
 कर्मभारगुरुभूता मानोत्तानितमस्तकाः । स्तोकेन नरकं घोरं न याता स्मः प्रमादिनः ॥१२०॥
 श्रजातमिदमप्राप्तं जन्मान्तरशतेष्वपि । जिनैन्दुशासनं ब्रह्म कृच्छ्रात् प्राप्तं सुनिर्मलम् ॥१२१॥
 ध्यानाशुशुचिणाविद्धे भगवत्किंस्माहिताः । स्वकर्मसमिधो भावसर्पिणा जुहुमोऽधुना ॥१२२॥
 इति केचित् समाधाय मनः संवेगनिर्भराः । विरक्ताः सर्वसंगेभ्यो बभूवुः श्रमणोत्तमाः ॥१२३॥
 सागारधर्मरक्तस्तु कपिलः परमक्रियः । कदाचिद् ब्राह्मणोमुचे सदभिप्रायवर्तिनाम् ॥१२४॥
 कान्ते रामपुरी किं नो ब्रजामोऽथ तमुर्जितम् । विशुद्धचेष्टितं द्रष्टुं रामं ^१राजोवलोकनम् ॥१२५॥
 आशापरायणं नित्यसुपायगतमानसम् । दारिद्र्यवारिधौ मग्गमाशूनं ^२कुक्षिपूरणे ॥१२६॥
 जनसुचारयत्येव किल भव्यानुकम्पकः । इति कीर्तिर्भ्रमत्यस्य निर्मलालाहृदिकारिणी ॥१२७॥
 उत्तिष्ठैवं गृहाणैवं प्रिये गुण्यकरण्डकम् । करोम्यहमपि स्कन्धे सुकुमारमिमं शिशुम् ॥१२८॥

भोजन है न जो अपने पास परिग्रह रखते हैं तथा जो हस्तरूपी पात्रमें भोजन करते हैं ऐसे निर्ग्रन्थ साधु ही संसार समुद्रसे पार करते हैं ॥११४॥ जो अपने शरीरमें भी निःस्पृह हैं तथा जो कभी बाह्य विषयोमें नहीं लुभाते और मुक्तिके लक्षण अर्थात् चिह्न स्वरूप दिग्गम्बर मुद्रासे विभूषित रहते हैं उन्हें निर्ग्रन्थ जानना चाहिये ॥११५॥ इस प्रकार जिसे सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ था तथा जो मिथ्या दर्शनरूपी मलसे रहित थी ऐसी सुशर्मा नामकी ब्राह्मणी पतिके साथ पुत्र प्रह्लके साथ भरणी नक्षत्रके समान सुशोभित हो रही थी ॥११६॥

तदनन्तर उस ब्राह्मणने हर्षसे ब्राह्मणीको उन्हीं गुरुके पादमूलमें ले जाकर तथा आदर सहित नमस्कार कर अणुव्रत ग्रहण कराये ॥११७॥ जो पहले आशीविष सौंपके समान अत्यन्त चप्रे थे ऐसे ब्राह्मणोंके कुल, कपिलको जिनशासनमें अनुरक्त जान कर शान्तिभावको प्राप्त हो गये ॥११८॥ उनमें जो सुवृद्धि थे वे मुनिसुव्रत भगवान्का अत्यन्त सुदृढ मत प्राप्त कर श्रावक हो गये तथा इस प्रकार बोले कि हम लोग कर्मोंके भारसे वजनदार थे, अहङ्कारसे हमारे मस्तक ऊपर उठ रहे थे और हम निरन्तर प्रमादसे युक्त रहते थे परन्तु अब जिनधर्मके प्रसादसे भयङ्कर नरकमें नहीं जावेगे ॥११९-१२०॥ इस जिनशासनको हमने सैकड़ों जन्मोंमें भी नहीं जाना, न प्राप्त किया किन्तु आज अतिशय निर्मल यह जिनशासन रूपी ब्रह्म बड़े कष्टसे प्राप्त किया है ॥१२१॥ अब हम मनरूपी होताके साथ मिलकर भाव रूपी धीके साथ अपनी कर्मरूपी समिधाओंको ध्यानरूपी वेदीयमान अग्निमें होमिगे ॥१२२॥ इस प्रकार मनको स्थिर कर संवेगसे भरे हुए कितने ही ब्राह्मण सर्वपरिग्रहसे विरक्त हो उत्तम मुनि हो गये ॥१२३॥ परन्तु कपिल श्रावकधर्ममें आसक्त रहकर ही उत्तम आचरण करता था । एक दिन वह उत्तम अभिप्राय रखनेवाली ब्राह्मणी से बोला ॥१२४॥ कि हे प्रिये ! आज हम लोग, अतिशय बलवान्, विशुद्ध चेष्टाके धारक तथा कमलके समान नेत्रोंसे युक्त उन श्रीरामके दर्शन करनेके लिए रामपुरी क्यों नहीं चले ? ॥१२५॥ वे भय जीवोपर अनुकम्पा करनेवाले हैं तथा जो निरन्तर आशामें तत्पर रहता है, जिसका मन निरन्तर धनोपार्जनके उपाय जुटानेमें ही लगा रहता है, जो दरिद्रत्वारूपी समुद्रमें मग्न है, और पेट भरना भी जिसे कठिन है ऐसे दरिद्र मनुष्यका वे उद्धार करते हैं, इस प्रकार आनन्ददायिनी उनकी निर्मल कीर्ति सर्वत्र फैल रही है ॥१२६-१२७॥ हे प्रिये ! ठठो, यह फूलोंका पिटारा तुम ले

१. याताः स्म म०, ज० । २. कमललोचनम् । ३. जन्मदरिद्रम् । इति ज० पुस्तके टिप्पणम् ।

एवमुक्त्वा तथा कृत्वा दम्पती सम्पदान्वितौ । स्वशक्त्या गन्तुमुद्युक्तौ शुद्धवेपविभूषितौ ॥१२६॥
 ब्रजतोश्च तयोरुभ्या तत्तस्थुः पद्मगाः पथि । दृष्ट्वाकरालवक्त्राश्च वेतालास्तारहासिनः ॥१२७॥
 एवमादीनि वस्तूनि भोषणान्यबलोक्य तौ । निष्कम्पहृदयौ भूत्वा स्तुतिमेतामुपागतौ ॥१२८॥
 नमस्त्रिलोकपद्मेभ्यो जिनैभ्यः सतत त्रिधा । उत्तोरणभवपङ्केभ्यो दातृभ्यः परमं शिवम् ॥१२९॥
 एतयोः स्तुवतोरेषं विदित्वा जिनभक्तिताम् । मेजिरे प्रशमं यत्नास्तौ च प्राप्ता जिनालयम् ॥१३०॥
 ततो नभो निपद्याया इत्युक्त्वा रचिताङ्गली । कृत्वा प्रदक्षिण स्तोत्रमुदचीचरतमिदम् ॥१३१॥
 विहाय लौकिकं मार्गं महादुर्गतिदुःखदम् । अवन्तं शरणं नाथ चिरेण ससुपागतः ॥१३२॥
 क्षतुर्भिर्वि शक्तिं युक्तामचरणां महात्मनाम् । उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योर्वन्दे भूतभविष्यताम् ॥१३३॥
 पञ्चस्वैरावताल्पेषु भरताल्पेषु पञ्चसु । जिनात्मामि वास्येषु तान्नामामि जिनां स्त्रिधा ॥१३४॥
 यैः संसारसमुद्रस्य कृते तरणतारणे । त्रिकालं सर्ववास्येषु तान्नामामि जिनां स्त्रिधा ॥१३५॥
 मुनिसुव्रतनाथाय तस्मै भगवते नमः । त्रैलोक्ये शासनं यस्य सुविशुद्धं प्रकाशते ॥१३६॥
 इति कृत्वा स्तुतिं जानुमस्तकस्पृष्टभूतलौ । नेमतुस्तौ जिनं भक्त्या परिहृष्टतनूहौ ॥१३७॥
 ततोऽसौ कृतकर्तव्यो रचैः सौम्यैः प्रियंवदैः । अनुज्ञातः सम पत्न्या द्रष्टुं हलिर्नमुद्ययौ ॥१३८॥
 राजमार्गेऽद्विसकाशान् प्राप्तादान् विमलस्त्रियः । ब्राह्मण्यै दर्शयन् याति दिव्यनारीसमाकुलान् ॥१३९॥

लो और मै इस सुकुमार बच्चेको कन्वे पर रख लेता हूँ ॥१२८॥ इस प्रकार कह कर तथा वैसा ही कर हर्षसे भरे दोनों दम्पती जानके लिए तत्पर हुए । अपनी शक्तिके अनुसार वे निर्मल वेषसे विभूषित थे ॥१२९॥ जब वे चले तो उनके मार्गमें उग्र सर्प विभूषित थे ॥१२९॥ जब वे चले तो उनके मार्गमें उग्र सर्प फणा तानकर खड़े हो गये तथा जिनके मुख डोंटोसे विकराल थे और जो जोर-जोरसे हँस रहे थे ऐसे वेताल मार्गमें आड़े आ गये ॥१३०॥ परन्तु इन सब भयङ्कर वस्तुओंको देखकर भी उनके हृदय निष्कम्प रहे । वे निश्चल चित्त होकर यही स्तुति पढ़ते जाते थे कि ॥१३१॥ 'जो त्रिलोक द्वारा वन्दनीय है, जो भयङ्कर संसाररूपी कर्दमसे पार हो चुके हैं तथा जो उल्लूख मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं ऐसे जिनेंद्र भगवान्को मन, वचन, कायसे सदा नमस्कार हो' ॥१३२॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए उन दोनोंकी जिन-भक्तिकी जान कर यज्ञ शान्त हो गये और वे रामपुरीके जिनालयमें पहुँच गये ॥१३३॥ तदनन्तर 'भगवान्की वसतिकाके लिए नमस्कार हो' यह कहकर दोनोंने हाथ जोड़े और प्रदक्षिणा देकर दोनों ही यह स्तुति पढ़ने लगे ॥१३४॥ हे नाथ ! महादुर्गतिके दुःख देनेवाले लौकिक मार्गको छोड़कर हम चिरकालके बाद आपकी शरणमें आये हैं ॥१३५॥ उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके वर्तमान तथा भूत-भविष्यत् सम्बन्धी तीर्थङ्गरोकी चौबीसीको हम नमस्कार करते हैं । पोंच भरत और पोंच ऐरावत क्षेत्रोंमें जो तीर्थङ्कर हैं, हो चुके हैं अथवा होंगे उन सबको हम मन, वचन, कायसे नमस्कार करते हैं ॥१३६-१३७॥ जो संसार समुद्रसे स्वयं पार हुए हैं तथा जिन्होंने दूसरोंको पार किया है ऐसे समस्त क्षेत्रों सम्बन्धी तीर्थङ्गरोको हम त्रिकाल नमस्कार करते हैं ॥१३८॥ उन मुनिसुव्रत भगवान्को नमस्कार हो जिनका निर्मल शासन तीनों लोकोंमें प्रकाशमान हो रहा है ॥१३९॥ इस प्रकार स्तुति कर घुटनों और मस्तकसे पृथिवीतलका स्पर्श करते हुए उन्होंने जिनेंद्र भगवान्की नमस्कार किया । उस समय भक्तिके कारण उन दोनोंके शरीरमें रोमाञ्च उठ रहे थे ॥१४०॥

तदनन्तर वन्दनाका कार्य पूर्ण कर चुकनेके बाद शान्त तथा मधुरभाषी रत्नकोने जिसे आज्ञा दे दी थी ऐसा कपिल ब्राह्मण अपनी स्त्रीके साथ रामके दर्शन करनेके लिए चला ॥१४१॥ वह, राजमार्गमें पर्वतोंके समान ऊँचे, निर्मल कान्तिके धारक, तथा दिव्य स्त्रियोंसे भरे जो

ऊचे च कुन्दसंकाशैः सर्वकामगुणान्वितैः । राजते भवनैर्यस्य पुरीयं स्वर्गसन्निभम् ॥१३३॥
 तत्पतैर्द्वयं भद्रे प्रान्तप्रासादवेष्टितम् । अभिरामस्य रामस्य पुत्र्या मध्ये विराजते ॥१३४॥
 भुवज्जित महाहृष्टः स विवेश च तद्गृहम् । दृष्ट्वा च लक्ष्मणं दूराद्भूशमाकुलतां गतः ॥१३५॥
 दृष्ट्वा सञ्जातकम्पश्च सोऽयमिन्द्रावरप्रभः । न्यथितो दुर्विदग्धोऽहं चित्रैर्यन तदाद्यैः ॥१३६॥
 कर्णयोरतिदुःखानि भाषितानि महाखले । तानि कृत्वा तदा पापे जिह्वे निस्सर साम्प्रतम् ॥१३७॥
 किं करोमि वव गच्छामि विवरं प्रविशामि किम् । अस्मिन् शरणहीनस्य भवेच्छरणमद्य कः ॥१३८॥
 अवस्थितोऽयमत्रेति यदि मे विदितो भवेत् । समुल्लङ्घ्योत्तरामाशां देशत्यागः कृतो भवेत् ॥१३९॥
 एवमुद्देशमापन्नो विहाय ब्राह्मणीं द्विजः । प्रपलायितुमुद्युक्तो लक्ष्मणेन विलोकितः ॥१४०॥
 त्सित्वा च स जगादायं कुतो विप्रः समागतः । वनसंवर्धितामेव किमित्याकुलतामिदम् ॥१४१॥
 समाश्वासमिमं नीत्वा नुतमानय तं द्विजम् । पर्यामस्तावदेतस्य चेष्टित किमयं वदेत् ॥१४२॥
 न भेतव्यं न भेतव्यं निवर्तस्वेति चोदितः । अधिगम्य समारवासं निवृत्तः स्वलितक्रमः ॥१४३॥
 उपसृत्य भयं त्यक्त्वा प्रसृतो धवलाम्बरः । पुष्पाञ्जलिस्तयोरग्रे स्थित्वा स्वस्तीत्यशब्दयत् ॥१४४॥
 ततो लब्धासनासीनो निकटस्थाङ्गनो द्विजः । ऋग्भिः स्तवनद्वन्द्वान्भिरस्तीपोद् रामलक्ष्मणौ ॥१४५॥
 ततः पद्मो जगादैवं तां न कृत्वा विमानताम् । वद साम्प्रतमागत्य कस्मात् पूजयसि द्विजः ॥१४६॥
 - सोऽब्रवीज मया ज्ञातं त्वं प्रच्छन्नमहेस्वरः । मोहाद्विसानितस्तेन भस्मच्छन्न इवानिलः ॥१४७॥

महल मिलते थे उन्हें अपनी स्त्रीके लिए दिखाता जाता था ॥१४३॥ उसने स्त्रीसे कहा कि हे भद्रे ! कुन्दके समान उज्ज्वल तथा सर्व मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले गुणोंसे सहित, भवनोसे जिनकी यह स्वर्ग तुल्य नगरी सुशोभित हो रही है उन मनोहर रामका यह भवन समीपवर्ती अन्य महलोसे घिरा कैसा सुन्दर जान पड़ता है ? ॥१४३-१४४॥ इस प्रकार कहते हुए उस अतिशय हर्षित ब्राह्मणने रामके भवनमें प्रवेश किया । वहाँ वह दूर से ही लक्ष्मणको देखकर अत्यन्त आकुलताको प्राप्त हुआ ॥१४५॥ उसके शरीरमें कंपकंपी झूटने लगी । वह विचार करने लगा कि नील कमलके समान प्रभावाला यह वही पुरुष है जिसने उस उसय मुक्त मूल्यको नाना प्रकार के वधसे दुखी किया था ॥१४६॥ उसकी बोलती बन्द हो गई । वह मन ही मन अपनी जिह्वासे कहने लगा हे महादुष्टे ! हे पापे ! उस समय तो तूने कानोंके लिए अत्यन्त दुःखदायी वचन कहे अब चुप क्यों है ? बाहर निकल ॥१४७॥ वह मन ही मन विचार करने लगा कि क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किस विलमें घुस जाऊँ ? आज मुक्त शरणहीनका यहाँ कौन शरण होगा ? ॥१४८॥ यदि मुझे मालूम होता कि यह यहाँ ठहरा है तो मैं उत्तर दिशाको लौंघकर देशत्याग ही कर देता ॥१४९॥ इस प्रकार उद्देशको प्राप्त हुआ वह ब्राह्मण, ब्राह्मणीको छोड़ भागनेके लिए तैयार हुआ ही था कि लक्ष्मणने उसे देख लिया ॥१५०॥ हँसकर लक्ष्मणने कहा कि यह ब्राह्मण कहाँसे आया है ? जान पड़ता है कि इसका पोषण वनमें ही हुआ है, यह इस तरह आकुलताको क्यों प्राप्त हुआ है ? ॥१५१॥ सान्त्वना देकर उस ब्राह्मणकी शीघ्र ही छाओ हम इसकी चेष्टाको देखेंगे तथा सुनेंगे कि यह क्या कहता है ? ॥१५२॥ 'नहीं डरना चाहिये, नही डरना चाहिये, लौटो', इस प्रकार कहने पर वह सान्त्वनाको प्राप्त कर लड़खड़ाते पैरों वापिस लौटा ॥१५३॥

तदनन्तर रवेत वृक्षको धारण करनेवाला वह ब्राह्मण पास जाकर निर्भय हो राम लक्ष्मणके सम्मुख गया तथा अञ्जलिमें पुष्प रखकर उनके सामने खड़ा हो 'स्वस्ति' शब्दका उच्चारण करने लगा ॥१५४॥ तदनन्तर जो प्राप्त हुए आसनपर बैठा था और पास ही जिसकी स्त्री वैठी थी ऐसा वह ब्राह्मण स्तवन करनेमें समर्थ ऋचाओंके द्वारा रामलक्ष्मणकी स्तुति करने लगा ॥१५५॥ स्तुतिके बाद रामने कहा कि हे ब्राह्मण ! उस समय हमलोगोंका वैसा तिरस्कार कर अब इस समय आकर पूजा क्यों कर रहे हो सो तो बताओ ॥१५६॥ ब्राह्मणने कहा हे देव !

स्त्रितरेषा जगन्नाथ लोके स्थावरजङ्गमे । धनवान् पूज्यते नित्यं यथादित्यो हिमागमे ॥१५८॥
 अधुना त्वं मया ज्ञातः सोऽसि नान्यः कदाचन । द्रविणानीह पूज्यन्ते न भवान् पद्म पूज्यते ॥१५९॥
 नित्यमर्थयुतं देव मानयन्ति जना जनम् । त्यजन्यर्थपरित्यक्तं निष्पयोजनसौहृदम् ॥१६०॥
 यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः । यस्यार्थाः स पुमोऽहोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥१६१॥
 अर्थेन विप्रहीनस्य न मित्रं न सहोदरः । तस्यैवार्थसमेतस्य परोऽपि स्वजनायते ॥१६२॥
 सार्थो धर्मेण यो युक्तो सो धर्मो यो दयान्वितः । सा दया निर्मला ज्ञेया मांसं यस्यां न भुज्यते ॥१६३॥
 मांसाशनाश्लिष्टाणां सर्वेषां प्राणधारिणाम् । अन्या मूलेन सम्पन्ना प्रशस्यन्ते निवृत्तयः ॥१६४॥
 राजन् विचित्ररूपोऽयं लोको मानुषलक्षितः । मादृशो ज्ञायते नैव यथाभूतोऽग्नौ यो जनः ॥१६५॥
 आस्तां तावज्जवानत्र बन्धते ये भवद्विधैः । पराभवं विमूढेभ्यो लभन्ते तेऽपि साधवः ॥१६६॥
 पूर्वं सनत्कुमाराख्यः किं ते ज्ञातो न चक्रवृत् । महर्षयः सुरा यस्य रूपं द्रष्टुमिहागताः ॥१६७॥
 सोऽपि श्रामण्यभासाद्य सम्प्राप्तः परिभूतताम् । पर्यटन्न क्वचिच्छेमे भिक्षामाचारकोविदः ॥१६८॥
 वनस्पत्युपजीविन्या तर्पितः सोऽन्यदा मुनिः । पञ्चाश्वर्यगुणैश्चर्यमाददे विजये पुरे ॥१६९॥
 सुभूमश्चक्रवृत् भूत्वा करं कटकभास्वरम् । केयूरभूषितभुजो वदरार्थमवदीक्यत् ॥१७०॥
 वदरं नैकमप्यस्मै निःस्त्रोऽतावदाक्षतः । अनमिन्नो विशेषस्य विशेषं कमवाप्तवान् ॥१७१॥

मैंने नहीं जाना था कि आप प्रच्छन्न महेश्वर हो इसीलिए भस्मसे आच्छादित अग्निके समान मोहवश मुझसे आपका अनादर हो गया ॥१५७॥ हे जगन्नाथ ! चराचर विश्वकी यही रीति है कि शीत ऋतुमें सूर्यके समान धनवानकी ही सदा पूजा होती है ॥१५८॥ यद्यपि इस समय मैं जानता हूँ कि आप वही है अन्य नहीं फिर भी आपकी पूजा हो रही है सो हे पद्म ! यहाँ यथार्थमें धनकी ही पूजा हो रही है आपकी नहीं ॥१५९॥ हे देव ! लोग निरन्तर धनवान् मनुष्यका ही सन्मान करते हैं और जिसके साथ मित्रताका प्रयोजन जाता रहा है ऐसे धनहीन मनुष्यको छोड़ देते हैं ॥१६०॥ जिसके पास धन है उसके मित्र हैं, जिसके पास धन है उसके बान्धव हैं, जिसके पास धन है लोकमें वह पुरुष है और जिसके पास धन है वह पण्डित है ॥१६१॥ जब मनुष्य धनरहित हो जाता है तब उसका न कोई मित्र रहता है न भाई ! पर वही मनुष्य जन-धनसहित हो जाता है तो अन्य लोग भी उसके आत्मीय बन जाते हैं ॥१६२॥ धन वही है जो धर्मसे सहित है, धर्म वही है जो दयासे सहित है और निर्मल दया वही है जिसमें मांस नहीं खाया जाता ॥१६३॥ मांस भोजनसे दूर रहनेवाले समस्त प्राणियोंके अन्य त्याग चूँकि मूलसे सहित रहते हैं इसलिए ही उनकी प्रशंसा होती है ॥१६४॥ हे राजन् ! यह मनुष्य लोक विचित्र है इसमें मेरे जैसे लोगोंको तो कोई जानता ही नहीं है ॥१६५॥ अथवा आपकी बात जाने दीजिये आप जैसे लोग जिनकी वन्दना करते हैं वे साधु भी मूर्ख पुरुषोंसे पराभव प्राप्त करते हैं ॥१६६॥ क्या आप नहीं जानते कि पहले एक ऐसे सनत्कुमार चक्रवर्ती हो गये हैं जिनका रूप देखनेके लिए बड़ी-बड़ी ऋद्धियोंको धारण करनेवाले देव आये थे परन्तु वे भी मुनिपद धारणकर पराभवकी प्राप्त हुए । आचार-शास्त्रके जाननेमें निपुण वे मुनिराज भ्रमण करते रहे परन्तु उन्हें कहीं भिक्षा नहीं मिली ॥१६७-१६८॥ फिर अन्य समय विजयपुर नगरमें वनस्पतिसे आजीविका करनेवाली एक स्त्रीने आहार देकर उन्हें सन्तुष्ट किया और पञ्चाश्वर्यरूपी गुणोंका ऐश्वर्य प्राप्त किया ॥१६९॥ जिनकी भुजा वाज्रवन्दसे विभूषित थी ऐसे सुभूमने चक्रवर्ती होकर अपना वलयविभूषित हाथ वेरके लिए बढ़ाया परन्तु यह दृष्टि है यह समझकर उनके लिए किसीने एक वेर भी नहीं दिया सो ठीक ही है क्योंकि विशेषको नहीं

अथमन्यश्च विवशो जनैः स्वकृतभोगिभिः । न योऽवगम्यते यत्र न स तत्र जनोऽर्च्यते ॥१७२॥
 न कृता मन्दभागो न कस्मादभ्यागतक्रिया । तदा मयेति मेधापि तप्यते मानसं मृगम् ॥१७३॥
 रूपमेवमलं कान्तं युष्माकमवलोकयन् । मृशं क्रुद्धोऽपि को नाम न ययावतिविस्मयम् ॥१७४॥
 एवमुक्त्वा शुचा अस्तं रुदन्तं कपिलं गिरा । शुभयासान्वयद् रामः सुशर्माणं च जानकी ॥१७५॥
 ततो हेमवटामोभिः किङ्करी राघवाज्ञया । कपिलः श्रावकं प्रीत्या स्नापितः सह भार्यया ॥१७६॥
 परमं भोजितश्रावणं वल्लै रत्नैश्च भूषितः । सुसुरिघनमादाय जगाम निजमालयम् ॥१७७॥
 जनानां विस्मयकरं सर्वोपकरणान्वितम् । भोगं यद्यपि यातोऽप्य तथापि सुविचक्षणः ॥१७८॥
 सन्मानविशिखैर्विन्दो दृष्टो गुणमहोरगैः । उपचारहतात्मासौ धृति न लभते द्विजः ॥१७९॥
 दृष्ट्वा चाहं पुरा यत्र स्कन्धन्यस्तैन्धमारकः । यथा शोषितदेहः स तृपितोऽप्यन्तदुर्विधः ॥१८०॥
 ग्रामे तत्रैव जातोऽस्मि पश्य यस्याधिपोषमः । रामदेवप्रसादेन चिन्तादुःखविवर्जितः ॥१८१॥
 आसीन्मे शीर्णपतितमनेकच्छिद्रजर्जरम् । काकाद्यष्टुचिस्लिप्तं गृहं गोमयवर्जितम् ॥१८२॥
 भञ्जना धेनुमिर्न्यातं बहुप्रासादसङ्कुलम् । रामदेवप्रसादेन प्राकारपरिमण्डलम् ॥१८३॥
 हा मया पुण्डरीकाक्षी श्रावरी गृहमागतौ । निर्भस्मितौ विना दोषं तौ मृगाङ्गनिभानतौ ॥१८४॥

जाननेवाला मनुष्य किसी विशेषको कब प्राप्त हुआ है ? ॥१७०-१७१॥ यह अथवा और कोई-
 सभी लोग, स्वकृत कर्मको भोगनेवाले मनुष्योंसे विवश हैं । जिस मनुष्यका जहाँ ज्ञान नहीं
 वहाँ उसकी अर्चा नहीं होती ॥१७२॥ मरु मन्दभाग्यने उस समय आपकी आतिथ्य-क्रिया क्यों
 नहीं की ? यह विचारकर आज भी मेरा मन अत्यन्त सन्तापको प्राप्त है ॥१७३॥ आपके
 अतिराय सुन्दर रूपको देखनेवाला मनुष्य ही अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त नहीं होता किन्तु आपके
 प्रति अत्यन्त क्रोध प्रकट करनेवाला पुरुष भी ऐसा कौन है जो अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त नहीं
 हुआ हो ॥१७४॥ इस प्रकार कहकर वह कपिल ब्राह्मण शोकाक्रान्त हो रोने लगा, तब रामने
 शुभ वचनोंसे उसे सान्त्वना दी और सीताने उसकी स्त्री सुशर्माको समझाया ॥१७५॥

तदनन्तर रामकी आज्ञासे किंकरोने भार्या सहित कपिल श्रावकको सुवर्ण घटोमें रखके
 हुए जलसे प्रीतिपूर्वक स्नान कराया ॥१७६॥ उत्कृष्ट भोजन कराया और वस्त्र तथा रत्नोंसे उसे
 अलंकृत किया । तदनन्तर वह बहुत भारी घन लेकर अपने घर वापिस गया ॥१७७॥ यद्यपि
 वह बुद्धिमान ब्राह्मण, लोगोंकी आश्चर्यमें डालनेवाले तथा सर्व प्रकारके उपकरणोंसे युक्त भोगो-
 पभोगके पदार्थोंको प्राप्त हुआ था, तो भी चूँकि वह सम्मानरूपी वाणोसे विद्ध था, गुणरूपी
 महासर्पोंसे डसा गया था और सेवा-शुश्रूषाके कारण उसकी आत्मा दब रही थी, इसलिए वह
 सन्तोष को प्राप्त नहीं होता था । भावार्थ—रामने तिरस्कारके बदले उसका सत्कार किया था,
 अपने अनेक गुणोंसे उसे वशीभूत किया था और स्नान, भोजन, पान आदि सेवा-शुश्रूषासे उसे
 सुखी किया था इसलिए वह रात-दिन इसी शोकमें पड़ा रहता था कि देखो कहीं तो मैं दुष्ट कि
 जिसने इन्हें एक रात घर भी नहीं ठहरने दिया और कहीं ये महापुरुष जिन्होंने इस प्रकार
 हमारा उपकार किया ? ॥१७८-१७९॥ वह विचार करने लगा कि मैं पहले जिस गाँवमें इतना
 अधिक दरिद्र था कि कन्वेपर लकड़ियोंका गट्टा रखकर भूखा-प्यासा दुर्बल शरीर इधर-उधर
 भटकता था आज उसी गाँव में मैं रामके प्रसादसे यक्षराजके समान हो गया हूँ तथा सब चिन्ता
 और दुःखोंसे छूट गया हूँ ॥१८०-१८१॥ पहले मेरा जो घर जीर्ण-शीर्ण होकर गिर गया था,
 अनेक छिद्रोंसे जर्जर था, काक आदि पक्षियोंकी अशुचिसे लिप्त था तथा जिसमें कभी गोबर
 भी नहीं लगता था, वही घर आज श्री-रामके प्रसादसे अनेक गायोंसे व्याप्त है, नाना महलोंसे
 संकीर्ण तथा प्राकार-कोटसे घिरा हुआ है ॥१८२-१८३॥ हाय, वड़े खेदकी बात है कि मैंने

यद्ग्रीष्मात्पतसद्वाही समं देव्या विनिर्गतौ । तन्मे प्रतिष्ठितं शस्त्रं हृदये प्रचलत् सदा ॥१८५॥
 तावन्मे नास्ति दुःखस्य छेदो यावदिदं गृहम् । परित्यज्य निरारम्भः प्रव्रजिष्याम्यसंशयम् ॥१८६॥
 उपलभ्यास्य वैराग्यं बन्धुवर्गः ससम्भ्रमः । धाराभिरुत्ससर्ज्वां दीनः साकं सुशर्मणा ॥१८७॥
 निरीच्य स्वजनं विप्रो निर्मग्नं शोकसागरे । अपेक्षापेतया बुद्ध्या निजंगाद् शिवोत्सुकः ॥१८८॥
 विचित्रस्वजनस्नेहैरत्युत्तुङ्गमनोरथैः । मूढोऽयं दहते लोकः किं न जानीय सो जनाः ॥१८९॥
 इति संवेगमापन्नः प्रियां दुःखेन मूर्च्छिताम् । विहाय बन्धुलोकं च बहुविकलवकारिणम् ॥१९०॥
 अष्टादश सहस्राणि धेनूनां सिततेजसाम् । रत्नपूर्णं च भवनं दासीयोपित्समाकुलम् ॥१९१॥
 सुशर्मायां समारोप्य तनयं द्रविणं तथा । बभूव कपिलः साधुनिरारम्भो निरम्बरः ॥१९२॥
 सद्धानन्दमतेः शिष्यः सुप्रतीतस्तपोधनः । चकार गुरुतां तस्य गुणशीलमहार्णवः ॥१९३॥

वियोगिनोवृत्तम्

विजहार महातपास्ततः कपिलश्चाकुरिब्रवीद्वधः^२ ।

परमार्थनिविष्टमानसः श्रमणधीपरिवीतविग्रहः ॥१९४॥

य इदं कपिलानुकीर्तनं पठति प्रहसतिः शृणोति वा ।

उपवाससहस्रसम्भवं लभतेऽसौ रविभासुरः फलम् ॥१९५॥

इत्यार्षे रविप्रेषाचार्यश्रोके पञ्चचरिते कपिलोपाख्यानं नाम पञ्चत्रिंशत्तमं पर्व ॥३५॥

कमलके समान नेत्रोंके धारक तथा चन्द्रतुल्य मुखसे सुशोभित, घर आये हुए उन दोनों भाइयों का अपराधके बिना ही तिरस्कार किया ॥१८४॥ ग्रीष्म ऋतुके आतापसे जिनके शरीर सन्तप्त हो रहे थे ऐसे दोनों भाई देवी अर्थात् सीताके साथ घरसे बाहर निकले, वह मेरे हृदयमें सदा शल्यकी तरह गड़ा हुआ चञ्चल हो उठता है ॥१८५॥ निःसन्देह मेरे दुःखका अन्त तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि मैं घर छोड़कर निरारम्भ हो दीक्षा नहीं ले लेता हूँ ॥१८६॥

तदनन्तर कपिलके वैराग्यका समाचार जानकर इसके षवड़ाये हुए दीन-हीन भाई बन्धु, सुशर्मा ब्राह्मणोंके साथ अश्रुधारा बहाने लगे ॥१८७॥ मोक्ष प्राप्त करनेमें उत्सुक कपिल, अपने परिजनकी शोकरूपी सागरमें निमग्न देख निरपेक्ष बुद्धिसे बोला कि हे मानवो ! बड़े-बड़े मनोरथोंसे युक्त कुटुम्बी जनोंके विचित्र स्नेहसे मोहित हुआ यह प्राणी निरन्तर जलता रहता है, यह क्या तुम नहीं जानते ? ॥१८८-१८९॥ इस प्रकार संवेगको प्राप्त हुआ कपिल ब्राह्मण दुःखसे मूर्च्छित स्त्री तथा बहुत दुःखका अनुभव करनेवाले बन्धुजनोंको छोड़कर, अठारह हजार सफेद गायें, रत्नोंसे परिपूर्ण तथा दास-दासियोंसे युक्त भवन, पुत्र और समस्त धन सुशर्मा ब्राह्मणोंके लिए सौंपकर आरम्भ रहित दिगम्बर साधु हो गया ॥१९०-१९१॥ सद्धानन्द मतिके शिष्य तथा गुण और शीलके महासागर अतिशय तपस्वी मुनि, उसके गुरु हुए थे अर्थात् उनके पास उसने दीक्षा ली थी ॥१९२॥ तदनन्तर जो निर्मल चारित्ररूपी काँवरको धारण करते थे, जिनका मन सदा परमार्थमें लगा रहता था, और जिनका शरीर निर्ग्रन्थ व्रत रूपी लक्ष्मीसे आलिङ्गित था ऐसे महातपस्वी कपिल मुनिराज पृथिवी पर विहार करने लगे ॥१९४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य अहंकार रहित हो कपिलकी इस कथाको पढ़ता अथवा सुनता है वह सूर्यके समान देदीप्यमान होता हुआ एक हजार उपवासका फल प्राप्त करता है ॥१९५॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध रविप्रेषाचार्य कथित पञ्चचरितमें कपिलका वर्णन करनेवाला पैतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३५॥

षट्त्रिंशत्तमं पर्व

ततोऽनुक्रमतः 'काले विकालप्रतिमे गते । घोरान्धकारसंकुदे विद्युच्चकितभीषणे ॥१॥
जातायां सुपसन्नायां शरदि प्रीतिनिर्भरः । ऊचे यक्षाधिपः पद्मं प्रस्थातुं कृतमानसम् ॥२॥
क्षन्तव्यं देव यत्किञ्चिदस्माकमिति दुष्कृतम् । निधातुं शक्यते केन योग्यं सर्वं भवादृशम् ॥३॥
इत्युक्ते रामदेवोऽपि तमूचे युद्धकाधिपम् । त्वयापि निखिला स्वस्य क्षन्तव्या परतन्त्रता ॥४॥
सुतरां तेन वाक्येन जातः सत्तमभावनः । यक्षाणामधिपो नत्वा सम्भाष्य विपुलक्रियम् ॥५॥
हारं स्वयंप्रभामिख्यं ददौ पद्माय सोऽद्भुतम् । उद्यद्दिनकराकारे 'हरये मणिकुण्डले ॥६॥
चूडामणिं सुकल्याणं सीतायै विलसत्प्रभम् । महाविनोददृष्टां च वीणार्माप्सितनादिनीम् ॥७॥
स्वेच्छया तेषु यातेषु यक्षराजः पुरीकृताम् । भार्यां समहरत्किञ्चिद्धानः शोकितामिव ॥८॥
बलदेवोऽपि कर्तव्यकरणाच्च ससम्मदः । अमन्यत परिप्राप्तमुदार शिविमात्मनः ॥९॥
पर्यटन्तो मही स्वैरं नानारसफलाशिनः । विचित्रसङ्ख्यासक्तः रममाणः सुरा इव ॥१०॥
उल्लङ्घ्य सुमहारण्यं द्विपसिंहसमाकुलम् । जवोपभुक्तमुद्देशं वैजयन्तपुरं गताः ॥११॥
ततोऽस्तमागते सूर्ये दिक्चक्रे तमसाहते । नक्षत्रमण्डलाकीर्णं सङ्गाते गगनाङ्गणे ॥१२॥
अपरोक्षदिग्भागे क्षुद्रलोकमयावहे । यथामिरुचिते देशे ते पुरो निकटे स्थिताः ॥१३॥
अथान्न नगरे राजा प्रसिद्धः पृथिवीधरः । इन्द्राणी महिषी तस्य योपिदुग्गुणसमन्विता ॥१४॥

तदनन्तर बोर अन्धकारसे व्याप्त और विजलीकी चमकसे भीषण वर्षा काल, दुष्कालके समान जब क्रम-क्रमसे व्यतीत हो गया तथा स्वच्छ शरद् ऋतु आ गई तब रामने वहाँसे प्रस्थान करनेका विचार किया उसी समय यक्षोंका अधिपति आकर रामसे कहता है कि हे देव ! हमारी जो कुछ झुटि रह गई हो वह क्षमा कीजिये क्योंकि आप जैसे महानुभावोंके योग्य समस्त कार्य करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥१-३॥ यक्षाधिपतिके ऐसा कहने पर रामने भी उससे कहा कि आप भी अपनी समस्त परतन्त्रताको क्षमा कीजिये अर्थात् आपको इतने समय तक मेरी इच्छानुसार जो प्रवृत्ति करनी पड़ी है उसके लिए क्षमा कीजिये ॥४॥ रामके इस वचनसे यक्षाधिप अत्यन्त प्रसन्न हुआ । उसने बहुत काल तक वार्तालाप कर नमस्कार किया, रामके लिए स्वयंप्रभ नामका अद्भुत हार दिया । लक्ष्मणके लिए उगते सूर्यके समान देदीप्यमान दो मणिमय कुण्डल दिये, और सीताके लिए महामाङ्गलिक देदीप्यमान चूडामणि तथा महाविनोद करनेमें समर्थ एवं इच्छानुसार शब्द करनेवाली वीणा दी ॥५-७॥ तदनन्तर जब वे इच्छानुसार वहाँसे चले गये तब यक्षराजने कुछ शोकयुक्त हो अपनी नगरी सम्बन्धी माया समेट ली ॥८॥ इधर राम भी कर्तव्य कार्य करनेसे हर्षित हो ऐसा मान रहे थे कि मानो मुझे उत्कृष्ट मोक्ष ही प्राप्त हो गया है ॥९॥

अथानन्तर स्वेच्छानुसार पृथिवीमें विहार करते, नाना रसके स्वादिष्ट फल खाते, विचित्र कथाएँ करते और देवोंके समान रमण करते हुए वे तीनों, हाथी और सिंहोंसे व्याप्त महावनको पारकर मनुष्योंके द्वारा सेवित वैजयन्तपुरके समीपवर्ती मैदानमें पहुँचे ॥१०-११॥ तदनन्तर जब सूर्य अस्त हो गया, दिशाओंका समूह अन्धकारसे आवृत हो गया और आकाशरूपी अँगन नक्षत्रोंके समूहसे व्याप्त हो गया तब वे बुद्ध मनुष्योंको भय उत्पन्न करनेवाले पक्षिमोक्षर दिग्भागमें नगरके समीप ही किसी इच्छित स्थानमें उठर गये ॥१२-१३॥ अथानन्तर इस

तनया वनमालेति तयोरत्यन्तसुन्दरी । बात्यात् प्रमृति सा रक्ता लक्ष्मणस्य गुणश्रुतेः ॥१५॥
 श्रुत्वानरण्यपुत्रस्य प्रव्रज्यासमये वचः । रक्षितुं क्वापि निर्यातं रामं लक्ष्मणसंयुतम् ॥१६॥
 ध्यात्वेन्द्रनगरेण्यस्य बालमित्राय सूनवे । सुन्दरायातियोग्याय पितृभ्यां सा निरूपिता ॥१७॥
 तं च विज्ञाय वृत्तान्तं हृदयस्थितलक्ष्मणा । विरहान्नयमापन्ना चिन्तामेवमुपायता ॥१८॥
 अंशुक्रेन वरं कण्ठं विवेष्टयासज्य पादपे । मृत्युं प्राप्तास्मि नान्येन पुरुषेण समागमम् ॥१९॥
 विधिच्छलेन केनापि गत्वारण्यं दिनत्रये । भ्रुवमद्यैव यास्यामि मृत्युं विघ्नविवर्जितम् ॥२०॥
 प्रयाहि भगवन् भानो संप्रेषय निशां द्रुतम् । कृताञ्जलिरियं वीना पादयोः प्रपतामि ते ॥२१॥
 शर्वरी भण्यतां यात्वा कांचन्ती दुःखभागिनी । संवत्सरसमं वेति दिनं द्वागम्यतामिति ॥२२॥
 इति सञ्चित्य सा बाला गतेऽस्तं तिग्मतैजसि । सोपवाता समास्ताव पितृभ्यामनुमोदनम् ॥२३॥
 प्रवरं रथमारुह्य सखीजनसमावृता । जगाम परया लक्ष्म्या वनदेवी किलांचितुम् ॥२४॥
 यस्यां राज्ञी वनोद्देशे यत्र ते प्रथमं स्थिताः । तस्यामेव तमेवैषा गता दैवनियोगतः ॥२५॥
 अरण्यदेवतापूजा तस्मिन् किल विनिर्मिता । सुसज्ज सकलो लोको निराशङ्कः कृतक्रियः ॥२६॥
 निरशङ्कदृष्टनिक्षेपातिता वनसुगीव सा । निष्क्रम्य शिविरात् तस्मात् प्रतस्थे भयवर्जिता ॥२७॥
 ततस्तस्याः समाग्राथ गन्ध परमसौरभम् । एवं स्रुजुः सुमित्राया दृष्ट्वा सम्मदसुहृद्वत् ॥२८॥
 ज्योतीरैरेव कान्येषा मूर्तिरन्नोपलभ्यते । कुमार्या श्रेष्ठया भाग्यमनया कुलजातया ॥२९॥

नगरका राजा पृथिवीधर नामसे प्रसिद्ध था उसकी रानीका नाम इन्द्राणी था जो कि खियोंके योग्य समस्त गुणोंसे सहित थी ॥१४॥ उन दोनोंके वनमाला नामकी अत्यन्त सुन्दरी पुत्री थी । वनमाला वाल्य अवस्थासे ही लक्ष्मणके गुण श्रवण कर उनमें अनुरक्त थी ॥१५॥ इसके माता पिताने सुना कि राम अपने पिता दशरथके दीक्षा लेनेके समय कथित वचनोका पालन करनेके लिए लक्ष्मणके साथ कहीं चले गये हैं तब उन्होंने इन्द्र नगरके राजाके बालमित्र नामक अत्यन्त योग्य सुन्दर पुत्रके लिए वनमाला देनेका निश्चय किया ॥१६-१७॥ जिसके हृदयमें लक्ष्मण विद्यमान थे ऐसी वनमालाने जब यह समाचार सुना तो वह विरहसे भयभीत हो इस प्रकार चिन्ता करने लगी ॥१८॥ कि बन्धसे कण्ठ लपेट वृक्षपर लटक कर भले ही मर जाऊँगी परन्तु अन्य पुरुषके साथ समागमको प्राप्त नहीं होऊँगी ॥१९॥ मैं किसी कार्यके वहाने सायंकालके समय वनमें जाकर आज ही निर्विघ्न रूपसे मृत्यु प्राप्त करूँगी ॥२०॥ हे भगवन् सूर्य ! आप जाओ और रात्रिको जल्दी भेजो । मैं अतिशय दीन हो हाथ जोड़कर आपके चरणोंसे पड़ती हूँ । जाकर रात्रिसे कहो कि तुम्हारी आकांक्षा करती हुई यह दुःखिनी दिनको वर्षके समान समझती है इसलिए जल्दी जाओ ॥२१-२२॥ इस प्रकार विचार कर उपवास धारण करनेवाली वह बाला, सूर्यास्त होनेपर माता पितृका आज्ञा प्राप्तकर उत्तम रथपर सवार हो सखी जनोके साथ वैभव पूर्वक वनदेवीकी पूजा करनेके लिए गई ॥२३-२४॥

भाग्यकी बात कि जिस रात्रिमें तथा वनके जिस प्रदेशमें राम सीता और लक्ष्मण पहलेसे जाकर ठहरे थे उसी रात्रिमें उसी स्थान पर वनमाला भी आ पहुँची ॥२५॥ वहाँ उसने वन देवताकी पूजा की । तदनन्तर जब सब लोग अपना-अपना कार्य पूरा कर निःशङ्क हो सो गये तब जिसके पैर रखनेका भी शब्द नहीं हो रहा था ऐसी वनमाला वनकी मृगीकी नाई उस शिविरसे निकल निर्भय हो आगे चली ॥२६-२७॥ तत्पश्चात् वनमालाके शरीरसे निकलनेवाली अत्यन्त मनोहर सुगन्धको सूँघकर हर्षित हो लक्ष्मण इस प्रकार विचार करने लगे ॥२८॥ कि 'यहाँ कोई ज्योतिकी रेखाके समान मूर्ति दिखाई पड़ती है, हो सकता है कि वह कोई उच्च

महता शोकभारेण परिपीडितमानसा । अपश्यन्ती परं दुःखवारणोपायमुन्मनाः ॥३०॥
 अजातशत्रुता नूनमेवास्मान् जिघांसति । पश्यामि तावदेतस्याश्चेष्टामन्तर्हितो भवन् ॥३१॥
 इति सञ्चिन्त्य निरशब्दो भूत्वा वटतरोरवः । तस्यै कल्पद्रुमस्येव त्रिदशः कौतुकान्वितः ॥३२॥
 तमेव पादपं सापि प्राप्ता हंसवधूगतिः । नतेव स्तनभारेण चन्द्रवक्त्रा तनुद्वरो ॥३३॥
 लक्ष्मणस्तां तथाभूतां दृष्ट्वाचिन्त्यदुक्तिभिः । वेधि तावदिमां सम्यक् कुतः कृत्यं भविष्यति ॥३४॥
 अंशुकैनाभ्युवर्णेन कृत्वा पाशं तु कन्यका । जगादैवं गिरा योगिमनोहरणयोग्यया ॥३५॥
 पतत्तस्मिन्निवासिन्धः शृणुताहो सुदेवताः । भवतीम्यो नमाम्येषा प्रसादः क्रियतां भवि ॥३६॥
 वाच्यो मद्रुचमादेवं भवन्तांभिः प्रयत्नतः । कुमारो लक्ष्मणो दृष्ट्वा वनेऽस्मिन् विचरन् भुवम् ॥३७॥
 यथा त्वद्विरहे बाला वनमाला सुदुःखिता । त्वयि मानसमारोप्य प्रेतलोकमुपागता ॥३८॥
 अंशुकैना समालम्ब्य त्वं सा न्यग्रोधपादपे । त्वन्निमित्तमसूत्रं तन्वां त्यजन्त्यस्मागिरिहिता ॥३९॥
 एवमुक्तं त्वया नाथ यदि मे वात्र जन्मणि । समागमः कृतोज्ज्वल प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥४०॥
 एव निगद्य शाब्दायै समर्पयति पाशकम् । सम्प्राप्ततश्च समालिङ्ग्य सौमित्रिदिमप्रवीत् ॥४१॥
 अयि मुग्धे सुकण्ठेऽस्मिन् मञ्जुजालिङ्गनोचिते । कस्मादंशुकपाशोऽयं त्वया सुमुखि सज्जयते ॥४२॥
 अहं स लक्ष्मणो मुञ्च पाशं परमसुन्दरि । यथाश्रुतं निरीक्षस्व न चेष्टत्येव चालिके ॥४३॥
 इत्युक्त्वा पाशमेतस्याः करात् सात्त्विकोविदः । जहार लक्ष्मणः केनपुञ्जं तामरसादिव ॥४४॥

कुलीन श्रेष्ठ कुमारी हो ॥२६॥ बहुत भारी शोकके भारसे इसका मन पीड़ित हो रहा है और दुःख दूर करनेका दूसरा उपाय नहीं देखती हुई यह बेचैन हो रही है ॥३०॥ निश्चित ही यह मनचाही वस्तुके न मिलनेसे आत्मघात करना चाहती है अतः छिपकर इसकी चेष्टा देखता हूँ ॥३१॥ इस प्रकार विचार कर कौतुक भरे लक्ष्मण चुपचाप वटवृक्षके नीचे उस प्रकार खड़े हो गये जिस प्रकार कि कल्प वृक्षके नीचे कोई देव खड़ा होता है ॥३२॥ तदनन्तर जिसकी चाल हंसीके समान थी, जो स्तनोंके भारसे झुकी हुई सी जान पड़ती थी, जिसका मुख चन्द्रमाके समान था तथा जिसका उदर अत्यन्त कृश था ऐसी वनमाला भी उसी वृक्षके नीचे पहुँची ॥३३॥ उसे उस प्रकारकी देख लक्ष्मणने विचार किया कि इसके शब्दोंसे ठीक-ठीक मालूम तो कल्ले कि इसे किससे कार्य है ? ॥३४॥ तदनन्तर जलके समान स्वच्छ वर्णवाले वस्त्रसे फाँसी बनाकर वह कन्या योगियोका भी मन हरण करनेमें समर्थ वाणीसे इस प्रकार कहने लगी कि अहो इस वृक्षके निवासी देवताओ ! सुनिये, मैं आपके लिए नमस्कार करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥३५-३६॥ कुमार लक्ष्मण इस वनमें अवश्य ही विचरण करते होंगे सो उन्हें प्रयत्न पूर्वक देखकर आप लोग मेरी ओरसे उनसे कहें ॥३७॥ कि तुम्हारे विरहमें कुमारी वनमाला अत्यन्त दुखी होकर तथा तुम्हींमें मन लगाकर मृत्यु लोकको प्राप्त हुई है ॥३८॥ वट-वृक्षपर कपड़ेसे अपने आपको टाँगकर तुम्हारे निमित्त प्राण छोड़ती हुई उस कृशाङ्गीको हमने देखा है ॥३९॥ और यह कह गई है कि हे नाथ ! यद्यपि मेरे इस जन्ममें आपने समागम नहीं किया है तो अन्य जन्ममें प्रसन्नता करनेके योग्य हो ॥४०॥

इतना कह कर वह ज्यों ही शाखा पर फाँसी बाँधती है त्योंही धवड़ाये हुए लक्ष्मणने उसका आलिङ्गन कर यह कहा कि हे मूर्ख ! यह कण्ठ तो मेरी भुजाके आलिङ्गन के योग्य है, हे सुमुखि ! तू इसमें यह वस्त्र की फाँसी क्यों सजा रही है ? ॥४१-४२॥ मैं वही लक्ष्मण हूँ, हे परम सुन्दरि ! यह फाँसी छोड़ो, हे बालिके ! यदि तुम्हें विश्वास न हो तो जैसा सुन रक्खा हो वैसा देख लो ॥४३॥ इस प्रकार कह कर सान्त्वना देनेमें निपुण लक्ष्मणने जिस प्रकार कोई

ततोऽसी त्रपया युक्ता दृष्ट्वा मन्थरचक्षुषा । लक्ष्मणं नेत्रचौरेण रूपेण परिलक्षितम् ॥४५॥
 परं विस्मयमापन्ना चिन्तामेवमुपागता । ईषद्वेपथुना युक्ता नवसङ्गमजन्मना ॥४६॥
 किमयं वनदेवीभिः प्रसादो जनितो मम । कारुण्यमुपयाताभिः सन्देशवचनैः परम् ॥४७॥
 सोऽयं यथाश्रुतो नाथः सम्प्राप्तो दैवयोगतः । मवेचेन मम प्राणाः प्रयान्तो विनिवारिताः ॥४८॥
 इति सखिन्त्ययन्ती सा किञ्चित्प्राप्तेवधारिणी । लक्ष्मीधरसमाश्लेषे लब्ध्वात्यन्तमराजत ॥४९॥
 ततो मृदुमहामोदकुसुमोदारसंस्तरे । प्रबुद्धो राघवश्चल्लक्ष्मणार्थमुदीरयन् ॥५०॥
 अपश्यंश्च समुत्थाय पप्रच्छ जनकाल्मजाम् । प्रदेशे लक्ष्मणो देवि नैतस्मिन् दृश्यते कुतः ॥५१॥
 प्रदोषे संस्तरं कृत्वा सोऽस्माकं पुष्पपल्लवैः । आसीदनतितूरस्थः कुमारो ह्यत्र नेच्यते ॥५२॥
 नाथ बाह्यायतो तावदिति तस्यां कृतध्वनौ । क्रमादत्युच्चया वाचा वचो व्याहृतवानिति ॥५३॥
 पृष्ट्वागच्छंश्च यातोऽसि भद्र लक्ष्मण लक्ष्मण । प्रयच्छ वचनं ताव चरितं बालकानुज ॥५४॥
 भयमायामि देवेति दत्वात्मै संभ्रमौ वचः । वनमालासमेतोऽस्तौ ज्येष्ठस्यान्तिकमागतः ॥५५॥
 अर्थरात्रे तदा स्पष्टे निशानाथः समुच्यौ । ववौ कुमुदगर्भासैर्वायुः सामोदशीतलः ॥५६॥
 ततः पल्लवकान्ताभ्यां हस्ताभ्यां रचिताङ्गलिः । अंशुकावृतसर्वाङ्गा त्रपाविनमितानना ॥५७॥
 ज्ञातनिरशेषकर्तव्या विभ्राणा विनयं परम् । बालाबन्दत रामस्य सीतायाश्च क्रमद्वयम् ॥५८॥
 सङ्घितीयं ततो दृष्ट्वा सीता लक्ष्मणमब्रवीत् । कुमार सह चन्द्रेण समवायस्त्वया कुतः ॥५९॥
 कथं जानासि देवीति पद्मेनोक्ता जगाद् सा । चेष्टया देव जानामि शृणु तुव्यप्रबुधत्तया ॥६०॥

कमलसे फेनको दूर करता है उसी प्रकार उसके हाथ से फोसी छीन ली ॥४४॥ तदनन्तर नेत्रोंको चुरानेवाले रूपसे सुशोभित लक्ष्मणको मन्थर दृष्टिसे देख कर वह कन्या लज्जासे युक्त हो गई ॥४५॥ नवसमागमके कारण कुछ-कुछ कौपती हुई वनमाला परम आश्चर्यको प्राप्त हो इस प्रकार विचार करने लगी ॥४६॥ कि क्या मेरे सन्देश वचनोसे परम दयालुताको प्राप्त हुई वनदेवियोंने ही मुझ पर यह प्रसन्नता की है ? ॥४७॥ जिन्होंने मेरे निकलते हुए प्राण रोके हैं ऐसे ये प्राणनाथ दैवयोगसे ही यहाँ आ पहुँचे हैं ॥४८॥ इस प्रकार विचार करती और कुछ-कुछ पसीनाको धारण करती हुई वनमाला लक्ष्मणका आलिङ्गन पाकर अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥४९॥

तदनन्तर इधर क्रोमल तथा महासुगन्धित फूलोंको उत्कृष्ट शय्या पर पड़े रामकी जब निद्रा हटी तो उन्होंने लक्ष्मणकी ओर दृष्टि डाली । लक्ष्मणको न देखकर वे उठे और सीतासे पूछने लगे कि देवि ! यहाँ लक्ष्मण क्यों नहीं दिखाई देता ? ॥५०-५१॥ सायंकालके समय तो वह फूल तथा पत्तोंसे हमारी शय्याकर यहाँ पासमें सोया था पर अब यहाँ दिखाई नहीं दे रहा है ॥५२॥ सीताने उत्तर दिया कि हे नाथ ! आवाज देकर बुलाइए । तब रामने यथाक्रमसे उच्च-वाणीमें इस प्रकार शब्द कहे कि हे लक्ष्मण ! तू कहीं चला गया, आओ-आओ, हे तात ! हे बालक ! हे अनुज ! कहीं हो, आवाज देओ ॥५३-५४॥ रामकी आवाज सुन लक्ष्मणने हड़बड़ा कर उत्तर दिया कि देव ! यह आता हूँ । इस प्रकार उत्तर देकर वे वनमालाके साथ अप्रजके समीप आ पहुँचे ॥५५॥ उस समय स्पष्ट ही आधी रात थी, चन्द्रमाका उदय हो चुका था और कुमुदोंके गर्भसे मिलकर सुगन्धित तथा शीतल वायु वह रही थी ॥५६॥ तदनन्तर जिसने कमलके समान सुन्दर हाथोंसे अङ्गलि बाँध रखी थी, वस्त्रसे जिसका सर्व शरीर आवृत था, लज्जासे जिसका मुख नम्रीभूत हो रहा था, जो समस्त कर्तव्यको जानती थी तथा परम विनयको धारण कर रही थी ऐसी वनमालाने आकर राम तथा सीताके चरणयुगलको नमस्कार किया ॥५७-५८॥ तदनन्तर लक्ष्मणको स्त्री सहित देख सीताने कहा कि हे कुमार ! तुमने तो चन्द्रमाके साथ मित्रता कर ली ॥५९॥ रामने सीतासे कहा कि हे देवि ! तुम किस प्रकार जानती हो ?

ज्योत्स्नया सहितश्चन्द्रो यस्मिन् काले समागतः । लक्ष्मीधरोऽपि तत्रैव सहितो बालियानया ॥६१॥
यथा ज्ञापयसि स्पष्टमेवमेतदिति श्रुत्वा । लक्ष्मीधरोऽन्तिके तस्थौ हि या किञ्चित्तानन ॥६२॥
उत्कुलनेत्राजीवाः प्रमोदार्पितचेतसः । प्रसन्नवक्त्रतारेशाः सुशीला विस्मयान्विताः ॥६३॥
कथाभिः स्मितयुक्ताभिः याताभिः स्थानयुक्ताम् । ते तत्र त्रिदशच्छाया वर्धनद्राः सुखं स्थिताः ॥६४॥
सत्पुत्र्योऽत्र वनमालायाः समये बोधमांगताः । शयनीयं तथा शून्यं दृश्यस्वस्तमानसाः ॥६५॥
ततोऽभ्युपगतेनाणां गवेपण्याकुलाभवात् । तासां हाकारशब्देन प्रबोधं भेजिरे भटाः ॥६६॥
उपलभ्य च वृत्तान्तं सन्नह्यारुढसप्तयः । शूराः पदात्तयश्चान्ये कुन्तकामुक्तापाणयः ॥६७॥
दिशः सर्वाः समास्तीर्य दधामुद्भ्रान्तमानसाः । भीतिभीतिसमायुक्ताः समीरस्येव शावकाः ॥६८॥
ततः कैरपि ते दृष्टाः समेता वनमालया । निवेदिताश्च शेषस्य जनस्य जववाहनैः ॥६९॥
ज्ञातनिरशेषवृत्तान्तैस्तैरल सम्मदान्वितैः । पृथिवीधरराजस्य कृतं दिष्टशामिवर्धनम् ॥७०॥
उपायारम्भमुक्तस्य रुचाद्य नगरं प्रभो । जगाम प्रकटीभावं महारत्ननिधिः स्वयम् ॥७१॥
पपात वनसो वृष्टिर्विना मेघसमुद्भवात् । परिकर्मविनिर्मुक्तं सत्त्वं क्षेत्रात् समुद्गतम् ॥७२॥
जामाता लक्ष्मणोऽयं ते वर्तते निकटे पुरः । जीवितं हातुमिच्छन्त्या सन्नतो वनमालया ॥७३॥
पश्यश्च सीतया साकं परमो भवतः प्रियः । शच्येव सहितो देवेन्द्रोऽयमत्र विगजते ॥७४॥
वदतामिति श्रुत्यानां वचनैः प्रियशंसिभिः । सुखनिर्भरचेतस्को मुमूर्खं नृपतिः क्षणम् ॥७५॥

इसके उत्तरमे सीताने कहा कि हे देव ! मैं समान प्रवृत्त चेष्टासे जानती हूँ सुनिये ॥६०॥ जिस समय चन्द्रमा चन्द्रिका अर्थात् चँदनीके साथ आया उसी समय लक्ष्मण भी इस बालाके साथ आया है इससे स्पष्ट है कि इसकी चन्द्रमाके साथ मित्रता है ॥६१॥ जैसा आप समझ रही हैं बात स्पष्ट ही ऐसी है इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मण लज्जासे कुछ नतानन हो पास ही मे बैठ गये ॥६२॥ इस तरह जिनके नेत्रकमल विकसित थे, जो आनन्दसे विभोर थे, जिनके मुख रूपी चन्द्रमा अत्यन्त प्रसन्न थे, जो सुशील थे, आश्चर्यसे सहित थे, देवोंके समान कान्तिके धारक थे तथा जिनकी निद्रा नष्ट हो गई थी ऐसे वे सब, स्थानकी अनुकूलताको प्राप्त मन्दहास्य युक्त कथाएँ करते हुए वहाँ सुखसे विराजमान थे ॥६३-६४॥ यहाँ समयपर जब वनमालाकी सखियों जागीं तो शय्याको सूनी देख भयभीत हो गई ॥६५॥ तदनन्तर जिनके नेत्र ओंखोंसे व्याप्त थे तथा जो वनमालाकी खोजके लिए छटपटा रहीं थी ऐसी उन सखियोंकी हाहाकारसे थोड़ा जाग उठे ॥६६॥ तथा सब समाचार जानकर तैयार हो कुछ तो थोड़ोपर आरुढ़ हुए और कुछ भाले तथा धनुष हाथमे ले पैदल ही चलनेके लिए तैयार हुए ॥६७॥ इस प्रकार जिनके चित्त धवड़ा रहे थे, जो भय और प्रीतिसे युक्त थे तथा जो शीघ्र गतिमे वायुके बच्चोंके समान जान पड़ते थे ऐसे थोड़ा समस्त दिशाओंको आच्छादित कर दौड़े ॥६८॥

तदनन्तर कितने ही थोड़ाओने वनमालाके साथ बैठे हुए उन सबको देखा और देख कर शीघ्रगामी बाहनोंसे चलकर शेषजनोंके लिए इसकी खबर दी ॥६९॥ तदनन्तर समस्त समाचारको ठीक-ठीक जानकर जो अत्यधिक हर्षित हो रहे थे ऐसे कुछ थोड़ाओने पृथिवीधर राजाके लिए भाग्य वृद्धिकी सूचना दी ॥७०॥ उन्होंने कहा कि हे प्रभो ! उपायारम्भसे रहित होनेपर भी आज आपके नगरमे स्वयं ही महारत्नोका खजाना प्रकट हुआ है ॥७१॥ आज आकाशसे बिना मेघके ही वर्षा पड़ी है तथा जोतना बखेरना आदि क्रियाओंके बिना ही खेतसे धान्य उत्पन्न हुआ है ॥७२॥ आपका जामाता लक्ष्मण नगरने निकट ही वर्तमान है तथा प्राण छोड़नेकी इच्छा करनेवाली वनमालाके साथ उसका मिलाप हो गया है ॥७३॥ सीता सहित राम भी जो कि आपको अत्यन्त प्रिय हैं इन्द्राणी सहित इन्दुके समान यहीं सुरोभित हो रहे हैं ॥७४॥ इस प्रकार कहनेवाले भृत्योंके प्रिय सूचक वचनोंसे जिसके हृदयमे सुखका

ततः प्रबुद्धचित्तेन परं प्रमदमीयुषा । दत्तं बहुवनं तेभ्यः समित्युनलमुत्तेन्दुना ॥७६॥
 अचिन्तयच्च ह्रीं साधु सज्जातं दुहितुर्मम । अनिश्चितरतिः प्राप्नो यद्य सुमनोरथः ॥७७॥
 सर्वेषामेव जीवानां धनमिष्टसमागमः । जायते पुण्ययोगेन यच्चात्मसुखकारणम् ॥७८॥
 योजनानां शतेनापि परिच्छिन्ने श्रुतान्तरे । इष्टो मुहूर्तमात्रेण लभ्यते पुण्यभागिभिः ॥७९॥
 ये पुण्येन विनिर्मुक्ताः प्राणिनो दुःखभागिनः । तेषां हस्तमपि प्राप्तमिष्टवस्तु पलायते ॥८०॥
 अरण्यानां गिरेर्मूर्ध्नि विपमे पथि सागरे । जायन्ते पुण्ययुक्तानां प्राणिनामिष्टसङ्गमाः ॥८१॥
 इति सन्नित्य जाग्राथै तं वृत्तान्तमशेषतः । उत्थाप्याकथयचोपादचरैः कृच्छ्रनिर्गतैः ॥८२॥
 पुनः पुनरपृच्छत् सा सुमुखी स्वप्नशङ्कया । सज्जातनिश्चयादाप स्वसवेद्यां सुखासिकाम् ॥८३॥
 ततो रामाथरक्षायै समुद्यतिं दिवाकरे । प्रेमसम्पूरितो राजा सर्वबान्धवसङ्गतः ॥८४॥
 वरवारणमाह्वय्य धृत्या परमया युतः । प्रतस्थे परमं द्रष्टुमुत्सुकः प्रियसङ्गमम् ॥८५॥
 माता च वनमालायाः पुत्रैरेष्टाभिरन्विता । आरुह्य शिविकां रम्यां प्रियस्य पदवीं श्रिता ॥८६॥
 अनन्तरं नृपादेशात् कशिपुः प्रचुरं हितम् । गन्धमालया दिवाशेषमनीयत मनोहरम् ॥८७॥
 ततो दूरात् समालोक्य संकुल्लेच्छणपङ्कजम् । अवतीर्य गजाद् राजा दुर्द्वैके राममादरी ॥८८॥
 परिप्रेष्य महामातीना सहितं लक्ष्मणेन तम् । अपृच्छत् कुशलं कृष्टिर्जानकीं च सुमानसः ॥८९॥

भरना फूट पड़ा था ऐसा राजा पृथिवीपर हर्षातिरेकसे क्षण भरके लिए मूर्छित हो गया ॥७५॥ तदनन्तर सचेत होनेपर जो परम हर्षको प्राप्त था तथा जिसका मुख रूपी चन्द्रमा मन्द मुस्कानसे धवल हो रहा था ऐसे राजाने उन भृत्योंके लिए बहुत भारी धन दिया ॥७६॥ वह विचार करने लगा कि अहो, मेरी पुत्रीका बड़ा भाग्य है कि जिससे उसका यह अनिश्चित मनोरथ स्वयं ही पूर्ण हो गया ॥७७॥ समस्त जीवोंको धन, इष्टका समागम तथा जो भी आत्मसुखका कारण है वह सब पुण्य योगसे प्राप्त होता है ॥७८॥ जिसके बीचमें सौ योजनाका भी अन्तर प्रसिद्ध है वह इष्ट वस्तु पुण्यात्मा जीवोंको मुहूर्तमात्रमें प्राप्त हो जाती है ॥७९॥ इसके विपरीत जो प्राणी पुण्यसे रहित हैं वे निरन्तर दुखी रहते हैं तथा उनके हाथमें आई हुई भी इष्ट वस्तु दूर हो जाती है ॥८०॥ अटवियोंमें बीचमें, पहाड़की चोटीपर बिषम मार्ग तथा समुद्र के मध्यमें भी पुण्यशाली मनुष्योंको इष्ट समागम प्राप्त होते रहते हैं ॥८१॥ इस प्रकार विचारकर उसने स्त्रीको उठाया और उसके लिए हर्षातिरेकके कारण कष्टसे निकलनेवाले बचनोंके द्वारा सब समाचार कहा ॥८२॥ उस सुमुखीने 'कहीं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ' इस आशङ्कासे बार-बार पूछा और उत्पन्न हुए निश्चय से वह स्वसंवेद्य सुखको प्राप्त हुई ॥८३॥

तदनन्तर जब स्त्रीके ओठके समान लाल-लाल कान्तिको धारण करनेवाला सूर्य उदित हो रहा था । तब प्रेमसे भरा, सर्व बन्धुजनोंसे सहित, परम कान्तितसे युक्त और परम प्रिय समागम देखनेके लिए उत्सुक राजा पृथिवीधर उत्तम हाथीपर सवार हो चला ॥८४-८५॥ आठो पुत्रोंसे सहित वनमालाकी माता भी मनोहर पालकीपर सवार हो पतिके मार्गमें चली ॥८६॥ इसके पीछे राजाकी आज्ञानुसार सेवकोंके द्वारा अत्यधिक हितकारी वस्त्र तथा गन्ध माला आदि समस्त मनोहर पदार्थ ले जाये जा रहे थे ॥८७॥

तदनन्तर दूरसे ही विकसित नेत्रकमलोंके धारी रामको देखकर राजा पृथिवीधर हाथी से उतरकर आदरके साथ उनके पास पहुँचा ॥८८॥ तत्पश्चात् विधि विधानके वेत्ता तथा शोभा हृदयके धारक राजाने बड़े प्रेमसे राम लक्ष्मणका आलिङ्गनकर उनसे तथा सीतासे कुशल समा-

तद्देव्यपि तयोः पृष्ठा क्षेमं सुस्निग्धलोचना । निखिलाचारनिष्णाता जानकीं परिष्वजे ॥६०॥
 उपचारा यथायोग्य तयोस्तैरपि निर्मितः । आचार्यक हिते^१ याता वस्तुन्यत्र प्रतिष्ठितम् ॥६१॥
 वीणावेणुसदृशादिसहितो गीतनिःस्वनः । क्षुब्धार्णवसमो जज्ञे वन्दिवृन्दानुनादितः ॥६२॥
 उत्सवः स महाज्ञातः पूजिताखिलसङ्गतः । नृत्यलोकक्रमन्यासादतिकम्पितमृतलः ॥६३॥
 दिशस्तूर्णनिनादेन प्रतिशब्दसमन्विताः । चक्रुः परस्परालापमिव सम्मदनिर्भराः^४ ॥६४॥
 शनैः प्रसन्नतां याते तस्मिन्नथ महोत्सवे । शरीरकर्म तैः सर्वं कृतं स्नानाशनादिकम् ॥६५॥
 ततः ससिद्धिपारुढसामन्तशतवेष्टितौ । सारङ्गोपमपादातमहाचक्रपरिच्छदौ ॥६६॥
 पुरःप्रवृत्तसोत्साहराजस्थपृथिवीधरौ । विदग्धसूतलोकेन कृतमङ्गलनिस्वनौ ॥६७॥
 हारराजितवचस्कावन्घांशुकधारिणौ । हरिचन्दनदिग्धाङ्गावारुढौ रथमुत्तमम् ॥६८॥
 नानारत्नांशुसम्पर्कसमुद्भूतेन्द्रकामुङ्कौ । शशाङ्कभास्कराकारावशक्यगुणवर्णनौ ॥६९॥
 सौधमैशानदेवाभौ जानकासहितौ पुरम् । कुर्वाणौ विस्मयं तुङ्गं प्रविष्टौ रामलक्ष्मणौ ॥१००॥
 वरमालाधरौ गन्धध्वजपट्पदमण्डलौ । सम्पूर्णचन्द्रवदनौ विनीताकारधारिणौ ॥१०१॥
 यत्नेषेव कृते तस्मिन्लामे पुष्टमेदने । रैमाते परमं भोगं सुज्ज्ञानौ निजयेच्छ्या ॥१०२॥

चार पूछा ॥६८॥ जिसके नेत्रोंसे स्नेह टपक रहा था तथा जो सब प्रकारका आचार जाननेमें निपुण थी ऐसी रानीने भी राम-लक्ष्मणसे कुशल पूछकर सीताका आलिङ्गन किया ॥६०॥ उन सजने भी राजा रानीका यथायोग्य सत्कार किया सो ठीक ही है क्योंकि वे इस विषयमें अति-शय निपुणताको प्राप्त थे ॥६१॥ तदनन्तर जो वीणा बोंसुरी मृदङ्ग आदिके शब्दसे सहित था, जो क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रकी तुलना धारण कर रहा था और जिसमें बन्दीजनोंके द्वारा उच्चारित विरदाबलीका नाद गूँज रहा था ऐसा सङ्गीतका शब्द होने लगा ॥६२॥ जिसमें आये हुए समस्त इष्टजनोंका सत्कार हो रहा था, तथा नृत्य करनेवाले मनुष्योंके चरण निक्षेपसे जिसमें भूतल काँप रहा था ऐसा वह महान् उत्सव सम्पन्न हुआ ॥६३॥ तुरहीके शब्दसे जिनमें प्रतिध्वनि गूँज रही थी ऐसी दिशाएँ हर्षसे ओत-प्रोत हो मानो परस्पर वार्तालाप ही कर रही थी ॥६४॥ अथानन्तर धीरे-धीरे जब वह महोत्सव शान्त हुआ तब उन्होंने स्नान भोजन आदि शरीर सम्बन्धी सब कार्य किये ॥६५॥

तदनन्तर जो हाथी घोड़ों पर बैठे हुए सैकड़ों सामन्तोंसे घिरे थे, मृगतुल्य पैदल सिपाहियोंका बड़ा दल जिनके साथ था, उत्साहसे भरा राजा पृथिवीधर जिनके आगे-आगे चल रहा था, चतुर वन्दीजन जिनके आगे मङ्गल ध्वनि कर रहे थे, जिनके वक्त्रस्थल हारोंसे सुशोभित थे, जो अमूल्य वस्त्र धारण किये हुए थे, जिनके शरीर हरिचन्दनसे लिप्त थे, जो उत्तम रथ पर सवार थे, जिनके नाना रत्नोंकी किरणोंके सम्पर्कसे इन्द्रधनुष उठ रहे थे, चन्द्र और सूर्यके समान जिनके आकार थे, जिनके गुणोंका वर्णन करना अशक्य था, सौधर्म तथा ऐशानेन्द्रके समान जिनकी कान्ति थी, जो अत्यधिक आश्चर्य उत्पन्न कर रहे थे, जिनके गलेमें वरमालाएँ पहनी थीं, सुगन्धिके कारण जिनके आस-पास भ्रमरोंने मण्डल बाँध रखे थे, जिनके मुख चन्द्रमाके समान थे तथा जो विनीत आकारको धारण कर रहे थे ऐसे राम-लक्ष्मणने नगरमें प्रवेश किया ॥६६-१०१॥ जिस प्रकार पहले, यत्नेके द्वारा निर्मित नगरमें इच्छानुसार भोग भोगते हुए वे रमण करते थे उसी प्रकार राजा पृथिवीधरके नगरमें भी वे इच्छानुसार उत्कृष्ट

१. तद्देव्यापि म० । २. हितो याता ज० । ३. नृत्यलोक म० । ४. सम्मदनिर्भराः म० ।

पुष्पिताग्रावृत्तम्

इति वनगाहनान्यपि प्रयाताः सुकृतसुसंस्कृतचेतसो मनुष्याः ।

अतिपरमगुणानुपाश्रयन्ते रविरुचयः सहसा पदार्थलाभान् ॥१०३॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यग्रीके पद्म-पुराणे-पद्मायने वनमालामिधानं नाम

पट्विशतमं पर्व ॥३६॥



भोग भोगते हुए रमण करने लगे ॥१०२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिनके चित्त पुण्यसे सुसंस्कृत हैं तथा जो सूर्यके समान दीप्तिके धारक हैं ऐसे मनुष्य सधन वनोंमें पहुँचकर भी सहसा उत्कृष्ट गुणोंसे युक्त पदार्थोंको प्राप्त कर लेते हैं ॥१०३॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मचरितमें वनमालाका वर्णन करनेवाला छत्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३६॥

सप्तत्रिंशत्तमं पर्व

अन्यदाय सुखासीनं समुदरिततत्कथम् । राघवाल्हकुतास्थानं राजानं पृथिवीधरम् ॥१॥
 दूराध्वपरिखिन्नाहो लेखवाहः समाययौ । प्रणम्य च समासीनो द्रुतं लेखं समर्पयत् ॥२॥
 गृहीत्वासौ ततो राज्ञा बाह्यनामकलङ्कितः । लेखकायापितः साधुं सन्निविग्रहवेदिने ॥३॥
 स विमुच्यानुवाच्यैनं चायितो राजचक्षुषा । लिपिबुद्बुर्विधौ चारुतिल्यवाचयदुच्चगीः ॥४॥
 स्वस्तिस्वस्तिरलकोदारप्रभावमतिकर्मणे । श्रीमते नतराजानामतिवीर्याय शर्मणे ॥५॥
 श्रीनन्दावर्तनगराक्षगराज ईवोत्थितः । ख्यातः पञ्चमहाशब्दः शङ्खशास्त्रविशारदः ॥६॥
 राजाधिराजतास्त्रिष्टः प्रतापवशिताहितः । अनुरञ्जितसर्वधमः समुद्यद्भास्करद्युतिः ॥७॥
 अतिवीर्यः समस्तेषु कर्तव्येषु महानयः । राजमानगुणः श्रीमानतिवीर्यः क्षितीश्वरः ॥८॥
 आज्ञापयति नगरे विजये पृथिवीधरम् । अक्षरैर्लेखसंक्रान्तैः कुशलप्रदपूर्वकम् ॥९॥
 यथा मे केचिदेतस्मिन् सामन्ता धरणीतले । सकोपनाहनास्ते मे वर्तन्ते पार्वर्तितिनः ॥१०॥
 आयाम्बुहुविषा म्लेच्छाश्रतुरङ्गसमन्विताः । नानाशास्त्रकरा वाक्यमर्चन्ति समभूतयः ॥११॥
 वराञ्जनगणभाभानां करिणामष्टभिः शनैः । समीरशायतुल्यानां सहस्रैर्वीजिनां त्रिभिः ॥१२॥
 महाभोगो महातेजा मद्गुणाकृष्टमानसः । राजा विजयशार्दूलः सोऽद्य प्राप्नो ममान्तिकम् ॥१३॥

अथानन्तर एक दिन राजा पृथ्वीधर सभामण्डपमें सुखसे विराजमान थे, पास ही मे राम भी सभाको अलङ्कृत कर रहे थे तथा उन्हींसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा चल रही थी कि इतनेमे दूर मार्गसे आनेके कारण जिसका शरीर खिन्न हो रहा था ऐसा एक पत्रवाहक आया और राजाको प्रणाम कर बैठनेके बाद उसने शीघ्र ही एक पत्र समर्पित किया ॥१-२॥ वह पत्र जिसे दिया जाता था उसके नामसे अङ्कित था । राजाने पत्रवाहकसे पत्र लेकर सन्निविग्रहको अच्छी तरह जाननेवाले लेखक (मुन्शी) के लिए सौंप दिया ॥३॥ वह लेखक सब लिपियोंके जाननेमें निपुण था, राजाके नेत्र द्वारा सम्मान प्राप्त कर उसने वह पत्र खोला । एक बार स्वयं वोंचा और फिर छब्ब स्वरसे इस प्रकार वोंच कर सुनाया ॥४॥ उसमे लिखा था कि जो इन्द्रके समान उदार प्रभावका धारक तथा बुद्धिमान् है लक्ष्मीमान् है, तथा नम्राभूत राजाओंके लिए सुख देनेवाला है ऐसा राजा अतिवीर्य स्वस्तिरूप है मङ्गलरूप है ॥५॥ जो नगराज अर्थात् सुमेरुके समान (उदार) है, प्रसिद्ध है, महायशका धारी है, शस्त्रमे निपुण है, राजाधिराजपनासे आलिङ्गित है, जिसने अपने प्रतापसे शत्रुओंको वश कर लिया है, जिसने समस्त पृथिवीको अनुरञ्जित कर लिया है, उगते हुए सूर्यके समान जिसकी कान्ति है, जो अतिशय पराक्रमी है, समस्त कार्यमें महानीतिज्ञ है, और जिससे अनेक गुण शोभायमान हो रहे हैं ऐसा श्रीमान् अतिवीर्य राजा नन्दावर्तपुरसे विजयनगरमे वर्तमान राजा पृथिवीधरको लेखमें लिखित अक्षरोसे कुशल समाचार पूछता हुआ आज्ञा देता है कि इस पृथिवी तल पर मेरे जो सामन्त हैं वे खजाना और सेनाके साथ मेरे पास हैं ॥६-१०॥ जिनके हाथमें नाना प्रकारके शस्त्र देवीप्यमान हैं तथा जो एक सदृश विभूतिके धारक हैं ऐसे म्लेच्छ राजा अपनी-अपनी चतुरङ्ग सेनाके साथ यहाँ आ गये हैं ॥११॥ जो महाभोगी और महाप्रतापी है तथा जिसका मन हमारे गुणोंसे आकर्षित है ऐसा राजा विजयशार्दूल भी अंजनगिरिके समान आभावाले आठ

१ समर्पयत् म० । २. बाह्यनामाकलङ्कितः म० । ३. साधुः सन्नि म० । ४. चापितो म०, ल० । ५. इव स्थितः ल० ।

मृगध्वजो रणोर्मिश्र कलभः केसरी तथा । अङ्गा महीभृतः पद्मिरमी करदिनां शतैः ॥१३॥
 प्रत्येकं पञ्चभिः ससिंहस्यैश्च समावृताः । प्राप्ताः कृतमहोत्साहा नयपण्डितबुद्धयः ॥१४॥
 उत्साहयन् छलोद्वृत्तं नयशास्त्रविशारदम् । पञ्चालाधिपमात्मार्थकारिणं ज्ञातकारणम् ॥१५॥
 द्विरदानां सहस्रेण तैर्ययूनां च ससमिः । पौण्ड्रश्चापतिरालीनः प्रतापं परमं वहन् ॥१६॥
 साधनेन तदग्रेण सम्प्राप्तो मगधाधिपः । पर्याप्तो नृपैर्वाहो रैवो नदशतैरिव ॥१७॥
 सहस्रैरागतोऽष्टाभिर्दन्तिना जलद्विषाम् । अश्वीयेन सुकेशश्च दुर्लभान्तेन वज्रधक् ॥१८॥
 सुभद्रो मुनिभद्रश्च साधुभद्रश्च नन्दनः । तुल्या वज्रधरस्यैते सम्प्राप्ता यवनाधिपाः ॥१९॥
 अवार्यवीर्यसंप्राप्तः सिंहवीर्यो महीपतिः । वङ्गः सिंहस्थश्चेतौ मातुलौ बलशालिनौ ॥२०॥
 पदातिभो रयैर्नागैः स्थूरीप्रष्टैः प्रतिष्ठितैः । वत्सस्वामी समागतातो मारिदत्तोतिभूरिमिः ॥२१॥
 आंवडः ओछिलो राजा सौवीरो धीरमन्दिरः । प्राप्तौ हुर्वेदसंख्येन साधनेनान्विताविमौ ॥२२॥
 एतेऽन्ये च महासत्त्वा राजानः श्रुतशासनाः । अक्षौहिणोभिरावाता दशभिस्त्रिदशोपमाः ॥२३॥
 अर्माभिरनुयातोऽहं प्रस्थितो भरतं प्रति । त्वामुदीक्षे यतो लेखदृश्यानन्तरं ततः ॥२४॥
 आगन्तव्यं त्वया प्रीत्या कार्योपेक्षितया तथा । पर्याप्तोऽप्यादरेण त्वां यथा वर्षं कृपीवलाः ॥२५॥
 एवं च वाचिते लेखे न यावत्पृथिवीधरः । किञ्चिदूचे सुमित्रायाः सूनुस्तावदभाषत ॥२६॥

सौ हाथियों और बाणुके पुत्रके समान चपल तीन हजार घोड़ोंके साथ आज हमारे पास आ गया है ॥१२-१३॥ बहुत भारी उत्साहके देनेवाले तथा नीति निपुण बुद्धिके धारक जो मृगध्वज, रणोर्मि, कलभ, और केसरी नामके अङ्ग देशके राजा हैं वे भी प्रत्येक छह सौ हाथियों तथा पाँच हजार घोड़ोंसे समावृत हो आ पहुँचे हैं ॥१४-१५॥ जो छलपूर्ण युद्ध करनेमें निपुण है, नीति शास्त्रका पारगामी है, प्रयोजन सिद्ध करनेवाला है तथा युद्धकी सब गतिविधियोंका जानकार है ऐसे पञ्चाल देशके राजाको उत्साहित करता हुआ पौण्ड्रदेशका परम प्रतापी राजा, दो हजार हाथियों और सात हजार घोड़ोंके साथ आ गया है ॥१६-१७॥ जिस प्रकार रेवा नदीके प्रवाह में सैकड़ों नदियों आकर मिलती है इसी प्रकार जिसमें अन्य अनेक राजा आ-आकर मिल रहे हैं ऐसा मगध देशका राजा भी पौण्ड्राधिपतिसे भी कहीं अधिक सेना लेकर आया है ॥१८॥ वज्रको धारण करनेवाला राजा सुकेश, मेघके समान कान्तिको धारण करनेवाले आठ हजार हाथियों और जिसका अन्त पाना कठिन है ऐसी घोड़ोंकी सेनाके साथ आ पहुँचा है ॥१९॥ जो इन्द्रके समान पराक्रमके धारी हैं, ऐसे सुभद्र, मुनिभद्र, साधुभद्र और नन्दन नामक भवनोंके राजा हैं वे भी आ गये हैं ॥२०॥ जो अवार्य वीर्यसे सम्पन्न है, ऐसा राजा सिंहवीर्य, तथा वङ्ग देशका राजा सिंहस्थ ये दोनों मेरे मामा हैं सो बहुत भारी सेनासे सुशोभित होते हुए आये हैं ॥२१॥ वत्स देशका राजा मारिदत्त बहुत भारी पदाति, रथ, हाथी और उत्तमोत्तम घोड़ोंके साथ आया है ॥२२॥ अन्वष्ट देश का राजा ओछिल और सुवीर देशका स्वामी धीरमन्दिर ये दोनों असंख्य सेनाके साथ आ पहुँचे हैं ॥२३॥ तथा इनके सिवाय जो और भी महापराक्रमी एवं देवोंकी उपमा धारण करने वाले अन्य राजा हैं वे मेरी आज्ञा श्रवणकर सेनाओंके साथ आ चुके हैं ॥२४॥ इन सब राजाओं को साथ लेकर मैंने अयोध्याके राजा भरतके प्रति प्रस्थान किया है, सो तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, अतः तुम्हें पत्र देखनेके बाद तुरन्त ही यहाँ आना चाहिए। तुम्हारी मुझमें प्रीति ही ऐसी है कि जिससे आप दूसरे कार्यके प्रति दृष्टि भी नहीं डालोगे। जिस प्रकार किसान वर्षाको बड़े आदरसे देखते हैं, उसी प्रकार हम भी तुम्हें बड़े आदरसे देखते हैं ॥२५-२६॥ इस प्रकार पत्र

अतिवीर्यं तथाबुद्धौ भरतस्य विचेष्टितम् । तव कीदृगिति ज्ञातं भद्रस्य दूतस्य ते ॥२८॥
 एवं वायुगतिः पृथो जगाद् निखिलं मम । विदितं राजचरितमन्तरङ्गो ह्ययं परः ॥२९॥
 इच्छामि विशदं श्रोतुमित्युक्ते पुनरब्रवीत् । शृणु चित्तं समाधाय भवतश्चेत्कुतूहलम् ॥३०॥
 श्रुतबुद्धिरिति ख्यातो दूतः श्रुतविशारदः । प्रहितः स्वामिनास्माकं गत्वा भरतमब्रवीत् ॥३१॥
 दूतोऽस्मि शक्तुस्त्वस्य प्रणताखिलभृत्यतः । अतिवीर्यनरेन्द्रस्य नयन्यासमनीषिणः ॥३२॥
 सप्रप्राप्य साध्वसं यस्मान्नरकैसरिणः परम् । भजन्ते रिपुसारङ्गा न निद्रां वसतिष्वपि ॥३३॥
 विनीता पृथिवी यस्य चतुरम्भोधिमेखला । आज्ञां पाणिपृहीतेव कुरुते परिपालिता ॥३४॥
 आज्ञापयत्यसौ देवो भवन्तमिति सक्क्रियः । वर्णैर्मदास्यविन्यस्तेरुज्जितात्मा समन्ततः ॥३५॥
 यथा भज समागत्य भृत्यतां भरत दूतम् । अयोध्यां वा परित्यज्य भज पारमुदन्वतः ॥३६॥
 ततः क्रोधपरीताङ्गः शत्रुघ्नश्चण्डया गिरा । जगाद् जिष्मतीकारो दावानल इवोत्थितः ॥३७॥
 भजत्येव तथा देवो भरतस्तस्य भृत्यताम् । यथा सज्जायते युक्तमिदं तावद्यथापितम् ॥३८॥
 विनीतां च परित्यज्य सचिवेषु प्रभुभ्यु वम् । यात्येवोदन्वतः पारं वशीकुर्वन् क्रमानवान् ॥३९॥
 वचस्त्वां ज्ञापयामीति नितरां तस्य नोचितम् । रासमस्य यथा मत्तवारणधिपगर्जितम् ॥४०॥
 सूचयत्यथा तस्य भृत्यमेतद्वचः स्फुटम् । उत्पातभृत्यमेतो वा स नूनं वायुवश्यताम् ॥४१॥

बोचे जानेपर राजा पृथिवीधर जब तक कुछ नहीं कह पाये कि तब तक उसके पहले ही लक्ष्मण ने कहा कि हे भद्र ! हे समीचीन बुद्धिके धारक दूत ! तुम्हें मालूम है कि राजा अतिवीर्यके उस तरह रुष्ट होनेमें भरतकी कैसी चेष्टा कारण है अर्थात् अतिवीर्य और भरतमें विरोध होने का क्या कारण है ? ॥२७-२८॥ इस प्रकार लक्ष्मणके पूछनेपर उस वायुगति नामक दूतने कहा कि मैं चूँकि राजाका अत्यन्त अन्तरङ्ग व्यक्ति हूँ अतः मुझे सब मालूम है ॥२९॥ इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि तो मैं सुनना चाहता हूँ । इस प्रकार कहे जानेपर वायुगति दूत बोला कि यदि आपको कुतूहल है तो चित्त स्थिर कर सुनिए मैं कहता हूँ ॥३०॥ उसने कहा कि एक बार हमारे राजा अतिवीर्यने श्रुतबुद्धि नामका निपुण दूत भरतके पास भेजा, सो उसने जाकर भरतसे कहा कि जो इन्द्रके समान पराक्रमी है । जिसे समस्त राजा नमस्कार करते हैं तथा जो नयके प्रयोग करनेमें अत्यन्त निपुण है ऐसे राजा अतिवीर्यका मैं दूत हूँ ॥३१-३२॥ जो मनुष्योंमें सिंहके समान है तथा जिससे भयभीत होकर शत्रु रूप मृग अपनी वसतिक्षात्रोंमें निद्राको प्राप्त नहीं होते ॥३३॥ चार समुद्र ही जिसकी कटिमेखला है, ऐसी समस्त पृथिवी कीके समान वही विनयसे जिसकी आज्ञाका पालन करती है, जो उत्तम क्रियाओंका आचरण करनेवाला है तथा सब ओरसे जिसकी आत्मा अत्यन्त बलिष्ठ है, ऐसे राजा पृथिवीपर मेरे मुखमें स्थापित किये हुए अक्षरोंसे आपको आज्ञा देते हैं कि हे भरत ! तू शीघ्र ही आकर मेरी दासता स्वीकृत कर अथवा अयोध्या छोड़कर समुद्रके उस पार भाग जा ॥३४-३६॥

तदनन्तर जिसका शरीर क्रोधसे व्याप्त हो रहा था तथा उठी हुई दावानलके समान जिसका प्रतिकार करना कठिन था ऐसा शत्रुघ्न तीक्ष्ण वाणीसे बोला कि अरे दूत ! राजा भरत उसकी भृत्यताको उस तरह अभी हाल स्वीकृत करते हैं कि जिस तरह उसका यह कहना ठीक सिद्ध हो जाय ? अयोध्या छोड़नेकी बात कही सो अभ्युद्यको धारण करनेवाले राजा भरत अयोध्याको मन्त्रियों पर छोड़ छुद्र मनुष्योंकी वश करनेके लिए अभी हाल समुद्रके पार जाते हैं ॥३७-३८॥ परन्तु मैं तुमसे कह रहा हूँ कि जिस प्रकार मदोन्मत्त हाथीके प्रति गधेकी गर्जना उचित नहीं जान पड़ती, उसी प्रकार भरतके प्रति तेरे स्वामीकी यह गर्जना बिल्कुल ही उचित नहीं है ॥४०॥ अथवा उसके यह वचन स्पष्ट ही उसकी मृत्युको सूचित करते हैं । जान पड़ता है

१. भद्रास्य दूत सम्मते ब० । भद्रस्य इतस्य ते म० (?) । २. यात्येवोन्नतः म० ।

वैराग्यादयथा ताते तपोवनमुपगते । नरेन्द्रेण समाविष्टो ग्रहेण खलवेष्टितः ॥४२॥
 यद्यन्युपशमं यातस्ताताग्निर्मुक्तिकाम्यथा । तथापि निर्गतस्तस्मात्कुलिङ्गस्तं दहाम्यहम् ॥४३॥
 सिंहे करीन्द्रकीलालपङ्कलोहितकेसरे । शान्तेऽपि शावकस्तस्य कुस्ते करिपातनम् ॥४४॥
 इत्युक्त्वा दहमानोऽस्त्रेणुकान्तरभीषणम् । जहास तेजसास्थानं असमानः इवाखिलम् ॥४५॥
 जगाद च क्रुदतस्य तावदस्य विधीयताम् । खलीकारोऽष्टवर्षीयस्य सत्यङ्कार इव द्रुतम् ॥४६॥
 इत्युक्ते पादयोर्दूतो गृहीत्वा कुपितैर्भटैः । सारमेय इवागर्स्वा हन्यमानः क्रुतध्वनिः ॥४७॥
 आकृष्टो नगरीमध्यं यावन्मुक्तश्च दुःखितः । दग्धो दुर्वचनैर्धूलीधूसरो निरगात्ततः ॥४८॥
 ततः सागरगम्भीरः परमार्थविशारदः । अपूर्वं दुर्वचः श्रुत्वा किञ्चित्कोपमुपगतः ॥४९॥
 केकयानन्दनः श्रीमान्सुप्रभानन्दनान्वितः । विनिर्नापुररिं पुर्यां निर्यातः सचिवान्वितः ॥५०॥
 श्रुत्वा तं मिथिलाधीशः कनकः पुरुसाधनः । प्राप सिंहोदराद्याश्च राजानो भक्तित्वराः ॥५१॥
 षक्रेण महता युक्तो भरतः प्रस्थितस्ततः । नन्द्यावर्तं प्रजा रक्षन् पितेव न्यायकोविदः ॥५२॥
 अतिवीर्योऽपि दूतेन खलीकारप्रदर्शिना । परमं क्रोधमानीतः क्षुब्धाकृपारभीषणः ॥५३॥
 भरतायाग्निरौचिष्णुर्गुणं संविदधे मतिम् । सामन्तैर्वेष्टितः सर्वैः क्रुतानेकमहाक्रुतैः ॥५४॥
 ततो ललाटभागेन युवचन्द्राकृतिः श्रितः । वनमालापितुः संज्ञां कृत्वा स्वैरं बलोऽन्रद्वत् ॥५५॥

किं वह् उत्पातरूपी भूतसे प्रस्त है अथवा वायुरोगके चरीभूत है ॥४१॥ अथवा वैराग्यके योगसे पिता राजा दशरथके तपोवनके लिए चले जाने पर दुष्टोंसे घिरा तुम्हारा राजा ग्रहसे आक्रान्त हो गया है ॥४२॥ यद्यपि मोक्षकी आकांक्षासे पितारूपी अग्नि शान्त हो चुकी है तथापि मैं उस अग्निसे निकला हुआ एक तिलगा हूँ, सो तेरे राजाको अभी भस्म करता हूँ ॥४३॥ बड़े-बड़े हाथियोंके रुधिररूपी पङ्कसे जिसकी गरदनके बाल लाल हो रहे थे ऐसे सिंहेके शान्त हो जाने पर भी उसका वक्ता हाथियोंका विघात करता ही है ॥४४॥ इस प्रकार जलते हुए बौंसोके बड़े वनके समान भयङ्कर वचन कह कर तेजसे समस्त सभाको ग्रसता हुआ शत्रुघ्न जोरसे हँसा ॥४५॥ और बोला कि क्यानेके समान अल्पवीर्य (अतिवीर्य) के इस क्रुदतका तिरस्कार शीघ्र ही किया जाय ॥४६॥ शत्रुघ्नके इस प्रकार कहते ही क्रोधसे भरे थोड़ाओंने उस दूतके दोनों पैर पकड़ कर उसे घसीटना शुरू किया जिससे वह पीटे जानेवाले अपराधी क्रुतेके समान कोंथ-कोंथ करने लगा ॥४७॥ इस तरह नगरीके मध्यतक घसीट कर उसे छोड़ दिया । तदनन्तर दुःखी दुर्वचनोसे जला और धूलिसे धूसर हुआ वह दूत वहाँसे चला गया ॥४८॥

तदनन्तर जो समुद्रके समान गम्भीर थे, परमार्थके जाननेवाले थे तथा जो दूतके पूर्वोक्त अपूर्व वचन सुनकर कुछ क्रोधको प्राप्त हुए थे ऐसे श्रीमान् राजा भरत, शत्रुघ्न भाई और मन्त्रियोंको साथ ले, शत्रुका प्रतिकार करनेके लिए नगरीसे बाहर निकले ॥४९-५०॥ वह सुनकर मिथिलाका राजा कनक बड़ी भारी सेना लेकर भरतसे आ मिला तथा भक्तिमें तत्पर रहनेवाले सिंहोदर आदि राजा भी आ पहुँचे ॥५१॥ इस प्रकार जो पिताके समान प्रजाकी रक्षा करते थे, तथा जो न्याय-नीतिमें निपुण थे ऐसे राजा भरत बड़ी भारी सेनासे युक्त हो नन्द्यावर्त नगरकी ओर चले ॥५२॥

उधर अपने अपमानको दिखानेवाले दूतने जिसे अत्यन्त कुपित कर दिया था, जो क्षोभको प्राप्त-हुए समुद्रके समान भयंकर था, जो अग्निके समान दमक रहा था तथा अनेक बड़े-बड़े आश्चर्य पूर्ण-कार्य करनेवाले सामन्त जिसे घेरे थे ऐसा राजा अतिवीर्यने भी भरतके प्रति चढ़ाई करनेका निश्चय किया ॥५३-५४॥ तदनन्तर ललाटसे तरुण चन्द्रमाकी आकृतिके धारण करने-

युक्तमेवातिवीर्यस्य भरते कर्तुमीदृशम् । पितुर्धनं समो आता ज्येष्ठोऽसावपमानितः ॥५६॥
 आगच्छाम्यहमित्युक्त्वा लेखवाहं महीधरः । प्रतिप्रेष्याकरोमन्त्रं रामेण पृथिवीधरः ॥५७॥
 अतिवीर्योऽतिदुर्वारश्छुध्राना तं व्रजाम्यहम् । एवं महीधरेणोक्ते पद्मो विश्रब्धमग्रवीत् ॥५८॥
 अज्ञातैरिदमस्माभिः साधनीयं प्रयोजनम् । ततो न महता कृत्य संरंभेण तु पाथिव ॥५९॥
 तिष्ठ त्वमिह कुर्वाणः सुप्रयुक्तमहं तव । पुत्रजामातुभिः सार्धमन्तं तस्य व्रजाम्यरेः ॥६०॥
 इत्युक्त्वा रथमारुह्य परं सारबलान्वितैः । महीधरसुतैः साकं ससीतो लक्ष्मणान्वितः ॥६१॥
 नन्धावर्तपुरीं रामो गन्तुं प्रवृत्ते जवी । प्राप्तश्चावस्थितस्तस्य पुरस्य निकटतरे ॥६२॥
 तनुकृत्यै कृते तत्र सम्बन्धितनयैः सह । रामलक्ष्मणयोर्मन्त्रः सीतायाश्चेत्यवर्तत ॥६३॥
 जगाद जानकी नाथ भवतः सन्निधौ मम । वञ्चु नैवाधिकारोऽस्ति किं तारा भान्ति भास्करे ॥६४॥
 तथापि देव भायेऽहं प्रेरिता हितकाम्यया । जातो वशतातोऽपि मणिः संगृह्यते ननु ॥६५॥
 अतिवीर्योऽतिवीर्योऽयं महासाधनसगतः । क्रूरकर्मा कथं शक्यो जेतुं भरतभृशुता ॥६६॥
 भक्तस्तर्जिन्ये तावदुपायाश्चित्यतां द्रुतम् । सहस्रारम्यमाणं हि कार्यं व्रजति संशयम् ॥६७॥
 त्रिलोकेऽप्यस्ति नासाध्यं भवतो लक्ष्मणस्य वा । किन्तु प्रस्तुतमत्यक्त्वा समारुध्वं प्रशस्यते ॥६८॥
 ततो लक्ष्मीधरोज्ज्वलस्किमेवं देवि आपसे । पश्य स्वो निहितं पापमणुवीर्यं मया रणे ॥६९॥
 रामपादरजःपूतशिरसो मे खुरैरपि । न शक्यते पुरः स्थातुं क्षुद्रवीर्यं तु का कथा ॥७०॥

वाले रामने वनमालाके पिता राजा पृथिवीधरको संकेत कर स्वेच्छानुसार कहा कि जिसने पिताके समान बड़े भाईको अपमानित किया है ऐसे भरत पर अतिवीर्यका ऐसा करना उचित ही है ॥५५-५६॥ तदनन्तर 'मैं अभी आता हूँ' इस प्रकार कहकर राजा पृथिवीधरने दूतको तो बिदा किया और रामके साथ बैठकर इस प्रकार सलाह की कि 'अतिवीर्यका निराकरण करना सरल नहीं है इसलिए मैं झलसे जाता हूँ। राजा पृथिवीधरके इस प्रकार कहने पर रामने विरवासपूर्वक कहा कि हम लोगोको यह कार्य अज्ञात रूपसे चुपचाप करना योग्य है अतः हे राजन् ! बड़े आहम्बरकी आवश्यकता नहीं है ॥५७-५८॥ आप सुचारु रूपसे अपना काम करते हुए यहीं रहिये मैं आपके पुत्र तथा जेवाईके साथ शत्रुके सम्मुख जाता हूँ ॥६०॥ इस प्रकार कहकर राम, लक्ष्मण और सीताके साथ रथपर सवार हो श्रेष्ठ सेना सहित राजा पृथिवीधरके पुत्रोंको साथ ले नन्धावर्तपुरीकी ओर चले तथा वेगसे चलकर नगरीके निकट जाकर ठहर गये ॥६१-६२॥ वहाँ स्नान भोजन आदि शरीर सम्बन्धी कार्य कर चुकनेके बाद राम लक्ष्मण, तथा सीताकी पृथिवीधरके पुत्रोंके साथ निम्न प्रकार सलाह हुई ॥६३॥ सलाहके बीच सीताने रामसे कहा कि हे नाथ ! यद्यपि आपके समीप मुझे कहनेका अधिकार नहीं है क्योंकि सूर्यके रहते हुए क्या तारा शोभा देते हैं ? ॥६४॥ तथापि हे देव ! हितकी इच्छासे प्रेरित हो कुछ कह रही हूँ सो ठीक ही है क्योंकि वंशकी लतासे उत्पन्न हुआ मणि भी तो प्राद्य होता है ॥६५॥ सीताने कहा कि यह अतिवीर्य, अत्यन्त बलवान्, बड़ी भारी सेनासे सहित तथा क्रूरता पूर्ण कार्य करनेवाला है सो भरतके द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥६६॥ अतः शीघ्र ही उसके जीतनेका उपाय सोचिये क्योंकि सहसा प्रारम्भ किया हुआ कार्य संशयमे पड़ जाता है ॥६७॥ यद्यपि तीन लोकमें भी ऐसा कार्य नहीं है जो आप तथा लक्ष्मणके असाध्य हो किन्तु जो कार्य प्रकृत कार्यको न छोड़कर प्रारम्भ किया जाता है वही प्रशंसनीय होता है ॥६८॥ तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हे देवि ! ऐसा क्या कहती हो तुम कल ही अणुवीर्य (अतिवीर्य) को रणमें मेरे द्वारा मरा हुआ देख लेना ॥६९॥ रामकी चरणभूलिसे जिसका शिर पवित्र है ऐसे मेरे

न यावदथवा याति भानुरस्तं कुतूहली । वीक्ष्यतां तावदथैव ह्युद्रवीर्यस्य पञ्चताम् ॥७१॥
 युवगर्वसमाधमाता सम्बन्धितनया अपि । एतदेव वचोऽमुञ्चत्यतिशब्दमिवोजतम् ॥७२॥
 ततः पयो निवार्यतां भ्रूमङ्गेन महामनाः । अत्रवील्लक्ष्मणं धैर्याद्विष गण्ढूपयन्निव ॥७३॥
 युक्तमुक्तमलं तात जानक्या वस्तु पुष्कलम् । स्फुटीकृतं तु नात्यन्तमत्यासादनभीतया ॥७४॥
 अस्याः शृणु यदाकृतमतिवीर्यो बलोद्धतः । भरतेन स नो शक्यो वशीकर्तुं रणाजिरे ॥७५॥
 भागो न भरतस्तस्य दशभोऽपि भवत्यतः । तस्य दावानलस्यार्थं किं करोति महागजः ॥७६॥
 दन्तिभिर्यच्च समृद्धस्य समृद्धोऽपि तुरङ्गमैः । भरतो नैव शकोऽस्य तथा विन्ध्यस्य केसरी ॥७७॥
 भरतस्य जये नाम्न संशयोऽपि समीच्यते । एकान्तस्तु कुतो वापि स्याज्जन्यप्रलयस्तथा ॥७८॥
 कष्टमेकमोजतिं विरोधे कारणं विना । पञ्चद्वयं मनुष्याणां जायते विवशक्षयम् ॥७९॥
 दुरात्मनातिवीर्येण भरते च वशीकृते । जायते रघुगोत्रस्य कलङ्कः पश्य कीदृशः ॥८०॥
 नेच्यते सन्धिरप्यत्र शत्रुघ्नेन च मानिना । शैशवेन कृतं दोषं शत्रावत्युद्धते शृणु ॥८१॥
 विभावर्षा तमिस्त्रायां किलावस्कन्ददायिना । रौद्रभूतिसमेतेन शत्रुघ्नेन चरिष्णुना ॥८२॥
 निद्रावशीकृतान् वीरान् बहून् कृत्वा मृतचतान् । हस्तिनश्च दुरगोहान् प्रगल्हाननिर्भरान् ॥८३॥
 चतुःपृष्टिसहस्राणि वाजिनान् वातरंहसाम् । शतानि सप्त चेभानामङ्गनाद्रिसमस्त्रिपात् ॥८४॥
 बाह्यस्थानि पुरस्यास्य नीतानि दिवसैस्त्रिभिः । भरतस्यान्तिकं किं ते न श्रुतानि जनां स्यतः ॥८५॥

सामने देव भी खड़े होनेके लिए समर्थ नहीं हैं फिर अनुवीर्यकी तो बात ही क्या है ? ? ॥७०॥
 अथवा कुतूहलसे भरा सूर्य जब तक अस्त नहीं होता है तब तक आज ही अनुवीर्यकी मृत्यु देख लेना ॥७१॥ तर्पण लक्ष्मणके गर्वसे फूले राजा गृथिवीधरके पुत्रोंने भी प्रतिव्वनिके समान यही जोरदार शब्द कहे ॥७२॥

तदनन्तर धैर्यसे समुद्रको कुल्लेके समान तुच्छ करनेवाले महामना रामने भ्रुकुटिके भंगसे पृथिवीधरके पुत्रोंको रोककर लक्ष्मणसे कहा कि हे तात ! सीताने सब बात बिलकुल ठीक कही है केवल रहस्य खुल न जाय इससे भयभीत हो खुलासा नहीं किया है ॥७३-७४॥ उसका जो अभिप्राय है वह सुनो । यह कह रही है कि चूँकि अतिवीर्य बलसे उद्धत है अतः भरतके द्वारा रणाङ्गणमें वश करनेके योग्य नहीं है ॥७५॥ भरत उसके दशवें भाग भी नहीं है वह दावानलके समान है अतः यह महागज उसका क्या कर सकता है ? ॥७६॥ यद्यपि भरत घोड़ोंसे समृद्ध है पर अतिवीर्य हाथियोंसे समृद्ध है अतः जिस प्रकार सिंह विन्ध्याचलका कुछ नहीं कर सकता उसी प्रकार भरत भी अतिवीर्यका कुछ नहीं कर सकता ॥७७॥ वह भरतको जीत लेगा इसमें कुछ भी संशय नहीं है अथवा दो मे से किसीकी जीत होगी पर उससे प्राणियोका विनाश तो होगा ही ॥७८॥ जब विना कारण ही दो व्यक्तियोंमें परस्पर विरोध होता है तब दोनों पक्षके मनुष्योंका विचरा होकर क्षय होता ही है ॥७९॥ और यदि दुष्ट अतिवीर्यने भरतको वश कर लिया तो फिर देखो रघुवंशका कैसा अपयश उत्पन्न होता है ? ॥८०॥ इस विषयमें सन्धि भी होती नहीं दिखती क्योंकि मानी शत्रुघ्ने लक्ष्मणके कारण अत्यन्त उद्धत शत्रुके बहुत दोष—अपराध किये हैं सुनो, रौद्रभूतिके साथ मिलकर शत्रुघ्ने अन्वेषी रातमें छापा मार-मार कर उसके बहुतसे निद्रानिमग्न वीरोंको तथा जिनपर चढ़ना कठिन था और जिनसे मदके निर्भर भर रहे थे ऐसे बहुतसे हाथियोंको मारा । पवनके समान वेगशाली चौंसठ हजार घोड़े और अञ्जनगिरिके समान आभावाले सात सौ हाथी जो कि इसके नगरके बाहर स्थित थे तीन दिन तक चुराकर भरतके पास ले गया सो क्या लोगोंके सुँहसे तुमने सुना नहीं

दृष्ट्वा कलिङ्गराजस्ताम् गाढशल्यान् बहुमनूपां । जंवेन च विनिर्मुक्तान् हतं ज्ञात्वा च साधनम् ॥८६॥
सम्प्राप्तः परमं क्रोधमप्रमत्तः समन्ततः । वैरिनिर्यातनं कृत्वा बुद्धौ रणमुदीचयते ॥८७॥
द्रुण्डोपायं परित्यज्य भरतो मानिनां वरः । हेतु तस्मिन्नेव नाम्नं प्रयुक्तं बुद्धिमानपि ॥८८॥
अथ त्वं साधयत्येवं कैनेतन्न प्रतीयते । शक्तिस्ते प्रभवेत्तात तीर्थाक्षोरपि यातने ॥८९॥
किन्त्वयं वर्ततेऽत्रैव प्रवेशे भरतोऽधुना । निर्गत्य च तथायुक्तं प्रकटीकरणं ननु ॥९०॥
अज्ञाता एव ये कार्यं कुर्वन्ति पुरुषादसुतम् । तेऽतिशलाघ्वा यथात्यन्तं निवृण्वन् जलदा गताः ॥९१॥
इति मंत्रयमाणस्य रामस्य मतिरुद्गता । अतिवीर्यप्रहोपाये ततो मंत्रः समापितः ॥९२॥
प्रमादरहितस्तत्र कृतप्रवरसङ्गतः । सुखेन शर्वरीं नीत्वा रामः स्त्रजनसङ्गतः ॥९३॥
भावासाक्षिगंतोऽपश्यदार्थिकाजनलक्षितम् । जिनेन्द्रभवनं भक्त्या प्रविवेश च साक्षलिः ॥९४॥
नमस्कारं जिनेन्द्राणां विधायायांजनस्य च । सकाशे वरधर्माया गणपाल्याः सशस्त्रिकाम् ॥९५॥
स्थापयित्वा वृत्तीं सीतां कृत्वात्मानं च वर्णिनीम् । स्त्राविपधारिभिः सार्धं सूर्यैर्लक्ष्मणादिभिः ॥९६॥
कृत्वा पूजां जिनेन्द्राणां बहुमङ्गलभूषिताम् । नरेन्द्रभवनद्वार प्रतस्थे लालयाम्बितः ॥९७॥
सुरेन्द्रगणिकातुल्यं वीक्ष्य तं वर्णिनीं जनम् । सर्वैः पौरजनो लजनः पश्चाद्गन्तुं सविस्मयः ॥९८॥
सर्वलोकस्य नेत्राणि मनोसि च सुचेष्टिताः । हरन्त्यस्ता नृपागारं प्राप्ता द्वारि सुमण्डनाः ॥९९॥

है ? ॥८९-८५॥ कलिङ्गाधिपति अतिवीर्यने जव देखा कि बहुतसे राजाओंको गहरी शल्य लगी हुई है तथा कितने ही राजा निष्पान हो गये हैं और साथ ही बहुत-सी सेनाका अपहरण हुआ है तब वह परम क्रोधको प्राप्त हुआ । अब वह सब ओरसे सावधान है और बुद्धिमें वैरीसे बदला लेनेका विचार कर रणकी प्रतीक्षा कर रहा है ॥८६-८७॥ भरत मानियोंमें श्रेष्ठ है तथा बुद्धिमान् भी इसलिए वह उसके जीतनेमें एक युद्धरूपी उपायको छोड़कर अन्य उपाय प्रयोगमें नहीं लाना चाहता ॥८८॥ यद्यपि तुम इसे ठीक कर सकते हो यह किसे प्रतीति नहीं है ? अथवा हे तात ! इसकी बात जाने दो तुम्हमे तो सूर्यको भी गिरानेकी शक्ति है किन्तु भरत इसी प्रदेशमे विद्यमान है अर्थात् यहाँसे बहुत ही निकट है सो इस समय उस तरह अयोध्यासे निकल कर प्रकट होना उचित नहीं है ॥८९-९०॥ जो लोग अज्ञात रहकर मनुष्योंको आश्चर्यमे डाल देनेवाला भारी उपकार करते हैं वे चुपचाप बरस कर गये हुए रात्रिके मेघोंके समान अत्यन्त प्रशंसनीय हैं ॥९१॥ इस प्रकार सलाह करते-करते रामको, अतिवीर्यके वश करनेका उपाय सूझ आया और उसके बाद सलाहका काम समाप्त हो गया ॥९२॥

अथानन्तर आत्मीयजनोंके साथ मिले हुए रामने, प्रमाद रहित हो उत्तमोत्तम कथाएँ कहते हुए सुखसे रात्रि व्यतीत की ॥९३॥ दूसरे दिन डेरेसे निकलकर रामने आर्थिकाओसे सहित जिनमन्दिर देखा सो हाथ जोड़कर बड़ी भक्तिसे उसमे प्रवेश किया ॥९४॥ भीतर प्रवेशकर जिनेन्द्र भगवान् तथा आर्थिकाओंको नमस्कार किया । वहाँ आर्थिकाओंकी जो वरधर्मा नामकी गणिनी थी उसके पास सीताको रक्खा तथा सीताके पास ही अपने सब शस्त्र छोड़े । तदनन्तर अतिशय चतुर रामने अपने आपका नृत्यकारिणीका वेश बनाया और साथ ही अत्यन्त सुन्दर रूपको धारण करनेवाले लक्ष्मण आदिने भी स्त्रियोंके वेष धारण किये ॥९५-९६॥ तत्पश्चात् जिनेन्द्र भगवान्की मङ्गलमयी पूजाकर सबलोगोंके साथ रामने लालापूर्वक राजमहलके द्वारकी ओर प्रस्थान किया ॥९७॥ इन्द्रनर्तकी की तुलना करनेवाली उन नर्तकियोंको देखकर आश्चर्यसे भरे समस्त नगरवासी उनके पीछे लग गये ॥९८॥ तदनन्तर उत्तम चैत्रायाँ और सुन्दर आभूषणोंको धारण करनेवाली वे नृत्यकारिणीं सब लोगोंके नेत्र और मनको हर्ती हुई राजमहलके द्वारपर पहुँचीं ॥९९॥

ते चतुर्विंशतिर्भक्त्या जिनैन्द्रा भक्तितत्परैः । वन्द्यन्तेऽस्माभिरित्येवं तेवातेवा ध्वनि पुरः ॥१००॥
 कृत्वा पुराणवस्तूनि यातुमुत्कुललोचनाः । गम्भीरभारतीतानासकाश्चारणोपितः ॥१०१॥
 ध्वनिमश्रुतपूर्वं ते श्रुत्वा तासां नराधिपः । आजगाम गुणाकृष्टः काष्ठभार इवोदकः ॥१०२॥
 ततो रेचकमादाय ललिताङ्गविवर्तनम् । नृपस्याभिमुखीभावं जगाम वरवर्चनम् ॥१०३॥
 सस्मितालोकितैस्तस्या विगलद्भूसमुद्गमैः । गमकानुगतैः कम्पैस्तनमारस्य हारिणः ॥१०४॥
 मन्थरैश्चारुसञ्चारैर्जघनस्य घनस्य च । तथा बाहुलताहारैः सुलीलकरपङ्क्तयैः ॥१०५॥
 पादन्यासैर्लघुसुष्टविमुक्तवरिणोत्तलैः । आशु सम्पादितैः स्थानैः केशपाशविवर्तनैः ॥१०६॥
 त्रिकस्य बलनैर्भागगात्रसन्दर्शितात्मभिः । कामवाणैरिमैर्लोकैः सकलः समताल्यत ॥१०७॥
 मूर्च्छनाभिः स्वरैर्ग्रसैर्यथास्थानं नियोजितैः । नर्तकी सा जगौ बह्वु परिलीनसखीस्वरम् ॥१०८॥
 यत्र यत्र ससुदृशे नर्तकी कुतरे स्थितिम् । तत्र तत्र सभा सर्वान्नयनानि ग्रयच्छति ॥१०९॥
 तस्या रूपेण चक्षुषि स्वरेण श्रवणेन्द्रियम् । मनांसि तद्दृष्ट्वेनापि बद्धानि सदसो हृदम् ॥११०॥
 उत्फुल्लमुखराजीवा सामन्ता दानतत्परा । बभूवुर्निरलङ्कारा सन्धानाम्बरधारिणः ॥१११॥
 आतोषादुगतं नृत्यं तत्तस्यास्त्रिदशानपि । वशीकुर्वीत कैवाल्या सुहरेष्वन्यजन्तुषु ॥११२॥

तदनन्तर जिनके नेत्रकमल विकसित थे तथा जो भारतीकी गम्भीर तान खींचनेमें आसक्त थी ऐसी उन नृत्यकारिणी स्त्रियोंने 'भक्तिमे तत्पर रहनेवाली हम सब चौबीस तीर्थ-
 करोंकोभक्ति पूर्वक नमस्कार करती हैं, यह कहकर सब प्रथम 'तेवा-लेवा' यह अत्युक्त ध्वनि
 की फिर पुराणोमें प्रतिपादित वस्तुओंका गाना शुरू किया ॥१००-१०१॥ उन नृत्यकारिणियों
 की अश्रुतपूर्व ध्वनि सुनकर गुणोंसे खिचा राजा अतिवीर्य उनके पास इस तरह आ गया जिस
 तरह कि पानीमें गुण अर्थात् रस्सीसे खिचा काष्ठका भार खींचनेवालेके पास आता है ॥१०२॥
 तदनन्तर फिरकी लेकर सुन्दर अङ्गोको मोड़ती हुए श्रेष्ठ नर्तकी राजाके सम्मुख गई ॥१०३॥
 वहाँ उसका मन्द-मन्द सुसकानके साथ देखना, भौंहोंका चलाना, बिह्व मनुष्य ही जिसे समझ
 पाते थे ऐसे सुन्दर स्तनोंका कँपाना, घीमी-धीमी सुन्दर चालसे चलना, स्थूल नितम्बका मट-
 काना, भुजा रूप लताओंका चलाना, उत्तम लीलाके साथ हस्त रूपी पङ्क्तियोंका किराना, जिनमें
 शीघ्रतासे स्पर्शकर पृथिवीतल छोड़ दिया जाता था ऐसे पैर रखना, शीघ्रतासे नृत्यकी अनेक
 मुद्राओंका बदलना, केशपाशका चलाना, कटिकी अस्थिका हिलाना, तथा नाभि आदि शरीर
 के अवयवोंका दिखलाना आदि कामके वाणोंसे समस्त मनुष्य ताड़ें गये थे ॥१०४-१०७॥
 वह नर्तकी, जिनका यथास्थान प्रयोग किया गया था ऐसी मूर्च्छनाओं, स्वरों तथा ग्रामो-
 स्वरोंके समूहसे सखियोंके स्वरको अपने स्वरमें मिलाकर बहुत सुन्दर गा रही थी ॥१०८॥ वह
 नृत्यकारिणी जिस-जिस स्थानमें ठहरती थी सारी सभा उसी-उसी स्थानमें अपने नेत्र लगा देती
 थी ॥१०९॥ सारी समाके नेत्र उसके रूपसे, कान मधुर स्वरसे और मन, रूप तथा स्वर दोनों
 से मजबूत बँध गये थे ॥११०॥ जिनके मुख कमल विकसित थे ऐसे सामन्त लोग उन नर्तकियों
 को पुरस्कार देते-देते अलङ्काररहित हो गये थे उनके शरीरपर केवल पहिननेके वस्त्र ही ढकी
 रह गये थे ॥१११॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! गायन वादनसे सहित उस नृत्य-
 कारिणीका वह नृत्य देवोंको भी वश कर सकता था फिर जिनका हरा जाना सरल बात थी

१. तेवा तेवा इत्यनुकरणशब्दम् । २. नानाशक्त्याश्चारण म० । ३. स्पष्ट म० । ४. विवर्तने म० ।
 ५. इमैः इति छान्दसिक सवोगः । ६. च सदेशे म० । ७. संख्याना वरधारिणी म० । ८. आताप्यानुगत (?)
 म० । ९. समरेष्वन्य ख० ।

विधाय वृषभादीनां चरितस्य प्रकीर्तनम् । संक्षेपेण वशीकृत्य समिति^१ सकलां शृणु ॥११३॥
 खगातेन समुद्युक्ता राजानमिति नर्तकी । दधाना परमां दीप्तिमुपालब्धुं^२ सुदुस्सहम् ॥११४॥
 अतिवीर्यं किमेतत् दुष्टं व्यवसितं महत् । नयर्हानमिदं वस्तु तेनात्र त्वं नियोजितः ॥११५॥
 किमिति स्वविनाशाय केकयानन्दनस्त्वया । शान्तचेता शृगालेन केसरीव प्रकोपितः ॥११६॥
 एवं गतेऽपि विव्राणः परमं विनयं द्रुतम् । सस्पृसाद्य तं गत्वा यदि ते जीवितं प्रियम् ॥११७॥
 जाता विशुद्धंशेषेण वरक्रीडनभूमयः । माभूवन् विधवा भद्रं तवैता वरयोपितः ॥११८॥
 एतास्त्वया परित्यक्ता विमुक्तलोपभूषणाः । भ्रुवं पुरा न शोभन्ते ताराश्चन्द्रमसा यथा ॥११९॥
 निवर्तय द्रुतं चित्तमशुभध्यानतत्परम् । उत्तिष्ठ ब्रज निर्माणो^३ नमस्य मरतं सुधीः ॥१२०॥
 एव कुरु न चेदेव कुरुषे पुरुषायम । ततोऽद्यैव विनष्टोऽसि संशयोऽत्र न विद्यते ॥१२१॥
 जीवत्येवानरयस्य पौत्रे राज्यं समीहसे । चकासति रवौ पापलक्ष्मीर्दोषाकरस्य का ॥१२२॥
 पतितस्पाद्य नो रूपे मरणं ते समुद्गतम् । शलमस्यैव मूढस्य दुष्परत्नस्य प्रियद्युतेः ॥१२३॥
 तेन भरतेनामा गरुडेन महात्मना । अलगादौघमो भूत्वा प्रसिस्पधैनमिच्छति ॥१२४॥
 ततो निर्मलैर्न स्वस्य भरतस्य च शंसनम् । निशम्य संसदा साकमभूतान्नेरुणो नृपः ॥१२५॥
 विरक्ता च सभात्यन्तपरं रुचितमानसा^४ । जुघूर्णार्णववैलेव भूतरङ्गसमाकुला ॥१२६॥

ऐसे अन्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या थी ? ॥११२॥ इस तरह संक्षेपसे ऋषभ आदि तीर्थंकरों के चरित्रका कीर्तन कर जब उस नर्तकीने समस्त सभाको अत्यन्त वशीभूत कर लिया तब वह सङ्गीतसे परम दीप्तिको धारण करती हुई राजाको इस प्रकारका असह्य उलाहना देनेके लिए तत्पर हुई ॥११३-११४॥ उसने कहा कि हे अतिवीर्य ! यह तेरी अतिशय दुष्ट चेष्टा क्या है ? तेरा यह कार्य नीतिसे रहित है, किसने तुम्हें इस कार्यमें लगाया है ? ॥११५॥ जिस तरह शृङ्गाल सिंहको कुपित करता है उस तरह तूने शान्त चित्त भरतको अपना नाश करनेके लिए इस तरह क्यों कुपित किया है ? ॥११६॥ इतना सब होनेपर भी यदि तुम्हें अपना जीवन प्यारा है तो शीघ्र ही परम विनयको धारण करता हुआ जाकर भरतको प्रसन्न कर ॥११७॥ हे भद्र ! विशुद्ध कुलमे उत्पन्न तथा उत्तम क्रीड़ाकी भूमि स्वरूप तेरी ये खियों विधवा न हों ॥११८॥ तुम्हसे रहित होनेपर जिनने समस्त आभूषण छोड़ दिये हैं ऐसी ये उत्तम खियाँ चन्द्रमासे रहित ताराओंके समान निश्चित ही शोभित नहीं होगी ॥११९॥ इसलिये अशुभ ध्यानमें जाने वाले अपने चित्तको शीघ्र ही छोटा, उठ, जा और मानरहित हो भरतको नमस्कार कर । तू बुद्धिमान है ॥१२०॥ अतः ऐसा कर । हे अधम पुरुष ! यदि तू ऐसा नहीं करता है तो आज ही नष्ट हो जायगा इसमें संशय नहीं है ॥१२१॥ अनरण्यके पीता भरतके जीवित रहते ही तू राज्य चाहता है सो सूर्यके देदीप्यमान रहते चन्द्रमाकी क्या शोभा है ? ॥१२२॥ जिस प्रकार कान्ति के लोमी तथा कमजोर पङ्खोंवाले मूर्ख शलभका मरण आ पहुँचता है उसी प्रकार हमलोगोंके रूपपर आसक्त तथा खोटे सहायकोंसे युक्त तुम्हें मूढ़का आज मरण आ पहुँचा है ॥१२३॥ तू जलके सोंपके समान तुच्छ होकर भी गरुड़के समान जो महात्मा राजा भरत है उनके साथ ईर्ष्या करना चाहता है ॥१२४॥

तदनन्तर नृत्यकारिणोंके मुखसे अपना तर्जन और भरतकी प्रशंसा सुनकर राजा अति-वीर्य सभाके साथ लाल-लाल नेत्रोंका धारक हो गया अर्थात् क्रोधवश उसके नेत्र लाल हो गये ॥१२५॥ जिसका मन अत्यन्त रुद्ध हो गया था जिसका प्रेम समाप्त हो चुका था और जो भ्रुकुटिरूपी तरङ्गोंसे व्याकुल थी ऐसी सारी सभा समुद्रकी वेलाके समान क्षोभको प्राप्त हुई ॥१२६॥

अतिवीर्यो रूपा कम्पो यावजग्राह सायकम् । तावदुत्पत्य नर्तक्या सविलासकृतभ्रमम् ॥१२७॥
 मण्डलाग्रं समाहित्वी वीक्षमाणेषु राजसु । जीवग्राहं विपण्णात्मा केशेषु जगृहे दृढम् ॥१२८॥
 उद्यम्य नर्तकी खल्वं पश्यन्ती नृपसंहतिम् । जगादाविनयी योऽत्र स मे वध्यो विसंशयम् ॥१२९॥
 परित्यज्यातिवीर्यस्य पञ्च विनयमण्डनाः । भरतस्य द्रुतं पादौ नमत प्रियजीविताः ॥१३०॥
 भरतो जयति श्रीमान् गुणस्फोटांशुमण्डलः । दशस्यन्दनवंशेन्दुर्लोकानन्दकरः परः ॥१३१॥
 लक्ष्मीकुसुम्वती यस्य विकासं भजते तस्मात् । द्विपत्तपननिर्मुक्ता कुर्वतः परमादसुतम् ॥१३२॥
 उज्जगाम ततो लोकवक्त्रेभ्य इति निस्वरः । अहो वृत्तमिदं चित्रमिन्द्रजालोपमं महत् ॥१३३॥
 यस्य चारणकन्यानामिदमीदृशिविचेष्टितम् । भरतस्य स्वयं तस्य शक्तिः शक्तं जयेदपि ॥१३४॥
 न विद्याः स किमस्माकं क्रुद्धो नाथः करिष्यति । अथवा सप्रणामेषु देवो यास्यति मार्दवम् ॥१३५॥
 ततः करिणमारुह्य राघवः सातिवीर्यकः । सहितः परिवर्गेण ययौ जिनवरालयम् ॥१३६॥
 अवतीर्य गजात्तत्र प्रविश्य प्रमदान्वितः । चक्रे सुमहतीं पूजां कृतमङ्गलनिस्वनः ॥१३७॥
 वरधर्मापि सर्वेण सद्देन सहितोपरम् । राघवेण ससीतेन नीता तुष्टेन पूजनम् ॥१३८॥
 अतिवीर्योऽत्र पद्मेन लक्ष्मणाय समर्पितः । तस्यासौ वधसुषुक्तः कर्तुमौच्यत सीताया ॥१३९॥
 मावीवधोऽस्य लक्ष्मीमन् कन्धरां निष्ठुराशय । केशेषु मागृहीर्गाढं कुमारं भज सौम्यताम् ॥१४०॥
 को दोषः कर्मसामर्थ्याद्यदायाज्यापदं नराः । रक्ष्या एव तथाप्येते दयतामसिःश्रुताम् ॥१४१॥

क्रोधसे कौपते हुए अतिवीर्यने ज्योंही तलवार उठाई त्योंही नर्तकीने विलासपूर्वक विभ्रम दिखाते हुए उल्लू कर तलवार छीन ली और सब राजाओंके देखते-देखते अतिवीर्यकी जीवित पकड़ कर मजबूतीसे उसके केश बांध लिये ॥१२७-१२८॥ नर्तकीने तलवार उठा कर राजाओंकी ओर देखते हुए कहा कि यहाँ जो भी अविनय करेगा वह निःसन्देह मेरे द्वारा वध्य होगा ॥१२९॥ यदि आप लोगोंको अपना जीवन प्यारा है तो अतिवीर्यका पक्ष छोड़कर विनयरूपी आभूषणसे युक्त हो शीघ्र ही भरतके चरणोंमें नमस्कार करो ॥१३०॥ जो लक्ष्मीसे युक्त है, गुण ही जिसकी विस्तृत किरणोंका समूह है, जो लोगोंको परम आनन्दका देनेवाला है, जिसकी लक्ष्मीरूपी कुसु-दिनी शत्रुरूपी सूर्यसे निर्मुक्त होकर परम विकासको प्राप्त हो रही है तथा जो अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्य कर रहा है ऐसा दशरथके वंशका चन्द्रमा भरत जयवन्त है ॥१३१-१३२॥

तदनन्तर लोगोंके मुखसे इस प्रकारके शब्द निकलने लगे कि अहो ! यह बड़ा आश्चर्य है, यह तो बहुत भारी इन्द्रजालके समान है ॥१३३॥ जिसकी नृत्यकारिणियोंको यह ऐसी चेष्टा है उस भरतकी शक्तिका क्या ठिकाना ? वह तो इन्द्रको भी जीत लेगा ॥१३४॥ न जाने वह राजा भरत कुपित होकर हमारा क्या करेगा ? अथवा प्रणाम करनेवालों पर वह अवश्य ही मार्दवभावको प्राप्त होगा ॥१३५॥ तदनन्तर राम अतिवीर्यको पकड़ हाथी पर सवार हो अपने परिजनके साथ जिनमन्दिर गये ॥१३६॥ वहाँ उन्होंने हाथीसे उतर कर बड़े हर्षसे मन्दिरके भीतर प्रवेश किया और मङ्गलमय शब्दोंका उच्चारण कर बड़ी भारी पूजा की ॥१३७॥ मन्दिरमें सर्वसंघके साथ जो वरधर्मा नामकी गणिनी ठहरी हुई थीं रामने सीताके साथ सन्तुष्ट होकर उनकी भी उत्तम पूजा की ॥१३८॥ यहाँ रामने अतिवीर्यको लक्ष्मणके लिए सौंप दिया और वे उसका वध करनेके लिए उद्यत हुए तब सीताने कहा कि हे लक्ष्मीधर ! निष्ठुर अभिप्रायके धारी हो इसकी मीठा मत छेदी और न जोरसे इसके केश ही पकड़ो । हे कुमार ! सौम्यताको प्राप्त होओ ॥१३९-१४०॥ इस बेचारेका क्या दोष है ? यद्यपि मनुष्य कर्मोंकी सामर्थ्यसे आपत्तिको प्राप्त होते हैं तथापि सज्जनताको धारण करनेवाले मनुष्य उनकी रक्षा ही करते हैं ॥१४१॥

इतरोऽपि खलोक्युं साधूनां नोचितो जनः । किमुतायं नरेशानां सहस्राणां प्रपूजितः ॥१४२॥
 कुर्वेनं मुक्त भद्र भवतायं वशीकृतः । जानानः स्वस्य सामर्थ्यं कानुगच्छति सामग्रतम् ॥१४३॥
 गृहीत्वा समयेनास्य सन्मानमुपलभिमताः । विमुच्यन्ते पुनरुच्यो मर्यादयं चिरन्तनी ॥१४४॥
 इत्युक्तो मस्तके कृत्वा कराराविकुदमलम् । जगाद् लक्ष्मणो देवि यद्वद्वीपि तथैव तत् ॥१४५॥
 आस्तां स्वामिनि ते वान्यात्तावदस्य विमोचनम् । सुराणामप्यमुं पूज्यं कुर्वीथ त्वयसादतः ॥१४६॥
 एवं प्रशान्तसंरम्भे सद्यो लक्ष्मीधरे स्थिते । अतिवीर्यो विबुद्धत्मा स्तुत्वा पद्मभभापत ॥१४७॥
 साधु साधु त्वया चित्रं कृतमीदृग्विचैष्टितम् । कटाचिदप्यनुत्पन्ना ममाद्य मतिरुद्विगता ॥१४८॥
 विमुक्तहारमुकुटं दृष्ट्वा तं कृष्णान्वितः । विभ्रव्यं रावचोऽञ्चोत् सौम्याकारपरिग्रहः ॥१४९॥
 मा ब्रवीरन्न दैन्यं त्वं धत्स्व धैर्यं पुरातनम् । महतामेव जायन्ते सम्पदो विपदन्विताः ॥१५०॥
 न चात्र काचिदापत्ते नद्यावर्ते क्रमागते । भरतस्य वशो भूत्वा कुन राज्यं ययेप्सितम् ॥१५१॥
 अतिवीर्यस्ततोऽञ्चोक्ष मे राज्येऽञ्जुना सृष्ट्वा । राज्येन मे फलं वचमनुनाम्यत्र सज्जयते ॥१५२॥
 आसीनमया कृता बाण्डा हिमवत्साराग्राधि । जेतु वसुन्धरा येन विभ्रता मानमुत्तमम् ॥१५३॥
 सोऽहं स्वमानमुन्मूल्य भूत्वा सारविजितः । कुर्यां प्रणतिमन्यस्य कथं पुरुषतां वधत् ॥१५४॥
 पद्विषडा वैरिणि कोणी पाकितेयं महानरैः । न त्वास्तेऽन्यहं ग्रामैः पञ्चमिस्तु किमेतकैः ॥१५५॥
 जन्मान्तरकृतस्यास्य बलितां पश्य कर्मणः । ज्ञायाहानिमहं येन राहुणेन्दुरिवाहृतः ॥१५६॥

जो सज्जन पुरुष है उन्हें साधारण मनुष्यको भी दुःखी करना उचित नहीं है फिर यह तो हजारों राजाओंका पूज्य है इसकी बात ही क्या है ? ॥१४२॥ हे भद्र ! इसे आपने वश कर ही लिया है अतः इसे छोड़ दो । अपनी सामर्थ्यको जानता हुआ यह अब कहाँ जायगा ? ॥१४३॥ प्रबल शत्रुओंको पकड़ कर तदनन्तर सन्धिके अनुसार सन्मान कर उन्हें छोड़ दिया जाता है यह चिरकालकी मर्यादा है ॥१४४॥

सीताके इस प्रकार कहने पर लक्ष्मणने हस्तकमल जोड़ मस्तक पर लगाते हुए कहा कि हे देवि । आप जो कह रही हैं वह वैसा ही है ॥१४५॥ हे स्वामिनि, आपकी आज्ञासे इसका छोड़ना तो दूर रहा इसे आपके प्रसादसे ऐसा कर सकता हूँ कि यह देवताओंका भी पूज्य हो जाय ॥१४६॥

इस प्रकार शीघ्र ही लक्ष्मणके शान्त होने पर प्रतिबोधको प्राप्त हुआ अतिवीर्य रामकी स्तुतिकर कहने लगा ॥१४७॥ कि आपने जो यह अद्भुत चेष्टा की सी बड़ा भला किया । मेरी जो शुद्धि कभी उत्पन्न नहीं हुई वह आज उत्पन्न हो गई ॥१४८॥ इतना कह उसने हार और मुकुट उतार कर रख दिये । यह देख सौम्य आकारको धारण करनेवाले दयालु रामने विश्वास दिलाते हुए कहा कि हे भद्र ! तू दीनताको प्राप्त मत हो, पहले जैसा धैर्य धारण कर, विपत्तियोंसे सहित सम्पदाएँ महापुरुषोंको ही प्राप्त होती हैं ॥१४९-१५०॥ अब मुझे कोई आपत्ति नहीं है ! इस क्रमागत नन्दावर्तनगरमे भरतका आज्ञाकारी होकर इच्छानुसार राज्य कर ॥१५१॥

तदनन्तर अतिवीर्यने कहा कि अब मुझे राज्यकी इच्छा नहीं है । राज्यने मुझे फल दे दिया है । अब दूसरे ही अवस्थामें लगना चाहता हूँ ॥१५२॥ उत्कट मानको धारण करते हुए मैंने हिमवान्से लेकर समुद्र तककी सारी पृथिवी जीतनेकी इच्छा की थी सो मैं अपने मानको उखाड़कर निःसार हो गया हूँ अब मैं पुरुषत्वको धारण करता हुआ अन्यको नमस्कार कैसे कर सकता हूँ ? ॥१५३-१५४॥ जिन महापुरुषोंने इस छद्मखण्डकी पृथिवीकी रक्षा की है वे भी सन्तोषको प्राप्त नहीं हुए फिर मैं इन पाँच गोंवोंसे कैसे संतुष्ट हो सकता हूँ ? ॥१५५॥ जन्मान्तरमे किये हुए इस कर्मकी बलवत्ता तो देखो कि जिस प्रकार राहु चन्द्रमाको कान्ति

मानुष्यकमिदं जातं सारमुक्तं मयाधुना । सुराणामपि वातैषा किमन्यत्राभिधीयताम् ॥१५७॥
 सोऽहं पुनर्भवाङ्गीरस्त्वया सम्प्रतिबोधितः । तथाविधां भजे चेष्टां यथा मुक्तिरवाप्यते ॥१५८॥
 इत्युक्त्वा चमयित्वा तं परिवर्गसमन्वितम् । गत्वा केसरविक्रान्तो मुनिं श्रुतिधरश्रुतिम् ॥१५९॥
 कराब्जकुडमलाङ्गेन विधाय शिरसा नतिम् । जगद नाथ बान्ध्वाभि दीक्षां दैगम्बरीमिति ॥१६०॥
 आचार्येणैवमित्युक्ते परित्यज्यांशुकादिकम् । केशलुब्धं विधायासौ महाव्रतधरोऽभवत् ॥१६१॥
 आत्मार्यनिरतस्त्यक्तरागद्वेषपरिग्रहः । विजहार ह्रिति धीरो यत्रास्तमितवास्तयसौ ॥१६२॥
 क्रूरश्चापदयुक्तेषु गहनेषु वनेषु सः । चकार वसतिं निर्भीर्गह्वरेषु च भूभुताम् ॥१६३॥

उपजातिः

विमुक्तनिश्चेषपरिग्रहांशं गृहीतचारित्रभरं सुशीलम् ।
 चानातपःशोषितदेहमुद्धं महामुनिं तं नमतातिवीर्यम् ॥१६४॥
 रत्नत्रयापादितचारुभूषं दिगम्बर साधुगुणावतसम् ।
 सम्प्रस्थितं योग्यवरं विमुक्तेर्महामुनिं तं नमतातिवीर्यम् ॥१६५॥
 इदं परं चेष्टितमातिवीर्यं शृणोति यो यश्च सुधीरधीते ।
 प्राप्नोति वृद्धिं सदसोऽपि मध्ये रविप्रभोऽसौ व्यसन न लोकः ॥१६६॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पञ्चचरितेऽतिवीर्यनिष्क्रमणाभिधानं नाम सप्तत्रिंशत्तमं पर्व ॥३७॥

रहित कर देता है उसी प्रकार इसने मुझे कान्तिरहित—निस्तेज कर दिया ॥१५६॥ जिस मनुष्य पर्यायके लिए देव भी चर्चा करते हैं औरोंकी तो बात ही क्या है उस मनुष्य पर्यायको मैंने अब तक निःसार खोया ॥१५७॥ अब मैं दूसरा जन्म धारण करनेसे भयभीत हो चुका हूँ इसलिए आपसे प्रतिबोध पाकर यह चेष्टा करता हूँ कि जिससे मुक्ति प्राप्त होती है ॥१५८॥ इस प्रकार कहकर तथा परिजन सहित रामसे क्षमा कराकर सिंहके समान शूर वीरताको धारण करता हुआ अतिवीर्य श्रुतिधर मुनिराजके पास गया और अञ्जलि युक्त शिरसे नमस्कार कर बोला कि हे नाथ । मैं दैगम्बरी दीक्षा धारण करना चाहता हूँ ॥१५९-१६०॥ 'एवमस्तु' इस प्रकार आचार्यके कहते ही वह वस्त्रादिका त्यागकर तथा केश लोचकर महाव्रतका धारी हो गया ॥१६१॥ आत्माके अर्थमें तत्पर, तथा राग द्वेष आदि परिग्रहसे रहित होकर वह धीर-वीर पृथिवीमें विहार करने लगा । विहार करते-करते जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था वहीं वह ठहर जाता था ॥१६२॥ सिंह आदि दुष्ट जानवरोंसे युक्त सघन वनों तथा पर्वतोंकी गुफाओंमें वह निर्भय होकर निवास करता था ॥१६३॥ जिसने समस्त परिग्रहकी आशा छोड़ दी थी, जिसने चारित्रका भार धारण किया था, जो उत्तम शीलसे युक्त था, नाना प्रकारके तपसे जिसने अपना शरीर सुखा दिया, तथा जो स्वयं शुभ रूप था उन महामुनि अतिवीर्यको नमस्कार करो ॥१६४॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूपी मनोहर आभूषणोंसे जो सहित थे, दिखाएँ ही जिनके अम्बर—चक्षु थे, मुनियोंके अट्टाईस मूल गुण ही जिनके आभरण थे, जिन्होंने कर्मरूपी शत्रुओंको हरनेके लिए प्रस्थान किया था, और जो मुक्तिके योग्य वर थे उन महामुनि अतिवीर्यको नमस्कार करो ॥१६५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अतिवीर्य मुनिके इस उत्कृष्ट चरितको जो बुद्धिमान् सुनता है अथवा पढ़ता है वह समाके बीच बुद्धिको प्राप्त होता है तथा सूर्यके समान प्रभाको धारण करता हुआ कभी कष्ट नहीं पाता ॥१६६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पञ्चचरितमें राजा अतिवीर्यकी दीक्षाका वर्णन करनेवाला सैतीसवों पर्व समाप्त हुआ ॥३७॥

अष्टत्रिंशत्तमं पर्व

अथ पद्मोऽतिवीर्यस्य तनय नयकोविदः । विजयस्यन्दनाभिख्यमभयपिञ्जस्त्रिपुः पदे ॥१॥
 दर्शिताशेषवित्तोऽसावरविन्दातनुभुवम् । स्वसारं रतिमालाख्यां लक्ष्मणाय न्यवेदयत् ॥२॥
 एवमस्त्रिभ्योऽष्टायां तस्यां पद्मेन लक्ष्मणः । लक्ष्मीमिवाङ्गमायातां ज्ञात्वा सप्रमदोऽभवत् ॥३॥
 ततः कृत्वा जिनेन्द्राणां पूजां विस्मयदायिनीम् । इयाय विजयस्थानं लक्ष्मणाद्यन्वितो बलः ॥४॥
 दीक्षां श्रुत्वातिवीर्यस्य नर्तकीग्रहहेतुकात् । शत्रुघ्नं हाससध्वानं निपिभ्य भरतोऽवदत् ॥५॥
 अतिवीर्यो महाधन्यस्तस्य किं भद्र हास्यते । त्यक्त्वा यो विषयान् कष्टान् परां शान्तिमुपाश्रितः ॥६॥
 प्रभाव तपसः पश्य त्रिदशेष्वपि दुर्लभम् । मुनिर्यो रिपुरासीत् सन्प्राप्तोऽर्ज्यं प्रणम्यताम् ॥७॥
 श्लाघामित्यतिवीर्यस्य यावत्तुल्यं स तिष्ठति । विजयस्यन्दनस्तावत्प्राप्तः सामन्तमध्यगः ॥८॥
 प्रणम्य भरतायासौ स्थितः सङ्कथया च गम् । ज्यायसीं रतिमालाया नाम्ना विजयसुन्दरीम् ॥९॥
 उपनिष्ये शुभां कन्यां नानालङ्कारधारिणीम् । कोशं च विपुलं सार साधनं च प्रसन्नदत् ॥१०॥
 कन्यामेकासुपादाय वैकल्याणन्दनस्ततः । तस्यैवानुमत्तं सर्वं स्थितिरैषा महात्मनाम् ॥११॥
 कौतुकोत्कलिकाकीर्णमानसोऽथ महाजयैः । अश्वैः प्रबध्ते द्रष्टुमतिवीर्यदिगम्यरम् ॥१२॥
 कालौ महामुनिः कालाविति पृच्छन्नुभावनः । एषोऽयमित्यम् श्रुत्यैः कथ्यमानमिषाय सः ॥१३॥

अथानन्तर न्यायके वेत्ता श्रीरामने अतिवीर्यके पुत्र विजयरथका उसके पिताके पद पर अभिषेक किया ॥१॥ उसने अपना सब धन दिखाया और माता अरविन्दाकी पुत्री अपनी रत्नमाला नामक वहिन लक्ष्मणके लिए देनी कही सो रामने उसे 'एवमस्तु' कहकर स्वीकृत किया रत्नमालाको पा, मानो लक्ष्मी ही गोदमे आई है, यह जानकर लक्ष्मण अधिक प्रसन्न हुए ॥२-३॥ तदनन्तर लक्ष्मण आदिसे सहित राम, जिनेन्द्र भगवान्की आश्रयदायिनी पूजा कर राजा पृथ्वीधरके विजयपुर नगर वापिस आये ॥४॥ नर्तकीके पकड़नेके कारण राजा अतिवीर्यने दीक्षा धारण की है यह सुनकर शत्रुघ्न हास्य करने लगा सो भरतने मनाकर कहा ॥५॥ कि हे भद्र ! जो कष्टकारी विषयोंको छोड़ कर परम शान्तिको प्राप्त हुआ है ऐसा अतिवीर्य महाधन्य है उसकी तू क्या हँसी करता है ? ॥६॥ जो देवोंके लिए भी दुर्लभ है ऐसा तपका प्रभाव देख । जो हमारा शत्रु था अब मुनि होने पर वह हमारे नमस्कार करने योग्य गुरु हो गया ॥७॥ इस प्रकार अतिवीर्यकी प्रशंसा करता हुआ भरत जब तक बैठा था तब तक अनेक सामन्तोंके साथ विजयरथ वहाँ आ पहुँचा ॥८॥ वह भरतको प्रणाम कर उत्तम वार्ता करता हुआ क्षणभर बैठा । तदनन्तर उसने रतिमालाकी बड़ी वहिन विजयसुन्दरी नामकी शुभ कन्या जो कि नाना अलङ्कारोंको धारण कर रही थी भरतके लिए समर्पित की । साथ ही बड़ी प्रसन्न दृष्टिसे बहुत भारी खाना और उत्तम सेना भी प्रदान की ॥९-१०॥ तदनन्तर उस अद्वितीय कन्याको पा कर भरत बहुत प्रसन्न हुआ उसने विजयरथकी इच्छानुकूल सब कार्य स्वीकृत किया सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषोंकी यही रीति है ॥११॥

अथानन्तर जिसका मन कौतुक और उत्कण्ठासे व्याप्त था ऐसा भरत महावेगशाली घोड़ेसे अतिवीर्य मुनिराजके दर्शन करनेके लिए चला ॥१२॥ वह उत्तम भावनासे सहित था तथा पूछता जाता था कि वे महामुनि कहाँ हैं ? और सेवक कहते

ततो विपमपापाणनिवहात्यन्तदुर्गमम् । नानाद्रुमसमाकीर्णं कुसुमामोदवासितम् ॥१४॥
 तज्जेन कथितं रम्य पर्वत श्रपदाकुलम् । आसुरोहावतीर्याद्वाह्निनीताकारमण्डितम् ॥१५॥
 रोपतोपविनिर्मुक्तं प्रशान्तकरणं विभुम् । शिलातलनिपण्णं तमेकसिंहमिवामयम् ॥१६॥
 अतिवीर्यमुनि दृष्ट्वा सुघोरतपसि स्थितम् । शुभध्यानगतात्मानं ज्वलन्तं श्रमणश्रिया ॥१७॥
 उत्फुल्लनयनो लोकः सर्वो हृष्टतनूरुहः । विस्मय परमं प्राप्नो ननाम रचिताञ्जलिः ॥१८॥
 कृत्वास्य महतीं पूजां भरतः श्रमणप्रियः । प्रणम्य पादयोरुचे भक्त्या विनतविग्रहः ॥१९॥
 नाथ शूरस्त्वमेवैकः परमार्थविशारदः । येनेयं दुर्धरा दीक्षा घृता जिनवरोदिता ॥२०॥
 विशुद्धकुलजातानां पुरुषाणां महात्मनाम् । ज्ञातससारसाराणामादगेव विचेष्टितम् ॥२१॥
 मनुष्यलोकमासाद्य फलं यदभिवाम्बुधते । तदुपात्त त्वया साधो वयमस्यतदुःखिनः ॥२२॥
 कन्तव्यं दुरित किञ्चिदस्माभिस्त्वयीहितम् । कृतार्थोऽसि नमस्तुभ्य प्राप्तावातिप्रतीक्ष्यैताम् ॥२३॥
 इत्युक्त्वा साञ्जलिं कृत्वा महासाधोः प्रदक्षिणाम् । अवतार्योऽकथां मौनीं कुर्वाणो धरणीधरात् ॥२४॥
 स्थूरीपृष्ठं समासृज्य पूर्वभागः सहस्रशः । सामन्तैः प्रस्थितोऽयोध्यां विभबाम्नोधिमध्यगः ॥२५॥
 महासायनसामन्तमण्डलस्यान्तरे स्थितः । शुशुभेऽसौ यथा जम्बूद्वीपोऽन्यद्वीपमध्यगः ॥२६॥
 क गतास्ता नु नर्तक्यः कृतलोकापुरञ्जनाः । स्वजीवितेऽपि निर्लोभा विदधुर्या मयि प्रियम् ॥२७॥

जाते थे कि ये आगे विराजमान हैं ॥१३॥ तदनन्तर जो ऊँचे नीचे पापाणोंके समूहसे अत्यन्त दुर्गम था, नाना प्रकारके वृक्षांसे व्याप्त था, फूलोंकी सुगन्धिसे सुवासित था, और जङ्गली जानवरोंसे युक्त था ऐसे जानकार सेवकोंके द्वारा बताये हुए पर्वतपर भरत चढ़ा और घोड़ेमें उतरकर विनीत वेपसे शोभित होता हुआ अतिवीर्य मुनिराजके दर्शनके लिए चला । ॥१४-१५॥ वे मुनिराज हर्ष-विषादसे रहित थे, शान्त इन्द्रियोंके धारक थे, विभु थे, शिलातल पर विराजमान थे, एक सिंहके समान निर्भय थे, घोर तपमें स्थित थे, शुभ ध्यानमें लीन थे और मुनिपनेकी लक्ष्मीसे देदीप्यमान थे ॥१६-१७॥ मुनिराजके दर्शनकर सबलोगोंके नेत्र विकसित हो गये और सबके शरीरमें हर्षसे रोमाञ्च निकल आये । सभीने परम आश्चर्यको प्राप्त हो अञ्जलि जोड़कर उन्हें नमस्कार किया ॥१८॥ जिसे मुनि बहुत प्रिय थे ऐसे भरतने उन मुनिराजकी बड़ी भारी पूजा की, चरणोंमें प्रणाम किया और फिर भक्तिसे नतशरीर होकर इस प्रकार कहा कि हे नाथ ! जिसने यह जिनेन्द्र-प्रतिपादित कठिन दीक्षा धारण की है ऐसे एक आप ही शूरवीर हो तथा आप ही परमार्थके जाननेवाले हो ॥१९-२०॥ विशुद्ध कुलमें उत्पन्न तथा संसारके सारको जाननेवाले महापुरुषोंकी ऐसी ही चेष्टा होती है ॥२१॥ मनुष्य लोक पाकर जिस फलकी इच्छा की जाती है हे साधो ! वह फल आपने पा लिया पर हम अत्यन्त दुखी हैं ॥२२॥ हे नाथ ! हमलोगोंसे आपके विपश्ये जो कुछ अनिष्ट-पाप रूप चेष्टा हुई है उसे क्षमा कीजिए । आप कृतकृत्य हैं, अतिशय पूज्यताको प्राप्त हुए आपके लिए हमारा नमस्कार है ॥२३॥ इस प्रकार महासुनिराज अतिवीर्यसे कहकर तथा अञ्जलि सहित प्रदक्षिणा देकर उन्हींसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा करता हुआ भरत पर्वतसे नीचे उतरा ॥२४॥ तदनन्तर हजारों सामन्त जिसके साथ थे तथा जो विभव रूपी समुद्रके बीचमें गमन कर रहा था ऐसा भरत हस्तिनीके पृष्ठ पर सवार हो अयोध्याके लिए वापिस चला ॥२५॥ बड़ी भारी सेना और सामन्तोंके बीचमें स्थित भरत ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो अन्य द्वीपोंके मध्यमें स्थित जम्बूद्वीप ही हो ॥२६॥ भरत प्रसन्न चित्तसे इस प्रकार विचार करता जाता था कि जिन्होंने अपने जीवनका भी लोभ छोड़कर हमारा इष्ट किया ऐसी लोगोंको अनुसज्जित करने-

पुरः कृत्वातिवीर्यस्य महीयां परमां स्तुतिम् । नर्तकीभिः कृतं कर्म चित्रमेतद्दहो परम् ॥२८॥
 स्त्रीणां कुतोऽयथा शक्तिरीदृशी विष्टपेऽखिले । जिनशासनदेवीभिर्नूनमेतदनुष्ठितम् ॥२९॥
 चिन्तयन्त्यमित्यादि सुयसत्त्वेन चेतसा । जगाम धरणीं पश्यन्नानासस्यसमाकुलाम् ॥३०॥
 व्यासशेषजगत्कीर्तिः प्रभाव परमं दधत् । सशत्रुघ्नो विवेशासौ विनीता^१ परमोदयः ॥३१॥
 साकं विजयसुन्दर्या तस्थौ तत्र रतिं भजन् । सुलोचनापरिष्करो यथा जलदनिस्वनः ॥३२॥
 आनन्दं सर्वलोकस्य कुर्वाणौ रामलक्ष्मणौ । कञ्चित्कालं पुरे स्थित्वा पृथिवीधरभूभृतः ॥३३॥
 जानक्या सह सन्मनस्य कर्तव्याहितमानसौ । भूयः प्रस्थातुमुद्युक्तौ समुद्देशमभोषितम् ॥३४॥
 वनमाला ततोऽजोचक्ष्मणं चारुलक्षणा । सवाप्ये बिभ्रती नेत्रे तरत्तरलतारके ॥३५॥
 भवश्यं यदि भोक्तव्या मन्दभाग्याहकं त्वया । पुरैव रक्षिता कस्मान्मुमुर्षन्ती बद्ध प्रिय ॥३६॥
 सौमित्रिरगवद् भद्रे विषादं मा गमः प्रिये । अत्यल्पेनैव कालेन पुनरेमि वरानने ॥३७॥
 सत्यगदर्शनहीना यौ गतिं यान्ति सुविभ्रमे । ज्ञयेथ तां पुनः शिष्टं न चेदेमि तवान्तिकम् ॥३८॥
 नराणां मानदग्धानां साधुनिन्दनकारिणाम् । प्रिये पापेन लिप्येऽहं यदि नायामि तैः श्रुतिकम् ॥३९॥
 रक्षितव्यं पितृर्षाक्यमस्माभिः प्राणवल्लभे । दक्षिणोदन्वतः कूलं गन्तव्यं निर्विचारणम् ॥४०॥
 मलयोपत्यका^३ प्राप्य कृत्वा परममालयम् । नेष्यामि भवतीमेव वरोह एतिसाम्रज्य^४ ॥४१॥
 समयैः^५ सान्त्वयित्वेति वनमालां सुभाषितैः । मेने छाङ्गलिनः पारव्यं सुमित्राङ्गुलिसम्भवः ॥४२॥

चाली वे नर्तकियों कहा गई होगी ? ॥२७॥ राजा अतिवीर्यके सामने हमारी परम स्तुति कर उन नर्तकियोने जो काम किया । अहो ! वह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥२८॥ अथवा समस्त संसारमें स्त्रियोंकी ऐसी शक्ति कहाँ है ? निश्चयसे यह कार्य जिनशासनकी देवियोंने किया है । तदनन्तर जो नाना प्रकारके धान्यसे युक्त पृथिवीको देख रहा था, जिसकी कीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त थी, जो परम प्रभावको धारण कर रहा था और जो उत्कृष्ट अभ्युदयसे युक्त था ऐसे भरतने शत्रुघ्नके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया ॥२९-३१॥ वहाँ विजयसुन्दरीके साथ प्रीतिकी धारण करता हुआ भरत सुलोचना सहित मेघस्वर (जयकुमार) के समान मुखसे रहने लगा ॥३२॥

अथानन्तर सब लोगोंको आनन्द उत्पन्न करते हुए राम-लक्ष्मण कुछ समय तक तो राजा पृथिवीधरके नगरमें रहे फिर जानकीके साथ सलाह कर आगेका कार्य निश्चित करते हुए इच्छित स्थान पर जानेके लिए उद्यत हुए ॥३३-३४॥ तदनन्तर जो सुन्दर लक्ष्णोंसे युक्त थी और ओसुओसे भीरी चञ्चल कनौनिकाओवाले नेत्र धारण कर रही थी ऐसी वनमाला लक्ष्मणसे बोली कि हे प्रिय । यदि मुझ मन्दभाग्याको तुम्हें अवश्य ही छोड़ना था तो पहले ही भरनेसे क्यों बचाया था सो कहो ॥३५-३६॥ तब लक्ष्मणने कहा कि हे भद्रे ! हे प्रिये ! हे वरानने ! विषादको प्राप्त मत होओ । मैं बहुत ही थोड़े समय बाद फिर आ जाऊँगा ॥३७॥ हे उत्तम विलासोको धारण करनेवाली प्रिये ! यदि मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास वापिस न आऊँ तो सत्यगदर्शनसे हीन मनुष्य जिस गतिको प्राप्त होते हैं उसी गतिको प्राप्त होऊँ ॥३८॥ हे प्रिये ! यदि मैं तुम्हारे पास न आऊँ तो साधुओंकी निन्दा करनेवाले अहंकारी मनुष्योंके पापसे लिप्त होऊँ ॥३९॥ हे प्राणवल्लभे ! हमें पिताके वचनकी रक्षा करनी है और विना कुछ विचार किये दक्षिण समुद्रके तट जाना है ॥४०॥ वहाँ मलयाचलकी उपत्यकामें जाकर उत्तम भवन बनाऊँगा और फिर तुम्हें ले जाऊँगा । हे सुन्दर जौवोवाली प्रिये ! तब तक धैर्य धारण करो ॥४१॥ इस प्रकार उत्तम शब्दोंसे युक्त शपथोंके द्वारा वनमालाको शान्तकर लक्ष्मण रामके पास जा पहुँचे ॥४२॥

१. अयोध्याम् । २. जयकुमारः, मेघस्वर इति तस्यैवापर नाम । ३. मलयापत्यका म० । ४. मात्रत म० । ५. शपथैः । समग्रैः म० ।

ततः सुसजने काले विदितौ तौ न केनचित् । निर्गन्ध नगराद्गन्तुं प्रवृत्तौ सह सीतया ॥४३॥
 प्रभाते तद्विनिर्मुक्तं पुरं दृष्ट्वाखिलो जनः । परमं शोकमापन्नः कृच्छ्रेणाधारयत्सन्तुम् ॥४४॥
 वनमाला गृहं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन विवर्जितम् । समयेषु समालम्ब्य जीवितं शोकिनी स्थिता ॥४५॥
 विहरन्ती ततः क्षीणीं लोकविस्मयकारिणौ । सुमुद्राते महासत्त्वो सक्षीतौ रामलक्ष्मणौ ॥४६॥
 युवत्युज्ज्वलवल्लीनां मनोनयनपल्लवान् । तावन्ननुपारेण दहन्तावाद्यतुः शनैः ॥४७॥
 कस्य पुण्यवतो गोत्रमेताभ्यां समलंकृतम् । सुजाता अनर्वा सैका लोके यैतावजीजनत् ॥४८॥
 धन्येय वनितैताभ्यां सम या चरति चितिम् । ईदृश यदि देवानां रूप देवास्ततः स्फुटम् ॥४९॥
 कृतः समागतावेतौ व्रजतो वा क्व सुन्दरौ । बाण्युतः किमिदं कर्तुं सृष्टिरीदृशिय कथम् ॥५०॥
 सख्योऽनेन पथा दृष्टौ पुण्डरीकनिरीक्षणे । व्रजन्ती सहितौ बायां क्वचिच्छन्दनिभाननौ ॥५१॥
 यदिमी शोभिनीं मुग्धे मनुष्यावथवा सुरौ । तत्किमर्थं त्वया शोको धार्यते गतलज्जया ॥५२॥
 अयि मूढे न पुण्येन नितान्तं शूरिणा विना । लभ्यते सुचिरं द्रष्टुमेवविधनराकृतः ॥५३॥
 निवर्तस्व भज स्वास्थ्यं त्वस्तं वसनमुद्धर । मा नैपीर्लोचने खेदमतिमात्रप्रसारिते ॥५४॥
 नेत्रमानसचौराभ्यां दृष्टाभ्यामपि बाणिके । निष्ठुराभ्यां किमेताभ्यां काभ्यामपि धृष्टिं भज ॥५५॥
 दृष्ट्याद्यालापसप्तकं कुर्वाणवबलाजनम् । रेमाते शुद्धचिन्तौ तौ स्वेच्छाविहृतिकारिणौ ॥५६॥
 नानाजनपदाकीर्णं पर्यव्य चरिणीमिमौ । क्षेमाञ्जलिसमाख्यानं सम्प्राप्तौ परमं सुरम् ॥५७॥
 उद्याने निकटे तस्य जलदोल्करसन्निभे । अवस्थिताः सुखेनैते यथा सौमनसे सुराः ॥५८॥

तदनन्तर जब सब लोग सो गये तब किसीके बिना जाने ही राम लक्ष्मण और सीताके साथ नगरसे निकल कर आगेके लिए चल पड़े ॥४३॥ जब प्रभात हुआ तब नगरको उनसे रहित देख समस्त जन परम शोकको प्राप्त हुए तथा बड़े कष्टसे शरीरको धारण कर सके ॥४४॥ वनमाला भी घरको लक्ष्मणसे रहित देख बहुत शोकको प्राप्त हुई तथा लक्ष्मणके द्वारा की हुई शपथोंका आश्रय ले जीवित रही ॥४५॥ तदनन्तर महान् धैर्यके धारक राम लक्ष्मण पृथ्वी पर विहार करते हुए परम आनन्दको प्राप्त हुए । उन्हें देख लोगोको आश्चर्य उत्पन्न होता था ॥४६॥ वे तरुण स्त्रीरूपी उज्ज्वल लताओंके मन और नेत्ररूपी पल्लवोंको कामरूपी तुषारसे जलाते हुए धीरे-धीरे विहार करते थे ॥४७॥ 'हे सखि ! इन दोनोंने किस पुण्यात्माका कुल अलंकृत किया है ? वह कौन-सी भाग्यशालिनी माता है जिसने इन दोनोंको जन्म दिया है ? ॥४८॥ यह स्त्री धन्य है जो इनके साथ पृथ्वी पर विहार कर रही है । यदि ऐसा रूप देवोंका होता है तो निश्चित ही ये देव हैं ॥४९॥ ये सुन्दर पुरुष कहाँसे आये हैं ? कहाँ जा रहे हैं ? और क्या करना चाहते हैं इनकी यह ऐसी रचना कैसे हो गई ? ॥५०॥ जिनके नेत्र कमलके समान तथा मुख चन्द्रमाके तुल्य हैं ऐसे दो पुरुष एक स्त्रीके साथ इस मार्गसे जा रहे थे सो हे सखियो ! तुमने देखे ॥५१॥ हे मुग्धे ! ये अतिशय सुशोभित व्यक्ति मनुष्य हों अथवा देव, तू निर्लज्ज होकर शोक किस लिए धारण कर रही है ? ॥५२॥ अयि मूर्ख ! ऐसे मनुष्योंका रूप बहुत भारी पुण्यके बिना चिरकाल तक देखनेको प्राप्त नहीं होता ॥५३॥ इसलिये लौट जा, स्वस्थ हो, नीचे खिसके हुए वस्त्रोंको संभाल और अत्यधिक पसारे हुए नेत्रोंको खेद मत प्राप्त करा ॥५४॥ अरी बाले ! नेत्र और मनको चुरानेवाले इन कठोर पुरुषोंके देखनेसे क्या प्रयोजन है ? शीरज घर ॥५५॥ इस प्रकार स्त्रीजनोंको वार्तालाप करनेमें तत्पर करते हुए शुद्धचित्तके धारक वे दोनों स्वेच्छासे विहार कर रहे थे ॥५६॥ इस प्रकार नाना देशोंसे व्याप्त पृथिवी में विहार करते हुए वे क्षेमाञ्जलि नामके परम सुन्दर नगरमें पहुँचे ॥५७॥ उस नगरके निकट ही वे मेघसमूहके समान सुन्दर एक उद्यानमें सुखपूर्वक इस प्रकार ठहर गये जिस प्रकार कि

भद्रं वरगुणं भुक्त्वा लक्ष्मणेनोपसाधितम् । साध्वीकं सीतया सार्धमसेवत हलायुधः ॥५६॥
 'प्रासादगिरिमालाभिस्ततो हृतनिरीक्षणः । लक्ष्मणः पद्मतोऽनुज्ञां प्राप्य प्रश्रययाचिताम् ॥६०॥
 दधानः प्रवरं मात्स्यं पीताम्बरधरः शुभः । स्वैरं क्षेमाञ्जलिं द्रष्टुं प्रतस्थे चारुविभ्रमः ॥६१॥
 नानालतोपगृहानि काननानि वराण्यसौ । सरितः स्वच्छतोयाश्च शुभ्राभ्रसमसैकताः ॥६२॥
 विचित्रधातुरङ्गाश्च परिक्रीडनपर्वतान् । देवधामानि तुहानि कूपान् वापीः सभाः प्रपाः ॥६३॥
 लोकं च विविधं पश्यन् दृश्यमानः सविस्मयम् । विवेश नगरं धीरो नानान्यापारमद्गुलम् ॥६४॥
 शृणु शृण्वति तत्रायं प्रधानविशिखागतम् । अशृणोत्पौरतः शब्दमिति विश्रब्धभाषितम् ॥६५॥
 पुरुषः कोऽन्वसौ लोके यो मुक्तो राजपाणिना । शक्तिं प्रसह्य शूरेन्द्रो जितपद्मा गृहीप्यति ॥६६॥
 स्वर्गे राज्यं ददामीति राजा चैत्यतिपद्यते । तथापि नानया कृत्यं कथया शक्तियातया ॥६७॥
 जातश्चाभिमुखः शक्तेः प्राणैश्च परिवर्जितः । किं करिष्यति कन्यास्य राज्यं वा त्रिदशालये ॥६८॥
 समस्तेभ्यो हि वस्तुभ्यः प्रियं जगति जीवितम् । तदर्थमितरद सर्वमिति को नावगच्छति ॥६९॥
 श्रुत्वैवं कौतुकी कञ्चिदथ पप्रच्छ मानवम् । भद्र ! का जितपद्मेयं पदार्थं आपते जनः ॥७०॥
 सोऽञ्चोच्चमृद्युक्त्यासावतिपण्डितमामिनी । किं न ते विदिता सर्वलोकविख्यातकीर्तिका ॥७१॥
 एतन्नगरायास्य राज्ञः शत्रुन्दमश्रुतेः । कनकाभाममुत्पन्ना दुहिता गुणशालिनी ॥७२॥
 यतोऽनया जित पद्मं कान्त्या वदनजातया । पद्मा च सर्वगात्रेण जितपद्मोदिता ततः ॥७३॥

सौमनस वनमें देव ठहर जाते हैं ॥५८॥ वहाँ लक्ष्मणके द्वारा तैयार किया उत्तम भोजन ग्रहण कर रामने सीताके साथ दाखोंका मधुर पेय दिया ॥५९॥

तदनन्तर बड़े-बड़े महल रूपी पर्वतोंकी पंक्तियोंसे जिनके नेत्र हरे गये थे ऐसे लक्ष्मण विनय पूर्वक रामसे आज्ञा प्राप्तकर इच्छानुसार क्षेमाञ्जलि नगर देखनेके लिए चले । उस समय वे उत्तम मालाएँ और पीतवस्त्र धारण किये हुए थे तथा सुन्दर विलाससे सहित थे ॥६०-६१॥ नाना लताओंसे आलिङ्गित उत्तमोत्तम वनों, स्वच्छ जलसे भरी तथा शुक्लमेवांके समान उज्ज्वल तटोंसे शोभित नदियों, नाना प्रकारकी धातुओंसे रङ्ग-विरङ्गे क्रीड़ा-पर्वतों, ऊँचे-ऊँचे जिन-मन्दिर, कुओं, वापिकाओं, सभाओं, पानीयशालाओं और अनेक प्रकारके मनुष्योंको देखते हुए उन्होंने नाना प्रकारके व्यापार-कार्योंसे युक्त नगरमें बड़ी धीरतासे प्रवेश किया । लोग उन्हें बड़े आश्चर्यसे देख रहे थे ॥६२-६४॥ जब ये नगरके प्रधान मार्गमें पहुँचे तब उन्होंने किसी नगरवासीसे निश्चिन्ततापूर्वक कहा हुआ यह शब्द सुना ॥६५॥ वह किसी से कह रहा था कि अरे सुनो-सुनो, संसारमें ऐसा कौन शूरवीर पुरुष है जो राजाके हाथसे छोड़ी हुई शक्तिको सहकर 'जितपद्मा' कन्याको ग्रहण करेगा ? ॥६६॥ यदि राजा यह भी कहे कि मैं स्वर्गका राज्य देता हूँ तो भी शक्तिके सम्बन्ध रखनेवाली इस कथासे क्या प्रयोजन है ? ॥६७॥ यदि कोई शक्ति भेड़नेके लिए सम्मुख हुआ और प्राणोंसे रहित हो गया तो यह कन्या और स्वर्ग का राज्य उसका क्या कर लेगा ? ॥६८॥ 'संसारमें समस्त वस्तुओंसे जीवन ही व्यापार है और उसीके लिए अन्य सब प्रयत्न हैं' यह कौन नहीं जानता है ? ॥६९॥

अथानन्तर इस प्रकारके शब्द सुनकर लक्ष्मणने कौतुक वश किसी मनुष्यसे पृष्टा कि हे भद्र ! यह जितपद्मा कौन है ? जिसके लिए लोग इस प्रकार वार्ता कर रहे हैं ॥७०॥ इसके उत्तरमें उस मनुष्यने कहा कि जिसकी कीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त है तथा जो अपने आपको अति पण्डित मानती है ऐसी इस कालकन्याकी क्या तुम नहीं जानते ? ॥७१॥ यह इस नगरके राजा शत्रुन्दमनकी कनकाभा रानीसे उत्पन्न गुणवती पुत्री है ॥७२॥ चूँकि इसने मुखकी कान्तिसे

नवयौवनसम्पन्ना कलालङ्कारधारिणी । पुंसोऽपि त्रिदशान् द्वेष्टि मनुष्येषु कथात्र का ॥७४॥
 उच्चारयति नो शब्दमपि पुल्लिङ्गवर्तिनम् । व्यवहारः समस्तोऽस्याः पुत्रपार्थविवर्जितः ॥७५॥
 अदः पश्यसि कैलाससदृशं भवनं वरम् । अत्र तिष्ठत्यसौ कन्या शतसेवनलालिता ॥७६॥
 शक्ति यः पाणिना मुक्तां पित्रास्याः सहते नरः । वृणुते तमियं दग्ध-समीहा कृष्णशालिनी ॥७७॥
 लक्ष्मीधरः समाकर्ण्य सकोपस्मयविस्मयः । दध्यौ सा कीदृशी नाम कन्या यैवं समीहते ॥७८॥
 दुष्टचेष्टामिमां तावत्कन्यां पश्यामि गर्विताम् । अहो पुनरभिप्रायः प्रौढोऽयमनया कृतः ॥७९॥
 ध्यायन्निति महोच्चेत् राजमार्गेण चारुणा । विमानामान् महाशब्दान् प्रासादाविधुषाण्डुरान् ॥८०॥
 दन्तिनो जलदाकारास्तुरङ्गाश्चलचामरान् । बलमीर्तृत्वशालांश्च पश्यन् मन्थरचक्षुषा ॥८१॥
 नानानिर्व्यूहसम्पन्न विचित्रध्वजशोभितम् । शुभ्राभ्रराशिसङ्काश प्राप शत्रुन्दमालयम् ॥८२॥
 भास्वन्नक्षितशार्ङ्गीं तुङ्गप्राकारयोजितम् । द्वारं तस्य हृदौकैऽसौ शकचापाभतोरणम् ॥८३॥
 शस्त्रिबुन्दान्वृते तस्मिन्नानोपायनसङ्कुले । निर्गच्छन्निर्विशङ्गिश्च सामन्तैरतिसङ्गते ॥८४॥
 द्वास्थेन प्रविशन्नेव बभापे सौम्यया गिरा । कस्त्वमज्ञापितो भद्र विशसि क्वितिपालयम् ॥८५॥
 सोऽवोचद्वद्रुमिच्छामि राजानं गच्छ वेदय । स्वपदेऽन्यमसौ कृत्वा गत्वा राज्ञे न्यवेदयत् ॥८६॥
 दिदक्षुस्त्वं महाराज पुमानिन्दीवरप्रभः । राजीवलोचनः श्रीमान् सौम्यो द्वारेऽवतिष्ठते ॥८७॥

कमलको अथवा सर्व शरीरसे लक्ष्मीको जीत लिया है इसलिए यह जितपद्मा कहलाती है ॥७३॥ नवयौवनसे सम्पन्न तथा कलारूपी अलंकारोंको धारण करनेवाली यह कन्या पुंवेदधारी देवोसे भी द्वेष करती है फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥७४॥ जो शब्द व्याकरणकी दृष्टिसे पुल्लिङ्ग होता है यह उसका भी उच्चारण नहीं करती है । इसका जितना भी व्यवहार है वह सब पुरुषोंके प्रयोजनसे रहित है ॥७५॥ सामने जो कैलास पर्वतके समान बड़ा भवन देख रहे हो उसीमे यह सैकड़ों प्रकारकी सेवाओंसे लालित होती हुई रहती है ॥७६॥ जो मनुष्य इसके पिताके हाथसे छोड़ी हुई शक्तिको सहन करेगा उसे ही यह बरेगी ऐसी कठिन प्रतिज्ञा इसने ले रखी है ॥७७॥

यह सुनकर लक्ष्मण क्रोध, गर्व और आश्चर्यसे युक्त हो विचार करने लगे कि वह कन्या कैसी होगी जो इस प्रकारकी चेष्टा करती है ॥७८॥ दुष्ट चेष्टासे युक्त तथा गर्वसे भरी इस कन्याको देखूँ तो सही । अहो ! इसने यह बड़ा कठोर अभिप्राय कर रक्खा है ॥७९॥ इस प्रकार विचार करते हुए लक्ष्मण महावृषभकी नाई सुन्दर चालसे चलकर मनोहर राजमार्गमें आगे बढ़े । वहाँ वे विमानके समान आभावाले तथा चन्द्रमाके समान धवल उत्तमोत्तम भवनों, मेघोंके समान हाथियों, चञ्चल चमरोंसे सुशोभित घोड़ों, छपरियों और नृत्यशालाओंकी धीमी दृष्टिसे देखते जाते थे ॥८०-८१॥ तदनन्तर जो नाना प्राकारके निर्व्यूहोंसे युक्त था, रङ्ग विरङ्गी ध्वजाओंसे सुशोभित था, तथा जो सफेद मेघावलीके समान था ऐसे राजा शत्रुन्दमके महलपर पहुँचे ॥८२॥ महलका द्वार सैकड़ों देदीप्यमान बेलवूटोंसे सहित था, ऊँचे प्रकारसे युक्त था, और इन्द्रधनुषके समान रङ्ग-विरङ्गे तोरणोंसे सुशोभित था ॥८३॥ तदनन्तर जो शस्त्रधारी पहरेदारोंके समूहसे आवृत था, नाना प्रकारके उपहारोंसे युक्त था और जहाँ बाहर निकलते तथा भीतर प्रवेश करते हुए सामन्तोंकी बड़ी भीड़ लग रही थी ऐसे द्वारमे लक्ष्मण प्रवेश करने लगे तो द्वारपालने सौम्यवाणीसे कहा कि हे भद्र ! तू कौन है जो बिना आज्ञा ही राजमहलमे प्रवेश कर रहा है ॥८४-८५॥ तब लक्ष्मणने कहा कि मैं राजाके दर्शन करना चाहता हूँ सो राजाको खबर दे दो । यह सुन अपने स्थान पर दूसरेको नियुक्तकर द्वारपालने भीतर जाकर राजासे निवेदन किया कि ॥८६॥ हे महाराज ! जो आपके दर्शन करना चाहता है,

अमात्यवदनं धीक्ष्य राजाबोचद्विशस्विति । ततः सुतः सुमित्रायाः प्रतीहारोदितोऽविशत् ॥८८॥
 तं दृष्ट्वा सुन्दराकारं सुगम्भीरापि सा सभा । समुद्रमूर्तिवत्बोभं गता शीतान्शुदर्शने ॥८९॥
 प्रणामरहितं दृष्ट्वा विकटोऽसं सुभासुरम् । किञ्चिद्धि कृतचेतस्कस्तमपृच्छदरिन्दमः ॥९०॥
 कुतः समागतः कस्त्वं किमर्थं क कृतश्रमः । ततो लक्ष्मीधरोऽबोचत् प्रातृप्रेषधनध्वनिः ॥९१॥
 बाह्योऽहं भरतस्यापि महीहिण्डनपण्डितः । विद्वान् सर्वत्र ते भद्रेषु दुहितुर्मानमागतः ॥९२॥
 अभयमानश्रद्धेयं दुष्टकन्यागर्वा त्वया । पोषिता सवलोकस्य वरते दुःखदायिनी ॥९३॥
 सोऽबोचद् यो मया मुक्तां शक्तः शक्तिं प्रतीक्षितुम् । कोऽसौ नु जितपद्माया मानस्य ध्वंसको भवेत् ॥९४॥
 उवाच लक्ष्मणः शक्त्या ग्रहणं मे किमेकया । शक्तीः पञ्च विभुज्ज त्वं मयि शक्त्या समस्तया ॥९५॥
 विवाधो गविणोरेव प्रवृत्तो यावदेतयोः । गवाक्षा निविडास्तावत्पिहित्वा वनिताननैः ॥९६॥
 परित्यक्तनद्वेपा दृष्ट्वा लक्ष्मणपुङ्गवम् । निर्व्यूहस्या जिताम्भोजा संज्ञादानादवारयत् ॥९७॥
 दक्षवदाञ्जलि भीरं सौमित्रिरिति सञ्ज्ञया । चकार जातबोधो तां मा मैयिरिति सम्मदी ॥९८॥
 जगाद च किमद्यापि कातर त्वं प्रतीक्षते । विभुज्जारिन्दमाभिख्य शक्तिं शक्तिं निवेदय ॥९९॥
 द्रष्टुमः कुपितो राजा वदध्वा परिकरं ददम् । ज्वलत्पावकसंकाशं शक्तिनेकासुपादौ ॥१००॥
 प्रतीक्षेच्छसि मर्तुं चेदित्युक्त्वा श्रुङ्गी दधत् । बैशाख स्यानकं कृत्वा तां सुमोच विधानवित् ॥१०१॥

जिसकी प्रभा नील कमलके समान है, जिसके नेत्र कमलोंके समान सुशोभित हैं तथा जो अत्यन्त सौम्य है ऐसा एक शोभासम्पन्न पुरुष द्वार पर खड़ा है ॥८७॥ मन्त्रीके मुखकी ओर देख राजाने कहा कि 'प्रवेश करे' । तदनन्तर द्वारपालके कहने पर लक्ष्मणने भीतर प्रवेश किया ॥८८॥ यद्यपि वह सभा गम्भीर थी तो भी जिस प्रकार चन्द्रमाको देखकर समुद्र जीभको प्राप्त होता है उसी प्रकार वह सभा भी सुन्दर आकारके धारक लक्ष्मणको देखकर जीभको प्राप्त हो गई ॥८९॥ प्रणामरहित, विशाल कन्धोंके धारक तथा अतिशय देवीयमान लक्ष्मणको देखकर जिसका हृदय कुछ-कुछ विकृत हो रहा था ऐसे राजा शत्रुदमने पूछा कि तू कहाँसे आया है ? कौन है ? और किस लिए आया है ? इसके उत्तरसे वर्षा ऋतुके मेघके समान गम्भीर ध्वनिकी धारण करनेवाले लक्ष्मणने कहा ॥९०-९१॥ कि मैं राजा भरतका सेवक हूँ, पृथ्वी पर घूमनेमें निपुण हूँ, सब विषयोंका पण्डित हूँ और तुम्हारी पुत्रीका मान भङ्ग करनेके लिए आया हूँ ॥९२॥ जिसके मानरूपी सींग अभ्यन्त है ऐसी जो दुष्ट कन्यारूपी मरकती गाय तुमने पाल रखी है वह सब लोगोंको दुःख देनेवाली है ॥९३॥ राजा शत्रुदमने कहा कि जो मेरे द्वारा छोड़ी हुई शक्तिकी सदन करनेसे समर्थ है ऐसा वह कौन पुरुष है जो जितपद्माका मान खण्डित करनेवाला हो ॥९४॥ लक्ष्मणने कहा कि मैं एक शक्तिको क्या ग्रहण करूँ ? तू पूरी सामर्थ्यके साथ सुम्भर पाँच शक्तियों छोड़ ॥९५॥ यहाँ जब तक दोनो अहंकारियोंके बीच इस प्रकार का विवाद चल रहा था वहाँ तब तक राजमहलके सघन भरोखे स्त्रियोंके मुखोंसे आच्छादित हो गये ॥९६॥ जितपद्मा भी लक्ष्मणको देख मोहित हो गई और पुरुषोंके साथ द्वेषकी छोड़कर छपरी पर आ बैठी तथा इशारा देकर लक्ष्मणको मना करने लगी ॥९७॥ तब हर्षसे भरे लक्ष्मणने भयभीत तथा हाथ जोड़ कर बैठी हुई जितपद्माको इशारा देकर जताया कि भय मत करो ॥९८॥ और राजासे कहा कि अरे कातर ! अब भी क्या प्रतीक्षा कर रहा है ? शत्रुदम नाम रखे फिरता है । शक्ति छोड़ और पराक्रम दिखा ॥९९॥ इस प्रकार कहने पर राजाने कुपित हो अच्छी तरह कमर कसी और जलती हुई अग्निके समान एक शक्ति उठाई ॥१००॥ तदनन्तर 'यदि मरना ही चाहता है तो ले मेल' यह कहकर मौहको धारण करनेवाले विधि-विधानके

अग्रनेनेव सा तेन धृता दक्षिणपाणिना । वर्तिकाग्रहणे को वा बहुमानो गरुत्मतः ॥१०२॥
 द्वितीयेतरहस्तेन कक्षाभ्यां द्वे सुविभ्रमः । शुशुभे सुभृशं तामिश्चतुर्दन्त इव द्विपः ॥१०३॥
 संकुद्भोगिभोगाभ्यां सम्प्राप्तामथ पञ्चमांशम् । दन्ताग्राम्यां दधौ शक्तिं पेश्यामिव मृगाधिपः ॥१०४॥
 ततो देवगणाः स्वस्था वहुषु पुष्पसंहतिम् । ननुतस्ताडयांश्चकुर्दुन्दुभीश्च कृतस्त्वनाः ॥१०५॥
 प्रतीच्छारिन्दमेदानीं शक्तिं त्वमिति लक्ष्मणे । कुतश्चदे परं प्राप साध्वसं सकलो जनः ॥१०६॥
 तमक्षततनुं दृष्ट्वा लक्ष्मीगिलयवहसम् । विस्मितोऽरिन्दमो जातखपावनमिताननः ॥१०७॥
 जितपद्मा ततः प्राप स्मितच्छायावतानना । लक्ष्मीश्वरं समाकृष्टा रूपेणाचरितेन च ॥१०८॥
 धृतशक्तेः समीपेऽस्य सा तन्वी शुशुभेतराम् । कुलिशायुधपाशस्था शचीर्वै विनतानना ॥१०९॥
 नवेन संगमेनास्या हृदयं तस्य कंषितम् । यश्चासौतु कपितं जातु संग्रामेषु महत्त्वपि ॥११०॥
 पुरस्तातनेरशानीं कन्यया लक्ष्मणा वृतः । विमिश्रापन्नपापाली तन्मन्यस्तेनैव ॥१११॥
 सद्यो विनयनम्रांगो राजानं लक्ष्मणोऽग्रवीत् । मामकार्दसि मे क्षंतुं शैशवाद्दुर्विचेष्टितम् ॥११२॥
 बालानां प्रतिकूलेन कर्मणा वचसापि वा । भवद्विधा सुगंभीरा नैव यान्ति विकारिताम् ॥११३॥
 ततः शत्रुन्दमोऽप्येनं सप्रमोदः ससंभ्रमः । स्तवैरमकराभाम्यां करभ्यां परिपण्वजे ॥११४॥
 उवाच च परिक्लिन्नगण्डाक्षण्डान् गजान् जघात् । योजीयं भीमयुद्धेषु भद्र सोऽहं त्वया जितः ॥११५॥

ज्ञाता राजाने आलीढ़ आसनसे खड़ा होकर वह गदा छोड़ दी ॥१०१॥ लक्ष्मणने बिना किसी यत्नके ही दाहिने हाथसे वह शक्ति पकड़ ली सो ठीक ही है क्योंकि वटेरके पकड़नेमें गरुडका कौन-सा बड़ा मान होता है ? ॥१०२॥ दूसरी शक्ति दूसरे हाथसे तथा वीसरी चौथी शक्ति दोनों बगलमें धारण कर पुलकते हुए लक्ष्मण उनसे चार दाँतोंकी धारण करनेवाले पेराबत हाथीके समान अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥१०३॥ अथानन्तर अत्यन्त कुपित सौंपकी फणकी नाई जो पाँचवीं शक्ति आई उसे लक्ष्मणने दाँतोंके अग्रभागसे उस प्रकार पकड़ लिया जिस प्रकार कि मृगराज मांसकी डलीको पकड़ रखता है ॥१०४॥ तदनन्तर आकाशमें खड़े देवोंके समूह पुष्प बरसाने लगे, नृत्य करने लगे तथा हर्षसे शब्द करते हुए दुन्दुभि बाजे बजाने लगे ॥१०५॥

अथानन्तर 'शत्रुन्दम ! अब तू मेरी शक्ति फेल' इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर सबलोग अत्यन्त भयको प्राप्त हुए ॥१०६॥ राजा शत्रुन्दम लक्ष्मणको अक्षत शरीर देख विस्मयमें पड़ गया और लज्जासे उसका मुख नीचा हो गया ॥१०७॥ तदनन्तर मन्द मुसकानकी छायासे जिसका मुख नीचेकी ओर हो रहा था ऐसी जितपद्मा रूप तथा आचरणसे खिचकर लक्ष्मण के पास आई ॥१०८॥ शक्तियोंको धारण करनेवाले लक्ष्मणके पास वह कृशाङ्गी, इस तरह अत्यन्त सुशोभित हो रही थी जिस तरह कि वज्रके धारक इन्द्रके पास खड़ी नतमुखी इन्द्राणी सुशोभित होती है ॥१०९॥ लक्ष्मणका जो हृदय बड़े-बड़े संग्रामोंमें भी कभी कम्पित नहीं हुआ था वह जितपद्माके नूतन समागमसे कम्पित हो गया ॥११०॥ तदनन्तर लज्जाके भारसे जिसके नेत्र नीचे हो रहे थे ऐसी जितपद्माने पिता तथा अन्य अनेक राजाओंके सामने लज्जा छोड़कर लक्ष्मणका वरण किया ॥१११॥ तत्काल ही विनयसे जिसका शरीर नम्रीभूत हो रहा था ऐसे लक्ष्मणने राजासे कहा कि हे माम ! लड़कपनके कारण मैंने जो खोटी चेष्टा की है उसे आप क्षमा करनेके योग्य हैं ॥११२॥ बालकोंके विपरीत कार्य अथवा विरुद्ध वचनोंसे आप जैसे महागम्भीर पुरुष विकार भावको प्राप्त नहीं होते ॥११३॥

तदनन्तर हर्ष और संग्रामसे सहित राजा शत्रुन्दमने भी हाथीकी सूँडके समान लम्बी तथा सुपुष्ट भुजाओंसे लक्ष्मणका आलिङ्गन किया ॥११४॥ और कहा कि हे भद्र ! जिस सैन

बन्धानि महाबापाय गडशैलसमविपः । विमदीकृतवानस्मि लोभ्यमन्य इवाभवम् ॥११६॥
 अहो दीर्घमहो रूपं सदृशाः शुभ ते गुणाः । अहोतुद्धततात्त्वन्तं प्रश्रयश्च तवाद्भुतः ॥११७॥
 भाषमाणे गुणानेवं राक्षि संसच्यस्थिते । लक्ष्मीधरस्त्रपातोऽभूत् क्वापि यात इव क्षणम् ॥११८॥
 अथ लब्धभुदृमातवोपयेयः समाहताः । राजादेशात् समाभ्याताः शंखाः 'संशितवारणाः ॥११९॥
 यथेष्टं दीयमानेषु धनेषु परमस्ततः । आनन्दोऽनर्तताशेषनगरचोभदक्षिणः ॥१२०॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽवाचि राजा पुरुषपुङ्गव । त्वया दुहितुर्विच्छामि पाणिग्रहणमचितुम् ॥१२१॥
 सोऽवोचन्नगरस्यास्य प्रदेशे निकटे मम । ज्येष्ठतिष्ठस्ति तं पृच्छ स जानाति यथोचितम् ॥१२२॥
 ततः स्यन्दनमारोह्य जितपद्मां सलक्ष्मणाम् । सदारवन्धुरभ्याशं प्रतस्ये तस्य सादरः ॥१२३॥
 ततः क्षुत्पापमानायनिर्वोपप्रतिमध्वनिम् । सुत्वा वीक्ष्य विमाल च धूलीपटलमुदगतम् ॥१२४॥
 जानुन्यस्तमुद्धत्सतस्करा कृच्छ्रासमुत्पिता । सीता जगाद् सम्भ्राता गिरा प्रस्खलिता मुहुः ॥१२५॥
 कृत सौमित्रिणा नूनं रावबोद्धतचेष्टितम् । आशेषमाकुलात्यन्तं दृश्यते कृत्यमाश्रय ॥१२६॥
 आश्लिष्य जानकीं देवि मा भैषीरिति शब्दयन् । उचस्थी राघवः विप्रं दष्टिं अनुपि पातयन् ॥१२७॥
 तावच्च नरवृन्दस्य सहनः स्थितमग्रतः । सुतारगीतनिस्त्वानमीकाक्षकैः ज्ञानजम् ॥१२८॥
 क्रमेण गच्छतश्चास्य प्रत्यासत्तिं मनोहराः । विभ्रमाः समदृश्यन्त सुदरावयवोत्पिताः ॥१२९॥
 नृत्यन्तं च समालोक्य तारनूपुरगङ्गितम् । विभ्रव्यः सीतया सार्कं पद्मः पुनरुपाविशत् ॥१३०॥

भयङ्कर युद्धो मे मद्स्त्रावी कुपित हाथियोंको क्षणभरमे जीता था वह मैं आज तुम्हारे द्वारा जीता गया ॥११५॥ जिसने गोल काली चट्टानोवाले पर्वतके समान कान्तिके धारक बड़े-बड़े जङ्गली हाथियोंको मर्दरहित किया था वह मैं आज मानो अन्य ही हो गया हूँ ॥११६॥ धन्य तुम्हारी अनुद्धतता और धन्य तुम्हारी अद्भुत विनय । अहो शोभनीक ! तुम्हारे गुण तुम्हारे अनुरूप ही हैं ॥११७॥ इस प्रकार समामें बैठा राजा शत्रुन्दम जब लक्ष्मणके गुणोंका वर्णन कर रहा था तब लक्ष्मण लज्जाके कारण ऐसे हो गये मानो क्षणभरके लिए कहीं चले ही गये हों ॥११८॥

अथानन्तर राजाकी आह्वासे मेवसमूहकी गर्जनाके समान विशाल शब्द करनेवाली भेरियों वजाईं गईं और हाथियोंकी चिंघाड़का संशय उत्पन्न करनेवाले शङ्ख फूँके गये ॥११९॥ इच्छानुसार धन दिया जाने लगा और समस्त नगरको क्षोभित करनेमें समर्थ बहुत भारी आनन्द प्रवृत्त हुआ ॥१२०॥ तदनन्तर राजाने लक्ष्मणसे कहा कि हे श्रेष्ठ पुरुष ! मैं तुम्हारे साथ पुत्रीका पाणिग्रहण देखना चाहता हूँ ॥१२१॥ इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि इस नगरके निकटवर्ती प्रदेशमें मेरे वड़े भाई विराजमान हैं सो उनसे पूछो वही ठीक जानते हैं ॥१२२॥ तब लक्ष्मण सहित जितपद्माको रथ पर बैठाकर खियों तथा भाई-बन्धुओंसे सहित राजा शत्रुन्दम वड़े आदरके साथ रामके समीप चला ॥१२३॥ तदनन्तर क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रकी गर्जनाके समान जोरदार शब्द सुनकर और चठे हुए विशाल धूलिपटलकी देखकर घुटनों पर बार-बार हाथ रखती हुई सीता बड़े कष्टसे उठी और धनडाकर स्खलित वागीमें रामसे बोली कि हे राघव ! जान पड़ता है लक्ष्मणने कोई उद्धत चेष्टा की है । यह दिशा अत्यन्त आकुल दिखाई देती है इसलिये सावधान होओ और जो कुछ करना हो सो करो ॥१२४-१२६॥ तब सीताका आलिङ्गन कर 'हे देवि ! भयभीत मत होओ' यह कहते तथा श्रीग्रीह ही धनुष पर दृष्टि डालते हुए राम चठे ॥१२७॥ इतनेमें ही उन्होंने विशाल नर-समूहके आगे लक्ष्मणसे मङ्गल गीत गानेवाली खियोंका समूह देखा ॥१२८॥ वह खियोंका समूह जब क्रम-क्रमसे पास आया तब सुन्दर खियोंके शरीरसे उत्पन्न होनेवाले मनोहर हाव-भाव दिखाई दिये ॥१२९॥ तदनन्तर जिनके नूपुरोंकी

स्त्रियो मङ्गलहस्तास्तं सर्वालङ्कारभूषिताः । जुडौकिरेऽतिहारिण्यः समदस्फीतलोचनाः ॥१३१॥
 रथादुत्तीर्य पद्मास्यः सहितो जितपद्मया । पतिः पपात पद्मायाः पद्मस्य चरणौ द्रुतम् ॥१३२॥
 पद्मस्य प्रणतिं कृत्वा सीताया अपि सत्रपः । निविश्य नात्तिनिकटे पद्मस्य विनयी स्थितः ॥१३३॥
 नृपाः शत्रुन्दमाद्याश्च क्रमात्कृत्वा नमस्कृतिम् । पद्मस्य सहसीतस्य यथास्थानमवस्थिताः ॥१३४॥
 तत्र सङ्गृह्य स्थित्वा कुशलप्रश्नपूर्वकाः । कृते च पुनरानन्दनर्तने पार्थिवैरपि ॥१३५॥
 श्रद्धया परमया युक्तः ससीतो लक्ष्मणो बलः । प्रविष्टः स्यन्दनास्त्रो नगरं प्रमदान्वितः ॥१३६॥
 तत्र लावण्यकिञ्चकयोषित्कुलवयाकुले । महाप्रासादसरसि स्वनद्भूषणपक्षिणि ॥१३७॥
 नरेभकलभौ सत्यव्रतसिंहध्वनेरलम् । त्रासात् सङ्कुचितस्वान्तौ कुमारश्रीसमन्वितौ ॥१३८॥
 शत्रुन्दमकृतच्छन्दौ किञ्चिक्कालं महासुखौ । उपितौ सर्वलोकस्य चित्ताह्लादनदायिनी ॥१३९॥
 जितपद्मां ततो भीतां विरहादतिदुःखिताम् । परिसान्त्वय प्रियैर्वाक्यैर्वनमालामिवाद्रात् ॥१४०॥
 पद्मः सीतानुगो भूत्वा निशीथे स्वरनिर्गते । यातो लक्ष्मीधरो दत्त्वा पौराणामधृतिं पराम् ॥१४१॥

शार्दूलविक्रीडितम्

ये जन्मान्तरसञ्चितासिद्धिं कृताः सर्वासुभाजां प्रियाः ।

यं यं देशमुपव्रजन्ति विविध कृत्यं भजन्तः परम् ॥

तस्मिन्सर्वहृषीकसौख्यचतुरस्तेषां विना चिन्तया ।

मृष्टात्मादिविधिर्भवत्यनुपमो यो विष्टे दुर्लभः ॥१४२॥

जोरदार भनकार फैल रही थी ऐसी स्त्रियोंके समूहको नृत्य करता देख राम निश्चिन्त हो सीताके साथ पुनः बैठ गये ॥१३०॥

अथानन्तर जिनके हाथोंमें मङ्गल द्रव्य थे, जो सब प्रकारके अलङ्कारोंसे अलङ्कृत थी अतिशय मनोहर थीं और जिनके नेत्र मदसे फूल रहे थे ऐसी स्त्रियों रामके पास आईं ॥१३१॥ कमलके समान मुखको धारण करनेवाले लक्ष्मण जितपद्माके साथ रथसे उतरकर शीघ्र ही रामके चरणोंमें जा पड़े ॥१३२॥ तदनन्तर राम और सीताको प्रणामकर लजाते हुए लक्ष्मण रामसे कुछ दूर हटकर विनयपूर्वक बैठ गये ॥१३३॥ शत्रुन्दम आदि राजा भी क्रम-क्रमसे राम तथा सीताको नमस्कार कर यथा स्थान बैठ गये ॥१३४॥ कुशल समाचार पूछकर सब वार्ता-लाप करते हुए सुखसे बैठे तथा राजाओंने आनन्द-नृत्य किया ॥१३५॥ तदनन्तर परम सम्पदा से युक्त तथा हर्षसे भरे राम लक्ष्मण और सीताने रथपर सवार हो नगरमें प्रवेश किया ॥१३६॥ वहाँ राजमहलमें पहुँचे सो वह राजमहल एक सरोवरके समान जान पड़ता था क्योंकि सौन्दर्य रूपी केशरसे युक्त स्त्रियां रूपी नील कमलोंसे वह व्याप्त था और शब्द करते हुए आभूषण रूपी पक्षियोंसे युक्त था ॥१३७॥ सत्यव्रत रूपी सिंहकी गर्जनाके भयसे जिनके चित्त अत्यन्त सङ्कुचित रहते थे, जो कुमार लक्ष्मीसे सहित थे, राजा शत्रुन्दम जिनकी इच्छानुसार सब सेवा करता था, जो महा सुखसे सहित थे तथा जो समस्त लोगोंके चित्तको आनन्द देने वाले थे ऐसे नर श्रेष्ठ राम लक्ष्मण उस राजमहलमें कुछ समय तक सुखसे रहे ॥१३८-१३९॥

तदनन्तर राम अर्धरात्रिके समय सीताके साथ इच्छानुसार राजमहलसे बाहर निकल पड़े और लक्ष्मण भी वनमालाके समान विरहसे भयभीत अतिशय दुःखी जितपद्माको प्रिय वचनों द्वारा आदर पूर्वक सान्त्वना दे रामके साथ चले । इन सबके जानेसे नगरवासियोंका धैर्य जाता रहा ॥१४०-१४१॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेष्ठ ! जिन्होंने जन्मान्तरमें बहुत

भोगैर्नास्ति मम प्रयोजनमिमे गच्छन्तु नाशं खलाः
इत्येषां यदि सर्वदापि कुरुते निन्दामलं द्वेषकः ।
एतैः सर्वगुणोपपत्तिपट्टभिर्यातोऽपि शृङ्गं गिरेः
नित्यं^१ याति तथापि निजितरविर्दोष्या जनः सङ्गमम् ॥

इत्यापि रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते जितपद्मोपाख्यानं नामाष्टत्रिंशत्तमं पर्व ॥३८॥



भारी पुण्यका सञ्चय किया है ऐसे सर्व प्राणियोंको प्रिय पुरुष, नाना प्रकारके उत्तम कार्य करते हुए जिस-जिस देशमें जाते हैं उसी-उसी देशमें उन्हें बिना किसी चिन्ताके समस्त इन्द्रियोंके सुख देनेमें निपुण मधुर आहार आदिकी सब ऐसी अनुपम विधि मिलती है कि लोकमें जो दूसरोंके लिए दुर्लभ रहती है ॥१४२॥ 'मुझे इन लोगोंसे प्रयोजन नहीं है । ये दुष्ट नाशको प्राप्त हों, इस प्रकार भोगोंसे अतिशय द्वेष रखनेवाला पुरुष यद्यपि सर्वदा इन भोगोंकी निन्दा करता है और इन्हें छोड़कर पर्वतके शिखरपर भी चला जाता है तो भी अपनी कान्तिसे सूर्यको जीतनेवाला पुण्यात्मा पुरुष समस्त गुणोंकी प्राप्ति करानेमें समर्थ इन भोगोंके साथ सदा समागमको प्राप्त होता है अर्थात् पुण्यात्मा मनुष्यको इच्छा न रहते हुए भी सब प्रकारको सुख-सामग्री सर्वत्र मिलती है ॥१४३॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मचरितमें जितपद्मका वर्णन करनेवाला अठतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३८॥



एकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथ नानाद्रुमच्छासु बहुपुष्पसुगन्धिषु । लतामण्डपयुक्तासु सेवितासु सुखं मृगैः ॥१॥
 देवोपनीतनिशेषशरीरस्थितिसाधनी । आयातां रममाणौ तौ ससीतौ रामलक्ष्मणौ ॥२॥
 कचिद्विद्रुमसङ्काश रामः किसलयं लघु । गृहीत्वा कुरुते कर्णं जानक्याः साध्विति श्रुत्वा ॥३॥
 सुतारौ सङ्गतौ वल्लो कचिदारोप्य जानकोम् । स्वैरं दोलयतः पाशवैवर्तिनीं रामलक्ष्मणौ ॥४॥
 द्रुमखण्डे क्वचिद् स्थित्वा नितान्तवनपल्लवे । कथामिः सुविदग्धामिः कुरुतस्तद्विनोदनम् ॥५॥
 इयमेतदर्थं वल्लो पलाशं तरुनीक्यताम् । हारिणी हारि हारीति सीतोके राघवं कचिद् ॥६॥
 क्वचिद् भ्रमरसङ्घातैर्मुखसौरभलोर्षः । कृच्छ्रादरक्षतामेतौ राजपुत्रीं कदर्थिताम् ॥७॥
 शनैर्विहरमाणो तौ समीतौ शुभविभ्रमौ । काननेषु बिचित्रेषु स्वर्वनेषु सुरागिषु ॥८॥
 नानाजनेपभोग्येषु देशेषु निहितेक्ष्णौ । धीरौ क्रमेण सम्प्राप्तौ पुरं वंशस्थलद्युतिम् ॥९॥
 सुदीर्घोऽपि तथोः कालो गच्छतोः सहसीतयोः । पुण्यानुगतयोर्वासीदपि दुःखलवप्रदः ॥१०॥
 अपग्न्यतां च तस्यान्ते वंशजालातिसङ्कटम् । वगं वंशधराभिर्ण्य भिल्वेन भुवमुद्गतम् ॥११॥
 छायाया वृक्षशृङ्गाणां यः सन्ध्यामिव सन्ततम् । दधाति निर्मलानां च हसतीव च शीकरैः ॥१२॥
 विगच्छन्तीं प्रजां दृष्ट्वा पुरादथ स एककाम् । रामः पप्रच्छ भोः कस्मात् प्रासोऽयं सुमहानिति ॥१३॥

अथानन्तर जिनकी शरीर-स्थितिके समस्त साधन देवोपनीत थे, ऐसे सीता सहित राम-लक्ष्मण रमण करते हुए वनकी उन भूमियोमें आये जो नाना प्रकारके वृक्षोंसे सहित थीं तथा मृगगण जिनसे सुखसे निवास करते थे ॥१-२॥ कहीं राम, मृगके समान कान्तिवाले पल्लवकी तोड़कर तथा उसका कर्णाभरण बनाकर 'यह ठीक रहेगा' इस प्रकार कहते हुए सीताके कानमें पहिनाते थे, तो कहीं किसी वृक्ष पर लटकती लता पर सीताको बैठाकर वगलमें दोनों ओर खड़े हो राम-लक्ष्मण उसे मूला फुलाते थे ॥३-४॥ कहीं सघन पत्तोंवाले द्रुम-खण्डमें बैठकर मनोहर-मनोहर कथाओंसे उसका मनोविनोद करते थे ॥५॥ कहीं सीता रामसे कहती थी कि यह मनोहर लता देखो, कहीं कहती थी कि यह मनोहर पल्लव देखो और कहीं कहती थी कि यह मनोहर वृक्ष देखो ॥६॥ कहीं मुखकी सुगन्धिके लोभी भ्रमरोंके समूह सीताको पीड़ित करते थे, सो ये दोनों भाई बड़ी कठिनाईसे उसकी रक्षा करते थे ॥७॥ जिस प्रकार देव स्वर्गके वनोंमें विहार करते हैं उसी प्रकार शुभ चेष्टाओंके धारक दोनों भाई सीताको साथ लिये नाना प्रकारके वनोंमें धीरे-धीरे विहार करते थे ॥८॥ नाना मनुष्योंसे उपभोग्य देशोंमें दृष्टि डालते हुए वे धीरे-धीरे क्रमसे वंशस्थद्युति नामक नगरमें पहुँचे ॥९॥ सीताके साथ भ्रमण करते हुए उन पुण्यानुगामी महा-पुरुषोंको यद्यपि बहुत काल हो गया था तो भी उतना बड़ा काल उन्हें अंशमात्र भी दुःख देनेवाला नहीं हुआ था ॥१०॥

उस नगरके समीप ही उन्होंने वंशधर नामका पर्वत देखा जो बँसोंके समूहसे अत्यन्त व्याप्त था, पृथिवीको भेदकर ही मानो ऊपर उठा था, ऊँचे-ऊँचे शिखरोंकी कान्तिसे जो मानो सदा सन्ध्याको धारण कर रहा था और निर्मलनोंके छाँटोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥११-१२॥ उन्होंने यह भी देखा कि प्रजाके लोग नगरसे निकल-निकल कर कहीं

१. संस्तुताम् व० । २. इयं हारिणी वल्ली, एतत् हारि पलाश, अयं हारी ततः । ३. स्वर्वनेषु म० ।

४. धारौ म० ।

सोऽनोचद्य दिवसस्तृतीयो वर्तते नरः । नक्तमुत्तिष्ठतोऽमुष्मिन्नग्रे नादस्य^१ मस्तके ॥१४॥
 ध्वनिरभृतपूर्वोऽयं प्रतिनादी भयावहः । कस्येति बहुविज्ञानैर्न वृद्धैरपि वेद्यते ॥१५॥
 सञ्जुगन्तीव भूः सर्वा नन्दतीव दिशो दश । सरांसि सञ्चरन्तीव निर्मूल्यन्त इन्द्राग्निपाः ॥१६॥
 रौरवारवरोद्रेण घनेन ध्वनिनामुना । अवणौ सर्वलोकस्य ताड्येत्येवमेवैव ॥१७॥
 निशागमे किमस्माकं वधार्थमयमुद्यतः । करोति क्रीडनं तावत् कोऽपि विष्टपकण्टकः ॥१८॥
 भयेन स्वन्तस्तस्मादयं लोको निशागमे । पलायते प्रभाते तु पुनरेति यथायथम् ॥१९॥
 सप्रं योजनमेतस्मादतीत्यान्योन्यमापितम्^२ । शृणोत्ययं जनः किञ्चित् प्राप्नोति च सुखासिकाम् ॥२०॥
 निशग्योक्तमिदं सीता यभापे रामलक्ष्मणौ । वयमन्यत्र गच्छामो यत्र याति महाजनः ॥२१॥
 कालं देशे च विज्ञाय नीतिशास्त्रविशारदैः । क्रियते पौरुषं तेन न जातु विपदाप्यते ॥२२॥
 प्रहस्यावोचतामेतामुद्विग्नां जनकात्मजाम् । गच्छ त्व यत्र लोकोऽयं ब्रजत्यल्लंघुसाध्वसे ॥२३॥
 अन्विष्यन्तां प्रभाते नौ लोकेन सहितामुना । अमुष्मिन् गण्डशैलान्ते गतभौरागमिष्यति ॥२४॥
 अस्मिन् महाधरे रम्ये ध्वनिरत्यन्तभीषणः । कस्यायमिति पश्यामो वयमद्येति निश्चयः ॥२५॥
 प्रभीष्यते वराकोऽयं लोकः शिशुसमाकुलः । पशुभिः सहितः स्वन्तमस्य को नु करिष्यति ॥२६॥
 वैदेहीं^३ सञ्चरेवोचे सततं भवतोरिमम् । हर्तुमेकं ग्रहं शक्तः कः कुलीरग्रहोपमम् ॥२७॥

अन्यत्र जा रहे हैं । तब रामने किसी एक मनुष्यसे पूछा कि हे भद्र ! यह बहुत भारी भय किस कारणसे है ? ॥१३॥ इसके उत्तरमे उस मनुष्यने कहा कि इस पर्वतके शिखर पर रात्रिके समय शब्द उठते हुए आज तीसरा दिन है ॥१४॥ जो शब्द पर्वत पर होता है वह हमने पहले कभी नहीं सुना, उसकी प्रतिध्वनि सर्वत्र गूँज उठती है तथा वह अत्यन्त भयङ्कर है । किस व्यक्तिका शब्द है ? यह बहुविज्ञानी बुद्ध लोग भी नहीं जानते हैं ॥१५॥ इस शब्दसे मानो समस्त पृथिवी हिल उठती है, दशों दिशाएँ मानो शब्द करने लगती हैं, सरोवर मानो इधर-उधर फिरने लगते हैं और धृक् मानो उखड़ने लगते हैं ॥१६॥ रौद्रतामे नरकके शब्दकी तुलना करनेवाले इस भारी शब्दसे समस्त लोगोंके कान ऐसे फटे पड़ते हैं मानो लोहेके घनोसे ही ताडित होते हों ॥१७॥ जान पड़ता है कि रात्रिके समय हम लोगोंका वध करनेके लिए उद्यत हुआ यह कोई लोकका कण्टक क्रीड़ा करता फिरता है ॥१८॥ ये लोग उस शब्दके भयसे रात्रि प्रारम्भ होते ही भाग जाते हैं और प्रभात होने पर पुनः वापिस आ जाते हैं ॥१९॥ यहाँसे कुछ अधिक एक योजन चलकर यह शब्द इतना हलका हो जाता है कि लोग परस्परका वातालाप सुन सकते हैं तथा कुछ आराम प्राप्त कर सकते हैं ॥२०॥

यह सुनकर सीताने राम-लक्ष्मणसे कहा कि जहाँ ये सब लोग जा रहे हैं वहाँ हम लोग भी चले ॥२१॥ नीतिशास्त्रके ज्ञाता पुरुष देश कालको समझकर पुरुषार्थ करते हैं, इसलिए कभी आपत्ति नहीं आती ॥२२॥ राम-लक्ष्मणने घबड़ाई हुई सीतासे इसकर कहा कि तुम्हे बहुत भय लग रहा है इसलिए जहाँ ये लोग जाते हैं वहाँ तू भी चली जा ॥२३॥ प्रभात होनेपर इन लोगोंके साथ हम दोनोंको खोजती हुई निर्भय हो इस पर्वतके समीप आ जाना ॥२४॥ 'इस मनोहर पर्वत पर यह अत्यन्त भयङ्कर शब्द किसका होता है ? यह आज हम देखेंगे' ऐसा निश्चय किया है ॥२५॥ ये तीन लोग बाल-वृद्धोंसे व्याकुल तथा पशुओंसे सहित हैं, इसलिए ये तो भयभीत होंगे ही इनका भला कौन कर सकता है ? ॥२६॥ तब जैसे चर चढ़ रहा हो ऐसी कोपती हुई आवाजमें सीताने कहा कि हमेशा आपलोगों को हठ केकड़ेकी पकड़के समान बिलक्षण ही है उसे

वदन्ती पुनरेवं सा पद्मनाभस्य पृष्ठतः । लक्ष्मीधरकुमारस्य जगामावस्थिता पुरः ॥२८॥
 आरोहन्ती गिरिं देवीं प्रसिद्धकम्पपङ्कजा । रराज शृङ्गमन्दस्य चन्द्ररेखेव निर्मला ॥२९॥
 चन्द्रकान्तेन्द्रनीलान्तःस्थिता पुष्पमणेरसौ । शलाकेवामवत्तस्य पर्वतस्य विभूषणम् ॥३०॥
 मृगुपातपरिव्रस्तां कचिदुत्क्षिप्य तामिसौ । नयतोऽन्यत्र विभ्रतवहस्तालम्बनकोविदौ ॥३१॥
 विषमप्रावसद्वातं^१ विस्तीर्य त्रासवर्जितौ । विस्तीर्णनगमूर्धानं ससीतौ तावपापतुः ॥३२॥
 अथ सद्धानामारूढौ प्रलम्बितमहाभुजौ । साधयन्तौ सुदुस्साध्यां प्रतिमां चतुराननाम् ॥३३॥
 परेण तेजसा युक्तावलिधारी नगस्थिरौ । शरीरचेतनान्यत्ववेदिनौ मोहवर्जितौ ॥३४॥
 जातरूपधरौ कान्तिसागरौ नवयौवनौ । संयतौ प्रवराकारौ दृढश्रुस्ते यथोदितौ ॥३५॥
 दध्युक्ष विस्मयं प्राप्ता यथा मुक्त्वाशुभाजनम् । निस्तारमीहितं सर्वं संसारे दुःखकारणम् ॥३६॥
 मित्राणि द्विषिणं दाराः पुत्राः सर्वे^२ च बान्धवाः । सुखदुःखमिदं सर्वं धर्म एकः सुखावहः ॥३७॥
 जुष्टौकिरे च भक्त्याख्या मूर्धन्विन्यस्तपाणयः । दधानाः परमं तोष विनयानतविग्रहाः ॥३८॥
 यावद्दृश्यत्पुनर्यैर्विस्तुरन्मिमांसास्वनैः । भिन्नाङ्गनसमच्छापैश्चलजिह्वैः^३ पृदाकुभिः ॥३९॥
 समुद्यतालकैर्मैश्वर्यलिरनिशं घनैः । नामावर्णैरतिस्थूलैर्वैदितौ वृश्चिकैश्च^४ तौ ॥४०॥

दूर करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२७॥ ऐसा कहती हुई वह रामके पीछे और लक्ष्मणके आगे खड़ी हो चलने लगी ॥२८॥ जिसके चरणकमल खेदखिन्न हो गये थे, ऐसी सीता पहाड़ पर चढ़ती हुई इस प्रकार सुशोभित हो रही थी मानो मेघके शिखर पर चन्द्रमाकी निर्मल रेखा ही है ॥२९॥ राम और लक्ष्मणके बीचमे खड़ी सीता चन्द्रकान्तमणि और नीलमणिके मध्यमे स्थित पद्मरागमणिकी शलाकाके समान पर्वतका आभूषण हो रही थी ॥३०॥ जहाँ कहीं सीताको गोल चट्टानोसे नीचे गिरनेका भय होता था वहाँ वे दोनों, उसे ऊपर उठा कर ले जाते थे और जहाँ गिरनेका भय नहीं होता था वहाँ निश्चिन्ततापूर्वक हाथका सहारा देकर ले जाते थे ॥३१॥ इस प्रकार ऊँचीनीची चट्टानोका समूह पारकर भयसे रहित राम-लक्ष्मण सीताके साथ पर्वतके चौड़े शिखर पर जा पहुँचे ॥३२॥

अथानन्तर उन्होंने ऊपर जाकर ऐसे दो मुनि देखे जो उत्तमध्यानमे आरुढ़ थे, जिनकी लम्बी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रहीं थीं, जो अत्यन्त दुःसाध्य चतुर्मुखी प्रतिमाको सिद्ध कर रहे थे, परम तेजसे युक्त थे, समुद्रके समान गम्भीर थे, पर्वतके समान स्थिर थे, शरीर और आत्माकी भिन्नताको जाननेवाले थे, मोहसे रहित थे, दिगम्बर-मुद्राको धारण करनेवाले थे, कान्तिके सागर थे नूतन तारुण्यसे युक्त थे, उत्तम आकारके धारक थे और आगमोक्त आचरण करनेवाले थे ॥३३-३५॥ आश्चर्यको प्राप्त हुए वे तीनों अशुभ कर्मोंके आश्रयका परित्याग कर इस प्रकार विचार करने लगे कि संसारमे प्राणियोकी समस्त चेष्टाएँ निःसार तथा दुःखके कारण हैं ॥३६॥ मित्र, धन, स्त्री, पुत्र, और भाई-बन्धु आदि सभी सुख-दुःख रूप हैं, एक धर्म ही सुखका कारण है ॥३७॥ तदनन्तर जो भक्तियुक्त थे, जिन्होंने हाथ जोड़कर मस्तक पर लगा रखे थे, जो परम सन्तोषको धारण कर रहे थे, और विनयसे जिनके शरीर नम्रीभूत हो रहे थे, ऐसे वे तीनों उक्त मुनिराजोंके पास गये ॥३८॥ दर्शन करते ही उन्होंने, जो अत्यन्त भयङ्कर थे, इधर-उधर चल रहे थे, विकट शब्द कर रहे थे, मसले हुए अङ्गनके समान कान्तिवाले थे, तथा जिनकी जीभे लपलपा रही थीं ऐसे साँपोसे और जिन्होंने अपनी पूँछ ऊपर उठा रखी थी, जो अत्यन्त भयङ्कर थे, रात-दिन एक-दूसरे से सटकर चल रहे थे, नाना रङ्गके थे, एवं बहुत मोटे थे, ऐसे बिच्छुओसे जन दोनों मुनियोको

तथाविधौ च तौ दृष्ट्वा रामोऽपि सहलक्ष्मणः । सहसा त्रासमायातौ मेजे स्तम्भमिव क्षणम् ॥४१॥
वेदेही भयसम्पन्ना भर्तारं परिपस्वजे । मा भैषीरिति तामूचे मयं त्यक्त्वा क्षणेन सः ॥४२॥
उपसृत्य ततः स्वैरं ताभ्यां पञ्चगवृश्चिकाः । अत्यस्ता कार्मुकप्रेण सुदुः कृतविवर्तनाः ॥४३॥
अयोद्वल्यं चिरं पादौ तयोर्निर्भरवारिणा । गन्धेन सीतया लिप्तौ चारुणा पुरुषावया ॥४४॥
असन्नानां च वल्लीनां कुसुमैर्वनसौरभैः । लक्ष्मीधरापितैः शुक्लैः पूरितान्तरमर्चितौ ॥४५॥
ततस्ते कारुण्यमादजमुकुलम्राजितालिकाः । चक्रुर्गोशरवरी भक्त्या बन्धनां विधिकोविदाः ॥४६॥
वीणां च सञ्जिवायाङ्गे वधूमिव मनोहराम् । पञ्चोऽप्यादयदत्युद्धं गानम् सुमधुराक्षरम् ॥४७॥
अन्वगायदिमं लक्ष्मीलतालिङ्गितपादपः । बाष्कोकिलरवः पुत्रः कैकय्यास्तत्त्वमादरम् ॥४८॥
महायोगेश्वरा धीरा मनसा शिरसा गिरा । बन्धास्ते साधवो नित्यं सुरैरपि सुचेष्टिताः ॥४९॥
उपमानविनिर्मुक्तं यैरन्याहृतमुत्तमम् । प्राप्तं त्रिभुवनस्थानं सुमामयैरहदक्षरम् ॥५०॥
भिन्नं यैर्ध्यानदण्डेन महामोहशिलातलम् । दानं विदन्ति ये विश्वं धर्मानुष्ठानवर्जितम् ॥५१॥
गायतोरचराण्येवं तयोर्मानविधिज्ञयोः । तिरश्चामपि चेत्तांसि परिप्राप्तानि माद्वयम् ॥५२॥
ततो विदितनिश्चेषाकर्तृनलक्षण । मनोज्ञाकल्पसम्पन्ना हारमालयादिभूषिता ॥५३॥
लीलाया परया युक्ता दर्शितामिनया स्फुटम् । चारुबाहुलताभारा हावभावादिकोविदा ॥५४॥

धिरा देखा ॥३६-४०॥ उक्त प्रकार के मुनियोंको देख, राम भी लक्ष्मणके साथ सहसा भयको प्राप्त हुए तथा क्षण भरके लिए निश्चल रह गये ॥४१॥ सीता भयभीत हो पतिसे लिपट गई, तब रामने क्षण एकमे भय छोड़कर सीतासे कहा कि डरो मत ॥४२॥ तदनन्तर राम-लक्ष्मणने धीरे-धीरे पास जाकर जो दूर हटानेपर भी बार-बार वही लौट कर आते थे ऐसे सोंप, बिच्छुओंको धनुषके अग्रभागसे दूर किया ॥४३॥

अथानन्तर भक्तिसे भरी सीताने निर्भरके जलसे देर तक उन मुनियोंके पैर धोकर मनोहर गन्धसे लिप्त किये ॥४४॥ तथा जो वनको सुगन्धित कर रहे थे एवं लक्ष्मणने जो तोड़ कर दिये थे, ऐसे निकटवर्ती लताओंके फूलोंसे उनकी खूब पूजा की ॥४५॥ तदनन्तर अञ्जलिरूपी कमलकी बोड़ियोंसे जिनके ललाट शोभायमान थे तथा जो विधि-विधानके जाननेसे निपुण थे ऐसे उन सबने भक्तिपूर्वक मुनिराजकी बन्धना की ॥४६॥ अत्यन्त उत्तम तथा मधुर अक्षरोंमें गाते हुए रामने मनोहर स्त्रीके समान वीणाको गोदमें रखकर बजाया ॥४७॥ इनके साथ ही लक्ष्मणने भी बड़े आदरसे तत्त्वपूर्ण गान गाया । उस समय लक्ष्मण, लक्ष्मीरूपी लतासे आलिङ्गित वृक्षके समान जान पड़ते थे और उनका मधुर शब्द कोयलकी सीठी तानके समान मालूम होता था ॥४८॥ वे गा रहे थे कि जो महायोगके स्वामी हैं, धीर-वीर हैं तथा उत्तम चेष्टाओंसे सहित हैं, उत्तम भाग्यके धारक जिन मुनियोंने उपमासे रहित, अखण्डित, तथा तीन लोकमें प्रसिद्ध 'अर्हत्' यह उत्तम अक्षर प्राप्त कर लिया है । जिन्होंने ध्यानरूपी दण्डके द्वारा महामोहरूपी शिलातलको तोड़ दिया है और जो धर्मानुष्ठान-धर्माचरणसे रहित विश्वको दीन समझते हैं ऐसे साधु देवोंके द्वारा भी मनसे, शिरसे तथा वचनसे बन्धनीय हैं ॥४९-५१॥ गानकी विधिको जाननेवाले राम-लक्ष्मण जब इस प्रकारके अक्षर गा रहे थे तब तिर्यञ्चोंके भी चित्त कोमलताको प्राप्त हो गये थे ॥५२॥

तदनन्तर जो समस्त सुन्दर नृत्योंके लक्षण जानती थीं, मनोहर वेपथूपासे युक्त थीं, हार माला आदिसे अलंकृत थीं, परम लीलासे सहित थीं, स्पष्टरूपसे अभिनय दिखला रही थीं, जिसकी दाहुरूपी लताओंका सार अत्यन्त सुन्दर था, जो हाव-भाव आदिके दिखलानेमें निपुण

लघान्तरवशोक्तमिपसनोऽस्तनमण्डला । निरुशब्दचरणास्त्रोवविन्यासा चलितील्का ॥५५॥
 गीतामुगमसम्पन्नसमस्ताद्विविचेष्टिता । मन्दरे श्रीरिवानृत्यज्ञानका भक्तिचोदिता ॥५६॥
 उपसर्गादित्र त्रस्ते चातेजस्तं यास्करे ततः । सन्ध्यायां चापुसार्णं यातायां चस्तेजसि ॥५७॥
 नक्षत्रमण्डलालोकं निर्वन् नोलाग्रसन्निभम् । व्यापुचानं दिशः सर्वा गहनं ध्वान्तमुद्रतम् ॥५८॥
 जनस्याग्राणि कस्यापि दिक्षु सञ्जोमनं परम् । साराविणं तथा चित्रं भिन्दात्मिव पुष्करम् ॥५९॥
 विद्युज्वालामुत्तलैर्विम्बुद्वैग्यसिमम्बरम् । क्वापि चात इवाशेषं लोकस्त्राससमाकुलः ॥६०॥
 भलप्रतिभयाकारा दंष्ट्रालोकटिलाननाः । अट्टहासान् महारैद्रान् भूतानां सचक्षुरणाः ॥६१॥
 क्रव्यादा विरसं रेतुः सानलं चाशिवाः शिवाः । सस्वनुनृतुभीमं कलेवरशतानि च ॥६२॥
 सूर्ध्वोऽनुजङ्घादीन्यङ्गानि ववृपुर्धनाः । दुर्गन्धिभिः समेतानि स्थूलशोणितविन्दुभिः ॥६३॥
 कर्वालीकरा क्रूरविग्रहा दोलितस्तनी । लम्बाष्टी डाकिनी चम्पा इग्यमानास्थिसञ्जया ॥६४॥
 मांसखण्डाभमग्नमाची शिरोवटितशेखरा । ललाटप्रसरोजिह्वा पेशोशोणितचर्पिणी ॥६५॥
 सिंहस्याग्रमुत्तस्तलोहचक्राभलोचनैः । झूलहस्तैर्विदोष्टैर्मृकुटीकुटिलालिकैः ॥६६॥
 राक्षसैः परुषारावेर्गुल्लिखितसङ्कुलम् । कम्पितादिशिलाजालं चुञ्चोभ वसुधातलम् ॥६७॥

थी, लघ वदलनेके समय जिसके सुन्दर स्तनों का मण्डल कुछ ऊपर उठकर कम्पित हो रहा था, जिसके चरण-कमलों का विन्यास शब्द रहित था; जिसकी एक जोध चल रही थी । जिसके शरीर की समस्त चेष्टाएँ संगीत शास्त्र के अनुरूप थीं, तथा जो भक्तिये प्रेरित थी, ऐसी सीताने उस प्रकार नृत्य किया जिस प्रकार कि जिनके जन्माभिप्रेक के समय सुमेरु पर श्री देवोंने किया था ॥५३-५६॥ तदनन्तर उपसर्गसे त्रस्त होकर ही मानो जब सूर्य अस्त हो गया और उसीके पीछे चञ्चल तेजको धारण करनेवाली संध्या भी जब चली गई तब नक्षत्र मण्डलके प्रकाशको नष्ट करनेवाला तथा नील मेघके समान आभावाला सघन अन्धकार समस्त दिशाओंको व्याप्त करता हुआ उदित हुआ ॥५७-५८॥ उसी समय किसीका ऐसा विचित्र शब्द सुनाई दिया जो दिशाओंमें परम क्रोध उत्पन्न करनेवाला था तथा जो आकाशको भेदन करता हुआ सा जान पड़ता था ॥५९॥ जिसके अग्रभागमें विजलीरूपी ज्वाला प्रकाशमान थी, ऐसी लम्बी घन-घटासे आकाश व्याप्त हो गया और लोक ऐसा जान पड़ने लगा मानो भयसे व्याकुल हो कहीं चला ही गया हो ॥६०॥ जिनके आकार अत्यन्त भय उत्पन्न करनेवाले थे तथा जिनके मुख दाँदोंकी पंक्ति से कुटिल थे, ऐसे भूतोंके भुण्ड महा भयङ्कर अट्टहास करने लगे ॥६१॥ राक्षस नीरस शब्द करने लगे, अमङ्गल रूप शृगालियों अग्नि ज्वालती हुई शब्द करने लगीं, सैकड़ों कलेवर भयङ्कर नृत्य करने लगे, ॥६२॥ मेघ, दुर्गन्धित खूनकी बड़ी मोटी घूँटोंसे सहित मस्तक वक्षःस्थल, भुजा तथा जङ्घा आदि अवयवोंकी वर्षा करने लगे ॥६३॥ जो हाथमें तलवार लिये थी जिसका शरीर अत्यन्त क्रूर था, जिसके स्तन हिल रहे थे, जिसके ओठ अत्यन्त लम्बे थे, जो नग्न थी, जिसकी हड्डियोंका समूह प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा था, जिसकी फूटी आँखें मांसखण्डके समान थीं, जिनसे नरमुण्डका सेहरा पहिन रक्खा था, जिसकी जीभ ऊपरकी ओर उठकर ललाटका स्पर्श कर रही थी तथा जो मांस और रुधिरकी वर्षा कर रही थी ऐसी डाकिनी दिखाई देने लगी ॥६४-६५॥ जिनके मुख सिंह तथा व्याघ्रके समान थे, जिनके नेत्र तपे हुए लोह चक्रके सदृश थे, जिनके हाथमें शूल विद्यमान थे, जो ओठोंका दंश रहे थे, जिनके ललाट भौंहोंसे कुटिल थे, जिनकी आवाज अत्यन्त कठोर थी, तथा जो नृत्य कर रहे थे ऐसे राक्षसोंसे भरा हुआ वहाँका भूतल

१. नुनेत्यवति, मन्दिरे ल०, व०, न० । २. निर्वन्लील्यग्रसंक्रम, म० । ३. भिन्दन्तमिव म० ।

४. आग्रशान् । ५. इवाशेषं आलोक्तस्त्रासमाकुल न० । ६. अमङ्गलभूताः । ७. शृगाल्यः ।

विचेष्टितमिदं व्यर्थं नाज्ञासिद्धं महामुनी । तद्योहिं ^१ज्ञानकर्मान्तशुक्लध्यानमयं तदा ॥६८॥
 तथाविधं तमालोक्ष्य वृत्तान्तं वरभीतिदम् । मद्गन्धं जानकीं नृत्यमारिलप्यकम्पिनीं पतिम् ॥६९॥
 पशो जगाद तां देवि मा भेषीः शुभमानसे । उपगुह्य मुनेः पादौ तिष्ठ सर्वभयचिह्नदौ ॥७०॥
^२इत्युत्त्वा पादयोः कान्तां मुनेरामाच लादली । लक्ष्मीधरकुमारेण साकं सज्जलमाश्रितः ॥७१॥
 मज्जलदिव जीमूर्तौ गजितीं तौ महाप्रभौ । ^३निर्घातमिव मुञ्चन्तौ समास्तकाल्यतां धनुः ॥७२॥
 ततस्ती मग्भ्रमां ज्ञात्वा रामनारायणाविति । पुरो बह्निप्रभाभित्यस्तिरोधानमुपेयिवात् ॥७३॥
 ज्योतिर्वरं ^४गते तस्मिन् समस्तं तद्विचेष्टितम् । सपदि प्रलयं ^५यातं जातं च विमलं नभः ॥७४॥
 प्रातिहार्यं कृते ताभ्यामिच्छद्भ्यां परमं हितम् । उत्पन्नं केवलज्ञानं मुनिपुद्गलयोः क्षणात् ॥७५॥
 चतुर्विधास्ततो देवा नानायानमसाश्रिताः । समाजग्मुः प्रशंसन्तो मुद्रितास्तपसः फलम् ॥७६॥
 प्रणम्य विधिना तत्र कृत्वा केवलपूजनम् । रचिताञ्जलयो देवा यथास्थानमुपाविशन् ॥७७॥
 नेवलज्ञानसम्भृतिसमाकृष्टसुरागमात् । गोपादिनात्मकौ कालावभूतां भेदवर्जितौ ॥७८॥
 भूमिगोचरिणो भव्यास्तथा विद्यामहायलाः । उपविष्टा यथायोग्यं कृत्वा केवलिनौ महम् ^६॥७९॥
 प्रसन्नमानसौ मयः कृत्वा केवलपूजनम् । प्रणम्य सांतया साकं निविष्टौ रामलक्ष्मणौ ॥८०॥
 अथ तत्क्षणसम्भूतपरमाहंसनस्थितौ । प्रणम्य माञ्जलिः पद्मः पप्रच्छैवं महामुनीं ॥८१॥

ज्ञोभको प्राप्त हो गया और पर्वतकी चट्टाने हिल डठी ॥६६-६७॥ यह सब हो रहा था परन्तु उन महामुनियोंको उस व्यर्थकी चेष्टाका कुछ भी भान नहीं था, उनका ज्ञानोत्पादक प्रयत्न उस समय अन्तरङ्गमे युक्त ध्यानमग्न था ॥६८॥ अच्छे-अच्छे पुरुषोंको भय उत्पन्न करनेवाला ऐसा वृत्तान्त देख सीता नृत्य छोड़ कॉपती हुई पतिसे लिपट गई ॥६९॥ तब रामने कहा कि हे देवि ! हे शुभ मानसे ! भयभीत मत हो । सब प्रकारको भय दूर करनेवाले मुनियोंके चरणोंका आश्रय ले बैठ जाओ ॥७०॥ यह कहकर रामने सीताको मुनिराजके चरणोंके समीप बैठाया और स्वयं लक्ष्मण कुमारके साथ, युद्धके लिए तैयार हो गये ॥७१॥ तदनन्तर सजल मेघके समान गरजने वाले एवं महा कान्तिके धारक राम लक्ष्मणने अपने-अपने धनुष टङ्कोरे सो ऐसा जान पड़ा मानो वज्र ही छोड़ रहे हो ॥७२॥ तदनन्तर 'ये बलभद्र और नारायण हैं' ऐसा जानकर वह अग्निप्रभ देव दधङ्गाकर तिरोहित हो गया ॥७३॥ उस ज्योतिषी देवके चले जानेपर उसकी सबकी सब चेष्टाएँ तत्काल विलीन हो गईं और आकाश निर्मल हो गया ॥७४॥

अथानन्तर परम हितकी इच्छा करनेवाले राम-लक्ष्मणके द्वारा प्रतिहारीका कार्य सम्पन्न होनेपर अर्थात् उपसर्ग दूर किये जानेपर दोनों मुनियोंकी क्षणभरमें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥७५॥ तदनन्तर नाना प्रकारके वाहनोपर बैठे, हर्षसे भरे तथा तपके फलकी प्रशंसा करते हुए चारों निकायके देव आ पहुँचे ॥७६॥ वही विधिपूर्वक प्रणामकर तथा केवलज्ञानकी पूजाकर सब देव लोग हाथ जोड़े हुए यथास्थान बैठ गये ॥७७॥ उस समय केवलज्ञानकी उत्पत्तिसे खिचे हुए देवोंका समागम होनेसे गत-दिन रूप काल भेदसे रहित हो गया अर्थात् वहाँ रात दिनका व्यवहार समाप्त हो गया ॥७८॥ भूमिगोचरी मनुष्य तथा विद्यारूपी महाबलको धारण करनेवाले विद्याधर-समी लोग केवलियोंकी पूजाकर यथायोग्य स्थानपर बैठ गये ॥७९॥ प्रसन्न चित्तके धारक राम-लक्ष्मण भी सीताके साथ शीघ्र ही केवलियोंकी पूजाकर यथास्थान बैठ गये ॥८०॥

अथानन्तर तत्क्षण उत्पन्न हुए परमोत्तम सिंहासनो पर विराजमान केवलज्ञानी महा-

१. ज्ञानकर्म = इयनौत्पादिका क्रिया, अन्तः आत्मन्तरे इति शिषणी पुस्तके । २. इत्युत्त्वा म० ।
 १. वज्रम् । ३. ज्योतिर्वारम् म० । ४. जात म०, क० । ५. रात्रिदिवसस्यौ । ६. पूजाम् ।

भगवन्तो कृतो नक्त केनाय बासुपद्रवः । अथवा स्वस्थ युवयोरिदं जात हितं परम् ॥८२॥
 त्रिकालगोचरं विश्वं विदन्तावपि तौ समम् । गिरं यामूचतुः (गिरायामूचतुः) साम्यपरिणाममितौ क्रमात्
 नगरायं पद्मिनीनाम्नि राजा विजयपर्वतः । गुणसस्योत्तमक्षेत्रं भाभिनी यस्य धारिणी ॥८३॥
 अमृतस्वरसंज्ञोऽस्य दूतः शास्त्रविशारदः । राजकर्तव्यकुशलो लोकविद् गुणवत्सलः ॥८४॥
 उपयोगेति भार्यास्य द्वौ तस्यां कुत्तिसम्भवौ । उदितो मुदितारुह्य व्यवहारविशारदौ ॥८५॥
 असौ दूतोऽन्यदा राज्ञा प्रहितो दूतकर्मणा । प्रवासं सेवितु सक्तः स्वामिरक्तमतिभृशम् ॥८६॥
 वसुभूतिः सम तेन सखा तद्भक्तर्जावितः । निर्गतस्तपियासक्तिनिष्ठो दुष्टेन चेतसा ॥८७॥
 सुप्तं तमसिना^१ हत्वा निवृत्तां नगरी^२ पुनः । जनायावेत्यन्तेन किलाहं विनिवर्तितः ॥८८॥
 उपयोगा जगादैवं जहि मे तनयावपि । विश्रब्ध येन तिष्ठाव इति बन्धा निवेदितम् ॥८९॥
 त्वरितं चोदितयासो वृत्तान्तो विनिवेदितः । सा हि तेन समं स्वश्रव्याः^३ सङ्गं ज्ञातवती पुरा ॥९०॥
 ब्राह्मण्या वसुभूतेश्च रतिकार्यसमीप्यथा । कथितं तत्तथाभूतं परमाकुलचित्तया ॥९१॥
 बभूव चोदितस्यापि सन्दिग्धं विदितं पुरा । मुदितस्य च लङ्घ्य दृशनात् स्फुटतां गतम् ॥९२॥
 ततो रोपपरीतेन हतः सन्नुदितेन सः । कुंदिजो म्लेच्छतां प्राप्त क्रूरकर्मपरायणः ॥९३॥

मुनियोंको नमस्कार कर रामने हाथ जोड़ इस प्रकार पूछा ॥८१॥ कि हे भगवन् ! रात्रिके समय आप दोनों अथवा अपने ही ऊपर यह उपसर्ग किसने किया था और आप दोनोंमें परस्पर अति स्नेह किस कारण हुआ ? ॥८२॥ यद्यपि दोनों महामुनि त्रिकालविषयक समस्त पदार्थोंको एक साथ जानते थे, तो भी सामान्यपरिणामको प्राप्त हुए दोनों महामुनि दिव्य ध्वनिमें क्रमसे बोले ॥८३॥ उन्होंने कहा कि—

पद्मिनी नामा नगरीमें राजा विजयपर्वत रहता था । गुणरूपी धान्यकी उत्पत्तिके लिए उत्तम क्षेत्रके समान उसकी धारिणी नामकी स्त्री थी ॥८४॥ राजा विजयपर्वतके एक अमृतस्वर नामका दूत था जो शास्त्रज्ञानमें निपुण था, राजकर्तव्यमें कुशल था, लोकव्यवहारका ज्ञाता तथा गुणोंमें स्नेह करनेवाला था ॥८५॥ उसकी उपयोगा नामकी स्त्री थी और उसके उदरसे उत्पन्न हुए उदित तथा मुदित नामके दो पुत्र थे । ये दोनों ही पुत्र व्यवहारमें अत्यन्त कुशल थे ॥८६॥ किसी समय राजाने अमृतस्वरको दूत सम्बन्धी कार्यसे बाहर भेजा, सो स्वामीके कार्यमें अत्यन्त अनुरक्त बुद्धिको धारण करनेवाला अमृतस्वर प्रवासके लिए गया ॥८७॥ उसके साथ उसीके भोजनसे जीवित रहनेवाला वसुभूति नामका मित्र भी गया । वसुभूति अत्यन्त दुष्ट चित्त था तथा अमृतस्वर की स्त्रीमें आसक्त था ॥८८॥ वह सोते हुए अमृतस्वरको तलवारसे मारकर नगरीमें वापिस लौट आया और आकर उसने लोगोंको बताया कि अमृतस्वरने मुझे लौटा दिया है ॥८९॥ अमृतस्वरकी स्त्री उपयोगाने वसुभूतिसे कहा कि हमारे दोनों पुत्रोंको भी मार डालो जिससे फिर हम दोनों निश्चिन्ततासे रह सकेंगे । सासका यह कहना उसकी बहूने जान लिया इसलिए उसने यह सब समाचार शीघ्र ही उदितके लिए बता दिया, यथार्थमें वह बहू 'सासका वसुभूतिके साथ संगम है' यह पहलेसे जानती थी ॥९०-९१॥ वसुभूतिकी खास स्त्री उसकी इस रतिक्रियासे सदा ईर्ष्या रखती थी तथा उसका चित्त अत्यन्त व्याकुल रहता था इसलिए उसने यह समाचार उदित को स्त्रीसे कहा था ॥९२॥ उदितको भी पहलेसे कुछ-कुछ सन्देह था और मुदित भी इस बातको पहलेसे जानता था फिर वसुभूतिके पास तलवार देखनेसे सब बात स्पष्ट हो गई ॥९३॥ तदनन्तर क्रोधसे युक्त होकर उदितने उसे मार डाला जिससे क्रूरकर्ममें तत्पर रहनेवाला वह कुत्राह्वण म्लेच्छपर्यायको प्राप्त हुआ ॥९४॥

१. युवयोः ज०, क० । २. गिरया । ३. उदितमुदितनामधेयौ । ४. छुरिकया । ५. निवृत्तिनगरीं म० । ६. श्वश्रव्या म० । ७. मृत्वा च म० ।

अन्यद्वा प्रथितः क्षोण्यां गणेशो मतिवर्धनः । विहरन् पद्मिनीं प्राप श्रमणः सुमहातपा ॥६५॥
 अनुदरेति विख्याता धर्म्यध्यानपरायणा । महत्तरा तदा चासीदायिका गणपालिनी ॥६६॥
 वसन्ततिलकाम्बुये तत्रोद्याने सुसुन्दरे । सह्येन सहितस्तस्थो चतुर्भेदेन सद्भुवि ॥६७॥
 अथोद्यानस्य सम्प्रान्ताः पालकाः किङ्करा भृशम् । नृपं व्यज्ञापयन्नेवं भूमिविन्यस्तपाणयः ॥६८॥
 अग्रतो भृगुरत्युग्रः शार्दूलः पृष्ठतो नृप । वद् क शरणं यामो नाशो नः सर्वथोदितः ॥६९॥
 भद्रा किं किमिति त्रैश्वस्तुक्ता नृपतिनामादन् । नाथोद्यानसुचं प्राप्य श्रमणानां गणः स्थितः ॥१००॥
 यद्येन वारयामोऽतः शार्पं भ्रुवमवाप्नुमः । न चेत्ते जायते कोप इति नः सङ्कटो महान् ॥१०१॥
 कल्पोद्यानसमच्छायायुद्यानं ते प्रसादतः । नरेन्द्रकृतमस्माभिरप्रवेशं पृथग्जनैः ॥१०२॥
 नैव वारयितुं शक्यास्तपस्तेजोविदुर्गमाः । त्रिदशैरपि दिग्बद्धाः किमुतास्मादशैर्जनैः ॥१०३॥
 मा भैष्ट ततो राजा कृत्वा किङ्करसान्त्वनम् । उद्यानं प्रस्थितो युक्तो विस्मयेनातिभूरिणा ॥१०४॥
 कन्द्या च परया युक्तो बन्दिमिः कृतनिस्वनः । उद्यानभुवमासीदन् प्रतापप्रकटः किरीट् ॥१०५॥
 ददर्श च महाभागान् वनरेणुसमुच्चितान् । मुक्तियोग्यक्रियायुक्तान् प्रशान्तदृष्टयान् सुनीन् ॥१०६॥
 प्रतिमावस्थितान् कोविन् प्रलम्बितभुजद्वयान् । पद्याष्टमादिभिर्स्ताम्बैरुपवासैर्विशोपितान् ॥१०७॥

अथानन्तर किसी समय मुनिसंघके स्वामी मतिवर्धन नामक महातपस्वी आचार्य पृथिवी पर विहार करते हुए पद्मिनी नगरी आये ॥६५॥ उसी समय धर्मध्यानमे तत्पर रहनेवाली, अति-शय श्रेष्ठ और आर्थिकाओके संघकी रक्षा करनेवाली अनुदरा नामकी गणिनी भी विद्यमान थीं ॥६६॥ चतुर्विध संघसे सहित मतिवर्धन आचार्य वहाँ आकर उद्यम भूमिसे युक्त वसन्त-तिलक नामक उद्यानमे ठहर गये ॥६७॥ तदनन्तर उद्यानकी रक्षा करनेवाले किङ्कर अत्यन्त व्यग्र हो राजाके पास पहुँचे और पृथ्वी पर हाथ रखकर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे कि हे नाथ ! आगे तो बड़ी ऊँची ढालू चट्टान है और पीछे व्याघ्र है बताइये हम किसकी शरणमें जावें । हमारा तो सब प्रकारसे विनाश उपस्थित हुआ है ॥६८-६९॥ 'भले आदमियो ! क्या ? क्या ??, क्या कह रहे हो' इस प्रकार राजाके कहने पर किङ्करीने कहा कि हे नाथ ! मुनियोंका एक संघ उद्यानकी भूमिमें आकर ठहर गया है ॥१००॥ यदि इस संघको हम मना करते हैं तो निश्चित ही शापको प्राप्त होते हैं और यदि नहीं मना करते हैं तो आपको क्रोध उत्पन्न होता है, इस प्रकार हम लोगों पर बड़ा संकट आ पड़ा है ॥१०१॥ हे राजन् ! आपके प्रसादसे हम लोगोंने वह उद्यान कल्प-वृक्षोंके उद्यानके समान बना रक्खा है, उसमे साधारण-पामर मनुष्य प्रवेश नहीं कर सकते ॥१०२॥ जो तपके तेजसे अत्यन्त दुर्गम हैं ऐसे निर्ग्रन्थ मुनियोंको देव भी रोकनेमें समर्थ नहीं हैं फिर हमारे जैसे मनुष्योंकी बात ही क्या है ? ॥१०३॥

तदनन्तर 'भयभीत मत होओ' इस प्रकार किङ्करीको सान्त्वना देकर बहुत भारी आश्चर्यसे युक्त हुआ राजा उद्यानकी ओर चला ॥१०४॥ जो बहुत भारी सम्पदासे युक्त था, बन्दीजन जिसकी स्तुति करते जाते थे, तथा जो अतिशय प्रतापी था, ऐसा राजा चलकर उद्यानभूमिमें पहुँचा ॥१०५॥ वहाँ जाकर उसने महाभागवान् मुनियोंके दर्शन किये । वे मुनि वनकी धूलिसे व्याप्त थे, मुक्तिके योग्य क्रियाओंमें तत्पर थे तथा अत्यन्त प्रशान्त चित्त थे ॥१०६॥ उनमेसे कितने ही मुनि दोनों मुञ्जाओंकी नीचे की ओर लटका कर प्रतिमाके समान अवस्थित थे, तथा वेला-वेला आदि कठिन उपवासोंसे उनके शरीर शुष्क हो रहे थे ॥१०७॥ कितने ही स्वा-ध्यायमे तत्पर हो भ्रमरोंके समान मधुरध्वनिसे गुनगुना रहे थे और कितने ही स्वाध्यायमे

स्वाध्यायनिरतानन्यान् पङ्कद्विमधुरध्वनीन् । तन्निवेशितचेतस्कान् पाणिपादसमाहितान् ॥१०८॥
 अवलोक्य मुनीनिर्धे भगवद्गोहुरोऽभवत् । अवतीर्थ गन्गाद् भावी ननाम जयपर्वतः ॥१०९॥
 क्रमेण प्रणमन् साधूनाचार्यं समुपागतः । प्रणम्य पादयोर्बुधे भोगे सद्बुद्धिसुहृन् ॥११०॥
 नरप्रधाननीतिस्ते भूयेयं शुभलक्षणा । तथा कथं न ते भोगा रताः पादतलस्थिताः ॥१११॥
 जगाद् मुनिमुख्यस्तं का ते मतिरियं तनौ । स्थास्तुतासङ्गतालीका संसारपरिवर्तिनी ॥११२॥
 करिवालककणान्तचपलं ननु जीवितम् । मानुष्यकं च कदलीसारसाम्भं विभर्त्यदः ॥११३॥
 स्वानप्रतिममैरवेयं सक्तं च सह बान्धवैः । इति ज्ञात्वा रतिः कात्र चिन्त्यमानातिदुःखदे ॥११४॥
 नरकप्रतिमे घोरे दुर्गन्धे कृमिसङ्कुले । रक्तरेष्मणादिसरसि प्रभूताशुचिकर्दमे ॥११५॥
 उपितोऽनेकशो जीवो गर्भवासेऽतिसङ्कुटे । तथा न शङ्कते मोहमहाध्वान्तसमावृतः ॥११६॥
 धिगन्धन्ताशुचि वेहं सर्वां शुभनिधानकम् । क्षणनखरमन्त्राणं कृतञ्च मोहपूरितम् ॥११७॥
 स्नसाञ्जालकसरिलक्ष्ममतिच्छातस्वगावृतम् । अनेकरोगविहृतं जरागमज्जगुप्सितम् ॥११८॥
 एवधर्मिणि देहेऽस्मिन् ये कुर्वन्ति जवा घृतिम् । तेऽथश्चैतन्यमुक्तेभ्यः स्वस्ति लज्जापते कयम् ॥११९॥
 शरीरनिर्वाणं एतस्मिन् परलोकप्रवासिनि । मुपगन्तः प्रशम्य लोक सिष्टन्तीन्द्रियदक्षयः ॥१२०॥
 रमते जीवमृपतिः कुमतिप्रमदावृतः । अवस्कन्देन मृत्युस्त कर्द्वयितुमिच्छति ॥१२१॥

चित्त लगाकर पद्मासनसे विराजमान थे ॥१०८॥ इस प्रकारके मुनियोंको देख कर राजाका गर्बरूपी अङ्कुर भग्न हो गया तथा उसने हाथीसे नीचे उतर कर मुनियोंको नमस्कार किया । राजाका नाम विजयपर्वत था ॥१०९॥ भोगोंमें समीचीन बुद्धिको धारण करनेवाला राजा क्रम-क्रमसे सब मुनियोंको नमस्कार करता हुआ आचार्यके पास पहुँचा और उनके चरणोंमें प्रणाम कर इस प्रकार बोला कि हे नरभ्रेष्ठ ! तुम्हारी शुभ लक्षणांसे युक्त जैसी वीति है वैसे भोग आपके चरणतलमें स्थित क्यों नहीं है ? ॥११०-१११॥ आचार्यने उत्तर दिया कि तेरे शरीरमें यह क्या बुद्धि है ? तेरी वह बुद्धि शरीरको स्थिर समझनेवाली है सो मूढ़ी है और संसारको बढ़ानेवाली है ॥११२॥ निश्चयसे यह जीवन हस्तिशिशुके कानोके समान चञ्चल है तथा मनुष्यका यह जीतन्य केलेके सारकी सट्टाता धारण करता है ॥११३॥ यह ऐश्वर्य और बन्धुजनोंका समागम स्वप्नके समान है, ऐसा जानकर इनमें क्या रति करना है ? इन ऐश्वर्य आदिका व्यो-व्यो विचार करो त्यों-त्यों ये अत्यन्त दुःखदायी ही मालूम होते हैं ॥११४॥ जो नरकके समान है, अत्यन्त भयङ्कर है, दुर्गन्धिसे भरा है, कीड़ांसे युक्त है, रक्त तथा कफ आदिका मानो सरोवर है, जहाँ अत्यन्त अशुचि पदार्थोंकी कीच मच रही है तथा जो अत्यन्त संकीर्ण है ऐसे गर्भमें इस जीवने अनेकों वार निवास किया है, फिर भी महामोहरूपी अन्धकारसे आवृत हुआ यह प्राणी उससे भयभीत नहीं होता ॥११५-११६॥ जो सर्व प्रकारके अशुचि पदार्थोंका भाण्डार है, क्षण भरमें नष्ट हो जानेवाला है, जिसकी कोई रक्षा नहीं कर सकता, जो कृतघ्न है, मोहसे पूरित है, नसोंके समूहसे वेष्टित है, अत्यन्त पतली चर्मसे घिरा है, अनेक रोगोंसे खण्डित है, और बुढ़ापाके आगमनसे निन्दित है, ऐसे इस शरीरको धिक्कार है ॥११७-११८॥ जो मनुष्य ऐसे शरीरमें धैर्य धारण करते हैं, चैतन्य अर्थात् विचाराविचारकी शक्तिके रहित उन मनुष्योंका कल्याण कैसे हो सकता है ? ॥११९॥ यह आत्मारूपी बनजारा परलोकके लिए प्रस्थान कर रहा है, सो लोगोंको जबरदस्ती छूटनेवाले ये इन्द्रियरूपी चोर उसे रोक कर बैठे हैं ॥१२०॥ यह जीवरूपी राजा क्रुद्धि रूपी खीसे बिरकर क्रीड़ा कर रहा है और मृत्यु उसे अचानक ही

१. भ्रमरमधुरध्वनीन् । स्वनाम् ४०, म० । २. रुल-म० । ३. समुपागतं म० । ४. ऐश्वर्यं म० । ५. वजात्र म० । ६. सता शुभ-म० । ७. विहितं म०, ख० । ८. मुपगन्तः म०, ज० । ९. अवस्कन्देन म० ।

मनो विषयमार्गेषु भक्तद्विरद्विभ्रमम् । वैराग्यबलिना शक्यं रोदधुं ज्ञानाङ्कुशश्रिता ॥१२२॥
 परस्पररूपसत्येषु विभ्राणा लोभमुत्तमम् । अमी हृषीकतुरगा धृतमोहमहाजवाः ॥१२३॥
 शरीररथमुन्मुक्ताः पातयन्ति कुबर्तसु । विचप्रग्रहमत्यन्त योग्यं कुतस्तद्वदम् ॥१२४॥
 नमस्यत जिनं भक्त्या स्मरतानारतं तथा । संसारसागरं येन समुत्तरत निश्चितम् ॥१२५॥
 मोहारिकण्ठकं हित्वा तपःसंयमहेतिभिः^१ । लोकाग्रनगरं प्राप्य राज्यं कुतस्त निर्भयाः ॥१२६॥
 जैनं^२ व्याकरणं श्रुत्वा सुधीर्विजयपर्वतः । त्यक्त्वा विपुलमैश्वर्यं बभूव मुनिपुङ्गवः ॥१२७॥
 तावपि आतरी तस्मिन् श्रुत्वा भक्त्या जिनश्रुतिम् । प्रब्रज्य सुतपोभारी सद्गतावाटतुर्महोम् ॥१२८॥
^३सम्मेष्टं च ब्रजन्तौ ताविष्टनिर्वाणवन्दनौ । कथञ्चिन्मार्गतो अष्टावरण्यानी समाश्रितौ ॥१२९॥
 वसुभूतिचरेणाथ रौद्रग्लेच्छेन वीक्षितौ । अतिकुद्देन चाहूतौ गिराक्रोशकठोरया^४ ॥१३०॥
 जिघांसन्त तमालोक्य व्याघ्रान्मुदितमग्नवात् । मा मैपात्रांतरिख त्वं समाधानं समाश्रय ॥१३१॥
 ग्लेच्छोऽयं हन्तुमुद्युक्तो दहयते नौ दुराकृतिः । चिराभ्याससमृद्धाया ज्ञान्तेरथ विनिश्चयः ॥१३२॥
 प्रत्युवाच स तं भीतिः का नौ जिनवचस्थयोः । नूनं सूढतयास्माभिरप्ययं प्रापितो वधम् ॥१३३॥
 एव तौ विहितालापौ सविचारं समाश्रितौ । प्रत्यास्थानं शरीरादेः प्रतिमायोगमागतौ ॥१३४॥
 समीपतां च सम्प्राप्तौ ग्लेच्छो हन्तुं समुद्यतः । आलोक्य दैवयोगेन सैन्येन निवारितः ॥१३५॥
 रामः पप्रच्छ तेनैतौ व्यापात्रविदुर्मप्यसितौ । सेनाधिपेन निर्मुक्तौ रक्षितौ केन हेतुना ॥१३६॥

दुःखी करना चाहती है ॥१२१॥ विषयोके मार्गमे भद्रोन्मत्त हाथीके समान दौड़ता हुआ यह मन ज्ञानरूपी अङ्गुशको धारण करनेवाले वैराग्यरूपी बलवान् पुरुषके द्वारा ही रोका जा सकता है ॥१२२॥ जो शरीररूपी धान्यमें उत्तम लोभको धारण कर रहे हैं तथा जो महा मोहरूपी वेग को धारणकर लम्बी चौकड़ी भर रहे हैं ऐसे ये इन्द्रियरूपी घोड़े शरीररूपी रथको कुमार्गमे गिरा देते हैं, इसलिये मन रूपी लगामको अत्यन्त दृढ़ करो ॥१२३-१२४॥ भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार करो और निरन्तर उन्हींका स्मरण करो जिससे निश्चय पूर्वक संसार-सागरको पार कर सको ॥१२५॥ तप और संयमरूपी शस्त्रोंके द्वारा मोहशत्रुरूपी कंटकको नष्टकर मोक्षरूपी नगरको प्राप्त करो तथा निर्भय होकर वहाँका राज्य करो ॥१२६॥ इस प्रकार जैनाचार्यका व्याख्यान सुनकर उत्तम बुद्धिको धारण करनेवाला राजा विजयपर्वत विशाल वैभवका परित्याग कर श्रेष्ठ मुनि हो गया ॥१२७॥

दूतके पुत्र दोनों भाई उदित और मुदित भक्तिपूर्वक जिनवाणी सुनकर दीक्षित हो गये और उत्तम तपको धारण करते हुए एक साथ पृथिवी पर विहार करने लगे ॥१२८॥ निर्वाण क्षेत्रकी बन्दनाकी अभिलाषा रखते हुए वे सम्मेदाचलको जा रहे थे, सो किसी तरह मार्ग भूलकर एक महाअटवीमे जा पहुँचे ॥१२९॥ वसुभूतिका जीव मरकर उसी अटवीमे पुष्टग्लेच्छ हुआ था, सो उसने देखते ही अत्यन्त क्रुद्ध होकर कठोर वाणीसे उन्हें बुलाया ॥१३०॥ उसे मारनेके लिए उत्सुक देख बड़े भाई उदितने मुदितसे कहा कि हे भाई! भयभीत मत हो, इस समय समाधि धारण करो, चित्त स्थिर करो ॥१३१॥ दुष्ट आकृतिको धारण करनेवाला यह ग्लेच्छ हम दोनोंको मारनेके लिए तत्पर दिखाई देता है सो हम लोगोंने चिरकालके अभ्याससे जिस क्षमाको समृद्ध बनाया है आज उसकी परीक्षाका अवसर है ॥१३२॥ मुदितने बड़े भाईको उत्तर दिया कि जिनेन्द्र भगवान्के वचनोमे स्थिर रहनेवाले हम लोगोको भय किस बातका है? निश्चयसे हम लोगोंने भी इसका वध किया होगा ॥१३३॥ इस प्रकार चार्तालाप करते हुए दोनों भाई विचार पूर्वक खड़े हो गये और शरीर आग्निसे रमता छोड़ प्रतिमा योगको प्राप्त हुए ॥१३४॥ तदनन्तर मारनेकी इच्छा रखता हुआ वह भोल उनके पास आया परन्तु दैवयोगसे भीलोंके सेनापतिने उसे देख लिया जिसे मना कर दिया ॥१३५॥ यह सुन, रामने केवलीसे पूछा

१. हेतुभिः म० । २. व्याख्यानं । ३. सम्मोद ख० । ४. क्रोशकुठारया म० । -

केवस्थास्यात् समुद्भूता भारतीति भवान्तरे । सुरपः कर्पकश्चास्तां यक्षस्थाने सहोदरो ॥१३०॥
 लुब्धकेनाहृतो जीवः शकुन्तिप्राममन्धदा । ताभ्यां कारुण्ययुक्ताभ्यां दत्त्वा मृत्युं विमोचितः ॥१३१॥
 ततोऽसौ शकुनो मृत्वा बभूव म्लेच्छभूपतिः । सुरपः कर्पकश्चातुदितो मुदितस्तथा ॥१३२॥
 पक्षीभवन्नसौ यस्मादेताभ्यां रक्षितं पुरा । तस्मात् सेनापतिर्भूयो ररञ्जासविमी मुनी ॥१३३॥
 लुब्धको जीवमोक्षेण वसुभूतिर्द्विजोत्तमः । सञ्जातो कर्मयोगेन मनुष्यभवमुत्तमम् ॥१३४॥
 यद्यथा निर्मितं पूर्वं तत्रोग्यं जायतेऽधुना । संसारवाससक्तानां जीवानां गतिरीदृशी ॥१३५॥
 किमधीतैरिहानर्थग्रन्थैरौशनसादिभिः । एकमेव हि कर्तव्यं सुकृतं सुखकारणम् ॥१३६॥
 निःसृतावुपसर्गात्तौ मुनी कर्मानुभावतः । निर्वाणसदनं प्राप्तावकाष्टं जिनवन्दनाम् ॥१३७॥
 एवं तौ चारुधामानि पर्यट्य समर्थं चिरम् । रत्नत्रयं समाराध्य मृत्वा स्वर्गमुपागतौ ॥१३८॥
 निन्दयोन्योनिषु पर्यट्य वसुभूतिः सुकृच्छृतः । मनुष्यत्वं समासाद्य तापसव्रतमाश्रितः ॥१३९॥
 कृत्वा बालतपः कष्टं कालधर्मेण सङ्गतः । अग्निकेतुरिति ख्यातः क्रूरो ज्योतिःसुरोऽभवत् ॥१४०॥
 तथासित भरतक्षेत्रे नाम्नारिष्टमहापुरम् । प्रियव्रत इति ख्यातः पुरुषोमोऽत्र पार्थिवः ॥१४१॥
 महादेव्याबुधे तस्य योषिद्गुणसमन्विते । काञ्चनाभा प्रसिद्धैका पद्मावत्यपरोदिता ॥१४२॥
 स्युतौ तौ सुन्दरौ नाकाजातौ पद्मावतीसुतौ । नाम्ना रत्नरथोज्यश्च विचित्ररथसंज्ञकः ॥१४३॥
 उत्पन्नः कनकाभायां ज्योतिर्देवः परिच्युतः । अनुन्धर इति ख्यातिं गुणैस्ते चावनिं गताः ॥१४४॥
 रात्र्यं पुत्रेषु निष्पिष्य पट्टदिनानि जिनालये । कृतसंलेखनः सम्यक् स्वर्गं यातः प्रियव्रतः ॥१४५॥

किं भील इन्हें क्यां मारना चाहता था औरसेनापतिने किस कारणसे छुड़ा कर इनको रक्षा की ॥१३६॥ तब केवली भगवान्के मुखसे इस प्रकारकी दिव्यध्वनि प्रकट हुई कि भवान्तरसे यक्षस्थान नामक नगरमें सुरप और कर्पक नामके दो भाई रहते थे ॥१३७॥ एक दिन एक शिकारी किसी पक्षीको पकड़ कर उस गाँवमें ले आया सो दयासे युक्त होकर सुरप और कर्पकने मृत्यु देकर उसे छुड़ा दिया ॥१३८॥ तदनन्तर वह पक्षी मर कर म्लेच्छ राजा हुआ और सुरप तथा कर्पक मर कर उदित तथा मुदित हुए ॥१३९॥ चूँकि पक्षी अवस्थामें इन दोनोंने पहले इसकी रक्षा की थी इसलिए पक्षीने भी सेनापति होकर इन दोनोंं मुनियोंकी रक्षा की ॥१४०॥ शिकारीका जीव मर कर कर्मयोगसे उत्तम मनुष्य पर्याय पाकर वसुभूति नामका ब्राह्मण हुआ ॥१४१॥ यह जीव पूर्वं भवमें जैसा करता है इस भवमें उसके अनुरूप ही उत्पन्न होता है । संसारी प्राणियोंकी ऐसी ही दशा है ॥१४२॥ यहाँ निरर्थक शुक्रादि निर्मित शास्त्रोंके पढ़नेसे क्या होता है ? सुखके कारणभूत एक पुण्यका ही संचय करना चाहिए ॥१४३॥ पुण्यके प्रभावसे उपसर्गसे निकले हुए दोनोंं मुनियोने निर्वाण क्षेत्र—सम्मेदाचल पहुँच कर जिन-वन्दना की ॥१४४॥ इस प्रकार अनेक उत्तमोत्तम स्थानोंमें भ्रमण कर तथा चिरकाल तक रत्नत्रयकी आराधना कर मर कर दोनोंं मुनि स्वर्ग गये ॥१४५॥ और वसुभूति अनेक खोटी योनियोंमें भ्रमण कर बड़ी कठिनाईसे मनुष्यभूत को प्राप्त हुआ, सो वहाँ उसने तापसके व्रत धारण किये ॥१४६॥ तदनन्तर दुःखदायी बाल तप कर वह मरा और अग्निकेतु नामका दुष्ट ज्योतिषी देव हुआ ॥१४७॥

तदनन्तर इसी भरतक्षेत्रमें एक अरिष्टपुर नामा नगर है जहाँ प्रियव्रत नामका महाभोगवान् राजा राज्य करता था ॥१४८॥ उसकी स्त्रियोंके गुणोंसे सहित दो महादेवियों थी एक काञ्चनाभा और दूसरी पद्मावती ॥१४९॥ उदित और मुदितके जीव स्वर्गसे चयकर रान्तो पद्मावतीके रत्नरथ और विचित्ररथ नामके सुन्दर पुत्र हुए ॥१५०॥ वसुभूतिका जीव जो ज्योतिषी देव हुआ था वह प्रियव्रत राजाकी दूसरी महादेवी काञ्चनाभाके अनुन्धर नामका पुत्र हुआ । पृथिवी पर आये हुए तीनों पुत्र अपने गुणोंसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए ॥१५१॥ राजा प्रियव्रत पुत्रोंके ऊपर राज्य

राज्ञोऽन्यस्य सुता नाम्ना श्रीप्रभा श्रीप्रभेव सा । लब्धा रत्नरथेनेष्टा कनकामाङ्गजेन च ॥१५३॥
 लब्धा रत्नरथेनैषा ततो द्वेषमुपागतः । अनुन्धरो महो तस्य विनाशयितुमुद्यतः ॥१५४॥
 ततो रत्नरथेनासौ विचित्रस्वन्दनेन च । निर्जित्य समरे पञ्च दण्डान् प्राप्य निराकृतः ॥१५५॥
 खलीकात्ततः पूर्वजन्मवैराद्य कोपतः । जटावल्कलधारी स तापसोऽभूद् विपाद्भिर्वत् ॥१५६॥
 भुक्त्वा राज्यं चिरं कालं सोदरौ तु प्रबोधितौ । प्रव्रज्य सुतपः कृत्वा स्वर्गलोकमुपागतौ ॥१५७॥
 तौ महाप्रेतसौ तत्र सुखं प्राप्य सुरोचितम् । च्युतौ सिद्धार्थनगरे क्षेमङ्करमहोभृतः ॥१५८॥
 उत्पन्नौ विमलाख्यायां महादेव्यां सुसुन्दरी । देशभूषण इत्याद्यो द्वितीयः कुलभूषणः ॥१५९॥
 विद्याजर्जनीचिर्तौ तौ च क्रीडन्तौ तिष्ठतो गृहे । नाम्ना सागरघोषश्च विद्वान् आत्म्यन्नुपागतः ॥१६०॥
 राज्ञा च सगृहीतस्य तस्य पार्श्वेऽखिलाः कलाः । शिञ्चितौ तावुदारेण विनयेन समन्वितौ ॥१६१॥
 'स्वजन नैव तौ कश्चिज्जानीतस्तद्गतात्मकी । कर्तव्यं हि तयोः सर्वं विद्याशालागतं तदा ॥१६२॥
 उपाध्यायेन चार्जनीतौ सुचिरात् पितुरन्तिकम् । दृष्ट्वा योग्यौ नरेन्द्रेण यथाकामं स पूजितः ॥१६३॥
 आबयोः किल दारार्थं पित्रा सामन्तकन्यकाः । आनायिता इति श्रोत्रपथं वार्तां तयोर्गता ॥१६४॥
 ततस्तौ परया द्युत्या बाह्यालं गन्तुमुद्यतौ । वातायनस्थितां कन्यां पुरोभोगमपश्यताम् ॥१६५॥
 तत्सङ्गमायमन्योन्यं मानसेऽकुरुतां वधम् । ततश्च वन्दिनो वक्त्रादिति शब्दः समुत्थितः ॥१६६॥

छोड़ जिनालयमे छह दिनकी उत्तम सल्लेखना धारण कर स्वर्ग गया ॥१५३॥ अथानन्तर एक राजाकी पुत्री श्रीप्रभा जो कि यथार्थमे श्रीप्रभा अर्थात् लक्ष्मीके समान प्रभाकी धारक थी, रत्नरथने उससे व्याह कर लिया । इसी पुत्रोको काञ्चनाभाका पुत्र अनुन्धर भी चाहता था । वह द्वेष रखकर उसकी भूमिको उजाड़ करनेके लिए उद्यत हो गया ॥१५३-१५४॥ तब रत्नरथ और विचित्ररथने उसे युद्धमे जीत कर तथा पाँच प्रकारके दण्ड देकर देशसे निकाल दिया ॥१५५॥ अनुन्धर इस अपमान से तथा पूर्वभव सम्बन्धी बैरसे कुपित होकर जटा और वल्कलको धारण करनेवाला विपट्टकके समान तापसी हो गया ॥१५६॥

इधर रत्नरथ और विचित्ररथ दोनों भाई चिरकाल तक राज्य भोगकर प्रबोधको प्राप्त हुए सो दीक्षा ले उत्तम तप धारण कर स्वर्ग लोकमें उत्पन्न हुए ॥१५७॥ महातेजको धारण करनेवाले दोनों भाई वहाँ देवोके योग्य उत्तम सुख भोगकर वहाँसे च्युत हुए और सिद्धार्थ नगरके राजा क्षेमङ्करकी विमला नामक महादेवीके दो सुन्दर पुत्र हुए । प्रथम पुत्रका नाम देशभूषण और दूसरे पुत्रका नाम कुलभूषण था ॥१५८-१५९॥ विद्या उपाजर्जन करनेकी योग्य अवस्थामें वर्तमान दोनों भाई घर पर क्रीडा करते रहते थे । एक दिन भ्रमण करता हुआ एक सागरसेन नामका महाविद्वान् वहाँ आया, सो राजाने उसे रख लिया । उक्त विनयसे युक्त दोनों भाइयोंने उस विद्वान्के पास समस्त कलाएँ सीखीं ॥१६०-१६१॥ दोनों पुत्रोका विद्यामें इतना चित्त लगा कि वे अपने परिवारके लोगोको भी नहीं जानते थे । यथार्थमे उनका सम्पूर्ण चित्त विद्या और विद्यालयमे ही लगा रहता था ॥१६२॥ उपाध्याय चिर कालके बाद पुत्रोको निपुण बनाकर पिताके पास ले गया सो पिताने पुत्रोको योग्य देख उपाध्यायका यथायोग्य सम्मान किया ॥१६३॥ तदनन्तर पिताने हम दोनोंके विवाहके लिए राजा कन्याएँ बुलवाई हैं यह समाचार उनके कर्णमार्ग तक पहुँचा ॥१६४॥

तदनन्तर परम कान्तिसे युक्त दोनों भाई एक दिन नगरके बाहर जानेके लिए उद्यत हुए सो उन्होंने भरोखेमें वैठी नगरकी शोभा स्वरूप एक कन्या देखी ॥१६५॥ उस कन्याका समागम प्राप्त करनेके लिए दोनों ही भाइयोंने अपने मनमे परस्पर एक दूसरेके वध करनेका विचार किया । तदनन्तर वन्दीके मुखसे उसी समय यह शब्द निकला ॥१६६॥ कि विमला देवीके साथ वह

साकं विमलया देव्या श्रीमान् क्षेमङ्करो नृपः । चिरं जयति यस्यैतौ तनयौ त्रिदशोपमौ ॥१६७॥
 वातायनस्थितैपि कन्यका कमलोत्सवा । जयति आतरावेतौ यस्याश्चारुगुणोत्कटौ ॥१६८॥
 ततस्तौ तद्गिरौ ज्ञात्वा सोदरैपावयोरिति । वैराग्य परमं प्राप्ताविति चिन्तामुपागतौ ॥१६९॥
 धिग्धिग्धिगिदमत्यन्तं पापमस्माभिरहितम् । अहो मोहस्य दारुण्यं सोदरा येन कांचिता ॥१७०॥
 चिन्तयित्वा प्रमादेन दुःखमस्माकमीदृशम् । कुर्वन्ति ये सदा कार्यं तेषां त्वत्यन्तसाहसम् ॥१७१॥
 असारोऽयमहोऽयन्तं संसारो दुःखपूरितः । तत्र नामेदशा भावाः जायन्ते पापकर्मणाम् ॥१७२॥
 कुतोऽप्यपुण्यतः क्षिप्रं चेतनो नरकं व्रजेत् । सम्प्राप्य बोधमस्माभिः सद्बृत्तश्चित्रमुत्तमम् ॥१७३॥
 इति सञ्चिन्त्य सन्त्यज्य मातरं दुःखमूर्च्छिताम् । स्नेहाकुलं च पितरं दीक्षां देवसांसीं श्रितौ ॥१७४॥
 नभोविहरणी लब्धिं प्राप्य सौ सुतपोवनौ । आंहितां जैगल्लानाजिनतीर्थानिपूजितम् ॥१७५॥
 क्षेमङ्करनरेशस्तु तच्छोकानलदीपितः । युगपत्सकलं त्यक्त्वाऽऽहारं पञ्चत्वेमागतः ॥१७६॥
 भवादारभ्य पूर्वोक्तात् स एव हि पितावयोः । तेन नौ प्रति वात्सल्यं तस्य नित्यमनुत्तमम् ॥१७७॥
 गडगडपितिश्रावौ जातः क्थातो मरुत्वतः । सुन्दरोद्भूतविक्रान्तो महालोचनसञ्जकः ॥१७८॥
 क्षुब्धः श्वासनकम्पेन प्रयुज्यावधिसूजितः । आगतोऽयं स्थितो भावि व्यन्तरामरसदि ॥१७९॥
 अनुन्धरस्तु विहरंस्तापसाचारतत्परः । कौमुदीनगरीं यातः शिष्यसङ्घेन वेष्टितः ॥१८०॥
 नरेशः सुमुखस्तत्र रतवत्यस्य भामिनी । कान्ता शतप्रधानत्वं प्राप्ता परमसुन्दरी ॥१८१॥

राजा क्षेमङ्कर सदा जयवन्त रहे जिसके कि देवोके समान ये दो पुत्र है ॥१६७॥ तथा भरोखेमें बैठौ यह कमलोत्सवा नामकी कन्या भी धन्य है जिसके कि सुन्दर गुणोंसे उत्कट ये दो भाई हैं ॥१६८॥ तदनन्तर वन्दीके कहनेसे 'यह हमारी बहिन है' ऐसा जानकर परम वैराग्यको प्राप्त हुए दोनों भाई इस प्रकार विचार करने लगे कि ॥१६९॥ अहो ! हम लोगोंके द्वारा इच्छित इस भारी पापको धिक्कार है, धिक्कार है, धिक्कार है । अहो ! मोहकी दारुणता देखो कि जिससे हमने बहिन ही की इच्छा की ॥१७०॥ हम लोग तो प्रमादसे ही ऐसा विचार कर दुःखी हो रहे हैं फिर जो जान-बूझकर सदा ऐसा कार्य करते हैं उनका तो बहुत भारी साहस ही कहना चाहिये ॥१७१॥ अहो ! दुःखसे भरा यह संसार बिलकुल ही असार है जिसमें पापी मनुष्योंके ऐसे विचार उत्पन्न होते हैं ॥१७२॥ किसी पापके उदयसे सहसा कार्य करनेवाला प्राणी नरक जा सकता है, पर हम लोग तो सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रको पाकर भी नरक जाना चाहते हैं, यह बड़ा आश्चर्य है ॥१७३॥ ऐसा विचारकर दुःखसे मूर्च्छित माता और स्नेहसे आकुल पिताको छोड़कर दोनोंने दैगम्बरी दीक्षा धारण कर ली ॥१७४॥ उत्तम तपरूपी धनको धारण करनेवाले दोनो मुनियोंने आकाशगामिनी ऋद्धि प्राप्त कर जगत्के नाना तीर्थ क्षेत्रोंमें विहार किया ॥१७५॥ राजा क्षेमङ्कर उस शोकाग्निसे दग्ध हो कर एक साथ समस्त आहार छोड़ मृत्युको प्राप्त हुआ ॥१७६॥ राजा क्षेमङ्कर पहले कहे हुए भवसे ही लेकर हम दोनोंका पिता होता आया है इसलिये हम दोनोंके प्रति उसका निरन्तर भारी स्नेह रहता था ॥१७७॥ अब वह सरकर भवनवासी देवोंमें सुपर्ण कुमार जातिके देवोका अधिपति, प्रसिद्ध, सुन्दर अद्भुत-पराक्रमका धारी महालोचन नामका देव हुआ है ॥१७८॥ वह बली अपने आसनके कम्पित होनेसे लुभित हो अवधि ज्ञानके द्वारा सब जान कर यहाँ आया है तथा व्यन्तर देवोंकी सभामें बैठा है ॥१७९॥

उधर तपस्वियोंका आचार पालन करनेमें तत्पर अनुंधर, शिष्य समूहके साथ विहार करता हुआ कौमुदी नगरीमें आया ॥१८०॥ वहाँका राजा सुमुख था और रतवती उसकी स्त्री थी

१. भिः सद्बृत्तश्चित्रमुत्तमम् म० । २. दैगम्बरीम् । ३. अगन्मान्याजिनतीर्थानिपूजितम् म० । ४. हारे म० । ५. मृत्युम् । ६. सर्वदाराभ्य म० ।

अवरुद्धा च सच्चैष्टा मयनेति विलासिनी । पताका मन्दनेनेव जित्वा लोकमुपार्जिता ॥१८२॥
 साधुदत्तमुनेः पार्ष्वं सम्यग्दर्शनमैतसौ । तस्याप्येतरतीर्थानि वृणतुल्यान्यमन्यत ॥१८३॥
 तस्याः पुरोऽथ रहसि कञ्चिद्वदन्तृपः । अहोऽसौ तापसः स्थान महतां तपसामिति ॥१८४॥
 ततो मदनयाऽवाचि कीदृशनाथेदयां तपः । मिथ्यादृशमविज्ञानलोकदम्भनकारिणाम् ॥१८५॥
 तच्छ्रुत्वा भूपतिस्तस्यै क्रुद्धः सा चागदत् पुनः । मा रुः पश्यनायेमं मेऽचिरात्पात्रवर्तिनम् ॥१८६॥
 ह्ययुक्त्वा स्वगृहं गत्वा शितयित्वा मनोहरम् । आमजा नागदत्ताख्यां प्रैषयत्तापसाश्रमम् ॥१८७॥
 तस्मै सैकान्तयाताय योगस्थाय सुविभ्रमा । आस्थितामरकन्यैव परमाकल्पधारिणी ॥१८८॥
 व्रतेहितामरस्याजादूहकाण्डमदर्शयत् । मारस्यान्तःपुरस्थानं लावण्यरसनिर्भरम् ॥१८९॥
 समाधानोपदेशेन कुङ्कुमद्रवपिञ्जरम् । मारवारणकुम्भाभ तथा वचसिजद्वयम् ॥१९०॥
 कुसुमग्रहणन्याजात् सस्तनीविरतेगृहम् । नाभिमण्डलमुत्तेजः कञ्चोद्देशं च सुन्दरी ॥१९१॥
 भजानयोगनेतस्य भित्त्वा लोचनमानसे । अपसतां प्रदेशेषु तेषु तस्याः सुवन्धने ॥१९२॥
 ताडितः स्मरवाणश्च ससुधाय समकुलः । गत्वा शनैरपृच्छन्तां त्वं वाले कात्र वर्तसे ॥१९३॥
 सन्ध्याकालेऽत्र ये केचित प्राणिनः भुद्रका अपि । आलयं त्वं निपेयन्ते ननु त्वं सुकुमारिका ॥१९४॥
 सावोचन्मधुरैर्वर्णैः भिन्दन्ती हृदयस्थलीम् । लीलया बाहुल्यकामुल्लसन्ती मुखं प्रति ॥१९५॥
 चलस्रोतोत्पलच्छाये धारयन्ती विलोचने । किञ्चिदन्यमिव प्राप्ता बहुविस्फुरिताधरा ॥१९६॥

जो सैकड़ो स्त्रियोमे प्रधान तथा परम सुन्दरी थी ॥१८१॥ उसी राजाके उत्तम चेष्टाको धारण करने वाली एक मदन। नामकी विलासिनी (वेश्या)स्त्री थी, जो ऐसी जान पड़ती थी मानो संसार को जीत कर कामदेवके द्वारा प्राप्त की हुई पताका ही हो ॥१८२॥ उस मदनाने साधुदत्त मुनिके पास सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था जिसे पाकर वह अन्यधर्मोंको वृणके समान तुच्छ मानती थी ॥१८३॥ अथानन्तर किसी दिन राजाने मदनके सामने कहा कि अहो ! यह तापस महातपोका स्थान है ॥१८४॥ यह सुन मदनाने कहा कि हे नाथ ! इन मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी तथा लोगोको ठगने वाले लोगोका तप कैसा ? ॥१८५॥ यह सुन राजा उसके लिए क्रुद्ध हुआ पर उसने फिर कहा कि हे नाथ ! क्रोध मत कीजिए तथा इसे मेरे चरणोमे वर्तमान देखिए ॥१८६॥ यह कह कर तथा घर जाकर उसने अपनी नागदत्ता नामकी सुन्दरी पुत्रीको सिखा कर उस तापसके आश्रममे भेजा ॥१८७॥ सुन्दर हावभाव और उत्तम वेप-भूषाको धारण करनेवाली नागदत्ता देवकन्याके समान जान पड़ती थी ! वह एकान्तमे योग लेकर बैठे हुए उस तापसके पास जाकर खड़ी हो गई ॥१८८॥ हवासे हिलते हुए वस्त्रके वहाने उसने काम-देवके अन्तःपुरके समान, सौन्दर्य रससे भरे अपने ऊह दिखाये ॥१८९॥ समाधानके वहाने केशरके द्रवसे पीले तथा कामदेवके गण्डस्थलकी तुलना धारण करनेवाले दोनों स्तन प्रकट किये ॥१९०॥ पुष्प ग्रहणके वहाने नीची ढीलीकर जघन स्थान दिखाया, देशीयमान नाभिमण्डल और सुन्दर बगले भी दिखाई ॥१९१॥ उस तापसके नेत्र और मन अज्ञानपूर्ण योगका भेदन कर उस नागदत्ताके उन-उन प्रदेशों पर पड़ने लगे तथा वहीं बन्धनसे युक्त हो गये ॥१९२॥ वदनन्तर कामके वाणोंसे ताडित तपस्वी अत्यन्त व्याकुल होता हुआ उठकर उसके पास गया और धीरेसे उससे पूछने लगा कि हे वाले ! तू कौन है ? और यहाँ कहाँ आई है ? ॥१९३॥ इस सन्ध्याके समय छोटो-मोटे प्राणी भी अपने घर रहते हैं फिर तू तो अत्यन्त सुकुमार है ॥१९४॥ नागदत्ता मधुरवर्णोंसे उसका हृदयस्थल भेदती, लीलापूर्वक भुजलताको मुखकी ओर ऊपर उठाती, चञ्चल नील कमलके समान कान्तिके धारक नेत्रोंको धारण करती, कुङ्कु-कुङ्कु

शृणु नाथ ! वयाधार ! शरणागतवत्सल ! । अम्बयाऽहं विना दोषाद्वच निर्वासिता गृहात् ॥१६७॥
 कापायप्रावृता चाहं भद्रदीयामिमां स्थितिम् । आचरामि प्रसादं मे कुरु नाथानुमोदनात् ॥१६८॥
 शुभ्रपां भवतः कृत्वा दिवा नक्तं च सक्रिया । इह लोको मया लब्धः परलोकश्च ज्ञायते ॥१६९॥
 किं तदभ्यर्थकामेषु न यद्भवति लभ्यते । निधानमसि काम्यानां मया पुण्येन वीक्षितः ॥२००॥
 इति सम्भाषिते तस्याः विज्ञाय प्रगुणं मनः । स्मरेण दक्षमानोऽसावन्वीदिति विस्मयः ॥२०१॥
 भद्रे कोऽहं प्रसादस्य प्रसीद त्वं ममोत्तमे । भजस्व भक्तिमेषोऽहं यावज्जीवं करोमि ते ॥२०२॥
 इत्युक्त्वालिङ्गितुं चिपं तं प्रसारितबाहुकम् । अगदीत् पाणिना कन्या वारयन्तीति साद्रा ॥२०३॥
 न वर्तते इदं कर्तुं कन्याहं विधिघर्जिता । पृच्छ मे मातरं गत्वा गृहेऽस्मिन् इत्यतोरणे ॥२०४॥
 परा कारुण्ययुक्तेषु भवतः श्रेयसी यथा । एतां प्रसादवाचकं तुभ्यमेवा दद्राति माम् ॥२०५॥
 एवमुक्तस्तथा सार्कं त्वरया व्याकुलक्रमाः । वेरमाविशद्विलासिन्याः सवितर्यस्तमागते ॥२०६॥
 मन्मयाकृष्टनिःशेषद्वर्षकविपथो ह्यसौ । किञ्चिद्देति स्म नोपायं विशन्वारीमिव द्विपः ॥२०७॥
 न शृणोति स्मरप्रस्तो न जिघ्रति न पश्यति । न जानात्यपरस्पर्शं न विभेति न लज्जते ॥२०८॥
 आश्चर्यं मोहतः कष्टयनुत्तापं प्रपद्यते । अन्यो निपतितः कूपे यथा पन्नगसेविते ॥२०९॥
 वेरयाचरणयोश्चासौ कृत्वा बिलुठितं शिरः । याचते कन्यकां पूर्वसंज्ञितश्चाविशन्नुपः ॥२१०॥

वीनताको प्राप्त होती तथा अधरोष्ठको बार-बार हिलाती हुई बोली ॥१६४-१६६॥ कि हे नाथ !
 हे दयाके आधार ! हे शरणागत वत्सल ! सुनिये, आज मेरी माताने मुझे अपराधके विना ही
 घरसे निकाल दिया है ॥१६७॥ सो हे नाथ ! अब मैं गेरुआ वस्त्र धारणकर आपकी इस कृत्तिका
 आचरण करूँगी, आप अनुमति देकर मुझपर प्रसाद कीजिये ॥१६८॥ रात-दिन आपकी सेवा
 करनेसे मेरा यह लोक तथा परलोक दोनों ही सुधर जावेंगे ॥१६९॥ धर्म अर्थ और काममें ऐसा
 कौन पदार्थ है जो आपके पास प्राप्त न हो सके, आप समस्त मनोरथोंके भाण्डार हैं ।
 पुण्यसे ही आपके दर्शन हुए है ॥२००॥ इस प्रकार कहने पर उसका मन वशीभूत
 जान कामसे जलता हुआ तापस व्याकुल होता हुआ इस प्रकार बोला ॥२०१॥
 कि हे भद्रे ! प्रसाद करनेके लिए मैं कौन होता हूँ ? हे उत्तमे ! तुम्हीं मुझपर
 प्रसाद करो, स्वीकृत करो, मैं जीवन पर्यन्त तुम्हारी भक्ति करूँगा ॥२०२॥
 ऐसा कहकर उसने आलिङ्गन करनेके लिए शीघ्र ही अपनी भुजा पसारी तब आदरके साथ उसे
 हाथसे रोकती हुई कन्याने कहा ॥२०३॥ कि यह करना उचित नहीं है, मैं कुमारी कन्या हूँ
 जिसका तोरण दिखाई दे रहा है, ऐसे इस घरमें जाकर मेरी सातासे पूछो ॥२०४॥ आपकी
 बुद्धिके समान वह परम दयासे युक्त है, उसे प्रसन्न करो वह अवश्य ही मुझे तुम्हारे लिए दे
 देगी ॥२०५॥ इस प्रकार नागदत्ताके कहने पर वह सूर्यास्तके अनन्तर अटपटे पैर रखता हुआ
 उसके साथ वेश्याके घर गया ॥२०६॥ जिसके समस्त इन्द्रियोंके विषय कामसे आकृष्ट हो चुके
 थे, ऐसा वह तापस बारी (बन्धन) में प्रवेश करनेवाले हाथीके समान कुछ भी उपाय नहीं
 जानता था ॥२०७॥ सो ठीक ही है, क्योंकि कामसे प्रसन्न मनुष्य न सुनता है, न सूँघता है, न
 देखता है, न दूसरेका स्पर्श जानता है, न डरता है और न लज्जित हो होता है ॥२०८॥ जिस
 प्रकार अन्धा मनुष्य साँपसे भरे कुएँमें गिरकर कष्ट और सन्तापको प्राप्त होता है उसी प्रकार
 यह कामी मनुष्य मोहवश कष्ट और सन्तापको प्राप्त होता है, यह आश्चर्यकी बात है ॥२०९॥
 तदनन्तर वह तापस वेश्याके चरणोंमें शिर मुकाकर कन्याकी याचना करता है और उसी समय

स्थापितो बन्धयित्वाऽसौ राज्ञा नक्तं समीक्षितः । खलीकारं प्रभाते च प्रकटं प्रापितः परम् ॥२११॥
 ततोऽप्रमाननिर्दग्धः परं दुःख समुद्रहन् । आस्यन् मही मृतः क्लेशयोनिषु भ्रमणं स्थितः ॥२१२॥
 ततः कर्मानुभावेन मनुष्यभवमागतः । दारिद्र्यपङ्कनिर्मग्नं जनादरविवर्जितम् ॥२१३॥
 गर्भस्थ एव चैतस्मिन् विदेश जनको गतः । उद्वेक्षितः कुटुम्बिभ्या कलहकूरवाक्पया ॥२१४॥
 कुमारे च हता माता म्लेच्छेन विपयाहृतौ । दुःख च परम प्राप्तः सर्ववन्धुविवर्जितः ॥२१५॥
 ततस्तापसतो प्राप्य कृत्वा बालतपः परम् । ज्योतिर्लोकं समारुह्य नाम्ना बह्निप्रभोऽभवत् ॥२१६॥
 अनन्तवीर्यनामाथ केवली सेवितः सुरैः । इत्यन्तेवासिना पृष्टो धर्मचिन्तागतात्मना ॥२१७॥
 मुनिमुव्रतनाथस्य तीर्थेऽस्मिन् भवता समः । कोऽन्योऽनुभविता भव्यो लोकस्योत्तरकारणम् ॥२१८॥
 सोऽन्योऽन्यमपि निर्वाण गतेऽग्न भ्रमणचित्तौ । देशभूषण इत्येको द्वितीयः कुलभूषणः ॥२१९॥
 भवितारौ जगत्सारौ केवलज्ञानदर्शिनौ । यौ समाश्रित्य लोकोऽयं तरिष्यति भवार्णवम् ॥२२०॥
 सोऽपि बह्निप्रभस्तस्माच्छ्रुत्वा केवलिनो मुखात् । अवस्थानं निजं यातो ऽर्ण्या केवलिभाषितम् ॥२२१॥
 भग्नदावधिना ज्ञात्वा योगिनाविह नौ गिरौ । अनन्तवीर्यसर्वज्ञमिथ्यावाक्च्यं करोम्यहम् ॥२२२॥
 एवमुक्त्वाभिमानेन परमेष्ठितमोहितः । आगतः पूर्ववैरेण कर्तुं परमुपद्रवम् ॥२२३॥
 चरमाङ्गधरं दृष्ट्वा स भवन्तमतिमुत्तमम् । सुरेन्द्रकोपभात्या च तिरोधानमुपगतः ॥२२४॥
 नारायणसमेतेन प्रातिहार्यं त्वया कृते । केवलज्ञानमस्माकं जातं धातिपरिच्ये ॥२२५॥

पूर्वसंकेतानुसार राजा प्रवेश करता है ॥२१०॥ राजाने उसे वधवा कर रात्रिभर रक्खा और सवेरे ज्ञान-वीन कर सबके समक्ष उसका परम तिरस्कार किया ॥२११॥ तदनन्तर अपमानसे जला तापस परम दुःखको धारण करता हुआ पृथ्वी पर भ्रमण करता रहा और अन्तमें सरकार दुःखदायी योनियोंमें भटकता रहा ॥२१२॥ तदनन्तर कर्मोंके प्रभावसे मनुष्य भवको प्राप्त हुआ सो द्रिष्टावरूपी कोचड़में निमग्न तथा लोगोके आदरसे रहित नीच कुलमें उत्पन्न हुआ ॥२१३॥ जब वह गर्भमें था तभी कलहके समय कूर वचन कहनेवालों स्त्रोसे उद्विग्न होकर इसका पिता परदेश चला गया था ॥२१४॥ तथा जब वह बालक ही था तभी म्लेच्छोंके द्वारा देश पर आक्रमण होनेसे इसकी माता मर गई । इस तरह सर्व बन्धुओंसे रहित होकर वह परम दुःखको प्राप्त होता रहा ॥२१५॥ तदनन्तर तापस होकर तथा कठिन बालतपकर ज्योतिष लोकमें अग्निप्रभ नामक देव हुआ ॥२१६॥

अथानन्तर एक समय धर्म की चिन्तामें जिसका मन लग रहा था ऐसे शिष्यने देवोंके द्वारा सेवित अनन्तवीर्य नामा केवलीसे पूछा कि हे नाथ ! मुनिमुव्रत भगवान्के इस तीर्थमें आपके समान ऐसा दूसरा कौन भव्य होगा जो संसार समुद्रसे पार होनेका कारण होगा ॥२१७-२१८॥ तब अनन्तवीर्य केवलीने उत्तर दिया कि मेरे मोक्ष चलेजानेके बाद मुनियोंकी इस भूमिमें एक देशभूषण और दूसरा कुलभूषण इस प्रकार दा केवली होंगे । ये जगत्के सारभूत तथा केवल-ज्ञान और दर्शनके धारक होंगे । इनका आश्रय लेकर भव्यजीव संसार-सागरसे पार होंगे २१९-२२०॥ वह अग्निप्रभदेव केवलीके मुखसे यह सुनकर तथा उन्हीके कथनका ध्यान करता हुआ अपने स्थानपर चला गया ॥२२१॥ एक दिन अवधिज्ञानसे वह हम दोनों मुनियोंको इस पर्वतपर विद्यमान जानकर 'मैं अनन्तवीर्यसर्वज्ञके वचन मिथ्या करता हूँ' इस प्रकार कहकर तीव्र मोहसे मोहित होता हुआ पूर्व वैरके कारण परम उपद्रव करनेके लिए यहाँ आया ॥२२२-२२३॥ सो चरमशरीरी आपकी देखकर तथा इन्द्रके क्रोधसे भयभीत हो शीघ्र ही तिरोधानको प्राप्त हुआ अर्थात् भाग गया ॥२२४॥ तुम बलभद्र हो और लक्ष्मण नारायण सो इसके साथ तुमने हमारा उपसर्ग दूर किया अतः धातिया कर्मोंका क्षय होनेपर हमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ

इति गत्यागतीः श्रुत्वा प्राणिनां वैरकारिणाम् । वैरानुबन्धमुत्सृज्य स्वस्था भवत जन्तवः ॥२०६॥
 महापूतमिति श्रुत्वा चचनं केवलीरितम् । मुहुः सुरासुरा नेमुस्तं भीता भवदुःखतः ॥२०७॥
 तावच्च गरुडाधीश परमं सम्पदं श्रितः । नत्वा केवलिनः पादौ शयकज्जापितालिकः ॥२०८॥
 ऊचे रघुकुलोद्योतं विलसन्मणिकुण्डलम् । त्रिधां प्रसारयन् दृष्टिं प्रेमतर्पितमानसः ॥२०९॥
 प्रातिहार्यं कृतं येन त्वया मन्सुतयोः परम् । तत्तत्पुष्टोऽस्मि याचस्व वस्तु वत्सेऽभिरोचते ॥२१०॥
 क्षणं चिन्तागतः स्थित्वा जगाद् रघुनन्दनः । त्वयासुरप्रनखेन स्मर्तव्या वयमापदि ॥२११॥
 साधुसेवाप्रसादेन फलमेतदुपागतम् । अङ्गीकर्तव्यमस्माभिर्मवद्भारविनिर्गतम् ॥२१२॥
 पृथनस्त्विति तेनोक्ते दध्नुः शङ्खान् दिर्वाकिसः । भेर्यश्च मेघनिनदाः सानुवाद्याः समाहताः ॥२१३॥
 साधुपूर्वमेवं श्रुत्वा संवेगं परमं श्रिताः । प्रावन्नजुर्जना केचिद्वन्येऽणुव्रतमाश्रिताः ॥२१४॥

इन्दुवदनावृत्तम्

देशकुलभूषणसुनो जु जगद्व्यौ सर्वभवदुःखमलसङ्गमसिमुको ।
 ग्रामपुरपर्वतमटम्बपरिरम्भान् चञ्चलमनुवृत्तमगुणैरुपचिन्तागान् ॥२१५॥
 देशकुलभूषणमहामुनिमवं ये वृत्तमतिपूतमिदमुक्तसुभावाः ।
 श्रोत्रवचसोर्विपचतासुपनयन्ते ते रविनिना दुरितमाद्यु विवृजन्ति ॥२१६॥

इत्यार्षे रविपेशाचार्यप्रोक्ते पञ्चचरिते देशकुलभूषणोपास्थानं नामकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥२१६॥

है ॥२२५॥ इस प्रकार वैर करनेवाले प्राणियोंकी गति आगतिकी सुनकर है प्राणियो ! परस्परका वैर छोड़ स्वस्थ होओ अर्थात् आत्मस्वरूपमें लीन होओ ॥२२६॥ इस प्रकार केवली भगवान्के द्वारा उच्चरित महापवित्र वचन सुनकर संसारके दुखोंसे भयभीत हुए सुर और असुरोंने उन्हें बार-बार नमस्कार किया ॥२२७॥

इतनेमें ही परम ऐश्वर्यको प्राप्त सुवर्ण कुमारोंके पतिने हाथ जोड़कर मस्तकसे लगा केवली भगवान्के चरणकमलमें नमस्कार कर देदीप्यमान मणिमय कुण्डलोंके धारक रामसे कहा । उस समय वह गरुडेन्द्र रामकी ओर स्नेह पूर्ण दृष्टि डाल रहा था तथा प्रेमसे उसका मन सन्तुष्ट हो रहा था ॥२२८-२२९॥ उसने कहा कि चूँकि तुमने हमारे पुत्रोंकी परम सेवा की है इसलिए मैं तुम पर प्रसन्न हूँ तुम्हें जो वस्तु रुचती हो वह माँग लो ॥२३०॥ राम च्छनभर चिन्ता करते हुए चुपचाप बैठे रहे । तदनन्तर बोले कि हे देव ! यदि प्रसन्न हो आपनिके समय हम लोगोका स्मरण रखना ॥२३१॥ साधुसेवाके प्रसादसे ही यह प्राप्त हुआ कि आप जैसे सत्पुरुषोंके साथ मिलाप हुआ तथा संसारके द्वारसे निकलनेका मार्ग मिला ॥२३२॥ 'ऐसा ही हो' इस प्रकार गरुडेन्द्रके कहने पर देवाने शङ्ख फूँके तथा अनेक प्रकारके बादित्रोंके साथ मेघोंके समान शब्द करनेवाली भेरियाँ बजाई ॥२३३॥ मुनियोंके पूर्वमेव सुन कर परम संवेगको प्राप्त हुए कितने ही लोगोंने दीक्षा धारण कर ली और कितने ही लोग अणुव्रतोंके भारी हुए ॥२३४॥ जगत्के द्वारा पूजनीय तथा संसारके समस्त दुःखरूपों मलके समागमसे रहित देशभूषण, कुलभूषण केवली उत्तम गुणोंसे युक्त ग्रामपुर पर्वत तथा मटम्ब आदि रमणीय स्थानोंमें विहारकर धर्मका उपदेश देने लगे ॥२३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जो देशभूषण, कुलभूषण, महामुनियोंके इस अतिशय पवित्र चरित्रको उत्तम भावोंसे युक्त हो सुनते हैं तथा कथन कर दूसरोंको सुनाते हैं वे सूर्यके समान देदीप्यमान होकर शीघ्र ही पापोंका त्याग करते हैं ॥२३६॥

इस प्रकार आर्यनामसे प्रसिद्ध, रविपेशाचार्य कथित पञ्चचरितमें देशभूषण कुलभूषण केवलीका व्याख्यान करनेवाला उनतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२३६॥

चत्वारिंशत्तमं पर्व

श्रुत्वा केवलिनः पद्ममन्यविग्रहचारिणम् । स्तुत्वा सजयनिस्वानं प्रणेषुः सर्वपाथिवाः ॥१॥
 वंशस्थलपुरेशश्च महाचित्तः सुरप्रभः । सलक्ष्मणं सपत्नीकं पद्मनाभमपूजयत् ॥२॥
 प्रासादशिखरच्छायाधवलीकृतपुष्करम् । नाटूणोज्ज्वलं गन्तुं रामो राज्ञापि याचितः ॥३॥
 वंशाद्रिशिखरे रज्ये हिमवच्छिखरोपमे । समविस्तारं सद्गुणरमणीयशिलातले ॥४॥
 नानावृक्षलताकर्णैः नानाशकुनिनादितैः । सुगन्धानिलसम्पूर्णं नानापुष्पफलाकुले ॥५॥
 पयोःपलवनाढ्याभिरापीभिरतिशोभितैः । सर्वतुंसहितोद्युक्तैवसन्तकृतसेवने ॥६॥
 सज्जिता परमा भूमिः शुद्धादशैतलोपमा । दशार्धवर्णरजसा कल्पितानेकभक्तिका ॥७॥
 कुन्दातिसुककलता वकुलाः कमलानि च । यूथिका मखिलका नागा अशोकाश्चासपल्लवाः ॥८॥
 एते चान्ये च भूयांसश्चास्मासः सुगन्धवः । भावारम्यचिन्तासामिः प्रमदाभिः प्रकल्पिताः ॥९॥
 वदध्वा परिकरं पुष्पिभः सुविदग्धैः सुसम्भ्रजैः । मङ्गलालापसम्पन्नैः स्वामिभक्तिपरायणैः ॥१०॥
 मेघकाण्डानि वल्गाणि नानाचित्रधराणि च । प्रसारितानि रुद्राणि वैजयन्तीशतानि च ॥११॥
 किङ्किणीजालयुक्तानि मुक्तादासशतानि च । चामराणि विचित्राणि लम्बूपमणिपट्टिका ॥१२॥
 दर्पणा बुद्बुदावलयो विस्फुरन्नास्करांशवः । न्यस्तान्येतानि तुङ्गेषु तोरणेषु ध्वजेषु च ॥१३॥
 अवनी पूकलशाः स्थापिता विधिसयुताः । हंसा इव निविष्टास्ते विरेजुर्नखिलीवने ॥१४॥

अथानन्तर केवली भगवान्के मुखसे रामको चरमशरीरी जानकर समस्त राजाओंने जयध्वनि के साथ स्तुति कर उन्हें नमस्कार किया ॥१॥ और उदार चित्तके धारक वंशस्थलपुर नगरके राजा सुरप्रभने लक्ष्मण तथा सीता सहित रामकी की भक्ति की ॥२॥ जो महुलोके शिखरोकी कान्तिसे आकाशको धवल कर रहा था ऐसे नगरमे चलनेके लिए राजाने रामसे बहुत याचना की परन्तु उन्होने स्वीकृत नहीं किया ॥३॥ तब जो अतिशय रमणीय था, हिमगिरिके शिखरके समान था, जहाँ एक समान लम्बे चौड़े अच्छे रङ्गके मनोहर शिलातल थे, जो नाना वृक्षों और लताओंसे व्याप्त था, नाना पक्षी जहाँ शब्द कर रहे थे, जो सुगन्धित वायुसे पूर्ण था, नाना प्रकारके पुष्पो और फलोंसे युक्त था, कमल और उत्पलके वनोसे युक्त वापिकाओंसे जो अत्यन्त शोभित था, तथा सब ऋतुओंके साथ आकर वसन्त ऋतु जिसकी सेवा कर रही थी, ऐसे वंशधर पर्वतके शिखर पर शुद्ध दर्पणतलके समान उत्कृष्ट भूमि तैयार की गई । उस भूमि पर पौध वर्णकी धूलि से अनेक चित्राम बनाये गये थे ॥४-७॥ अनेक प्रकारके भावोसे रमणीय चेष्टाओंको धारण करनेवाली स्त्रियोंने वहाँ उसी पञ्चवर्णकी परागसे कुन्द, अतिसुककलता, मौलश्री, कमल, जुही, मालती, नागकेशर और सुन्दर पल्लवोंसे युक्त अशोक वृक्ष, तथा इनके सिवाय सुन्दर कान्ति और सुगन्धको धारण करनेवाले बहुतसे अन्य वृक्ष बनाये ॥८-९॥ चतुर, उत्तम चेष्टाओंके धारक, मङ्गलमय वार्तालापमे तत्पर और स्वामि भक्तिमे निपुण मनुष्योंने वड़ी तैयारीके साथ नाना चित्रोंको धारण करनेवाले वादली रङ्गके वख फैलाये, सैकड़ों सघन पताकाएँ फहराई ॥१०-११॥ छोटी-छोटी घण्टियोंसे युक्त सैकड़ों मोतियोंकी मालाएँ, चित्र-विचित्र चमर, मणिमय फानूस, दर्पण, तथा जिनपर सूर्यकी किरणें प्रकाशमान हो रही थीं ऐसे अनेक छोटे-छोटे गोले ये सब ऊँचे-ऊँचे तोरणों तथा ध्वजाओंमे लगाये ॥१२-१३॥ पृथिवी पर

१ चरमशरीरिणम् । २. गगनम् । ३. आवृणोज्ज्वलं ख० । ४. हिमवच्छिखरोपमे म० । ५. युक्तमे म० । ६. सज्जिता म० । ७. सघनानि रुद्राणि म० ।

यत्र यत्र पद्म्यासं करोति रघुनन्दनः । तत्र तत्रोरुपन्नानि स्थापितानि महींतले ॥१५॥
 शयनान्यासनेः सार्क रचितानि यतस्ततः । मणिकाञ्चनचित्राणि सुखस्पर्शधराण्यलम् ॥१६॥
 सलवङ्गादिताम्रमूलं प्रवरारण्यशुकानि च । महासुगन्धयो गन्धा भास्वन्त्यामरगानि च ॥१७॥
 सूत्रगेहसमेतानि कन्दूशालाशतानि च । बहुभेदाक्षपूष्पानि कृतयवानि सर्वतः ॥१८॥
 गुदेन सर्पिषा दक्ष्णा भूः कचिद् भाति पङ्क्तिः । इति कर्तव्यताभावः जनेनाङ्गरिणान्विता ॥१९॥
 स्वाहारेण कचित्तृष्णाः पथिकाः स्वेच्छया स्थिताः । प्रसादयन्ति विश्रब्धाः सङ्ख्याबद्धगुल्मकाः ॥२०॥
 कचिन्ना शेषरी भाति मदिरामत्तलोचनः । कचिद् सीमन्तिनी मत्ता वकुलामोदवाहिनी ॥२१॥
 कचिन्नाम्र्यं कचिद् गातं कचित्सुकृतसङ्ख्या । कचित् कान्तेः समं नार्यो रमन्ते चारुविभ्रमाः ॥२२॥
 दत्तप्रेङ्गाः कचित् स्पेरीः सलोलैर्विदपुङ्गवैः । विलासिन्यो विराजन्ते गीर्वाणगणिकोपमाः ॥२३॥
 रामलक्ष्मणयोर्यानि रचितानि ससीतयोः । क्रीडाधामानि कस्तानि नरो वर्णयितुं क्षमः ॥२४॥
 नानाभूषणयुक्ताङ्गौ सुमात्स्याम्बरधारिणौ । यथेप्सितकृताहारौ श्रिया परमयान्वितौ ॥२५॥
 सीता चारुलट्पौभाग्या दुरितासङ्गवर्जिता । रमते तत्र चेष्टाभिः शास्त्रदृष्टाभिरुज्ज्वलम् ॥२६॥
 तत्र वंशगिरौ राजन् रामेण जगदिन्दुना । निर्मापितानि चैत्यानि जितेयानां सहस्रशः ॥२७॥
 महाबलदम्बसुस्तम्भा युक्तविस्तारतुङ्गताः । गवाक्षहर्न्यवलम्बोप्रभृत्पाकारयोभिताः ॥२८॥
 सतोरणमहाद्वाराः सशालाः परिखान्विताः । सितचारुपताकाख्या बृहद्वटारवाचिताः ॥२९॥

जहाँ-तहाँ विधिपूर्वक पूर्ण कलश रखते गये थे जो कमलिनोके वनमें बैठे हुए हंसोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१४॥ श्रीराम जहाँ-जहाँ चरण रखते थे वहाँ-वहाँ पृथिवी तल पर वड़े-वड़े कमल रख दिये गये थे ॥१५॥ जहाँ-तहाँ मणियों और सुवर्णसे चित्रित तथा अतिशय सुख-दायक स्पर्शको धारण करनेवाले आसन और सोनेके स्थान बनाये गये थे ॥१६॥ लवंग आदिसे सहित ताम्रमूल, उत्तम वस्त्र, महासुगन्धित गन्ध और देदीप्यमान आभूषण वहाँ जहाँ-तहाँ रखे गये थे ॥१७॥ जो सब ओरसे नाना प्रकारकी भोजन-सामग्रीसे युक्त थीं तथा जिनमें रसोई घर अलगसे बनाया गया था ऐसी सैकड़ों भोजनशालाएँ वहाँ निर्मित की गईं थीं ॥१८॥ वहाँ की भूमि कहीं गुड़, घी और दहीसे पंक्ति (कीचसे युक्त) होकर सुशोभित हो रही थी तो कहीं कर्तव्य पालन करनेमें तत्पर आदरसे युक्त मनुष्योंसे सहित थी ॥१९॥ कहीं मधुर आहारसे तृप्त हुए पथिक अपनी इच्छासे बैठे थे तो कहीं निश्चिन्तताके साथ गोष्ठी बनाकर एक दूसरेको प्रसन्न कर रहे थे ॥२०॥ कहीं सेहरेको धारण करनेवाला और मदिराके नशामें मूर्खते हुए नेत्रोंसे युक्त मनुष्य दिखाई देता था तो कहीं मौलश्रीकी सुगन्धको धारण करनेवाली नशासे भरी स्त्री दृष्टिगत होती थी ॥२१॥ कहीं नाट्य हो रहा था, कहीं संगीत हो रहा था, कहीं पुण्य चर्चा हो रही थी, और कहीं सुन्दर विलासोंसे सहित स्त्रियों पतियोंके साथ क्रीड़ा कर रही थीं ॥२२॥ कहीं मुसकराते तथा लीलासे सहित विट पुरुष जिन्हें धक्का दे रहे थे, ऐसी देव नर्तकियोंके समान वेश्याएँ सुशोभित हो रही थीं ॥२३॥ इस प्रकार सीता सहित रामलक्ष्मणके जो क्रीडास्थल बनाये गये थे उनका वर्णन करनेके लिए कौन मनुष्य समर्थ है ? ॥२४॥ जिनके शरीर नाना प्रकारके आभूषणोंसे सहित थे, जो उत्तमोत्तम मालाएँ और वस्त्र धारण करते थे, जो इच्छानुसार क्रीड़ा करते थे ॥२५॥ और अखण्ड सौभाग्यको धारण करनेवाली तथा पापके समागमसे रहित सीता वहाँ शास्त्र निरूपित चेष्टाओंसे उज्ज्वल क्रीड़ा करती थी ॥२६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस वंशगिरि पर जगत्के चन्द्र स्वरूप रामने जिनेंद्र भगवान्की हजारों प्रतिमाएँ बनवाई थीं ॥२७॥ तथा जिनमें महामजबूत खम्भे लगाये गये थे, जिनकी चौड़ाई तथा ऊँचाई योग्य थी, जो मरोखे, महलों तथा छपरी आदिकी रचनासे शोभित थे, जिनके बड़े-बड़े द्वार तोरणोंसे युक्त थे, जिनमें अनेक शालाएँ निर्मित थीं, जो परिखासे सहित थे, सफेद और

भृङ्गवंशसुरजसहोतोत्तमनिस्त्वना । कर्मरैरानकैः शङ्खभेरीभिश्च महारवाः ॥३०॥
 सततारव्यनिःशेषमयवस्तुमहोत्सवाः । विरेजुस्तत्र रामीया जिनप्रासादपटकृतयः ॥३१॥
 रेजिरे प्रतिमास्तत्र सर्वलोकनमस्कृताः । पञ्चवर्णा जिनैन्द्राणां सर्वलक्षणभूषिताः ॥३२॥
 अन्यदाय महोपासनामो राजावलोकन । लक्ष्मीधरमुवाचेद्व क्रियते किमतः परम् ॥३३॥
 इह संप्रेरितः कालः सुखेन परमे गिरौ । जिनचैत्यसमुत्थाना स्यापिता कीर्तिरुज्ज्वला ॥३४॥
 अनेन भूयुता श्रेष्ठैरुपचारशतैर्हताः । अत्रैव यदि तिष्ठामस्तदा कार्यं विनश्यति ॥३५॥
 इह तावदल भोगैरिति चिन्तयतोऽपि मे । न सुखति क्षणमपि प्रवरा भोगसन्ततिः ॥३६॥
 इह यत् क्रियते कर्म तत्परत्रोपयुज्यते । पुराकृतानां पुण्यानां इह सम्पद्यते फलम् ॥३७॥
 भस्माकमत्र वसतां विभ्रतां सुखसम्पदम् । अमी ये दिवसा यान्ति न तेषां पुनरागमः ॥३८॥
 नदीनां चण्डवेगानामायुषो दिवसस्य च । यौवनस्य च सौमित्रे अद्वयं गतमेव तत् ॥३९॥
 नद्याः कर्पारवायास्तु परतो रोमहर्षणम् । श्रूयते दण्डकारण्यं दुर्गमं क्षितिचारिभिः ॥४०॥
 भारती न विशत्याज्ञा तस्मिन् जनपदोऽस्मिन्ने । तत्रार्णवतटं श्रित्वा विदध्मः क्वचिद्यालयम् ॥४१॥
 यदाज्ञापयसीत्युक्ते कुमारेण ससम्भ्रमम् । सुरेन्द्रसदृशं भोगं मुक्त्वा ते निर्गतास्त्रयः ॥४२॥
 अनुगत्य सुदूरं तौ बलोपेतः सुरप्रभः । कृच्छ्राक्षिवसितस्ताम्यां शोकां पुरमुपागतः ॥४३॥

सुन्दर पताकाभोसे युक्त थे, बड़े-बड़े घण्टाओंके शब्दसे व्याप्त थे, जिनमें मृदंग, बाँसुरी और मुरजका संगीतमय उत्तम शब्द फैल रहा था, जो भौंभौ, नगाड़ा, शङ्खों और भेरियोंके शब्दसे अत्यन्त शब्दायमान थे और जिनमें सदा समस्त सुन्दर वस्तुओंके द्वारा महोत्सव होते रहते थे ऐसे रामके वनबाथे जिनमन्दिरोंकी पंक्तियाँ उस पर्वत पर जहाँ-वहाँ सुशोभित हो रही थी ॥२८-३१॥ उन मन्दिरोंमें सब लोगोके द्वारा नमस्कृत तथा सब प्रकारके लक्ष्णोंसे युक्त पञ्चवर्णकी जिनप्रतिमाएँ सुशोभित थीं ॥३२॥

अथानन्तर एक दिन कमललोचन राजा रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा कि अब आगे क्या करना है ? ॥३३॥ इस उत्तम पर्वत पर समयसुखसे व्यतीत किया तथा जिनमन्दिरोंके निर्माणसे उत्पन्न उज्ज्वल कीर्ति स्थापित की ॥३४॥ इस राजाकी सैकड़ों प्रकारकी उत्तमोत्तम सेवाओंके बशीभूत होकर यदि यहीं रहते हैं तो संकल्पित कार्यं नष्ट होता है ॥३५॥ यद्यपि मैं सोचता हूँ कि मुझे इन भोगोंसे प्रयोजन नहीं है तो भी यह उत्तम भोगोंकी सन्तति क्षण भरके लिए भी नहीं छोड़ती है ॥३६॥ जो कर्म इस लोकमें किया जाता है उसका उपभोग परलोकमें होता है और पूर्व भवमें किये हुए पुण्य कर्मोंका फल इस भवमें प्राप्त होता है ॥३७॥ यहाँ रहते तथा सुख-सम्पदाको धारण करते हुए हमारे जो ये दिन बीत रहे हैं उनका फिरसे आगमन नहीं हो सकता ॥३८॥ हे लक्ष्मण ! तीव्र वेगसे बहनेवाली नदियों, आयुके दिन और यौवनका जो अंश चला गया वह चला ही गया फिर लौटकर नहीं आता ॥३९॥ कर्णरवा नदीके उस पार रोमाञ्च उत्पन्न करनेवाला तथा भूमिगोचरियोंका जहाँ पहुँचना कठिन है ऐसा दण्डक वन सुना जाता है ॥४०॥ देशोंसे रहित उस वनमें भरतकी आवाजका प्रवेश नहीं है इसलिए वहाँ समुद्रका किनारा प्राप्त कर घर वनावेगो ॥४१॥ 'जो आज्ञा हो' इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर राम-लक्ष्मण और सीता तीनों ही इन्द्र सदृश भोग छोड़कर वहाँसे निकल गये ॥४२॥ वंशस्थविलपुरका राजा सुरप्रभ अपनी सेनाके साथ बहुत दूर तक उन्हें पहुँचानेके लिए गया । राम-लक्ष्मण उसे बड़ी कठिनाईसे छोटा सके । तदनन्तर शोकको धारण करता हुआ वह अपने नगरमें वापिस आया ॥४३॥

उपजातिवृत्तम्

एषोऽपि तुङ्गः परमो महीध्रः श्रीमक्षितम्बो बहुधातुसातुः ।
 विलम्पतीभिः ककुमां समूहं भासाचकज्जैनगृहावलीभिः ॥४३॥
 रामेण यस्मात्परमाणि तस्मिन् जैनानि वेश्मानि विधापितानि ।
 निनष्टवंशाद्विचवाः स तस्माद्विप्रभो रामगिरिः प्रसिद्धः ॥४५॥

इत्यार्षे रविवेश्याचार्यग्रोक्ते पद्मचरिते रामगिर्युपाख्यानं नाम चत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४०॥

इधर जिसकी मेखलाएँ शोभासे सम्पन्न थीं, तथा जिसके शिखर अनेक धातुओंसे युक्त थे ऐसा यह ऊँचा उत्तम पर्वत दिशाओंके समूहको लिप्त करनेवाली जिनमन्दिरोंकी पंक्तिसे अतिशय सुशोभित होता था ॥४४॥ चूँकि उस पर्वत पर रामचन्द्रने जिनेन्द्र भगवान्के उत्तमोत्तम मन्दिर बनवाये थे इसलिये उसका वंशाद्रि नाम नष्ट हो गया और सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला वह पर्वत 'रामगिरि'के नामसे प्रसिद्ध हो गया ॥४५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविवेश्याचार्य विरचित पद्मचरितमें रामगिरिका वर्णन करनेवाला चालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४०॥

एकचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथानरण्यनसारौ श्रीमन्तौ सीतयान्वितौ । दिदृक्षु दक्षिणाम्भोधिमायातां सुखभागिनौ ॥१॥
 पुरग्रामसमाकीर्णनतीत्य विषयान् बहून् । प्रविष्टौ तौ महारण्य नानामृगसमाकुलम् ॥२॥
 यत्सिन्धु विद्यते पन्थाः स्थानं नार्थनिषेवितम् । पुलिन्दानामपि प्रायो दुःश्वरं यत्नगाकुलम् ॥३॥
 नानावृक्षलताकीर्णं महाविषमगाहुरम् । गुहान्धकारगम्भीरं बहुक्लिन्नरनिम्नगम् ॥४॥
 क्रोश क्रोशं शनैस्तत्र गच्छन्तौ जानकीवशात् । निर्मयौ क्रीडनेष्टुको प्राप्सौ कर्णरवा नदीम् ॥५॥
 यस्यास्तटानि रम्याणि तृणैर्युक्तानि भूरिभिः समान्यायतदेशानि स्पर्शं विभ्रति सौख्यदम् ॥६॥
 धनस्युच्चैर्धनच्छायां फलपुष्पविभूषितैः । रेजुस्तटदुर्मैस्तस्याः समीपधरणीधराः ॥७॥
 वनमेतदलं चाक नदी चेति निरूप्य तौ । रम्ये तत्र तरुच्छायेऽनस्थितौ सीतयान्वितौ ॥८॥
 क्षणं स्थित्वाऽतिरम्याणि सैकतान्ववगाह्य च । जलावगाहनं चक्रुस्ते रम्यक्रीडयोचितम् ॥९॥
 ततो मृशानि पक्वानि फलानि कुसुमानि च । यथेच्छमुपयुक्तानि तैः सुखं कृतचक्षयैः ॥१०॥
 तत्र भाण्डोपकरणं सकलं केकयीसुतः । शृङ्गावसैः पलाशैश्च विविधैराशु निर्ममे ॥११॥
 अमीषु स्वावचारुणि फलानि सुरभीनि च । वनजानि च सस्यानि राजपुत्री समस्क्रोत् ॥१२॥
 अन्यदातिथिवेलायां गगनाद्गणचारिणौ । प्रभापटलसवीतविग्रहौ चारुदर्शनौ ॥१३॥

अथानन्तर जिन्हें दक्षिण समुद्र देखनेकी इच्छा थी तथा जो निरन्तर सुख भोगते आते थे ऐसे श्रीमान् राम-लक्ष्मण सीताके साथ नगर और ग्रामोंसे व्याप्त बहुत देशोंको पारकर नाना प्रकारके मृगोंसे व्याप्त महावनमें प्रविष्ट हुए ॥१-२॥ ऐसे सचन वनमें प्रविष्ट हुए जिसमें मार्ग ही नहीं सुझता था, उत्तम मनुष्योंके द्वारा सेवित एक भी स्थान नहीं था, वनचारी भीलोंके लिए भी जहाँ चलना कठिन था, जो पर्वतोंसे व्याप्त था, नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे सघन था, जिसमें अत्यन्त विषम गर्त थे, जो गुहाओंके अन्धकारसे गंभीर जान पड़ता था, और जहाँ भरने तथा अनेक नदियों वह रही थीं ॥३-४॥ उस वनमें वे जानकीके कारण धीरे-धीरे एक क्रोश ही चलते थे । इस तरह भयसे रहित तथा क्रीड़ा करनेमें उद्यत दोनों भाई उस कर्णरवा नदीके पास पहुँचे ॥५॥ जिसके कि किनारे अत्यन्त रमणीय, बहुत भारी वृगोंसे व्याप्त, समान, लम्बे-चौड़े और सुखकारी स्पर्शको धारण करनेवाले थे ॥६॥ उस कर्णरवा नदीके समीपवर्ती पर्वत, किनारेके उस वृक्षोंसे सुशोभित थे जो ज्यादा ऊँचे तो नहीं थे पर जिनकी छाया अत्यन्त घनी थी तथा जो फल और फूलोंसे युक्त थे ॥७॥ यह वन तथा नदी दोनों ही अत्यन्त सुन्दर हैं ऐसा विचार कर वे एक वृक्षकी मनोहर छायामें सीताके साथ बैठ गये ॥८॥ क्षण भर वहाँ बैठकर तथा मनोहर किनारोंपर अवगाहन कर वे सुन्दर क्रीड़ाके योग्य जलावगाहन करने लगे अर्थात् जलके भीतर प्रवेश कर जलक्रीड़ा करने लगे ॥९॥ तदनन्तर परस्पर सुखकारी कथा करते हुए उन सबने वनके पके मधुर फल तथा फूलोंका इच्छानुसार उपभोग किया ॥१०॥ वहाँ लक्ष्मणने नाना प्रकारको मिट्टी, घाँस तथा पत्तोंसे सब प्रकारके वर्तन तथा उपयोगी सामान शीघ्र ही बना लिया ॥११॥ इन सब वर्तनोंमें राजपुत्री सीताने स्वादिष्ट तथा सुन्दर फल और वनकी सुगन्धित धानके भोजन बनाये ॥१२॥

किसी एक दिन अतिथि प्रेक्षणके समय सीताने सहसा सामने आते हुए, सुगुप्ति और गुप्ति

ज्ञानत्रितयसम्पन्नौ महाव्रतपरिग्रहौ । परेण तपसा युक्तौ दुष्टहासुकमानसौ ॥१३॥
 मासोपवासिनौ वीरौ गुण्यौ शुभसमोहितौ । यच्छ्रुन्तौ नयनानन्दं बुधचन्द्रमसाविव ॥१४॥
 मुनी सुगुप्तिगुणस्थायान्तां सम्मुखं युवः^१ । यथोक्ताचारसम्पन्नौ सहसा सीतवेचितौ ॥१५॥
 ततः प्रमदसम्भारविकसज्जैव^२ शोभया । दयिताय तया स्थातमिति रोमाञ्जिताङ्गया ॥१७॥
 पश्य पश्य नरश्रेष्ठ ! तपसा कृशविग्रहम् । दैगम्बर परिधान्तं भदन्तयुगलं शुभम् ॥१८॥
 क तत् क तस्मिन्ने साधिव पण्डिते चारुदर्शने । निर्ग्रन्थयुगलं दृष्टं भवत्या गुणमण्डने ॥१९॥
 यन्निरिच्छ्य वरारोहे सुचिरं पापमर्जितम् । क्षणात् प्रणशमायाति जनानां भक्तचेतसाम् ॥२०॥
 इत्युक्ते रघुचन्द्रेण सीतोवाच ससम्भ्रमा । इमाविमाविति ग्रीत्या स तदामृतं समाकुलः ॥२१॥
 ततो युगमितक्षोणीदेशविन्यस्तलोचनौ । मुनी प्रशान्तगमनौ सुसमाहितविग्रहौ ॥२२॥
 अभ्युत्थानाभिधानाभिस्तुष्टैः प्रणमनादिभिः । दम्पतीभ्यां कृतावेतौ पुण्यनिर्भरपर्वतौ ॥२३॥
 शुष्यङ्गाया च वैदेह्या महाश्रद्धापरितया । परिवर्ष्ट तयोः श्राद्धं रमणेन समेतया ॥२४॥
 गवामरण्यजातानां महिषीणां च चारुणा । हैवङ्गवीनमित्रेण पयसा तत्समुद्रवैः ॥२५॥
 खजूरैरिन्दुद्वाराभ्रैर्नीलैरै रसान्वितैः । बदराम्लातकाद्यैश्च वैदेह्या सुप्रसाधितैः ॥२६॥
 आहार्यैर्विनिधैः शास्त्रदृष्टिद्विसमन्वितैः । पारणां चक्रगुण्डासम्बन्धोपिभक्तचेतसौ ॥२७॥

नामके दो मुनि देखे । वे मुनि आकाशाङ्गणसे विहार कर रहे थे, कान्तिके समूहसे उनके शरीर व्याप्त थे, वे बहुत ही सुन्दर थे, मति श्रुत अवधि इन तीन ज्ञानोसे सहित थे, महाव्रतोंके धारक थे, परम तपसे युक्त थे, खोटी इच्छाओंसे उनके मन रहित थे, उन्होंने एक मासका उपवास किया था, वे धीर-वीर थे, गुणोंसे सहित थे, शुभ चेष्टाके धारक थे, बुध और चन्द्रमाके समान नेत्रोंको आनन्द प्रदान करते थे और यथोक्त आचारसे सहित थे ॥१३-१६॥ तदनन्तर हर्षके भारसे जिसके नेत्रोंकी शोभा विकसित हो रही थी तथा जिसके शरीरमें रोमाञ्ज उठ रहे थे ऐसी सीताने रामसे कहा कि हे नरश्रेष्ठ ! देखो देखो, तपसे जिनका शरीर कृश हो रहा है तथा जो अतिशय थके हुए मालूम होते हैं, ऐसे दिगम्बर मुनियोंका यह युगल देखो ॥१७-१८॥ रामने संभ्रमसे पढ़ कर कहा कि हे प्रिये ! हे साध्वि ! हे पण्डिते ! हे सुन्दरदर्शने ! हे गुणमण्डने ! तुमने निर्ग्रन्थमुनियोंका युगल कहाँ देखा ? कहाँ देखा ? ॥१९॥ वह युगल कि जिसके देखनेसे हे सुन्दर ! भक्त मनुष्योंका चिरसञ्चित पाप क्षण भरमें नष्ट हो जाता है ॥२०॥ रामके इस प्रकार कहने पर सीताने संभ्रम पूर्वक कहा कि 'ये हैं, ये हैं' । उस समय राम कुछ आकुलताको प्राप्त हुए ॥२१॥

तदनन्तर युग प्रमाण पृथिवीमें जिनकी दृष्टि पड़ रही थी, जिनका गमन अत्यन्त शान्तिपूर्ण था और जिनके शरीर प्रमादसे रहित थे, ऐसे दो मुनियोंको देखकर दम्पती अर्थात् राम और सीताने उठकर खड़े होना, संमुख जाना, स्तुति करना, और नमस्कार करना आदि क्रियाओंसे उन दोनों मुनियोंको पुण्यरूपी निर्भरके भ्रान्तिके लिए पर्वतके समान किया था ॥२२-२३॥ जिसका शरीर पवित्र था, तथा जो अतिशय श्रद्धासे युक्त थी ऐसी सीताने पतिके साथ मिलकर दोनों मुनियोंके लिए भोजन परोसा-आहार प्रदान किया ॥२४॥ वह आहार वनमें उत्पन्न हुई गावों और भैंसोंके ताजे और मनोहर घी, दूध तथा उनसे निर्मित अन्य मावा आदि पदार्थोंसे बना था ॥२५॥ खजूर, इक्षुद, आम, नारियल, रसदार बेर तथा मिलामा आदि फलोंसे निर्मित था ॥२६॥ इस प्रकार शास्त्रोक्त शुद्धिसे सहित नाना प्रकारके खाद्य पदार्थोंसे उन मुनियोंने पारणा

१. नन्दो म० । २. युवा म०, ख० । ३. विकसज्जैव म० । ४. यानामिस्तुष्टः प्रणयनादिभिः म०, यानामिस्तुष्टिः प्रणयनादिभिः व० । ५. भोजनं । ६. दृष्टिताडिताः म० ।



एवं च पर्युपास्यैतौ मुनी रामः प्रियान्वितः । समस्तभावसम्भारकृतनिर्ग्रन्थमाननः ॥२८॥
 तावदुन्दुभयो नेदुर्यगनेऽदृष्टताडिताः । वयौ समीरणः स्वैरं प्राणरक्षणकारणम् ॥२९॥
 साधु साध्विति देवानां मधुरो निस्वनोऽभवत् । वर्षे पञ्चवर्णानि कुसुमानि नभस्तलम् ॥३०॥
 पात्रदानानुभावेन दिव्या सकलवर्णिका । पूरयन्ती नमोऽपसद्गुधारा महाधुतिः ॥३१॥
 अथात्रैव वनोद्देशे गहनस्य महातरोः । निपण्णोऽग्रे महामुघ्रः स्वेच्छयावस्थितोऽभवत् ॥३२॥
 स दृष्ट्वाऽतिशयोपेतौ मुनी कर्मानुभावतः । बहूनात्ममवापू सृष्ट्वा तत्तद्देवमचिन्तयत् ॥३३॥
 मनुष्यभावसुकर प्रमत्तेन मया पुरा । विवेकिनापि न कृत तपो धिग्भासचेतनम् ॥३४॥
 भाव प्रतप्यसे किं त्वमधुना पापचेष्टितः । कसुपार्थं करोम्येतां कुत्सितां योनिमागतः ॥३५॥
 अनुकूलारिभिः पापैर्मिश्रशब्दनाशरिभिः । प्रेरितेन सता त्यक्तं धर्मरत्न सदा मया ॥३६॥
 सुभूरिचरितं पापमपकर्ण्य गुरुदितम् । मोहध्वान्तपरीतेन दृष्टो यदधुना स्मरम् ॥३७॥
 न किञ्चिदत्र बहुता विन्तितेन प्रयोजनम् । गतिरन्या न मे लोके विद्यते दुःखसंचये ॥३८॥
 एतौ प्रयासि शरणं साधू सर्वसुखावहौ । इतो मे परमार्थस्य प्राप्तिः सञ्जायते भूषम् ॥३९॥
 इति पूर्वभवेध्यानात् परम शोकमागतः । दर्शनाच्च महासाधोः प्रमोदं त्वरयाम्निवतः ॥४०॥
 विधूय पञ्चगुलमधुसम्पूर्णलोचनः । पपात शास्त्रिनो मूर्ध्नाः प्रथयाम्निवतविभ्रमः ॥४१॥
 नागाः सिंहादयोऽप्यत्र नादेन महतामुना । विदुर्दुरय दुष्टः कथं तु न खगाधमः ॥४२॥

की । उन मुनियोंके चित्त भोजन विषयक गृध्रताके सम्बन्धसे रहित थे ॥२५॥ इस प्रकार समस्त भावोंसे मुनियोंका सम्मान करनेवाले राम इन दोनों मुनियोंकी सेवा कर सीताके साथ बैठे ही थे कि उसी समय आकाशमें अदृष्टजनोसे ताडित दुन्दुभि बाजे बजने लगे, प्राण इन्द्रियको प्रसन्न करनेवाली वायु धीरे-धीरे बहने लगी, 'धन्य, धन्य' इस प्रकार देवोंका मधुर शब्द होने लगा, आकाश पोंच वर्णके फूल वरसाने लगा और पात्रदानके प्रभावसे आकाशको व्याप्त करनेवाली, महाकान्तिकी धारक, सब रङ्गोंकी दिव्यरत्न वृष्टि होने लगी ॥२८-३१॥

अथानन्तर वनके इसी स्थानमें सघन महावृक्षके अग्रभाग पर एक बड़ा भारी गृध्र पक्षी स्वेच्छासे बैठा था ॥३२॥ सो अतिशय पूर्ण दोनों मुनिराजोंको देखकर कर्मोदयके प्रभावसे उसे अपने अनेक भव स्मृत हो उठे । वह उस समय इस प्रकार विचार करने लगा ॥३३॥ कि यद्यपि मैं पूर्व पर्यायमें विवेकी था तो भी मैंने प्रमादी बनकर मनुष्य भवसे करने योग्य तपश्चरण नहीं किया अतः मुझ अविवेकीको धिक्कार हो ॥३४॥ हे हृदय ! अब क्यों संताप कर रहा है ? इस समय तो इस कुयोनिमें आकर पाप चेष्टाओंसे निमग्न हूँ अतः क्या उपाय कर सकता हूँ ? ॥३५॥ मित्र सङ्गाको धारण करनेवाले तथा अनुकूलता दिखानेवाले पापी बैरियोंसे प्रेरित हो मैंने सदा धर्मरूपी रत्नका परित्याग किया है ॥३६॥ मोहरूपी अन्धकारसे व्याप्त होकर मैंने गुरुओंका उपदेश न सुन जिस अत्यधिक पापका आचरण किया है उसे आज स्मरण करता हुआ ही जल रहा हूँ ॥३७॥ अथवा इस विषयमें बहुत विचार करनेसे कुछ भी प्रयोजन नहीं है क्योंकि दुःखोंका क्षय करनेके लिए लोकमें मेरी दूसरी गति नहीं है—अन्य उपाय नहीं है । मैं तो सब जीवोंको सुख देनेवाले इन्हीं दोनों मुनियोंकी शरणको प्राप्त होता हूँ । इनसे निश्चित ही मुझे परमार्थकी प्राप्ति होगी ॥३८-३९॥ इस प्रकार पूर्वभवका स्मरण होनेसे जो परम शोकको प्राप्त हुआ था तथा महामुनियोंके दर्शनसे जो अत्यधिक हर्षको प्राप्त था ऐसा शीघ्रतासे सहित, अश्रुपूर्ण नेत्रोंका धारक, एवं विनयपूर्ण चेष्टाओंसे सहित वह गृध्र पक्षी दोनों पक्ष फड़फड़ाकर वृक्षके शिखरसे नीचे आया ॥४०-४१॥ यहाँ इस अत्यधिक कोलाहलसे हाथी तथा सिंहादिक

हा मातः पश्यतामुष्य धाव्यं गृध्रस्य पापिनः । चिन्तयित्वेति वैदेहा कोपाकुलितचित्तया ॥४३॥
 वार्यमाणोऽपि यत्नेन कृतनिष्ठुरशब्दया । मुनिपादोदकं पक्षी सोसाहः पातुमुद्यतः ॥४४॥
 पात्रोदकप्रभावेण शरीरं तस्य तत्क्षणम् । रत्नराशिसमं जातं परीतं चित्रतेजसा ॥४५॥
 जाती हेमप्रभौ पक्षौ पादौ वैदूर्यसन्निभौ । नानारत्नच्छविर्देहश्चन्द्रबिन्दुमविभ्रमा ॥४६॥
 ततः स्वमन्यथाभूतमवलोक्य सुसम्मदः । विमुञ्चन्मधुरं नादं नर्तितुं स समुद्यतः ॥४७॥
 देवदुन्दुभिरादोऽप्रावेव तस्यासितुन्दरम् । आतोच्चल परिप्राप्तं स्वां च वाणीं सुतेजसः ॥४८॥
 मुञ्चन्नानन्दनेत्रामश्रुक्रोक्त्य गुरुद्वयम् । शुशुभे कृतमृत्योऽन्यो शिखां मेघागमे यथा ॥४९॥
 विधिना पारणां कृत्वा सुनीं कृतयथोचितां । वैदूर्यसदृशे राजन्नुपनिष्टौ शिलातले ॥५०॥
 पद्मरागाभनेत्रश्च पक्षौ सङ्कुचितच्छदः । प्रणम्य पादयोः साधोः सुखं तस्यौ कृताञ्जलिः ॥५१॥
 क्षणादग्निमिवालोक्ष्य ज्वलन्तं तेजसा जगाम् । पक्षौ विक्रचपद्मान् चो विस्मयं परमं गतः ॥५२॥
 प्रणम्य पादयोः साधुं गुणशीलविभूषणम् । अपृच्छदिति विन्यस्य मुहुर्नेत्रे पतत्रिणि ॥५३॥
 भगवन्नयमत्यन्तं विरूपावधवः पुरा । कथं क्षणेन सज्जातो हेमरत्नचयच्छविः ॥५४॥
 अशुचिः सर्वमासादो गृध्रोऽयं दुष्टमानसः । निपद्य पादयोः शान्तस्तव कस्मादवस्थितः ॥५५॥
 सुगुप्तिभ्रमणोऽबोचद् राजन् पूर्वमिहाभवद् । देशो जनपदाकीर्णो विषयः सुन्दरो महान् ॥५६॥

वड़े-वड़े जन्तु तो भाग गये पर यह दुष्ट नीच पक्षी क्यों नहीं भागा । हा मातः ! इस पापी गृध्रकी धृष्टता तो देखो; इस प्रकार विचार कर जिसका चित्त क्रोधसे आकुलित हो रहा था तथा जिसने कठोर शब्दोंका उच्चारण किया था ऐसी सीताने यद्यपि प्रयत्नपूर्वक उस पक्षीको रोका था तथापि वह वड़े उरसाहसे मुनिराजके चरणोदकको पीने लगा ॥४२-४३॥ चरणोदकके प्रभावसे उसका शरीर उसी समय रत्नराशिके समान नाना प्रकारके तेजसे व्याप्त हो गया ॥४४॥ उसके दोनों पैर पङ्क सुवर्णके समान हो गये, पैर नील मणिके समान दिखने लगे, शरीर नाना रत्नोंकी कान्तिका धारक हो गया और चोंच मूँगाके समान दिखने लगी ॥४५॥ तदनन्तर अपने आपको अन्य रूप देख वह अत्यन्त हर्षित हुआ और मधुर शब्द छोड़ता हुआ नृत्य करनेके लिए उद्यत हुआ ॥४६॥ उस समय जो देव-दुन्दुभिका नाद हो रहा था वही उस तेजस्वीकी अपनी वाणीसे मिलता-जुलता अत्यन्त सुन्दर साजका काम दे रहा था ॥४७-४८॥ दोनों मुनियोंकी प्रदक्षिणा देकर हर्षाश्रुको छोड़ता हुआ वह नृत्य करनेवाला गृध्र पक्षी वर्षा ऋतुके मयूरके समान सुशोभित हो रहा था ॥४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिनका यथोचित सत्कार किया गया था ऐसे दोनों मुनिराज विधिपूर्वक पारणकर वैदूर्यमणिके समान जो शिलातल था उस पर विराजमान हो गये ॥५०॥ और पद्मराग मणिके समान नेत्रोंका धारक गृध्र पक्षी भी अपने पङ्क संकुचित कर तथा मुनिराजके चरणोंमें प्रणाम कर अञ्जली बाँध सुखसे बैठ गया ॥५१॥ विकसित कमलके समान नेत्रोंकी धारण करनेवाले राम, क्षण भरमें तेजसे जलती हुई अग्निके समान उस गृध्र पक्षीको देखकर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥५२॥ उन्होंने पक्षीपर बार-बार नेत्र डालकर तथा गुग्गु और शीलरूपी आभूषणको धारण करनेवाले मुनिराजके चरणोंमें समस्कार कर उनसे इस प्रकार पूछा कि हे भगवन् ! यह पक्षी पहले तो अत्यन्त विरूप शरीरका धारक था पर अब क्षण भरमें सुवर्ण तथा रत्न राशिके समान कान्तिका धारक कैसे हो गया ? ॥५३-५४॥ महा अपवित्र, सब प्रकारका मांस खानेवाला तथा दुष्ट हृदयका धारक यह गृध्र आपके चरणोंमें बैठकर अत्यन्त शान्त कैसे हो गया है ? ॥५५॥

तदनन्तर सुगुप्ति नामक मुनिराज बोले कि हे राजन् ! पहले यहाँ नाना जनपदोंसे व्याप्त

पत्तनग्रामसंवाहमटम्बपुटभेदनैः । घोऽद्रोणमुखोद्यैश्च सन्निवेशैर्विराजितः ॥५७॥
 कर्णकुण्डलनामात्र पुरमासीन् मनोहरम् । तस्मिन्नयमभूद्वाजा प्रतापपरमोदयः ॥५८॥
 चण्डविक्रमसम्पन्नो भग्नशास्त्रवक्त्रकण्टकः । दण्डो मानमयः ख्यातो दण्डको नाम साधवी ॥५९॥
 धृताश्विना जल तेन मथितं रघुनन्दन । धर्मश्रद्धापरीतेन घृतः पापागमो धिया ॥६०॥
 देवी मस्करिणां तस्य वरिवस्या परामवत् । तेषामसाधार्थोऽपि सम्भोगं समुपागतः ॥६१॥
 सोऽपि तस्याः परं वश्यस्तामेव दिशमाश्रयत् । स्त्रीचित्तहरणोद्युक्ताः किं न कुर्वन्ति मानवाः ॥६२॥
 निष्क्रान्तेनान्यदा तेन नगरात् साधुरीक्षितः । प्रलम्बितमुखः श्रीमान् ध्यानसंरुद्धमानसः ॥६३॥
 कृष्णसर्पो मृतस्तस्य अदिग्धाहो विपलालया । कण्ठे निश्चापितस्तेन प्रावदारुणचेतसा ॥६४॥
 यावदेवोऽपनीतो न प्रदातुर्मम कैवलिम् । तावन्न सहरेद्योगमिति ध्यात्वा मुनिः स्थितः ॥६५॥
 अतीते गणरात्रे च पुनस्तेनैव वर्त्मना । निष्क्रामन् पार्थिवोऽपश्यत्तदवस्थं महामुनिम् ॥६६॥
 ऋजुनैव च रूपेण गत्वा निकटतां भृशम् । अग्रच्छदपनेतारं किमेतदिति सोऽवदत् ॥६७॥
 नरेन्द्र पश्य केनापि नरकावासमार्गिणा । योगस्थस्य मुनेरस्य कण्ठे सर्पः समर्पितः ॥६८॥
 यस्य सर्पस्य सम्पर्काद् विग्रहस्य समुद्गतम् । प्रतिबिम्बं शितिक्लिप्तं दुर्दर्शमस्तिभीषणम् ॥६९॥
 मुनि नि प्रतिकर्माणं दृष्ट्वा राजा तथाविधम् । प्रणम्याक्षमयच्छातास्ते च स्थानं यथोचितम् ॥७०॥
 ततः प्रवृत्ति सक्तोऽसौ कर्तुं भक्तिमनुत्तमाम् । निरम्बरमुनीन्द्राणां वारितोपद्रवक्रियः ॥७१॥

एक बहुत बड़ा सुन्दर देश था ॥५६॥ जो पत्तन, ग्राम, संवाह, मटम्ब, पुटभेदन, घोप और द्रोण मुख आदि रचनाओंसे सुशोभित था ॥५७॥ इसी देशमें एक कर्णकुण्डल नामका मनोहर नगर था जिसमें यह परम प्रतापी राजा था । यह तीव्र पराक्रमसे युक्त, शत्रुरूपी कंटकांको भग्न करनेवाला, महामानी एवं साधनसम्पन्न दण्डक नामका धारक था ॥५८-५९॥ हे रघुनन्दन ! धर्मकी श्रद्धासे युक्त इस राजाने पापपोषक शास्त्रको समझकर बुद्धिपूर्वक धारण किया सो मानो इसने धृतकी इच्छासे जलका ही मन्थन किया ॥६०॥ राजा दण्डककी जो रानी थी वह परिव्राजको की वड़ी भक्त थी क्योंकि परिव्राजकोंके स्वामीके द्वारा वह उत्तम भोगको प्राप्त हुई थी ॥६१॥ राजा दण्डक रानीके वशीभूत था इसलिए यह भी उसी दिशाका आश्रय लेता था, सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियोंका चित्त हरण करनेमें उद्यत मनुष्य क्या नहीं करते हैं ? ॥६२॥ एक दिन राजा नगरसे बाहर निकला वहाँ उसने एक ऐसे साधुको देखा जो अपनी भुजाएँ नीचे लटकाये हुए थे, वीतराग लक्ष्मीसे सहित थे तथा जिनका मन ध्यानमें रुका हुआ था ॥६३॥ पापाणके समान कठोर चित्तके धारक राजाने उन मुनिके गलेमें, विषमिश्रित लारसे जिसका शरीर व्याप्त था ऐसा एक मरा हुआ काला सर्प डलवा दिया ॥६४॥ 'जब तक इस सर्पको कोई अलग नहीं करता है तब तक मैं योगकी संकुचित नहीं करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर वह मुनि उसी स्थान पर खड़े रहे ॥६५॥ तदनन्तर बहुत रात्रियों व्यतीत हो जानेके बाद उसी मार्गसे निकले हुए राजाने उन महा-मुनिको उसी प्रकार ध्यानारुढ़ देखा ॥६६॥ उसी समय कोई मनुष्य मुनिराजके गलेसे सर्प अलग कर रहा था । राजा मुनिराजकी सरलतासे आकृष्ट हो उनके पास गया और सर्प निकालनेवाले मनुष्यसे पूछता है कि 'यह क्या है ?' इसके उत्तरमें वह मनुष्य कहता है कि राजन् ! देखो, नरककी खोज करनेवाले किसी मनुष्यने इन ध्यानारुढ़ मुनिराजके गलेमें सर्प डाल रक्खा है ॥६७-६८॥ जिस सर्पके संपर्कसे इनके शरीरकी आकृति श्याम, खेदलिप्त, दुर्दर्शनीय तथा अत्यन्त भयङ्कर हो गई है ॥६९॥ कुछ भी प्रतिकार नहीं करनेवाले मुनिको उसी प्रकार ध्यानारुढ़ देख राजाने प्रणाम कर उससे क्षमा माँगी और तदनन्तर वह यथास्थान चला गया ॥७०॥ उस समय से राजा दिगम्बर मुनियोंकी उत्तम भक्ति करनेमें तत्पर हो गया और उसने मुनियोंके सब उपद्रव-

देवाविटपरिव्राजा^१ ज्ञात्वान्यविषयं नृपम् । इदं क्रोधपरीतेन विधातुमनिवान्छितम् ॥७२॥
 जीवितस्नेहमुत्सृज्य परदुःखाहितात्मकः । निर्ग्रन्थरूपमृदेव्याः सम्पर्कमभवत् पुनः ॥७३॥
 ज्ञात्वा तदीदृशं कर्म राज्ञातिक्रोधमीयुषा । अमात्याद्युपदेशं च स्मृत्वा निर्ग्रन्थनिन्दनम् ॥७४॥
 क्रूरकर्मभिरन्यैश्च प्रेरितः श्रमणाहितैः । आज्ञापयन् महर्षीणां यन्त्रनिष्पीडने नरात् ॥७५॥
 गणाधिपसमेतोऽसौ समूहोऽम्बरवाससाम् । यन्त्रनिष्पीडनैर्नीतः पञ्चतां पापकर्मणाम् ॥७६॥
 बाह्यभूमिगतस्तत्र मुनिरेकः समाग्रजन् । इत्यचार्यत लोकेन केनचित् कण्णावता ॥७७॥
 भो भो निर्ग्रन्थ मागास्त्वं पूर्वैर्निर्ग्रन्थमाश्रयन् । यन्त्रेणापीड्यसे तत्र द्रुतं कुरु पलायनम् ॥७८॥
 यन्त्रेषु श्रमणाः सर्वे राज्ञा क्रुद्धेन पीडिताः । मागास्त्वमप्यवस्थां तां रक्ष धर्माश्रयं वपुः ॥७९॥
 ततः क्षणमसौ लढभृत्यदुःखेन शस्यितः । वज्रस्तम्भ इवाकम्पस्तस्यावग्यक्तचेतनः ॥८०॥
 अधास्य शतदुःखेन प्रेरितः शमगह्वरात् । निरम्बरमर्द्दाग्रस्य निरगात् क्रोधकेसरी ॥८१॥
 रक्ताशोकप्रकाशेन निखिल तस्य चक्षुषः । तेजसा विहितं ज्योसं सन्ध्यामयमिवाभवत् ॥८२॥
 कोपेन तप्यमानस्य मुनेः सर्वत्र विग्रहे । प्रस्वेदबिन्दवो जाताः प्रतिविम्बितविष्टपाः ॥८३॥
 ततः कालानलकारो बहुलः कुटिलः पृथुः । हाकारेण मुखोत्तस्य निरगात् पावकध्वजः^२ ॥८४॥
 अनुलङ्घनश्च तस्मानिरुज्जगाम निरन्तरम् । कृतं नभस्तल येन निरिन्धनविदीपितम् ॥८५॥

कष्ट दूर कर दिये ॥७१॥ रानीके साथ गुप्त समागम करनेवाले परिव्राजकोंके अधिपतिने जब राजाके इस परिवर्तनको जाना तब क्रोधसे युक्त होकर उसने यह करनेकी इच्छा की ॥७२॥ दूसरे प्राणियोंको दुःख देनेमें जिसका हृदय लग रहा था ऐसे उस परिव्राजकने जीवनका स्नेह छोड़ निर्ग्रन्थ मुनिका रूप धर रानीके साथ संपर्क किया ॥७३॥ जब राजाको इस कार्यका पता चला तब वह अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हुआ । मन्त्री आदि अपने उपदेशमें निर्ग्रन्थ मुनियोंकी जो निन्दा किया करते थे वह सब इसकी स्मृतिमें भूलने लगा ॥७४॥ उसी समय मुनियोंसे द्वेष रखनेवाले अन्य दुष्ट लोगोंने भी राजाको प्रेरित किया जिससे उसने अपने सेवकोंके लिए समस्त मुनियोंको घानीमें पेलनेकी आज्ञा दे दी ॥७५॥ जिसके फलस्वरूप गणनायकके साथ-साथ जितना मुनियोंका समूह था वह सब, पापी मनुष्योंके द्वारा घानीमें पिलकर मृत्युको प्राप्त हो गया ॥७६॥ उस समय एक मुनि कहीं बाहर गये थे जो लौटकर उसी नगरीकी ओर आ रहे थे । उन्हें किसी दयालु मनुष्यने यह कह कर रोका कि हे निर्ग्रन्थ ! हे दिगम्बरमुद्राके धारी ! तुम अपने पड़लेका निर्ग्रन्थवेप धारण करते हुए नगरीमें मत जाओ, अन्यथा घानीमें पेल दिये जाओगे, शीघ्र ही यहाँसे भाग जाओ ॥७७-७८॥ राजाने क्रुद्ध होकर समस्त निर्ग्रन्थ मुनियोंको घानीमें पिलवा दिया है तुम भी इस अवस्थाको प्राप्त मत होओ, धर्मका आश्रय जो शरीर है उसकी रक्षा करो ॥७९॥

तदनन्तर समस्त संधकी मृत्युके दुःखसे जिन्हें शन्य लग रही थी ऐसे वे मुनि क्षणभरके लिए ब्रजके स्तम्भकी नोंई अकम्प—निश्चल हो गये । उस समय उनकी चेतना अव्यक्त हो गई थी अर्थात् यह नहीं जान पड़ता था कि जीवित है या मृत ? ॥८०॥ अथानन्तर उन निर्ग्रन्थ मुनिरूपी पर्वतकी शान्तिरूपी गुफासे सैकड़ों दुःखोंसे प्रेरित हुआ क्रोधरूपी सिंह बाहर निकला ॥८१॥ उनके नेत्रके अशोकके समान लाल-लाल तेजसे आकाश ऐसा व्याप्त हो गया मानी उसमें संध्या ही व्याप्त हो गई हो ॥८२॥ क्रोधसे तपे हुए मुनिराजके समस्त शरीरमें स्वेदकी बूँदें निकल आई और उनमें लोकका प्रतिविम्ब पड़ने लगा ॥८३॥ तदनन्तर उन मुनिराजने मुखसे 'हा' शब्द का उच्चारण किया उसीके साथ मुखसे धुआँ निकला जो कालाग्निके समान अत्यधिक कुटिल और विशाल था ॥८४॥ उस धुआँके साथ ऐसी ही निरन्तर अग्नि निकली कि जिसने ईन्धनके बिना

उत्कामिर्नु जगद्न्यासं ज्योतिर्देवाः पतन्ति नु । महाप्रलयकालो नु बह्निदेवा नु रोपिताः ॥८६॥
 हा हा मातः किमेतन्नु तापोऽयमतिदुस्सहः । चक्षुरुपाव्यते दीर्घसंदंशैरिव वेगिभिः ॥८७॥
 मूर्तिनिर्मुक्तमेषैतद्भ्रगं कुरुते ध्वनिम् । वंशारण्यमिषोद्दीप्तं बंविताकर्षणोचितम् ॥८८॥
 यावदेव ध्वनिलोके वर्ततेऽन्यन्तमाकुलः । बह्निस्तावदयं देशमनयद् भस्मशेषताम् ॥८९॥
 नान्तःपुरं न देशो न पुराणि न च पर्वताः । न नद्यो नान्यरण्यानि तदा न प्राणधारिणः ॥९०॥
 महासंवेगयुक्तेन मुनिना चिरभञ्जितम् । क्रोधाग्निनाखिलं दग्धं तपोऽन्यत् किम् शिष्यताम् ॥९१॥
 यतोऽयं दण्डको देशः आसीदण्डकपार्थिवः । तेनैव ध्वनिनाद्यापि दण्डकः परिकीर्त्यते ॥९२॥
 काले महत्यतिक्रान्ते प्राप्तायां चारुतां भुवि । पुतेऽत्र पादपा जाताः पर्वताश्च सन्निभगताः ॥९३॥
 मुनेस्तस्य प्रभावेण सुराणामपि भीतिदम् । वनमेतदभूत् कैव वार्ता विद्याबलाभिताम् ॥९४॥
 पश्चाद्विदं समाकर्णं सिंहेन शरभादिभिः । नानाशकुनिवृन्दैश्च सस्यभेदैश्च भूरिभिः ॥९५॥
 अद्याप्यस्मोदवाप्त्य भुक्त्वा शब्दं परं भयम् । म्रजन्ति मानवाः कम्पं वृत्तान्ते नु निबोधिनः ॥९६॥
 संसारेऽतिचिरं भ्रान्त्वा दण्डको दुःखपूरितः । अयं गृध्रत्वमायातो वनेऽत्र रतिमागतः ॥९७॥
 इष्ट्वा सातिशयाद्येष नौ वनेऽत्र समागतौ । पापस्य कर्मणो हान्या प्राप्तः पूर्वभवस्मृतिम् ॥९८॥
 योऽसी परमया शक्त्या युक्तोऽभूदण्डको नृपः । सोऽयं पश्यत सञ्ज्ञातः कीदृशः पापकर्मभिः ॥९९॥
 इति विज्ञाय विरसं फलं कटुककर्मणः । कथं न सज्यते धर्मे हुरिताच्च विरज्यते ॥१००॥

ही समस्त आकाशको देवीयमान कर दिया ॥८६॥ क्या यह लोक उत्काओंसे व्याप्त हो रहा है ? या ज्योतिष्क देव नीचे गिर रहे हैं ? या महा प्रलयकाल आ पहुँचा है ? या अग्निदेव क्रुपित हो रहे हैं ? हाय माता ! यह क्या है ? यह ताप तो अत्यन्त दुःसह है, ऐसा लगता है जैसे वेगशाली बड़ी-बड़ी संधारियोसे नेत्र उखाड़े जा रहे हों, यह अमूर्तिक आकाश ही घोर शब्द कर रहा है, मानो प्राणीके खींचनेमें उद्यत बोंसोंका वन ही जल रहा है' इस प्रकार अत्यन्त व्याकुलतासे भरा यह शब्द जब तक लोकमें गूँजता है तब तक उस अग्निने समस्त देशको भस्म कर दिया ॥८६-८८॥ उस समय न अन्तःपुर, न देश, न नगर, न पर्वत, न नदियों, न जङ्गल और न प्राणी ही शेष रह गये थे ॥८९॥ महान् संवेगसे युक्त मुनिराजने चिरकालसे जो तप सञ्चित कर रक्खा था यह सबका शब्द क्रोधाग्निमें दग्ध हो गया—जल गया फिर दूसरी वस्तुएं तो बचती ही कैसे ? ॥९०॥ यह दण्डक देश था तथा दण्डक ही यहाँका राजा था इसलिए आज भी यह स्थान दण्डक नामसे ही प्रसिद्ध है ॥९१॥ बहुत समय बीत जानेके बाद यहाँ की भूमि कुछ सुन्दरताको प्राप्त हुई है और ये वृक्ष, पर्वत तथा नदियों दिखाई देने लगी हैं ॥९२॥ उन मुनिके प्रभावसे यह वन देवोंके लिए भी भय उत्पन्न करनेवाला है फिर विद्याधरोकी तो बात ही क्या है ? ॥९३॥ आगे चल कर यह वन सिंह अष्टापद आदि क्रूर जन्तुओं, नाना प्रकारके पक्षि-समूहों तथा अत्यधिक जङ्गली घान्यासे युक्त हो गया ॥९४॥ आज भी इस वनकी प्रचण्ड दवाबानल का शब्द सुनकर मनुष्य पिछली घटनाका स्मरण कर भयभीत होते हुए काँपने लगते हैं ॥९५॥ राजा दण्डक बहुत समय तक संसारमें भ्रमण कर दुःख उठाता रहा अब गृध्रप्रार्थयको प्राप्त हो इस वनमें प्रीतिको प्राप्त हुआ है ॥९६॥ इस समय इस वनमें आये हुए अतिशय युक्त हृम दोनोंको देखकर पापकर्मकी मन्दता होनेसे यह पूर्वभवके स्मरणको प्राप्त हुआ है ॥९८॥ जो दण्डक राजा पहले परम शक्तिसे युक्त था वह देखो, आज पापकर्मके कारण कैसा हो गया है ? ॥९९॥ इस प्रकार पाप कर्मका नीरस फल जान कर धर्ममें क्यों नहीं लगा जाय और पापसे क्यों नहीं

दृष्टान्तः परकीयोऽपि शान्तेर्भवति कारणम् । असमत्तसमात्मीयं किं पुनः स्मृतिमागतम् ॥१०१॥
 पक्षिणं सयतोऽजादीन्मा मैयोरधुना द्विज । सा रोदीयंयथा भाव्यं कः करोति तदन्यथा ॥१०२॥
 आश्वासं गच्छ विश्वः कर्षं मुञ्च सुखी भव । पश्य क्षेत्रगण्यानी क रामः सीतयान्वितः ॥१०३॥
 अवग्रहोऽस्मदीयः क क त्वमात्मार्यसङ्गत । प्रबुद्धो दुःखसम्बोधः कर्मणाभिदमोहितम् ॥१०४॥
 इदं कर्म विचित्रत्वाद् विचित्रं परमं जगत् । अनुभूत श्रुतं दृष्टं यथैव प्रवटाम्यहम् ॥१०५॥
 पक्षिणः प्रतिबोधार्थं ज्ञात्वाकृतं च सीरिणः । सुगुप्तिरवदत् स्वस्य सुगुप्तेः शमकारणम् ॥१०६॥
 अचलो नाम विख्यातो धाराणस्यां महीपतिः । गिरिदेवोति जायास्य गुणरत्नविभूषिता ॥१०७॥
 त्रिगुप्त इति विख्यातो गुणनामान्यदा मुनिः । पारणार्थं गृहं तस्याः प्रविष्टः शुद्धचेष्टितः ॥१०८॥
 स तथा परमां श्रद्धां दत्वा विधिपूर्विकाम् । तर्पितः परमाज्ञेन स्वयं व्यापारमुक्तया ॥१०९॥
 समाप्तशशनकृत्यञ्च पादन्यस्तोत्तमाङ्गया । पप्रच्छान्यापदशेन स्वस्य पुत्रसमुद्भवम् ॥११०॥
 नाथ सातिशयोऽयं मे गृहवासो भविष्यति । किं वा नेति प्रसादोऽयं क्रियतां निश्चयार्पणम् ॥१११॥
 वचोगुप्तं ततो भित्वा राज्ञीभक्त्यनुरोधतः । तस्याश्चात्समादिष्टं मुनिना तनयद्वयम् ॥११२॥
 त्रिगुप्तस्य मुनेस्त्वस्य समादेशेनयत सुतौ । जातौ सुगुप्तिगुप्ताख्यौ पिबुभ्यां तौ ततः कृतौ ॥११३॥
 तौ च सर्वकलाभिज्ञौ कुमारश्रांसमन्वितौ । तिष्ठन्तौ विविधैर्भावे रममाणौ जनप्रियौ ॥११४॥
 वृत्तान्तोऽयं च सञ्ज्ञातो गन्धर्वस्यां महीपतेः । पुरोहितस्य सोमस्य प्रियायास्तनयद्वयम् ॥११५॥

विरक्त हुआ जाय ? ॥१००॥ दूसरेका उदाहरण भी शान्तिका कारण हो जाता है फिर यदि अपनी ही खोटी बात स्मरण आ जावे तो कहना ही क्या है ? ॥१०१॥

रामसे इतना कहकर मुनिराजने गृध्रसे कहा कि हे द्विज ! अब भयभीत मत होओ, रोओ मत, जो बात जैसी होनेवाली है उसे अन्यथा कौन कर सकता है ? ॥१०२॥ धैर्य धरो, निश्चिन्त होकर कैपकी छोड़ो, सुखी होओ, देखो यह महा अटवी कहाँ ? और सीता सहित राम कहाँ ? ॥१०३॥ हमारा पङ्गाहन कहाँ ? और आत्म कल्याणके लिए दुःखका अनुभव करते हुए तुम्हारा प्रबुद्ध होना कहाँ ? कर्मोंकी ऐसी ही चेष्टा है ॥१०४॥ कर्मोंकी विचित्रताके कारण यह संसार अत्यन्त विचित्र है । जैसा मैंने अनुभव किया है, सुना है अथवा देखा है वैसा ही मैं कह रहा हूँ ॥१०५॥ पक्षीको समझानेके लिए रामका अभिप्राय जान सुगुप्ति मुनिराज अपनी दीक्षा तथा शान्तिका कारण कहने लगे ॥१०६॥

उन्होंने कहा कि वाराणसी नगरीमें एक अचल नामका प्रसिद्ध राजा था । उसकी गुणरूपी रत्नोसे विभूषित गिरि देवी नामकी स्त्री थी ॥१०७॥ किसी एक दिन त्रिगुप्त इस सार्थक नामको धारण करनेवाले तथा शुद्ध चेष्टाओंके धारक मुनिराजने आहारके लिए उसके घर प्रवेश किया ॥१०८॥ सो विधि पूर्वक परम श्रद्धाको धारण करनेवाली गिरि देवीने अन्य सब कार्य छोड़ श्वयं ही उत्तम आहार देकर उन्हें संतुष्ट किया ॥१०९॥ जब मुनिराज आहार कर चुके तब उसने उनके चरणोंमें मस्तक मुकाकर किसी दूसरेके वहाने अपने पुत्र उत्पन्न होनेकी बात पूछी ॥११०॥ उसने कहा कि हे नाथ । मेरा यह गृहवास सार्थक होगा या नहीं ? इस बातका निश्चय कराकर प्रसन्नता कीजिये ॥१११॥ तदनन्तर मुनि यद्यपि तीन गुप्तियोंके धारक थे तथापि रानीकी भक्तिके अनुरोधसे वचनगुप्तको तोड़कर उन्होंने कहा कि तुम्हारे दो सुन्दर पुत्र होंगे ॥११२॥ तदनन्तर उन त्रिगुप्त मुनिराजके कहे अनुसार दो पुत्र उत्पन्न हुए सो माता-पिताने उनके 'सुगुप्ति' और 'गुप्त' इस प्रकार नाम रखे ॥११३॥ वे दोनों ही पुत्र सर्व कलाओंके जानकार, कुमार लक्ष्मीसे सुशोभित, अनेक भावोंसे रमण करते तथा लोगोंको अत्यन्त प्रिय थे ॥११४॥

उसी समय यह दूसरा वृत्तान्त हुआ कि गन्धवती नामकी नगरीके राजाके सोम नामका

सुकेतुरग्निकेतुश्च तयोः प्रीतिरनुत्तमा । सुकेतुरन्यदा चाभूत् कृतदारपरिग्रहः ॥११६॥
 आचयेरधुना आत्रोः धृयक् शयनमेतथा । क्रियते जाययावश्यमिति दुःखसुपागतः ॥११७॥
 सुकेतुः प्रतिबुद्धः सन् शुभकर्मानुभावतः । अनन्तवीर्यपादान्ते श्रमणत्वं समाश्रितः ॥११८॥
 अग्निकेतुर्वियोगेन आतुरस्वन्तुःखितः । वाराणस्यामभू दुग्रस्तपसो धर्मचिन्तया ॥११९॥
 श्रुत्वा चैवंविध त च आतरं स्नेहबन्धनः । प्रतिबोधयितुं धान्द्वन् सुकेतुर्गन्तुमुद्यतः ॥१२०॥
 स ब्रजन् गुरुणावाचि सुकेतो कथयिष्यसि । वृत्तान्तं सोदरायेमं येनासावुपशाम्यति ॥१२१॥
 कोऽसौ नाथेति तेनोक्ते गुरुरेवमुदाहरत् । करिष्यति त्वया साक स जल्पं दुष्टभावनः ॥१२२॥
 पुत्रयोः कुर्वतोर्जल्पं जाह्नवीमागमिष्यति । चाकुक्या समं क्वाभिस्तिष्ठमिगौरविग्रहा ॥१२३॥
 दिवसस्य गते यामे विचित्रांशुकधारिणी । एभिश्चिह्नैर्विदित्वा तां भापितव्यमिदं त्वया ॥१२४॥
 दृष्ट्वा तां वक्ष्यसीदं त्वं ज्ञान चेदस्ति ते मते । वदैतस्याः कुमार्या किं भवितेति शुभाशुभम् ॥१२५॥
 अज्ञानोऽसौ विलम्बः सस्तापसस्त्वं भणिष्यति । भवान् जानात्विति त्वं च वक्ष्यत्येयं सुनिश्चितः ॥१२६॥
 अस्त्यत्र प्रवरो नाम^१ वणिजः सम्पदान्वितः । तस्यैव दुहिता नाम्ना रुचिरेति प्रकीर्तिता ॥१२७॥
 वृत्तोयेऽहनि पञ्चत्वं वराकांय प्रपत्यते । ततोऽजा कम्बरग्रामे विलासस्य भविष्यति ॥१२८॥
 वृत्केण मारिता मेपी महिषी च ततः पितुः । मातुलस्य विलासस्य भविष्यति शरीरजा ॥१२९॥
 एवमस्ति चित्ति सम्प्राप्य प्रणम्य^२ प्रमदीं गुरुम् । सुकेतुः क्रमतः प्राप्तस्तापसानां निकेतनम् ॥१३०॥

पुरोहित था उसकी स्त्रीके सुकेतु और अग्निकेतु नामके दो पुत्र थे । उन दोनों ही पुत्रोंमें अत्यधिक प्रेम था, उस प्रेमके कारण बड़े होने पर भी वे एक ही शय्या पर सोते थे । समय पाकर सुकेतुका विवाह हो गया । जब स्त्री घर आई तब सुकेतु यह विचार कर बहुत दुःखी हुआ कि इस स्त्रीके द्वारा अब हम दोनों भाइयोंकी शय्या जुड़ी-जुड़ी की जा रही है ॥११५-११७॥ इस प्रकार शुभ कर्मके प्रभावसे प्रतिबोधको प्राप्त हो सुकेतु अनन्तवीर्य मुनिके पास दीक्षित हो गया ॥११८॥ भाईके वियोगसे अग्निकेतु भी बहुत दुःखी हो धर्म संचय करनेको भावनासे वाराणसीमें उग्र तापस हो गया ॥११९॥ स्नेहके बन्धनमें बंधे सुकेतुने जब भाईके तापस होनेका समाचार सुना तब वह उसे समझानेके अर्थ जानेके लिए उद्यत हुआ ॥१२०॥ जब वह जाने लगा तब गुरुने उससे कहा कि हे सुकेतो ! तुम अपने भाईसे यह वृत्तान्त कहना जिससे वह शीघ्र ही उपशान्त हो जायगा ॥१२१॥ 'हे नाथ ! वह कौन सा वृत्तान्त है' ? इस प्रकार सुकेतुके कहने पर गुरुने कहा कि दुष्ट भावनाको धारणा करनेवाला तेरा भाई तेरे साथ वाद करेगा ॥१२२॥ सो जिस समय तुम दोनों वाद कर रहे होओगे उस समय गौरवर्ण शरीरको धारणा करनेवाली एक सुन्दर कन्या तीन स्त्रियोंके साथ गङ्गा आवेगी । वह दिनके पिछले प्रहरमें आवेगी तथा विचित्र वस्त्रको धारण कर रही होगी । इन चिह्नोंसे उसे जानकर तुम अपने भाईसे कहना कि यदि तुम्हारे धर्ममें कुछ ज्ञान है तो बताओ इस कन्याका क्या शुभ अशुभ होनेवाला है ? ॥१२३-१२४॥ तब वह अज्ञानी तापसी लजित होता हुआ तुमसे कहेगा कि अच्छा तुम जानते हो तो कहो । यह सुन तुम निश्चयसे सुहृद् हो कहना कि इसी नगरमें एक सम्पत्तिशाली प्रवर नामका वैश्य रहता है यह उसीकी लड़की है तथा रुचिरा नामसे प्रसिद्ध है ॥१२६-१२७॥ यह बेचारी आजसे तीसरे दिन मर जायगी और कम्बर नामक ग्राममें विलास नामक वैश्यके यहाँ बकरी होगी । भेड़िया उस बकरीको मार डालेगा जिससे गाडर होगी फिर मरकर उसीके घर भैस होगी और उसके बाद उसी विलासके पुत्री होगी । वह विलास इस कन्याके पिताका मामा होता है ॥१२८-१२९॥ 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर तथा गुरुको प्रणामकर हर्षसे मरा सुकेतु क्रम-

गुण्या च यथादिष्टं वा इष्टा तनुदाहरत् । तथा कृतं च तन्मन्त्रं यन्मन्त्रोः समन्वयत् ॥१२॥
 नवांशौ विधुरा समन्ता विद्यासक्त्य शरीरता । यावत्ता श्रीदेवा लब्धौ प्रवर्गे ननुहेतु ॥१३॥
 विवाहसमये प्राप्ते प्रवर्ग न्यवेष्टयत् । अग्निहेतुप्रेषे नं दुहितारिह स्वन्दरे ॥१४॥
 विद्यायापि ते सर्वे स्वाप्तेव विवेदिताः । श्रुत्वा तत्कल्पका वाता वाजिस्तरयके हिदुः ॥१५॥
 ततः प्रवर्गे वाङ्मूला सन्निधिराकरत् । अन्तरं विद्यामेव लब्धौ तुराह्यः ॥१६॥
 समानां पितृस्वाकं प्रवरे भक्त्या गते । कार्यिकावसिता कन्या श्रमगते च तान्ताः ॥१७॥
 इत्यात्मनोऽहं श्रुत्वा दयं वैराग्यदुरिताः । सकलोजन्मवर्गैरेव वैदेष्टुमन्ताः ॥१८॥
 एवं नोह्वरीतावां प्राग्वत्तत्तुम्भुरेताः । तावन्ते कुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः ॥१९॥
 तावन्ते तुम्भुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः । तावन्ते कुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः ॥२०॥
 तावन्ते तुम्भुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः । तावन्ते कुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः ॥२१॥
 तावन्ते तुम्भुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः । तावन्ते कुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः ॥२२॥
 तावन्ते तुम्भुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः । तावन्ते कुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः ॥२३॥
 तावन्ते तुम्भुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः । तावन्ते कुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः ॥२४॥
 तावन्ते तुम्भुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः । तावन्ते कुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः ॥२५॥
 तावन्ते तुम्भुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः । तावन्ते कुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः ॥२६॥
 तावन्ते तुम्भुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः । तावन्ते कुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः ॥२७॥
 तावन्ते तुम्भुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः । तावन्ते कुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः ॥२८॥
 तावन्ते तुम्भुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः । तावन्ते कुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः ॥२९॥
 तावन्ते तुम्भुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः । तावन्ते कुस्तिमाचरः नवसन्ततिद्वयिताः ॥३०॥

कनसे तारसोके आश्रमने पहुँचा ॥१३॥ गुरुने जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार उस कन्याको देखकर लुकेतने अपने भाई अग्निहेतुसे कहा और वह चढ़का सब इजान्त उसी प्रकार अग्नि हेतुके सामने आ गया. क्योंकि सब निकला ॥१३॥

वदन्तवर वह कन्या जब सरकर चौथे भयसे विद्यासके विधुरा नामकी पुत्री हुई तब प्रवर नामक सेठने उस सुन्दरीकी याचना की और वह उसे प्राम नी हो गई ॥१३॥ जब विद्यासका समय आया तब अग्निहेतुने प्रवरसे कहा कि यह कन्या भवान्तरने सुन्दरी पुत्री की ॥१३॥ यह कहकर उसने कन्याके वर्तमान विद्या विद्यासके लिए भी उसके वै सब भव कह सुनाये । जन्मवर्गको सुनकर कन्याको जातिस्मरण हो गया ॥१३॥ जिससे संसारसे भयने हो उसने ईश्वर धारण करनेका विचार कर लिया । इस प्रवरने समझा कि विद्यास किसी बृद्धके कारण मेरे साथ अपनी कन्याका विवाह नहीं कर रहा है इसलिए दूधित अग्निवादको धारण करनेवाले प्रवरने हनारे पिताकी समान विद्यासके विरुद्ध अग्निधाय चक्रधर परन्तु कन्येने प्रवरकी बात हुई, कन्या आर्थिका पदको प्राम हुई और अग्निहेतु दास्य दिगन्तरलुति बन गया, ॥१३५-१३६॥ इजान्तको सुनकर हमने भी विरक्त हो अन्तवर्ग नामक सुनिपासके समीप जितने दूँडा धारण कर ली ॥१३॥ इस प्रकार नहीं जीवने संसारकी सन्ततिको बढ़ानेवाले अनेक स्रोते आचरण हो जाया करते हैं ॥१३॥ यह जीव करने किये हुए कर्मोंके अनुसार हो जाता, दिवा, स्नेह, मित्र, स्त्री, पुत्र तथा सुख दुःखादिको भवभयने प्राम होता है ॥१३॥

यह सुनकर वह गुरु पुत्री संसार सम्बन्धी दुःखोंसे अत्यन्त नयनीव हो गया और धर्म ग्रहण करनेकी इच्छासे दारदार शब्द करने लगा ॥१३॥ तब सुनिपासने कहा कि हे भद्र ! भद्र मत करो । इस समय तब धारण करो जिससे फिर यह दुःखोंकी सन्तति प्राम न हो ॥१३॥ अत्यन्त शान्त हो जाओ, किसी भी शरीरको पीड़ा मत पहुँचाओ, अत्यन्त वचन, चोरी और परस्त्रीका त्याग करो अथवा पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण कर उत्तम कन्यासे युक्त हो रात्रि भोजनका त्याग करो, उत्तम चैत्राओंसे युक्त होओ, बड़े भयसे राजदिन जितने नयनको इष्टने धारण करो, शक्यनुसार विवेकपूर्वक उदकासादि नियमोंका आचरण करो, प्रसाद रहित होकर

इन्द्रियाण्यप्रमत्तः सन्तुत्सुकान्यात्मगोचरे । कुरु युक्त्यवस्थानि साधूनां भक्तिवत्परः ॥१४५॥
 इत्युक्तः साञ्जलिः पक्षी शिरो विनमयन्सुदुः । कुर्वाणो मधुरं शब्दं जग्राह मुनिमापितम् ॥१४६॥
 श्रावकोऽयं विनीतात्मा जातोऽस्माकं विनोदकृत् । इत्युक्त्वा सस्मिता सीता तं कराभ्यां समस्पृशत् ॥१४७॥
 साधुभ्यामुक्तमित्येतं रन्तुं वोऽधुनोचितम्^३ । तपस्वी शान्तचित्तोऽयं क्व वा गच्छतु पञ्चम ॥१४८॥
 अस्मिन् सुराहनेऽरण्ये क्रूरप्राणिनिपेविते । सम्यग्दृष्टेः खगस्यास्य रक्षा कार्या त्वया सदा ॥१४९॥
 ततो गुरुवचः प्राप्य सुतरां स्नेहपूर्णया । सीतयानुगृहीतोऽसौ परिपालनचिन्तया ॥१५०॥
 पल्लवस्पर्शहस्ताभ्यां त परासृशती सती । जनकस्याङ्गजा रेजे विनीता गरुडं यथा ॥१५१॥
 निर्ग्रन्थपुद्गवावेतिः स्तुतिपूर्वं नमस्कृतौ । बहूपकारिसञ्चारौ वातावालोचितं पदम् ॥१५२॥
 नमः समुत्पन्नौ तौ शृणुभाते महामुनी । दानधर्मसमुद्रस्य कल्लोलाविब पुष्कलौ ॥१५३॥
 प्रसिद्धं वारणं तावद् वशीकृत्य वनोत्थितम् । आलस्य लक्ष्मणः श्रुत्वा ध्वनिमागात् समाकुलः ॥१५४॥
 रत्नकाञ्चनराशिं च इष्ट्वा पर्वतसन्निधिम् । नानावर्णप्रभाजालसमुद्गतसुरायुधम् ॥१५५॥
 विकसन्नयनाभोजमहाकौतुकपूरितः । कृतो विदितवृत्तान्तः पक्षेन मुदितात्मना ॥१५६॥
 प्राप्तबोधिरसौ पक्षी नायासीतौ विना क्वचित् । निर्ग्रन्थवचनं सर्वं कुर्वन्नुद्यतमानसः ॥१५७॥
 स्मयमाणोपवेशेऽसौ सीतयाशुव्रताश्रमे । पल्लवक्षमणमार्गेण रममाणोऽभ्रमन्महीम् ॥१५८॥

इन्द्रियोको व्यवस्थित कर आत्मध्यानमें उत्सुक करो और साधुओंकी भक्तिमें तत्पर होओ ॥१४२-१४५॥ मुनिराजके इस प्रकार कहने पर गृध्र पक्षीने अञ्जलि बौध वार-वार शिर हिलाकर तथा मधुर शब्दका उच्चारण कर मुनिराजका उपदेश ग्रहण किया ॥१४६॥ 'विनीत आत्माको धारण करनेवाला यह श्रावक हम लोगोका विनोद करनेवाला हो गया' यह कह कर मन्दहास्य करनेवाली सीताने उस पक्षीका दोनों हाथोंसे स्पर्श किया ॥१४७॥ तदनन्तर दोनों मुनियोंने राम आदिको लक्ष्य कर कहा कि अब आप लोगोको इसकी रक्षा करना उचित है क्योंकि शान्तचित्तको धारण करनेवाला यह वेचारा पक्षी कहाँ जायगा ? ॥१४८॥ क्रूर प्राणियोंसे भरे हुए इस सचन वनमें तुम्हें इस सम्यग्दृष्टि पक्षीकी सदा रक्षा करनी चाहिये ॥१४९॥ तदनन्तर गुरुके वचन प्राप्त कर अतिशय स्नेहसे भरी सीताने उसके पालनकी चिन्ता अपने ऊपर ले उसे अनुगृहीत किया अर्थात् अपने पास ही रख लिया ॥१५०॥ पल्लवके समान कोमल स्पर्शवाले हाथोंसे उसका स्पर्श करती हुई विनयवती सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो गरुडका ही स्पर्श कर रही हो ॥१५१॥

तदनन्तर जिनका भ्रमण अनेक जीवोंका उपकार करनेवाला था ऐसे दोनों निर्ग्रन्थ साधु, राम आदिके द्वारा स्तुतिपूर्वक नमस्कार किये जाने पर अपने योग्य स्थान पर चले गये ॥१५२॥ आकाशमें उड़ते हुए वे दोनों महामुनि ऐसे सुशोभित हो रहें थे मानो दानधर्मरूपी समुद्रकी दो बड़ी लहरें ही हों ॥१५३॥ उसी समय एक मदनोन्मत्त हाथीको वशकर तथा उस पर सवार हो लक्ष्मण शब्द सुनकर कुछ व्यग्र होते हुए आ पहुँचे ॥१५४॥ नाना वर्णकी प्रभाओंके समूहसे जिसमें इन्द्रधनुष निकल रहा था ऐसी पर्वतके समान बहुत बड़ी रत्न तथा सुवर्णकी राशि देख कर जिनके नेत्रकमल विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यधिक कौतुकसे युक्त थे ऐसे लक्ष्मणको प्रसन्न हृदय रामने सब समाचार विदित कराया ॥१५५-१५६॥ जिसे रत्नत्रयकी प्राप्ति हुई थी तथा जो मुनिराजके समस्त वचनोका बड़ी तत्परतासे पालन करता था ऐसा वह पक्षी राम और सीताके विना कहीं नहीं जाता था ॥१५७॥ अणुव्रताश्रममें स्थित सीता जिसे वार-वार मुनियोंके उपदेशका स्मरण कराती रहती थी ऐसा वह पक्षी राम लक्ष्मणके मार्गमें रमण करता हुआ पृथ्वी

धर्मस्य पश्यतोदार्यं यदस्मिन्नेव जन्मनि । शाकपत्रोपमो गृध्रो जातस्तामरसोपमः ॥१५६॥
 पुरा योऽनेकमांसादो दुर्गन्धोऽमृज्जुगुप्सितः । सोऽयं काञ्चनकुम्भानः सुरभिः सुन्दरोऽभवत् ॥१६०॥
 कचिद् बह्विशिखाकारः कचिद् वैदूर्यसन्निभः । कचिन्नामीकरच्छायो हरिर्मणिहृत्चिः कचित् ॥१६१॥
 रामलक्ष्मणयोरग्रे स्थितोऽसौ बहुचाटुकः । बुभुजे साधु सन्ध्यामन्त्रं सीतोपसाधितम् ॥१६२॥
 चन्दनेन स दिग्धाज्ञो हेमकिट्टिकण्यलङ्कृतः । विभ्राणः शकुनी रेजे रत्नांशुजटिलं शिरः ॥१६३॥
 यस्मादशुजटास्तस्य विरेज्ज् रत्नहेमजाः । जटायुरिति तेनासावाहृतस्त्वैरतिप्रियः ॥१६४॥
 जितहंसगति कान्त चारुविभ्रमभूषितम् । तमन्यपचिणो दृष्ट्वा भयवन्तो विसिस्मियुः ॥१६५॥
 त्रिसन्ध्यं सीताया साकं चन्दनामकरोदसौ । भक्तिप्रह्वो जिनेन्द्राणां सिद्धानां योगिनां तथा ॥१६६॥
 तत्र प्रीतिं महाप्राप्ता जानकी करुणापरा । अग्रमत्ता सदा रत्नां कुर्वन्ती धर्मवत्सला ॥१६७॥

उपजातिवृत्तम्

आस्वादमानो निजयेच्छ्वासी फलानि शुद्धान्यमृतोपमानि ।
 जल प्रशस्तं च पिबन्नरण्ये यमूब नित्यं सुविधिः पतन्नी ॥१६८॥
 सत्तालशब्दं जवकात्मजाया धर्माश्रयोच्चारितगीतिकायाम् ।
 कृतानुगीत्यां पतिदेवराभ्यां ननर्त्त हृष्टो रैविरुजटायुः ॥१६९॥

इत्यार्षे रविषेष्णाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते जटायूपाख्यानं नामैकचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४१॥

पर भ्रमण करता था ॥१५८॥ अहो ! धर्मका माहात्म्य देखो कि जो पक्षी इसी जन्ममें शाकपत्र के समान निष्प्रभ था वही कमलके समान सुन्दर हो गया ॥१५९॥ पहले जो अनेक प्रकारके मांसको खानेवाला, दुर्गन्धित एवं घृणाका पात्र था वही अब सुवर्णकलशमें स्थित जलके समान मनोज्ञ एवं सुन्दर हो गया ॥१६०॥ उसका आकार कहीं तो अग्निकी शिखाके समान था, कहीं नीलमणिके सदृश था, कहीं स्वर्णके समान कान्तिसे युक्त था और कहीं हरे मणिके तुल्य था ॥१६१॥ राम लक्ष्मणके आगे बैठा तथा अनेक प्रकारके मधुर शब्द कहनेवाला वह पक्षी सीताके द्वारा निर्मित उत्तम भोजन ग्रहण करता था ॥१६२॥ जिसका शरीर चन्दनसे लिप्त था, जो स्वर्ण निर्मित छोटी-छोटी घंटियोंसे अलङ्कृत था तथा जो रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त शिरको धारण कर रहा था ऐसा वह पक्षी अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥१६३॥ यतश्च उसके शरीर पर रत्न तथा स्वर्णनिर्मित किरणरूपी जटाएँ सुशोभित हो रही थीं इसलिए राम आदि उसे 'जटायु' इस नामसे बुलाते थे । वह उन्हें अत्यन्त प्यारा था ॥१६४॥ जिसने इसकी चालको जीत लिया था, जो स्वयं सुन्दर था और सुन्दर विलासोंसे जो युक्त था ऐसे उस जटायुको देखकर अन्य पक्षी भयभीत होते हुए आश्चर्यचकित रह जाते थे ॥१६५॥ वह भक्तिसे नम्रीभूत होकर तीनों संध्याओंमें सीताके साथ अरहन्त सिद्ध तथा निर्भन्ध साधुओंको नमस्कार करता था ॥१६६॥ धर्मसे स्नेह करनेवाली दयालु सीता बड़ी सावधानीसे उसकी रक्षा करती हुई सदा उस पर बहुत प्रेम रखती थी ॥१६७॥ इस प्रकार वह पक्षी अपनी ईच्छानुसार शुद्ध तथा अमृतके समान स्वादिष्ट फलोंको खाता और जङ्गलमें उत्तम जलको पीता हुआ निरन्तर उत्तम आचरण करता था ॥१६८॥ जब सीता तालका शब्द देती हुई धर्ममय गीतोका उच्चारण करती थी और पति तथा देवर उसके स्वरसे स्वर मिलाकर साथ-साथ गाते थे तब सूर्यके समान कान्तिको धारण करनेवाला वह जटायु, हर्षित हो नृत्य करता था ॥१६९॥

इस प्रकार आर्षेणामसे प्राप्त रविषेष्णाचार्य कथित पद्मचरितमें जटायुका वर्णन करनेवाला इकतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४१॥

द्विचत्वारिंशत्तमं पर्व

पात्रदानप्रभावेण ससीतौ रामलक्ष्मणौ । इहैव रत्नहेमादि^१सम्पद्युक्तौ बभूवतुः ॥१॥
 ततश्चामीकरानेकभक्तिविन्याससुन्दरम् । सुस्तम्भवेदिकागर्भगृहसङ्गतमुन्नतम् ॥२॥
 स्थूलमुक्ताफलखरिभिर्विराजत्पचनायनम् । बुद्बुदादर्शलम्बूपखण्डचन्द्रादिमण्डितम् ॥३॥
 शयनासनवादित्रचक्रगन्धादिपूरितम् । चतुर्भिर्वारणैर्युक्त विमानप्रतिमं रथम् ॥४॥
 आरुढा विचरन्त्येते प्रतिघातविवर्जिता । जटायुसहिता रम्ये वने सत्ववतां नृणाम् ॥५॥
 कचिद्विषं कचिन् पक्षं कचिन्मांसं मनोहरं । यथेप्सितकृतक्रीडाः प्रदेशे तेऽवतस्थिरे ॥६॥
 निवासमत्र कुनोऽत्र कुर्म इत्यभिलाषिणः । महोत्तनचक्षपेच्छा विचेरुस्ते वनं सुखम् ॥७॥
 महानिर्भरगम्भीरान् काश्चिदुच्चावचान् बहून् । उत्तुङ्गपादपान् देशान् जम्बुरुद्धव्य ते शनैः ॥८॥
 स्वेच्छया पर्यटन्तस्ते सिद्धा इव भयोन्मिता । मध्यं दण्डकवृक्षस्य प्रविष्टा भीरुदुःखदम् ॥९॥
 विचित्रशिखरा यत्र हिमाद्रिशिखिभिः । रम्या निर्भरनद्यश्च सुकाहारापमाः स्थिताः ॥१०॥
 अन्तर्यैस्तन्मिर्त्तकभिर्बद्रीभिर्विभीतकैः । शिरीषैः कदलैश्चैररुकोटैः^३ सरलैर्धवैः ॥११॥
 कदम्बैस्तिलकैर्लोध्रैरशोकैर्नीललोहितैः । जम्बूभिः पाटलाभिश्च चूतैरात्रातकैः शुभैः ॥१२॥
 चम्पकैः कर्णिकारैश्च सालैस्तालैः प्रियङ्गुभिः । सप्तपर्णैस्तमालैश्च नागैर्नन्दिमिरजुनैः ॥१३॥
 केसरैश्चन्दनैर्नीपैर्मूकैर्हिं गुलकैर्बटैः । सिन्धुसितैरगुरुभिः कुन्दै रम्भाभिर्मिदुः ॥१४॥
 पद्मकैर्मूलैर्चिलैश्च कुडिलैः पारिजातकैः । बन्धूकैः केतकीभिश्च मधूकैः खदिरैस्तथा ॥१५॥

अथानन्तर पात्र दानके प्रभावसे सीता सहित राम लक्ष्मण इसी पर्यायमे रत्न तथा सुवर्णादि संपत्तिसे युक्त हो गये ॥१॥ तदनन्तर जो स्वर्णमयी अनेक वेल-वूटोके विन्याससे सुन्दर था, जो उत्तमोत्तम खम्भो वेदिका तथा गर्भगृहसे सहित था, ऊँचा था, जिसके भरोखे बड़े-बड़े मोतियोंकी मालासे सुशोभित थे, जो छोटे-छोटे गोले, दर्पण, फन्नुस, तथा खण्ड चन्द्र आदि सजावटकी सामग्रीसे अलंकृत था, शयन, आसन, वादित्र, वस्त्र तथा गन्ध आदिसे भरा था, जिसमें चार हाथी जुते थे और जो विमानके समान था ऐसे रथ पर सवार होकर ये सब धिना किसी बाधाके जटायु पक्षीके साथ-साथ धैर्यशाली मनुष्योंके मनको हरण करनेवाले वनमें विचरण करते थे ॥२-४॥ वे उस मनोहर वनमें इच्छानुसार क्रीडा करते हुए कहीं एक दिन, कहीं एक पक्ष और कहीं एक माह ठहरते थे ॥६॥ 'हम यहाँ निवास करेंगे' 'यहाँ ठहरेंगे' इस प्रकार कहते हुए वे किसी बड़े बेलकी नई घास खानेकी इच्छाके समान वनमें सुख पूर्वक विचरण करते थे ॥५॥ जो बड़े-बड़े निर्भरोसे गम्भीर थे तथा जिनमें ऊँचे-ऊँचे वृक्ष लग रहे थे ऐसे कितने ही ऊँचे नीचे प्रदेशोको पार कर वे धीरे-धीरे जा रहे थे ॥८॥ सिद्धोंके समान निर्भय हो स्वेच्छासे घूमते हुए वे, भीरु मनुष्योंको भय देनेवाले दण्डक वनके उस मध्य भागमें प्रविष्ट हुए जहाँ हिमगिरिके समान विचित्र पर्वत थे तथा मोतियोंके हारके समान सुन्दर निर्भर और नदियों स्थित थी ॥९-१०॥ जहाँका वन, पीपल, इमली, वैरी, बहेड़े, शिरीष, केले, राल, अक्षरोट, देवदारु, धौ, कदम्ब, तिलक, लोध, अशोक, नील और लाल रङ्गको धारण करनेवाले जामुन, गुलाब, आम, अंबाडा, चम्पा, कनेर, सागीन, ताल, प्रियङ्गु, सप्तपर्ण, तमाल, नागकेशर, नन्दी, कीहा, बकौली, चन्दन, नीप, भोजपत्र, हिगुलक, वरगद, सफेद तथा काला अगुरु, कुन्द,

मदनैर्खदिरैर्विम्बैः खजूरैश्चक्रकैस्तथा । नारिद्रैर्मातुलिङ्गीभिर्द्रोढिर्माभिस्तथासनैः ॥१६॥
 नालिकेरैः कपिरथैश्च रसैरामलकैर्वनैः । शमीहरीतकीभिश्च कोविदारैरगस्तिसिः ॥१७॥
 करञ्जकुण्डकालीयैरुक्तचैरजमोदकैः । कङ्कोलत्वग्लवङ्गीभिर्मरिचाजातिभिस्तथा ॥१८॥
 चविभिर्धातकीभिश्च कुर्पकैरविमुक्तकैः । पूरैस्ताम्बूलवल्लीमिरैरानी रक्तचन्दनैः ॥१९॥
 वेनैः श्यामलताभिश्च मेपशृङ्गेहरिद्रुभिः । पलाशैः स्पन्दनैर्विल्वैश्चिरविल्वैः समेयिकैः ॥२०॥
 चन्दनैररङ्गकैश्च शाहमलीबीजकैस्तथा । एभिरन्यैश्च भुरुक्षिस्तदर्थं निराजितम् ॥२१॥
 सस्यैर्वहुप्रकारैश्च स्वयम्भूतै रसोत्तमैः । पुण्ड्रेक्षुभिश्च विस्तीर्णैः प्रदेशास्तस्य सङ्कुलाः ॥२२॥
 चित्रपादपसङ्घातैर्नानावल्लीसमाकुलैः । अशोभत वनं वाढं द्वितीयमिव नन्दनम् ॥२३॥
 मन्दमारुतनिकृतिः पल्लवैरतिकोमलैः । ननर्तवाटवी तोपात् पद्माद्यागमजन्मनः ॥२४॥
 वायुतो ह्रियमाणेन रजसाम्युत्थितेन च । आलिङ्ग्ये च सद्गन्धवाहिना नित्ययायिना ॥२५॥
 क्षयाद्यदि च भृङ्गाणां ऋद्धारेण मनोहरम् । जहासेव लितं रम्यं मौलिनिरंशरीकरैः ॥२६॥
 जीवन्जीवकभेदगृहसंसारसकोकिलाः । मयूरस्येनकुंरराः शुक्रकौशिकसारिकाः ॥२७॥
 कपोतश्चर्राजश्च भारद्वाजाद्यस्तथा । अरमन्त द्विजास्तस्मिन् प्रयुक्तकलनिस्त्वनाः ॥२८॥
 कोलाहलेन रम्येण तद्वनं तेन सम्भ्रमि । जगाद् स्वागतमिव प्राप्तकर्तव्यदधिगम् ॥२९॥
 कुतः किं राजपुत्रीति कस्मिन्नागच्छ साध्विति । इतिकोमलभारत्या सज्जनवपुर्वि द्विजाः ॥३०॥
 सिताक्षिताक्षणाभोजसम्बुद्धैरतिनिर्मलैः । सरोभिर्वीक्षितुमिव प्रवृत्तं सुकुतूहलात् ॥३१॥
 फलभारनतैरग्रैर्नगामेव महादरम् । सुमोचानन्दनिश्वासमिव सद्गन्धवायुना ॥३२॥

रम्भा, इंगुआ, पद्मक, मुचकुन्द, कुटिल, पारिजातक, दुपहरिया, केतकी, महुआ, खैर, मैना, खदिर, नीम, खजूर, छत्रक, नारंगी, बिजौरे, अनार, असन, नारियल, कैंथा, रसोद, ओवला, शमी, हरद, कचनार, करञ्ज, कुष्ठ, कालीय, उक्तच, अजमोद, कंकोल, दालचीनी, लोंग, मिरच, चमेली, चव्य, आँवला, कुर्पक, अतिमुक्तक, सुपारी, पान, इलायची, लालचन्दन, वेंत, श्यामलता, मेढासिगी, हरिद्रु, पलाश, तेंदू, बेल, चिरोल, मेथी, चन्दन, अरङ्गक, सेम, बीजसार, इनसे तथा इनके सिवाय अन्य वृक्षोंसे सुशोभित था ॥११-२१॥ उस वनके लम्बे चौड़े प्रदेश स्वयं उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके धान्यों तथा रसीले पौधों और ईखोंसे व्याप्त थे ॥२२॥ नाना प्रकारकी लताओंसे युक्त विविध वृक्षोंसे समूहसे वह वन ठीक दूसरे नन्दनवनके समान सुशोभित हो रहा था ॥२३॥ मन्द-मन्द वायुसे हिलते हुए अत्यन्त कोमल किसलयोंसे वह अटवी ऐसी जान पड़ती थी मानो राम आदिके आगमनसे उत्पन्न हर्षसे नृत्य ही कर रही हो ॥२४॥ वायुके द्वारा हरण की हुई परागसे वह अटवी ऊपर उठी हुई सी जान पड़ती थी और उत्तम गन्धको धारण करनेवाली वायु मानो उसका आलिङ्गन कर रही थी ॥२५॥ वह भ्रमरोंकी मंकारसे ऐसी जान पड़ती थी मानो मनोहर गान ही गा रही हो और पहाड़ी निर्भरोंके उड़ते हुए जलकणोंसे ऐसी विदित होती थी मानो शुक्ल एवं सुन्दर हास्य ही कर रही हो ॥२६॥ चकोर, भेरुण्ड, हंस, सारस, कोकिला, मयूर, बाज, कुंर, उलूक, मैना, कबूतर, भृङ्गराज, तथा भारद्वाज आदि पक्षी मनोहर शब्द करते हुए उस अटवीमें क्रीड़ा करते थे ॥२७-२८॥ पक्षियोंके उस मधुर कोलाहलसे वह वन ऐसा जान पड़ता था मानो प्राप्त कार्यमें निपुण होनेसे संभ्रमके साथ सबका स्वागत ही कर रहा हो ॥२९॥ कलरव करते हुए पक्षी कोमलवाणीसे मानो यही कह रहे थे कि हे साधि ! राजपुत्रि ! तुम कहाँसे आ रही हो और कहाँ आई हो ॥३०॥ सफेद, नीले तथा लाल कमलोंसे व्याप्त अतिशय निर्मल सरोवरोंसे वह वन ऐसा जान पड़ता था मानो कुतूहल वश देखनेके लिए उद्यत ही हुआ हो ॥३१॥ फलोंके भार से झुके हुए अथ भागोंसे वह वन ऐसा

१. अटवी ननर्त इव । २. जीवन्जीवश्चकोरकः । ३. महीधरं म० ।

ततः सौमनसाकारं वनं तद्वीक्ष्य राघवः । जगाद् विकचाम्भोजलोचनां जनकात्मजाम् ॥३३॥
वह्नीभिर्गुल्मकैः स्तम्भैः समासन्नैरसी नगाः । सकुटुम्बा इवामान्ति प्रिये यच्छात्र लोचने ॥३४॥
प्रियङ्गुलविकां पश्य सद्गतां वकुलोरसि । कान्तस्येव वरारोहा शंके निर्भरसौहृदम् ॥३५॥
चलता पञ्चवनेयं सम्प्रत्यग्रेण माघवी । पराभृशति सौहार्दादिव चूतमनुसराव् ॥३६॥

छन्दः (?)

भयं मदालसे क्षणं करी करेणुचोदितः । मधुकरविघटितदलनिचयः प्रविशति सीते कमलवनम् ॥३७॥

उपजातिः

वह्निस्तौ दर्पसुदारसुचैर्वल्मीकशृङ्गं गवलीसुनीलः ।
लीलान्वितो वज्रसमेन धीरं भिन्ते विपाणेन कसलधुराग्नः ॥३८॥

आर्याच्छन्दः

असुमिन्द्रनीलवर्णं विवराज्जियांतदूरतनुनागम् ।
परय मयूरं दृष्ट्वा प्रविशन्तमहिं भयाकुलितम् ॥३९॥

शार्दूलविकीडितम्

परयामुष्य महानुभावचरितं सिंहस्य सिंहक्षणे
रम्येऽस्मिन्नचले गुह्यसुखगतस्याराद्विकासिष्ठुते ।
यः श्रुत्वा रथनादमुन्नतमन्त्रा निद्रां विहाय क्षणं
वीक्ष्यापाङ्गदशा विजृम्भ्य शनकैर्भूयस्तथैव स्थितः ॥४०॥

जान पड़ता था मानो बड़े आदरसे राम आदिको नमस्कार ही कर रहा हो और सुगन्धि वायुसे ऐसा सुशोभित होता था मानो आनन्दके रवासोच्छ्वास ही छोड़ रहा हो ॥३२॥

तदनन्तर सौमनस वनके समान सुन्दर वनको देख देखकर रामने विकसित कमलके समान खिले हुए नेत्रोंको धारण करनेवाली सीतासे कहा कि हे प्रिये ! इधर देखो, ये वृक्ष लताओ तथा निकटवर्ती गुल्मी और झाड़ियोंसे ऐसे जान पड़ते हैं मानो कुटुम्ब सहित ही हों ॥३३-३४॥ वकुल वृक्षके वक्षस्थलसे लिपटी हुई इस प्रियङ्गु लताको देखो । यह ऐसी जान पड़ती है मानो पतिके वक्षस्थलसे लिपटी प्रेम भरी सुन्दरी ही हो ॥३५॥ यह माघवीलता हिलते हुए पल्लवसे मानो सौहार्दके कारण ही आमका स्पर्श कर रही है ॥३६॥ हे सीते ! जिसके नेत्र मदसे आलस हैं, हस्तिनी जिसे प्रेरणा दे रही है और जिसने कलिकाओंके समूहको भ्रमरोसे रहित कर दिया है ऐसा यह हाथी कमल वनमें प्रवेश कर रहा है ॥३७॥ जो अत्यधिक गवकों धारण कर रहा है, जो लीलासे सहित है, तथा जिसके खुरोंके अग्रभाग सुशोभित हैं ऐसा यह अत्यन्त नील भैंसा वज्रके समान सींगके द्वारा वामीके उच्च शिखरको भेद रहा है ॥३८॥ इधर देखो, इस साँपके शरीरका बहुत कुछ भाग विलसे बाहर निकल आया था फिर भी यह सामने इन्द्रनील मणिके समान नीलवर्णवाले मयूरको देखकर भयभीत हो फिरसे उसी विलमें प्रवेश कर रहा है ॥३९॥ हे सिंहके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली तथा फैलती हुई कान्तिसे युक्त प्रिये ! इस मनोहर पर्वतपर गुहाके अग्रभागमें स्थित सिंहकी उदात्त चेष्टाको देखो जो इतना दृढ चित्त है कि रथका शब्द सुनकर क्षण भरके लिए निद्रा छोड़ता है और कटाक्षसे उसकी ओर देखकर

वसन्ततिलकावृत्तम्

नानासृगक्षतजपानसुरकवक्त्रो दर्पोद्भुरः कपिलनेत्रमरीचिवक्त्रः ।
मूर्धोपनीतलसदुज्ज्वलबालपुच्छो व्याघ्रो नखैः खनति पापदमेप मूले ॥४१॥

मन्दाक्रान्ता

अन्तः कृत्वा शिशुगणमिमे कामिनीभिः समेतं
दूरन्यस्तप्रचलनयना मूरिशः सावधानाः ।
किञ्चिद्दूर्वाग्रहगचतुराः प्रान्तयाताः कुरङ्गाः
परयन्ति त्वां विपुलनयनालम्बिनः कौतुकेन ॥४२॥

आर्यावृत्तम्

सुन्दरि परय वराहं दंष्ट्रान्तरलग्नमुत्सुजतसत्त्वम् ।
अभिनवगृहीतपङ्कं गच्छन्तं मन्थरं सघोणम् ॥४३॥

वंशस्थवृत्तम्

अयं प्रथमादिव चित्रितांगको विनातिवर्णैर्बहुभिः सुलोचने ।
भजत्यतिक्रीडनसमकैः समं वनैकदेशे वृगभाजि चित्रकः ॥४४॥

दोधकवृत्तम्

रयेनपुत्रैष लघुभ्रमपचो दूरत एव निरूप्य समन्तात् ।
स्वापमितस्य पर शरभस्य स्तेनयति द्रुतमामिपमास्यात् ॥४५॥

द्रुतचिलम्बितवृत्तम्

कमलजालकराजितमस्तकः ककुदसुजतमाचलितं वहन् ।
अयमुदात्तरवोऽन्न विराजते सुप्रभिपुत्रपतिर्वरविभ्रमः ॥४६॥

तथा धीरेसे जमुहाई लेकर फिर भी उसी तरह निर्भय बैठता है ॥४०॥ इधर नाना सृगोका रुधिर पान करनेसे जिसका मुख अत्यन्त लाल हो रहा है, जो अहंकारसे फूल रहा है, जिसका मुख नेत्रोंकी पीली-पीली कान्तिसे युक्त है, तथा चमकीले बालोंसे युक्त जिसकी पूँछ पीछेसे घूमकर मस्तकके समीप आ पहुँची है ऐसा यह व्याघ्र नाखूनोंके द्वारा घृत्तके मूलभागको नाखूनोंसे खोद रहा है ॥४१॥ जिन्होंने स्त्रियोंके साथ-साथ अपने वक्त्रोंके समूहको बीचमें कर रक्खा है, जिनके चञ्चल नेत्र बहुत दूर तक पड़ रहे हैं, जो अत्यधिक सावधान है, जो कुछ-कुछ दूर्वाके ग्रहण करनेमें चतुर हैं और कौतुक वंश जिनके नेत्र अत्यन्त विशाल हो गये हैं ऐसे वे हरिण समीपमें आकर तुम्हें देख रहे हैं ॥४२॥ हे सुन्दरि ! धीरे-धीरे जाते हुए उस वराह को देखो, जिसकी दाँवोंमें मोथा लगा रहा है, जिसका बल अत्यन्त उन्नत है, जिसने अभी हाल नई कीचड़ अपने शरीरमें लगा रक्खी है, तथा जिसकी नाक बहुत लम्बी है ॥४३॥ हे सुलोचने ! प्रयत्नके विना ही जिसका शरीर नाना प्रकारके वर्णोंसे चित्रित हो रहा है ऐसा यह चीता इस घृणवहुल वनके एक देशमें अपने वक्त्रोंके साथ अत्यधिक क्रीड़ा कर रहा है ॥४४॥ इधर जिसके पङ्ख जल्दी जल्दी घूम रहे हैं ऐसा यह तरुण वाज पत्नी दूरेसे ही सब ओर देखकर सोते हुए शरभके मुखसे बड़ी शीघ्रताके साथ मांसको छीन रहा है ॥४५॥ इधर जिसका मस्तक कमल जैसी आकृतिसे सुशोभित है; जो कुछ-कुछ हिलती हुई ऊँची कौंदौरको घारण कर रहा है, जो विशाल शब्द कर रहा है तथा जो उत्तम विभ्रमसे सहित है

स्रक्च्छन्दः

क्वचिदिदमतिघनवरनगकलितं क्वचिदुषुबहुविधतृणपरिनिवृत्तम् ।
क्वचिदपगतमथमृगपुरुषपटलं क्वचिदतिमथयुतरुहतिगहनम् ॥१७॥

चण्डीच्छन्दः

क्वचिदुरुमदगजपातितवृक्षं क्वचिदभिनवतरुजालकयुक्तम् ।
क्वचिदलिकुलकलभक्ततरुणं क्वचिदतिखररवसम्भृतकलम् ॥१८॥

प्रमाणिकावृत्तम्

क्वचिद्विभ्रान्तसत्त्वकं क्वचिद्विश्रव्यसत्त्वकम् । क्वचिन्निरम्बुगङ्गारं क्वचिद्विस्तृतगङ्गारम् ॥१९॥

तोटकच्छन्दः

अरुणं धवल कपिलं हरितं बलितं निवृत्तं सरवं विरवम् ।
विरलं गहनं सुभग विरलं, तरुणं पृथुकं विषमं सुसमम् ॥२०॥
इदं तदण्डकारणं प्रसिद्धं दयितं वनम् । पर्यानेकविधं कर्मप्रपञ्चमिव जानकि ॥२१॥
'नरोऽयं दण्डको नाम' शृङ्गालीढाम्बराङ्गणः । सुवक्त्रे यस्य नामनेदं दण्डकारणमुच्यते ॥२२॥
तुल्यया शिखरेष्वस्य प्रभया धातुजन्मना । रक्तया पुष्पपद्मेव प्रावृत्तं सति शुष्करम् ॥२३॥
अस्य गङ्गरदेशेषु पर्यापधिमहाशिखा । निर्वातस्यप्रदीपामा दूरन्ध्वस्ततमश्चयाः ॥२४॥

शालिनीच्छन्दः

अस्मिन्नुच्चैर्भिजराः सम्पतन्तस्तारारावा प्रावसङ्घातसक्ताः ।
सुक्ताकारान् सीकरानुत्सृजन्तो राजन्त्येते स्पष्टमासानुकाराः ॥२५॥

ऐसा यह बेल सुशोभित हो रहा है ॥१७॥ कहीं तो यह वन उत्तमोत्तम सघन वृक्षोंसे युक्त है, कहीं छोटे-छोटे अनेक प्रकारके तृणोंसे व्याप्त है, कहीं निर्भय मृगोंके वड़े-बड़े मुण्डोंसे सहित है, कहीं अत्यन्त भयभीत कृष्णमृगोंके लिए सघन झाड़ियोंसे युक्त है ॥१७॥ कहीं अतिशयमदोन्मत्त हाथियोंके द्वारा गिराये हुए वृक्षोंसे सहित है, कहीं नवीन वृक्षोंके समूहसे युक्त है, कहीं भ्रमर-समूहकी मनोहारी मंकारसे सुन्दर है, कहीं अत्यन्त तीक्ष्ण शब्दोंसे भरा हुआ है ॥१८॥ कहीं प्राणी भयसे इधर-उधर घूम रहे हैं, कहीं निश्चिन्त बैठे हैं, कहीं गुफाएँ जलसे रहित हैं, कहीं गुफाओंसे जल बह रहा है ॥१९॥ कहीं यह वन लाल है, कहीं सफेद है, कहीं पीला है, कहीं हरा है, कहीं मोड़ लिये हुए है, कहीं निश्चल है, कहीं शब्दसहित है, कहीं शब्दरहित है, कहीं विरल है, कहीं सघन है, कहीं सुन्दर है, कहीं नीरस—शुष्क है, कहीं तरुण—हराभरा है, कहीं विशाल है, कहीं विषम है, और कहीं अत्यन्त सम है ॥२०॥ हे भ्रिये जानकि ! देखो यह प्रसिद्ध दण्डकवन कर्मोंके प्रपञ्चके समान अनेक प्रकारका हो रहा है ॥२१॥ हे सुमुखि ! शिखरोंके समूहसे आकाशरूपी आँगनको व्याप्त करनेवाला यह दण्डक नाभका पर्वत है जिसके नामसे ही यह वन दण्डक वन कहलाता है ॥२२॥ इस पर्वतके शिखर पर गेरू आदि धातुओंसे उत्पन्न हो ऊँची उठनेवाली लाल-लाल कान्तिसे आच्छादित हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता है मानो लाल फूलोंके समूहसे ही व्याप्त हो रहा हो ॥२३॥ इधर इस पर्वतकी गुफाओंमें दूरसे ही अन्धकारके समूहको नष्ट करनेवाली देवीप्यमान औपधियोंकी बड़ी-बड़ी शिखाएँ वायुरहित स्थानमें स्थित दीपकोंके समान जान पड़ती हैं ॥२४॥ इधर पापाण-खण्डोंके बीच अत्यधिक शब्दोंके साथ बहुत ऊँचेसे पड़नेवाले ये भरने मोतियोंके समान जलकणोंको छोड़ते हुए सूर्यकी किरणोंके

विद्युन्मालावृत्तम्

अस्योद्देशाः शुभाः केचित् केचिन्नीला रक्ताः केचित् ।

दृश्यन्तेऽमी वृत्तैर्व्याप्ता ग्रान्ते कान्तेऽन्यन्तं कान्ताः ॥५६॥

प्रमाणिकाञ्जुन्दः

अमी समीरणेरिते वरोष्ठि वृत्तमस्तके । विभान्ति गह्वरे लवा रवेः कराः कचित् कचित् ॥५७॥

रुचिरावृत्तम्

अयं कचित् फलभरनम्रपादपः कचित् स्थितैः कुसुमपटैरलंकृतः ।

कचित् खगैः कलरवकारिमिश्रितो विभात्यलं वरमुखि दण्डको गिरिः ॥५८॥

कोकिलकञ्जुन्दः

इह चमरीगणोऽयमतिदुष्टमृगोपगतः प्रियतरवालिधिः प्रियतमैरनुयातपथः ।

अनतिविसृष्टमन्दगततिरिन्दुरुधिः पुरुष प्रविशति गह्वरं न पृथुकाहितचञ्चलदम् ॥५९॥

स्नग्धरावृत्तम्

एषा नीला शिला स्यात्तिमिरमुपचित कन्दराणां मुखेषु

स्यादेतत् किं विहायः स्फटिकमणिशिला किन्तु वृत्तान्तरस्था ।

एष स्याद् गण्डशैलः किमुत गजपतिः सेवते गाढनिद्रां

कान्ते ज्योतिषरेऽस्मिन्नतिसदृशतया दुर्गमा भूविभागाः ॥६०॥

एषा क्रौञ्चरवा नाम नदी जगति विभुता । जलं यस्याः प्रिये वीथीं त्वदीयसिन्धु चेष्टितम् ॥६१॥

अश्वललितञ्जुन्दः

मृदुमरुतीरथङ्कुरमलं तटस्थतरपुष्पसंहितधरम् । भवशयनीयरूपसुभगं सुकेशि जलमग्न राजतितराम् ॥६२॥

साथ मिलकर सुशोभित हो रहे हैं ॥५५॥ हे कान्ते ! इस पर्वतके कितने ही प्रदेश सफेद हैं, कितने ही नील हैं, कितने ही लाल हैं, और कितने ही वृक्षावलीसे व्याप्त हो कर अत्यन्त सुन्दर दिखाई देते हैं ॥५६॥ हे वरोष्ठि ! सघनवनमें वायुसे हिलते हुए वृक्षोंके अग्रभाग पर कहीं-कहीं सूर्यकी किरणें ऐसी सुशोभित होती हैं मानो उसके खण्ड ही हो ॥५७॥ हे सुमुखि ! जो कहीं तो फलोंके भारसे झुके हुए वृक्षोंके समूहसे युक्त हैं; कहीं पड़े हुए पुष्प रूपी वस्त्रोंसे सुशोभित हैं, और कहीं कलरव करनेवाले पक्षियोंसे व्याप्त हैं ऐसा यह दण्डक वन अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥५८॥ इधर, जिसे अपनी पूँछ अधिक प्यारी है, जिसके वल्लभ पीछे-पीछे दौड़े चले आ रहे हैं, जो चन्द्रमाके समान सफेद कान्तिका धारक हैं, और जो अपने बर्षों पर चञ्चल दृष्टि डाल रहा है ऐसा यह चमरीभूगोंका समूह दुष्ट जीवोंके द्वारा उपद्रुत होने पर भी अपनी मन्दगतिको नहीं छोड़ रहा है तथा बाल द्रुत जानेके भयसे कठोर एवं सघन भाङ्गीमें प्रवेश नहीं कर रहा है ॥५९॥ हे कान्ते ! इधर इस पर्वतकी गुफाओंके आगे यह क्या नील शिला रखी है ? अथवा अन्धकारका समूह व्याप्त है ? इधर यह वृक्षोंके मध्यमें आकाश स्थित है अथवा स्फटिक मणिकी शिला विद्यमान है ? और इधर यह काली चट्टान है या कोई बड़ा हाथी गाढ़ निद्राका सेवन कर रहा है इस तरह अत्यन्त सादृश्यके कारण इस पर्वतके भूभागों पर चलना कठिन जान पड़ता है ॥६०॥ हे प्रिये ! यह वह क्रौञ्चरवा नामकी जगत्-प्रसिद्ध नदी है कि जिसका जल तुम्हारी चेष्टाके समान अत्यन्त उज्ज्वल है ॥६१॥ हे सुकेशि ! जो मन्द-मन्द वायुसे प्रेरित होकर

भद्रकच्छुन्दः

सकुलाभफेनपटलप्रभिन्नबहुपुष्पपुञ्जकलितम् । मृद्वनिनादपूरितवना क्वचिद् विकटसङ्कोचपलचयैः ॥६३॥

(?) छुन्द-

ग्राहसहस्रचारविषमा क्वचिच्च पुरुवेदसङ्गतजला ।

धोरतपस्विचेष्टिसमा क्वचिच्च वहति प्रशान्तगुरियम् ॥६४॥

पुष्पिताग्रावृत्तम्

परमशितिशिलौघरश्मिभिन्नं क्वचिदनुलग्नसितोपलंशुयुक्तम् ।

जलमिह सितदन्ति भाति बाढं हरिहरयोरिव सङ्गतं शरीरम् ॥६५॥

वंशपत्रपतितम्

रक्तशिलौघरश्मिनिचिता क्वचिदियममला भाति समुद्यदकंसमये दिगिव सुरपतेः ।

भिन्नजला क्वचिच्च हृन्तिरुपलकरचयैः शैवलशङ्कयागमकृतो विरसयति खगान् ॥६६॥

हरिणीवृत्तम्

कमलनिकरेपेवत्र स्वेच्छंकृतातिफलस्वन निश्रुतपवनासङ्गात् कंप्तेष्वभीषणकृतग्रमम् ।

परमसुरमेगन्धाद् वक्त्रात्तेव समुद्रतान् मधुकपटलं कान्ते क्षीर्वा विभाति रजोरुणम् ॥६७॥

शिखरिणीच्छुन्दः

विपिक पाताले वक्त्रिद्विह जलं मुक्तवहनं परं गम्भीरत्वं वहति द्युति ते मन इव ।

क्वचिन्नीलाम्बोजैरनतिचलितैः पट्पट्चितैर्विमर्त्यच्छिद्यैः प्रवरवनितालोकनभवाम् ॥६८॥

लहरा रहा है, जो तटपर स्थित वृक्षाके पुष्प-समूहको धारण कर रहा है और जो कैलासके समान शुक्लरूपसे सुन्दर है ऐसा इस नदीका जल अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥६२॥ यह जल कहीं तो हंस समूहके समान उज्ज्वल फेन समूहसे युक्त है, कहीं टूट-टूटकर गिरे हुए फूलोंके समूहसे सहित है, कहीं भ्रमरोंके समूहसे इसका कमल वन पूरित है और कहीं यह बड़े-बड़े सघन पापाणोंके समूहसे उपलक्षित है ॥६३॥ यह नदी कहीं तो हजारों मगरमच्छोंके संचारसे विषम है, कहीं इसका जल अत्यन्त वेगसे सहित है और कहीं यह धोर तपस्वी-साधुओंकी चेष्टाके समान अत्यन्त प्रशान्त भावसे वहती है ॥६४॥ हे शुक्ल दंतोंको धारण करनेवाली सीते ! इस नदीका जल एक ओर तो अत्यन्त नील शिला समूहकी किरणोंसे मिश्रित होकर नीला हो रहा है तो दूसरी ओर समीपमे स्थित सफेद पाषाणखण्डोंकी किरणोंसे मिलकर सफेद हो रहा है इस तरह यह परस्पर मिले हुए हरिहर-नारायण और महादेवके शरीरके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥६५॥ लाल-लाल शिलाखण्डोंकी किरणोंसे व्याप्त यह निर्मल नदी, कहीं तो सूर्योदयकालीन पूर्व दिशाके समान सुशोभित हो रही है और कहीं हरे रंगके पाषाण-खण्डकी किरणोंके समूहसे जलके मिश्रित होनेसे शेवालकी शङ्कासे आनेवाले पक्षियोंको विरस कर रही है ॥६६॥ हे कान्ते ! इधर निरन्तर चलनेवाली वायुके सङ्गसे हिलते हुए कमल-समूह पर जो इच्छानुसार अत्यन्त मधुर शब्द कर रहा है, निरन्तर भ्रमण कर रहा है और उसकी परागसे जो लाल वर्ण हो रहा है ऐसा भ्रमरोंका समूह तुम्हारे मुखसे निकली सुगन्धिके समान उत्कृष्ट सुगन्धिसे लम्पट हुआ अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥६७॥ हे द्युति ! जो अतिशय स्वच्छ

१ ६२ तमे श्लोक अश्वललितच्छुन्दसः पाटद्वयम् । ६३ तमे च श्लोके भद्रकच्छुन्दसः पाटद्वयम् । उभयशार्धार्थ एव श्लोको विद्यते । अथवा उभयोर्यौलने उपजातिच्छुन्दो भवति । किन्तु विभिन्नजातिपूषणाति-वृत्तप्रायो न दृश्यते । २. लोचनशुक्लम् म० ।

चतुष्पदिकावृत्तम्

अत्र विभाति ज्योत्स्नागुणं बहुविधजलभवचक्रवर्णम् ।
 प्रेमनिबद्धं तारविरावं कचिदतिमदवशपरिचितकलहम् ॥६६॥
 सैकतमस्या रावति चेदं सवनितस्मगकुलकृतपदपदवि ।
 त्वजघनस्य प्राप्तसुसमत्वं गतघनसुरपथशशशरवदने ॥७०॥

मत्तमयूरच्छन्दः

एषा यातानेकविलासाकुलिताम्बुस्तोयाधीशं वीचिवरभूरतिकान्ता ।
 सद्गच्छारुक्मिणीतगुणौघ शुभचेष्टं विष्टपसुन्दरमुत्तमशीला भरतेशम् ॥७१॥

रुचिरावृत्तम्

इमे प्रिये फलकुसुमैरलङ्कृतास्तटीरहो विविधविहङ्गसङ्कुलाः ।
 निरन्तराः सजलवनौघसङ्ग्रिभाः इमामिता रतिमिव कर्तुमावयोः ॥७२॥

अपरचक्रच्छन्दः

इति निमदति राघवोत्तमे परमविचित्रपदार्थसङ्गतम् ।
 प्रमदभरवशंगता सती जनकसुता निजगाढ सादरम् ॥७३॥

प्रहर्षिणीवृत्तम्

नद्येषा विमलजला तरङ्गरम्या हृसाद्यैः खगनिवहैः कृताभिलाषाः ।
 एतस्यां प्रियतम ते मनोगतं चेतोयेऽस्याः किमिति रतिचर्णं न कुर्मः ॥७४॥

हे तथा वहाव छोड़कर पाताल तक भरा है ऐसा इस नदीका जल कहीं तो तुम्हारे मनके समान परम गान्भीर्यको धारण कर रहा है और कहीं भ्रमरोसे व्याप्त तथा कुछ-कुछ हिलते हुए नील कमलोसे उत्तम स्त्रीके देखनेसे समुत्पन्न नेत्रोंकी शोभा धारण कर रहा है ॥६८॥ इधर कहीं जो नाना प्रकारके कमलवनोंमें विचरण कर रहा है, प्रेमसे युक्त है, उब शब्द कर रहा है और तीव्र मदसे विवश हो जो परस्पर कलह कर रहा है ऐसा पक्षियोंका समूह सुशोभित हो रहा है ॥६९॥ मेघरहित आकाशमें विद्यमान चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मुखको धारण करनेवाली हे प्रिये ! इधर जिस पर स्त्रियों सहित क्रीड़ा करनेवाले पक्षियोंके समूहने अपने चरण-चिह्न बना रखे हैं ऐसा इस नदीका यह वालुमय तट तुम्हारे नितम्बस्थलीकी सदृशता धारण कर रहा है ॥७०॥ जिस प्रकार अनेक उत्तम विलासों—हावभाव रूप चेष्टाओंसे सहित तरङ्गके समान उत्तम बौहोसे युक्त एवं उत्तम शीलको धारण करनेवाली सुमद्रा सुन्दर एवं विस्तृत गुणसमूहसे युक्त, शुभ चेष्टाओंके धारक तथा संसारमें सर्वसुन्दर भरत चक्रवर्तीको प्राप्त हुई थी उसी प्रकार अनेक विलासों—पक्षियोंके संचारसे युक्त जलको धारण करनेवाली, बौहों के समान उत्तम तरङ्गोंसे युक्त, अतिशय मनोहर यह नदी, अत्यन्त सुन्दर तथा विस्तृत गुण समूहसे सहित शुभ चेष्टासे युक्त एवं जगत्सुन्दर लवणसमुद्रको प्राप्त हुई है ॥७१॥ हे प्रिये ! जो फल और फूलोंसे अलङ्कृत हैं, नाना प्रकारके पक्षियोंसे व्याप्त हैं, निरन्तर है तथा जलसे भरे मेघ-समूहके समान जान पड़ते हैं ऐसे ये किनारेके वृक्ष हम दोनोंको प्रीति उत्पन्न करनेके लिए ही मानो इस नदी कूलमें प्राप्त हुए हैं ॥७२॥ इस प्रकार जब रामने अत्यन्त विचित्र शब्द तथा अर्थसे सहित वचन कहे तब हर्षित होती हुई सीताने आदरपूर्वक कहा ॥७३॥ कि हे प्रियतम ! यह नदी विमल जलसे भरी है, लहरोंसे रमणीय है, हंसादि पक्षियोंके समूह इसमें इच्छानुसार क्रीड़ा

वियोगिनीचल्लन्दः

अथ राजसुतासमीरितं तद्वाक्यं रावधगोत्रचन्द्रमाः ।
अनुजानुगतोऽस्मिन्दन्वात् भेजे रम्यमुच रयालयात् ॥७५॥
पूर्वं चक्रे लक्ष्मीनाथः स्नपनमभिनवद्वतगजपतिवनपथपरिचितभ्रमप्रतिनोदनम् ।
तस्मादूर्ध्वं नानास्वादप्रवरकिसलयकुसुमसमुच्चयमुचितां च परिक्रियाम् ॥७६॥

(१)

पश्चात् श्रोतः संसक्तप्रदुर्भनिबहपरिचलनकरणवरसहितमतुलं विचेष्टितमीप्सितम् ।
रामेणामा स्नातुं सक्तो विविधजलविहृतिविषयपरमविधिसमुपचितं गुणाकरमानसः ॥७७॥

पृथ्वीवृत्तम्

सफेनवलया लसत्प्रकटवोचिमालकुला विमर्दितसिसासितारुणपयोजपत्राचिता ।
समुद्गतकलस्वनतिरहस्यमासेविता समं रघुकुलेन्दुना रतिनिवाकरोदापगा ॥७८॥

वियोगिनीवृत्तम्

विनिमज्ज्य सुदूरयायिना जिसिनांखण्डतिरोहितारमना ।
पुनराश्रुसमागमाश्रिता रघुपुत्रेण रता नृपात्मजा ॥७९॥
मुक्त्वा नानाकृत्यासङ्ग कुसुमवनचरणजरजोविराजिगुरुद्वृत्तम् ।
गत्वा क्षिप्रं तीरोद्वेशं त्वरितकृतविविधरसिताः पुरोगतयोपिताः ॥८०॥
तेषां द्रष्टुं सक्ताः श्रेष्ठामपरविषयगमनरहितं विधाय मनो मृशम् ।
तिर्यङ्मोक्षं हि द्योते रम्यं परुषकृतिरहितमनसां विदन्ति समीहितम् ॥८१॥

कर रहे हैं और आपका मन भी इसमें लग रहा है तो इसके जलमें हम लोग भी क्यों नहीं
ज्वनभर क्रीड़ा करें ॥७४॥

तदनन्तर छोटे भाई लक्ष्मणके साथ-साथ रामने सीताके वचनोंका समर्थन किया और
सब रथरूपी घरसे उतर कर मनोहर भूमि पर आवे ॥७५॥ सर्वप्रथम लक्ष्मणने नवीन पकड़े हुए
हाथीको जङ्गली मागींके बीच चलनेसे उत्पन्न हुई भकावटको दूर करनेवाला स्नान कराया । उसके
बाद उसे नाना प्रकारके स्वादिष्ट उत्तमोत्तम कोमल पत्ते और फूलोंका समूह इकट्ठा किया तथा
उसको योग्य परिचर्या की ॥७६॥ तदनन्तर जिनका मन नाना प्रकारके गुणोंकी खान था ऐसे
लक्ष्मणने रामके साथ-साथ नदीमें स्नान करना प्रारम्भ किया । वे कभी जलके प्रवाहमें आगे
बढ़े हुए वृत्तोंके समूह पर चढ़कर जलमें कूदते थे, कभी अनुपम चेष्टाएँ करते थे और कभी नाना
प्रकारकी जलक्रीड़ा सम्बन्धी उत्तमोत्तम विधियोंका प्रयोग करते थे ॥७७॥ जो फेनके बल्य
अर्थात् समूह अथवा फेनरूपी चूड़ियोंसे सहित थी, जो प्रकट उठती हुई तरङ्गरूपी मालाओंसे
युक्त थी, जो मसले हुए सफेद नीले और लाल कमलपत्रोंसे व्याप्त थी, जिसमें मधुर शब्द उत्पन्न
हो रहा था और जो एकान्त समागमसे सेवित थी ऐसी वह नदीरूपी स्त्री ऐसी जान पड़ती थी
मानो रघुकुलके चन्द्र—रामचन्द्रके साथ स्पर्श ही कर रही हो ॥७८॥ रामचन्द्रजी पानीमें गोता-
मार बहुत दूर लम्बे जाकर कमल वनमें छिप गये तदनन्तर पता चलने पर शीघ्र ही सीता उनके
पास जाकर क्रीड़ा करने लगी ॥७९॥ पहले जो हंसादि पक्षी अपनी स्त्रियोंके साथ जलमें क्रीड़ा
कर रहे थे और कमलोंके वनमें विचरण करनेसे उत्पन्न परागसे जिनके पङ्क सुरोभित हो रहे
थे वे अब शीघ्र ही किनारो पर आकर नाना प्रकारके मधुर शब्द करने लगे तथा नाना कार्यों
की आसक्ति छोड़कर तथा मनको विषयान्तरसे रहित कर राम-लक्ष्मण-सीताकी श्रेष्ठ जलक्रीड़ा
देखने लगे, सो ठीक ही है क्योंकि ये तिर्यङ्ग भी कोमल चित्तके धारक मनुष्योंकी मनोहर चेष्टाको

पुष्पिताग्रावृत्तम्

अतिमधुरं चरामिघातैर्मैरुजरवादिषु सुन्दरं विचित्रम् ।

अनुगतदयितो रघुप्रधानः सखिलमवाहयदन्वितं सुगीत्या ॥८२॥

परितोऽकरोद्भ्रममगमस्य जलमगसकचेतसोदाहचतुरकरणेऽनुगतक्रियस्य हलहेतैर्लक्ष्मणः ।

अतिवेगवान् पुनरपेतजवनिपुणचारतत्परो आकृष्युणनिरतधीः परमं समुद्रवचापलक्षितः ॥८३॥

मालिनीवृत्तम्

इति सुविमललीलः स्नेच्छयाम्भोविहारं प्रमदयुपनयन्तं तीरभाजां मृगाणाम् ।

रघुपतिरनुभूय आवृत्ताराजुयातो गजपतिरिव तीरं सेविषुं सम्प्रवृत्तः ॥८४॥

वंशस्थवृत्तम्

शरोरवातं च विधाय वर्तनं महाप्रशस्तेर्वनजन्मवत्सुभिः ।

स्थिता लतामण्डपवृद्धभास्करे सुरा इवामो कृतचित्रसङ्ख्यायाः ॥८५॥

सीतापतिस्ततोऽवोचदिति विश्रब्धमानसः । जटायुर्मूर्धकरया सीतयाऽलङ्कृतान्तिकः ॥८६॥

सन्त्यस्मिन् विविधा आतर्जुभाः स्वाहुफलान्विताः । सरितः स्वच्छतोयाश्च मण्डपाश्च लतात्मकाः ॥८७॥

अनेकरत्नसम्पूर्णो दण्डकोऽयं महागिरिः । प्रदेशैर्विचित्रैर्युक्तः परकीडनकोचितैः ॥८८॥

उपकण्ठेऽस्य नगरं विधुमः सुमनोहरम् । वैजिकीर्वनसम्भूता गूर्जामो महिषीस्तथा ॥८९॥

अस्मिन्नगोचरैऽन्येषामरण्येऽन्यन्तसुन्दरे । विषयावासनं कुर्मः परमा धृतिरत्र मे ॥९०॥

स्वस्मिन्निहितचेतस्के नूनं शोकवशोऽकृते । स्वहितैः स्वजनैः सर्वैः परिवर्गसमन्वितैः ॥९१॥

समभूते हैं—जानते हैं ॥८०-८१॥ तदनन्तर रामने सीताके साथ-साथ उत्तम गीत गाते हुए हथेलियोंके आघातसे जलका बाजा बजाया । उस जलवाद्यका शब्द मृदङ्गके शब्दसे भी अधिक मधुर सुन्दर और विचित्र था ॥८२॥ उस समय रामका चित्त जलक्रीडामें आसक्त था तथा वे स्वयं नाना प्रकारकी उत्तम चतुर चेष्टाओंके करनेमें तत्पर थे । भाईके स्नेहसे भरे एवं समुद्रघोष धनुषसे सहित लक्ष्मण उनके चारो ओर चक्कर लगा रहे थे । यद्यपि लक्ष्मण अत्यन्त वेगसे युक्त थे तो भी उस समय वेगको दूरकर सुन्दर चालके चलनेमें तत्पर थे ॥८३॥ इस प्रकार उज्ज्वल छीछाको धारण करनेवाले राम भाई और स्त्रीके साथ, तटपर स्थित मृगोंको हर्ष उपजानेवाली जलक्रीडा इच्छानुसार कर गजराजके समान किनारे पर आनेके लिए उद्यत हुए ॥८४॥ स्नानके बाद वनमें उत्पन्न हुई अतिशय श्रेष्ठ वस्तुओंके द्वारा शरीरशुद्धि अर्थात् भोजन कर वे अनेक प्रकारकी कथाएँ करते हुए जहाँ लताओंके मण्डपसे सूर्यका संचार रुक गया था ऐसे दण्डक वनमें देवोंके समान आनन्दसे बैठ गये ॥८५॥ तदनन्तर जटायुके मुस्तक पर हाथ रखे हुई सीता जिनके पास बैठी थी ऐसे राम निश्चिन्त चित्त हो इस प्रकार बोले ॥८६॥ कि हे भाई ! यहाँ स्वादिष्ट फलोंसे युक्त नाना प्रकारके वृक्ष हैं, स्वच्छ जलसे भरी नदियाँ हैं और लताओंसे निर्मित नाना मण्डप हैं ॥८७॥ यह दण्डक नामका महापर्वत अनेक रत्नोंसे परिपूर्ण तथा उत्तम क्रीडाके योग्य नाना प्रदेशोंसे युक्त है ॥८८॥ हम लोग इस पर्वतके समीप अत्यन्त मनोहर नगर बनाये और वनमें उत्पन्न हुई पोषण करनेवाली अनेक भैंसे रख लें ॥८९॥ जहाँ दूसरोका आना कठिन है ऐसे इस अत्यन्त सुन्दर वनमें हम लोग देश वसायें क्योंकि यहाँ मुझे बड़ा संतोष हो रहा है ॥९०॥ जिनका चित्त हम लोगोंमें लग रहा है और जो निरन्तर शोकके वशीभूत रहती हैं ऐसी अपनी माताओंको, अपना हित करनेवाले समस्त परिकर एवं परिवारके

ब्रजानय जनन्यौ नौ त्वरितं न न नाथवा । तिष्ठ सुन्दर नैवं मे मानसं शुद्धिमश्नुते ॥६२॥
स्वयमेव गमिष्यामि शरत्समयसङ्गमे । प्रतिजाग्रद्भवान् सीतामिह स्थान्यति यत्नवान् ॥६३॥
ततो लक्ष्मीधरे नम्रे प्रस्थितेऽवस्थिते तथा । प्रेमाद्विकृतचेतस्कः पुनः पशो जगाविति ॥६४॥
समयेऽस्मिन्नतिक्रान्ते दीप्तभास्करदारुणे । प्राप्नोऽत्यन्तमर्थं भीमः कालः सम्प्रति जालवः ॥६५॥
ध्रुवधाकूपारनिर्घोषाक्षलाङ्गननगोपमाः । दिशोज्ज्वलकारयन्त्येते विद्युद्गन्तो बलाहकाः ॥६६॥
निरन्तरं तिरोधाय गगनं घनविग्रहाः । मुञ्चन्ति कं यथा देवा रत्नराशिं जिनोद्भवे ॥६७॥

उपजातिवृत्तम्

विधाय तुङ्गानक्षलान् महान्तो धारामिच्छुर्ध्वनयः पयोदाः ।
नभोज्ज्वलेऽसी निवृत्तं चरन्तः ऋणप्रभासङ्गमिनो विमान्ति ॥६८॥

वंशस्थवृत्तम्

पयोमुचः केचिदसीं विपाण्डुराः समारिता वेगवता नभस्वतां ।
अमन्ति निष्पातमसंयतात्मनां मनोविशेषा इव यौवनश्रिताः ॥६९॥
अयं सस्पृष्टुवं सुखा मेवो धूयति वर्पति । अनिश्चितविशेषः सन् कुपात्रे द्रविणी यथा ॥१००॥

मालिनीवृत्तम्

अतिजवमिह काले सिन्धवः सम्प्रवृत्ता विपमतमविहारोदारपङ्का धरित्री ।
अलपरिमलशीतो वाति चण्डश्च वायुर्न तव गमनयुक्तं तेन मन्ये सुभाव ॥१०१॥

साथ, जाओ शीघ्र ही ले आओ अथवा नहीं-नहीं ठहरो, यह ठीक नहीं है इसमे मेरा मन
शुद्धताको प्राप्त नहीं हो रहा है ॥६१-६२॥ शरद् ऋतु आने पर मैं स्वयं जाऊँगा, तुम सीताके
प्रति सावधान रहकर यत्न सहित यहीं ठहरना ॥६३॥ तदनन्तर रामकी पहली बात सुनकर
लक्ष्मण बड़ी नम्रतासे जाने लगे थे पर दूसरी बात सुनकर रुक गये । उसी समय जिनका चित्त
प्रेमसे आर्द्र हो रहा था ऐसे रामने पुनः कहा कि देदीप्यमान सूर्यसे दारुण यह ओष्म काल तो
व्यतीत हुआ अब यह अत्यन्त भयंकर वर्षा काल उपस्थित हुआ है ॥६४-६५॥ जो जोभीको
प्राप्त हुए समुद्रके समान गर्जना कर रहे हैं तथा जो चलते-फिरते अङ्गनगिरिके समान जान
पड़ते हैं ऐसे विजलीसे युक्त ये मेघ दिशाओंको अन्धकारसे युक्त कर रहे हैं ॥६६॥ जिस प्रकार
जिनेन्द्र भगवान्के जन्मके समय देव रत्नराशिकी वर्षा करते हैं उसी प्रकार मेवोंका शरीर धारण
करनेवाले देव निरन्तर रूपसे आकाशको आच्छादित कर जल छोड़ रहे हैं—पानी बरसा रहे
हैं ॥६७॥ जो स्वयं महान् हैं, अत्यधिक गर्जना करनेवाले हैं, जो अपनी मोटी धाराओंसे पर्वतोंको
और भी अधिक उन्नत कर रहे हैं, जो आकाशाङ्गणमे निरन्तर विचरण कर रहे हैं तथा जिनमें
विजली चमक रही है ऐसे ये मेघ अत्यधिक सुशोभित हो रहे हैं ॥६८॥ जेगशाली वायुके द्वारा
प्रेरित ये कितने ही सफेद मेघ अस्वयमी मनुष्योंके तरुण हृदयोंके समान इधर-उधर घूम रहे हैं
॥६९॥ जिस प्रकार विशेषताका निश्चय नहीं करनेवाला घनाढ्य मनुष्य कुपात्रके लिए धन देता
है उसी प्रकार यह मेघ धान्यकी भूमि छोड़कर पर्वत पर पानी बरसा रहा है ॥१००॥ इस
समय बड़े वेगसे नदियों बहने लगी हैं, अत्यधिक कीचड़से युक्त हो जानेके कारण पृथिवी पर
विहार करना दुर्भर हो गया है और जलके सम्बन्धसे शीतल तीक्ष्ण वायु चलने लगी है इसलिए

इति निगदति पद्मे केकयीसूतुरुचे
 प्रवदसि यदर्थाशस्त्वं तथाहं करोमि ।
 विविधरसकथाभिः सुन्दरे स्वाश्रये ते
 रविपरिचयमुक्तं कालमस्थुः सुखेन ॥१०२॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दण्डकारण्यनिवासामिधानं
 नाम द्विचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४९॥



हे भद्र ! तुम्हारा जाना ठीक नहीं है ॥१०१॥ इस प्रकार रामके कहने पर लक्ष्मण बोले कि आप स्वामी हो जैसा कहते हो वैसा ही मैं करता हूँ । इस तरह अपने सुन्दर निवास स्थलमें वे नाना प्रकारकी स्नेहपूर्ण कथाएँ करते हुए सूर्यके परिचयसे रहित वर्षा काल तक सुखसे रहे ॥१०२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य द्वारा कथित, पद्मचरितमें दण्डक वनमें निवासका वर्णन करनेवाला वयासीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४९॥

त्रिचत्वारिंशत्तमं पत्र

ततः शरद्वृत्तिं विना शराङ्ककरपत्रिभिः । वनौघं विशदं चक्रे^१ राज्यमाक्रान्तविष्टपः ॥१॥
 विकसत्पुष्पसङ्घातान् पादपान् स्निग्धचेतसः । अलङ्कारोत्तमांस्तस्य जगद्गुहः ककुब्जनाः ॥२॥
 जाम्बूतमलनिर्मुक्तं भिन्नान्जनसमद्युति । अम्बुनेव चिरं धौतं रराज गगनाङ्गणम् ॥३॥
 प्रावृट्कालगजो मेघकलशैर्धरिणाभियम् । अभिपिच्य गतः कापि विद्युत्कणाविराजितः ॥४॥
 चिराद् कमलिनीगोहं प्राप्य^२ पञ्चभृतां गणा । उद्धूतमधुरालापाः कामप्यापुः सुखासिकाम् ॥५॥
 सिन्धवः स्वच्छकीला^३ उन्मज्जत्पुलिनाः पराम् । कान्तिमीयुः समासाद्य शरत्समयकामुकम् ॥६॥
 वर्षावातविमुकानि चिराध्वाप्य सुखासिकाम् । काननानि व्यराजन्त सङ्गतानीव निद्रया ॥७॥
 सरांसि पङ्कजाभ्यानि सभं^४ रोधस्समुत्थितैः । पादपैः पञ्चिनादेन समालापमिवाभजन् ॥८॥
 नानापुष्पकृतामोदा रजनीविमलाम्बरा । मृगाङ्कलिकं भेजे सुकालेशमिवोपती ॥९॥
 वेतकीसुतिरजला पाण्डुरीकृतविग्रहः । वनौ समीरणो मन्दं मद्यन् कामिनीजनम् ॥१०॥
 इति प्रसन्नतां प्राप्ते काले सोत्साहविष्टपे । मृगेन्द्रगतिरालिष्टविक्रमैकमहारसः ॥११॥
 लब्धानुगमनं ज्येष्ठादाशानिहितवीक्षणः । कदाचिन्ममणो भ्राम्यन्नेवकस्तद्वनान्तिकम् ॥१२॥
 अजिन्नदामरं गन्धं विनीतपवननादृतम् । अचिन्त्ययच्च कस्यैष भवेद्गन्धो मनोहरः ॥१३॥

अथानन्तर उज्ज्वल शरद् ऋतु, चन्द्रमाकी किरण रूपी वाणिके द्वारा मेघसमूहको जीत कर समस्त विश्वमे व्याप्त होती हुई राज्य करने लगी ॥१॥ जिनका चित्त स्नेहसे भर रहा था ऐसी दिशा रूपी स्त्रियोने उस शरद् ऋतुके स्वागतके लिए ही मानो खिले हुए पुष्पसमूहसे सुशोभित वृक्ष रूपी उत्तमोत्तम अलंकार धारण किये थे ॥२॥ मेघरूपी मलसे रहित आकाश रूपी आंगन, मर्दित अज्जनके समान श्यामवर्ण हो ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बहुत देर तक पानीसे धुल जानेके कारण ही स्वच्छ हो गया है ॥३॥ वर्षा काल रूपी हाथी, मेघरूपी कलशके द्वारा पृथिवी रूपी लक्ष्मीका अभिप्रेक कर विजली रूपी कक्षाओमे सुशोभित होता हुआ जान पड़ता है कहीं चला गया था ॥४॥ भ्रमरोके समूह बहुत समय बाद कमलिनीके घर जा कर मधुरालाप करते हुए सुखसे बैठे थे ॥५॥ जिनके पुलिन धीरे-धीरे उन्मग्न हो रहे हैं ऐसी स्वच्छजलसे भरी नदियों शरत्कालरूपी वल्लभको पा कर परम कान्तिको प्राप्त हो रही थीं ॥६॥ वर्षा कालकी तीक्ष्ण वायुसे रहित वन चिरकाल बाद सुखसे बैठकर ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो निद्रासे संगत ही थे—तीव्र ही ले रहे थे ॥७॥ कमलोसे युक्त सरोवर तटो पर उत्पन्न हुए वृक्षोंके साथ पक्षियोंके शब्दके बहाने मानो वार्तालाप ही कर रहे थे ॥८॥ जिसने नाना प्रकारके फूलोंकी सुगन्धि धारण की थी तथा जो आकाश रूपी स्वच्छ वस्त्रसे सुशोभित थी ऐसी रात्रि रूपी स्त्री उत्तमकाल रूपी पतिको पाकर मानो चन्द्रमा रूपी तिलकको धारण कर रही थी ॥९॥ केतकीके फूलोंसे उत्पन्न परागके द्वारा जिसका शरीर शुक्लवर्ण हो रहा था ऐसी वायु कामिनीजनको उन्मत्त करती हुई धीरे-धीरे चह रही थी ॥१०॥ इस प्रकार जिसमे समस्त संसार उत्साहसे युक्त था ऐसे उस शरत्कालके प्रसन्नताको प्राप्त होने पर सिंहके समान निर्भय विचरने वाले महापराक्रमी लक्ष्मण बड़े भाई रामसे आज्ञा प्राप्त कर दिशाओंकी ओर दृष्टि डालते हुए किसी समय अकेले ही उस दण्डक वनके समीप घूम रहे थे ॥११-१२॥ उसी समय उन्होंने विनयी पवनके द्वारा लाई हुई दिव्य सुगन्धि सूँधी । उसे सूँघते ही वे विचार करने लगे

१ विशदं चक्रे म० । २. अमरपण्यम् । ३. निर्मलजलयुक्तः । ४. रोधसमुत्थितैः । ५. लब्धानुगमनं म० ।

पादपानां किमेतेषां स्फुटकुसुमधारिणां । आहोस्विन्मम देहस्य कुसुमोत्करशायिनः ॥१४॥
 वैदेद्या सङ्गतो रामः किमुतोपरि तिष्ठति । किंवा कश्चित्समायातो भवेदत्र त्रिविधपी^१ ॥१५॥
 ततो मगधराजेन्द्रः पप्रच्छ श्रमणोत्तमम् । भगवन् कस्य गन्धोऽसौ चक्रे विस्मयनं हरेः ॥१६॥
 ततो गणधरोऽब्रुवज्ज्ञातलोकविचेष्टितः । सन्देहतिमिरादित्यः पापधूलीसमीरणः ॥१७॥
 द्वितीयस्य जितेन्द्रस्य धुनिवाससमागमे । विद्याधराय^२ विज्ञाय याताय शरणं विभुम् ॥१८॥
 राक्षसानामधीशेन महाभीमेन धीमता । अम्भोदवाहनायासीत्कृपयेत्युदितो वरः ॥१९॥
 विपुले राक्षसद्वीपे त्रिकूटं नाम पर्वतम् । मेघवाहनविश्रन्धो गच्छ दक्षिणसागरे ॥२०॥
 जम्बूद्वीपस्य जगतीमिमामाश्रित्य दक्षिणम् । लङ्कैति नगरी तत्र रक्षोभिर्विनिवेशिता ॥२१॥
 रहस्यमिदमेकं च विद्याधर परं शृणु । जम्बुभरतवर्षस्य दक्षिणांशं समाश्रयत् ॥२२॥
 आश्रयित्वोत्तरं तीरं लवणस्य महोदके । वसुन्धरोदरस्थानस्वभावापितमाम्यतम् ॥२३॥
 योजनस्याष्टम भागं दण्डकाद्री गुहाश्रयम् । अधोगत्वा महाद्वारं प्रविश्य मणितोरणम् ॥२४॥
 अलङ्कारोदयं नाम स्थितं पुरमनुत्तमम् । स्थानीयशतधर्मस्य दिव्यदेशं निरीक्ष्यते ॥२५॥
 नानाप्रकाररत्नांशुस्तनानपरिराजितम् । विस्मयोत्पादने शक्तमपि त्रिविदसग्नयम् ॥२६॥
 अमृतवर्षं गगनगैर्दुर्गं^३ विद्याविजितैः । सर्वकामगुणोपेतं त्रिचित्रालयसङ्कुलम् ॥२७॥
 परचक्रसमाक्रान्तो यथापस्तु कदाचन । भवेद्दुर्गं समासृत्य तिष्ठेत्सर्वं निर्भयस्ततः ॥२८॥
 इत्युक्त्स्तेन यातोऽसौ यो विद्याधरबालकः । लङ्कापुरीमभूत्समात् सन्तानोऽनेकपुत्रवः ॥२९॥

कि यह मनोहर गन्ध किसकी होनी चाहिए ? ॥१३॥ क्या यह गन्ध विकसित फूलोंको धारण करने वाले इन वृक्षों को है अथवा पुष्पसमूह पर शयन करने वाले मेरे शरीर की है ? ॥१४॥ अथवा ऊपर सीताके साथ श्रीराम विराजमान हैं ? या कोई देव यहाँ आया है ? ॥१५॥

तदनन्तर मगधदेशके सम्राट् राजा श्रेणिकने गौतम स्वामीसे पूछ कि हे भगवन् ! वह किसकी गन्ध थी जिसने लक्ष्मणको आश्चर्य उत्पन्न किया था ॥१६॥ तदनन्तर लोगोंकी चेष्टाओं को जानने वाले, संदेह रूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए सूर्य एवं पाप रूपी धूलिको उड़ानेके लिए वायु स्वरूप गणधर भगवान् बोले ॥१७॥ कि द्वितीय जितेन्द्र श्री अजितनाथके समवसरण मे मेघवाहन नामका विद्याधर भयभीत हो कर प्रभुकी शरणमे आया था । उस समय राक्षसोंके अधिपति बुद्धिमान् महाभीमने करुणा वश मेघवाहनके लिए इस प्रकार वर दिया था ॥१८-१९॥ कि हे मेघवाहन ! दक्षिण समुद्रमे एक विशाल राक्षस द्वीप है उसी द्वीपमे त्रिकूट नामका पर्वत है सो तू निश्रिन्त हो कर उसी त्रिकूट पर्वत पर चला जा । वहाँ जम्बूद्वीपकी जगती (वेदिका) का आश्रय कर दक्षिण दिशामें राक्षसोने एक लङ्का नामकी नगरी बसाई है । वहाँ ही तू निवास कर । हे विद्याधर ! इसके साथ ही एक रहस्य-गुप्त वार्ता और सुन । जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रकी दक्षिण दिशामे लवण समुद्रके उत्तर तटका आश्रय कर पृथिवीके भीतर एक लम्बा चौड़ा स्वाभाविक स्थान है जो योजनके आठवें भाग विस्तृत है । दण्डक पर्वतके गुफाद्वारसे नीचे जाने पर मणिमय तोरणोंसे देदीप्पमान एक महाद्वार मिलता है उसमें प्रवेश करने पर अलङ्कारोदय नामका एक उत्कृष्ट सुन्दर नगर दिखाई देता है ॥२०-२२॥ वह नगर नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणोंके समूहसे सुशोभित है तथा देवोंको भी आश्चर्य उत्पन्न करनेमे समर्थ है । आकाशमें गमन करने वाले विद्याधर उसका विचार ही नहीं कर सकते तथा विद्यासे रहित मनुष्योंके लिए वह अत्यन्त दुर्गम है । वह सब प्रकारके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले गुणोंसे सहित है तथा विविध प्रकारके भवनोंसे व्याप्त है ॥२३-२७॥ यदि कदाचित् तू आपत्तिके समय परचक्रके द्वारा आक्रान्त हो तो उस दुर्गका आश्रय कर निर्भय निवास करना ॥२८॥ इस प्रकार

यथावस्थितभावानां श्रद्धान् परमं सुखम् । मिथ्याविकल्पितार्थानां ग्रहणं दुःखमुत्तमम् ॥३०॥
विद्याभूतां सुराणां च ज्ञेयो भेदो विचक्षणैः । तिलपर्वतयोस्तुल्यः शक्तिकान्त्यादिभिर्गुणैः ॥३१॥
पञ्चन्दनयोर्यद्वदथवोपरत्नयोः । तद्वत् खेचरलोकस्य देवलोकस्य चान्तरम् ॥३२॥
गर्भवासपरिक्लेशमनुभूय विधेर्वशात् । ततः समुपजायन्ते विद्यामात्रोपजीविनः ॥३३॥
क्षेत्रवशसमुद्भूताः खे चरन्तीति खेचराः । अमराणां स्वभावस्तु मनोहोऽयं विबुध्यताम् ॥३४॥
सुरूपचिसर्वाङ्गा गर्भवासविवर्जिता । मांसास्थिवलेद्वरहिता देवा अनिमिषेक्षणाः ॥३५॥
जरारोगविहीनाश्च सतत यौवचान्विताः । उदारतेजसा युक्ताः सुखसौभाग्यसागराः ॥३६॥
स्वभावविद्यासम्पन्ना अवधिज्ञानलोचनाः । कामरूपवरा धीराः स्वच्छन्दगतिधारिणः ॥३७॥
अमी लङ्काश्रिता राजन् न देवा न च राक्षसाः । रक्षन्ति रक्षसां क्षेत्रमाहूतास्तेन राक्षसाः ॥३८॥
तद्दंशानुकुलो ज्ञेयो युगानामन्तरैः सह । पारम्पर्याद् व्यतिक्रान्तः कालो नैकान्वोपमः ॥३९॥
रक्षःप्रभृतिषु श्लाय्येष्वर्त्ततेषु बहुष्वपि । खण्डत्रयाधिपस्तस्य रावणोऽभवदन्वये ॥४०॥
भगिनी दुर्नखा तस्य रूपेणाप्रतिमा भुवि । प्रासस्तथा महावीर्यो रमणः खरदूषणः ॥४१॥
चतुर्दशहज्जानि नृणां तस्य महात्मनाम् । प्रतीतो दूषणाख्यश्च सेनाधिपतिरुज्जितः ॥४२॥
दिक्कुमार इवोदारे धरणीजडरे स्थितम् । अलङ्कारपुर तस्य स्थानमासीन्महौजसः ॥४३॥
शम्भूको नाम सुन्दश्च सुतो तस्य बभूवुनः । बभूवुश्च दशग्रीवाद् भुवि गौरवमाप सः ॥४४॥

महाभीम राक्षसेन्द्रके कहने पर जो विद्याधर बालक, लंकापुरी गया था उसीसे अनेक उत्तमोत्तम सन्तति उत्पन्न हुई ॥२६॥ जो पदार्थ जिस प्रकार अवस्थित है उनका उसी प्रकार श्रद्धान करना सो परम सुख है और मिथ्याकल्पित पदार्थोंका ग्रहण करना सो अत्यधिक दुःख है ॥३०॥ विद्याधरो और देवोंके बीच बुद्धिमान् मनुष्योंको शक्ति, कान्ति आदि गुणोंके कारण तिल तथा पर्वतके समान भारी भेद समझना चाहिए ॥३१॥ जिस प्रकार कीचड़ और चन्दन तथा पाषाण और रत्नमें भेद है उसी प्रकार विद्याधर और देवोंमें भेद है ॥३२॥ विद्याधर तो गर्भवासका दुःख भोगकर बादमें कर्मोदयकी अनुकूलतासे विद्यामात्रके धारक होते हैं । ये विद्याधरोंके क्षेत्र-विजयार्थ पर्वत पर तथा उनके योग्य कुलोमें उत्पन्न होते हैं तथा आकाशमें चलते हैं इसलिए खेचर कहलाते हैं । परन्तु देवोंका स्वभाव ही मनोहर है ॥३३-३४॥ देव, सुन्दर रूप तथा पवित्र शरीरके धारक हैं, गर्भवाससे रहित हैं, मांस हड्डी तथा स्वेद आदिसे दूर हैं और टिमकार रहित नेत्रोंके धारक हैं ॥३५॥ वे वृद्धावस्था तथा रोगोंसे रहित हैं, सदा यौवनसे सहित रहते हैं, उत्कृष्ट तेजसे युक्त, सुख और सौभाग्यके सागर, स्वाभाविक विद्याओंसे सम्पन्न, अवधिज्ञान-रूपी नेत्रोंके धारक, इच्छानुसार रूप रखनेवाले, धीर, वीर और स्वच्छन्द गतिसे विचरण करनेवाले हैं ॥३६-३७॥ हे राजन् ! लंकामें रहनेवाले विद्याधर न देव हैं और न राक्षस हैं किन्तु राक्षस द्वीपकी रक्षा करते हैं इसलिए राक्षस कहलाते हैं ॥३८॥ अनेक युगान्तरोंके साथ उनके वंशका अनुक्रम चला आता है और उसी अनुक्रम-परम्पराके अनुसार अनेक सागर प्रमाण काल व्यतीत हो चुका है ॥३९॥ राक्षस आदि बहुतसे प्रशंसनीय उत्तमोत्तम विद्याधर राजाओंके व्यतीत हो चुकने पर उसी वंशमें तीन खण्डका स्वामी रावण उत्पन्न हुआ है ॥४०॥ उसकी एक दुर्नखा नामकी बहिन है जो पृथ्वी पर अपने सौन्दर्यकी उपमा नहीं रखती । उसने महाशक्तिशाली खरदूषण नामक पति प्राप्त किया है ॥४१॥ अतिशय बलवान् खरदूषण चौदह हजार प्रमाण मनुष्योंका विश्वासप्राप्त सेनापति है ॥४२॥ वह दिक्कुमार-भवनवासी देवके समान उदार है । पृथ्वीके मध्यमें स्थित अलङ्कारपुर नामका नगर उस महाप्रतापीका निवास स्थान है ॥४३॥ उसके शम्भूक और सुन्द नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । साथ ही वह अपने सम्बन्धी रावणसे भी

गुरुभिर्वार्यमाणोऽपि मृत्युपाशावलोकितः । शम्बूकः सूर्यहासार्थं प्राविशद्भीषणं वनम् ॥४५॥
 यथोक्तमाचरन् राज्ञाराराधयितुमुद्यतः । एकाग्रभुविशुद्धात्मा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥४६॥
 असमाप्तोपयोगस्य यो मे दृष्टिपथे स्थितः । बन्धोऽसाविति भाषित्वा वंशस्थलमुपाविशत् ॥४७॥
 दण्डकारण्यभ्रान्तं तां च क्रौञ्चरवा नदीम् । सागरस्योत्तरं तीरं संस्रत्वासाववस्थितः ॥४८॥
 नीत्वा द्वादशवर्षाणि ततोऽसावसिरुद्गतः । ग्राह्यः ससद्दिनं स्थित्वा हन्यासाधकमन्यथा ॥४९॥
 कैकसेयां सुतस्नेहादृष्टुमागात् क्षणे क्षणे । अपर्ययासिसमुद्भूतं काले देवैरधिष्ठितम् ॥५०॥
 प्रसन्नवदना भर्तुर्निजगाढ यथाविधि । शम्बूकस्य महाराज सिद्धं तद्योगकारणम् ॥५१॥
 आगमिष्यति मे पुत्रो मेरुं कृत्वा प्रदक्षिणम् । अहोमिस्त्रिभिरद्यापि नियमो न समाप्यते ॥५२॥
 एव मनोरथ सिद्ध इधौ चन्द्रनखा सदा । लक्ष्मणश्च तमुद्देशं सम्प्राप्तः पर्यटन् वने ॥५३॥
 सहजाभरपुत्रस्य सद्गन्धर्वस्य स्वभावतः । अनन्तस्यादिहीनस्य खड्गरत्नस्य तस्य सः ॥५४॥
 दिव्यगन्धानुलिप्तस्य दिव्यस्त्रग्भूषितस्य च । गन्धो भास्करहासस्य लक्ष्मीघरमुपेयिवान् ॥५५॥
 लक्ष्मणो विसर्ग्य प्राप्तः परित्यज्य क्रियान्तरम् । जयासीद् गन्धर्वमार्गेण केसरीव भयोद्विग्नतः ॥५६॥
 अपश्यच्च तरुच्छ्रृङ्गं प्रदेशमतिदुर्गमम् । लताजालावलीरुद्धं तुङ्गपापाणवेष्टितम् ॥५७॥
 मध्ये च गहनस्यास्य सुसमं धरणीतलम् । विचित्ररत्ननिर्माणमर्चितं कनकाम्रजैः ॥५८॥
 मध्ये तस्यापि विपुल वंशस्तम्ब समुत्थितम् । सौधममिव संप्रपुटमविशतकुरुहलम् ॥५९॥

पृथ्वी पर गौरवको प्राप्त हुआ था ॥४४॥ जिसे सत्युका फन्दा देख रहा था ऐसे शम्बूकने गुरु-
 जनोके द्वारा रोके जाने पर भी सूर्यहास नामा खड्ग प्राप्त करनेके लिए भयङ्कर वनमें प्रवेश किया
 ॥४५॥ हे राजन् ! वह यथोक्त आचरण करता हुआ सूर्यहास खड्गको प्राप्त करनेके लिए उद्यत
 हुआ । वह एक अन्न खाता है, निर्मल आत्माका धारक है, ब्रह्मचारी है और इन्द्रियोको जीतने
 वाला है, ॥४६॥ 'उपयोग' पूर्ण हुए बिना जो मेरी दृष्टिके सामने आवेगा वह मेरे द्वारा बन्ध
 होगा' इस प्रकार कहकर वह वंशस्थल पर्वत पर वंशकी एक झाड़ीमें जा बैठा ॥४७॥ वह दण्डक
 वनके अन्तमें क्रौञ्चरवा नदी और समुद्रके उत्तर तटके बीच जो स्थान है वहाँ अवस्थित है
 ॥४८॥ तदनन्तर चारह वर्ष व्यतीत होने पर वह सूर्यहास नामा खड्ग प्रकट हुआ जो सात दिन
 ठहर कर ग्रहण करने योग्य होता है अन्यथा सिद्ध करनेवालेको ही मार डालता है ॥४९॥
 दुर्नखा (चन्द्रनखा) पुत्रके स्नेहसे उसे बार-बार देखनेके लिए उस स्थान पर आती रहती थी
 सो उसने उसी क्षण उत्पन्न हुए उस देवाधिष्ठित सूर्यहास खड्गको देखा, ॥५०॥ जिसका मुख
 प्रसन्नतासे भर रहा था ऐसी दुर्नखाने अपने पति खरदूषणसे कहा कि हे महाराज ! मेरा पुत्र
 मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा देकर तीन दिनमें आ जावेगा क्योंकि उसका नियम आज भी समाप्त नहीं
 हुआ है ॥५१-५२॥ इस प्रकार इधर शम्बूककी माता चन्द्रनखा, सिद्ध हुए मनोरथका सदा ध्यान
 कर रही थी उधर लक्ष्मण वनमें घूमते हुए उस स्थान पर जा पहुँचे ॥५३॥ एक हजार देव जिसकी
 पूजा करते थे, जिसकी स्वाभाविक उत्तम गन्ध थी, जिसका न आदि था न अन्त था, जो दिव्य-
 गन्धसे लिप्त था और दिव्यमालाओंसे जो अलंकृत था ऐसे उस सूर्यहास नामक खड्गरत्नकी
 गन्ध लक्ष्मण तक पहुँची ॥५४-५५॥ आश्चर्यको प्राप्त हुए लक्ष्मण अन्य कार्य छोड़कर जिस मार्गसे
 गन्ध आ रही थी उसी मार्गसे सिंहके समान निर्भय हो चल पड़े ॥५६॥ वहाँ जाकर उन्होंने
 वृक्षोंसे आच्छादित, लताओंके समूहसे घिरा तथा ऊँचे-ऊँचे पापाणोंसे वेष्टित एक अत्यन्त
 दुर्गम स्थान देखा ॥५७॥ इसी वनके बीचमें एक समान पृथ्वीतल था जो चित्र-विचित्र रत्नोंसे
 बसा था तथा सुवर्णमय कमलोंसे अर्चित था ॥५८॥ उसी समान धरातलके मध्यमें एक बोंसोंका

अयान्ते तस्य निखंशं विस्फुरत्करमण्डलम् । सकीचकवनं येन प्रदीप्तमिव लक्ष्यते ॥६०॥
 नष्टशङ्कस्तमादाय लक्ष्मीमाञ्जातविस्मयः । जिज्ञासंस्तीक्ष्णतामस्य तं वेणुस्तम्बमच्छिनत् ॥६१॥
 शुभोत्सायकं दृष्ट्वा तं सर्वास्तत्र देवताः । अस्माकं स्वाम्यसीत्युक्त्वा सनमस्यमपूजयन् ॥६२॥
 अथाबोचत सीतेश किञ्चिदन्नाकुलेक्षणं । सौमित्रिश्चिरयत्यद्य कं नु यातो भविष्यति ॥६३॥
 भद्रोत्तिष्ठ जटायुः खं दूरमत्यत्य सद्रुतम् । लक्ष्मीधरकुमारस्य निपुणान्वेषणं कुरु ॥६४॥
 हृत्युक्तः करुणं यावत् करोत्युत्पतितुं खगः । अङ्गुली तावदायस्य जनकस्याङ्गजावद्वत् ॥६५॥
 अयं कुङ्कुमपङ्केन लिप्ताङ्गो नाथ लक्ष्मणः । चित्रमाख्याम्बरधरः समायाति स्वलङ्कृतः ॥६६॥
 शुदीतश्रायमेतेन मण्डलाग्रो महाप्रभः । राजतेज्यन्तमेतेन शैलः केसरिणा यथा ॥६७॥
 दृष्ट्वा तर्मादृशं रामो विस्मयग्याप्तमानसः । असहः प्रमदं रोद्धुमुत्थाय परिपम्बजे ॥६८॥
 दृष्ट्वा लक्ष्मणः कृत्स्नं स्वेवृत्तान्तमवेदयत् । स्थिताश्च ते विचित्राभिः सङ्ख्याभिर्यथासुखम् ॥६९॥
 दृष्ट्वा प्रतिदिनं खङ्गं सुतं च नियमस्थितम् । यायासीत् सा दिने तस्मिन् कैकसेय्यागतैकका ॥७०॥
 अपरयच्च विसाराणां वनं कूचमशेषतः । अचिन्तयच्च यातः क पुत्रः स्थिन्वाटवीमिमाम् ॥७१॥
 स्थितश्च यत्र संसिद्धमसिरत्नमिदं वनम् । छिन्दानेन परीक्षार्थं न युक्तं सुनुना कृतम् ॥७२॥
 तावन्नास्तस्थितादित्यमण्डलप्रतिमं शिरः । सत्कुण्डल कवन्धं च ददर्श स्याणुमध्यगम् ॥७३॥

विस्तृत स्तम्भ (भिन्ना) था जो किसी अज्ञात कुतूहलके कारण सौधर्मस्वर्गको देखनेके लिए ही मानो ऊँचा उठा हुआ था ॥५६॥

अथानन्तर उस बौत्तोके स्तम्भमे देदीप्यमान किरणोंके समूहसे सुशोभित एक खड्ग दिखाई दिया जिससे बौत्तोके साथ-साथ समस्त वन प्रज्वलित-सा जान पड़ता था ॥६०॥ आश्चर्यचकित लक्ष्मणने निःशङ्क हो वह खड्ग ले लिया और उसकी तीक्ष्णताकी परख करनेके लिए उसी वंश-स्तम्भको उन्होंने काट डाला ॥६१॥ खड्गधारी लक्ष्मणको देखकर वहाँ सब देवताओंने 'आप हमारे स्वामी हो' यह कहकर नमस्कारके साथ-साथ उनको पूजा की ॥६२॥

अथानन्तर जिनके नेत्र कुञ्ज-कुञ्ज औसुओसे भर रहे थे ऐसे रामने यह कहा कि आज लक्ष्मण बड़ी देर कर रहा है कहाँ गया होगा ? ॥६३॥ हे भद्र जटायु ! उठो और शीघ्र ही आकाशमे दूर तक उड़कर लक्ष्मणकुमारकी अच्छी तरह खोज करो ॥६४॥ इस प्रकार रामके करुणापूर्वक कहने पर जटायु उड़नेकी तैयारी करता है कि ईतनेमें सीता अङ्गुली ऊपर उठाकर कहती है ॥६५॥ कि जिनका शरीर केशरकी पङ्कसे लिप है, जो नाना प्रकारकी मालाओं और वस्त्रोंको धारण कर रहे हैं तथा जो अलंकारोंसे अलङ्कृत हैं ऐसे लक्ष्मण यह आ रहे हैं ॥६६॥ इन्होंने यह महादेदीप्यमान खड्ग ले रक्खा है और इससे ये सिंहसे पर्वतके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं ॥६७॥ लक्ष्मणको बैसा देख रामका मन आश्चर्यसे व्याप्त हो गया तथा वे हर्षको रोकनेके लिए असमर्थ हो गये जिससे उन्होंने उठकर उनका आलिङ्गन किया ॥६८॥ पूछने पर लक्ष्मणने अपना सब वृत्तान्त वतलाया । इस तरह राम लक्ष्मण और सीता—तीनों प्राणी नाना प्रकारकी कथाएँ करते हुए सुखसे वहाँ ठहरे ॥६९॥

अथानन्तर जो चन्द्रनक्शा प्रति दिन खड्गको तथा नियममे स्थित पुत्रको देख जाती थी उस दिन वह अकेली ही वहाँ आई ॥७०॥ आते ही उसने बौत्तोके उस समस्त वनको सब ओरसे कटा देखा । वह विचार करने लगी कि पुत्र इस अटवीमें रहकर अब कहाँ चला गया ? ॥७१॥ जिस वनमें यह रहा तथा जहाँ यह खड्ग रत्न सिद्ध हुआ परीक्षाके लिए उसी वनको काटते हुए पुत्रने अच्छा नहीं किया ॥७२॥ इतनेमें ही उसने अस्ताचल पर स्थित सूर्यमण्डलके समान

१. करणं म० । २. तावत् अङ्गुली आयस्य उत्थानत्वेदेन युक्तां कृत्वा । ३. वशानाम् । ४. लिप्तम् ।

उपकारः कृतस्तस्याः परमो मूर्च्छया चणम् । पुत्रमृत्युसमुत्थेन यत्न दुःखेन पीडिता^१ ॥७३॥
 ततः संज्ञां समासाद्य हाकारमुखरं मुखम् । उत्तिष्ठ कृच्छ्रो दष्टिं तत्र मूर्धन्यापातयत् ॥७४॥
 विलाप च शोकात्तां गलदस्त्राकुलेक्षणा । कुररीवैकिंकारण्ये हृदयाघातकारिणी ॥७५॥
 स्थितो द्वादशवर्षाणि दिनानां च चतुष्टयम् । पुत्रो मे हा पर चान्त न विधे दिवसत्रयम् ॥७६॥
 कृतान्तापकृत किं ते मया परमनिष्ठुर । येन दृष्टनिधिः पुत्रः सहसा विनिपातितः ॥७७॥
 अपुण्यया मया नूनसन्यजन्मनि बालकः । कस्या अपहृतो मृत्युं तत्पत्यागतमद्य ते ॥७८॥
 मयापि पुत्र जातोऽसि कथमेतां स्थितिं गतः । ईदृशोऽपि प्रयच्छैकां वचमार्तिं विनाशिनीम् ॥७९॥
 एहि वत्स निजं रूपं प्रतिपद्य मनोहरम् । अमङ्गलमिदं मायाक्रीडनं न विराजते ॥८०॥
 स्फुट यातोऽसि हा वत्स परलोक विधेर्वशात् । अन्यथा चिन्तितं कार्यमिदमुद्धतमन्यथा ॥८१॥
 अनुष्ठितं त्वया मातुः प्रतिकूलं न जातुचित् । अधुना कारणोन्मुखं किमिदं विनयोत्फिक्तम् ॥८२॥
 संसिद्धसूर्यहासरचेदजीविष्यस्त्वमत्र ते । अस्यास्यैव कः पुरो लोके चन्द्रहासवृत्तो यथा ॥८३॥
 भजता चन्द्रहासेन पद मम सहोदरे । सूर्यहासस्य न चान्त नूनमात्मविरोधिनाः ॥८४॥
 एककं भीषणेऽरण्ये निर्दोष नियमस्थितम् । कुशत्रोः कन्य हन्तु त्वां सूडस्य प्रवृत्तः करः ॥८५॥
 अदीर्घोपेक्षिता तेन भवन्तं निजतोदिता । क्व गमिष्यति पापोऽसौ साम्प्रतं हतचेतनः ॥८६॥
 विलापमिति कुर्वाणा कृत्वाङ्गे सुतमुत्तमम् । जुजुम्बे विद्रुमच्छायलोचना करसङ्गतम् ॥८७॥

निष्प्रभ, तथा कुण्डलोसे युक्त शिर और एक ठूठके बीच पड़ा हुआ पुत्रका धड़ देखा ॥७३॥
 उसी क्षण मूर्च्छाने उसका परम उपकार किया जिससे पुत्रकी मृत्युसे उत्पन्न दुःखसे वह पीडित नहीं हुई। सचेत होने पर हा हा कारसे मुखर शिर ऊपर घठाकर उसने बड़ी कठिनाईसे पुत्रके शिर पर दृष्टि डाली ॥७४-७५॥ भरते हुए आँसुआंसे जिसके नेत्र आकुलित थे तथा जो अपनी छाती कूट रही थी ऐसी शोकसे पीडित चन्द्रनखा, वनमें अकेली कुररीके समान विलाप करने लगी ॥७६॥ मेरा पुत्र बारह वर्ष और चार दिन तक यहाँ रहा। हाय दैव ! इसके आगे तूने तीन दिन सहन नहीं किये ॥७७॥ हे अतिशय निष्ठुर दैव ! मैंने तेरा क्या अपकार किया था जिससे पुत्रकी निधि दिखाकर सहसा नष्ट कर दिया ॥७८॥ निश्चय ही मुझपापिनीने अन्य जन्ममें किसीका पुत्र हरा होगा इसीलिए तो मेरा पुत्र मृत्युको प्राप्त हुआ है ॥७९॥ हे पुत्र ! तू मुझसे उत्पन्न हुआ था फिर ऐसी दशाको कैसे प्राप्त हो गया ? अथवा इसी अवस्थामें तू दुःखको दूर करनेवाला एक वचन तो मुझे दे—एक बार तो मुझसे बोल ॥८०॥ आओ वत्स ! अपना मनोहर रूप धरकर आओ। यह तेरी अमङ्गल रूप छलक्रीड़ा अच्छी नहीं लगती ॥८१॥ हाय वत्स ! भाग्य वश तू स्पष्ट ही परलोक चला गया है। यह कार्य अन्य प्रकारसे सोचा था और अन्य प्रकार हो गया ॥८२॥ तूने कभी भी माताके प्रतिकूल कार्य नहीं किया है अब यह अकारण विनयका त्याग क्यों कर रहा है ? ॥८३॥ सूर्यहास खड्ग सिद्ध होने पर यदि तू जीवित रहेगा तो इस संसारमें चन्द्रहाससे आवृतकी तरह ऐसा कौन पुरुष है जो तेरे सामने खड़ा हो सकेगा ? ॥८४॥ चन्द्रहास खड्ग मेरे भाईके पास है सो जान पड़ता है उसने अपने विरोधी सूर्यहास खड्गको सहन नहीं किया है ॥८५॥ तू इस भयंकर वनमें अकेला रहकर नियमका पालन करता था किसीका कुछ भी अपराध तूने नहीं किया था फिर भी किस मूर्खे दुष्ट शत्रुका हाथ तुझे मारनेके लिए आगे बढ़ा ? ॥८६॥ तुम्हें मारते हुए उस शत्रुने शीघ्र ही प्रकट होनेवाली अपनी उपेक्षा प्रकट की है। अब वह अविचारी पापी कहाँ जावेगा ? ॥८७॥ इस प्रकार उत्तम पुत्रको गोदमें रखकर विलाप करते-करते जिसके नेत्र भूँगाके समान लाल हो गये थे ऐसी चन्द्रनखाने

१. पुत्रमृत्युसमुत्थेन दुःखेन परिपीडिता म० । २. हे दैव ! । ३. दृष्टिनिधिः म० । ४. विनयोत्फिक्तम् म० ।

ततः क्षणात् परित्यज्य शोकं नष्टास्रस्तन्ततिः । गृहीत्वा परमं क्रोधमुत्थाय स्फुरितानना ॥८६॥
 सञ्चरन्ती तमुद्देशं स्वैरं मार्गानुलक्षितम् । निरैक्षत् युवानौ तौ चित्तवन्धनकारिणौ ॥८७॥
 विनाशमगमत्तस्याः क्रोधोऽसौ तादृशोऽपि सन् । आदेश इव तस्याभूत् स्थाने रागरसः परः ॥८९॥
 ततोऽचिन्तयदेताभ्यां नराभ्यामभिलाषिणम् । वृणोमि नरमित्युच्चैरुर्मिकं दधती मनः ॥९२॥
 इति सञ्चिन्त्य संसाधुकन्याकल्पं समाश्रिता । हृदयेनातुरात्यन्तं भावगह्वरवर्तिना ॥९३॥
 हंसाव पद्मिनीलण्डे महिषाव महादहे । सस्ये सारङ्गबालेव तत्राभूत् सामिलापिणी ॥९४॥
 भजनं करशाखानां कुर्वन्ती स्फुटनिस्वनम् । उपविश्य किलोद्विग्ना पुत्रागस्य तलेऽरुदत् ॥९५॥
 अतिदीनकृतारावां धूसरां वनरेणुना । दृष्ट्वा तां रामरमणी कृपावष्टब्धमानसा ॥९६॥
 उत्थायान्तिकमागत्य करामर्शनतत्परा । मा मैपीरिति भाषित्वा गृहीत्वा पाणिपल्लवे ॥९७॥
 किञ्चिद् किल त्रपाभाजं मलिनांशुकधारिणाम् । सान्त्वयन्ती शुभैर्वाक्यै रमणान्तिकमानयत् ॥९८॥
 ततः पद्मो जगादैतां का त्वं रवापदसेविते । एकाकिनी वने कन्ये चरसीहातिदुःखिता ॥९९॥
 ततः सम्भाषणं प्राप्य स्फुटं तामरसेक्षणा । जगाद भ्रमरीवस्य वाचातुक्तमेतया ॥१००॥
 पुरुषोत्तम मे माता निःसंज्ञायां मृति गता । तद्भवेन च शोकेन तातोऽपि विनिपातितः ॥१०१॥
 साहं पूर्वकृताद् पापाद् बन्धुभिः परिवर्जिता । प्रविष्टा दण्डकारण्यं वैराग्यं वधती परम् ॥१०२॥
 पश्य पापस्य माहात्म्यं यद्वाञ्छन्त्यपि पञ्चताम् । अरण्येऽस्मिन् महाभीमे व्यालैरपि विवर्जिता ॥१०३॥

हाथमें लेकर पुत्रका चुम्बन किया ॥८८॥ तदनन्तर क्षण एकमे शोक छोड़कर वह उठी । उसके अश्रुओंकी धारा नष्ट हो गई और तीव्र क्रोध धारण करनेसे उसका मुख दमकने लगा ॥८९॥ वह मार्गके समीपमे ही स्थित उस स्थान पर इच्छानुसार इधर-उधर घूमने लगी । उसी समय उसने चित्तको बाँधनेवाले दोनों तरुण—रामलक्ष्मणको देखा ॥९०॥ उन्हें देखते ही उसका वैसा तीव्र क्रोध नष्ट हो गया और आदेशके समान उसके स्थान पर परम राग रूपी रस आ जमा ॥९१॥ इसके बाद उसने ऐसा विचार किया कि इन दोनों पुरुषोंमेसे मैं अपने इच्छुक पुरुषको वर्तुंगी इस प्रकार उसके मनमे ऊँची तरङ्गे उठने लगी ॥९२॥ ऐसा विचार कर वह कन्याभावको प्राप्त हुई । वह उस समय भाव रूपी गुफामे वर्तमान हृदयसे अत्यन्त आतुर हो रही थी ॥९३॥ जिस प्रकार हंसी कमलिनीके मुण्डमे, महिषी (भैंस) महासरोवरमे और हरिणी धान्यमें अभिलाषासे युक्त होती है उसी प्रकार वह भी राम-लक्ष्मणसे अभिलाषासे युक्त हो गई ॥९४॥ वह हाथकी अङ्गुलियों चटखाती हुई भयभीत मुद्रामे पुत्राग वृक्षके नीचे बैठकर रोने लगी ॥९५॥ जो अत्यन्त दीन शब्द कर रही थी, तथा वनकी धूलिसे धूसरित थी ऐसी उस कन्याको देख सीताका हृदय द्यमसे द्रवीभूत हो गया ॥९६॥ वह उठकर उसके पास गई तथा शरीर पर हाथ फेरने लगी । तदनन्तर 'डरो मत' यह कहकर उसका हाथ पकड़ कर पतिके पास ले आई । उस समय वह कुल्ल-कुल्ल लज्जित हो रही थी, तथा मलिन वस्त्रको धारण किये हुई थी । सीता उसे शुभ वचनोंसे सान्त्वना दे रही थी ॥९७-९८॥

तदनन्तर रामने उससे कहा कि हे कन्ये ! जङ्गलों जानवरोंसे भरे इस वनमे अतिशय दुःखसे युक्त तू कौन अकेली विचरण कर रही है ? ॥९९॥ तदनन्तर संभाषण प्राप्त कर जिसके नेत्र कमलके समान खिल रहे थे ऐसी वह कन्या भ्रमर समूहका अनुकरण करने वाली वाणीसे बोली ॥१००॥ कि हे पुरुषोत्तम ! मूर्च्छा आने पर मेरो माता मर गई और उसके उत्पन्न शोकसे पिता भी मर गये ॥१०१॥ इस तरह पूर्वोपार्जित पापके कारण बन्धुजनोंसे रहित हो परम वैराग्य को धारण करती हुई मैं इस दण्डकवनमे प्रविष्ट हुई थी ॥१०२॥ पापका माहात्म्य तो देखो कि

१. मञ्जुवस्फुरितानना (?) म० । २. यथा व्याकरणे कश्चित् स्थाने कश्चित् आदेशो भवति तद्वत् । ३. सीता ।

चिरांमनूपनिर्मुक्तं भ्रमन्त्यास्मिन् वने मया । भवन्तः साधवो दृष्टाः क्षयात् पापस्य कर्मणः ॥१०४॥
 जनोऽविदितपूर्वो यो जने वध्नाति सौहृदम् । अनादृत्य मामीष्यं व्रजति त्रपयोञ्जितः ॥१०५॥
 अनादृतः प्रभूतं च भाषते शून्यमानसः । उत्पादयति विद्वेपं कस्य नासी क्रमोञ्जितः ॥१०६॥
 एवंप्रभृतापि नो^१ यावत्पापान् मुञ्चामि^२ सुन्दर । तावदधैव मामिच्छ दुःखितायां दयां कुरु ॥१०७॥
 न्यायेन सद्गतां साध्वी सर्वोपप्लवर्जिताम् । को वा नेच्छति लोकेऽस्मिन् कल्याणप्रकृतित्यित्थम् ॥१०८॥
 श्रुत्वा तद्वचनं तस्यास्त्रपया परिवर्जितम् । परस्परं समालोक्य स्थितौ तूष्णीं नरोत्तमौ ॥१०९॥
 सर्वशास्त्रार्थबोधाभ्युच्चालितं हि तयोर्मनः । कृत्याकृत्यविवेकेषु मलमुक्तं प्रकाशते ॥११०॥
 निर्मुक्तदुःखनिश्वासं गच्छामीति तयोदिते । पञ्चनामादिभिः सोक्ता यथेष्टं क्रियतामिति ॥१११॥
 तस्यां प्रयातमात्रायां तदाशालीनताहृतौ । ससीतौ विस्मितौ वीरौ स्मेरवक्त्रौ बभूवतुः ॥११२॥
 अन्तर्हस्य च संक्रुद्धा समुत्पत्य स्वरावती । याता चन्द्रनखा धाम निजं शोकसमाकुला ॥११३॥
 शोभयापहतस्तस्या लक्ष्मणस्तरलेखणः । पुनरालोकमाकांक्षो विरहादाकुलोऽभवत् ॥११४॥
 उत्थायान्यापदेशेन रामदेवसकाशतः । अटवी पाटपद्माभ्यां वज्रामान्वेषणातुरः ॥११५॥
 अचिन्तयन्न खिन्नात्मा बाष्पव्याकुललोचनः । आत्मन्यनादृत्यप्रीतिरिति तप्तेननिर्भरः ॥११६॥
 रूपयौवनलावण्यशुण्णयां वनस्तनी । मदनाविष्टनागेन्द्रवनितासमगामिनी ॥११७॥
 आयान्येव सती कस्माददृष्टमात्रा न सा मया । स्तनोपपीडनाश्लेषं परिरुद्धा हतात्मना ॥११८॥

मैं यद्यपि मृत्युकी इच्छा करती हूँ फिर भी इस महाभयंकर वनमें दुष्ट जीव भी मुझे छोड़ देते हैं ॥१०३॥ चिरकालसे इस निर्जन वनमें भ्रमण करती हुई मैंने पापकर्मके क्षयसे आज आप सज्जनों के दर्शन किये हैं ॥१०४॥ जो पहलेका अपरिचित मनुष्य किसी मनुष्यसे मैत्रीभाव प्रकट करता है, बिना बुलाया निर्लज्ज हो उसके पास जाता है तथा बिना आदरके शून्यचित्त हो अधिक भाषण करता है वह क्रमहीन मनुष्य किसे द्वेष नहीं उत्पन्न करता ? ॥१०५-१०६॥ ऐसी होने पर भी हे सुन्दर ! जब तक मैं प्राण नहीं छोड़ती हूँ तब तक आज ही मुझे चाहो, मेरी इच्छा करो मुझ दुःखिनी पर दया करो ॥१०७॥ जो न्यायसे संगत है, साध्वी है, सर्व प्रकार की बाधाओंसे रहित है, तथा जिसकी कल्याण रूप प्रकृति है ऐसी कन्याको इस संसारमें कौन नहीं चाहता ? ॥१०८॥ राम-लक्ष्मण उसके लज्जाशून्य वचन सुनकर परस्पर एक दूसरेको देखते हुए चुप रह गये ॥१०९॥ समस्त शास्त्रोंके अर्थ ज्ञानरूपी जलसे बुला हुआ उनका निर्मल मन करने योग्य तथा नहीं करने योग्य कार्योंमें अत्यन्त प्रकाशित हो रहा था ॥११०॥ दुःख भरी श्वास छोड़कर जब उसने कहा कि मैं जाती हूँ तब राम आदिने उत्तर दिया कि 'जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो' ॥१११॥ उसके जाते ही उसकी आकुलीनतासे प्रेरित हुए शूरवीर राम-लक्ष्मण सीताके साथ आश्रयसे चकित हो हँसने लगे ॥११२॥

तदनन्तर शोकसे व्याकुल चन्द्रनखा मनमार क्रुद्ध हो उड़कर शीघ्र ही अपने घर चली गई ॥११३॥ लक्ष्मण उसकी सुन्दरतासे हरे गये थे इसलिए उनके नेत्र चञ्चल हो रहे थे वे उसे पुनः देखनेकी इच्छा करते हुए बिरहसे आकुल हो गये ॥११४॥ वे किसी अन्य कार्यके बहाने रामके पाससे उठकर चन्द्रनखाकी खोजमें व्यर्थ होते हुए पैदल ही वनमें भ्रमण करने लगे ॥११५॥ जिनका हृदय अत्यन्त खिन्न था, जिनके नेत्र आसुओंसे व्याप्त थे, जिन्होंने अपने आपके विषयमें प्रकट हुए चन्द्रनखाके प्रेमकी उपेक्षा की थी तथा जो उसके प्रेमसे परिपूर्ण थे ऐसे लक्ष्मण इस प्रकार विचार करने लगे कि जो रूप यौवन सौन्दर्य तथा अनेक गुणोंसे परिपूर्ण थी, जिसके स्तन अतिशय सघन थे और जो कामोन्मत्त हस्तिनीके समान चलती थी ऐसी उस

१. भूतापिबो (?) म० । २. मुखति म० । ३. तस्यः अशालीनता अकुलीनता तथा हतौ ।

४. उत्थायान्यापदेशेन म० । अन्यन्याजेन ।

‘अयोगमोहितं चेतश्च्युतं कर्तव्यवस्तुनः । साम्प्रतं शोकशिल्पिना दहते मे निरङ्कुशम् ॥११६॥
जाता सा विषये कस्मिन् कस्य वा दुहिता भवेत् । यूथभ्रष्टा सृगवेषं कुतः प्राप्ता सुलोचना ॥१२०॥
सञ्चिन्त्येति कृतभ्रान्तिस्तामपश्यन् समाकुलः । मेने तद्वनमाकाशपुष्पतुल्यं समन्ततः ॥१२१॥

मालिनीवृत्तम्

अविदितपरमार्थैरेवमर्थेन हीनं न खलु विमलचित्तैः कार्यमारम्भणीयम् ।
अविषयकृतचित्ता तत्समाशक्तिमुक्ता दधति परमशोकं बालवद्वुद्धिहीनाः ॥१२२॥
किमिदमिह मनो मे किं निचोत्थं तदिष्ट कथमनुगतकृत्यैः प्राप्यते शं मनुष्यैः ।
इति कृतमतिरुच्चैर्यो विवेकस्य कर्ता रविरिव विमलोऽलौ राजते लोकमार्गे ॥१२३॥

इत्यार्थे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते शम्भूवधामित्याम नाम
त्रिचत्वारिंशत्तम पर्व ॥४३॥

सतीका मैने आते तथा दिखनेके साथ ही स्तनोको पीडित करनेवाला आलिङ्गन क्यों नहीं किया
॥११६-११८॥ उसके वियोगसे मोहित हुआ मेरा चित्त कर्तव्य वस्तु—करने योग्य कार्यसे
च्युत होता हुआ इस समय शोकरूपी अग्निके द्वारा निर्वाध रूपसे जल रहा है ॥११६॥ वह
किस देशमें उत्पन्न हुई है ? किसकी पुत्री है ? यह उत्तम नेत्रोंकी धारक मुण्डसे बिछुड़ी हरिणी
के समान यहाँ कहाँसे आई थी ? ॥१२०॥ इसप्रकार विचार कर जो इधर-उधर भ्रमण कर रहे
थे तथा उसे न देख कर जो अत्यन्त व्याकुल थे ऐसे लक्ष्मणने उस वनको सब ओर से आकाश-
पुष्पके समान माना था ॥१२१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! निर्मल चित्तके धारक
मनुष्योंको इस तरह परमार्थके जाने बिना निरर्थक कार्य प्रारम्भ नहीं करना चाहिये । क्योंकि जो
बालकोके समान निर्वुद्धि मनुष्य अयोग्य विषयमें चित्त लगाते हैं वे उसकी प्राप्तिसे रहित हो
परम शोककी धारण करते हैं, ॥१२२॥ ‘यह क्या है ? इसमें मुझे मन क्यों लगाना चाहिये ?
वह इष्ट क्यों है ? और करने योग्य कार्यका अनुसरण करने वाले मनुष्य ही सुख-शान्ति प्राप्त
कर पाते हैं, इस प्रकार विचार कर जो उत्कृष्ट विवेकका कर्ता होता है वह सूर्यकी तरह निर्मल
होता हुआ लोकके मार्गमें सुशोभित होता है ॥१२३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मचरितमें शम्भूकके
वधका वर्णन करने वाला तैत्तलीसर्वो पर्व समाप्त हुआ ॥४३॥

चतुश्चत्वारिंशत्तमं पर्व

अनिच्छन्नाय विध्वस्तो नन्दस्वा मनोमत्तः । दुःखपूरः पुनः प्राप्नो भग्नरोधो यथा नष्टः ॥१॥
 ककार व्याकुलोभूता विविधे परिदेवनम् । श्लोकपादकृतस्तथा विवक्षा बहुला यथा ॥२॥
 बहुजो चान्नान्नं नं क्रोयदैन्यस्थानामया । विगलद्भृतिनेत्रान्दुर्दृष्टेन निर्दल्यत ॥३॥
 तां विनष्टकृतिं हृष्टा वरगीधूलिवृत्तमाह । प्रकीर्णकेशसन्मारां शिथिलीनूनमेतलान् ॥४॥
 नक्तविस्तकस्तुक्चरीणीं सशोषिताम् । कर्मान्नान्नितुकां हारलावण्यवर्जिताम् ॥५॥
 विविधकङ्कणां अदस्त्वनावतनुतेजसम् । जालोदितानां गजेनेव नलिन्यां नन्दवाहिना ॥६॥
 पद्मच्छ परिधानैर्येप कान्ते शङ्कं निवेदय । अवस्थानिनकां केन प्रापितासि दुरात्मनः ॥७॥
 मद्येन्दुरधनः कस्य क्षुधया कोजलोक्तिः । गिरेः स्वपित कः श्ले मूढः क्रोडति क्रोडहिना ॥८॥
 कोज्ज्वः कुरं समापन्नो देवं कस्याशुनावहम् । मच्छोषाग्नावनं द्रोणे शलनः कः पतिष्यति ॥९॥
 विक्रं न पशुसन्तं पार्ष विवेक्यपत्नानसन् । अरवित्रमनाचारं लोकहितयद्वृत्तितम् ॥१०॥
 कलं हृदिवा नान्येव कचित्प्रं प्राकृतादला । स्पृष्टा येनामिनं शंस वाडवाग्निशिखासमा ॥११॥
 अथैव नं दुराचारं कृत्वा हस्ततलाहृतम् । नेत्रे प्रेतगतिं सिद्धो यथा नागं निरङ्कुशम् ॥१२॥
 पद्मनुका विचल्यमानां रदिनं कृच्छ्रतः परत । अजन्तिलालकाच्छ्रवण-डामादीन् सगदगदम् ॥१३॥

अथानन्तर जब अनिच्छासे चन्द्रनखाका काम नष्ट हो गया तब तटको भग्न करनेवाले नन्दके समान दुःखका पूर उसे पुनः प्राप्त हो गया ॥१॥ जिसका शरीर शोक रूपी अग्निसे संतप्त हो रहा था ऐसी चन्द्रनखा, नूनवत्ता गायके समान व्याकुल होकर नाना प्रकारका विलाप करने लगी ॥२॥ जो पूर्वोक्त अपमानको वारन कर रहा थी, जिसका मन क्रोध और दीनतामें स्थित था तथा जिसके नेत्रोंसे अश्रु नार गहे थे ऐसी चन्द्रनखाको खरदूषणने देखा ॥३॥ जिसका धैर्य नष्ट हो गया था, जो पृथिवीकी धूलिसे धूसरित थी, जिसके केशोंका समूह बिखरा हुआ था, जिसकी नेत्रला डीली हो गई थी, जिसकी बगलों जाँघों तथा स्तनोंकी भूनि नलोंसे विनृत थी, जो कबिरसे शुक्ल थी, जिसके कर्णाभरण गिर गये थे, जो हार और लावण्यसे रहित थी, जिसकी बोली फट गई थी, जिसके शरीरका स्वाभाविक तेज नष्ट हो गया था, और जो नदोन्नत हाथीके द्वारा नर्तित कमलिनिके समान लान पड़ती थी ऐसी चन्द्रनखाको सान्त्वना देकर खरदूषणने पूछा कि हे प्रिये ! शीघ्र ही बताओ तुम किस दुष्टके द्वारा इस अवस्थाको प्राप्त कर आई गई हो ? ॥४॥ आज किसका आठवाँ चन्द्रमा है सत्युके द्वारा कौन देखा गया है ? पहाड़की चोटी पर कौन सो रहा है और कौन मूर्ख सर्पके साथ क्रीड़ा कर रहा है ? ॥५॥ कौन अन्धा कृपसे आकर पड़ा है ? किसका देव अशुभ है ? और मेरी प्रस्त्रलित श्रोत्रान्तिके कौन पतङ्ग धन कर गिरना चाहता है ? ॥६॥ जिसका मन विवेकसे रहित है जो अगवित्र आचरण करनेवाला है और जिसने दोनों लोकोंको दूषित किया है उस पशु तुल्य पार्षको विक्कार है ॥७॥ रोना व्यर्थ है तुम अन्य साधारण लोक समान धोई ही हो वडवानलकी शिखरके समान जिसने तुम्हें जूया है उसका नाम कहो ॥८॥ निरङ्कुश हाथीको सिंहके समान मैं आज ही उसे हस्ततलसे पीसकर यमराजके घर भेज दूँगा ॥९॥ इस प्रकार कहनेपर कड़े कटपसे रोना छोड़कर वह गदगद वाणीमें बोली । उस समय उसके कपोल

वनान्तरस्थितं पुत्रं द्रष्टुं यातास्मि साम्प्रतम् । अपश्यन्तं च केनापि प्रत्यग्रच्छिन्नमूर्धकम् ॥१४॥
ततः शोणितधाराभिर्निःसृताभिर्निरन्तरम् । प्रदीप्तमिव तन्मूले लक्ष्यते कीचकस्थलम् ॥१५॥
प्रशान्ताऽवस्थितं हत्वा मे केनापि सुपुत्रकम् । खड्गत्वं समुत्पन्नं प्राप्तं पूजासमन्वितम् ॥१६॥
साहं दुःखसहस्राणां भाजनं भाग्यवर्जिता । तन्मूर्धानं निवाद्याङ्गे विप्रलापं प्रसेविता ॥१७॥
तावच्च तेन दुष्टेन शम्बुक्रवधकारिणा । उपगृह्णास्मि बाहुभ्यां कर्तुं किमपि वान्छिता ॥१८॥
उक्तोऽपि मुञ्च मुञ्चेति घनस्पर्शवशहतः । न मुञ्चति हतात्मा मां कोऽपि नीचकुलोद्गतः ॥१९॥
नखैर्विलुप्य दन्तैश्च तेनाहं विजने वने । एतिकां प्रापितावस्थां क्वावला क्व पुमान् बली ॥२०॥
तथापि पुण्यशेषेण केनापि परिरक्षिता । अविखण्डितचारित्रा कृच्छ्राय निःमृता ततः ॥२१॥
सर्वविद्याधराधीशखिलोक्तोभकारणः । ज्ञाता मे रावणः ख्यातः शक्रेणाप्यपराजितः ॥२२॥
खरदूषणवामा त्वं भर्ता कोऽपि विचर्ण्यसे । सम्प्राप्तास्मि तथाप्येतामवस्थां दैवयोगतः ॥२३॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा शोकक्रोधसमाहतः^२ । स्वयं महाशूरो गत्वा दृष्ट्वा व्यापादितं सुतम् ॥२४॥
सम्पूर्णदुःखसमानोऽपि पूर्वसारङ्गलोचनः । बभूव भीषणाकारो मध्यग्रीष्माकृतस्निग्धः ॥२५॥
आगतश्च द्रुतं भूयः प्रविश्य भवनं निजम् । सुहृद्भिः सहितश्चक्रं स्वल्पकालप्रधारणम् ॥२६॥
तत्र केचिद्द्रुतं प्रोक्तुः सचिवाः कर्कशाशयाः । राजकीयमभिप्रायं बुद्ध्वा सेवापरायणाः ॥२७॥
शम्बुकं साधितो येन खड्गरत्नं च हस्तितम् । असाधुपेक्षितो राजन् वद किं न करिष्यति ॥२८॥

ऑसुओंसे भीग रहे थे तथा खिखरे हुए बालोंसे आच्छन्न थे ॥१३॥ उसने कहा कि मैं अभी घनके मध्यमे स्थित पुत्रको देखनेके लिए गई थी सो मैंने देखा कि उसका मस्तक अभी हाल किसीने काट डाला है ॥१४॥ निरन्तर निकली हुई रुधिरकी धाराओंसे वंशस्थलका मूल भाग अग्निसे प्रबलितके समान दिखाई देता है ॥१५॥ शान्तिसे बैठे हुए मेरे सुपुत्रको किसीने मारकर पूजाके साथ-साथ प्राप्त हुआ वह खड्गरत्न ले लिया है ॥१६॥ जो हजारों दुःखोंका पात्र तथा भाग्यसे हीन है ऐसी मैं पुत्रके मस्तकको गोदमें रखकर विलाप कर रही थी ॥१७॥ कि शम्बुकका वध करनेवाले उस दुष्टने दोनों भुजाओंसे मेरा आलिङ्गन किया तथा कुछ अनर्थ करनेकी इच्छा की ॥१८॥ यद्यपि मैंने उससे कहा कि मुझे छोड़-छोड़ तो भी वह कोई नीच कुलोत्पन्न पुरुष था इसलिए गाढ़ स्पर्शके वशीभूत हुए उसने मुझे छोड़ा नहीं ॥१९॥ उसने उस निर्जन वनमें नखों तथा दाँतोंसे छिन्न-भिन्न कर मुझे इस दशाको प्राप्त कराया है सो आप ही सोचिये कि अवला कहाँ और बलवान् पुरुष कहाँ ? ॥२०॥ इतना सब होने पर भी किसी अवशिष्ट पुण्यने मेरी रक्षा की और मैं चारित्रिको अखण्डित रखती हुई बड़े कष्टसे आज उससे वचकर निकल सकी हूँ ॥२१॥ जो समस्त विद्याधरोंका स्वामी है, तीन लोकके क्षोभका कारण है, और इन्द्र भी जिसे पराजित नहीं कर सका ऐसा प्रसिद्ध रावण मेरा भाई है तथा तुम खरदूषण नाम धारी अद्भुत पुरुष मेरे भर्ता हो फिर भी दैव योगसे मैं इस अवस्थाको प्राप्त हुई हूँ ॥२२-२३॥

तदनन्तर चन्द्रनखाके वचन सुनकर शोक और क्रोधसे ताड़ित हुए महावेगशाली खरदूषणने स्वयं जाकर पुत्रको मरा देखा ॥२४॥ यद्यपि वह भृगुके समान नेत्रोंको धारण करनेवाला और पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल था तो भी पुत्रको मरा देख ग्रीष्म ऋतुके मध्याह्न कालीन सूर्यके समान भयंकर हो गया ॥२५॥ उसने शीघ्र ही वापिस आकर और अपने भवनमें प्रवेश कर मित्रोंके साथ स्वल्पकालीन मन्त्रणा की ॥२६॥ उनमेंसे कठोर अभिप्रायके धारक तथा सेवामें तत्पर रहनेवाले कितने ही मन्त्री राजाका अभिप्राय जानकर शीघ्र ही कहने

ऊतुग्न्ये विवेकस्या नाथ नेदं लघुक्रियम्^१ । सामन्तान् ढौक्याशेषान् रावणाय च कथ्यताम् ॥२६॥
 यस्यासिरन्मुख्यं सुसाध्यः स कथं भवेत् । तस्मात् सहातकार्येऽस्मिन्स्वरा^२ कर्तुं न युज्यते ॥३०॥
 गुस्त्राङ्गानुरोधेन राक्षसाधिपसविदे । दूतः सम्प्रेषितस्तेन युवा लब्धं महाजवः ॥३१॥
 राजधैर्यात् कुतोऽप्येव चिरं यावदवस्थितः । रावणस्यान्तिके दूतः कार्यसाधनतत्परः ॥३२॥
 तीव्रक्रोधपरीतात्मा तावच्च खरदूषणः । अमावत पुनः पुत्रगुणप्रेषितमानसः ॥३३॥
 मायाविनिहूतैः क्षुद्रैर्जन्तुभिर्भूमिगोचरैः । दिव्यसेनार्णवः सुव्यस्तर्तितुं नैव शक्यते ॥३४॥
 धिगिदं शौर्यमस्माकं सहायान् यदि वाञ्छति । द्वितीयोऽपि कथं बाहुरिष्यते मम बाहुता ॥३५॥
 ह्ययुक्त्वा परमं बिभ्रद्भिमानं त्वरान्वितः । उत्पपात सुदृन्मध्वाद्राकाश स्फुरिताननः ॥३६॥
 तमेकान्तपरं दृष्ट्वा सन्नद्धानि क्षणान्तरे । चतुर्दशसहस्राणि सुहृदां निर्ययुः पुरात् ॥३७॥
 तस्य राक्षससैन्यस्य श्रुत्वा वादिन्ननिस्वनम् । सुदयसागरनिर्घोषं मैथिली श्रासमागता ॥३८॥
 किं किमेतद्दो नाथ प्राप्तमित्युदगतस्वनः । आलिङ्गतिस्म जीवेशं वल्ली कल्पतर्जं यथा ॥३९॥
 न भेत्तव्यं न भेत्तव्यं इति तां परिसान्त्व्य सः । अचिन्तयदयं कस्य भवेच्छब्दः सुदुर्दरः ॥४०॥
 रवः किमेव सिंहस्य भवेज्जलधरस्य वा । आहोस्विदग्बुनायस्य पूरयत्यखिलं नमः ॥४१॥
 उवाच च प्रिये जूनममी चतुरगामिनः । नादिनः प्रचलत्पत्वा राजर्हसा नभोऽङ्गणे ॥४२॥

लगे कि जिसने शम्भूकको मारा है तथा खड्गरत्न हथिया लिया है । हे राजन् ! यदि उसकी उपेक्षाकी जायगी तो वह क्या नहीं करेगा ? ॥२७-२८॥ कुछ विवेकी मन्त्री इस प्रकार बोले कि हे नाथ ! यह कार्य जल्दी करनेका नहीं है इसलिए सब सामन्तोंकी बुलाओ और रावणको भी खबर दी जाय ॥२९॥ जिसे खड्गरत्न प्राप्त हुआ है वह सुखपूर्वक वशमें कैसे किया जा सकता है ? इसलिए मिलकर समूहके द्वारा करने योग्य इस कार्यमें उतावली करना ठीक नहीं है ॥३०॥

तदनन्तर उसने गुरुजनोंके वचनोंके अनुरोधसे रावणको खबर देनेके लिए एक तरुण तथा वेगशाली दूत लङ्काको भेजा ॥३१॥ उधर कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर रहनेवाला वह दूत, किसी राज्यधैर्यके कारण चिर काल तक रावणके पास बैठा रहा ॥३२॥ इधर तीव्र क्रोधसे जिसकी आत्मा व्याप्त हो रही थी तथा जिसका मन पुत्रके गुणोंमें बार-बार जा रहा था ऐसा खरदूषण पुनः बोला कि मायासे रहित क्षुद्र भूमिगोचरी प्राणियोंके द्वारा, क्षोभको प्राप्त हुआ दिव्य सेना रूपी सागर नहीं तैरा जा सकता ॥३३-३४॥ हमारी इस शूरवीरताको धिक्कार है जो अन्य सहायकोकी वाञ्छा करती है । मेरी वह भुजा किस कामकी जो अपनी ही दूसरी भुजाकी इच्छा करती है ॥३५॥ इस प्रकार कहकर जो परम अभिमानको धारण कर रहा था तथा क्रोधके कारण जिसका मुख कम्पित हो रहा था ऐसा शीघ्रतासे भरा खरदूषण मित्रोंके बीचसे उठकर आकाशमें जा उड़ा ॥३६॥ उसे हठमें तत्पर देख उसके चौदह हजार मित्र जो पहलेसे तैयार थे क्षण भरमें नगरसे बाहर निकल पड़े ॥३७॥ राक्षसोंकी उस सेनाके, क्षोभको प्राप्त हुए सागरके समान शब्दवाले वादित्रोंका शब्द सुनकर सीता भयको प्राप्त हुई ॥३८॥ हे नाथ ! यह क्या है ? क्या है ? इस प्रकार शब्दोंका उच्चारण करती हुई वह भर्तारसे उस प्रकार लिपट गई जिस प्रकार कि छता कल्प वृक्षसे लिपट जाती है ॥३९॥ 'नहीं डरना चाहिए नहीं डरना चाहिए' इस प्रकार उसे सान्त्वना देकर रामने विचार किया कि यह अत्यन्त दुर्घर शब्द किसका होना चाहिए ? ॥४०॥ क्या यह सिंहका शब्द है या मेघकी ध्वनि है अथवा समुद्रकी गर्जना समस्त आकाशको व्याप्त कर रही है ॥४१॥ उन्होंने सीतासे कहा कि हे प्रिये ! जान पड़ता है ये मनोहर गमन

किं वा दुष्टदिजाः केचिदन्ये त्वदभयकारिणः । समर्पय प्रिये चाप प्रलयं प्रापयाम्यमून् ॥४३॥
 अथासत्त्वमागच्छद् विविधायुधसङ्कुलम् । चातेरिताम्रवृन्दां निरीक्ष्य सुमहद्वलम् ॥४४॥
 जगाद् राघवः किं नु नन्दीश्वरममी सुराः । जिनेन्द्रान् वन्दितुं भक्त्या प्रस्थिताः स्युर्महीजसः ॥४५॥
 आहो वंशस्थलं क्षित्वा हत्वा कमपि मानवम् । असिरत्ने गृहीतेऽस्मिन् प्राप्ता मायाविवैरिणः ॥४६॥
 दुश्शीलया तया नूनं क्षिया मायाप्रवीणया । निजाः संजोभिता पते स्युरस्मद् दुष्कृतिं प्रति ॥४७॥
 नात्र युक्तमवज्ञातुं सैन्यमभ्यर्णतामितम् । इत्युक्त्वा कवचे दृष्टिं कामुके च न्यपातयत् ॥४८॥
 ततस्तमङ्गलिं कृत्वा सुमित्रातनयोऽगदत् । मयि स्थिते न संरम्भस्तव देव विराजते ॥४९॥
 संरञ्ज राजपुत्री त्वं प्रत्यराति व्रजाम्यहम् । ज्ञेया च सिंहनादेन मम यद्यापदुद्भवत् ॥५०॥
 इत्युक्त्वा कङ्कटच्छत्रैः तमुपात्तमहायुधः । योद्धुमभ्युद्यतः श्रीमाल्लक्ष्मणः प्रत्यरिस्थितः ॥५१॥
 दृष्ट्वा तमुत्तमाकारं चीरं पुरुषपुङ्गवम् । पर्यस्तृणन् विहायःस्था जलदा हव पर्वतम् ॥५२॥
 शक्तिमुद्गरचक्राणि कुन्तवाणांश्च खेचरैः । परिकीर्णान्यसौ सम्यक् शस्त्रैव न्यवारयत् ॥५३॥
 निरुध्य सर्वशस्त्राणि खेचरैः प्रहितानि सः । वज्रदण्डान् शरान् भोजतुं प्रवृत्तो व्योमगाहिनः ॥५४॥
 एकैकैव सा तेन विद्याधरमहाचमूः । रुद्धा बाणैः कदिच्छेज विज्ञानैः सयतात्मना ॥५५॥
 माणिक्यशकलाङ्गानि राजमानानि कुण्डलैः । पेतुः शिरासि खाद् भूमिः खसरः कमलानि वा ॥५६॥
 शैलाभा द्विरदाः पेतुरश्वैः सह महाभटाः । कुर्वते निनदं भीमं संहरदवाससं ॥५७॥

करनेवाले तथा पङ्क्तोको हिलानेवाले राजहंस पक्षी आकाशरूपी आगनमे शब्द करते हुए जा रहे हैं ॥४२॥ अथवा तुमके भय उत्पन्न करनेवाले कोई दूसरे दुष्ट पक्षी ही जा रहे हैं । हे प्रिये ! धनुष देओ, जिससे मैं इन्हें प्रलयको प्राप्त करा दूँ ॥४३॥ तदनन्तर नाना प्रकारके शस्त्रोंसे युक्त, चायुसे प्रेरित मेघ समूहके समान ढीखनेवाली बड़ी भारी सेनाको समीपमें आती देख रामने कहा कि क्या ये महा तेजके धारक देव भक्ति पूर्वक जिनेन्द्र देवकी वन्दना करनेके लिए नन्दीश्वर द्वीपको जा रहे हैं ॥४४-४५॥ अथवा बॉसके भिड़ेको छेदकर तथा किसी मनुष्यको मारकर यह खङ्गरत्न लक्ष्मणने लिया है सो मायावी शत्रु ही आ पहुँचे हैं ॥४६॥ अथवा जान पड़ता है कि उस दुराचारिणी मायाविनी स्त्रीने हम लोगोंको दुःख देनेके लिए आत्मीय जनको जोभित किया है ॥४७॥ अब निकटमें आई हुई सेनाकी उपेक्षा करना उचित नहीं है ऐसा कहकर रामने कवच और धनुष पर दृष्टि डाली ॥४८॥ तब लक्ष्मणने हाथ जोड़कर कहा कि हे देव ! मेरे रहते हुए आपका क्रोध करना शोभा नहीं देता ॥४९॥ आप राजपुत्रीकी रक्षा कीलिए और मैं शत्रुकी ओर जाता हूँ । यदि मुझपर आपत्ति आवेगी तो मेरे सिंहनादसे उसे समझ लेना ॥५०॥ इतना कहकर जो कवचसे आच्छादित हैं तथा जिसने महाशस्त्र धारण किये हैं ऐसे लक्ष्मण युद्धके लिए तत्पर हो शत्रुकी ओर मुखकर खड़े हो गये ॥५१॥ उत्तम आकारके धारक, मनुष्योंमें श्रेष्ठ तथा अतिशय शूरवीर वन लक्ष्मणको देखकर आकाशमें स्थित विद्याधरोंने उन्हें इस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि मेघ किसी पर्वतको घेर लेते हैं ॥५२॥ विद्याधरोंके द्वारा चलाये हुए शक्ति, मुद्गर, चक्र, माले और बाणोका लक्ष्मणने अपने शस्त्रोंसे अच्छी तरह निवारण कर दिया ॥५३॥ तदनन्तर वे विद्याधरोंके द्वारा चलाये हुए समस्त शस्त्रोंको रोककर उनकी ओर वज्रमय बाण छोड़नेको तत्पर हुए ॥५४॥ अकेले लक्ष्मणने विद्याधरोंकी वह बड़ी भारी सेना अपने बाणोंसे उस प्रकार गोक ली जिस प्रकार कि मुनि विशिष्ट ज्ञानके द्वारा खेती इच्छाको रोक लेते हैं ॥५५॥ मणिखण्डोंसे युक्त तथा कुण्डलोसे सुशोभित शत्रुओंके शिर, आकाशरूपी सरोवरके कमलोंके समान कट-कटकर आकाशसे पृथिवी पर गिरने लगे ॥५६॥ पर्वतोंके समान

१. लवसमुपात्त- म० । २. प्रत्यरि म० । ३. कुत्सिता इच्छा कदिच्छा 'कोः कत्तपुचयेप्ति' इति कुस्थाने कदादेशः । ४. भूमिः । ५. गगनसरोवरकमलानि इव शिरासि । ६. संहर्षाष्टाः इत्यर्थः, संहर्षवशात्सः म० ।

अयमस्य महान् लाभो निम्नतस्तस्य तानभूत् । यदूर्ध्वगैः शरैर्योधान् विव्याध सहवाहनान् ॥५८॥
 अत्रान्तरे प्ररिप्राप्तः पुष्पकस्थो दशाननः । क्रुद्धः कृताशयो हन्तुं शम्बूकवधकारिणम् ॥५९॥
 अपश्यच्च महामोहसम्प्रवेशनकारिणीम् । रत्नरत्नोः समुद्रात्रीं साक्षाद्भूमिं स्थिताम् ॥६०॥
 चन्द्रमःकान्तवदनां बन्धुकामवराधराम् । तन्दूरी च लक्ष्मीं च जलजच्छन्दोचनम् ॥६१॥
 महैभक्तुमशिरश्रोचुङ्खविपुलस्तनीम् । यौवनोदयसम्पन्नां सर्वस्त्रीगुणसद्गताम् ॥६२॥
 संहितामिव कामेन कान्तिन्यां दृष्टिसायकाम् । निजां चापलतां हन्तुं सुखेनैव थयेप्सितम् ॥६३॥
 सर्वस्मृतिमहाचारी रूपातिशयवर्तिनीम् । स्तीतां मनोभवोदारज्वरग्रहणकारिणीम् ॥६४॥
 तस्यामीक्षितमात्रायां क्रोधोऽस्य प्रलयं गतः । अनायतापरो भावश्चित्रा हि मनसो गतिः ॥६५॥
 अचिन्तयच्च किं नाम जीवितं मेऽनया विना । अयुक्तस्यानया का वा श्रीमदीयस्य वेश्मनः ॥६६॥
 इमामप्रतिमाकारां ललितां नवयौवनाम् । हराम्यद्यैव यावन्नो कश्चिज्जावात्युपागतम् ॥६७॥
 आरब्धुं प्रसभं कार्यं न मे शक्तिर्न विद्यते । किन्निवदमीदृशं वस्तु यत्कौपीनत्वमहेति ॥६८॥
 निवेदयन् गुणांस्तावलोकेऽलं याति लाघवम् । ईदृशान् किं पुनर्दोषान् ख्यापयन्नां प्रियो भवेत् ॥६९॥
 वितथ्य सकलं लोकं शशाङ्कनिर्मला । कीर्तिर्न्यवस्थिता माम्भूत् सर्वं सति मलीमसा ॥७०॥
 तस्मादकीर्तिसम्भूतिसम्बन्धं स्वार्थतत्परः । रहःप्रयत्नमारमे लोको हि परमो गुरुः ॥७१॥

बड़े-बड़े हाथी घोड़ोंके साथ-साथ नीचे गिरने लगे तथा ओठोंको डसनेवाले बड़े-बड़े योद्धा भयंकर शब्द करने लगे ॥५७॥ उन सबको मारते हुए लक्ष्मणको यह बड़ा लाभ हुआ कि वे ऊपरकी ओर जानेवाले वाणोंसे योद्धाओंको उनके वाहनोंके साथ ही छेद देते थे अर्थात् एक ही प्रहारसे वाहन और उनके ऊपर स्थित योद्धाओंको नष्ट कर देते थे ॥५८॥

तदनन्तर इसी बीचमे शम्बूकके वधकर्त्ताको मारनेके लिए विचार करनेवाला, क्रोधसे भरा रावण पुष्पक विमानमे बैठकर वहाँ आया ॥ ५९ ॥ आते ही उसने महामोहमे प्रवेश करानेवाली तथा रति और अरतिको धारण करनेवाली साक्षात् लक्ष्मीके समान स्थित सीताको देखा ॥६०॥ उस सीताका मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर था, वह बन्धूक पुष्पके समान उत्तम ओष्ठोंको धारण करनेवाली थी, कृशाङ्गी थी, लक्ष्मीके समान थी, कमलदलके समान उसके नेत्र थे ॥६१॥ किसी बड़े हाथीके गण्डस्थलके अग्रभागके समान उन्नत तथा स्थूल स्तन थे, वह यौवनके उदयसे सम्पन्न तथा समस्त स्त्री गुणोंसे सहित थी ॥६२॥ वह ऐसी जान पड़ती थी मानो इच्छित पुरुषको अनायास ही मारनेके लिए कामदेवके द्वारा धारण की हुई अपनी धनुषरूपी लता ही हो। कान्ति ही उस धनुष रूपी लताकी डोरी थी और नेत्र ही उसपर चढ़ाये हुए वाण थे ॥६३॥ वह सबकी स्मृतिको चुरानेवाली थी, अत्यन्त रूपवती थी और कामरूपी महाज्वरको उत्पन्न करनेवाली थी ॥६४॥ उसे देखते ही रावणका क्रोध नष्ट हो गया और दूसरा ही भाव उत्पन्न हो गया सो ठीक ही है क्योंकि मनकी गति विचित्र है ॥६५॥ वह विचार करने लगा कि इसके बिना मेरा जीवन क्या है ? और इसके बिना मेरे घरकी शोभा क्या है ? ॥६६॥ इसलिए जब तक कोई मेरा आना नहीं जान लेता है तब तक आज ही मैं इस अनुपम, नवयौवना सुन्दरीका अपहरण करता हूँ ॥६७॥ यद्यपि इस कार्यको बलपूर्वक सिद्ध करनेकी शक्ति मुझमें विद्यमान है किन्तु यह कार्य ही ऐसा है कि झिपानेके योग्य है ॥६८॥ लोकमें अपने गुणोंको प्रकट करनेवाला मनुष्य भी अत्यधिक लघुताको प्राप्त होता है फिर जो इस प्रकारके दोषोंको प्रकट करनेवाला है वह प्रिय कैसे हो सकता है ? ॥६९॥ मेरी चन्द्रमाकी किरणोंके समान निर्मल कीर्ति समस्त संसारमें व्याप्त होकर स्थित है सो वह ऐसा काम करने पर मलिन न हो जाय ॥७०॥ इसलिए अकीर्तिकी

इति ध्यात्वावलोकिन्या विद्ययोपायमञ्जसा । विवेद हरणे तस्यास्तेषां नामकुलादि यत् ॥७२॥
 अयं स लक्ष्मण. ख्यातो बहुभिः कृतरोधनः । अयं स रामः सीतेयं सा गुणैः परिकीर्तिता ॥७३॥
 अमुष्य व्यसनं कृत्वा सिंहनादं स घन्निनः । गरुमानिव गुप्त्रस्य सीतां पेशीमिवाददे ॥७४॥
 जायावैरप्रदीप्तोऽयमजन्मः खरदूषणः । शक्त्यादिभिः षण्णादेतौ आतुरौ मारयिष्यति ॥७५॥
 महाप्रकृष्टपूरस्य नदस्योद्वाररंहसः । तटयोः पातने शक्तिः केन न प्रतिपद्यते ॥७६॥
 इति सञ्चिन्त्य कामार्तः शिशुवत्स्वल्पमानसः । विषवन्मरणोपायं हरणं प्रति निश्चितः ॥७७॥
 शस्त्रान्धकारिते जाते तयोरेव महाहवे । कृत्वा सिंहवं रामरामेति च मुहुर्जगौ ॥७८॥
 तं च सिंहवं श्रुत्वा स्फुटं लक्ष्मणभाषितम् । प्रीत्यारतिमयाद् पद्मो न्याकुलीभूतमानसः ॥७९॥
 निर्माह्यैर्जानकी सम्यक् प्रच्छाद्यात्यन्तभूरिभिः । षण्मेकं प्रिये तिष्ठ मा मैरिगिरिति सङ्गदन् ॥८०॥
 वयस्वयनितौ तावज्जटाधू रक्ष यत्नतः । किञ्चिदस्मत्कृतं भद्र स्मरत्युपकृतं यदि ॥८१॥
 इत्युक्त्वा वार्यमाणोऽपि शकुनेः क्रन्दनाकुलैः । सती मुक्त्वा जनेऽरण्ये वेगवान् प्राविशद् रणम् ॥८२॥
 अत्रान्तरे समागत्य विद्यालोकेन कोविद् । सीतामुत्तिष्ठन् बाहुभ्यां नलिनीमिव वारणः ॥८३॥
 कामदाहगुहीतात्मा विस्मृताशेषधर्मवीः । आरोपयितुमारमे पुष्पकं गगनस्थितम् ॥८४॥

उत्पत्तिको बचाता हुआ वह स्वार्थसिद्ध करनेमें तत्पर हो एकान्तमें प्रयत्न करता है सो ठीक ही है क्योंकि लोक परमगुरु है अर्थात् संसारके प्राणी बड़े चतुर हैं ॥७१॥ इस प्रकार विचारकर उसने अवलोकिनी विद्याके द्वारा सीताके हरण करनेका वास्तविक उपाय जान लिया । राम-लक्ष्मण तथा सीताके नाम कुल आदि सबका उसे ठीक ठीक ज्ञान हो गया ॥७२॥ जिसे अनेक लोग घेरे हुए हैं ऐसा यह वह लक्ष्मण है, यह राम है, और यह गुणोंसे प्रसिद्ध सीता है ॥७३॥ इसके बाद उस रावणने इस धनुर्धारी रामके लिए आपत्तिस्वरूप सिंहनाद करके सीताको ऐसे पकड़ लिया जैसे गरुडपक्षी गीधके मुखकी मांसपेशीको ले लेता है ॥७४॥ स्त्रीके बैरसे अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हुआ यह खरदूषण अजेय है तथा शक्ति आदि शस्त्रोंसे इन दोनों भाइयोंको क्षणभरमें मार डालेगा ॥७५॥ जिसमें बहुत बड़ा पूर चढ़ रहा है तथा जिसका वेग अत्यन्त तीव्र है ऐसे नदमें दोनों तटोंकी गिरानेकी शक्ति है यह कौन नहीं मानता है ? ॥७६॥ ऐसा विचारकर कामसे पीड़ित तथा बालकके समान विवेकशून्य हृदयको धारण करनेवाले रावणने सीताके हरण करनेका उस प्रकार निश्चय किया कि जिस प्रकार कोई भारनेके लिए विपपानका निश्चय करता है ॥ ७७॥

अथानन्तर जब लक्ष्मण और खरदूषणके बीच शस्त्रोंके अन्धकारसे युक्त महायुद्ध हो रहा था तब रावणने सिंहनादकर बार-बार राम ! राम !! इस प्रकार उच्चारण किया ॥७८॥ उस सिंहनादको सुनकर रामने समझा कि यह लक्ष्मणने ही किया है ऐसा विचारकर वे प्रीतिवश व्याकुलित चित्त हो अरत्तिको प्राप्त हुए ॥७९॥ तदनन्तर उन्होंने सीताको अत्यधिक मालाओंसे अच्छी तरह ढक दिया और कहा कि हे प्रिये ! तुम ज्ञानभर यहाँ ठहरो भय मत करो ॥८०॥ सीतासे इतना कहनेके बाद उन्होंने जटायुसे भी कहा कि हे भद्र ! यदि तुम मेरे द्वारा किये हुए उपकारका स्मरण रखते हो तो मित्रकी स्त्रीकी प्रयत्न पूर्वक रक्षा करना ॥८१॥ इतना कहकर यद्यपि क्रन्दन करनेवाले पक्षियोंने उन्हें रोका भी था तो भी वे निर्जन वनमें सीताको छोड़कर वेगसे युद्धमें प्रविष्ट हो गये ॥८२॥

इसी बीचमें विद्याके आलोकसे निपुण रावण, कपालिनीको हाथीके समान दोनों भुजाओंसे सीताको उठाकर आकाशमें स्थित पुष्पक विमानमें चढ़ानेका प्रयत्न करने लगा । उस समय

हियमाणासथ प्रेक्ष्य स्वामिनो वनितां प्रियाम् । सरम्भवह्निदीप्तात्मा समुत्पत्य महाजवः ॥८५॥
 सोऽप्यकोटिभिरत्यन्तं जटायुर्नखलाङ्गलैः । दाशाननमुरःक्षेत्रं चर्कपांस्तुनसमाद्रितम् ॥८६॥
 परपैशङ्गदनान्तैश्च वातसम्पाटितांशुकैः । जघान जवनैर्भूयः सर्वकायमलं बलः ॥८७॥
 इष्टवस्तुविद्यतेन रावणः कोपवानथ । इत्वा हस्ततलेनैव महीतलमजीगमत् ॥८८॥
 ततोऽसौ परुषाघाताद् विकलीभूतमानसः । कुर्वन् केकायितं दुःखी खगो मूर्च्छांमुपागतः ॥८९॥
 ततो निर्विघ्नमारोप्य पुष्पकं जनकात्मजाम् । जानानः सङ्गतं कामं रावणः स्वेच्छया ययौ ॥९०॥
 ज्ञात्वापहृतमात्मानं रामरागातिशयनात् । सीता शोकवशीभूता त्रिललापार्तनिस्वनात् ॥९१॥
 ततः स्वपुरुषासक्तहृदयां कृतरोदनाम् । दृष्ट्वा सीतामभूत् किञ्चिद् विरागीव दशाननः ॥९२॥
 अचिन्तयन्न च कास्या कृतोऽन्यत्स्यैव कस्यचित् । यदियं रीति सक्तसुः कर्णं विरहाकुला ॥९३॥
 कीर्तयन्ती गुणान् भूय, साधूनामभिसम्मतान् । पुरुषान्तरसम्बन्धानतिशोकपरायणा ॥९४॥
 तत्किमेतेन खड्गेन मूढा व्यापादयाम्यमूम् । अथवा न क्षियं हन्तुं मम चेतः प्रवर्तते ॥९५॥
 न प्रसादयितुं शक्यः क्रुद्धः शीघ्र नरेश्वरः । अभीष्टं लब्धुमथवा क्षुतिर्वा कीर्तिरेव वा ॥९६॥
 विद्या वाभिमता लब्धुं परलोकेऽपि वा । प्रिया वा मनसो भार्या यद्वा किञ्चित् समीहितम् ॥९७॥
 साधूनामग्रतः पूर्वं व्रतमेतन्मयाजितम् । अग्रसन्ना न भोक्तव्या परस्य स्त्रीमप्येति च ॥९८॥

उसकी आत्मा कामकी दाहसे दग्ध हो रही थी तथा उसने समस्त धर्म बुद्धिको भुला दिया था ॥८३-८४॥ तदनन्तर स्वामीकी प्रिय वनिताको हरी जाती देख जिसकी आत्मा क्रोधाग्निसे प्रव्वलित हो रही थी ऐसा जटायु वेगसे आकाशमें उड़कर खूनसे गीले रावणके वक्षःस्थल रूपी खेतकी अत्यन्त तीक्ष्ण अभ्रभागको धारण करनेवाले नख रूपी हलोकें द्वारा जोतने लगा ॥८५-८६॥ तत्पश्चात् अतिशय बलवान् जटायुने वायुके द्वारा वस्त्रोंको फाड़नेवाले कठोर तथा वेगशाली पक्षोंके आघातसे रावणके समस्त शरीरको क्षिन्न-भिन्न कर डाला ॥८७॥ तदनन्तर इष्ट वस्तुमें बाधा डालनेसे क्रोधको प्राप्त हुए रावणने हस्ततलके प्रहारसे ही जटायुको मारकर पृथ्वीतल पर भेज दिया अर्थात् नीचे गिरा दिया ॥८८॥ तदनन्तर कठोर प्रहारसे जिसका मन अत्यन्त विकल हो रहा था ऐसा दुःखसे भरा जटायु पक्षी के-कें करता हुआ मूर्च्छित हो गया ॥८९॥ तत्पश्चात् बिना किसी विघ्न-बाधाके सीताको पुष्पक विमान पर चढ़ाकर कामको ठीक जाननेवाला रावण इच्छानुसार चला गया ॥९०॥ सीताका राममें अत्यधिक राग था इसलिए अपने आपको अपहृत जान शोकके वशीभूत हो वह आर्तनाद करती हुई विलाप करने लगी ॥९१॥ तदनन्तर अपने भर्तामें जिसका चित्त आसक्त था ऐसी सीताको रोती देख रावण कुछ विरक्त-सा हो गया ॥९२॥ वह विचार करने लगा कि इसके हृदयमें मेरे लिए आदर ही क्या है यह तो किसी दूसरेके लिए ही करुणरुदन कर रही है उसमें ही इसके प्राण आसक्त हैं तथा उसीके विरहसे आकुल हो रही है ॥९३॥ सत्पुरुषोंको इष्ट हैं ऐसे अन्य पुरुष सम्बन्धी गुणोंका बार-बार कथन करती हुई यह अत्यन्त शोकके धारण करनेमें तत्पर है ॥९४॥ तो क्या इस खड़्गसे इस मूर्खोंको मार डालें अथवा नहीं, स्त्रीको मारनेके लिए मेरा चित्त प्रवृत्त नहीं होता ॥९५॥ अथवा अधीर होनेकी बात नहीं है क्योंकि जो राजा कुपित होता है उसे शीघ्र ही प्रसन्न नहीं किया जा सकता । इसीप्रकार इष्ट वस्तुका पाना, कान्ति अथवा कीर्तिका प्राप्त करना अभीष्ट विद्या, पारलौकिकी क्रिया, मनको आनन्द देनेवाली भार्या अथवा और भी जो कुछ अभिलषित पदार्थ हैं वे सहसा प्राप्त नहीं हो जाते—उन्हें प्राप्त करनेके लिए समय लगता ही है ॥९६-९७॥ मैंने साधुओंके समक्ष पहले यह

१. नखरूपहलैः । २. दशाननस्येदं दाशाननम् । दशानन-म०, ख० । ३. निस्वनान् म० । ४. मूढा म० । ५. अभीष्टाङ्गम् । अभीष्टलब्ध ज० ।

रक्षिदं व्रतं तस्मात् प्रसादं प्रापयाम्यमुम् । भविष्यत्यनुकूल्यं कालेन मम सम्पदा ॥६६॥
 इति सञ्चित्य तामङ्गात्तले स्वस्मिन्नतिष्ठिपत् । प्रतीचते हि तत्काल मृत्युः कर्मप्रचोदितः ॥१००॥
 अथेपुवारिधाराभिराकुलं रणमण्डलम् । प्रविष्टं राममालोक्य सुमित्रातनयोऽगदत् ॥१०१॥
 हा कष्ट देव कस्मात् त्वं भूमिमेतामुपागतः । एकाकी मैथिली मुक्त्वा विपिने विघ्नसङ्कुले ॥१०२॥
 तेनोक्तस्त्वद्रवं श्रुत्वा प्राप्नोऽस्मि त्वरयान्वितः । सोऽनोचद् गम्यतां शीघ्रं न साधु भवता कृतम् ॥१०३॥
 सर्वथा परमोत्साहो जय त्वं बलिर्न रिपुम् । इत्युक्त्वा शङ्कया युक्तो जानकीं प्रति चञ्चलः ॥१०४॥
 ज्ञानातिवर्तते यावत् तावत्तत्र न दृश्यते । सीतेति हतवज्रोतो रामश्च्युतममन्यत ॥१०५॥
 हा सीत इति भाषित्वा मूर्च्छितो धरणीमगात् । भर्ता तेन परिष्वक्ता सा बभूव विभूषिता ॥१०६॥
 संज्ञां प्राप्य ततो दृष्टिं निक्षिपन् वृक्षसङ्कुले । इति प्रेमपरीतात्मा जगादात्यन्तमाकुलः ॥१०७॥
 अथि देवि क्व यातासि प्रयच्छ वचनं हृतम् । चिरं किं प्रतिहासेन दृष्टासि तस्मध्वजा ॥१०८॥
 पृष्ठागच्छ-(प्र)-यातोऽस्मि कार्यं कोपेन किं प्रिये । जानात्येव चिरं कोपात्तत्र देवि न मे सुखम् ॥१०९॥
 एवं कृतवनिर्भ्रम्यन् प्रदेशं तं सुगह्वरम् । गृध्रं मुमुक्षुमैषिष्ठ कृतकैकास्वनं शनैः ॥११०॥
 ततोऽन्यन्तविपण्णात्मा त्रियमाणस्य पक्षिणः । कर्णजापं ददौ प्राप्सस्स तेनामरकायताम् ॥१११॥
 तस्मिन् कालगते पद्मः शोकार्तः केवले वने । वियोगदहनन्यासः पुनर्नृत्तमग्निश्रियत् ॥११२॥

नियम लिया था कि जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी मुझपर प्रसन्न नहीं रहेगी मैं उसका उपभोग नहीं करूँगा ॥६८॥ इसलिए इस व्रतकी रक्षा करता हुआ मैं इसे प्रसन्नताको प्राप्त कराता हूँ संभव है कि यह समय पाकर मेरी सम्पदाके कारण मेरे अनुकूल हो जावेगी ॥६९॥ ऐसा विचार कर रावणने सीताको गोदसे हटा कर अपने समीप ही बैठा दिया सो ठीक ही है क्योंकि कर्मसे प्रेरित मृत्यु उसके योग्य समयकी प्रतीक्षा करती ही है ॥१००॥

अथानन्तर बाणरूपी जलकी धाराओंसे आकुल युद्धके मैदानमें रामको प्रविष्ट देख लक्ष्मण ने कहा ॥१०१॥ कि हाय देव ! वड़े दुःखकी बात है आप विघ्नोसे व्याप्त वनमे सीताको अकेली छोड़ इस भूमिमें किस लिये आये ? ॥१०२॥ रामने कहा कि मैं तुम्हारा शब्द सुनकर शीघ्रतासे यहाँ आया हूँ । इसके उत्तरमे लक्ष्मणने कहा कि आप शीघ्र ही चल जाइये आपने अच्छा नहीं किया ॥१०३॥ 'परम उत्साहसे भरे हुए तुम बलवान् शत्रुको सब प्रकारसे जीतो' इस प्रकार कह कर शङ्कासे युक्त तथा चञ्चलचित्तके धारक राम जानकीकी ओर वापिस चले गये ॥१०४॥ जब राम जगभरमे वहाँ वापिस लौटे तब उन्हें सीता नहीं दिखाई दी । इस घटनासे रामने अपने चित्तको नष्ट हुआ-सा अथवा च्युत हुआ-सा माना ॥१०५॥ हा सीते ! इस प्रकार कहकर राम मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े और भर्ताके द्वारा आलिङ्गित भूमि सुशोभित हो उठी ॥१०६॥ तदनन्तर जब संज्ञाको प्राप्त हुए तब वृत्तोसे व्याप्त वनमे इधर-उधर दृष्टि डाल हुये प्रेमपूर्ण आत्माके धारक राम, अन्यन्त व्याकुल होते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥१०७॥ कि हे देवि ! तुम कहाँ चली गई हो ? शीघ्र ही वचन देओ । चिरकाल तक हँसी करनेसे क्या लाभ है ? मैंने तुम्हें वृक्षोंके मध्य चलती हुई देखा है ॥१०८॥ हे प्रिये ! आओ-आओ, मैं प्रयाण कर रहा हूँ, क्रोध करनेसे क्या प्रयोजन है ? हे देवि ! तुम यह जानती हो कि दीर्घकाल तक तुम्हारे क्रोध करनेसे मुझे सुख नहीं होता है ॥१०९॥ इस प्रकार शब्द करने तथा गुफाओंसे युक्त उस स्थानमे भ्रमण करते हुए रामने धीरे-धीरे के-के करते हुए मरणोन्मुख जटायुको देखा ॥११०॥ तदनन्तर अत्यन्त दुःखित होकर रामने उस मरणोन्मुख पक्षीके कानमें णसोकर मन्त्रका जाप दिया और उसके प्रभावसे वह पक्षी देवपर्यायको प्राप्त हुआ ॥१११॥ वियोगाग्निसे व्याप्त राम उस पक्षी

समाश्रय्य च सर्वत्र न्यस्य दृष्टिं समाकुलः । दीनं ललाप^१ नैराश्याद् भूतेनेवार्तमानसः ॥११३॥
 रन्ध्रं प्राप्य वने भीमे हा केनास्मि दुरात्मना । हरता जानकी कष्ट हतो दुष्करकारिणा ॥११४॥
 दर्शयस्तामथोत्सृष्टां^२ हरन् शोकमथैषतः । को नाम बान्धवस्व मे वनेऽस्मिन् परमेष्ठ्यति ॥११५॥
 भो वृक्षाश्रयकच्छाया सरोजदलोचना । सुकुमाराङ्गिका^३ भीरुस्वभावा वरगामिनी ॥११६॥
 चितोत्सवकरी पद्मरजोगन्धिसुखानिला । अपूर्वा यौषिती सृष्टिर्दृष्टा स्यात् काचिदङ्गना ॥११७॥
 कथं निरुत्तरा यूयमित्युक्त्वा तद्गुणैर्हृतः । पुनर्मूर्च्छांपरीतात्मा धरणीतलमगमत् ॥११८॥
 समाश्रय्य च संकुद्धो वज्रावर्त महाधनुः । आयोप्यास्फालयन्मुक्तं^४ टङ्कारपुरुनिस्वनम् ॥११९॥
 सिंहानां भोतिजननं नृसिंहः सिंहनिस्वनम् । सुमोच सुहृत्पुत्रमुत्कर्णद्विरदश्रुतम् ॥१२०॥
 भूयो विपादमागत्य त्वक्तृचापोत्तरीयकम् । उपविश्य प्रमार्दं स्वं शुशोच फलितं क्षणात् ॥१२१॥
 दुःश्रुत्य दुर्विमर्शेण भजता त्वरिता गतिम् । धर्मधीरिव भूदेन हारिता हा मया प्रिया ॥१२२॥
 मानुषत्वं परिभ्रष्टं गहने भवसङ्कटे । प्राप्नुमत्यद्भुत भूयः प्राणिनाशुभकर्मणा ॥१२३॥
 त्रैलोक्यगुणवद्भक्त पतितं निम्नगापती । लभेत कः पुनर्बन्धः कालेन महताप्यलम् ॥१२४॥
 वनितामृतमेतन्मे कराङ्गस्थं महागुणम् । प्रवष्टं सङ्गतिं भूयः केनोपायेन यास्यति ॥१२५॥
 वनेऽस्मिन् जननिर्मुक्तं कस्य दोषः प्रदीयते । नूनं मत्प्रागकोपेन क्वापि याता तपस्विनी ॥१२६॥

के मरने पर शोकसे पीड़ित हो निर्जन वनमें पुनः मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥११२॥ जब सचेत हुए तब सब ओर दृष्टि डालकर निराशताके कारण व्याकुल तथा खिन्न चित्त होकर करुण विलाप करने लगे ॥११३॥ वे कहने लगे कि हाय-हाय भयङ्कर वनमें छिद्र पाकर कठोर कार्य करनेवाले किसी दुष्टने सीताका हरण कर मुझे नष्ट किया है ॥११४॥ अब विछुड़ी हुई उस सीताको दिखा कर समस्त शोकको दूर करता हुआ कौन व्यक्ति इस वनमें मेरे परम बान्धवपनेको प्राप्त होगा ॥११५॥ हे वृक्षो ! क्या तुमने कोई ऐसी स्त्री देखी है ? जिसकी चम्पाके फूलके समान कान्ति है, कमलदलके समान जिनके नेत्र हैं, जिसका शरीर अत्यन्त सुकुमार है, जो स्वभावसे भीरु है, उत्तम गतिसे युक्त है, हृदयमें आनन्द उत्पन्न करनेवाली है, जिसके मुखकी वायु कमलकी परागके समान सुगन्धित है तथा जो स्त्रीविषयक अपूर्व सृष्टि है ॥११६-११७॥ अरे तुम लोग निरुत्तर क्यों हो ? इस प्रकार कह कर उसके गुणोंसे आकृष्ट हुए राम पुनः मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े ॥११८॥ जब सचेत हुए तब कुपित हो वज्रावर्त नामक महाधनुषको चढ़ाकर टङ्कारका विशाल शब्द करते हुए आस्फालन करने लगे । उसी समय नरश्रेष्ठ रामने बार-बार अत्यन्त तीक्ष्ण सिंहनाद किया । उनका वह सिंहनाद सिंहोंको भय उत्पन्न करनेवाला था तथा हाथियोंने कान खड़े कर उसे डरते-डरते सुना था ॥११९-१२०॥ पुनः विषादको प्राप्त होकर तथा धनुष और उत्तरच्छद्मको उतारकर बैठ गये और तत्काल ही फल देनेवाले अपने प्रसादके प्रति शोक करने लगे ॥१२१॥ हाय-हाय जिस प्रकार मोही मनुष्य धर्मबुद्धिको हरा देता है उसी प्रकार लक्ष्मणके सिंहनादको अच्छी तरह नहीं श्रवणकर विचारके बिना ही शीघ्रतासे जाते हुए मैंने प्रियाको हरा दिया है ॥१२२॥ जिस प्रकार संसाररूपी वनमें एक बार छूटाहुआ मनुष्य भव, अशुभकार्य करनेवाले प्राणीको पुनः प्राप्त करना कठिन है उसी प्रकार प्रियाका पुनः प्राप्ता कठिन है । अथवा समुद्रमें गिरे हुए त्रिलोकी मूल्यरत्नको कौन भाग्यशाली मनुष्य दीर्घकालमें भी पुनः प्राप्त कर सकता है ? ॥१२३-१२४॥ यह महागुणोंसे युक्ता वनितारूपी अमृत मेरे हाथमें स्थित होने पर भी नष्ट हो गया है सो अब पुनः किस उपायसे प्राप्त हो सकेगा ? ॥१२५॥ इस निर्जन वनमें किसे दोष दिया जाय ? जान पड़ता है कि मैं उसे छोड़कर गया था इसी क्रोधसे वह बेचारी कहीं चली

अरण्ये निर्मनुष्येऽस्मिन्कुसुपेय प्रसाद्य च । पृच्छामि दुष्कृताचारो यो मे वार्तां निवेदयेत् ॥१२७॥
 इय मे प्राणतुल्येति चेतःश्रवणयोः परम् । कुर्यात्पद्माद्न को मे वचसासृन्दायिता ॥१२८॥
 दयावानौदशः कोऽस्मिन् लोके पुरुषपुङ्गवः । यो मे स्मिताननौ कान्तां दर्शयेदववर्जिताम् ॥१२९॥
 हृदयागारमुदीर्य कान्ताविरहचहिना । उदन्तजलदानेन को मे निर्वोपयिष्यति ॥१३०॥
 इत्युक्त्वा परमोद्विग्नो महींनिहितलोचनः । असकृत् किमपि ध्यायंस्तस्थौ निश्चलनिग्रहः ॥१३१॥
 अथ नात्यन्तदूरस्थचक्रवाकीस्त्वन कलम् । समाकर्ण्य दृशं तस्यां श्रवणं च न्यवापयत् ॥१३२॥
 अचिन्त्यदमुप्याद्रेस्तस्मिन् गन्धसूचितम् । किमिदं पङ्कजवनं भवेद्याता कुतूहलात् ॥१३३॥
 दृष्ट्वा मनोहारि नानाकुसुमसङ्कुलम् । स्थानं हरितचैतोऽस्याः कदाचित्कणमात्रकम् ॥१३४॥
 जगाम च तमुद्देशं यावच्चक्राहसुन्दरी । मया विना क्व यासीति पुनरुद्वेगमागमत् ॥१३५॥
 भो भो महीधराधीश ! धातुभिर्विविधैश्चित ! स्रजुर्दशरथस्य त्वां पश्चात्स्यः परिपृच्छते ॥१३६॥
 विपुलस्तनत्राङ्गा विभोषो हसगामिनी । सञ्ज्ञितम्भा भवेद् दृष्टा सीता मे मनसः प्रिया ॥१३७॥
 दृष्टादृष्टेति किं वक्षि ब्रूहि क्व सा क्व सा । केवलं निगदस्येवं प्रतिशब्दोऽप्यमीदृशः ॥१३८॥
 इत्युक्त्वा पुनरभ्यासीत् किमदृष्टेन चोदिता । कुतान्तश्चतुष्पा वाला समासञ्ज्ञा सती सती ॥१३९॥
 चण्डोर्मिसालयाऽन्यन्त वेगवत्याविवेकया । कान्ता हृता भवेन्नद्या विद्येव दुरितेच्छया ॥१४०॥

गई है ॥१२६॥ मैं पापाचारी इस निर्जन वनमें किसके पास जाकर तथा उसे प्रसन्न कर पूछूँ जो मुझे प्रियाका समाचार बता सके ॥१२७॥ “यह तुम्हारी प्राणतुल्य प्रिया है” इस प्रकार अमृतको प्रदान करनेवाले वचनसे कौन पुरुष मेरे मन और कानोंको परम आनन्द प्रदान कर सकता है ? ॥१२८॥ इस संसारमें ऐसा कौन दयालु श्रेष्ठ पुरुष है जो मेरी सुसङ्कपाती हुई निष्पाप कान्ताको मुझे दिखा सकता है ? ॥१२९॥ प्रियाके विरहरूपी अग्निसे जलते हुए मेरे हृदय-रूपी घरको कौन मनुष्य समाचाररूपी जल देकर शान्त करेगा ? ॥१३०॥ इस प्रकार कह कर जो परम उद्वेगको प्राप्त थे, पृथ्वीपर जिनके नेत्र लग रहे थे, और जिनका शरीर अत्यन्त निश्चल था ऐसे राम बार-बार कुछ ध्यान करते हुए बैठे थे ॥१३१॥

अथानन्तर कुछ ही दूरीपर उन्होंने चक्रवाका मनोहर शब्द सुना सो सुनकर उस दिशामें दृष्टि तथा कान दोनों ही लगाये ॥१३२॥ वे विचार करने लगे कि इस पर्वतके समीप ही गन्धसे सूचित होनेवाला कमल वन है सो क्या वह कुतूहल वश उस कमल वनमें गई होगी ? ॥१३३॥ नाना प्रकारके फूलोंसे व्याप्त तथा मनको हरण करनेवाला वह स्थान उसका पहलेसे देखा हुआ है सो संभव है कि वह कदाचित् क्षणभरके लिए उसके चित्तको हर रहा हो ॥१३४॥ ऐसा विचारकर वे उस स्थानपर गये जहाँ चक्रवी थी । फिर ‘मेरे विना वह कहाँ जाती है’ यह विचारकर वे पुनः उद्वेगको प्राप्त हो गये ॥१३५॥ अब वे पर्वतको लक्ष्यकर कहने लगे कि हे नाना प्रकारकी धातुओंसे व्याप्त पर्वतराज ! राजा दशरथका का पुत्र पद्म (राम) तुमसे पूछता है ॥१३६॥ कि जिसका शरीर स्थूल स्तनोसे नम्रीभूत है, जिसके ओंठ विम्बके समान हैं । जो हंसके समान चलती है तथा जिसके उत्तम नितम्ब हैं ऐसी मनको आनन्द देनेवाली सीता क्या आपने देखी है ? ॥१३७॥ उसी समय पर्वतसे टकराकर रामके शब्दोंकी प्रतिध्वनि निकली जिसे सुनकर उन्होंने कहा कि क्या तुम यह कह रहे हो कि हों देखी है देखी है तो बताओ वह कहाँ है ? कहाँ है ? कुछ समय बाद निश्चय होनेपर उन्होंने कहा कि तुम तो केवल ऐसा ही कहते हो जैसा कि मैं कह रहा हूँ जान पड़ता है यह इस प्रकारकी प्रतिध्वनि ही है ॥१३८॥ इतना कहकर वे पुनः विचार करने लगे कि वह सती वाला दुर्दैवसे प्रेरित होकर कहाँ गई

१. स्मिताननः म०, व० । २. समाचारनपसलिलदानेन । ३. सञ्ज्ञितम्बं म० ।

किंवाऽत्यन्तभ्रुवातेन नितान्तक्रूरचेतसा । इभारिणा भवेदभुक्ता साधुवर्गस्य वत्सला ॥१७१॥
 पशोर्भौमैककार्यस्य सिंहस्योत्केसरस्य सा । भ्रियते दृष्टिमात्रेण नखादिस्पर्शनाहिना ॥१७२॥
 भ्राता मम मृधे भोमे लक्ष्मणः संशय भ्रितः । सीतया विरहश्चायं तेन जानामि नो रतिम् ॥१७३॥
 जीवलोकमिमं वेद्मि सकलं प्राप्तसंशयम् । जानामि च पुनः शून्यमहो दुःखस्य चित्रता ॥१७४॥
 दुःखस्य यावदेकस्य नावसानं ब्रजान्यहम् । द्वितीयं तावदायातमहो दुःखार्णवो महान् ॥१७५॥
 खलपादस्य खण्डोऽयं हिमदग्धस्य पावकः । स्थलितस्यावटे पातः प्रायोऽनर्था बहुत्वगाः ॥१७६॥
 ततः पर्यन्तं विपिने पश्यन्मृगगुरुमतः । विवेश स्वाश्रयं भूयः श्रिया शून्यमरण्यकम् ॥१७७॥
 अत्यन्तद्रीनवदनः कृत्वा निर्ययौ धनुर्लताम् । सितश्लक्ष्णपटच्छिद्यस्तस्यौ पर्यस्य भूतले ॥१७८॥
 भूयो भूयो बहु ध्यायन् चणनिखलविग्रहः । निराशतां परिप्रासः सूकारमुखाननः ॥१७९॥

अतिरुचिराच्छुन्दः

महानरानिति पुरुदुःखलंघितान् पुराकृतादसुकृतकर्मजृम्भणात् ।

अहो जना भृशमवलोक्य दीयतां मतिः सदा जिनवरधर्मकर्मणि ॥१५०॥

होगी ? जिस प्रकारकी इच्छा विद्याको हर लेती है उसी प्रकार जिसमें बड़ी बड़ी तीक्ष्ण तरङ्गें उठ रही हैं । जो अत्यन्त वेगसे बहती है तथा जिसमें विवेक नहीं है ऐसी नदी ने कहीं प्रियाको नहीं हर लिया हो ॥१३६-१४०॥ अथवा अत्यन्त भूखसे पीड़ित तथा अतिशय क्रूर चित्तके धारक किसी सिंहने साधुओंके साथ स्नेह करनेवाली उस प्रियाको खा लिया है ॥१४१॥ जिसका कार्य अत्यन्त भयंकर है तथा जिसकी गर्दनके बाल खड़े हुए हैं ऐसे सिंहके देखने मात्रसे नखादिके स्पर्शके बिना ही वह मर गई होगी ॥१४२॥ मेरा भाई लक्ष्मण भयंकर युद्धमें संशयको प्राप्त है और इधर यह सीताके साथ विरह आ पड़ा है इससे मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता ॥१४३॥ मैं इस समस्त संसारको संशयमें पड़ा जानता हूँ अथवा ऐसा जान पड़ता है कि समस्त संसार शून्य दशाको प्राप्त हुआ है सो ठीक ही है क्योंकि दुःखकी बड़ी विचित्रता है ॥१४४॥ जब तक मैं एक दुःखके अन्तको प्राप्त नहीं हो पाता हूँ तब तक दूसरा दुःख आ पड़ता है । अहो ! यह दुःख रूपी सागर बहुत विशाल है ॥१४५॥ प्रायः देखा जाता है कि जो पैर लंगड़ा होता है उसीमें चोट लगती है, जो वृक्ष तुपारसे सूख जाता है उसीमें आग लगती है और जो फिसलता है वही गर्तमें पड़ता है प्रायः करके अनर्थ बहु संख्यामें आते हैं ॥१४६॥ तदनन्तर वनमें भ्रमण कर मृग और पक्षियोंको देखते हुए राम अपने रहनेके स्थान स्वरूप वनमें पुनः प्रविष्ट हुए । वह वन उस समय सीताके बिना शोभासे शून्य जान पड़ता था ॥१४७॥

तदनन्तर जिनका मुख अत्यन्त दीन था तथा जिन्होंने सफेद और महीन वस्त्र ओढ़ रखे थे ऐसे राम धनुषको डोरी रहितकर पृथिवी पर पड़े रहे ॥१४८॥ वे बार-बार बहुत देर तक ध्यान करते रहते थे, क्षण-क्षणमें उनका शरीर निश्चल हो जाता था, वे निराशताको प्राप्त थे तथा सूकार शब्दसे उनका मुख शब्दाद्यमान हो रहा था ॥१४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि अहो जनो ! इस प्रकार पूर्वोपार्जित पाप कर्मके उदयसे बढ़े-बढ़े पुरुषोंको अतिशय दुःखी

न ये भवप्रभवविकारसङ्गतेः पराङ्मुखा जिनवचनान्युपासते ।
वशीकृतान् शरणविवर्जितानमून् तपत्यलं स्वकृत्तरविः सुदुस्सहः ॥१५१॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते सीताहरणरामविलापमिधानं
नामचतुश्चत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४४॥

देख, जिनेन्द्र कथित धर्ममे सदा बुद्धि लगाओ ॥१५०॥ जो मनुष्य संसार सम्यन्धी विकारोकी संगतिसे दूर रहकर जिनेन्द्र भगवान्‌के वचनोकी उपासना नहीं करते हैं उन शरणरहित तथा इन्द्रियोके वशीभूत मनुष्योको अपना पूर्वोपार्जित कर्मरूपी दुःसह सूर्य सदा संतप्त करता रहता है ॥१५१॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमे सीताहरण और राम-विलापका वर्णन करनेवाला चवालीसवों पर्व समाप्त हुआ ॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशत्तमं पर्व

एतस्मिन्नन्तरं प्रातः पूर्वशिष्टो विराधितः । समेतः सचिवैश्चरैः सन्नद्धः शस्त्रसंकुलः ॥१॥
एकाकिनमती ज्ञाता युद्धधर्मानं महानरम् । स्वार्थसिद्धिसंभूतिं दीप्यमानं महौजसा ॥२॥
जानुं चितितले न्यस्य मूर्द्धन्यस्तकरद्वयः । अज्रवीदिति नम्राङ्गः परमं विनयं वहन् ॥३॥
नाथ ! भक्तोऽस्मि ते किञ्चिद्विज्ञाप्यं श्रूयतां मम । त्वद्विधानां हि ससर्गो निकारक्षयकारणम् ॥४॥
कृतार्थभाषणस्यास्य करं विन्यस्य मस्तके । पृष्ठतस्तिष्ठ भाभैर्पारित्यवोचत लक्ष्मणः ॥५॥
ततः प्रणम्य भूयोऽसौ महाविस्मयसन्नतः । जगाद क्षणसंज्ञातमहातेजाः प्रियं वचः ॥६॥
महाशक्तिमिमं शशुं त्वमेकं विनिवारय । रणाजिरे भटान् शेषान् निधनं प्रापयाम्यहम् ॥७॥
इत्युक्त्वा 'द्वीपण सैन्य तेन शीघ्रं विराधितम्' । अथावद् बलसम्पन्नः प्रह्वलद्वेतिसंहतिः ॥८॥
उवाच च चिरात् सोऽहं चन्दोदरनुपात्मजः । प्राप्नो विराधितः ख्यातो रणातिथ्यसमुत्सुकः ॥९॥
क्रेदानीं गम्यते साधु स्थीयतां युद्धशौण्डिकैः । अथ तद्वः प्रदास्यामि यत्कृतान्तोऽसिदाहणः ॥१०॥
इत्युक्ते वैरसम्पन्नो भटानामतिसङ्कुलः । बभूव शस्त्रसम्पातः सुमहान् जनसंघयः ॥११॥
पत्तयः पत्तिभिलम्नाः सादिनः सादिभिः समम् । गजिनो गजिभिः सत्रा रथिनो रथिभिः सह ॥१२॥

अथानन्तर इसी बीचमें जिसका पहले उल्लेख किया गया था ऐसा खरदूषणका शत्रु विराधित, मन्त्रियों और शूर-वीरोंसे सहित अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो वहाँ आया ॥१॥ उसने महातेजसे देदीप्यमान लक्ष्मणको अकेला युद्ध करते देख महापुरुष समझा और यह निश्चय किया कि इससे हमारे स्वार्थकी सिद्धि होगी ॥२॥ पृथिवीतल पर घुटने टेककर तथा मस्तकपर दोनों हाथ लगाकर परम विनयको धारण करनेवाले विराधितने नम्र होकर इस प्रकार कहा कि हे नाथ ! मैं आपका भक्त हूँ मुझे आपसे कुछ निवेदन करना है सो सुनिये क्योंकि आप जैसे महापुरुषोंकी संगति दुःखक्षयका कारण है ॥३-४॥ विराधित आधी-चात ही कह पाया था कि लक्ष्मणने उसके मस्तकपर हाथ रखकर कहा कि हमारे पीछे खड़े हो जाओ ॥५॥

तदनन्तर जो महा आश्चर्यसे युक्त था और जिसे तत्काल महातेज उत्पन्न हुआ था ऐसा विराधित पुनः प्रणामकर प्रिय वचन बोला कि इस महाशक्तिशाली एक शत्रु-खरदूषणको तो आप निवारण करो और युद्धके आँगनमें जो अन्य योद्धा हैं मैं उन सबको मृत्यु प्राप्त कराता हूँ ॥६-७॥ इतना कहकर उसने शीघ्र ही खरदूषणकी सेनाको नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया । वह सेनाके साथ बहलहाते शस्त्रोंके समूहसे युक्त हो खरदूषणकी सेनाकी ओर दौड़ा ॥८॥ उसने सामने जाकर कहा कि मैं राजा चन्दोदरका पुत्र विराधित युद्धमे आतिथ्य पानेके लिए उत्सुक हुआ चिरकाल बाद आया हूँ ॥९॥ अब कहाँ जाइयेगा ? जो युद्धमे शूर-वीर हैं वे अच्छी तरह खड़े हो जावे । आज मैं आप लोगोंको वह फल दूँगा जो कि अत्यन्त दारुण-कठोर यमराज देता है ॥१०॥ इतना कहते ही दोनों ओरके योद्धाओंमे बैर भरा तथा मनुष्योंका सहारा करने-वाला बहुत भारी शस्त्रोंका संपात होने लगा—दोनों ओरसे शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी ॥११॥ पैदल पैदलोंसे, घुड़सवार घुड़सवारोंसे, गजसवार गजसवारोंसे और रथसवार रथसवारोंके

१. नगरे म० । २. श्रैः म० । ३. सार्थसम्पद् विसम्भूतिं म०, व० । ४. कृतार्थभाषणस्य-म० । ५. दूष-
णस्येदं दौषणम् । ६. विराधितः क०, ख०, ब० । ७. सम्पन्न म० । ८. प्रज्वलद्वेतिसंहतिः । ९. वचः
सोत्साहं म० ।

परस्परकृताह्वनैरति^१ संहर्षिभिर्मतैः । संकुलैर्जनिते युद्धे^२ कृतान्योन्यमहायुधैः ॥१३॥
 रणजिरे परं तेजो भजमानो नवं नवम् । दिव्यकायैकुमुदम्य शरच्छत्रादिगम्भरः ॥१४॥
 खरेण सह सग्रामं चक्रे परमैरवम् । लक्ष्मीधरः शुनासीरः स्वामिनेव सुरदिपाम् ॥१५॥
 ततः क्रोधपरीतेन खरेण खरनिस्त्वनम् । अवाचि लक्ष्मणः^३ संहृष्टे स्फुरद्बोहितचक्षुषा ॥१६॥
 ममामजमुदासीनं हत्वा परमचापल । कान्ताकुचौ च संमुख्य पापाद्यापि कं गम्यते ॥१७॥
 अथ ते निशितैर्बाणैर्जीवितं नाशयाम्यहम् । कृत्वा तथाविधं कर्म फलं तस्यानुभूयताम् ॥१८॥
 भव्यन्तक्षुद्रं निर्लज्जं परस्त्रीसङ्गलोलुपं । ममामिमुखतां गत्वा परलोकं ब्रजामुना ॥१९॥
 ततस्तैः परपैर्वाक्यैः समुदीपितमानसः । उवाच लक्ष्मणो वार्यं पूरयन् सकलं नभः ॥२०॥
 किं ब्रूया गर्जसि क्षुद्रं दुःखेचरं पुना समः । अहं नयामि तत्र त्वां यत्र ते तनयो गतः ॥२१॥
 इत्युन्त्वावस्थितं ज्योमिन् विरथं खरदूषणम् । चकार लक्ष्मणः क्षिप्रचापनेतुं च निःप्रभम् ॥२२॥
 ततोऽसौ पतितः चोष्णं नभस्तः क्रोधलोहितः । प्रचाणेष्विव पुण्येषु ग्रहस्तरलविग्रहः ॥२३॥
 खड्गांशुलीढदेहश्च सौमित्रि प्रत्ययावत । असिररत्नं समाकृष्य सोऽन्यस्यामिमुखं वर्यौ ॥२४॥
 इत्यासन्नं तथोरामोच्चित्रं युद्धं भयानकम् । मुमुक्षुः स्वस्थिता देवाः सपुष्पान् साधुनिस्त्वनान् ॥२५॥
 तावच्छिरसि संकुद्रो दूषणस्य न्यपातयत् । सूर्यहासं यथार्थार्थं लक्ष्मणोऽप्युत्तविग्रहः ॥२६॥

साथ भिड़ गये ॥१२॥ तदनन्तर जो परस्पर एक दूसरेको बुला रहे थे, जो अत्यन्त हर्षित हो रहे थे जो अत्यन्त संकुल-व्यग्र थे और जिन्होंने एक दूसरेके बड़े-बड़े शास्त्र काट दिये थे ऐसे योद्धाओंके द्वारा खर महायुद्ध हो रहा था इधर रणके मैदानमें नवीन-नवीन परम तेजको धारण करनेवाला लक्ष्मण, दिव्यधनुष उठाकर बाणोंसे दिशाओं और आकाशको व्याप्त करता हुआ खरके साथ उस तरह अत्यन्त भयंकर युद्ध कर रहा था जिस तरह कि इन्द्र दैत्येन्द्रके साथ करता था ॥१३-१५॥ तदनन्तर क्रोधसे व्याप्त एवं चञ्चल और लाल-लाल नेत्रोंका धारण करनेवाले खरदूषणने कठोर शब्दोंसे लक्ष्मणसे कहा कि हे अतिशय चपल पापी ! मेरे निर्वैर पुत्रको मार कर तथा मेरी स्त्रीके स्तनोंका स्पर्शकर अब तू कहाँ जाता है ? ॥१६-१७॥ आज तोचण बाणोंसे तेरा जीवन नष्ट करता हूँ तूने जैसा कर्म किया है वैसा फल भोग ॥१८॥ हे अत्यन्त क्रुद्ध ! निर्लज्ज ! परस्त्री संगका लोलुप ! अब मेरे सन्मुख आकर परलोकको प्राप्त हो ॥१९॥

तदनन्तर उन कठोर वचनोंसे जिनका मन प्रदीप्त हो रहा था ऐसे लक्ष्मणने समस्त आकाश-को गुजाते हुए निम्नांकित वचन कहे । उन्होंने कहा कि रे क्रुद्ध विद्याधर ! तू कुत्तेके समान व्यर्थ ही क्यों गरज रहा है ? मैं जहाँ तेरा पुत्र गया है वहीं तुम्हे पहुँचावा हूँ ॥ २०-२१ ॥ इतना कहकर लक्ष्मणने आकाशमें स्थित खरदूषणको रथरहित कर दिया, उसका धनुष और पताका काट डाली तथा उसे निष्प्रभ कर दिया ॥२२॥ तदनन्तर जिस प्रकार पुण्यके क्षीण होने पर चञ्चल शरीरको धारण करनेवाला ग्रह पृथिवीपर आ पड़ता है उसी प्रकार क्रोधसे लाल लाल दीखनेवाला खरदूषण आकाशसे पृथिवीपर नीचे आ पड़ा ॥२३॥ खड्गकी किरणोंसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था ऐसा खरदूषण लक्ष्मणकी ओर दौड़ा और लक्ष्मण भी सूर्यहास खड्ग खींचकर उसके सामने जा डटे ॥२४॥ इस प्रकार उन दोनोंमें निकटसे नाना प्रकारका भयंकर युद्ध हुआ तथा स्वर्गमें स्थित देवोंने साधु साधु-धन्य धन्य शब्दोंके साथ साथ उनपर पुष्पोंकी वर्षा की ॥२५॥ उसी समय अखण्डित शरीरके धारक लक्ष्मणने कुपित हो खरदूरखणके सिरपर

१. गिति म० । २. कृतान्योन्य म० । ३. युद्धे । ४. दुष्टः खेचरः दुःखेचरस्तत्समुद्रौ हे दुःखेचर ।
 ५. लीनदेहश्च म० । ६. चित्रयुद्धं म० ।

निर्जीवः पतितः क्षोण्यां नभूय खरदूषणः । आलेख्यरविसङ्काशो यद्वत्स्वर्गच्युतोऽमरः ॥२७॥
 अथवा दयितो रत्या निश्छेदाभूतविग्रहः । रत्नपर्वतखण्डो वा दिग्गजेन निपातितः ॥२८॥
 अथ सेनापतिर्नाम्ना दूषणः ^१खारदूषणः । विरथं कर्तुमारम्भे चन्द्रोदरनृपात्मजम् ॥२९॥
 लक्ष्मणेनेषुणा तावद्गदां मर्मणि ^२ताडितः । घूर्णमानो गतो भूमिं समासासनमाधुत ॥३०॥
 दत्त्वा विराधितायाश्च तद्वल खारदूषणम् । प्रथमौ लक्ष्मणः प्रीतः प्रदेशे पङ्क संश्रितम् ॥३१॥
 यावत्पर्ययति तं सुसंभूमौ सीताविवर्जितम् । जगौ चोत्तिष्ठ किं नाथ याता क्व वद जानकी ॥३२॥
 उत्थाय सहसा दृष्ट्वा लक्ष्मण निर्मगाङ्गकम् । किञ्चित्पमोदमायातः परिष्वजनतत्परः ॥३३॥
 जगाद भद्र नो वेदि देवो केनापि किं हता । उत सिंहेन निर्युक्ता न दृष्टाव गवेषिता ॥३४॥
 पातालं किं भवेज्जीता नभःशिखरमेव वा । उद्देगेन विलीना वा सुकुमारशरीरिका ॥३५॥
 ततः क्रोधपरीताङ्गे विपादौ लक्ष्मणोऽगदत् । देवोद्देगानुबन्धेन न किञ्चिदपि कारणम् ॥३६॥
 नूनं दैत्येन केनापि हता केनापि जानकी । प्रियमाणाभिमां लप्स्ये कर्तव्योऽत्र न संशयः ॥३७॥
 परिसास्त्वोत्तमैर्वायैर्द्विचिधैः श्रुतिपेशलैः । विमलेनाम्भसा तस्य मुखं प्राञ्चालयन् सुधीः ॥३८॥
 श्रुत्वा तावदलं तार शब्दमुत्तानितानवः । अष्टच्छ्रुत् श्रीधरं रामः सभ्रम किञ्चिदापयन् ॥३९॥
 किमेया नर्दति क्षोणो गगनात्किमर्थं ध्वनिः । किं कृतं भवता पूर्वं शत्रुशेषं भयोन्मत्तम् ॥४०॥

यथार्थं नामवाला सूर्यहास खड्ग गिराया ॥२६॥ जिससे वह निर्जीव होकर चित्र लिखित सूर्यके समान उस तरह पृथिवीपर आ पड़ा जिस तरह कि स्वर्गसे च्युत हुआ कोई देव पृथिवीपर आ पड़ता है ॥२७॥ पृथिवीपर पड़ा निर्जीव खरदूषण ऐसा जान पड़ता था मानो निश्चेष्ट शरीरका धारक कामदेव ही हो अथवा दिग्गजके द्वारा गिराया हुआ रत्नगिरिका एक खण्ड ही हो ॥२८॥

तदनन्तर खरदूषणका दूषण नामक सेनापति चन्द्रोदर राजाके पुत्र विराधितको रथ रहित करनेके लिए उद्यत हुआ ॥२९॥ उसी समय लक्ष्मणने उसके मर्मस्थलमे धाणसे इतनी गहरी चोट पहुँचाई कि वेचारा घूमता हुआ पृथिवीपर आ गिरा और तत्काल मृत्युको प्राप्त हो गया ॥३०॥ तदनन्तर खरदूषणकी वह समस्त सेना विराधितके लिए देकर प्रीतिसे भरे लक्ष्मण उस स्थानपर गये जहाँ श्रीराम विराजमान थे ॥३१॥ जाते ही लक्ष्मणने सीता सहित रामको पृथिवीपर सोते हुए देखा । देखकर लक्ष्मणने कहा कि हे नाथ ! उठो और कहो कि सीता कहाँ गई है ? ॥३२॥ राम सहसा उठ बैठे और लक्ष्मणको धाव रहित शरीरका धारक देख कुछ हर्षित हो उनका आलिङ्गन करने लगे ॥३३॥ उन्होंने लक्ष्मणसे कहा कि हे भद्र ! मैं नहीं जानता हूँ कि देवीको क्या किसीने हर लिया है या सिंहने खा लिया है । मैंने इस वनमें बहुत खोजा पर दीखी नहीं ॥३४॥ उसे कोई पातालमे ले गया है या आकाशके शिखरमे पहुँचा दी गई है अथवा वह सुकुमारान्नी भयके कारण विलीन हो गई है ॥३५॥

तदनन्तर जिनका शरीर क्रोधसे व्याप्त था ऐसे लक्ष्मणने विपाद युक्त होकर कहा कि हे देव ! उद्देगीकी परम्परा बढ़ाने से कुछ प्रयोजन नहीं है ॥३६॥ जान पड़ता है कि जानकी किसी दैत्यके द्वारा हरी गई है सो कोई भी क्यों नहीं इसे धारण किये हो मैं अवश्य ही प्राप्त करूँगा इसमे संशय नहीं करना चाहिए ॥३७॥ इस प्रकार कानोंको प्रिय लगनेवाले विविध प्रकारके वचनोंसे सान्त्वना देकर बुद्धिमान लक्ष्मणने निर्मल जलसे रामका मुख धुलाया ॥३८॥ तदनन्तर उस समय अतिशय उच्च शब्द सुन कुछ-कुछ सभ्रमको धारण करनेवाले रामने ऊपरकी ओर मुखकर लक्ष्मणसे पूछा कि क्या यह पृथिवी शब्द कर रही है या आकाशसे यह शब्द आ रहा है ? क्या तुमने पहले मेरे द्वारा छोड़े हुए शत्रुको शेष रहने दिया है ? ॥३९-४०॥

सुमित्राजस्ततोऽनोचक्ष्याऽयं हि महाहवे । उपकारो महान् काले खेचरेण कृतो मम ॥४१॥
 चन्द्रोदरसुतः सोऽयं विराधित इति श्रुतः । अस्तौ वै दैवतेनैष हितेन परिदौकितः ॥४२॥
 चतुर्विधेन महता बलेनास्य सुचेतसः । आगच्छतो महानेप शब्दः धुत्सुपमागतः ॥४३॥
 विश्रब्धचेतयोर्भावत् कथेय वचने तयोः । तावन्महाबलोपेनः परिप्राप विराधितः ॥४४॥
 ततो जयजयस्वानं कृत्वा विरचिताङ्गलिः । जगाद् खेचरस्वामी प्रणतैः सचिवैः समम् ॥४५॥
 स्वामी त्व परमोऽस्माभिश्चिराद् प्राप्नो नरोत्तमः । अतः प्रदीयतामाज्ञा नाथ कर्तव्यवस्तुनि ॥४६॥
 इत्युक्तो लक्ष्मणोऽभार्णात् साधो शृणु सुवर्तनम् । गुरोः केनापि मे पत्नी हता दुर्नयवर्तिना ॥४७॥
 तथा विरहितः सोऽयं पशः शोकवशीकृतः । यदि नाम त्वजेत् प्राणांस्तावद्विं विशाम्यहम् ॥४८॥
 एतव्याणहदासक्तात् भद्रं प्राणानवैहि मे । ततोऽत्र प्रकृते किञ्चित्कर्तव्यं कारणं परम् ॥४९॥
 ततो नतानमः किञ्चित्स्वग्रसुरचिन्तयत् । कृत्वापि भ्रममेतं मे कष्टमाशा न पूरिता ॥५०॥
 सुखं सवसता स्वेष्टं नानावनविहारिणा । पश्यात्मा योजितः कष्टे कथं संशयगह्वरे ॥५१॥
 दुःखार्णवतर्गतं प्राप्नो यां यां गृह्णाम्यहं लताम् । उर्वेनोन्मूलयते सा सा कृतं विधिं वशं जगत् ॥५२॥
 तथाप्युत्साहमाश्रित्य कर्तव्यं समुपागतम् । करोमि कुर्वतो भद्रमभद्रं वास्वकर्मजम् ॥५३॥
 इति श्रुत्वा बह्वीरुपं भजन्नुत्साहसंस्तुतम् । जगाद् सचिवान् धीरो वचसा स्फुटतेजसा ॥५४॥
 पत्नी महानरस्यास्य नीता यत्रि महोत्सलम् । अयाकागं गिरि वारि स्थलं वा विपिनं पुरम् ॥५५॥
 गवेषयत श्यन्ते सर्वोऽशसुसमः ततः । यद्विच्छत कृतार्थानां तदास्यामि महामयाः ॥५६॥

तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हे नाथ ! इस महायुद्धमें विद्याधरने समय पर मेरा बड़ा उपकार किया है । वह विद्याधर राजा चन्द्रोदरका पुत्र विराधित है जो हितकारी दैवके द्वारा ही मानो अवसर पर मेरे समीप भेजा गया था ॥४१-४२॥ उत्तम हृदयको धारण करनेवाला वह विद्याधर चार प्रकारकी बड़ी भारी सेनाके साथ आपके पास आ रहा है सो यह महान् शब्द उसोका सुनाई दे रहा है ॥४३॥ इधर विश्वस्त चित्तके धाक राम-लक्ष्मणके बीच जब तक यह कथा चलती है तब तक बड़ी भारी सेनाके साथ विराधित वहाँ आ पहुँचा ॥४४॥ तदनन्तर विद्याधरोके राजा विराधितने नश्रीभूत मन्त्रियोंके साथ-साथ हाथ जोड़कर तथा जय-जय शब्दका उच्चारण कर कहा कि आप मनुष्योंमें उत्तम उत्कृष्ट स्वामी चिरकाल वाद प्राप्त हुए हो सो करने योग्य कार्यके विषयमें मुझे आज्ञा दीजिये ॥४५-४६॥ इस प्रकार कहने पर लक्ष्मणने कहा कि हे सज्जन ! सुनो किसी दुराचारीने मेरे अग्रज-रामकी पत्नी हर ली है सो उससे रहित राम, शोकके वशीभूत हो यदि प्राण छोड़ते हैं तो मैं निश्चय ही अग्निमें प्रवेश करूँगा ॥४७-४८॥ क्योंकि हे भद्र ! तुम यह निश्चित जानो कि मेरे प्राण इन्हींके प्राणोंके साथ मजबूत बंधे हुए हैं इसलिए इस विषयमें कुछ उत्तम उपाय करना चाहिए ॥४९॥ तब विद्याधरीका राजा विराधित नीचा मुँहकर कुछ विचार करने लगा कि अहो ! इतना श्रम करने पर भी मेरी आशा पूर्ण नहीं हुई ॥५०॥ मैं पहले सुखसे इच्छानुसार निवास करता था फिर स्थानभ्रष्ट हो नाना वनोंमें भ्रमण करता रहा । अब मैंने अपने आपको इनकी शरणमें सौंपा सो देखो ये स्वयं कष्टकारी संशयके गर्तमें पड़ रहे हैं ॥५१॥ दुःखरूपी सागरके तटको प्राप्त हुआ मैं जिस-जिस लताको पकड़ता हूँ सो दैवके द्वारा वही-वही लता उखाड़ दी जाती है, वास्तवमें समस्त संसार कर्मोंके आधीन है ॥५२॥ यद्यपि ये अपने कर्मके अनुसार हमारा भला या बुरा कुछ भी करें तो भी मैं उत्साह धारण कर इनके इस उपस्थित कार्यको अवश्य करूँगा ॥५३॥ इस प्रकार अन्तरङ्गमें विचार कर उत्साहको धारण करते हुए धीर-वीर विराधितने तेज पूर्ण वचनोंमें मन्त्रियोंसे कहा

१ अवसरे, प्रत्यये म० । २ परिप्राप्तो म० । ३ अग्रवस्य । ४. -मावृत्त्य म० । ५. मज्जुत्साहमसंस्तुगम्
 व० । ६. गवेषयतो म० ।

इत्युक्ताः सम्मदोपेताः सन्नद्धाः परमौजसः । नानाकल्पाः खगा जम्बुद्विंशो दश यशोर्विनः ॥५७॥
 अथार्कजडिनः सूनुनग्निना रत्नजटी खगः । खट्वा द्रागिति शुभ्रात्र दूरतो रुदितध्वनिम् ॥५८॥
 आशां च भजमानस्तस्माकर्णदिति निस्त्रनम्^१ । हा राम हा कुमारिति जलधेरुर्वमम्वरे ॥५९॥
^२परिदेवननिस्वान् श्रुत्वा त सपरिस्फुटम् । समुत्पपात तं देश विमानं यावद्रीचते ॥६०॥
 अस्योपरि परिक्रन्दं कुर्वन्तामिति विह्वलम्^३ । वैदेहीं स समालोक्य बभाम् क्रोधपूरितः ॥६१॥
 तिष्ठ तिष्ठ महापाप दुष्ट विद्याधरायम् । कृत्वा पराधर्मादृचं क त्वया गम्यतेऽधुना ॥६२॥
 दयितां रामदेवस्य प्रभामण्डलसोदराम् । सुब्रुव शीघ्रमभीष्ट ते जीवितं यदि दुर्मते ॥६३॥
 ततो दशाननोऽप्येनमाक्रोश्य परुषस्वनम् । युद्धे समुद्यतः क्रुद्धो विह्वलीभूतमानसः ॥६४॥
 पुनश्चाचिन्तयद्युद्धे^४ प्रवृत्ते सति विह्वला । मन्यानिरूपिता सीता कदाचित्पद्मतां भजेत् ॥६५॥
 आकुलां रचता चैतां परमव्याकुलात्मना । न व्यापाययितुं शक्यः क्षुद्रोऽप्येष नभश्चरः ॥६६॥
 इति सन्नित्यं सम्भ्रान्तमथयमौत्तुत्तराम्बरः । तस्यस्य रत्नजटिनो बलीं विद्यामपाहरत् ॥६७॥
 अथ रत्नजटी प्रस्तः किञ्चिन्मन्त्रप्रभावतः । पपात शनकैरुक्तास्फुलिङ्ग इव मेदिनीम् ॥६८॥
 समुद्रजलमध्यस्थ कम्बुद्वीप समाभितः । आयुर्वर्तनसामर्थ्याद्भग्नपातो यथा वणिक् ॥६९॥
 निश्चलश्च कर्णं स्थित्वा समुच्छ्रित्वायत भृशम् । कम्बुपर्वतमाकृष्ट दिशाचक्रं व्यलोकयत् ॥७०॥

किं इन महामानवकी पत्नी, महीतल, आकाश, पर्वत, जल, स्थल, वन अथवा नगरमें कहीं भी ले जाई गई हो यत्नपूर्वक समस्त दिशाओंमें सब ओरसे उसकी खोज करो । हे महायोद्धाओ ! खोज करने पर तुम लोग जो चाहोगे वह प्रदान करूँगा ॥५४-५६॥ इस प्रकार कहने पर हर्षसे युक्त, अन्ध-शस्त्रसे सुसज्जित, परम तेजके धारक, नाना प्रकारकी वेष-भूषासे सुशोभित और अशके इच्छुक विद्याधर दशों दिशाओंमें गये ॥५७॥

अथानन्तर अर्कजटीके पुत्र रत्नजटी नामक खड्गधारी विद्याधरने दूरसे शीघ्र ही रीनेका शब्द सुना ॥५८॥ जिस दिशासे रीनेका शब्द आ रहा था उसी दिशामें जाकर उसने समुद्रके ऊपर आकाशमें 'हा राम ! हा कुमार लक्ष्मण !' इस प्रकारका शब्द सुना ॥५९॥ विलापके साथ आते हुए उस अत्यन्त स्पष्ट शब्दको सुनकर जब वह उस स्थानकी ओर उड़ा तब उसने एक विमान देखा ॥६०॥ उस विमानके ऊपर विलाप करती हुई अतिशय विह्वल सीताको देखकर वह क्रोध-युक्त हो बोला कि अरे ठहर-ठहर, महापापी दुष्ट नीच विद्याधर ! ऐसा अपराध कर अब तू कहा जाता है ? ॥६१-६२॥ हे दुष्टदुष्ट ! यदि तुमने जीवन इष्ट है तो रामदेवकी स्त्री और भामण्डल की बहिनकी शीघ्र ही छोड़ ॥६३॥ तदनन्तर कर्कश शब्द कहनेवाले रत्नजटीके प्रति कर्कश शब्दोंका उच्चारण कर क्रोधसे भरा तथा विह्वल चित्तका धारक रावण युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥६४॥ फिर उसने विचार किया कि 'युद्ध होने पर मैं इस विह्वल सीताको देख नहीं सकूँगा और उस दशामें सम्भव है कि वह कदाचित् मृत्युको प्राप्त हो जाय और यदि इस घबड़ाई हुई सीताकी रक्षा भी करता रहूँगा तो अत्यन्त व्याकुल चित्त होनेके कारण, यद्यपि यह विद्याधर क्षुद्र है तो भी मेरे द्वारा मारा नहीं जा सकेगा' ॥६५-६६॥ इस प्रकार विचार कर हड़बड़ाहट के कारण जिसके मुकुट और उत्तरीय वस्त्र शिथिल हो गये थे ऐसे बलवान् रावणने आकाशमें स्थित रत्नजटी विद्याधर की विद्या हर ली ॥६७॥

अथानन्तर भयभीत रत्नजटी किसी मन्त्रके प्रभावसे उल्काके तिलगोंके समान धीरे-धीरे पृथ्वी पर आ पड़ा ॥६८॥ जिसका जहाज डूब गया है ऐसे वणिक्के समान वह आयुका अस्तित्व शेष रहनेके कारण समुद्र जलके मध्यमें स्थित कम्बुनामक द्वीपमें पहुँचा ॥६९॥ वहाँ वह क्षणभर

१. -यति निस्त्रनम् म० । २. यदि देवेन म० । ३. मतिविह्वलम् म० । ४. प्रवर्त म० । ५. रक्षिता म० । ६. स्वस्थस्य म० । ७. बलवान् रावणः ।

ततः समुद्रवातेन शिशिरत्वमुपैशुषा ।^१ अपनीतश्रमस्वेदः समाश्रवासदुःखितः ॥७१॥
^२ येऽप्यन्येऽन्वेपणं कर्तुं गतास्तेऽन्विष्य शक्तिः । राघवस्यान्तिकं प्राप्ताः प्रणष्टवदनीजसः ॥७२॥
 तेषां ज्ञात्वा मनः शून्यं महोन्विष्यस्तच्छुषाम् । पद्मो जगाद दीर्घोऽप्य निर्वस्य स्थानलोचनः ॥७३॥
 निजो शक्तिमसुखमिर्भवन्निः साधुलेचरा । अस्मत्कार्ये कृतो यतो दैवं तु प्रतिकूलकम् ॥७४॥
 तिष्ठत स्वेच्छयेदानीं यात वा स्वं समाश्रयम् ।^३ बाढवात्स्यगतं रत्नं क्रात् किं पुनरीच्यते ॥७५॥
 नूनं सर्वं कृतं कर्म प्रापणार्थं फलं मया । तत्कर्तुमन्यथा शक्यं न भवन्निर्मयापि वा ॥७६॥
 विसृक्तं वन्धुभिः कष्टं विहृष्टं वनमाश्रितम् । अनुकम्पा न तत्रापि जनिता दैवशुभा ॥७७॥
 मन्ये यथानुबन्धेन लम्बोऽयं विधिरुद्धतः । तथैतस्मात्परं दुःखं किं नामान्यत्करिष्यति ॥७८॥
 परिदेवनमारब्धे कर्तुमेव नराधिपे । धीरं विराधिवोऽजोचत परिसान्त्वनपण्डितः ॥७९॥
 विपादमतुलं देव किमेवमनुसेवसे । स्वल्पैरेव दिनैः पश्य प्रियामनघविग्रहाम् ॥८०॥
 शोको हि नाम कोऽप्येव विषमेदो महत्तमः । नाशयत्याश्रितं देहं का कथान्यैष वस्तुषु ॥८१॥
 तस्मादवलम्ब्यतां धैर्यं महापुरुषसेवितम् । भवद्विधा चिवेकानां सर्वत्र चेन्नमुत्तमम् ॥८२॥
 जीवन् परशयति भद्राणि धीरश्चिरतरादपि । ग्रहा^४ इत्यमतिर्भद्रं कृच्छ्रादपि न पश्यति ॥८३॥
 कालो नैव विपादस्य दीयतां कारणे मनः ।^५ औदासीन्यमिहानर्थं कुञ्चते परमं पुरा ॥८४॥

निश्चल बैठे फिर बार-बार लम्बी साँस लेकर वह कन्धु पर्वत पर चढ़कर दिशाओंकी ओर देखने लगा ॥७०॥ तदनन्तर समुद्रकी शीतलवायुसे जिसका परिश्रम और पसीना दूर हो गया था ऐसा दुःखी रत्नजटी कुञ्ज संतुष्ट हुआ ॥७१॥ जो अन्य विद्याधर सीताकी खोज करनेके लिए गये थे वे शक्तिभर खोज कर रामके समीप वापिस पहुँचे उस समय प्रयोजनकी सिद्धि नहीं होनेसे उनके मुखका तेज नष्ट हो गया था ॥७२॥ जिनके नेत्र पृथ्वी पर लग रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंका मन शून्य जान कर स्थाननेत्रोंके धारक रामने लम्बी और गरम साँस भरकर कहा कि हे धन्य विद्याधरो ! आप लोगोंने अपनी शक्ति न छोड़ते हुए हमारे कार्यमें प्रयत्न किया है पर मेरा भाग्य ही विपरीत है ॥७३-७४॥ अब आपलोग अपनी इच्छानुसार बैठिये अथवा अपने-अपने घर जाइये । जो रत्न हाथसे छूटकर बढवानलमें जा गिरता है वह क्या फिर दिखाई देता है ? ॥७५॥ निश्चय ही जो कुञ्ज कर्म मैंने किया है उसका फल प्राप्त करने योग्य है उसे न आप लोग अन्वया कर सकते हैं और न मैं भी अन्यथा कर सकता हूँ ॥७६॥ मैंने भाई-वन्धुओंसे रहित, कष्टकारी दूरवर्ती वनका आश्रय लिया सो वहाँ भी भाग्यरूपी शत्रुने मुझपर दया नहीं की ॥७७॥ जान पड़ता है कि यह उत्कट दुःख मेरे पीछे लग गया है सो इससे अधिक दुःख और क्या करेगा ? ॥७८॥ इस प्रकार कहकर राम विहाप करने लगे तब सान्त्वना देनेमें निपुण विराधितने बड़ी धीरतासे कहा कि हे देव ! आप इस तरह अनुपम विषाद क्यों करते हैं ? आप थोड़े ही दिनोंमें निष्पाप शरीरकी धारक प्रियाकी देखेंगे ॥७९-८०॥ यथार्थमें यह शोक कोई बड़ा भारी विपत्ती भेद है जो आश्रित शरीरको नष्ट कर देता है अन्य वस्तुओंकी तो चर्चा ही क्या है ? ॥८१॥ इसलिये महापुरुषोंके द्वारा सेवित धैर्यका अवलम्बन कीजिए आप जैसे उत्तम-पुरुष चिवेककी उत्पत्तिके उत्तम क्षेत्र हैं ॥८२॥ धीरवीर मनुष्य यदि जीवित रहता है तो बहुत समय बाद भी कल्याणको देख लेता है और जो तुच्छ बुद्धिका धारी अधीर मनुष्य है वह कष्ट भोगकर भी कल्याणको नहीं देख पाता है ॥८३॥ यह विषाद करनेका समय नहीं है कार्य करनेमें मन दीजिये क्योंकि उदासीनता बड़ा अनर्थ करनेवाली है ॥८४॥

१. अपनीतश्रमस्वेदसमाश्रवासदुःखितः म० । २. यथा त्वन्वेपणं म० । ३. बाढवात्स्या गतं म०, व० । ४. विद् । ५. यही ख० । ६. उदासीन म० ।
 ३२-२

विद्याधरमहाराजे निहते खरदूषणे । अर्थान्तरमनुप्राप्तं दुरन्तमवधार्यताम् ॥८५॥
 किष्किन्धेन्द्रजिह्वारौ मानुकर्णस्तथैव च । त्रिशिराः क्षोभणो भीमः क्रूरकर्मा महोदरः ॥८६॥
 पद्ममाद्या महायोधा नानाविधामहौनसः । यास्यन्ति साम्प्रतं क्षोभं मित्रस्त्रज्वनदुःखतः ॥८७॥
 नानायुद्धसहस्रेषु सर्वेऽग्रा लब्धकर्त्तव्यः । विजयार्धनगावासखगेन्द्रेणाप्यसाधिताः ॥८८॥
 पवनस्यात्मजः ख्यातो यस्य वानरलक्षितम् । वैतुं दूरात् समालोक्य विद्वन्वि^३ द्विषां गणाः ॥८९॥
 तस्याभिमुखतां प्राप्य दैवयोगात् सुरा अपि । त्वज्जन्ति विजये बुद्धि स हि कोऽपि महाशयाः ॥९०॥
 तस्मादुत्तिष्ठ नत् स्थानमलङ्काराख्यमाश्रिताः । भामण्डलस्त्रसुवार्तां स्वस्थामृता लभामहे ॥९१॥
 तद्धि नः पुरमायातमन्वयेन रसातले । तत्र दुर्गे स्थिताः कार्यं चिन्तयामो यथोचितम् ॥९२॥
 इत्युक्ते चतुरैरश्वत्थभिर्बुधैः कुत्तमम् । आस्त्रं रथमास्त्रा प्रस्थितौ रघुनन्दनौ ॥९३॥
 शुश्रुभाते तद्व्यत्यन्तं न तौ पुरुषसत्तमौ । सीतया रहितौ सम्यग्दृष्ट्वा बोधशमाविब ॥९४॥
 चतुर्विधमहासैन्यसंगारेण समावृतः । त्वरावानप्रतस्तस्थौ चन्द्रोदरनृपात्मजः ॥९५॥
 तावच्चन्द्रनखासुप्तं नगरद्वारानिःसृतम् । कृतशुद्धं पराजित्य प्रविष्टः परमं पुरम् ॥९६॥
 तत्र देवनिवासाम्भे पुरे रत्नसमुज्ज्वले^४ । यथोचितं स्थितं चक्रुः खरदूषणवेदमणि ॥९७॥
 तस्मिन्मरसशाम्भे भवने रघुनन्दनः । सीताया गमनाखलेमि दृष्टि तु न मनमपि ॥९८॥
 अरयमपि रम्यत्वं याति कान्तासमागमे । कान्तावियोगदग्धस्य सर्वं विन्यवनवाधते ॥९९॥

विद्याधरों के राजा खरदूषणके मारे जाने पर दूसरी बात हो गई है और जिसका फल अच्छा नहीं होगा ऐसा आप समझ लीजिए ॥८५॥ किष्किन्धापुरी का राजा सुमीव, इन्द्रजित्, मानुकर्ण, त्रिशिरा, क्षोभण, भीम, क्रूरकर्मा और महोदर आदि बड़े-बड़े योद्धा जो नाना विद्याओंके धारक तथा महा तेजस्वी हैं इस समय अपने मित्र-खरदूषणके कुटुम्बी जनोंके दुःखसे क्षोभको प्राप्त होगे ॥८६-८७॥ इन सब योद्धाओंने नाना प्रकारके हजारों युद्धोंमें सुयश प्राप्त किया है तथा विजयार्ध पर्वत पर रहनेवाला विद्याधरोंका राजा भी इन्हें बश नहीं कर सकता ॥८८॥ पवनजयका पुत्र हनुमान् अतिशय प्रसिद्ध है जिसकी वानर चिह्नित ध्वजा देखकर शत्रुओंके मुण्ड दूरसे ही भाग जाते हैं ॥८९॥ दैव योगसे देव भी उसका सामना कर विजयकी अभिलाषा छोड़ देते हैं यथार्थमें वह कोई अद्भुत महा यशस्वी पुरुष है ॥९०॥ इसलिये उठिये अलंकारपुर नामक सुरक्षित स्थानका आश्रय ले वही निश्चिन्ततासे रहकर भामण्डलकी वहिनका समाचार प्राप्त करें ॥९१॥ वह अलंकारपुर पृथिवीके नीचे है और हम लोगोकी वंश परम्परासे चला आया है उसी दुर्गम स्थानमें स्थित रहकर हम लोग यथा योग्य कार्यकी चिन्ता करेंगे ॥९२॥ इस प्रकार कहने पर चार चतुर घोड़ोंसे जुते हुए उत्तम देहीयमान रथ पर सवार होकर राम-लक्ष्मणने प्रस्थान किया ॥९३॥ जिस प्रकार सम्यग्दर्शनसे रहित ज्ञान और चारित्र्य सुशोभित नहीं होते हैं उसी प्रकार उस समय सीतासे रहित राम और लक्ष्मण सुशोभित नहीं हो रहे थे ॥९४॥ चार प्रकारकी महासेना रूपी सागरसे घिरा विराधित शीघ्रता करता हुआ उनके आगे स्थित था ॥९५॥ जब तक वह पहुँचा तब तक चन्द्रनखाका पुत्र नगरके द्वारसे निकल कर युद्ध करने लगा सो उसे पराजित कर वह परम सुन्दर नगरके भीतर प्रविष्ट हुआ ॥९६॥ वह नगर देवोंके निवास स्थानके समान रत्नोंसे देहीयमान था । वहाँ जाकर विराधित तथा राम लक्ष्मण खरदूषणके भवनमें यथायोग्य निवास करने लगे ॥९७॥ यद्यपि वह भवन देवभवनके समान था तो भी राम सीताके चले जानेसे वहाँ रज्ज मात्र भी वैर्यको प्राप्त नहीं होते थे— वहाँ उन्हें सीताके बिना त्रिलकुल भी अच्छा नहीं लगता था ॥९८॥ स्त्रीके समागममें वन भी

१. सर्वे सम्प्रातकीर्तयः म० । २. विद्वन्वि म० । ३. गण. म० । ४. त्वज्जन्ति विषये म० ।

५. सम्यग्दृष्टिर्बोध-म० । ६. समाकुले म० ।

अयैकान्ते गृहस्थास्य तरुण्डविराजिते । प्रासादमनुलं वीक्ष्य ससार रघुनन्दनः ॥१००॥
तत्रार्हद्वं प्रतिमां दृष्ट्वा रत्नपुष्पकृताचनान् । क्षणविस्मृतसन्तापः पद्मो धृतिमुपागतः ॥१०१॥
इतस्ततश्च तत्रार्चां वीक्षमाणः कृतानतिः । किञ्चित् प्रशान्तदुःखोर्मिरवतस्थे रघूत्तमः ॥१०२॥
आत्मीयबलगुणैश्च सुन्दो मात्रा समन्वितः । पितृभ्रातृविनाशेन शोको लङ्कामुपाविशत् ॥१०३॥

शालिनीचन्द्रः

एव सङ्गान् सावसानान् विदित्वा नानादुःखैः प्रापणीयानुपायैः ।
विघ्नैर्युक्तान् भूरिभिर्दुर्निवारैरिच्छां तेषु प्राणिनो मा कुरुष्व ॥१०४॥
यद्यप्याशापूर्वकर्मोनुभावान् सङ्गं कर्तुं जायते प्राणभाजाम् ।
प्राप्य ज्ञान साधुवर्गोपदेशाद्गन्त्री नाथं सा रवेः शर्वरीव ॥१०५॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सीतावियोगदाहामिधान नाम
पञ्चचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४५॥

रमणीयताको प्राप्त होता है और स्त्रीके वियोगसे जलते हुए मनुष्यको सब कुछ विन्ध्य वनके समान जान पड़ता है ॥८६॥

अथानन्तर वृद्धोके समूहसे सुशोभित, उस भवनके एकान्त स्थानमें अनुपम मन्दिर देखकर राम वहाँ गये ॥१००॥ उस मन्दिरमें रत्न तथा पुष्पोसे जिसकी पूजा की गई थी ऐसी जिनेन्द्र प्रतिमाके दर्शनकर वे क्षणभर सब संताप भूलकर परम धैर्यको प्राप्त हुए ॥१०१॥ उस मन्दिरमें इधर-उधर जो और भी प्रतिमाएँ थी उनके दर्शन करते तथा नमस्कार करते हुए राम वहाँ रहने लगे । जिनेन्द्र प्रतिमाओंके दर्शन करनेसे उनके दुःखकी लहरे कुछ शान्त हो गई थी ॥१०२॥ पिता और भाईके मरनेसे जिसे शोक हो रहा था ऐसा सुन्द, अपनी सेनासे सुरक्षित होता हुआ माता चन्द्रनखाके साथ लङ्कामें चला गया ॥१०३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार जो नाना प्रकारके दुःखदायी उपायोसे प्राप्त करने योग्य हैं तथा अनेक प्रकारके दुर्निवारसे युक्त हैं ऐसे इन परिग्रहोंकी नश्वर जानकर हे भक्त्यजनो ! उनमें अभिलाषा मत करो ॥१०४॥ यद्यपि पूर्व कर्मोदयसे प्राणियोंके परिग्रह संचित करनेकी आशा होती है तो भी मुनि-समूहके उपदेशसे ज्ञान प्राप्तकर वह आशा उस तरह नष्ट हो जाती है जिस तरह कि सूर्यसे प्रकाश पाकर रात्रि नष्ट हो जाती है ॥१०५॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मचरितमें सीताके वियोगजन्य दाहका वर्णन करनेवाला पैतालीसवों पर्व समाप्त हुआ ॥४५॥



षट्चत्वारिंशत्तमं पर्व

तत्रासावुत्तमे मुञ्चे विमानशिखरे स्थितः । स्वैर स्वैरं ब्रजन् रजे रावणो दिवि भानुवत् ॥१॥
सीतायाः शोकतप्ताया म्लानं वीक्ष्यास्यपङ्कजम् । रतिरागविमूढात्मा दध्यौ किमपि रावणः ॥२॥
अश्रुदुर्दिनवक्त्रायाः सीतायाः कृपणं परम् । नानाप्रियशतान्यूचे पृष्ठतः पारवर्ततोऽग्रतः ॥३॥
मारस्यात्यत्यन्तसूदुर्भितोऽहं कुसुमेपुमिः । त्रिये यदि ततः साध्वि नरहत्या भवेत्तव ॥४॥
वक्त्रारविन्दमेतत्ते सकोपमपि सुन्दरि । राजते चारुभावानां सर्वथैव हि चारुता ॥५॥
प्रसीद देवि भृथास्ये सकृच्छुर्विधीयताम् । त्वच्छुक्कान्तितोयेन स्नातस्वापैतु मे श्रमः ॥६॥
यदि दृष्टिप्रसादं मे न करोषि वरानने । एतेन पापघ्नेन सकृत् ताडय मस्तके ॥७॥
भवत्या रमणोद्याने किं न जातोऽस्त्यशोककः । सुलभा यस्य ते शलाघ्या पादपद्मतलाहतिः ॥८॥
कृशोदरि गवाक्षेण विमानशिखरस्थिता । दिशः पश्य प्रयातोऽस्मि विषदुर्ध्वं रवेरपि ॥९॥
कुलपर्वतसयुक्तां समरे सहसागराम् । पश्य क्षोणीमिमां देवि शिल्पिनेव विनिर्मितात् ॥१०॥
एवमुक्ता सती सीता पराचीनव्यवस्थिता । अन्तरे नृणमाधाय जगादारुचिताचरम् ॥११॥
अवसर्पं ममाङ्गानि मा स्पृशः पुरुषधम । निन्धाक्षरमिमां वाणीमीदृशी भापसे कथम् ॥१२॥

अथानन्तर विमानके ऊँचे शिखर पर बैठ आ इच्छानुसार गमन करता हुआ रावण आकाशमें सूर्यके समान सुशोभित हो रहा था ॥१॥ रति सम्बन्धी रागसे जिसकी आत्मा विमूढ हो रही थी ऐसा रावण शोक-संतप्त सीताके मुरझाये हुए मुख-कमलका ध्यान कर रहा था—उसी ओर देख रहा था ॥२॥ जिसके मुखसे निरन्तर अश्रुओंकी वर्षा हो रही थी ऐसी सीताके आगे-पीछे तथा वगलमें खड़ा होकर रावण बड़ी दीनताके साथ नाना प्रकारके सैकड़ों प्रिय वचन बोलता था ॥३॥ वह कहता था कि मैं कामदेवके अतिशय कोमल पुष्पमयी बाणोंसे घायल होकर यदि मर जाऊँगा तो हे साध्वि ! तुझे नरहत्या लगेगी ॥४॥ हे सुन्दरि ! तेरा यह मुखारविन्द क्रोध सहित होने पर भी सुशोभित हो रहा है सो ठीक ही है क्योंकि जो सुन्दर हैं उनमें सभी प्रकारसे सुन्दरता रहती है ॥५॥ हे देवि ! प्रसन्न होओ और इस दासके मुख पर एक बार च्छु डालो । तुम्हारे च्छुकी कान्ति रूपी जलसे नहाने पर मेरा सब श्रम दूर हो जायगा ॥६॥ हे सुमुखि ! यदि दृष्टिका प्रसाद नहीं करती हो—आँख उठाकर मेरी ओर नहीं देखती हो तो इस चरण-कमलसे ही एक बार मेरे मस्तक पर आघात कर दो ॥७॥ मैं तुम्हारे मनोहर उद्यानमें अशोक वृक्ष क्यों नहीं हो गया ? क्योंकि वहाँ तुम्हारे इस चरण-कमलका प्रशंसनीय तल प्रहार सुलभ रहता ॥८॥ हे कृशोदरि ! विमानकी छत पर बैठकर भरोसेसे जरा दिशाओंको तो देखो मैं सूर्यसे भी कितने ऊपर आकाशमें चल रहा हूँ ॥९॥ हे देवि ! कुलाचलो, मेरु पर्वत और सागरसे सहित इस पृथिवीको देखो । यह ऐसी जान पड़ती है मानो किसी कारीगरके द्वारा ही बनाई गई हो ॥१०॥ इस प्रकार कहने पर पीठ देकर बैठी हुई सीता बीचमें टृण रखकर निम्नाङ्कित अप्रिय वचन बोली ॥११॥

उसने कहा कि हे नीच पुरुष ! हट, मेरे अङ्ग मत छू । तू इस प्रकारकी यह निन्दनीय वाणी

१. अश्रु दुर्दिनवक्त्रायाः म० । २. संयुक्तं म० । ३. सहसागरम् म० । ४. विनिर्मितम् म० ।

५. व्रण- म० । ६. अपसार्यं म० ।

पापात्मकमनायुष्यमस्वर्ग्यमयशस्करम् । असर्वाहितमेतत्ते विरुद्धं भयकारि च ॥१३॥
 परदारान् समाकांचन् महादुःखमवाप्स्यसि । पश्चात्तापपरीताहो भस्मच्छन्नानलोपमम् ॥१४॥
 महता मोहपंकेन तवोपचितचेतसः । सुधा घर्मोपदेशोज्यमन्धे नृत्यविलासवत् ॥१५॥
 इच्छामात्रादपि क्षुद्रं बद्ध्वा पापमनुचमम् । नरके वासमासाद्य कष्टं वर्त्तनमाप्स्यसि ॥१६॥
 रूपाचराभिधानाभिः परं वाणीमिरित्वापि । मदनहातचित्तस्य प्रेमास्य न निवर्त्तते (न्यवर्त्तत) ॥१७॥
 तत्र दूषणसंग्रामे निवृत्ते परमप्रियाः । शुक्रहस्तप्रहस्ताद्याः सोद्वेगाः स्वाम्यदर्शनात् ॥१८॥
 चलत्केतुमहाखण्डं कुमाराकसमग्रभम् । विमानं वीक्ष्य दास्यास्यं मुदितारुतं ह्रुदौकिरे ॥१९॥
 प्रदानैर्दिव्यवस्तुनां सम्मानैश्चाहुमिः परैः । तामिष्य नृत्यसम्पन्निराह्ला जनकात्मजा ॥२०॥
 शक्नोति सुखधीः पार्तुं कः शिखामाश्रुशृङ्गेः । को वा चागवधसूचिं स्पृशेद् रत्नशालांकिकाम् ॥२१॥
 हृत्वा कपटुदं मूर्च्छि वशांगुलिसमाहितम् । ननाम रावणः सीतां निम्बितोऽपि तृणाग्रवत् ॥२२॥
 महोद्गस्तरस्तावद्विभवैः सचिवैर्मृशम् । नानादिग्ध समायातैरावृतो रक्षसं पतिः ॥२३॥
 जय वर्धस्व नन्देति शब्दैः श्रवणहारिभिः । उपगीत. परिप्राप्तो लङ्कामाखण्डलोपमः ॥२४॥
 अचिन्तयन् रामकीं सोऽयं विद्याधराधिप । यत्राचरत्यमर्यादां तत्र किं शरणं भवेत् ॥२५॥
 यावद्यात्मानोमि नो वातां भर्तुः कुशलवर्तिनः । तावदाहारकार्यस्य प्रत्याद्यानमिदं मम ॥२६॥

क्यों बोल रहा है ? ॥१२॥ तेरी यह दुष्ट चेष्टा पाप रूप है, आयुको कम करनेवाली है, नरकका कारण है अपकीर्तिको करनेवाली है, विरुद्ध है तथा भय उत्पन्न करनेवाली है ॥१३॥ परस्त्रीकी इच्छा करता हुआ तू महादुःखको प्राप्त होगा तथा भस्मसे आच्छादित अनिके समान पश्चात्तापसे तेरा समस्त शरीर व्याप्त होगा ॥१४॥ अथवा तेरा चित्त पापरूपी महापङ्कसे व्याप्त है अतः तुझे घर्मका उपदेश देना उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार कि अन्धके सामने नृत्यके हाव-भाव दिखाना व्यर्थ होता है ॥१५॥ अरे नीच ! परस्त्रीकी इच्छा मात्रसे तू बहुत भारी पाप बोधकर नरकमें जायगा और वहाँ कष्टकारी अवस्थाको प्राप्त होगा ॥१६॥ इस प्रकार यद्यपि सीताने कठोर अक्षरोंसे भी वाणीके द्वारा रावणका तिरस्कार किया तो भी कामसे आहत चित्त होनेके कारण उसका प्रेम दूर नहीं हुआ ॥१७॥

वहाँ खरदूषणका युद्ध समाप्त होनेपर भी स्वामी रावणका दर्शन न होनेसे परम स्नेहके भरे शुक्र हस्त प्रहस्त आदि मन्त्री परम उद्वेगको प्राप्त हो रहे थे सो जब उन्होंने हिलती हुई पताकासे सुशोभित प्रातःकालीन सूर्यके समान रावणका विमान आता देखा तब वे हर्षित होकर उसके पास गये ॥१८-१९॥ उन्होंने दिव्य वस्तुओंकी भेंट देकर सम्मान प्रदर्शित कर तथा अतिशय प्रिय वचन कहकर रावणकी अगवानी की तो भी मृत्योंकी उन सम्पदाओसे सीता वशीभूत नहीं हुई ॥२०॥ संसारमें ऐसा कौन चतुर मनुष्य है जो अग्निशिखाका पान कर सके अथवा नागिनके शिरपर स्थित रत्नमयी शलाकाका स्पर्श कर सके ॥२१॥ यद्यपि सीताने वृणके अग्रभागके समान रावणका तिरस्कार किया था तो भी वह दर्शों अङ्गुलियोंसे सहित अञ्जलि शिरपर धारण कर उसे बार-बार नमस्कार करता था ॥२२॥ नाना दिशाओसे आये हुए तथा इन्द्रके समान पूर्ण वैभवकी धारण करनेवाले मन्त्रियोंने जिसे घेर लिया था और 'जय हो, बढ़ते रहो, समृद्धिमान् होओ' इत्यादि कर्ण प्रिय वचनोंसे जिसकी स्तुति हो रही थी ऐसे इन्द्रतुल्य रावणने लंकासे प्रवेश किया ॥२३-२४॥ उस समय सीताने विचार किया कि यह विद्याधरोंका राजा ही जहाँ अमर्यादाका आचरण कर रहा है वहाँ दूसरा कौन शरण हो सकता है ? ॥२५॥ फिर भी मेरा यह

उदीचीनं प्रतीचीनं तत्रास्ति परमोज्ज्वलम् । गोर्वाणरमणं ख्यातमुद्यानं स्वर्गसन्निभम् ॥२७॥
 तत्र कल्पतरुच्छायमहापादपसंकुले । स्थापयित्वा रहः सीतां विवेश त्वनिकेतनम् ॥२८॥
 तावद्दूषणपञ्चचादयतोऽस्य महासुखम् । अष्टादश सहस्राणि विप्रलेपुर्महास्त्रम् ॥२९॥
 भ्रातृश्वन्मन्त्रा पादौ संसृत्योन्मुक्तकण्ठकम् । अभागा हा हतात्सीति विललापात्तुर्दिनम् ॥३०॥
 रमणात्मजपञ्चत्वह्निनिर्दग्धमानसाम् । विलपन्तीमिमां भूरि जगद्देवं सहोदरः ॥३१॥
 अलं वत्से रुदित्वा ते प्रसिद्धं किं न विद्यते । जगत्प्राग्निहन्तं सर्वं प्राप्नोष्यन्न न संशयः ॥३२॥
 अन्वया हा महीचारा जनाः क्षुद्रकशकयः । क्रायमेवंविधो भर्ता भवत्या व्योमगोचरः ॥३३॥
 मयेदमजितं पूर्वं व्यक्तं न्यायागतं फलम् । इति ज्ञान्वा शुचं कर्तुं कृत्य मत्स्यं च युज्यते ॥३४॥
 नाकाले जियते कश्चिद्रेणोपि समाहृतः । मृत्युकालेऽमृतं जन्तोर्विपतां प्रतिपद्यते ॥३५॥
 येन व्यापादितो वत्से समरे खरदूषणः । अन्येषां नाहितेच्छायां मृत्युरेव मयाम्यहम् ॥३६॥
 स्वसारमेवमाध्यास्य दत्तादेशो जिनाचनं । दृष्टमानमना वासमवनं रावणोऽविशत् ॥३७॥
 तत्रादरनिराकाञ्चं तत्त्वविस्मयविग्रहम् । सोमनादकेशरिच्छायं निःश्वसन्त्विवोरगम् ॥३८॥
 भर्तारं दुःखयुक्तेन भूषणाद्वर्जिता । महादरमुवाचैवमुपसृत्य मयात्मजा ॥३९॥
 किं नायाकुलतां धत्से खरदूषणमृत्युना । न विपादोऽस्ति शूराणामापसु महतीष्वपि ॥४०॥

नियम है कि जब तक भर्ताका कुशल समाचार नहीं प्राप्त कर लेता हूँ तब तक मेरे आहार कार्यका त्याग है ॥२६॥

तदनन्तर पश्चिमोत्तर दिशामें विद्यमान अतिशय उज्ज्वल, स्वर्गके समान सुन्दर देवारण्य नामक उद्यान है सो कल्पवृक्षके समान कान्तिवाले बड़े-बड़े वृक्षांसे व्याप उस उद्यानमें एक जगह सीताको ठहराकर रावण अपने महलमें चला गया ॥२७-२८॥ इतनेमें ही खरदूषणके सरणका समाचार पाकर रावणकी अठारह हजार रानियाँ बहुत भारी शोकके कारण महाशब्द करती हुई रावणके सामने विलाप करने लगीं ॥२९॥ चन्द्रनखा भाईके चरणोंमें जाकर तथा गला फाड़-फाड़कर 'हाय-हाय मैं अमागिनी भारी गई' इस तरह अभूषणसे दुर्दिनको पराजित करती हुई विलाप करने लगी ॥३०॥ पति और पुत्रको मृत्युरूपी अग्निसे जिसका मन जल रहा था ऐसी अत्यधिक विलाप करती हुई चन्द्रनखासे भाई—रावणने इस प्रकार कहा ॥३१॥ कि हे वत्से ! तेरा रोना व्यर्थ है । यह क्या प्रसिद्ध नहीं है कि संसारके प्राणी पूर्वभवनमें जो कुछ करते हैं उस सबका फल अवश्य ही प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं है ॥३२॥ यदि ऐसा नहीं है तो जुद्धशक्तिके धारक भूमिगोचरी मनुष्य कहाँ और तुम्हारा ऐसा आकाशगामी भर्ता कहाँ ? ॥३३॥ मैंने यह सब पूर्वमें सञ्चित किया था सो उसीका यह न्यायागत फल प्राप्त हुआ है ऐसा जानकर किसी मनुष्यको शोक करना उचित नहीं है ॥३४॥ जब तक मृत्यु का समय नहीं आता है तब तक वज्रसे आहत होने पर भी कोई नहीं मरता है और जब मृत्युका समय आ पहुँचता है तब अमृत भी जीवके लिए विष हो जाता है ॥३५॥ हे वत्से ! जिसने युद्धमें खरदूषणको मारा है उसके साथ अन्य सब शत्रुओंके लिए मैं मृत्युत्वहृष हूँ अर्थात् मैं उन सबको मारूँगा ॥३६॥ इस प्रकार वह्निनको आश्वासन तथा जिनेन्द्र देवकी अर्चाका उपदेश देकर जिसका मन जल रहा था ऐसा रावण निवासगृहमें चला गया ॥३७॥ वहाँ जाकर रावण आदरकी प्रतीक्षा किये बिना ही शय्या पर जा पड़ा । उस समय वह उन्मत्तसिंहके समान अथवा साँस भरते हुए सर्पके समान जान पड़ता था ॥३८॥ भर्ताको ऐसा देख दुःखयुक्त की तरह आभूषणोंके आदरसे रहित मन्दोदरी बड़े आदरसे उसके पास जाकर इस प्रकार बोली ॥३९॥ कि हे नाथ ! क्या खरदूषणकी मृत्युसे आकुलताकी धारण कर रहे हो ? परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि शूरवीरोंको बड़ी-बड़ी आप-

पुराणेकत्र संग्रामे सुहृदस्ते क्षयं गता । न च शोचिता जातु दूषणं किन्तु शोचसि ॥४१॥
 आसन्महेन्द्रसंग्रामे श्रीमालिप्रमुखाः नृपाः । बान्धववस्ते क्षयं जाताः शोचितास्ते न जातुचिद् ॥४२॥
 अभूतसर्वशोकस्त्वमासीदपि महापति । शोकं किं बहसीदानीं जिज्ञासामि विमो बट ॥४३॥
 ततो महोदरः स्वैर निश्वस्योवाच रावणः । तत्र किञ्चित्प्रसिध्यन् धारितो दरीताक्षरम् ॥४४॥
 शृणु सुन्दरि सद्भावमेकं ते कथयाम्यहम् । स्वामिन्यसि ममासूना सर्वदा कृतवान्छ्रिता ॥४५॥
 यत्रि दाम्बुसि जीवन्त मां ततो देवि नार्हसि । कोपं कर्तुं ननु प्राणा मूलं सर्वस्य वस्तुन ॥४६॥
 ततस्तथैवमिष्युक्ते शपथैर्विनियम्य ताम् । विलक्ष इव किञ्चित्स रावणः समभाषत ॥४७॥
 यदि सा वेषसः सृष्टिरपूर्वा दुःखवर्णना । सीता पतिं न मां वष्टि ततो मे नास्ति जीवितम् ॥४८॥
 लावण्य यौवन रूपं माधुर्यं चारुचेष्टितम् । प्राप्य तां सुन्दरीमेकां कृतार्थत्वमुपगतम् ॥४९॥
 ततो मन्दोदरीं कष्टं ज्ञावा तस्य वशामिमाम् । विहसन्ती जगादैवं विस्फुरदन्तचन्द्रिका ॥५०॥
 इदं नाथ महाश्रमं करो यत् कुरुतेऽर्थवत् । अपुण्या सावला नूनं या त्वां नार्ययते स्वयम् ॥५१॥
 अथवा निविले लोके सर्वैका परमोदया । या त्वया मानकूटेन बाध्यते परमापदा ॥५२॥
 केयूरस्तज्जटिलैरिमैः करिकरोपमैः । आलम्ब्य बाहुभिः कस्माद् बलाद् कामयसे न ताम् ॥५३॥
 सोऽशोचहेवि विज्ञाप्यमस्त्यत्र शृणु वारणम् । प्रसम येन गृह्णामि न तां सर्वहृत्सुन्दरीम् ॥५४॥

तियोमे भी विषाद नहीं होता ॥४०॥ पहले अनेक संग्रामोमे तुम्हारे मित्र क्षयको प्राप्त हुए हैं उन सबका तुमने शोक नहीं किया किन्तु आज स्वरदूषणके प्रति शोक कर रहे हो ? ॥४१॥ राजा इन्द्रके संग्राममे श्रीमाली आदि अनेक राजा जो तुम्हारे वन्धुजन थे क्षयको प्राप्त हुए थे पर उन सबका तुमने कभी शोक नहीं किया ॥४२॥ पहले बड़ी-बड़ी आपत्तिमे रहने पर भी मुन्हें किसीका शोक नहीं हुआ पर इस समय क्यों शोकको धारण करते हो यह मैं जानना चाहती हूँ सो हे स्वामिन् इसका कारण बतलाइये ॥४३॥

तदनन्तर महान् आदरसे युक्त रावण साँस लेकर तथा कुछ शय्या झोड़कर कहने लगा । उस समय उसके अक्षर कुछ तो मुखके भीतर रह जाते थे और कुछ बाहर प्रकट होते थे ॥४४॥ उसने कहा कि हे सुन्दरि ! सुनो एक सद्भावकी बात तुमसे कहता हूँ तुम मेरे प्राणोकी स्वामिनी हो और सदा मैंने तुन्हें चाहा है ॥४५॥ यदि मुझे जीवित रहने देना चाहती हो तो हे देवि ! क्रोध करना योग्य नहीं है, क्योंकि प्राण ही तो सत्र वस्तुओके मूल कारण हैं ॥४६॥ तदनन्तर 'ऐसा ही है' इस प्रकार मन्दोदरीके कहने पर उसे अनेक प्रकारकी शपथोसे नियममे लाकर कुछ-कुछ लज्जित होते हुए भी तरह-तरह रावण कहने लगा ॥४७॥ कि जिसका वर्णन करना कठिन है ऐसी विधाता की अपूर्व सृष्टि स्वरूप वह सीता यदि मुझे पति रूपसे नहीं चाहती है तो मेरा जीवन नहीं रहेगा ॥४८॥ लावण्य, यौवन, रूप, माधुर्य और सुन्दर चेष्टा सभी उस एक सुन्दरीको पाकर कृतकृत्यताको प्राप्त हुए हैं ॥४९॥

तदनन्तर रावणकी इस कष्टकर दशाको जानकर हँसती तथा दाँतोकी कान्तिरूपी चाँदनीको फैलाती हुई मन्दोदरी इस प्रकार बोली कि हे नाथ ! यह बड़ा आश्चर्य है कि वर याचना कर रहा है । जान पड़ता है कि वह स्त्री पुण्य दीन है जो स्वयं आपसे प्रार्थना नहीं कर रही है ॥५०-५१॥ अथवा ससस्त संसारमें वही एक परमा अभ्युदयको वारण करनेवाली है । जिसकी कि तुम्हारे जैसे अभिमानी पुरुष वही दीनतासे याचना करते हैं ॥५२॥ अथवा बाजुबन्दके रत्नोसे जटिल तथा हाथोकी सँझकी उपमा धारण करनेवाली इन भुजाओंसे चलपूर्वक आलिङ्गन कर क्यों नहीं उसे चाह लेते हो ? ॥५३॥ इसके उत्तरमे रावणने कहा कि हे देवि !

१. ततः सहोदरः म० । २. धारिता दारितोक्षरम् (१) । ३. -सर्वा-म० । ४. -मेता ल० । ५. परमा यदा ल० ।

आसीदन्तवीर्यस्य मूले भगवतो मया । आचमेकं व्रत साक्षादेति निर्ग्रन्थसंसदि ॥५५॥
 तेन देवेन्द्रवन्द्येन व्याख्यातमिदमादृशम् । तथा निवृत्तिरेकापि ददाति परमं फलम् ॥५६॥
 जन्तूनां दुःखभूयिष्ठभवसन्ततिसारिणाम् । पापास्त्रिवृत्तिरूपापि संसारोत्तारकारणम् ॥५७॥
 येषां विरतिरेकापि कुतश्चिन्नोपजायते^१ । नरास्ते जर्जरीभूतकलशा इव निर्गुणाः ॥५८॥
 मनुष्याणां पशूनां च तेषां यत् किञ्चिदन्तरम् । येषां न विद्यते कश्चिद्विरामो मोक्षकारणम् ॥५९॥
 शक्त्या सुव्रत पापानि गृहीतं सुकृतं धनम् । जात्यन्या इव संसारे न भ्राम्यथ यतश्चिरम् ॥६०॥
 एवं भगवतो वक्त्रकमलाश्रितं वचः । मधु पीत्वा नराः केचिद्गगनाम्बरता^२ गताः ॥६१॥
 सागारधर्ममपरे श्रिता विकलशक्तयः । कर्मानुभावतः सर्वे न भवन्ति ममक्रियाः ॥६२॥
 एकेन साधुना तत्र प्रोक्तोऽहं सौम्यचेतसा । दशानन गृहार्णैकां निवृत्तिमिति शक्तितः ॥६३॥
 धर्मरत्नोत्पलद्वीप प्राप्तः शून्यमनस्करः । कथं व्रजसि विज्ञानी गुणसंग्रहकोविदः ॥६४॥
 इत्युक्तेन मया देवि प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । देवासुरमहर्षीणां प्रत्यक्षमिति भाषितम् ॥६५॥
 यावन्नेच्छति मां नारी परकीया मनस्विनी । प्रसभं सा मया तावन्नाभिगम्यापि दुःखिना ॥६६॥
 एतच्छाभिमितानेन गृहीतं दयिते व्रतम् । का मां किल समालोक्ष्य साध्वी मानं करिष्यति ॥६७॥
 अतो न तां स्वयं देवि गृह्णामि सुमनोहराम् । सकृज्जल्पन्ति राजानः प्रत्यवायोऽन्यथा महान् ॥६८॥
 यावन्मुञ्चामि नो प्राणान् तावत् सीता प्रसाधताम् । मत्समावृत्ते गेहे कूपखानभ्रमो वृथा ॥६९॥

मैं जिस कारण उस सर्वाङ्ग सुन्दरीको जबर्दस्ती ग्रहण नहीं करता हूँ इसमें निवेदन करने योग्य कारण है उसे सुनो ॥५४॥ हे देवि ! मैंने अनन्तवीर्य भगवान्‌के समीप निर्ग्रन्थ मुनियोंकी सभामें साक्षात् एक व्रत लिया था ॥५५॥ इन्द्रांके द्वारा बन्दीय अनन्तवीर्य भगवान्‌ने एक बार ऐसा व्याख्यान किया कि एक वस्तुका त्याग भी परम फल प्रदान करता है ॥५६॥ दुःखोंसे भरी भव-परम्परामें भ्रमण करनेवाले प्राणियोंके पापसे थोड़ी भी निवृत्ति हो जावे तो वह उनके संसारसे पार होनेका कारण हो जाती है ॥५७॥ जिन मनुष्योंके किसी पदार्थके त्यागरूप एक भी नियम नहीं है वे फूटे घटके समान निर्गुण हैं ॥५८॥ उन मनुष्यों और पशुओंमें कुछ भी अन्तर नहीं है जिनके कि मोक्षका कारणभूत एक भी नियम नहीं है ॥५९॥ हे भव्य जीवो ! शक्तिके अनुसार पाप छोड़ो और पुण्यरूपी धनका संचय करो जिससे जन्मान्ध मनुष्योंके समान चिर काल तक संसारमें परिभ्रमण न करना पड़े ॥६०॥ इस प्रकार भगवान्‌के मुख कमलसे निकले हुए वचनरूपी मकरन्दको पीकर कितने ही मनुष्य निर्ग्रन्थ अवस्थाको प्राप्त हुए और हीनशक्तिको धारण करनेवाले कितने ही लोग गृहस्थधर्मको प्राप्त हुए सो ठीक ही है क्योंकि कर्मोदयके कारण सब एक समान क्रियाके धारक नहीं होते ॥६१-६२॥ उस समय सौम्य चित्तके धारक एक मुनिराजने मुझसे कहा कि हे दशानन ! शक्तिके अनुसार तुम भी एक नियम ग्रहण करो ॥६३॥ तुम धर्मरूपी उत्पल रत्नद्वीपको प्राप्त हुए हो सो विज्ञानी तथा गुणोंके संग्रह करनेमें निपुण होकर भी खाली मन एवं खाली हाथ क्यों जाते हो ॥६४॥ इस प्रकार कहनेपर हे देवि ! मैंने मुनिराजको प्रणामकर सुर असुर तथा मुनियोंके समक्ष इस तरह कहा कि जब तक मानवता परखी मुझे स्वयं नहीं चाहेगी तब तक दुखी होनेपर भी मैं बलपूर्वक उसका सेवन नहीं करूँगा ॥६५-६६॥ हे प्रिये ! मैंने यह व्रत भी इस अभिमान से ही लिया था कि मुझे देखकर कौन पतिव्रता मान करेगी ? ॥६७॥ इसलिये हे देवि ! मैं उस मनोहराङ्गीको स्वयं नहीं ग्रहण करता हूँ क्योंकि राजा एक बार ही कहते हैं अन्यथा बहुत भारी वाधा आ पड़ती है ॥६८॥ अतः जब तक मैं प्राण नहीं छोड़ता हूँ तब तक सीताको प्रसन्न करो

ततस्तं तादृशं ज्ञात्वा सञ्जातकल्पोदया । चभाण रमणीं नाथ स्वरूपमेतत् समीहितम् ॥७०॥
ततः किञ्चिन्मधुस्वादविलासवशवर्तिनी । सा देवरमणोद्धारं जगाम कमलचणा ॥७१॥
तदाज्ञां प्राप्य सग्नद्विरष्टादशमहीजसाम् । दशाननवरक्षीणां सहस्राण्यनुवव्रजुः ॥७२॥
मन्दोदरी क्रमाःप्राप्य सीतामेवममायत । समस्तनयविज्ञानकृतमण्डनमानसा ॥७३॥
अथ सुन्दरि हर्षस्थ स्थाने कस्माद्विपीदसि । त्रैलोक्येऽपि हि सा धन्या पतियस्या दशाननः ॥७४॥
सर्वविद्याधराधीशं पराजितमुराधिपम् । त्रैलोक्यसुन्दरं कस्मात्पति नेच्छसि रावणम् ॥७५॥
निःस्वःकमागोचरं कोऽपि तस्यार्थं दुःखितासि किम् ।

सर्वलोकवरिष्ठस्य स्वस्य सौख्यं विधीयताम् ॥७६॥

आत्मार्यं कुर्वतः कर्म सुमहासुखदानम् । दोषो न विद्यते कश्चित्सर्वं हि सुखकारणम् ॥७७॥
मयेति गदित वाक्यं यदि न प्रतिपद्यते । ततो यन्नविता तत्ते शत्रुभिः प्रतिपद्यताम् ॥७८॥
बलीयान् रावणः स्वामी प्रतिपन्नविजितः । कामेन पीडितः कोपं गन्धैःप्राप्यनमज्जनात् ॥७९॥
यौ रामलक्ष्मणौ नाम तव कावपि सम्मतौ । तयोरपि हि सन्देहः क्रुद्धे सति दशानने ॥८०॥
प्रतिपद्यस्व तत् चित्रं विद्याधरमहेश्वरम् । हरवर्यं परमं प्राप्तां सौरी लोकां समाश्रय ॥८१॥
इत्युक्त्वा बाष्पसम्भारगद्गदोद्गीर्णवर्णिका । जगाद जानकी जातजललोचनधारिणी ॥८२॥
वनिते सर्वमेतत्ते विरुद्धं वचनं परम् । सतीनामीदृशं वक्त्रालोक्यं निगन्तुमर्हति ॥८३॥
इदमेव शरीरं मे क्षिण्वन्मिन्दायत्रा इव । मर्तुः पुरुषमन्यं तु न करोमि मनस्यपि ॥८४॥

क्योंकि घरके भस्म हो जाने पर कूप खुदानेका श्रम व्यर्थ है ॥६६॥

तदनन्तर रावणको वैसा जान जिसे दया उत्पन्न हुई थी ऐसी मन्दोदरी बोली कि हे नाथ !
यह तो बहुत छोटी बात है ॥७०॥ तत्पश्चात् कुछ मधुर विलासांकी वशवर्तिनी कमललोचना
मन्दोदरी देवारण्य नामक उद्यानमें गई ॥७१॥ उसकी आज्ञा पाकर रावणको अठारह हजार
मानवती स्त्रियाँ भी वैभवके साथ उसके पीछे चली ॥७२॥ समस्त नयनीतियोंके विज्ञानसे
जिसका मन अलंकृत था ऐसी मन्दोदरीने क्रम-क्रमसे सीताके पास जाकर इस प्रकार कहा ॥७३॥
कि हे सुन्दरि ! हर्षके स्थानमें विषाद क्यों कर रही हो ? वह स्त्री तीनों लोकोंमें धन्य है जिसका
कि रावण बति है ॥७४॥ जो समस्त विद्याधरोका अधिपति है, जिसने इन्द्रको पराजित कर
दिया है, तथा जो तीनों लोकोंमें अद्वितीय सुन्दर है ऐसे रावणको तुम पतिरूपसे क्यों नहीं
चाहती हो ? ॥७५॥ तुम्हारा पति कोई निर्धन भूमिगोचरी मनुष्य है सो उसके लिए इतना दुखी
क्यों हो ? सर्व लोकसे श्रेष्ठ अपने आपको सुखी करना चाहिए ॥७६॥ अपने लिए महासुखके
साधनभूत कार्यके करनेवालेको कोई दोष नहीं है क्योंकि मनुष्यके सब प्रयत्न सुखके लिए ही
होते हैं ॥७७॥ इस प्रकार मेरे द्वारा कहे हुए वचन यदि तुम स्वीकृत नहीं करती हो तो फिर
जो दशा होगी वह तुम्हारे शत्रुओंको प्राप्त हो ॥७८॥ रावण अतिशय बलवान् तथा शत्रुसे रहित
है प्रार्थना भङ्ग करने पर वह काम पीडित हो क्रोधको प्राप्त हो जायगा ॥७९॥ जो राम लक्ष्मण
नामक कोई पुरुष तुम्हें इष्ट हैं सो रावणके क्रुपित होने पर उन दोनोंका भी सन्देह ही है ॥८०॥
इसलिए तुम शीघ्र ही विद्याधरोके अधिपति रावणको स्वीकृत करो और परम ऐश्वर्यको प्राप्त
हो देवो सम्बन्धि लीलाको धारण करो ॥८१॥

इस प्रकार कहने पर जिसके मुखसे बाष्पभारके कारण गद्गद वर्ण निकल रहे थे तथा
जो अश्रुपूर्ण नेत्र धारण कर रही थी ऐसी सीता बोली कि हे वनिते ! तेरे ये सब वचन अत्यन्त
विरुद्ध हैं । पतिव्रता स्त्रियोंके मुखसे ऐसे वचन नहीं निकल सकते हैं ? ॥८२-८३॥ मेरे इस

१. कोऽयं । २. सुराणामिव सौरी ता देवसम्बन्धिनीम् ।

३३-२

सन्तुष्टमारूपोऽपि यदि बाह्यलोपमः । नरस्तथापि तं भर्तुर्न्यं नेच्छामि सर्वथा ॥८५॥
 सुमान्मवीमि संक्षेपाहारान् सर्वानिहागतान् । यथा ब्रूत तथा नैतच्छ्रोमि कुर्वतेऽस्मिन् ॥८६॥
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः स्वयमेव दशाननः । सीतां मदनतापातीं गङ्गावेणीमिव द्विपः ॥८७॥
 समीपीभूय चोवाच परं कर्णया गिरा । किञ्चिद्विहसितं कुर्वन्मुलचन्द्रं महादरः ॥८८॥
 'मा यासीद्वैवि संत्रासं भक्तोऽहं तव सुन्दरि । शृणु विज्ञाप्यमेकं मे प्रसीदावहिता भव ॥८९॥
 वस्तुना केन हीनोऽहं जगत्त्रितयवर्तिना । न मां वृणोपि यद्योग्यमात्मनः पतिमुत्तमम् ॥९०॥
 इत्युक्त्वा स्पष्टकाम तं सीतावोचत्ससम्भ्रमा । 'अपसर्प ममाङ्गावि मा दृश्यः पापमानस ॥९१॥
 उवाच रावणो देवि त्यज कोपाभिमानताम् । प्रसीद दिव्यभोगानां शचोव स्वामिनी भव ॥९२॥
 सीतोवाच कुशीलस्य विभवाः केवलं मलम् । जनस्य साधुशीलस्य दारिद्र्यमपि भूषणम् ॥९३॥
 चारुवंशप्रसूतामा जनानां शीलहारतः । लोकद्वयविरोधेन शरणं मरणं वरम् ॥९४॥
 परयोपिकृताशस्य तवेद जीवित मुधा । शीलस्य पालनं कुर्वन् यो जीवति स जीवति ॥९५॥
 एवं तिरस्कृतो मायां कर्तुं प्रवृत्ते हुतम् । नेष्टुर्देव्यः परित्रस्ताः सज्जातं सर्वमाकुलम् ॥९६॥
 एतस्मिन्नन्तरे जाते आनुर्मायाभयादिव । सप्तं किरणचक्रेण प्रविवेशास्तगङ्गम् ॥९७॥
 प्रचण्डवैगलङ्घ्यैः करिभिर्घनवृद्धैः । भीषिताभ्यगमत्सीता शरणं न दशाननम् ॥९८॥

शरीरको तुम लोग चाहे छेद डालो, भेद डालो अथवा नष्ट कर दो परन्तु अपने भर्ताके सिवाय अन्य पुरुषको मनमें भी नहीं ला सकती हूँ ॥८४॥ यद्यपि मनुष्य सन्तुष्टमारके समान रूपका धारक हो अथवा इन्द्रके तुल्य हो तो भी भर्ताके सिवाय अन्य पुरुषकी मैं किसी तरह इच्छा नहीं कर सकती ॥८५॥ मैं यहाँ आई हुई तुम सब स्त्रियोंसे संक्षेपमें इतना ही कहती हूँ कि तुम लोग जो कह रही हो वह मैं नहीं करूँगी तुम जो चाहो सो करो ॥८६॥

इसी बीचमें जिस प्रकार हाथी गङ्गाकी धाराके पास पहुँचता है उसी प्रकार कामके संतापसे दुःखी रावण स्वयं सीताके पास पहुँचा ॥८७॥ और पासमें स्थित हो मुखरूपी चन्द्रमा-को कुछ कुछ हाथसे थुक्त करता हुआ बड़े आदरके साथ अत्यन्त दयनीय वाणीसे बोला कि हे देवि ! भयको प्राप्त मत होओ, हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारा भक्त हूँ, मेरी एक प्रार्थना सुनो, प्रसन्न होओ और सावधान बनो ॥८८-८९॥ बताओ कि मैं तीनों लोकोंमें वर्तमान किस वस्तुसे हीन हूँ जिससे तुम मुझे अपने योग्य उत्तम पति स्वीकृत नहीं करती हो ॥९०॥ इतना कहकर रावणने स्पर्श करनेकी चेष्टा प्रकट की तब सीताने हड़बड़ा कर कहा कि पापी हृदय ! हट मेरे अङ्गीका स्पर्श मतकर ॥९१॥ इसके उत्तरमें रावणने कहा कि हे देवि ! क्रोध तथा अभिमान छोड़ो, प्रसन्न होओ और इन्द्राणीके समान दिव्य भोगोंकी स्वामिनी बनो ॥९२॥ सीताने कहा कि कुशील मनुष्यकी सम्पदाएँ केवल मल हैं और सुशील मनुष्यकी दरिद्रता भी आभूषण है ॥९३॥ उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्योंको शीलकी हानिकर दोनो लोकोंके विरुद्ध कार्य करनेसे मरणकी शरणमें जाना ही अच्छा है ॥९४॥ तू परस्त्रीकी आशा रखता है अतः तेरा यह जीवन व्यथा है । जो मनुष्य शीलकी रक्षा करता हुआ जीता है वास्तवमें वह जीता है ॥९५॥

इस प्रकार तिरस्कारको प्राप्त हुआ रावण शीघ्र ही माया करनेके लिए प्रवृत्त हुआ । सब देवियों भयभीत होकर भाग गई और वहाँका सब कुछ आकुलतासे पूर्ण हो गया ॥९६॥ इसी बीचमें सूर्य, किरण समूहके साथ साथ अस्ताचलकी गुहामें प्रविष्ट हो गया सो मानो रावणकी मायाके भयसे ही प्रविष्ट हो गया था ॥९७॥ जो अत्यन्त क्रोधसे युक्त थे, जिनके गण्डस्थलसे मद चूर रहा था तथा जो अत्यधिक गर्जना कर रहे थे ऐसे हाथियोंसे डराये जानेपर भी सीता

दंष्ट्राकरालदशनैर्गर्भैर्दुःसहनिःस्वनैः । भीषिताप्यगमस्तीता शरणं न दशाननम् ॥१६॥
 चल्लोसरसङ्घातैः सिहैस्प्रनखाङ्कुसैः । भीषिताप्यगमस्तीता शरणं न दशाननम् ॥१७॥
 उल्लङ्घुलिङ्गभीमाचैर्लसजिह्वैर्महोरगैः । भीषिताप्यगमस्तीता शरणं न दशाननम् ॥१८॥
 व्याप्ताननैः कृतोत्पातपतनैः क्रूरवानरैः । भीषिताप्यगमस्तीता शरणं न दशाननम् ॥१९॥
 तमःपिण्डासितैस्तुङ्गैर्वैतलैः कृतहुद्कृतैः । भीषिताप्यगमस्तीता शरणं न दशाननम् ॥२०॥
 पृचं नानाविधैरुग्रैरुपसर्गैः क्षणोभ्रतैः । भीषिताप्यगमस्तीता शरणं न दशाननम् ॥२१॥
 तावच्च समतीतायां विशावर्या भयादिव । जिनेन्द्रवेशमसूक्तस्थौ शङ्खभेरीदिनिःस्वनः ॥२२॥
 उद्धादितकपाटानि द्वाराणि वरवेशमनाम् । प्रभाते गतनिद्राणि लोचनानीव रेजिरे ॥२३॥
 सन्ध्याया रञ्जिता प्रार्थी दिगव्यन्तमराजत । कुङ्कुमस्येव पङ्केन मानोरागच्छतः कृता ॥२४॥
 नैशं ध्वान्तं समुत्सर्ष्य कृत्वेन्दु विगतप्रभम् । उद्धाया सहस्रांशुः पङ्कजाणि न्यबोधयत् ॥२५॥
 ततो विमलतां प्राप्ते प्रभाते चलपङ्क्तिणि । विभीषणादयः प्रापुर्दशार्थं प्रियवान्धवाः ॥२६॥
 खरवृषणशोकेन ते निर्वाच्यनताननाः । सबाष्पलोचना भूमौ समासीना यथोचितम् ॥२७॥
 तावत्पटान्तरस्थाया रुदत्याः शोकनिर्भरम् । शुभ्राव योषितः शब्दं मनोभेद विभीषणः ॥२८॥
 जगाद् व्याकुलः किञ्चिदपूर्वमिहाह्वना । का नाम करुण रौति स्वामिनेव विभोजिता ॥२९॥

रावणकी शरणमे नहीं गई ॥१६॥ जिनके दाँत दाढ़ीसे अत्यन्त भयंकर दिखाई देते थे और जो दुःसह शब्द कर रहे थे ऐसे व्याघ्रोंके द्वारा डराये जानेपर सीता रावणकी शरणमे नहीं गई ॥१६॥ जिनकी गरदनके बाल हिल रहे थे तथा जिनके नखरूपी अङ्कुश अत्यन्त तीक्ष्ण थे ऐसे सिंहोंके द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावणकी शरणमें नहीं गई ॥१७॥ जिनके नेत्र देवीप्यमान तिलगो के समान भयंकर थे तथा जिनकी जिह्वाएँ लपलपा रही थीं ऐसे बड़े-बड़े सोंपोंके द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावणकी शरणमे नहीं गई ॥१८॥ जिनके मुख खुले हुए थे, जो बार-बार ऊपरकी ओर उड़ान भरते थे तथा नीचेकी ओर गिरते थे ऐसे वानरोंके द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावणकी शरणमे नहीं गई ॥१९॥ जो अन्धकारके पिण्डके समान काले थे, ऊँचे थे, तथा हुंकार कर रहे थे ऐसे वेतालोंके द्वारा डराये जानेपर भी सीता रावणके शरणमे नहीं गई ॥२०॥ इस प्रकार क्षण-क्षण मे किये जानेवाले नानाप्रकारके भयंकर उपसर्गोंके द्वारा डराये जानेपर सीता रावणकी शरणमे नहीं गई ॥२१॥

तदनन्तर भयसे ही मानो रात्रि व्यतीत ही गई और जिन मन्दिरोंमे शङ्ख भेरी आदिका शब्द होने लगा ॥२२॥ प्रभात होते ही बड़े-बड़े महलोंके द्वार सम्बन्धी किञ्चाड़ खुल गये सो उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो निद्रा-रहित नेत्र ही उन्होंने खोले हो ॥२३॥ सन्ध्यासे रंगी हुई पूर्व दिशा अत्यन्त सुशोभित हो रही थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो आनेवाले सूर्यकी अगवानिकी लिए कुङ्कुमके पङ्कसे ही लिप्त की गई हो ॥२४॥ रात्रि सम्बन्धी अन्धकारको नष्टकर तथा चन्द्रमाको निष्प्रभ बनाकर सूर्य उदित हुआ और कमलोंको विकसित करने लगा ॥२५॥ तदनन्तर जिसमे पत्नी उड़ रहे थे ऐसे प्रातःकालकी निर्मलताको प्राप्त होनेपर विभीषण आदि प्रिय वान्धव रावणके समीप पहुँचे ॥२६॥ खरवृषणके शोकसे जिसके मुख चुपचाप नीचेकी ओर मुक्त रहे थे तथा जिनके नेत्र अश्रुओंसे युक्त थे ऐसे वे सच यथायोग्य भूमिपर बैठ गये ॥२७॥ उसी समय विभीषणने पटके भीतर स्थित शोकके भारसे रोती हुई लोका हृदय-चिदारक शब्द सुना ॥२८॥ सुनकर व्याकुल होते हुए विभीषणने कहा कि यह यहाँ कौन अपूर्व स्त्री करुण शब्द कर रही है ऐसा जान पड़ता है मानो यह पतिके साथ वियोगको प्राप्त हुई

शब्दोऽयं शोकसन्भूतमस्याः कर्म समुत्पन्नम् । निवेदयति देहस्य दुःखसम्भारवाहिनः ॥११३॥
 एवमुक्तं समाकर्ण्य सीता तारतरस्वनम् । स्तोद सज्जनस्याग्रे नूनं शोकः प्रवर्द्धते ॥११४॥
 जगौ च वापपूण्यास्याप्रस्तलत्रिगताक्षरम् । इह को मे देव बन्धुत्वं यत्पृच्छसि वत्सलः ॥११५॥
 सुता जनकराजस्य स्वसा मामण्डलस्य च । काकुत्स्थस्याहर्कं पत्नी सीता दशरथस्तुपा ॥११६॥
 वार्तान्वेपी गतो यावद्वर्त्ता मे आनुराहवे । रन्ध्रेऽहं तावदेतेन हृता कुक्षितचेतसा ॥११७॥
 यावत् सुव्रति प्राणान् रामो विरहिता मया । आतरस्मै द्रुतं तावर्त्तात्वा मामपथोदितः ॥११८॥
 एवमुक्तं समाकर्ण्य क्रुद्धचेता विभीषणः । जगाद् विनयं विभ्रद् आतरं गुत्त्वत्सलः ॥११९॥
 आशीविपाद्विभूतेयं मोहाद् आतः कुतस्तथा । परनारी समानीता सर्वथा भयदायिनी ॥१२०॥
 बालवुद्धिरपि स्वामिन् विज्ञाप्य श्रूयतां मम । वृत्तो हि मम देवेन प्रसादो वचनं प्रति ॥१२१॥
 भवत्कीर्तिलाजालैर्जहिलं बल्यं दिशाम् । मा धाक्तादयशोदावः प्रसीद स्थितिकोविद् ॥१२२॥
 परदारामिलापोऽयमयुक्तोऽतिभयङ्करः । लज्जनीयो जुगुप्स्यन्न लोकद्वयनिपुदनः ॥१२३॥
 धिक्शब्दः प्राप्यते योऽयं सज्जनेभ्यः समन्ततः । सोऽयं विद्वान्गो शक्तो हृदयस्य सुचेतसा ॥१२४॥
 जानन् सकलमर्यादां विद्याधरमहेस्वरः । ज्वलन्तमुत्सुकं कस्मात्करोपि हृदये निजे ॥१२५॥
 यो ना परकलत्राणि पापवुद्धिर्निषेवते । नरकं स विशलेप लोहपिण्डो यथा जलम् ॥१२६॥

है ॥११२॥ इसका यह शब्द दुःखके भारको धारण करनेवाले शरीरके शोकोत्पन्न-उत्कट कम्पन को सूचित कर रहा है ॥११३॥ इस प्रकार विभीषणके उक्त शब्द सुनकर सीता और भी अधिक रोने लगी सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनके आगे शोक बढ़ता है ॥११४॥ उसने अश्रुपूर्ण मुखसे दृष्टे-भूटे अक्षर प्रकट करते हुए कहा कि हे देव ! यहाँ मेरा बन्धु तू कौन है ? जो इस प्रकार स्नेहके साथ पूछ रहा है ॥११५॥ मैं राजा जनककी पुत्री, मामण्डलकी बहिन, रामकी पत्नी और दशरथकी पुत्रवधू सीता हूँ ॥११६॥ मेरा भर्ता कुशल वार्ता लेनेके लिए जबतक भाईके युद्धमें गया था तब तक छिद्र देख इस दुष्टहृदयने मेरा हरण किया है ॥११७॥ मुझसे विछुड़े राम जब तक प्राण नहीं छोड़ देते हैं हे भाई ! तब तक मुझे शीघ्र ही ले जाकर उन्हें सौंप दें ॥११८॥ इस प्रकार सीताके शब्द सुनकर विभीषणका चित्त क्षुपित हो उठा । तदनन्तर विनयको धारण करनेवाले गुरुजन-स्नेही विभीषणने भाईसे कहा कि हे भाई ! आशीविपसर्पकी विपरुपी अग्निके समान सब प्रकारसे भय उत्पन्न करनेवाली वह पर-नारी तू मोहवश कहाँसे ले आया है ? ॥१२१-१२०॥ हे स्वामिन् ! यद्यपि मैं बालवुद्धि हूँ तो भी मेरी प्रार्थना श्रवण कीजिये वचनके विषयमें आपने मुझपर प्रसन्नता की है अर्थात् मुझे वचन कहने की स्वतन्त्रता दी है ॥१२१॥ हे मर्यादाके जाननेमें निपुण ! यह दिशाओंका समूह आपकी कीर्तिरूपी लताओंके जालसे व्याप्त हो रहा है सो इसे अपवशरूपी दावानल जला न दे अतः प्रसन्न हुईए ॥१२२॥ यह परस्त्रीकी अभिलाषा अनुचित है, अत्यन्त भयङ्कर है, लज्जा उत्पन्न करनेवाली है, घृणित है और दोनों लोकोंको नष्ट करनेवाली है ॥१२३॥ सर्वत्र सज्जनोंसे यह धिक् शब्द प्राप्त होता है वही सहृदय मनुष्योंके हृदयके विदारण करनेमें समर्थ है अर्थात् लोकनिन्दा विचारवान् मनुष्योंके हृदयको भेदन करनेवाली है ॥१२४॥ आप तो समस्त मर्यादाको जाननेवाले, विद्याधरोंके अधिपति हैं फिर इस जलते हुए उल्मुकको अपने हृदयपर क्यों रख रहे हो ? ॥१२५॥ जो पाप-वुद्धि मनुष्य परस्त्रियोंका सेवन करता है वह विनयसे उस तरह नरकमें प्रवेश करता है जिस तरह कि लोहका पिण्ड जलमें प्रवेश करता है ॥१२६॥

१. पूणास्यात्तत्त्वत् निर्गताक्षरम् म० । २. अपकीर्तिव्वाग्निः 'वने च वनवहौ च द्वौ दाव इहेत्यते, इत्यमरः । ३. विनाशकः म० । ४. र्म ततः म० ।

तल्लुत्वा रावणोऽवोचत् किं तद्दृष्ट्वं महीतले । आतर्प्यस्यास्मि न स्वामी परकीर्यं कुतो मम ॥१२७॥
 इत्युक्त्वा विकथां कर्तुं प्रारभे भिन्नमानसः । लब्धान्तरश्च मारीचो महानीतिरवोचत् ॥१२८॥
 जानन्नपि कथं सर्वं लोकवृत्तं दशानन । अकरोद्दीदृशं कर्म मोहस्येदं विचेष्टितम् ॥१२९॥
 सर्वथा प्रातरुत्थाय पुरुषेण सुचेतसा । कुशलकुशलं स्वस्थं चिन्तनीयं विवेकतः ॥१३०॥
 निरपेक्षं प्रवृत्तेऽस्मिन् वक्तुमेवं महामती । समायां चोमन कुर्वन्नुत्तस्थौ रक्षसां प्रभुः ॥१३१॥
 त्रिजगन्मण्डनाभिस्थमास्त्रोहं च वारणम् । महर्द्धिमिश्रं सामन्तैर्वाहाकूटैः समानृतः ॥१३२॥
 पुष्पकायं समारोप्य सीतां शोकसमाकुलाम् । पुरः कृत्वा महामूल्या प्रययौ नगरीं दिशः ॥१३३॥
 कुन्तासितोऽमरचक्षुष्वज्जाहर्षितपाणयः । अग्रतः पुरुषाः ससुः कृतसम्प्रमननिस्वनाः ॥१३४॥
 अलिताश्चञ्चलग्रीवाः स्फूरीयुष्माः सहस्रशः । चञ्चलुराननछुण्णकितयश्चारुसादिनः ॥१३५॥
 प्रचण्डनिस्वनद्वज्रतः कृतसामृतगर्जिताः । प्रचेतुर्वेत्तुमिनुं चा गण्डशैलसमा गजाः ॥१३६॥
 भट्टहासान् विमुञ्चन्तः कृतनानाविचेष्टिताः । स्फोटयन्त इवाकाशं प्रजग्मुर्मानवाः पुरः ॥१३७॥
 सहस्रसंख्येयवर्णां ध्वनिना पूरयन् दिशः । लङ्कां दशाननोऽविचन् मणिकान्ततोरणाम् ॥१३८॥
 सम्प्रज्ञिरेवमाद्याभिर्बुतोऽप्यत्यन्तचारुभिः । सीता दशाननं मेने तृणादपि जघम्यकम् ॥१३९॥
 अकलमपं स्वभावेन वैदेहीमानसं नृपः । न शक्यं लोभमाने तु लेपमम्बु यथाम्बुजम् ॥१४०॥

यह सुनकर रावणने कहा कि हे माई ! पृथिवीतल पर वह कौन पदार्थ है जिसका मैं स्वामी न हूँ ? अतः मेरे लिए यह परकीय वस्तु कैसे हुई ? ॥१२७॥ इस प्रकार कहकर उस भिन्न हृदयने विकथार्थ करना प्रारम्भ कर दिया । तदनन्तर अवसर पाकर महानीतिज्ञ मारीच बोला ॥१२८॥ कि हे दशानन ! लोकका सब श्रुतान्त जानते हुए भी तुमने ऐसा कार्य क्यों किया ? यथार्थमे यह मोहकी ही चेष्टा है ॥१२९॥ बुद्धिमान् मनुष्यको सब तरहसे प्रातःकाल छठकर विवेक पूर्वक अपने दिवाहितका विचार करना चाहिए ॥१३०॥ इस प्रकार महाबुद्धिमान् मारीच जब निरपेक्ष भावसे यह सब कह रहा था तब बीचमे ही सभाके लोभको करता हुआ रावण छठकर खड़ा हो गया ॥१३१॥ तदनन्तर बड़ी-बड़ी ऋद्धियों और अश्वालुढ सामन्तोसे घिरा हुआ रावण त्रिलोकमण्डन नामक हाथी पर सवार हो गया ॥१३२॥ वह शोकसे व्याकुल सीताको पुष्पक विमान पर चढ़ा कर तथा आगे कर वड़े वैभवसे नगरी की ओर चला ॥१३३॥ भाले, खन्ना, तोमर, झण्ड तथा ध्वजा आदि जिनके हाथमे थे और जो संभ्रम पूर्वक जोरदार नारे लगा रहे थे ऐसे पुरुष आगे-आगे चल रहे थे ॥१३४॥ जिनकी गोवाएँ चञ्चल थीं, जो सुशोभित खुरोके अग्रभागसे पृथिवीको खोद रहे थे तथा जिनपर मनोहर सवार बैठे हुए थे ऐसे हजारों घोड़े चल पड़े ॥१३५॥ जिनके घण्टे प्रचण्ड शब्द कर रहे थे, जो मेघोंके समान गर्जना कर रहे थे, जिन्हें महावत प्रेरित कर रहे थे और जो गण्डशैल-काली चट्टानोंवाले पर्वतोंके समान जान पड़ते थे ऐसे हाथी चलने लगे ॥१३६॥ जो अट्टहास छोड़ रहे थे अर्थात् ठहाका मार कर हँस रहे थे, नाना प्रकारकी चेष्टाएँ कर रहे थे और आकाशको फोड़ते हुए से जान पड़ते थे ऐसे मनुष्य उसके आगे-आगे जा रहे थे ॥१३७॥ इस प्रकार हजारों तुरहियोंके शब्दसे दिशाओंको पूर्ण करता हुआ रावण मणि तथा स्वर्णनिर्मित तोरणोंसे अलंकृत लंका नगरीमे प्रविष्ट हुआ ॥१३८॥ यद्यपि रावण इस प्रकारकी अत्यन्त सुन्दर सम्पदाओंसे घिरा हुआ था तो भी सीता उसे दृष्टसे भी तुच्छ समझती थी ॥१३९॥ स्वभावसे ही निर्मल सीताके मनको रावण उस तरह लोभ प्राप्त करानेके लिए समर्थ नहीं हो सका जिस प्रकारकी पानी कमलको लेप प्राप्त करानेके लिए समर्थ नहीं होता है ॥१४०॥

१. रावणः म० । २. ध्वजाद्वर्षित म०, व० । ३. लोभमाने तु लेपमम्बु यथाम्बुजम् म० ।

समन्तकुसुमं तावन्नानातरलताकुलम् । प्रमदालयं वन सीता नीता नन्दनसुन्दरम् ॥१४१॥
 स्थितं फुल्लनगस्योद्भवं दृष्ट्वा यद् दृष्टिबन्धनम् । उन्मादो मनसस्तुद्धो देवानामपि जायते ॥१४२॥
 गिरिः सप्तभिस्त्रयैर्वेष्टितः स्वायतैः स च । रराज भद्रशालाद्यैः सूर्यावर्त इवोज्ज्वलः ॥१४३॥
 एकदेशानहं तस्य विविधाद्भुतसङ्कुलान् । नामतः सम्प्रवक्ष्यामि तव राजन् निबोधयताम् ॥१४४॥
 प्रकीर्णकं जनानन्दं सुखसेव्यं समुच्चयम् । चारणप्रियसंज्ञं च निबोध प्रमदं तथा ॥१४५॥
 प्रकीर्णकं महीपृष्ठे जनानन्दं ततः परम् । यन्नानिपिन्द्रसञ्चारी जनः क्रीडति नागरः ॥१४६॥
 तृयीयेऽल वने रम्ये मृदुपादपसङ्कुले । घनचून्दप्रतीकायो सरिद्रापीमनोहरे ॥१४७॥
 दशग्यामायता वृक्षा रविमार्गोपरोधिनाः । केतकीयूथिकोपेतास्ताम्बूलीकृतसङ्ग्रमाः ॥१४८॥
 निरुपद्रवसञ्चारे तत्रोद्यानसमुच्चये । विलसन्ति विलासिन्यः क्वचिद्देशे च सन्नराः ॥१४९॥
 चारणप्रियमुद्यानं मनोज्ञं पापनाशनम् । स्वाध्यायनिरता यत्र श्रमणा ज्योतिचारिणः ॥१५०॥
 तस्योपरि समारुह्यैयुष्टमनिन्दितम् । सुखारोहणसोपानं दृश्यते प्रमदाभिधम् ॥१५१॥
 स्नानक्रांढोचिता रम्या बाण्योऽस्मिन् पद्मशोमिता । प्रपाः सभाश्च विद्यन्ते रचितानेकभूषयः ॥१५२॥
 नारिङ्गमातुलिकाद्यैः^१ फलेयत्र निरन्तराः । खजूरैर्नालिकेरैश्च तालैरन्यैश्च वेष्टिताः ॥१५३॥
 तत्र च प्रमदोद्याने सर्वा एवागजातयः । कुसुमस्तनकैरक्षुन्ना गीयन्ते मत्तपट्पदैः ॥१५४॥

अथानन्तर जिसमें सब ओरसे फूल फूल रहे थे, जो नानाप्रकारके वृक्ष और लताओंसे युक्त था तथा जो नन्दन वनके समान सुन्दर था ऐसे प्रमद नामक वनमें सीता ले जाई गई ॥१४१॥ फूलोंके पर्वतके ऊपर स्थित तथा दृष्टिको बँधनेवाले जिस प्रमदवनको देखकर देशोंके मनमें भी अत्यधिक उन्माद उत्पन्न हो जाता है ॥१४२॥ अत्यन्त लम्बे-लम्बे सात उद्यानोंसे घिरा हुआ वह पर्वत ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो भद्रशाल आदि वनोंसे घिरा अतिशय उज्ज्वल सुमेरु पर्वत ही हो ॥१४३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! अनेक आश्रयोंसे भरे हुए उसके एक देशरूप जो सघन वन है हम उनके नाम कहते हैं सो सुनो ॥१४४॥ उस पर्वत पर जो सात वन है उनके नाम इस प्रकार हैं—१ प्रकीर्णक २ जनानन्द ३ सुखसेव्य ४ समुच्चय ५ चारण-प्रिय ६ निबोध और प्रमद ॥१४५॥ इनमेंसे प्रकीर्णक नामका वन पृथ्वीतल है पर उसके आगे जना-नन्द नामका वह वन है जिसमें कि वे ही मनुष्य क्रीड़ा करते हैं जिनका कि आना-जाना निषिद्ध नहीं है अन्य लोग नहीं ॥१४६॥ उसके ऊपर चलकर तीसरा सुखसेव्य नामका वन है जो कोमल वृक्षोंसे व्याप्त है, मेघ समूहके समान है, तथा नदियों और बापिकाओंसे मनोहर है । उस वनमें सूर्यके मार्गको रोकनेवाले, केतकी और जूहीसे सहित तथा पानकी लताओंसे लिपटे दशवेमां प्रमाण लम्बे-लम्बे वृक्ष हैं ॥१४७-१४८॥ उसके ऊपर उपद्रव रहित गमनागमनसे युक्त समुच्चय नामका चौथा वन है जिसमें कहीं हाव-भावको धारण करनेवाली स्त्रियों सुशोभित हैं तो कहीं उत्तमोत्तम मनुष्य सुशोभित हो रहे हैं ॥१४९॥ उसके ऊपर चारणप्रिय नामक पांचवां पापापहारी मनोहर वन है जिसमें चारणशृङ्गधारी मुनिराज स्वाध्यायसे तत्पर रहते हैं ॥१५०॥ [उसके ऊपर छठवां निबोध नामका वन है जो ज्ञानका निवास है] और उसके आगे चढ़कर प्रमद नामका सातवां वन है जो घोड़ेके पृष्ठके समान उत्तम तथा सुखसे चढ़नेके योग्य सीढ़ियोंसे युक्त दिखाई देता है ॥१५१॥ इस प्रमद वनमें स्नानक्रीड़ाके योग्य, कमलोंसे सुशोभित मनोहर बापिकाएँ हैं, स्थान स्थान पर पानीयशालाएँ और अनेक खण्डोंसे युक्त सभागृह विद्यमान हैं ॥१५२॥ जहाँ खजूर, नारियल, ताल तथा अन्य वृक्षोंसे घिरे एवं फलोंसे लदे नारिङ्ग और बीजपूर आदिके वृक्ष हैं ॥१५३॥ उस प्रमद

कुर्वन्ती च^१ लतालीलां कोमलैः पल्लवैः करै । धूर्णिता मन्दवातेन फलयुग्ममनोहरा ॥१५५॥
 सारङ्गदयिताभिश्च प्रलम्बाभ्युदयोभिनः । समस्ततुङ्गच्छायाः^२ सेव्यन्ते वचपादपाः ॥१५६॥
 विश्रुतिं तस्य तां वाप्यः सहस्रच्छन्दनाननाः । आलोकन्त इवावृता असितोपललोचनैः ॥१५७॥
 गहनात् कोकिलापात्रं नृत्यन्त्यो मन्दवायुना । दीर्घिका विहसन्तीव राजहसकदम्बकैः ॥१५८॥
 प्रमदाभिर्यमुद्यान सर्वभोगोत्सवावहम् । अत्र किं बहुनोक्तेन स्याद्भर चन्दनादपि ॥१५९॥
 अशोकमालिनी नाम पत्रपञ्चविराजिता । वापी कनकसोपाना विशित्राकारगोपुरा ॥१६०॥
 मनोहरैर्गृहैर्भाति गवाक्षाद्युपशोभितैः । सल्लतालिङ्गितप्रान्तैर्निकरैश्च ससीकरैः ॥१६१॥
 तत्राशोकतच्छुभ्रे स्थापिता शोकधारिणी । देशे शकालयाद् अष्टा स्वयं श्रीरिव जानकी ॥१६२॥
 तस्मिन् दशाननोकाभिः स्त्रीभिरन्तरवर्जितम् । सीता प्रसाद्यते वक्ष्यगन्धालङ्कारपाणिभिः ॥१६३॥
 दिव्ये सनत्नर्यातिवैष्यैश्चासृवहारिभिः । अनुनेहुं न सा शक्या सम्पदा चामराभया ॥१६४॥
 उपयुपरि संरको दूर्ता विद्याधराधिपः । प्राहिणोद्धि स्मरोदरदावज्वालाकुलीकृतः ॥१६५॥
 दूतिं सीतां ब्रज ब्रूहि दशस्यमसुरक्तकम् । न साम्प्रतमवज्ञातुं प्रसीदेत्यादिभाषते ॥१६६॥
 गताऽऽगता च सा तस्मै वदतीति वितेजसे । देव साहारमुत्सृज्य स्थिता त्वां दृष्टुं कथम् ॥१६७॥

नामक उद्यानसे दृष्टौकी सब जातियाँ विद्यमान हैं जो कि फूलोंसे आच्छादित हैं और मन्दोन्मत्त भ्रमर जिनपर गुञ्जार करते हैं ॥१५४॥ वहाँ मन्द-मन्द वायुसे हिलती और फलों तथा फूलोंसे मनोहर लता अपने कोमल पल्लवोंसे ऐसी जान पड़ती है मानो हाथ चलाती हुई नृत्य ही कर रही हो ॥१५५॥ वहाँ नीचे लटकते हुए मेवाँके समान सुशोभित तथा समस्त ऋतुओंमें छाया उत्पन्न करनेवाले सघन वृक्षोंकी हरिणियाँ सदा सेवा करती हैं—उनके नीचे विश्राम लेती हैं ॥१५६॥ कमलरूपी मुखोंसे सहित वहाँकी बापिकाएँ नील कमल रूपी नेत्रोंके द्वारा उस वनकी उस विभूतिकी मानो अद्य होकर ही सदा देखती रहती हैं ॥१५७॥ जहाँ मन्द-मन्द वायुसे नृत्य करती हुई बापिकाएँ राजहंस पक्षियोंके समूहसे ऐसी जान पड़ती हैं मानों कोकिलाओंके आलापसे युक्त सघन वनोंकी हँसी ही कर रहीं हों ॥१५८॥ इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या ? इतना ही बहुत है कि समस्त भोगों और उत्सवोंको धारण करनेवाला वह प्रमद नामक उद्यान नन्दन वनसे भी अधिक सुन्दर है ॥१५९॥

उस प्रमद वनमें अशोक मालिनी नामकी वापी है जो कि कमल पत्रोंसे सुशोभित है, स्वर्णमय सोपानोंसे युक्त है, और विशित्र आकार वाले गोपुरसे अलंकृत है ॥१६०॥ इसके सिवाय वह प्रमद वन क्रूरोंसे आदिसे अलंकृत तथा उत्तमोत्तम लताओंसे आलिङ्गित मनोहर गृहों और जल कणोंसे युक्त निर्मरोंसे सुशोभित है ॥१६१॥ उस प्रमद वनके अशोक वृक्षसे आच्छादित एक देशमें बैठी शोकवती सीता ऐसी जान पड़ती थी मानों स्वर्गसे गिरी साक्षात् लक्ष्मी ही ॥१६२॥ वहाँ रावणकी आज्ञानुसार वक्ष, गन्ध तथा अलंकारोंको हाथोंमें धारण करनेवाली स्त्रियाँ निरन्तर सीताको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करती थी ॥१६३॥ किन्तु नृत्य सहित दिव्य संगीतों, अमृतके समान मनोहर वचनों और देवतुल्य सम्पदोंके द्वारा सीता अनुकूल नहीं की जा सकी ॥१६४॥ इतने पर भी कामरूपी दावानलकी प्रचण्ड ज्वालाओंसे व्याकुल हुआ रागी रावण एकके बाद एक दूती भेजता रहता था ॥१६५॥ वह कहता था कि हे दूति ! जाओ और सीतासे कहो कि अब अनुरागसे भरे रावणकी उपेक्षा करना उचित नहीं है अतः प्रसन्न होओ ॥१६६॥ दूती सीताके पास जाती और वापिस आकर तेजरहित रावणसे कहती कि हे देव !

न जल्पति निष्पण्णाङ्गं नालं कायेन चेष्टते । न ददाति महाशोका दष्टिमस्मासु जानकी ॥१६८॥
 अमृतादपि सुखाद्वैः पयःप्रभृतिभिः श्रितम् । सुगन्धि वृणुते नाहं विचित्रं बहुवर्णकम् ॥१६९॥
 ततो मदनदीप्ताग्निज्वालादीढः समन्ततः । आर्त्तो^१ व्यचिन्तयत् भूरि मग्नोऽसौ व्यसनाग्धवे ॥१७०॥
 शोचन्त्यनुक्तदीर्घोष्णिनिश्वासानिलसन्ततिः । शुष्यन्मुखः पुनः किञ्चिद्गायत्यविदिताक्षरम् ॥१७१॥
 स्मरप्रालेयनिर्दग्धं धुनाति मुखपङ्कजम् । मुहुः किमपि सञ्चित्य स्मयते क्षणनिश्चलः ॥१७२॥
 अनुबन्धमहादाहा समस्ता^२ वयवानलम् । क्षिपत्यविरत भूमौ कुट्टिमायां विवर्त्तकः ॥१७३॥
 उत्तिष्ठति पुनः शून्यः सेवते निजमासनम् । निष्क्रामति पुनर्दृष्ट्वा जन प्रतिनिवर्त्तते ॥१७४॥
 नरोन्द्र इव हस्तेन सर्वदिद्मुखगामिना । आस्फालयति निःशङ्कः कुट्टिमं कम्पमानयन् ॥१७५॥
 स्मरन् सीतां मनोयातामात्मान पौरुषं विविधम् । निरपेक्षमुपालब्धुं^३ सान्धनेत्रः प्रवर्त्तते ॥१७६॥
 किञ्चिदाह्वयते दत्तदुःखराश्यातिकैर्जनैः । तूष्णीमास्ते पुनः किं किमिति शून्यं प्रभापते ॥१७७॥
 सीता सीतेति कृत्वास्पमुत्तानं भापते मुहुः । तिष्ठत्यवाङ्मुखं भूयो नखेन विलिखन् महीम् ॥१७८॥
 करेण हृदयं मार्षति बाहुसूक्ष्मनिमीकते । पुनर्मुञ्चति दुःखारं तस्मै मुञ्चति सेवते ॥१७९॥
 दधाति हृदये पद्मं पुनर्दूरं चिरस्थिति । मुहुः पठति^४ शृङ्गारं गगनाङ्गनमीकते^५ ॥१८०॥

वह तो आहार छोड़कर बैठी है तुम्हें किस प्रकार स्वीकृत करे ॥१६७॥ वह चुपचाप बैठी है, न कुछ बोलती है, न शरीरसे कुछ चेष्टा करती है और न महाशोकसे युक्त होनेके कारण हम लोगोंपर दृष्टि ही डालती है ॥१६८॥ अमृतसे भी अधिक स्वादिष्ट, दूध, आदिसे युक्त, सुगन्धित, तथा अनेक वर्णका विचित्र भोजन उसे दिया जाता है पर वह स्वीकृत नहीं करती है ॥१६९॥ दूतीकी बात सुनकर जो सब ओरसे कामरूपी प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त था तथा दुःखरूपी सागरमें निमग्न था ऐसा रावण अत्यधिक दुःखी होता हुआ पुनः चिन्तामें पड़ जाता था ॥१७०॥ वह कभी लम्बी तथा गरम श्वासोल्लासकी वायुको छोड़ता हुआ शोक करता था तो कभी मुख सूख जानेसे अस्पष्ट अक्षरों द्वारा कुछ गाने लगता था ॥१७१॥ वह कामरूपी तुपारसे जले हुए मुखकमलको बार-बार हिलाता था और कभी क्षणभरके लिए निश्चल बैठकर तथा कुछ सोचकर हँसने लगता था ॥१७२॥ वह रत्नखचित फर्सेपर लेटता और महादाह से युक्त समस्त अवयवोंको बार-बार फैलाता था ॥१७३॥ फिर उठकर खड़ा हो जाता, कभी शून्य हृदय हो अपने आसनपर जा बैठता, कभी बाहर निकलता और किसी मनुष्यको देखकर फिर लौट जाता ॥१७४॥ जिस प्रकार हाथी सब दिशाओंमें जानेवाली सूँझसे किसीका आस्फालन करता है उसी प्रकार रावण भी निःशङ्क हो सब दिशाओंमें घूमनेवाले अपने हाथसे कम्पित करता हुआ फर्सेको आस्फालन करता था अर्थात् फर्सेपर घुमा-घुमाकर हाथ पटकता था और उससे फर्सेको कम्पित करता था ॥१७५॥ वह मनमें आई हुई सीताका स्मरण करता हुआ अपने पुरुषार्थ, तथा निरपेक्ष भाग्यको उलाहना देनेके लिए प्रवृत्त होता था और उस समय उसके नेत्रोंसे अश्रु निकलने लगते थे ॥१७६॥ वह किसीको बुलाता था और समीपवर्ती लोग जब हुंकार देते थे तब चुप रह जाता था तदनन्तर बार-बार क्या है ? क्या है ? इस प्रकार बिना किसी लक्ष्यके वकता रहता था ॥१७७॥ वह कभी मुखको ऊपर कर 'सीता सीता' इस प्रकार बार-बार चिल्लाता था और कभी मुख नीचा कर नखसे पृथिवीको खोदता हुआ चुप बैठा रहता था ॥१७८॥ वह कभी हाथसे वक्षस्थलको साफ करता था, कभी भुजाओंके अग्रभागको देखता, कभी हुंकार छोड़ता कभी विस्तर पर जा लेटता था ॥१७९॥ कभी हृदय पर कमल

१. विचिन्तयत् म० । २. स्मरतावयवानलम् म० । ३. मुपालब्धं म० । ४. यतति म० ।
 ५. मीक्यते म० ।

हस्त हस्तेन सस्पृश्य हन्ति पादेन मेदिनीम् । निस्वासदहनस्याममाकुल्याधरमीक्ष्यते ॥१८१॥
धत्ते कहकहं त्वानं केशान् वर्त्तयति क्षणम् । कोपेन दुस्सहं दृष्टि कचिदेव विमुञ्चति ॥१८२॥
जृम्भोत्तानीकृतोरस्को वाष्पाच्छादितलोचन- । बाहुतोरणमुद्यम्य भिनत्ति स्फुटदङ्गुलिः ॥१८३॥
अशकान्तेन हृदयं धीजयत्याहितेक्षणम् । कुसुमैः कुरुते रूपं पुनर्नाशयति द्रुतम् ॥१८४॥
चित्रयल्याद्री सीतां द्वयत्यश्रुभिः पुनः । दीनः क्षिपति हाकारान् न न भामेति जल्पति ॥१८५॥
एवमाद्याः क्रियाः विलम्बा मदनग्रहपीडितः । करोति करुणालापं चित्रं हि स्मरचेष्टितम् ॥१८६॥
तस्य स्मराग्निना दीप्तं हृदयेन समं वपुः । अनुबन्धमहाधूपं ज्वलत्याशाकृतेन्धनम् ॥१८७॥
अचिन्तयच्च हा कष्टं कामवस्थामहं गतः । येनेदमपि शक्नोमि न वोढुं स्वशरीरकम् ॥१८८॥
दुर्गलागरमध्यस्था बृहद्विद्याधरा मया । जिताः सहस्रशो युद्धे किमिदं वर्ततेऽधुना ॥१८९॥
सर्वत्र जगति क्ष्यातलोकपालपरिच्छदः । वन्द्योऽयमुपावीतो महेन्द्रोऽपि पुरा मया ॥१९०॥
अनेकयुद्धनिर्भन्ननराधिपकदम्बकः । सोऽहं सम्प्रति मोहेन भस्मीकृतुं प्रवर्तितः ॥१९१॥
चिन्तयन्नित्यमन्यच्च कामाचार्यवशगतः । आस्तां तावदसौ राजन्निद्रमन्यद्विद्वप्यताम् ॥१९२॥
आकुलो मन्त्रिभिः साकं महामन्त्रविशारदः । विभीषणः समारम्भे निरूपयितुमीदृशम् ॥१९३॥
स हि रावणराष्ट्रस्य धुरं धत्ते गतश्रमः । समस्तशास्त्रबोचायुधौतनिर्मलमानसः ॥१९४॥

रखता, कभी उसे दूर फेंक देता, कभी बार-बार शृङ्गारका पाठ करता—शृङ्गार भरे शब्दोंका उच्चारण करता और कभी आकाशकी ओर देखने लगता था ॥१८०॥ कभी हाथसे हाथका स्पर्शका पैरसे पृथिवीको ताड़ित करता था, कभी श्वासोच्छ्वास रूपी अग्निसे काले पड़े हुए अधरोष्ठको खींच कर देखता था ॥१८१॥ कभी 'कह कह' शब्द करता था, कभी केशोंको खोल कर फैलाता था, कभी किसी पर क्रोधसे दुःसह दृष्टि छोड़ता था ॥१८२॥ कभी जिमुहाई लेते समय वक्त्रस्थलको फुलाकर आगेको उभार लेता था, कभी नेत्रोंको ओंलुओंसे आच्छादित करता था, कभी भुजाओंका तोरण ऊपर उठा अंगुलियों चटकाता हुआ उसे तोड़ता था ॥१८३॥ कभी हृदयकी ओर दृष्टि डालकर वक्त्रके अञ्जलसे हवा करता था, कभी फूलासे रूप बनाता और फिर उसे शीघ्र ही नष्ट कर देता था ॥१८४॥ कभी आदरके साथ सीताका चित्र बनाता और फिर उसे ओंलुओंसे गीला करता था, कभी दीनताके साथ हा हाकार करता और कभी 'न, न' 'मा, मा' शब्दोंका उच्चारण करता था ॥१८५॥ इस प्रकार कामरूपी प्रहसे पीडित रावण अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ करता तथा करुणापूर्ण वार्तालाप करता था सो ठीक ही है क्योंकि कामकी चेष्टा विचित्र होती है ॥१८६॥ जिसमें वासनारूपी महाधूम उठ रहा था, तथा आशा जिसमें ईधन वन रही थी ऐसा उसका शरीर कामाग्निसे दीप्त हो हृदयके साथ जल रहा था ॥१८७॥ वह कभी विचार करता कि हाथ में किस अवस्था को प्राप्त हो गया जिससे अपने इस शरीरको भी धारण करनेके लिए समर्थ नहीं रहा ॥१८८॥ मैंने दुर्गम समुद्रके बीचमें रहनेवाले हजारों बड़े-बड़े विद्याधर युद्धमें जीते हैं पर इस समय यह क्या हो रहा है ? ॥१८९॥ जिसका लोकपालरूपी परिकर समस्त संसारमें प्रसिद्ध था ऐसे राजा इन्द्रको भी मैंने पहले बन्दीगृहमें डाल रक्खा था तथा अनेक युद्धोंमें जिसने राजाओंके समूहको पराजित किया था ऐसा मैं इस समय मोहके द्वारा भस्मीभूत हो रहा हूँ ॥१९०-१९१॥ गौतम-कहते हैं कि हे राजन् ! यह तथा अन्यवस्तुओंका चिन्तन करना हुआ रावण कामरूपी आचार्यके वशीभूत हो रहा था सो यह रहने दो अब दूसरी बात सुनो ॥१९२॥

अथानन्तर आकुलतासे भरा तथा बड़ी-बड़ी मन्त्रणा करनेमें निपुण विभीषण मन्त्रियोके साथ बैठकर इस प्रकार निरूपण करनेके लिए तत्पर हुआ ॥१९३॥ यथार्थसे समस्त शास्त्रोंके ज्ञान

रावणस्य हि तत्तुल्यो न हितो विद्यते परः । तस्य सर्वोपयोगेन चिन्तनीये स वर्तते ॥१६५॥
 उवाचासावहो वृद्धा राजनीत्यं व्यवस्थिते । उपचिपत कर्तव्यमस्माकमुद्योचितम् ॥१६६॥
 विभीषणोदितं ध्रुत्वा सम्भिन्नमतिरभ्यधात् । अतः परं वदामः किं गतं कार्यमकार्यताम् ॥१६७॥
 स्वामिनो दशवक्त्रस्य सहसा दैवयोगतः । दक्षिणोपतितो बाहुः खरदूषणसंज्ञकः ॥१६८॥
 विराधितोऽपरः कोऽपि कारणं यो न कस्यचिद् । सोऽयं गोमायुतां मुक्त्वा केसरिज्वं समाश्रितः ॥१६९॥
 भव्यतां पश्यतामुप्य साधुकर्मोदयादिमाम् । लक्ष्मणस्याहवे यातो वन्धुतां यत्सुचेष्टितः ॥२००॥
 एतेऽपि बलिनः सर्वे मानिनः कपिकेतवः । भवन्त्याक्रान्तितो वर्या निर्भृत्यास्तु न जातुचित् ॥२०१॥
 अर्मापामन्य आकारो मानसं त्वन्यथा स्थितम् । भुजङ्गानामिवात्यन्तमन्तरे दारुणं विषम् ॥२०२॥
 नेता वानरमौलीनामनङ्गकुसुमापतिः । न्यक्षेण भजते पञ्चं सुग्रीवस्य मरुसुतः ॥२०३॥
 ततः पञ्चमुखोऽवोचद्विधायानादरस्मितम् । खरदूषणवृत्तेन गणितेनेह को गुणः ॥२०४॥
 वृत्तान्तेनामुना कस्य संन्नासोऽर्कातिरेव च । भवत्येव हि भूराणामीदृशी समरे गतिः ॥२०५॥
 'वातेनापहृते सिन्धोः कणे का न्यूनता भवेत्' । रावणस्य बलं स्फूर्तं किं दूषणसमीहया ॥२०६॥
 ब्रीडां व्रजति मे चेतः कुर्वतः सम्प्रधारणम् । कायं दृशाननः स्वामी कान्ये केऽपि वनोक्तसः ॥२०७॥
 सूर्यहस्तधरेणापि क्रियते लक्ष्मणेन किम् । विराधितः क्व नामैव यस्येच्छामनुवर्तते ॥२०८॥

जलसे धुलकर जिसका मन अत्यन्त निर्मल हो गया था तथा जो सब प्रकारके श्रमको सहन करनेवाला था ऐसा विभीषण ही रावणके राष्ट्रका भार धारण करनेवाला था ॥१६४॥ विभीषणके समान रावणका हित करनेवाला दूसरा मनुष्य नहीं था । वह उसके करने योग्य समस्त कार्यमें सर्व प्रकारका उपयोग लगाकर सदा जागरूक रहता था ॥१६५॥ विभीषणने मन्त्रियोंसे कहा कि अहो वृद्धजनो ! राजाकी ऐसी चेष्टा होनेपर अब हम लोगोका क्या कर्तव्य है सो कहो ॥१६६॥ विभीषणका कथन सुनकर संभिन्नमति बोला कि इससे अधिक और क्या कहें कि सब कार्य अकार्यताको प्राप्त हो गया है अर्थात् सब कार्य गड़बड़ हो गया है ॥१६७॥ स्वामी दृशाननकी दक्षिण भुजाके समान जो खरदूषण था वह दैवयोगसे सहसा नष्ट हो गया ॥१६८॥ वह विराधित नामका विधाधर जो कि किसीके लिए कुछ भी नहीं था वह आज शृगालपना छोड़कर सिंहपनेको प्राप्त हुआ है ॥१६९॥ पुण्य कर्मके उदयसे प्राप्त हुई इसकी इस भव्यताको तो देखो कि उत्तम चेष्टाओंको धारण करनेवाला यह युद्धमें लक्ष्मणकी मित्रताको प्राप्त हो गया ॥२००॥ इधर ये सभी वानरवंशी भी अभिमानी तथा बलवान् हो रहे हैं सो ये आक्रमणसे ही वशमें हो सकते हैं बिना आक्रमणके कभी वशीभूत नहीं हो सकते ॥२०१॥ इनका आकार कुछ दूसरा ही है और मन दूसरे ही प्रकारका स्थित है जिस प्रकार सोंपोंके बाह्यमें तो कोमलता रहती है और भीतर दारुण विष रहता है ॥२०२॥ खरदूषणकी पुत्री अन्तंगकुसुमाका पति हनुमान् इस समय वानर वंशियोंका नेता बन रहा है और वह खासकर सुग्रीवका ही पक्ष लेता है । इस प्रकार संभिन्नमतिके कह चुकने पर पंचमुख मन्त्री अनादर पूर्वक हँसता हुआ बोला कि यहाँ खरदूषणका वृत्तान्त गिननेसे अर्थात् उसकी मृत्युका सोच करनेसे क्या लाभ है ? ॥२०३-२०४॥ इस वृत्तान्तसे किसे भय तथा किसकी अपकीर्ति है ? अर्थात् किसीकी नहीं क्योंकि युद्धमें शूर वीरोकी ऐसी गति होती ही है ॥२०५॥ वायुके द्वारा समुद्रकी एक कणिका हरलेने पर समुद्रमें क्या न्यूनता आ गई ? अर्थात् कुछ भी नहीं । रावणका बल बहुत है, उसके दोष देखनेसे क्या । ऐसी बात सोचते हुए मेरे मनमें लजा आती है । कहाँ यह जगत्का स्वामी रावण और कहाँ अन्य वनवासी ? ॥२०६-२०७॥ लक्ष्मण यद्यपि सूर्यहस्त खड्गको धारण करनेवाला है तो भी उससे क्या और विराधित उसकी इच्छानुकूल प्रवृत्ति करता है—उसका

मृगेन्द्राधिष्ठितात्मानमपि काननसङ्गतम् । दन्दहृते न किं दावो गिरि परमदुःसहम् ॥२०६॥
 सहस्रमतिनामाथ सचिवोऽनन्तरं जगौ । सूचयन् विरसं वाक्यं पूर्वं मस्तककम्पनात् ॥२१०॥
 मानोद्धतैरिमैर्वान्धैर्यहैवैः किमरितैः । मन्त्रणीयं हि सम्बद्धं स्वामिने हितमिच्छता ॥२११॥
 स्वल्प इत्यनया बुद्ध्या कार्यावज्ञा न वैरिणि । कालं प्राप्य कणो चङ्गेदैहत् सकलविष्टम् ॥२१२॥
 अश्वग्रीवो महासैन्यः स्यात्तः सर्वत्र विष्टे । स्वल्पेनापि त्रिपृष्ठेन निहतो रणमूर्धनि ॥२१३॥
 तस्माक्षेपविनिर्मुक्तमियं परमदुर्गमा । नगरी क्रियतां लङ्का मतिस्सन्दोहशालिभिः ॥२१४॥
 सुघोराणि प्रसार्यन्तां यन्त्राभ्येताणि सर्वतः । तुङ्गप्राकारकूटेषु दृश्यतां च कृताकृतम् ॥२१५॥
 सन्मानैर्बहुभिः शश्वत् सेव्यो जनपदोऽखिलः । स्वजनाभ्यतिरेकेण दृश्यतां प्रियवादिभिः ॥२१६॥
 सर्वोपायविधानेनै रक्ष्यतां प्रियकारिभिः । राजा दशाननो येन सुखतां प्रतिपद्यते ॥२१७॥
 प्रसाद्यतां सुविज्ञानैर्मैथिली परमैः प्रियैः । मधुरैर्वचनैर्दानैः चकारैरिहिवधूरिव ॥२१८॥
 सुग्रीवं कैकुलनगरमन्याश्च भटपुङ्गवान् । बहिः स्थापयतोयुक्ताजगयां रक्षकारिणः ॥२१९॥
 एवंकृते न ते भेदं जानन्ति बहिराहिताः । कार्ये नियोगदानाच्च जानन्ति स्वामिनं प्रियम् ॥२२०॥
 एवं दुर्गतरं जाते कार्ये सर्वत्र सर्वतः । को जानाति हतां सीतां स्थितामग्रापरत्र वा ॥२२१॥
 रहितश्चानया रामो भ्रुवं प्राणान् विमोच्यति । वस्येयमीदृशी कान्ता वर्तते विरहे प्रिया ॥२२२॥
 रामे च पञ्चतां प्राप्ते शोकविलम्बमानसः । एकाकी हृद्भ्रष्टो वा सौमित्रिः किं करिष्यति ॥२२३॥

मित्र है इससे भी क्या ? ॥२०८॥ क्योंकि वन सहित एक अत्यन्त दुःसह पर्वत यद्यपि सिहसे सहित हो तो भी क्या उसे दावानल जला नहीं देता ? ॥२०६॥

तदनन्तर माथा हिलाकर पूर्व कथित वचनोंको नीरस वताता हुआ सहस्रमति मन्त्री बोला कि मानसे भरे इन निरर्थक वचनोंके कहनेसे क्या लाभ है ? स्वामीका हित चाहनेवाले व्यक्ति को ऐसी मन्त्रणा करनी चाहिए जो प्रकृत बातसे सम्बन्ध रखनेवाली हो ॥२१०-२११॥ 'बहु छोटा है' ऐसा समझकर शत्रुकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये क्योंकि समय पाकर अग्निका एक कग समस्त संसारको जला सकता है ॥२१२॥ बड़ी भारी सेनाका स्वामी अश्वग्रीव समस्त संसारमे प्रसिद्ध था तो भी रणको अग्रभागमें छोटेसे त्रिपृष्ठके द्वारा मारा गया था ॥२१३॥ इसलिप विना किसीके विलम्बके इस लंका नगरीको बुद्धिमान् मनुष्योंके द्वारा अत्यन्त दुर्गम बनाया जावे ॥२१४॥ ये महाभयानक यन्त्र सब दिशाओंमे फैला दिये जावे । अत्यन्त उन्नत प्राकारके शिखरो पर चढ़कर 'क्या किया गया क्या नहीं किया गया' इसकी देख रेखकी जाय ॥२१५॥ अनेक प्रकारके सन्मानोंसे समस्त देशकी निरन्तर सेवा की जाय और मधुर वचन बोलनेवाले राज्याधिकारी सब लोगोंको अपने कुटुम्बीजनोंसे अभिन्न देखे ॥२१६॥ प्रिय करनेवाले मनुष्य सब प्रकारके उपायोंसे राजा दशाननकी रक्षा करे जिससे वह सुखको प्राप्त हो सके ॥२१७॥ जिस प्रकार दूधके द्वारा सर्पिणीको प्रसन्न किया जाता है उसी प्रकार उत्तम चातुर्य, परम प्रिय मधुर वचन और इष्ट वस्तुओंके दानके द्वारा सीताको प्रसन्न किया जाय ॥२१८॥ किष्कु नगरके स्वामी सुग्रीव तथा नगरीकी रक्षा करनेमे उद्यत अन्य उत्तम योद्धाओंको नगरके बाहर रखा जावे ॥२१९॥ ऐसा करने पर बाहर रहे हुए सुग्रीवादि अन्तरका भेद नहीं जान सकेंगे और कार्य सौपा जानेके कारण वे वह समझते रहेंगे कि स्वामी हम पर प्रसन्न है ॥२२०॥ इस तरह जब यहाँका प्रत्येक कार्य सब जगह सब ओरसे अत्यन्त दुर्गम हो जायगा तब कौन जान सकेगा कि हरी हुई सीता यहाँ है या अन्यत्र है ? ॥२२१॥ सीताके विना राम निश्चित ही प्राण छोड़ देगा । क्योंकि जिसकी ऐसी प्रिय स्त्री विरहमे रहेगी वह जीवित रह ही कैसे सकेगा ॥२२२॥ जब राम मृत्युको प्राप्त हो जायगा तब शोकसे दुःखी अकेला अथवा लुद्ध सहायकोंसे युक्त

अथवा रामशोकेन मरणं तस्य निश्चितम् । दीपप्रकाशयोर्यद्दहनयोः सङ्गतं परम् ॥२२४॥
 अपराधाच्चिमग्नः सन् यास्यति क विराधितः । सुग्रीवस्यापि वाञ्छन्तं श्रूयते लोकतः परम् ॥२२५॥
 मायां सुग्रीवसन्देहकारिणीं यश्च नाशयेत् । दशवक्त्रैश्चरादस्य कोऽप्यौ लोके भविष्यति ॥२२६॥
 तस्मात्तद्दुर्गसंसिद्धी स नार्थं भजतेतराम् । योगश्चायं विभोर्वादि परिणामे शुभाग्रहः ॥२२७॥
 प्रकारेणानुना शत्रूनेतानन्याश्च जेष्यति । दशाननस्ततो यत्नः क्रियतामत्र वस्तुनि ॥२२८॥
 एवं विमृश्य विद्वांसः प्रमोढान्वितमानसाः । यथास्वं निलयं जग्मुः कर्तव्यकृतनिश्चयाः ॥२२९॥
 विभीषणेन यन्नायैः शालो दुर्गतरीकृतः । विद्यामिश्र विचित्रामिलङ्का गह्वरतारका ॥२३०॥

मन्दाक्रान्ता

कृत्यं किञ्चिद्विशदमनसामासवाक्यानपेक्षं नासैरुक्तं फलति पुरुषस्योक्तिस्तं पौरुषेण ।
 दैवापेतं पुरुषकरणं कारणं नेष्टसंगे तस्माद्भयाः क्लृप्त यतैनं सर्वहेतुप्रसादे ॥२३१॥
 राजन्कर्मण्युदयसमयं सेवमाने जनानां नानाकारं कुशलवचनं नो विशयेव चेतः ।
 युक्तां तस्मात्स्थितिमनुनयन् कर्म कुर्यात्प्रशस्तं भूयो येन प्रतपति रविः शोकरूपो न कष्टः ॥२३२॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मायाप्रकारामिधानं नाम पट्वत्त्वारिंशत्तमं पर्व ॥४६॥

लक्ष्मण क्या कर लेगा ? ॥२२३॥ अथवा रामके शोकसे उसका मरण होना निश्चित है क्योंकि इन दोनोंका समागम दीप और प्रकाशके समान अविनाभावी है ॥२२४॥ विराधित अपगधरूपी समुद्रमें भग्न है अतः कहाँ जावेगा ? अथवा जावेगा भी तो सुग्रीवके समीप जावेगा ऐसा लोगोंसे सुना जाता है ॥२२५॥ सुग्रीवका सन्देह उत्पन्न करनेवाली मायाको जो नष्ट कर सके ऐसा पुरुष संसारमें स्वामी दशाननसे बढ़कर दूसरा कौन होगा ? ॥२२६॥ इसलिए उस कठिन कार्यको सिद्ध करनेके लिए सुग्रीव, स्वामी-दशाननकी ही सेवा करेगा । और सुग्रीवके साथ दशाननका समागम होना फलकालमें शुभदायक होगा ॥२२७॥ इस विधिसे दशानन इन शत्रुओंको तथा अन्य लोगोंको भी जीत सकेगा इसलिए इस विषयमें शीघ्र ही यत्न किया जावे ॥२२८॥ इस प्रकार विचार कर बुद्धिमान् मन्त्री, करने योग्य कार्यका निश्चय कर हर्षित चित्त होते हुए अपने-अपने घर गये ॥२२९॥ विभीषणने यन्त्र आदिके द्वारा कोटको अत्यन्त दुर्गम कर दिया तथा नाना प्रकारकी विद्याओंके द्वारा लङ्काको गह्वर एवं पाशोसे युक्त कर दिया ॥२३०॥

गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! निर्मलचित्तके धारक मनुष्योंका कोई भी कार्य आप वचनोंसे निरपेक्ष नहीं होता अर्थात् आपके कहे अनुसार ही उनका प्रत्येक कार्य होता है । आप भगवान्ने मनुष्योंके लिए जो कार्य बतलाये हैं वे पुरुषार्थके बिना सफल नहीं होते और पुरुषार्थ दैवके बिना इष्ट सिद्धिका कारण नहीं होता इसलिए हे भव्यजीवो ! सो सबका कारण है उसके प्रसन्न करनेमें प्रयत्न करो ॥२३१॥ हे राजन् ! जब तक मनुष्योंके कर्मका उदय विद्यमान रहता है तब तक नानाप्रकारके कुशल वचन उनके चित्तमें प्रवेश नहीं करते हैं इसलिए अपनी योग्य स्थितिके अनुसार प्रशस्त-पुण्यकर्म करना चाहिए जिससे कि फिर शोकरूपी कष्टदायी सूर्य सन्ताप उत्पन्न न कर सके ॥२३२॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य कथित, पद्मपुराणमें रावणको मायाके विविध रूपोंका वर्णन करनेवाला छियालिसवा पर्व पूर्ण हुआ ॥४६॥

सप्तचत्वारिंशत्तमं पर्व

किष्किन्धेस्ततो भ्राम्यन् कान्ताविरहदुःखितः^१ । तं प्रदेशमनुप्राप्तो निवृत्तं यत्र संयुगम् ॥१॥
 तत्राद्राक्षीद्वयान् भग्नान् गजान् गतजीवितान् । सामन्तान् च सयुक्ताग्निर्मिच्छन् विग्रहान् ॥२॥
 वल्लभानान् नृपान् कांश्चित् कांश्चिन्धेस्तिर्वास्तथा । क्रियमाणानुमरणान् कान्तामिपरान् भटान् ॥३॥
 विच्छिन्नार्धयुजान् कांश्चित् कांश्चिर्धोस्त्वर्जितान् । निःसृतान् च यान् कांश्चित्कांश्चिद्वहिलतमस्तकान् ॥४॥
 गोमायुप्रावृतान् कांश्चित् खगैः कांश्चिन्निपेवितान् । रुदिता^२ परिवर्गेण कांश्चिच्छादितविग्रहान् ॥५॥
 किमेतदिति प्रष्टुं तस्मै कश्चिद्वेदयत् । सीताया हरणं ध्वस्तौ जटायुखरदूषणौ ॥६॥
 तप्तोऽभवद् भृशं दुःखी खरदूषणमुत्पुतः । किष्किन्धाधिपतिश्चिन्तामेवामगमदाकुलः ॥७॥
 कष्टं चिन्तितमेतन्मे किलास्मै बलशालिने । निवेद्य दयिताशोकं मोक्षयामीति महाशया ॥८॥
 विधानदन्तिना सोऽपि कथमाशामहाद्भुतः । मरणो मम विपुण्यस्य कथं शान्तिर्न विष्यति ॥९॥
 किमज्ञानासुतं गत्वा साठरं संश्रयाम्यहम् । भद्रपचारिणो येन मरणं स करिष्यति ॥१०॥
 उद्योगेन विमुक्तानां जनानां सुखिता कुतः । तस्माद् दुःखविनाशाय श्रयान्युद्योगमुत्तमम् ॥११॥
 अथवानेकशो द्रष्टुं शब्द^३ स कथ्यति । नवोऽनुरागवन्द्यो हि चन्द्रो लोकस्य नान्यदा ॥१२॥
 तस्मान् महाबलं दीप्तं महाविद्याविशरदम् । रावणं शरणं यामि स मे शान्तिं करिष्यति ॥१३॥

अथानन्तर किष्किन्धापुरका स्वामी सुग्रीव क्षीके विरहसे दुःखी हो भ्रमण करता हुआ जहाँ कि खरदूषण तथा लक्ष्मणका युद्ध हुआ था ॥१॥ वहाँ आकर बसने देखा कि कहीं टूटे हुए रथ पड़े हैं, कहीं मरे हुए हाथी पड़े हैं, कहीं जिनके शरीर छिन्न-भिन्न हो गए हैं, ऐसे थोड़े-साथ सामन्त पड़े हैं ॥२॥ कहीं कोई राजा जल रहे हैं, कोई सँस भर रहे हैं, कहीं जिनके पीछे स्त्रियाँ मर रहीं थीं ऐसे मरे हुए अनेक सुभट पड़े हैं ॥३॥ किन्हींकी आधी भुजा कट गई है, किन्हींकी आधी जाँघ टूट चुकी है, किन्हींकी आँतोका समूह निकल आया है, किन्हींके भस्तक फट गये हैं, किन्हींको शृगाल घेरे हुए हैं, किन्हींको पक्षी खा रहे हैं और किन्हींके मृत शरीरको रोते हुए कुटुम्बीजन आच्छादित कर रहे हैं ॥४-५॥ 'यह क्या है ? इस प्रकार पूछने पर किसीने उसे बताया कि सीताका हरण हो चुका है और जटायु तथा खरदूषण मारे गए हैं ॥६॥

तदनन्तर खरदूषणकी मृत्युसे किष्किन्धापति सुग्रीव बहुत दुःखी हुआ, वह आकुल होता हुआ इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि हाय मैंने विचार किया था कि 'मैं इस बलशालीके लिए निवेदन कर स्त्री सम्बन्धी शोकसे छूट जाऊँगा' इसी बड़ी आशासे मैं यहाँ आया था पर मेरे भाग्यरूपी हाथीने उस आशारूपी महावृत्तको कैसे गिरा दिया । हाय अब मुझ पापीको किस प्रकार शान्ति होगी ॥७-८॥ क्या अब मैं आदरके साथ हनुमान्का आश्रय लूँ जिससे वह मेरे समान रूपका धारण करनेवाले मायाभयौ सुग्रीवका मरण कर सके ॥९॥ उद्योगसे रहित मनुष्योंको सुख कैसे प्राप्त हो सकता है, इसलिए मैं दुःखका नाश करनेके लिए उत्तम उद्योगका आश्रय लेता हूँ ॥१०॥ अथवा हनुमान्को अनेक बार देखा है अतः वह अनादर करेगा क्योंकि नवीन चन्द्रमा ही लोगोंके द्वारा अनुरागके साथ वन्दनीय होता है अन्य समय नहीं है ॥११॥ इसलिए महाबलवान्, देदीप्यमान् और महाविद्याओंमें निपुण रावणकी शरणमें जाता हूँ वही

१. दुःखितः म०, क्रियमाणानुमरणकान्तामिपरान् म० । २. रुदिता म० । ३. शब्दो म० ।

अजानानो विशेषं वा क्रोधचोदितमानसः । दशाननः कदाचिन्नो हन्तुं बाणैर्दुर्भावपि ॥१४॥
 मन्त्रदोषमस्कारं दानं पुण्यं स्वशूरताम् । दुःशीलत्वं मनोदाहं दुर्मित्रेभ्यो न वेदयेत् ॥१५॥
 तस्माद्येनैव सग्रामे निहितः खरदूषणः । तमेव शरणं यामि स मे शान्तिं करिष्यति ॥१६॥
 तुल्यव्यसनताहेतोः कालोऽयमुपसर्पति । सद्भावं हि प्रपद्यन्ते तुल्यावस्थां जना मुवि ॥१७॥
 एवं विमृश्य सज्ञातचारुबुद्धिः समन्ततः । प्रजिघायादराद् दूतं प्रियं कर्तुं विराधितम् ॥१८॥
 सुग्रीवागमने तेन ज्ञापितेऽभूद् विराधितः । सविस्मयः संतोषश्च चकार च मनस्यदः ॥१९॥
 चित्रं सुग्रीवराजो मां संसेव्यः सन्निपद्यते । अथवाश्रयसामर्थ्यात् पुंसां किं नोपजायते ॥२०॥
 ततो दुन्दुभिनिर्घोषं समाकर्ण्य घनोपमम् । पातालनगरं जात भयाकुलमहाजनम् ॥२१॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽष्टच्छदुराधाहसम्भवम् । वद् तुर्यनिनादोऽयं श्रूयते कस्य संहतः ॥२२॥
 सोऽजोचच्छ्रुत्वा देव महाबलसमन्वितः । नाथोऽयं कपिकेतुना प्राप्तस्त्वां प्रेमसत्परः ॥२३॥
 आतुरी बालिसुग्रीवौ किष्किन्धानगराधिपौ । तिग्मांश्चरजसः पुत्रौ प्रख्यातानावचनाविमौ ॥२४॥
 बालीति योऽत्र विख्यातः शोलशौर्यादिभिर्गुणैः । अभिमानमहाशैले नानंसीद् दशवक्त्रकम् ॥२५॥
 पर प्राप्य प्रबोधं स कृत्वा सुग्रीवसाच्छ्रियम् । तपोवनमुपाविष्टसर्वग्रन्थविवर्जितम् ॥२६॥
 सुग्रीवोऽयमसिक्तहस्ता सुतारायां श्रियान्वितः । राज्ये निःकण्ठके रेमे शचीयुक्तो यथा हरिः ॥२७॥

मुझे शान्ति प्रदान करेगा ॥१३॥ अथवा जिसका मन क्रोधसे प्रेरित हो रहा है ऐसा रावण, विशेषको न जानता हुआ कदाचित् हम दोनोंको ही मारनेकी इच्छा करे तो उलटा अनर्थ हो जायगा ॥१४॥ इसके साथ नीति भी यह कहती है कि दुष्ट मित्रोंके लिये, मन्त्रदोष, अस्कार, दान, पुण्य, अपनी शूर-वीरता, दुष्ट स्वभाव और मनकी दाह नहीं बतलानो चाहिए ॥१५॥ इसलिये जिसने युद्धमें खरदूषणको मारा है उसीके शरणमें जाता हूँ, वही मेरे लिए शान्ति उत्पन्न करेगा ॥१६॥ रामको भी स्त्रीका विरह हुआ है और मैं भी स्त्रीके विरहसे दुःखी हूँ इसलिये एक समान दुःख होनेसे यह समय उनके पास जानेके योग्य है क्योंकि पृथिवी पर समान अवस्थावाले मनुष्य सद्भाव—पारस्परिक प्रीतिको प्राप्त होते हैं ॥१७॥ ऐसा विचारकर जिसे सब ओरसे उत्तम बुद्धि प्राप्त हुई थी ऐसे सुग्रीवने विराधितको अनुकूल करनेके लिये उसके पास अपना दूत भेजा ॥१८॥ जब दूतने सुग्रीवके आगमनका समाचार कहा तब विराधित आश्चर्य और संतोषसे युक्त होकर मनमें यह विचार करने लगा कि आश्चर्य है सुग्रीव तो हमारे द्वारा सेवा करने योग्य है फिर भी वह हमारी सेवा कर रहा है तो ठीक ही है क्योंकि आश्रयकी सामर्थ्यसे मनुष्योंके क्या नहीं होता है ? ॥१९-२०॥

तदनन्तर मेघके समान दुन्दुभिका शब्द सुनकर पाताल नगर, (अलंकार पुर), भयसे व्याकुल हैं महाजन जिसमें ऐसा हो गया ॥२१॥ तत्पश्चात् लक्ष्मणने विराधितसे पूछा कि कहो कि यह किसकी तुरहीका शब्द सुनाई दे रहा है ? ॥२२॥ इसके उत्तरमें विराधितने कहा कि हे देव ! यह महाबलसे सहित, वानरवंशियोंका स्वामी सुग्रीव प्रेमसे युक्त हो आपके पास आया है ॥२३॥ बालि और सुग्रीव ये दोनों भाई किष्किन्धा नगरीके स्वामी हैं, राजा सहस्ररश्मि रजके पुत्र हैं तथा पृथिवी पर अत्यन्त प्रसिद्ध हैं ॥२४॥ इनमें जो बालि नामसे प्रसिद्ध था वह शील, शूर-वीरता आदि गुणोंसे विख्यात था तथा अभिमानके लिए मानो सुमेरु ही था, उसने रावणको नमस्कार नहीं किया था ॥२५॥ अन्तमें परम प्रबोधको प्राप्त हो तथा राज्यलक्ष्मी सुग्रीवके आधीन कर वह सर्वपरिग्रहसे रहित तपोवनमें प्रविष्ट हो गया ॥२६॥ सुग्रीव भी अपनी सुतारा नामक स्त्रीमें अत्यन्त आसक्त हो

१. बोधित-म० । २. आवाप्त । ३. उपसर्पणे ख०, ज० । ४. तुल्यावाब्द्धा म० । ५. प्रख्यातौ + अवनी = पृथिव्याम्, इमौ । ६. इन्द्रः ।

सुतो यस्याङ्गनाभिस्थः गुणश्च विभूषितः । किट्किन्धाविषये यस्य मङ्ग्यान्धविजिता ॥२८॥
 तयोरियं कथा यावद्वृत्तं तेऽनन्यचेतसो । तावत्सम्प्राप सुग्रीवः श्रीमत्पार्थिवकेतनम् ॥२९॥
 ज्ञातश्चानुमतिं प्राप्य विवेशेचितमङ्गलम् । राजाधिकृतलोकेन परमं दर्शितादरः ॥३०॥
 लक्ष्मीधरकुमाराधास्तं राजन् प्रासविस्मयाः । परिपस्वजिरे कान्था विकसद् वनामृतुजा ॥३१॥
 उपविष्टाश्च विविना जाम्बूनदमहीतले । योग्य सम्भाषणं चक्रुर्मृतोपमया गिरा ॥३२॥
 निवेदितं ततो वृद्धैरिति पञ्चमहीचिते^३ । देव किट्किन्ननगरे सुग्रीवाख्योऽमनीश्वरः ॥३३॥
 प्रसुप्तहावलो भोगी गुणवानतिसप्रियः । केनापि दुष्टमायेन जगेनानर्थमाहृतः ॥३४॥
 एतस्याकृतिमाश्रित्य राज्यभोगं पुर यत्नम् । सुतारां च गृह्णातु तां कोऽपि बान्धुतिं दुर्मति ॥३५॥
 एतस्य वचनस्यान्ते रामस्तत्समुखोऽभवत् । अचिन्तयन् भूचोऽपि दुःखितो नाम विद्यते ॥३६॥
 मयायं सदसो मन्ये यदि वार्धरतां भजेत् । येनास्य इत्यमानैकप्रतिपक्षेण याधनम् ॥३७॥
 अर्थोऽयं दुस्तरोऽन्यन्तं कथमेतद्भव्यति । हानिरेव विषयैषा मद्भिः किं करिष्यति ॥३८॥
 सुमित्रातनयोऽष्टच्छत्रं कृष्णं दुःखस्य कारणम् । सुग्रीवस्य मनस्तुल्यं धीरं जाम्बूनदश्रुतिम् ॥३९॥
 ततोऽप्रीं मन्त्रिणा सुतयो जगाद विनयान्वितः । असत्सुग्रीवरूपस्य सत्सुग्रीवस्य चान्तरम् ॥४०॥

राज्य लक्ष्मी सहित निष्कण्टक राज्यमें इस प्रकार क्रीड़ा करता था जिस प्रकार कि इन्द्राणी सहित इन्द्र क्रीड़ा करता है ॥२७॥ उस सुग्रीवका गुणरूपी रत्नोसे विभूषित अङ्गद नामका ऐसा पुत्र है कि किट्किन्धा देशमें जिसको कथा अन्य कथाओंसे रहित है अर्थात् अन्य लोगोंकी कथा छोड़कर सम्पूर्ण किट्किन्धा देशमें उसी एककी कथा होती है ॥२८॥ इस प्रकार अनन्यचित्तके धारक लक्ष्मण तथा विराधितके बीच जब तक यह बातों चल रही थी कि तब तक सुग्रीव राजभवनमें आ पहुँचा ॥२९॥ राजाके अधिकारी लोगोंने ज्ञात होने पर उसके प्रति बहुत आदर दिखलाया । तदनन्तर अनुमति पाकर उसने मङ्गलाचारका अवलोकन करते हुए राज भवनमें प्रवेश किया ॥३०॥ हे राजन् ! जिन्हें आश्चर्य प्राप्त हो रहा था तथा जिनके मुख कमल कान्तिसे ग्विल रहे थे ऐसे लक्ष्मण आदिने उसका आलिङ्गन किया ॥३१॥ शिष्टाचारके उपरान्त सब विधिपूर्वक स्वर्णमय पृथिवी तल पर बैठे और अमृततुल्य वाणीसे परस्पर वार्तालाप करने लगे ॥३२॥

तदनन्तर वृद्धजनोने राजा रामचन्द्रके लिए परिचय दिया कि हे देव ! यह किट्किन्ध नगरका राजा सुग्रीव है ॥३३॥ यह महा ऐश्वर्यशाली, महाबलवान्, भोगी गुणवान् तथा सज्जनों को अतिशय प्यारी है । परन्तु किसी दुष्ट मायावी विद्याधरने इसे अनर्थ—आपत्तिमें डाल दिया है ॥३४॥ कोई दुर्बुद्धि विद्याधर इसका रूप धर इसके राज्य भोग, नगर, सेना तथा इसकी प्रिया सुताराकी भी ग्रहण करना चाहता है ॥३५॥ तदनन्तर वृद्धजनोंके उक्त वचन पूर्ण होनेके बाद राम, सुग्रीवके समुख उसकी ओर देखने लगे । रामने मनमें विचार किया कि अरे ! यह तो मुझसे भी अधिक दुःखी है ॥३६॥ यह मेरे समान है अथवा मैं समझता हूँ कि यह मुझसे भी कहीं अधिक हीनताको प्राप्त है क्योंकि इसका शत्रु तो इसके नामने ही प्राधा पहुँचा रहा है ॥३७॥ इसका यह कार्य अत्यन्त कठिन है सो किस प्रकार होगा । इसकी यह वड़ी हानि हो रही है मेरा जैसा व्यक्ति क्या करेगा ? ॥३८॥ लक्ष्मणने सुग्रीवके मनके समान जो जाम्बूनद नामक धीरवीर मन्त्री था उससे दुःखका समस्त कारण पूछा ॥३९॥

तदनन्तर मन्त्रियोंमें सुख्य जाम्बूनदने वड़ी विनयसे मायाभय सुग्रीव और बान्धविक

१. सम्प्राप्तः म० । २. विवेशे कृतमङ्गलः म० । ३. मन्त्रिणां म० । ४. मन्दनः म०, उ० । ५. मन्दप्रेक्षापि । ६. अयं गतां = गीतना । ७. लक्ष्मण- म० ।

राजन् दारुणानङ्गलतापाशवशीकृतः । रूपं रूपवशः कोऽपि समं कृत्वास्थ मायया ॥४१॥
 अज्ञातो मन्त्रिवर्गस्य सर्वस्यात्मजनस्य च । सुग्रीवान्तःपुरं तुष्टः प्राविशत्पापचेतनः ॥४२॥
 प्रविशन्त च तं दृष्ट्वा सुताराङ्गा परा सती । महादेवी जगादास्थसमुद्दिग्ता निज जनम् ॥४३॥
 दुष्टविद्याधरः कोऽपि सुग्रीवाकृतिरेपकः । आयाति पापपूर्णता चारुलङ्घनवर्जितः ॥४४॥
 अभ्युधानादिकामस्य क्रियां साकारं पूर्ववत् । केनापि तरणीयोऽयमभ्युपायेन दुर्गमः ॥४५॥
 अर्थांशङ्काविमुक्तात्मा गम्भीरो लीलयान्वितः । गत्वा सुग्रीवध्वजे सौग्रीवं स वरासनम् ॥४६॥
 पुतस्मिन्नन्तरे प्राप बालिराजानुजः क्रमात् । अद्राक्षीच्च जनं दीनमप्राक्षीच्च समाकुलः ॥४७॥
 कस्मादयं जनोऽस्माकं ग्लानवक्त्रेक्षणो मृगम् । विपादं वहते स्थाने स्थाने कृतसमागमः ॥४८॥
 किमद्भुतो गतो मेरुं वन्दनार्थं चिरायति । किं वा प्रमादतो देवी कस्याप्युपगता रूपम् ॥४९॥
 जन्ममृत्युजरात्युग्रनानाससारदुःखतः । विभ्यद् विभीषणः किं स्यात्तपोवनसुप्रागतः ॥५०॥
 चिन्तयन्निवृत्तिकर्म्यं द्वााराणि मणितेजसा । आसमानानि सर्वाणि सयुक्तानि सुतोणैः ॥५१॥
 गीतजल्पितयुक्तानि सुसानीव समन्ततः । शङ्कितद्वारपालानि प्रयातान्यन्यतामिव ॥५२॥
 प्रासादप्रबरोत्सङ्गे विषिपन् दृष्टिमायताम् । अपरयस्त्रीजनान्तस्थमात्मां दुष्टलेखरम् ॥५३॥
 दिव्यहाराम्बरं दृष्ट्वा तं शोभां दधत् पुरः । चित्रावतसकं काम्या विकसद्दन्ताम्बुजम् ॥५४॥

सुग्रीवका अन्तर बताया ॥४०॥ उसने कहा कि हे राजन् ! अविशय दारुण कामरूपी लताके पाशसे विवश तथा सुताराके रूपसे मोहित कोई पापी विद्याधर मायासे इसका रूप बनाकर मन्त्रीवर्ग तथा समस्त परिजनोके बिना जाने, सन्तुष्ट हो सुग्रीवके अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुआ ॥४१-४२॥ उसे प्रवेश करते देख सुतारा नामकी परम सती महादेवीने भयभीत होकर अपने परिजनसे कहा कि जिसकी आत्मा पापसे पूर्ण है, तथा जो उत्तम लक्षणोंसे रहित है ऐसा यह कोई दुष्ट विद्याधर सुग्रीवका नेप रखकर आता है अतः पहलेकी तरह तुम लोग इसका सत्कार नहीं करो । यह दुर्नयरूपी सागर किसी उपायसे तिरने योग्य है—पार करने योग्य है ॥४३-४४॥ तदनन्तर जिसकी आत्मा शङ्कासे रहित थी, जो गम्भीर था और लीलासे सहित था ऐसा वह मायामय विद्याधर सुग्रीवके समान जाकर उसके सिंहासन पर आ बैठा ॥४५॥ इसी बीचमें बालिराजाका अनुज वास्तविक सुग्रीव, यथाक्रमसे वहाँ आया । आते ही उसने अपने परिजनको दीन देखकर व्यग्र हो उसने पूछा कि ये हमारे परिजन, अत्यन्त ग्लानमुख एवं ग्लाननेत्र होकर विपाद क्यों धारण कर रहे हैं तथा स्थान स्थान पर इकट्ठे हो रहे हैं ? ॥४६-४७॥ वन्दनाकी अभिलाषासे अङ्गद सुमेरु पर्वत पर गया था सो क्या आनेमें विलम्ब कर रहा है अथवा महादेवी प्रमादके कारण किसीपर रोपको प्राप्त हुई है ? ॥४८॥ अथवा जन्म मृत्यु और जरामे अत्यन्त उग्र संसारके नाना दुःखोंसे भयभीत होकर विभीषण तपोवनको प्राप्त हुआ है ॥५०॥ इस प्रकार चिन्ता करता हुआ सुग्रीव, मणियोंके तेजसे देदीप्यमान तथा उत्तमोत्तम तोरणोंसे संयुक्त उन समस्त द्वारोंको उल्लङ्घनकर महलके भीतर प्रविष्ट हुआ कि जो संगीतमय बातालापसे रहित थे, सब ओर से संतप्त हुएके समान जान पड़ते थे, जिनके द्वारपाल शङ्कासे युक्त थे तथा जो अन्यरूपताको प्राप्त हुएके समान जान पड़ते थे ॥ ५१-५२॥ जब उसने महलके उत्तम मध्यभागमें अपनी लम्बी दृष्टि डाली तो उसने स्त्री जनोके पास बैठे हुए अपनी ही समान आभावाले एक दुष्ट विद्याधरको देखा ॥५३॥ जो दिव्य हार और वस्त्रोंको धारण कर रहा था, परम शोभाका धारक था, चित्र विचित्र आभूषणोंसे युक्त था, तथा क्रान्तिके जिसका मुख कमल विकसित हो रहा था ऐसे दुष्ट विद्याधरको

क्रुद्धो जगज्ज सुग्रीवः प्रावृषेण्यधनोपमम् । दिद्मुखेषु चिपन् भासमक्षयोः सन्ध्याधनारुणम् ॥५५॥
 ततः सुग्रीवतुल्योऽपि कुर्वन् परुषगर्जितम् । उत्तस्यौ कोपरकास्य करीव मदविह्वलः ॥५६॥
 संदरोद्यौ महासत्त्वौ दृष्ट्वा तौ योद्धुमुग्रतौ । सारना^१ निरुद्धुः शिषं श्रीचन्द्राद्याः सुमन्त्रिणः ॥५७॥
 सुतारैति ततोऽज्योच्च दुष्टोऽयं कोऽपि खेचरः । तुल्यः सर्वेण देहेन बलेन वचसा रुचा ॥५८॥
 भयुर्मम न तुल्यस्तु लक्षणैर्मनकौगाभिः । प्रासादशङ्खकुम्भाद्यैश्चिरसंस्थितलङ्घितैः ॥५९॥
 भयुर्मम भूषिताङ्गस्य महापुरुषलक्षणैः । कस्यापि धार्धमस्यास्य वाजिवालेयतुल्यता ॥६०॥
 श्रुत्वापीद सुतारोक्त सादृश्यहृतचित्तकैः । मन्त्रिभिस्तदवज्ञात निःस्त्रोक्तं धनिभिर्यथा ॥६१॥
 एकीभूय च तैः सर्वैर्मन्त्रिभिर्मतिशालिभिः । गदितं समग्रधार्यैर्दं सन्देहहृतमानसैः ॥६२॥
 मधपस्यातिवृद्धस्य वेश्याभ्यसनिनः^२ शिशोः । प्रमदानां च बाक्यानि जातु कार्याणि नो दुष्यैः ॥६३॥
 अत्यन्तदुर्लभा लोके गोत्रशुद्धिस्तथा विना । नितान्तपरमेणापि न राज्येन प्रयोजनम् ॥६४॥
 सम्प्राप्य निर्मलं गोत्रं अथ शीलादिभूषितैः । तस्मादन्तःपुर अन्तादिदं रच्यं सुनिर्मलम् ॥६५॥
 अकौंसिरिति निन्ध्येयमस्य नोत्पद्यते यथा । क्रुद्धवमदित्यत्नेन विभज्यैस्त्रिलमेतयोः ॥६६॥
 अहः कृत्रिमसुग्रीवं पितृभ्रान्त्या समाश्रितः । अङ्गदं सत्यसुग्रीवं मातृवाक्यानुरोधतः ॥६७॥

सामने देख सुग्रीव, क्रुद्ध होकर सन्ध्याके मेघ समान लाल नेत्रोंकी कान्तिको दिशाओंमें फैलाता हुआ वर्षा ऋतुके मेघके समान गरजा ॥५४-५५ तदनन्तर सुग्रीवके समान रूपको धारण करने-वाला विद्याधर भी क्रोधसे रक्तमुख हो हाथीके समान मदसे विह्वल होता और कठोर गर्जना करता हुआ उठा ॥५६॥

अथानन्तर ओठोंको डसते हुए उन दोनों बलवानोंको युद्धके लिए उद्यत देख श्रीचन्द्र आदि मन्त्रियोंने शान्ति पूर्वक शीघ्र ही उन्हें रोक दिया ॥५७॥ तत्परचातु सुताराने कहा कि यह कोई दुष्ट विद्याधर है । यद्यपि समस्त शरीर, बल, वचन, और कान्तिके तुल्य दिखता है परन्तु प्रसाद, राज्ञः, कलश, आदि लक्षणोंसे जो कि मेरे पतिके शरीरमें चिरकालसे स्थित है तथा जिन्हें मैंने अनेक बार देखा है किञ्चित् भी मेरे पतिके समान नहीं है ॥५८-५९॥ महापुरुषोंके लक्षणोंसे जिनका शरीर भूषित है ऐसे मेरे पतिकी तथा इस किसी नीचकी तुल्यता घोड़े और गधेकी तुल्यताके समान है ॥६०॥

तदनन्तर दोनोंकी सदृशताके कारण जिनके चित्त हरे गये थे ऐसे मन्त्रियोंने सुताराके इन शब्दोंकी सुनकर भी उनकी उस तरह अवज्ञा कर दी जिस प्रकार कि धनी मनुष्य निर्धन मनुष्यके वचनोंकी अवज्ञा कर देते हैं ॥६१॥ संदेहने जिनका मन हर लिया था ऐसे उन बुद्धि-शाली मन्त्रियोंने एकत्रित हो सलाह कर यह कहा कि मद्यपायी, अत्यन्त वृद्ध, वेश्या, व्यसनी, बालक और स्त्रियोंके वचन विद्वज्जनोको कभी नहीं मानना चाहिए ॥६२-६३॥ लोकमेगोत्रकी शुद्धि अत्यन्त दुर्लभ है इसलिए उसके विना बहुत भारी राज्यसे भी प्रयोजन नहीं है ॥६४॥ निर्मल गोत्र पा कर ही शीलादि आभूषणोंसे विभूषित हुआ जाता है इसलिए इस निर्मल अन्तःपुरकी यत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिये ॥६५॥ जिस तरहसे सुग्रीव निन्दनीय अपकर्ति न हो उस तरह इन दोनोंका सव विभाग कर अतियत्नपूर्वक काम करना चाहिए ॥६६॥ अङ्गनामका पुत्र पिताकी भ्रान्तिसे कृत्रिम-बनावटी सुग्रीवके पास गया और अङ्गद नामका पुत्र माताके

१. संदरो म० । २. सात्ता म० । ३. मनागपि ईषदपि- 'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक्तेः' इत्यकच् । ४. वाद्यमत्यास्य म० । ५. वित्तकैः म० । ६. व्यसनस्य शिशोः म० । ७. विमिद्या- म० ।
 ३५-२

सन्दिहाना निजे नाथे वयमप्यतिसाम्यतः । सुतारावचनादेन पुरस्कृत्य व्यवस्थिताः ॥६८॥
 अक्षोहिण्यस्ततः सप्त प्रमुनेकमुपाश्रिताः । इतरं चापि तावन्वयः संशयस्य वशं गताः ॥६९॥
 पुरस्य दक्षिणे भागे सुग्रीवः कृत्रिमः कृतः । उच्यते तस्य सुग्रीवः स्थापितस्य यथाविधि ॥७०॥
 अकरोच्चन्द्ररश्मिश्च प्रतिज्ञासिति संशये । बालिपुत्रो ततः कुर्वन् सर्वतः प्रतिपालनम् ॥७१॥
 सुताराभवनद्वारं यो मजेकश्चिदस्य सः । प्रौढेन्दीवरशोमस्य वध्यः खड्गस्य मे भुवम् ॥७२॥
 ततः कपिध्वजावेवं स्थापितौ तावुभावपि । अपश्यन्तौ सुतारास्यं निमग्नौ व्यसनार्णवे ॥७३॥
 ततोऽयं सत्यसुग्रीवो दयिताविरहाकुलः । बहुशः शोकहानार्थमगच्छत् खरदूपणम् ॥७४॥
 पुनश्च मारुतेः पार्श्वमध्वभीक्ष्णं पुनः पुनः । परित्राणस्व दुःखार्तं प्रसादं कुरु धान्धव ॥७५॥
 मदीयं रूपमासाद्य मायया कोऽपि पापधीः । क्रुते मे परां बाधां स गत्वा मार्गतां हुतम् ॥७६॥
 सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा तदवस्थस्य शोकिनः । अञ्जनासनयः क्रोधाद्वाढवाग्निसमोऽभवत् ॥७७॥
 विमानं परमच्छायमप्रतीघातसंज्ञितम् । नानालङ्कारभूषिष्टं त्रिदशवाससंक्षिप्तम् ॥७८॥
 उत्साहं परमं विभ्रदारुह्य सचिवैर्बुधैः । किष्किन्धननगरं प्राप स्वर्गं सुकृतभागिव ॥७९॥
 श्रुत्वा प्राप्तं हनुमन्तमसकौ विगतज्वरः । आरुह्य द्विरदः प्रीतः सुग्रीव इव निर्ययौ ॥८०॥
 तं कपिध्वजमालोक्य परं सादश्यमागतम् । विस्मितो वायुपुत्रोऽपि पतितः सशयार्णवे ॥८१॥
 अधिस्तयच्च सुप्यक्तं सुग्रीवो द्वाविमौ कथम् । एतयोः कतर हन्मि यद्विशेषो न लभ्यते ॥८२॥

वचनोके अनुरोधसे सत्य सुग्रीवके पास गया ॥६७॥ हम लोग भी अत्यन्त सदृशताके कारण अपने स्वामीके विषयमें संदेशशील हैं परन्तु सुताराके कहनेसे इसीको आगे कर स्थित हैं ॥६८॥ संशयके वशमें पड़ी सात अक्षोहिणी सेनाएँ एक सुग्रीवके आश्रय गई और उतनी ही दूरेसे सुग्रीवके अधीन हुई ॥६९॥ नगरके दक्षिण भागमें कृत्रिम सुग्रीव रक्खा गया और वास्तविक सुग्रीव नगरके उत्तर भागमें विधिपूर्वक स्थापित किया गया ॥७०॥ सश औरसे रक्षा करनेवाले बालिके पुत्र चन्द्ररश्मिने संशय उपस्थित होने पर इस प्रकार की प्रतिज्ञा की कि इन दोनोंमें जो भी सुताराके भवनके द्वार पर जावेगा वह तरुण इन्दीवर—नीलकमलके समान सुशोभित मेरी खड्गके द्वारा अवश्य ही वध्य होगा—मेरी तलवारके द्वारा मारा जायगा ॥७१-७२॥ तदनन्तर इस प्रकार रक्खे हुए दोनों सुग्रीव सुताराका मुख न देखते हुए व्यसनरूपी सागरमें निमग्न हो गये ॥७३॥

अथानन्तर स्त्रीके विरहसे आकुल सत्यसुग्रीव, शोक दूर करनेके लिए अनेक बार खर-दूपणके पास आया ॥७४॥ फिर हनुमान्के पास जाकर उसने बार-बार कहा कि हे बान्धव ! मैं दुःखसे पीडित हूँ अतः मेरी रक्षा करो, प्रसन्न होओ ॥७५॥ कोई पापबुद्धि विद्याधर मायासे मेरा रूप रखकर मुझे अत्यन्त बाधा पहुँचा रहा है सो जाकर उसे शीघ्र ही मारो ॥७६॥ उस प्रकारकी अवस्थामें पड़े शोक युक्त सुग्रीवके वचन सुनकर हनुमान् क्रोधसे बड़बानलके समान हो गया ॥७७॥ वह परम उत्साहको धारण करता हुआ मन्त्रियोंके साथ, अत्यन्त कान्तिमान्, नाना अलङ्कारोंसे प्रचुर, स्वर्गतुल्य अप्रतीघात नामक विमानमें सवार हो उस तरह किष्किन्ध नगर पहुँचा जिस तरह कि पुण्यात्मा मनुष्य स्वर्गमें पहुँचता है ॥७८-७९॥ हनुमान्को आया सुन वह शीघ्र ही हाथी पर सवार हो प्रसन्नताके साथ सुग्रीवकी तरह नगरसे बाहर निकला ॥८०॥ अत्यन्त सादृश्यको प्राप्त हुए उस कपिध्वजको देखकर हनुमान् भी विस्मित हो संशयरूपी सागरमें पड़ गया ॥८१॥ वह विचार करने लगा स्पष्ट ही ये दोनों सुग्रीव हैं जब तक कि

अविदित्वानयोर्भेदमुभयोर्वानरेन्द्रयोः । कटाचिद् वधिप माह^१ सुग्रीवं सुहृदां वरम् ॥८३॥
 सुहृतं मन्त्रिभिः सार्धं विमृश्य च यथाविधि । उदासीनतया देव मारुतिः स्वपुर गतः ॥८४॥
 निवृत्ते भरतः पुत्रे सुग्रीवोऽभवदाकुलः । असां च सदृशोऽसुप्य तथैवातिष्ठदाशया ॥८५॥
 मायासहस्रसम्पन्नो महावीर्यो महोदयः । उल्कायुक्तोऽपि सन्देहं प्राप कष्टमिदं परम् ॥८६॥
 निमग्न सशयाभ्यो यौ ध्यसनग्राहसङ्घटे । न जानाम्यधुना देव क इमं तारयिष्यति ॥८७॥
 कान्तावियोगदावेन प्रदीप्तं कपिकेतनम् । कृतज्ञं भज सुग्रीवं प्रसीद रघुनन्दन ॥८८॥
 अय शरणमायातो भवन्तं श्रितवत्सलम् । भवद्विवशरीरं हि परदुःखस्य नाशकम् ॥८९॥
 ततस्तद्वचनं श्रुत्वा विस्मयव्याप्तमानसाः । जाताः पद्मादयः सर्वे धिगहोहीतिभाषिणः ॥९०॥
 अचिन्तयन् पद्मोऽतः सखाय मम दुःखतः । जातोऽपरः समानेषु प्रायः प्रेम्णोपजायते ॥९१॥
 पृथ प्रत्युपकारं मे यदि कर्तुं न शक्यति । निर्ग्रन्थभ्रमणो भूत्वा साधयिष्यामि निर्जितम् ॥९२॥
 एव ध्यात्वानुराधासौः समं संभ्रम्य च क्षणम् । कपिमौलीन्द्रमाहूय पद्मनाभोऽभ्यभाषत् ॥९३॥
 सत्युग्रीवो भवान्यो वा सार्था त्वं मयैप्सितः । विजित्य भवत्सुख्यं पदं यच्छामि ते निजम् ॥९४॥
 तथाविधं पुरा राज्यं प्राप्य योगं सुतारया । सेवस्व मुदितोऽप्यन्तर्भग्ननिःशेषकण्टकम् ॥९५॥

विशेषता नहीं जान पड़ती है तब तक इन दो में से एकको कैसे मारूँ ? ॥८२॥ इन दोनों वानर राजाओंका अन्तर जाने बिना मैं कदाचित् मित्रोंमें श्रेष्ठ सुग्रीवको ही न मार दूँ ॥८३॥ इस प्रकार सुहृत् भर मन्त्रियोंके साथ विधिपूर्वक विचार कर उदासीन भावसे हनुमान् अपने नगरको वापिस चला गया ॥८४॥ हनुमान्के वापिस लौट जाने पर सुग्रीव बहुत व्याकुल हुआ । और जो इसके समान दूसरा मायावी सुग्रीव था वह आशा लगाये हुए उसी प्रकार स्थित रहा आया ॥८५॥ यद्यपि सुग्रीव हजारों प्रकारकी मायासे स्वयं सम्पन्न है, महाशक्तिशाली है, महान् अभ्युदयका धारक है, और उल्कारूप अस्त्रोंका धारक है तो भी सन्देहको प्राप्त हो रहा है यह बड़े कष्टकी बात है ॥८६॥ हे देव ! व्यसनरूपी भगरमच्छांसे भरे हुए संशय रूपी सागरमें निमग्न इस सुग्रीवको कौन तारेगा यह नहीं जान पड़ता ॥८७॥ हे रावण ! तू वियोग रूपी दावानलसे प्रदीप्त तथा कृत उपकारको माननेवाले इस कपिध्वज सुग्रीवकी सेवा स्वीकृत करो, प्रसन्न होओ ॥८८॥ यह आपको आश्रितवत्सल सुनकर आपकी शरण आया है, यथार्थमें आप जैसे महापुरुषका शरीर पर-दुःखका नाश करनेवाला है ॥८९॥

तदनन्तर उसके वचन सुनकर जिनके हृदय आश्चर्यसे व्याप्त हो रहे थे ऐसे राम आदि कभी लोभ 'धिक' 'अहो' 'ही' आदि शब्दोंका उच्चारण करने लगे ॥९०॥ रामने विचार किया कि अब यह दुःखके कारण मेरा दूसरा मित्र हुआ है क्योंकि प्रायः कर समान मनुष्योंमें ही प्रेम होता है ॥९१॥ यदि यह मेरा प्रत्युपकार करनेमें समर्थ नहीं होगा तो मैं निर्ग्रन्थ साधु हो कर मोक्षका साधन करूँगा ॥९२॥ इस प्रकार ध्यान कर तथा विराधित आदिके साथ क्षण भर मन्त्रणा कर सुग्रीवको बुला रामने उससे कहा ॥९३॥ कि तुम चाहें यथार्थ सुग्रीव होओ और चारों कृत्रिम सुग्रीव मैं तुम्हें चाहता हूँ और तुम्हारे सदृश जो दूसरा सुग्रीव है उसे मार कर तुम्हारा अपना पद तुम्हें देता हूँ ॥९४॥ तुम पहलेकी भाँति अपना राज्य प्राप्त कर समस्त शत्रुओंको निर्मूल करते हुए प्रसन्न हो सुतारके साथ समागमको प्राप्त होओ ॥९५॥

१. -दिद्विषमहं म० । २. शृणु वत्सकम् म० । ३. पद्मामः ख०, ब०, क०, । ४. -नुरो-
 धायैः म० ।

यदि मे निश्चयोपेतः प्राणैर्भ्योऽपि गरीयसीम् । सीतां तां गुणसम्पूर्णां भद्रोपलभसे प्रियाम् ॥६६॥
 कपिकेतुरुवाचेद् यदि तां तव न प्रियाम् । सप्तमहाऽन्यन्तरे वैशि विशामि ज्वलन् तदा ॥६७॥
 अभीभिरचरैः पथः परं प्रह्लादमाश्रितः । शशाङ्गरिमिसदृशैर्दैवानः कुमुदोपमाम् ॥६८॥
 प्रवाहेणामृतत्येव प्लावितो विकचाननः । रोमाञ्चनिर्भरं देहं वभार च समन्ततः ॥६९॥
 धन्योन्यस्य वयं द्रोहरहिताविति चाद्रात् । समयं चक्रतुर्जनं तस्मिन्नेव जिनालये ॥१००॥
 ततो रथवरारूढौ महासामन्तसेवितौ । किष्किन्धनगरं तेन प्रयातौ रामलक्ष्मणौ ॥१०१॥
 समोपीभूय दूतश्च प्रह्वितः कपिमौलिना । निर्भस्मितश्च कूटेन सुग्रीवेणागतः पुनः ॥१०२॥
 ततश्चालोकसुग्रीवः संनह्य स्यन्दनस्थितः । युद्धाय निर्ययौ क्रुद्धः पृथुसैन्यसमावृतः ॥१०३॥
 अथ कूटभटादौपः सङ्कटश्छण्डनिस्त्वनः । सम्प्रहारो महानासीदग्रलंछसेनयोः ॥१०४॥
 सुग्रीवमेव सुग्रीवो जगामोद्ग्रीवमुग्रहृत् । विद्यायाः कणासक्तो दहं वोदधुं समुद्यतः ॥१०५॥
 सम्प्रहारो महात् जातस्तयोश्चक्रेपुसायकैः । अन्धकारीकृताकाशश्चिरमप्राप्तयोः भ्रमम् ॥१०६॥
 अथ सुग्रीवमाहत्य गदस्यालीकवानरी । विज्ञाय श्रुत इत्येवं तृष्टः परमुपाविशत् ॥१०७॥
 निश्चेष्टविग्रहश्चायं सत्यशालामृगज्वजः । निजं शिविरमानीतः परिवार्य सुहृज्जनैः ॥१०८॥

हे भद्र ! मैंने जो निश्चय किया है उसे प्राप्त करनेके बाद यदि तुम मेरी प्राणाधिका तथा गुणोंसे परिपूर्ण सीताका पता चला सके तो उत्तम बात है ॥६६॥ यह सुनकर सुग्रीवने कहा कि यदि मैं सात दिनके भीतर आपकी प्रियाका पता न चला दूँ तो अग्निमें प्रवेश करूँ ॥६७॥ चन्द्रमाकी किरणोंके समान सुग्रीवके इन अक्षरोंसे राम कुमुदकी उपमा धारण करवे हुए परम आह्लादको प्राप्त हुए ॥६८॥ अमृतके प्रवाहसे तर हुए के समान उनका मुख-कमल खिल उठा तथा शरीर सब ओरसे रोमाञ्चोंसे व्याप्त हो गया ॥६९॥ हम दोनों परस्पर द्रोहसे रहित हैं—एक दूसरेके मित्र हैं इस प्रकार आदरके साथ उन दोनोंने उस जिनालयमें जिन-धर्मानुसार शपथ धारण की ॥१००॥

तदनन्तर महासामन्तोसे सेवित रामलक्ष्मण सुग्रीवके साथ उत्तम रथ पर आरूढ हो किष्किन्ध नगरकी ओर चले ॥१०१॥ नगरके समीप पहुँच कर मुकुटमें बानरका चिह्न धारण करनेवाले सुग्रीवने दूत भेजा सो मायावी सुग्रीवके द्वारा तिरस्कृत होकर पुनः वापिस आ गया ॥१०२॥ तदनन्तर क्रोधसे भरा कृत्रिम सुग्रीव तैयार हो रथ पर बैठकर बड़ी सेनासे आवृत होता हुआ युद्धके लिए निकला ॥१०३॥ अथानन्तर जिनके आगे सेना लग रही थी ऐसे उन दोनोंमें महा युद्ध प्रारम्भ हुआ । उनका वह महा युद्ध कपटी योद्धाओंके विस्तारसे युक्त था, संकट पूर्ण था तथा तीक्ष्ण शब्दोंसे सहित था ॥१०४॥ जो तीक्ष्ण क्रोधका धारक था, तथा विद्याओंके करनेमें आसक्त था ऐसा सुग्रीव, अहंकारसे ग्रीवाको ऊपर उठानेवाले कृत्रिम सुग्रीवसे दृढ़ युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१०५॥ चिर काल तक युद्ध करनेके बाद भी जिनमें थकावटका अंश भी नहीं था ऐसे उन दोनों सुग्रीवोंमें महान् युद्ध हुआ । उनके उस युद्धमें चक्र-बाण तथा खड्ग आदि शस्त्रोंसे आकाशमें अन्धकार फैल रहा था ॥१०६॥

अथानन्तर कृत्रिम सुग्रीव, गदाके द्वारा सुग्रीवको चोट पहुँचा कर तथा 'यह मर गया' ऐसा समझ कर संतुष्ट होता हुआ नगरमें प्रविष्ट हुआ ॥१०७॥ इधर जिसका शरीर निश्चेष्ट

अब्रवील्लव्यसंज्ञश्च नाथ हस्तमुपागतः । जीवन्नेव कथं चौरः पुरं मम पुनर्गतः ॥१०६॥
 नूनं न भवितव्यं मे दुःखस्थान्तेन राघव । भवन्तमपि सम्प्राप्य किन्तु कष्टमतः परम् ॥११०॥
 ततः पद्मप्रभोजोचन्द्रवतोर्ध्वमानयोः । विशेषो न भया ज्ञातो न हस्तस्तेन ते समः ॥१११॥
 अज्ञानदोषतो नारां मानैपीत्थैव जातुचित् । सुहृदं जैनवाक्येन जनितं त्रियसङ्गमम् ॥११२॥
 अथाद्भुतः पुनः प्रासः सुग्रीवप्रतिमो बली । संरम्भवह्निना दीप्तः पद्मेनाभिमुखीकृतः ॥११३॥
 अद्रिणेव स रामेण चोभितः सागरोपमः । निखंशग्राहसङ्घातसञ्चारात्यन्तसङ्कुलः ॥११४॥
 लक्ष्मणेनैव सुग्रीवः परिध्वज्य दृढं धृतः । खोवैरतः समीपं मा शत्रोः कोपेन गादिति ॥११५॥
 ततः ससार पद्मात्मः सुग्रीवाभं समाह्वयन् । ज्वलन् संग्रामसम्प्राप्तिजनितेनोत्तेजसा ॥११६॥
 अथ पद्मं समालोक्य शमायुच्छ्व च सायकम् । वैताली निःसृता विद्या नारीवोद्धतचेष्टिता ॥११७॥
 सुग्रीवाकृतिनिर्मुक्तं वानराङ्गवर्जितम् । सहसा साहसगतिमिन्द्रबालनरोपमम् ॥११८॥
 स्वभावमागतं ददृः निःक्रान्तमिव कञ्चुकात् । शाखामृगध्वजाः सर्वे संक्षुभ्यैकत्वमाश्रिताः ॥११९॥
 नानायुद्धाश्च संक्रुद्धा बलिनस्तमयूयुधम् । सोऽय सोऽयमतिस्वानं कुर्वाणा पश्यतेति च ॥१२०॥
 तेन तेजस्विना सैन्यं तद्द्विषामुरुशकिना । पुरस्कृतं दिशो भेजे यथा तूलं नमस्वता ॥१२१॥

पढ़ा था ऐसे यथार्थ सुग्रीवको उसके मित्र जन घेर कर अपने शिविरमें ले आये ॥१०८॥ जब सचेत हुआ तब रामसे बोला कि नाथ ! हाथमें आया चौर जीवित हो पुनः मेरे नगरमें कैसे चला गया ॥१०९॥ जान पड़ता है कि राघव ! अब मेरे दुःखका अन्त नहीं होगा और फिर आपको प्राप्त कर भी । इससे बढ़कर कष्ट और क्या होगा ? ॥११०॥ तत्पश्चात् रामने कहा कि मैं युद्ध करते हुए तुम दोनोंकी विशेषता नहीं जान सका था इसीलिए मैंने तुम्हारी सहायता करनेवाले सुग्रीवको नहीं मारा है ॥१११॥ जिनागमका उच्चारणकर तू मेरा प्रिय मित्र हुआ है सो कहीं अज्ञानरूपी दोषसे तुम्हें ही नष्ट नहीं कर दूँ इस भयसे मैं चुप रहा ॥११२॥

अथानन्तर उस कृत्रिम सुग्रीवको फिरसे ललकारा सो वह बलवान् क्रोधाग्निसे दीप्त होता हुआ पुनः आया तथा रामने उसका सामना किया ॥११३॥ जिस प्रकार पर्वतके द्वारा समुद्र क्षोभको प्राप्त होता है उसी प्रकार क्रूर योद्धारूपी मगरमच्छोके संचारसे अतिशय भरा हुआ वह समुद्र तुल्य कृत्रिम सुग्रीव रामके द्वारा क्षोभको प्राप्त हुआ ॥११४॥ इधर लक्ष्मणने वास्तविक सुग्रीवका हृद आलिङ्गन कर उसे इस अभिप्रायसे रोक लिया कि कहीं यह स्त्रीके वैरके कारण क्रोधसे शत्रुके पास न पहुँच जावे ॥११५॥ तदनन्तर युद्धकी प्राप्तिसे उत्पन्न विशाल तेजसे वेदीप्यमान राम, कृत्रिम सुग्रीवको ललकारते हुए आगे बढ़े ॥११६॥ अथानन्तर रामको आया देख सिद्ध करनेवालेसे पूछकर वैताली विद्या उसके शरीरसे इस प्रकार निकल गई कि जिस प्रकार उद्धत चेष्टाको धारण करनेवाली स्त्री निकल जाती है ॥११७॥ तत्पश्चात् जो सुग्रीवकी आकृतिसे रहित था, जिसका वानर चिह्न दूर हो चुका, जो इन्द्रनील मणिके समान जान पड़ता था, और जो आवरणसे निकले हुए के समान अपने स्वाभाविक रूपमें स्थित था ऐसे साहस गतिको देखकर सब वानरवंशी क्षुभित हो एकरूपताको प्राप्त हो गये ॥११८-११९॥ नाना-शस्त्रोंसे सहित, क्रोध भरे बलवान् वानर 'यह वही है यह वही है देखो देखो' आदि शब्द करते हुए उससे युद्ध करने लगे ॥१२०॥ सो विशाल शक्तिके धारक उस तेजस्वीने शत्रुओंकी उस

बहिःशैत्यालयस्यास्य चन्द्रोदरसुतादयः । स्वसैन्यावासनं कृत्वा बभूवुर्विगतभ्रमाः ॥१३५॥
 गुणश्रुत्यनुरागेण स्वयंवरणबुद्धयः । त्रयोदश सुताः पथं सुग्रीवस्य अयुर्मुदा ॥१३६॥
 चन्द्राभा नाम चन्द्रास्या द्वितीया हृदयावली । अन्या हृदयधर्मेति चेतसः संकोपमा ॥१३७॥
 तुरीयानुन्धरो नाभ्ना श्रीकान्ता श्रीरिवापरा । सुन्दरी सर्वतश्चित्तसुन्दरीत्यपरोदिता ॥१३८॥
 अन्या सुरवती नाम सुरक्षीसमविभ्रमा । मनोवाहिन्यमिख्याता मनोवहनकोविदा ॥१३९॥
 चारुश्रीरिति विख्याता चारुश्रीः परमार्थतः । मदनोत्सवभूतान्या प्रसिद्धा मदनोत्सवा ॥१४०॥
 अन्या गुणवती नाम गुणमालाविभूषिता । एका पद्मावती ख्याता बुद्धपद्मसमानना ॥१४१॥
 तथा जिनमतिर्नित्य जिनपूजनतत्परा । पुता. कन्याः समादाय ययौ तासां परिच्छदः ॥१४२॥
 प्रणम्य च जगतौ राम नापैतासां स्वयंवृतम् । शरणं भव लोकेश कन्यानां बन्धुस्तमः ॥१४३॥
 दुर्विदग्धैः खगैर्माभूत् विवाहोऽस्माकमित्यलम् । जातमासां मनः श्रुत्वा गोत्रस्यैवानुपालकम् ॥१४४॥
 ततो हीभारनन्नास्या वशिताः शोभया विभुम् । पद्माभसुपसंप्राप्ताः पद्माभा नवयौवनाः ॥१४५॥
 विधुद्वहिसुवर्णाज्जगर्भमासां महीयसाम् । देहमासां विकासेन तासां रेजे नमस्तलम् ॥१४६॥
 उपविश्य विनीतास्तां लावण्यान्वितविग्रहाः । समीपे पद्मनामस्य तस्थुः पूजितचेष्टिताः ॥१४७॥

लक्ष्मण वहाँ रहने लगे ॥१३४॥ चन्द्रोदरके पुत्र—विराधित आदि उस चैत्यालयके बाहर अपनी सेनाएँ ठहरा कर श्रमसे रहित हुए ॥१३५॥

तदनन्तर रामके गुण श्रवण कर अनुरागसे भरी सुग्रीवकी तेरह पुत्रियों स्वयंवरणकी इच्छासे द्वर्प पूर्वक वहाँ आई ॥१३६॥ वे तेरह पुत्रियों इस प्रकार थीं—पहली चन्द्रमाके समान मुखवाली चन्द्रमा, दूसरी हृदयावली, तीसरी हृदयके लिए सङ्कटकी उपमा धारण करनेवाली हृदयधर्मा, चौथी अनुन्धरी, पाँचवीं द्वितीय लक्ष्मीके समान श्रीकान्ता, छठवीं सर्वप्रकारसे सुन्दर चित्त सुन्दरी, सातवीं देवाङ्गनाके समान विभ्रमको धारण करनेवाली सुरवती, आठवीं मन के धारण करनेमें निपुण मनोवाहिनी, नौवीं परमार्थमे उत्तम शोभाको धारण करनेवाली चारुश्री, दशवीं मदनके उत्सवस्वरूप मदनोत्सवा, ग्यारहवीं गुणोंकी मालासे विभूषित गुणवती, बारहवीं विकसित कमलके समान मुखको धारण करनेवाली पद्मावती और तेरहवीं निरन्तर जिनपूजनमें तत्पर रहनेवाली जिनमती । इन सब कन्याओंको लेकर उनका परिकर रामके पास आया ॥१३७—१४२॥ रामकी प्रणाम कर उसने कहा कि हे नाथ । आप इन सब कन्याओंके स्वयंवृत शरण होओ । हे लोकेश ! इन कन्याओंके उत्तम बन्धु आप ही हैं ॥१४३॥ गोत्रकी रक्षा करनेवाले आपका नाम सुनकर इन कन्याओंका मन स्वभावसे ही ऐसा हुआ कि हमारा विवाह नीच विद्याधारोके साथ न हो ॥१४४॥ तदनन्तर लज्जाके भारसे जिनके मुख नम्र हो रहे थे, जो शोभासे युक्त थीं, जिनकी आभा कमलके समान थी तथा जो नव यौवनसे परिपूर्ण थीं ऐसी वे सब कन्याएँ राजा रामचन्द्रके पास आई ॥१४५॥ त्रिजली, अग्नि, सुवर्ण तथा कमलके भीतरी दलके समान उनकी शरीरकी विपुल कान्तिके विकाससे आकाश सुशोभित होने लगा ॥१४६॥ विनीत, लावण्य युक्त शरीरकी धारक एवं प्रशस्त चेष्टाओंसे युक्त वे सब कन्याएँ रामके पास आकर बैठ गई ॥१४७॥

रमते कविद्रुपि चित्तं पुरुषरत्नेः पूर्णजन्मसम्बन्धात् ।
पुपा भवपरिवर्त्ते सर्वेषां श्रेणिकावस्था ॥१४८॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्येणोक्ते पञ्चपुराणे विटसुग्रीववधायनं नाम
सप्तचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥१४७॥



गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! पुरुषोत्तम सूर्य समान रामचन्द्रका भी चित्त किन्हीसे
रमणको प्राप्त हुआ सो यह दृशा समस्त संसारी जीवों को है ॥१४८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य द्वारा कथित पञ्चपुराणमें विट सुग्रीवके
वधका कथन करनेवाला सैंतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥१४७॥

अष्टचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथोपलालनं^१ तस्य वान्धव्यो वरकन्यकाः । बहुभेदाः क्रियाश्चक्रुर्देवलकादिवागताः ॥१॥
 वीणादिवादनैस्तासां गीतैश्चात्मनोहरैः । ललितासिन्धु लीलाभिर्हृतं तस्य न मानसम् ॥२॥
 सत्कारसामानीतो विभवस्तस्य पुष्कलः । न भोगेषु मनश्चक्रे वैदेही प्रति संहतम् ॥३॥
 अनन्यमानसोऽसौ हि मुक्तिर्न शेषचेष्टितः । सीतां मुनिरिव ध्यायन् सिद्धिमास्थान्महादरः ॥४॥
 न शृणोति ध्वनिं किञ्चिद् रूपं पश्यति नापरम् । ज्ञाचकोमयमेवास्य सर्वं प्रत्यवभासते ॥५॥
 न करोति कथामन्यां कुरुते जायकीकथाम् । अन्यामपि च पार्श्वस्थां जानकीत्यभिभाषते ॥६॥
 वायसं पृच्छति प्रीत्या गिरिवं^२ कलनाद्या । आन्यता विपुलं देशं दृष्ट्वा स्यात् मैथिली क्वचित् ॥७॥
 सरस्युत्तिष्ठपथादिकिञ्चालङ्कृतात्मभिः । चक्राङ्गमिष्टुनं दृष्ट्वा किञ्चित् सखिन्य कुप्यति ॥८॥
 सीताशरीरसम्पर्कशङ्कया बहुमानवत् । निर्माद्यलोचने किञ्चित् समालिङ्गति^३ भासतम् ॥९॥
 पुनस्तथा सा निषण्णोति वसुधां बहु मन्यते । क्षुण्णस्तित्तया^४ नूनमिति चन्द्रमुदीकते ॥१०॥
 अचिन्तयच्च किं सीता मद्विषोऽग्निदोषिता । तामवस्थां भवेत् प्राप्ता स्यादस्या चापदैपिणाम् ॥११॥
 किमियं जानकी नैषा लता मन्दानिलेरिता । किमशुकमिदं नैतच्छलत्पत्रकदम्बकम् ॥१२॥

अथानन्तर श्रीरामको प्रसन्न करनेकी इच्छा करती हुई वे उत्तम कन्याएँ नाना प्रकारकी क्रियाएँ करने लगीं । वे कन्याएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो स्वर्गलोकासे ही आई हो ॥१॥ वे कन्याएँ कभी वीणा आदि वादित्त बजाती थीं, कभी अत्यन्त मनोहर गीत गाती थीं और कभी नृत्यादि ललित क्रीडाएँ करती थीं फिर भी उनकी इन चेष्टाओंसे रामका मन नहीं हरा गया ॥२॥ यद्यपि उन्हें सब प्रकारकी पुष्कल सामग्री प्राप्त थी तो भी सीताकी ओर आकर्षित मनको उन्होंने भोगोमे नहीं लगाया ॥३॥ जिस प्रकार मुनि मुक्तिका ध्यान करते हैं उसी प्रकार राम अन्य सब चेष्टाओंको छोड़कर अनन्यचित्त हो आदरके साथ सीताका ही ध्यान करते थे ॥४॥ वे न तो उन कन्याओंके शब्दोंको सुनते थे और न उनके रूपको ही देखते थे । उन्हें सब संसार सीतामय ही जान पड़ता था ॥५॥ वे एक सीताकी ही कथा करते थे और दूसरी कथा ही नहीं करते थे । यदि पासमे खड़ी किसी दूसरी स्त्रीसे बोलते भी थे तो उसे सीता समझकर ही बोलते थे ॥६॥ वे कभी मधुरवाणीमे कौएसे इस प्रकार पूछते थे कि हे भाई ! तू तो समस्त देशमे भ्रमण करता है अतः तू ने कहीं सीताको तो नहीं देखी ॥७॥ खिले हुए कमल आदि पुष्पोंकी परागसे जिसका जल अलंकृत था ऐसे सरोवरमे क्रीड़ा करते चक्रवाचकवीके युगलको देखकर वे कुछ सोच-विचारमे पड़ जाते तथा क्रोध करने लगते ॥८॥ कभी नेत्र बन्दकर धड़े सम्मानके साथ वायुका यह विचारकर आलिङ्गन करते कि संभव है कभी इसने सीताका स्पर्श किया हो ॥९॥ इस पृथिवी पर सीता वैठी थी । यह सोचकर उसे धन्य समझते और चन्द्रमाको यह सोचकर ही मानो देखते थे कि यह उसके द्वारा अपनी आभासे तिरस्कृत किया गया था ॥१०॥ वे कभी यह विचार करने लगते कि सीता मेरी वियोगरूपी अग्निसे जलकर कहीं उस अवस्थाको तो प्राप्त नहीं हो गई होगी जो विपत्तिग्रस्त प्राणियोंकी होती है ॥११॥ क्या यह सीता है ? मन्द मन्द वायुसे हिलती

१. लालनं ख० । २. सिद्धि मात्यान् म० । ३. गिरिव म० । ४. समालिङ्गित म० ।
 ५. तथा म० ।

पूते किं लोचने तस्या नैते पुण्ये संपदपदे । करोऽयं किं चलस्तस्या नायं प्रत्यग्रपञ्चवः ॥१३॥
 केशभारं मयूरिणु तस्याः पर्यामि सुन्दरम् । अपर्यासशशाङ्के च^१ लघुमीमलिकसम्भवा^२ ॥१४॥
 त्रिवर्णाभिभोजखण्डेषु श्रियं लोचनगोचराम् । शोणपल्लवमध्यस्थितपुण्येस्मितत्वपम् ॥१५॥
 स्तनकेषु सुनातेषु कान्तितमसुस्तैर्नश्रियम् । जिनस्नपनवेदीनां शोभां मध्येषु मध्यमा^३ ॥१६॥
 तासामेवोद्भवागेषु नितम्बभरताकृतितम् । ऊरुशोभां सुजातासु कदलीस्तम्भिकासुताम् ॥१७॥
 पद्मेषु चरणाभिख्यां^४ स्थलसम्प्राप्तजन्मसु । शोभां तु समुदायस्य तस्याः पर्यामि न क्वचित् ॥१८॥
 चिरायति कथं सोऽपि सुग्रीवः कारणं नु किम् । दृष्ट्वा नाम भवेत् सीता किं तेन शुभदर्शिना ॥१९॥
 मद्वियोगेन तप्तं वा विलीनां तां सुशीलकाम् । ज्ञात्वा निवेदनेऽशक्तः किमसौ नैति दर्शनम् ॥२०॥
 किं वा कृतार्थतां प्राप्तिः प्राप्य^५ राज्यं पुनर्निजम् । स्वस्थीभूतो भवेद् दुःखं मम विस्मृत्य खेचरः ॥२१॥
 एवं चिन्तयतस्तस्य बाष्पविप्लुतचक्षुषः । सस्तालसशरीरस्य विवेदावरजो^६ मनः ॥२२॥
 ततः ससम्भ्रमं स्वान्तःकोषारुणितलोचनः । ययौ सुग्रीवमुद्दिश्य गन्नासिविलसत्करः ॥२३॥
 गण्डवतस्तस्य वातेन जङ्घास्तम्भासज्जन्मना । दोलायितामभूत् सर्वं महोष्पाताकुलं पुरम् ॥२४॥
 वेगानिक्षिप्तनिःशेषराजाधिकृतमानवैः^७ । प्रविश्य तद्गृहं दृष्ट्वा सुग्रीवमिदमभ्यधात् ॥२५॥
 आः पाप दयितादुःखनिम्नमे परमेश्वरे । भार्यया सहितः सौख्यं कथं भजसि दुर्मते ॥२६॥

हुई लता नहीं है ? क्या यह उसका वस्त्र है, चञ्चल पत्रोंका समूह नहीं है ? ॥१२॥ क्या ये उसके नेत्र हैं, अमर सहित पुष्प नहीं हैं ? और क्या यह उसका चञ्चल हाथ है नूतन पल्लव नहीं है ? ॥१३॥ मैं उसका सुन्दर केशपाश मयूरियोंमें, ललाटकी शोभा अर्धचन्द्रमें, नेत्रोंकी शोभा तीन रङ्गके कमलोंमें, मन्द सुसकानकी शोभा लाल-लाल पल्लवोंके मध्यमें स्थित पुष्पमें, स्तनकी शोभा कान्तिसम्पन्न उत्तम गुच्छोंमें, मध्यभागकी शोभा जिनाभिपेककी वेदिकाओंके मध्यभागमें, नितम्बकी स्थूल आकृति उन्हीं वेदिकाओंके ऊर्ध्वभागमें, ऊरुओंकी अनुपम शोभा केलेके सुन्दर स्तम्भोंमें, और चरणोंकी शोभा स्थलकमलों अर्थात् गुलाबके पुष्पोंमें देखता हूँ परन्तु इन सबके समुदाय स्वरूप सीताकी शोभा किसीमें नहीं देखता हूँ ॥१४-१८॥ वह सुग्रीव भी बिना कारण क्यों देर कर रहा है ? शुभ पदार्थोंको देखनेवाले उसने क्या किसीसे सीताका समाचार पूछा होगा ? ॥१९॥ अथवा वह शीलवती मेरे वियोगसे सन्तप्त होकर नष्ट हो गई है ऐसा वह जानता है तो भी कहनेमें असमर्थ होता हुआ ही क्या दिखाई नहीं देता है ? ॥२०॥ अथवा वह विद्याधर अपना राज्य पाकर कृतकृत्यताको प्राप्त हो गया है तथा मेरा दुःख भूलकर अपने आनन्दमें निमग्न हो गया है ॥२१॥ इस प्रकार विचार करते-करते जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त हो गये थे तथा जिनका शरीर ढीला और आलस्य युक्त हो गया था ऐसे रामके अभिप्रायको लक्ष्मण समझ गये ॥२२॥

तदनन्तर जिनका चित्त क्रोधसे युक्त था, नेत्र क्रोधसे लाल थे, और जिनका हाथ नंगी तलवार पर सुशोभित हो रहा था ऐसे लक्ष्मण सुग्रीवको लक्ष्य कर चले ॥२३॥ उस समय जाते हुए लक्ष्मणकी जङ्घाओंरूपी स्तम्भोंसे उत्पन्न वायुके द्वारा समस्त नगर ऐसा कम्पायमान हो गया मानो महान् उत्पातसे आकुल होकर ही कम्पायमान हो गया हो ॥२४॥ राजाके समस्त अधिकारी मनुष्योंको अपने वेगसे गिराकर वे सुग्रीवके घरमें प्रविष्ट हो सुग्रीवसे इस प्रकार कहने लगे ॥२५॥ अरे पापी ! जब कि परमेश्वर-राम स्त्रीके दुःखमें निमग्न हैं तब रे दुर्बुद्धे ! तू स्त्रीके

१. पुण्येषु षट्पदाः म० । २. शशाङ्केव म० । ३. नतश्रियम् (ई) म० । ४. 'अभिख्या नामशोभयोः' इत्यमरः । ५. सम्प्रापनकम्पम् (ई) म० । ६. दृष्ट्वा म० । ७. प्राप्ता म० । ८. प्राप्ये म० । ९. अनुजो लक्ष्मणः । १०. ससंभ्रमः स्वान्तः म० । ११. -माननः म० ।

अहं त्वां खेचरभ्यांश्च भोगे दुर्लभितं खल । नयामि तत्र नाथेन यत्र नीतस्त्वदाकृतिः ॥२७॥
 एवमुग्रां विमुञ्चन्तं वर्णान् कोपकणानिव । लक्ष्मीधरं प्रणामेन सुग्रीवः शर्ममानयत् ॥२८॥
 उवाच चेदनेकं मे क्षम्यतां देव विस्मृतम् । क्षुद्राणां हि भवत्येव सादृशां दुर्विचेष्टितम् ॥२९॥
 तत्स्यार्धपाणयो दाराः सम्प्रान्ताः कम्पमूर्तयः । सम्प्रणामेन निःशोपं जहुलक्ष्मणसम्भ्रमम् ॥३०॥
 सज्जनाम्बोदवाक्त्रोयधारानिकरसङ्गतः । प्रयाति विलयं कापि जनारणिमवोऽनलः ॥३१॥
 प्रणाममात्रसाध्यो हि महतां चेतसः शमः । महद्भिरपि नो दानैरुपशान्तिरिति दुर्जनाः ॥३२॥
 प्रतिज्ञां स्मारयन्तस्तस्य चक्रे लक्ष्मीधरः परम् । उपकारं यथा योगी यच्चदत्तस्य मातरम् ॥३३॥
 पप्रच्छ भगवाधाशो गणेश्वरमिहान्तरे । यच्चदत्तस्य वृत्तान्तं नाथेच्छामि विवेदितुम् ॥३४॥
 ततो गणधरोऽबोचच्छृणु श्रेणिकभूपते । चकार यच्चदत्तस्य यथा मातुः स्मृतिं मुनिः ॥३५॥
 अस्ति क्रौञ्चपुरं नाम नगरं तत्र पार्थिवः । यच्चक्षेत्रः प्रिया तस्य राजिलेति प्रकीर्तिता ॥३६॥
 तत्पुत्रो यच्चदत्ताख्यः स बाह्यां विहरन् सुखम् । अपश्यत् परमां नारीं स्थितां दुर्विधपाटके ॥३७॥
 स्मरेदुद्गतचित्तोऽसौ तामुद्दिश्य ब्रजजिनि । मुनिनावधियुक्तेन भैवमित्यभ्यभाषत ॥३८॥
 ततस्तं विद्युदुद्योतयोतितं वृक्षमूलगम् । ऐक्षतायननामानं मुनि सायकपाणिकः ॥३९॥
 तमुपेत्य नतिं कृत्वा पप्रच्छ विनयान्वितः । भगवन् किं त्वया मेति निषिद्धं कौतुकं मम ॥४०॥

साथ सुखका उपभोग क्यों कर रहा है ? ॥२६॥ अरे दुष्ट ! नीच विद्याधर ! मैं तुम्हें भोगासक्तको वहाँ पहुँचाता हूँ जहाँ कि रामने तेरी आकृतिको धारण करनेवाले कुत्रिम सुग्रीवको पहुँचाया है ॥२७॥ इस प्रकार क्रोधात्मिके कणोंके समान उग्रवचन छोड़नेवाले लक्ष्मणको सुग्रीवने नमस्कार कर शान्त किया ॥२८॥ और कहा कि हे देव ! मेरी एक भूल क्षमा की जाय क्योंकि मेरे जैसे क्रुद्ध मनुष्योंकी खोटी चेष्टा होती ही है ॥२९॥ जिनके शरीर काँप रहे थे ऐसी सुग्रीवकी घबड़ाई हुई स्त्रियों हाथमे अर्ध लेलेकर बाहर निकल आई और उन्होंने अच्छी तरह प्रणाम कर लक्ष्मणके समस्त क्रोधको नष्ट कर दिया ॥३०॥ सो ठीक ही है क्योंकि मनुष्यरूपी अरणिसे उत्पन्न हुई क्रोधाग्नि, सज्जनरूपी मेघ सम्बन्धी वचनरूपी जलधाराओंके साथ मिलकर शीघ्र ही कहीं विलीन हो जाती है ॥३१॥ निश्चयसे महापुरुषोंके चित्तकी शान्ति प्रणाममात्रसे सिद्ध हो जाती है जब कि दुर्जन बड़े-बड़े दानाँसे भी शान्त नहीं होते ॥३२॥ लक्ष्मणने प्रतिज्ञाका स्मरण कराते हुए सुग्रीवका उस तरह परम उपकार किया जिस तरह कि योगी अर्थात् मुनिने यच्चदत्तकी माताका किया था ॥३३॥

इसी बीचसे राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे पूछा कि हे नाथ ! मैं यच्चदत्तका वृत्तान्त जानना चाहता हूँ ॥३४॥ तदनन्तर गणधर भगवान्ने कहा कि हे श्रेणिक भूपाल ! मुनिने जिस प्रकार यच्चदत्तकी माताको स्मरण कराया था वह कथा कहता हूँ सो सुनो ॥३५॥ एक क्रौञ्चपुर नामका नगर है उसमे यक्ष नामका राजा था और राजिला नामसे प्रसिद्ध उनकी स्त्री थी ॥३६॥ उन दोनोंके यच्चदत्त नामका पुत्र था । एक दिन उसने नगरके बाहर सुखपूर्वक भ्रमण करते समय दरिद्रोंकी वस्तीमे स्थित एक परमसुन्दरी स्त्री देखी ॥३७॥ देखते ही कामके बाणोंसे उसका हृदय हरा गया सो वह रात्रिके समय उसके उद्देश्यसे जा रहा था कि अवधिज्ञानसे युक्त मुनिराजने 'मा अर्थात् नहीं' इस प्रकार उच्चारण किया ॥३८॥ तदनन्तर उसी समय विजली चमकी सो उसके प्रकाशमे हाथमे तलवार धारण करनेवाले यच्चदत्तने एक वृक्षके नीचे बैठे हुए अयन नामक मुनिराजको देखा ॥३९॥ उसने बड़ी विनयसे उनके पास जाकर तथा नमस्कार कर उनसे पूछा कि हे भगवन् ! आपने 'मा' शब्दका

सोऽबोचद् यां समुद्दिश्य प्रस्थितः कामुको भवान् ।
 सा ते माता ततस्तां मा यासीः कामीति वारितः ॥४१॥
 सोऽबोचत् कथमित्याख्यं ततोऽस्मिन् प्रस्तुतं मुनिः ।
 मानसानि मुनीनां हि सुदिश्वान्यनुकम्पया ॥४२॥
 शृण्वस्ति मृत्तिकावत्यां कनको नाम वाणिजः ।
 धूर्नाग्नि तस्य भार्यायां बन्धुदत्तः सुतोऽभवत् ॥४३॥

भार्या मित्रवती तस्य लतादत्तसमुद्भवा । कृत्वास्या गर्भमज्ञात पोतेन प्रस्थितः पतिः ॥४४॥
 श्वसुराभ्यां ततो ज्ञत्वा गर्भं दुश्चरितेयि सा । निराकृता पुरात् क्षिप्र दास्योत्पलिकया सह ॥४५॥
 प्रस्थिता च पितुर्गृहं सार्धेन महता समम् । सपैणोत्पलिकाद् दृष्टा मृता च विपिनान्तरे ॥४६॥
 ततः सव्या विमुक्तातौ शीलमात्रसहायिका । इन्मं क्रौञ्चपुर प्राप्ता महाशोकसमाकुला ॥४७॥
 स्कीतदेवार्चकारामे प्रसूता यावदम्बरम् । आरात् ञ्छलितुं याता शिशुस्तावदुष्टतः शुना ॥४८॥
 सुतं स्वैरं समादाय रत्नकम्बलवेष्टितम् । ददौ यक्षमहीपाय नीत्वा स ह्यस्य वल्लभः ॥४९॥
 ततोऽग्नेन विपुत्राया राजिलयाः समर्पितः । सार्धां च यक्षदत्ताख्यां प्रापितस्यं स वत्से ॥५०॥
 प्रत्यावृत्त्य च सम्भ्रान्तमपश्यन्ती प्रसूतकम् । विप्रलापं विरं चक्रे दुःखान् मित्रवती परम् ॥५१॥
 देवार्चकेन सा दृष्टा कृपया कृतसान्त्वना । त्वं मे स्वसेति सापित्वा स्वकेऽवस्थापितोदजे ॥५२॥
 सहायरहितत्वेन प्रयागकीर्तिर्भीतिस्तः । न सा गता पितुर्गृहं तत्रैव निरता ततः ॥५३॥

उच्चारण कर निषेध किसलिए किया । इसका मुझे बड़ा कौतुक है ? ॥४०॥ इसके उत्तरमें मुनिराजे कहा कि आप कामी होकर जिसके उद्देश्यसे जा रहे थे वह आपकी माता है इसलिए 'मत जाओ' यह कहकर मैंने रोका है ॥४१॥ यक्षदत्तने फिर पूछा कि वह मेरी माता कैसे है ? इसके उत्तरमें मुनिराजने प्रकृत वार्ता कही सो ठीक ही है क्योंकि मुनियोंके मन अनुकम्पासे युक्त होते ही हैं ॥४२॥ उन्होंने कहा कि सुनो, मृत्तिकावती नामक नगरीमें एक कनक नामका वाणिक रहता था, उसकी धूर् नामकी स्त्रीमें एक बन्धुदत्त नामका पुत्र हुआ था ॥४३॥ बन्धुदत्तकी स्त्रीका नाम मित्रवती था जो कि लतादत्तकी पुत्री थी । एक बार बन्धुदत्त अज्ञातरूपसे मित्रवतीको गर्भधारण करा कर जहाजसे अन्यत्र चला गया ॥४४॥ तदनन्तर सास-श्वसुरने गर्भका ज्ञान होने पर उसे दुश्चरिता समझ कर नगरसे निकाल दिया, सो गर्भवती मित्रवती, उत्पलिका नामक दासीकी साथ ले एक बड़े बज्जाराके संचके साथ अपने पिताके घरकी ओर चली । परन्तु जङ्गलके बीच उत्पलिकाकी सोंपने डंस लिया जिससे वह मर गई ॥४५-४६॥ तब वह सखीसे रहित, एक शीलम्रत रूपी सहायिकासे युक्त हो महाशोकसे व्याकुल होती हुई इस क्रौञ्चपुरं नगरीमें आई ॥४७॥ यहाँ स्कीत नामक देवार्चकके उपवनमें उसने पुत्र उत्पन्न किया । तदनन्तर पुत्रको रत्नकम्बलमें लपेट कर जब तक वह समीपवर्ती सरोवरमें बह्य धोनेके लिए गई तब तक एक कुत्ता उस पुत्रको उठा ले गया ॥४८॥ वह कुत्ता राजाका पालतू प्यारा कुत्ता था इसलिए उसने रत्नकम्बलमें लिपटे हुए उस पुत्रको अच्छी तरह ले जाकर राजा यक्षके लिए दे दिया ॥४९॥ राजाने वह पुत्र अपनी पुत्र रहित राजिला नामकी रानीके लिए दे दिया तथा उसका यक्षदत्त यह सार्धक नाम रक्खा क्योंकि यक्ष कुत्ताका नाम है और वह पुत्र उसके द्वारा देखा गया था । वही यक्षदत्त है ॥५०॥ जब मित्रवती लौटकर आई और उसने अपना पुत्र नहीं देखा तब वह दुःखसे चिरकाल तक बहुत विलाप करती रही ॥५१॥ तदनन्तर उपवनके स्वामी देवार्चकने उसे देख कर दया पूर्वक सान्त्वना दी और यह कह कर कि 'तू हमारी बहिन है' अपनी कुटीमें रखी ॥५२॥ सहायक न होनेसे, लज्जासे अथवा अपकीर्तिके भयसे वह फिर

सेयमत्यन्तशीलश्रद्धा जिनधर्मपरायणा । कुटीरे दुर्बिधस्थास्ते भ्रमता या त्वयेक्षिता ॥५४॥
 ब्रजता बन्धुदत्तेन यदृत्तं रत्नकम्बलम् । अस्यास्तद्यत्नमवने तिष्ठत्यद्यापि रक्षितम् ॥५५॥
 इत्युक्तेन सयत्नं नत्वा स्तुत्वा च हितकारिणम् । इयाय खड्गवानेव सम्भ्रमी यत्नसन्निधिम् ॥५६॥
 ऊचे च तेशसिनानेन क्षिप्रं निर्यतं शिरः । सत्यतो यदि मे जन्म न शास्ति स्फुटकारणम् ॥५७॥
 यथावद् वेदितं तेन रत्नकम्बलक्षितम् । अयं जरायुलेपेन तिष्ठत्यद्यापि दिग्घकः ॥५८॥
 प्रथमाभ्यां ततस्तस्य पितृभ्यां सह सङ्गमः । जातो महोत्सवोपेतः महाविभवविस्मितः ॥५९॥
 कथितं ते महाराज वृत्तान्तादिदमागतम् । अधुना प्रकृतं वक्ष्ये मवानहितमानसः ॥६०॥
 लक्ष्मीधरं पुरस्कृत्य सुग्रीवस्वरितं ययौ । समीपं रामदेवस्य स तस्थौ त्रिहितानतिः ॥६१॥
 ततो विक्रमगर्वेण सदा प्रकटवेष्टितान् । आहूय किङ्करान् सर्वान् महाकुलसमुद्भवान् ॥६२॥
 कांश्चिदश्रुतवृत्तान्तान् महोभोगं हस्तास्मिकान् । वेदयन् विस्मयप्राप्तान् पद्मानिर्मितमद्भुतम् ॥६३॥
 कांश्चिद् विज्ञातवृत्तान्तान् प्रभुकार्यपरायणान् । जगौ प्रत्युपकाराय वाचा सन्मानयस्त्रिदश ॥६४॥
 भो भो सुविभ्रमाः सर्वे शृणुत श्रीसमुत्पत्ताः । सीतासुपलभध्वं द्वाक् क वतंत इति स्फुटम् ॥६५॥
 महीतले समस्तेऽस्मिन् पातालं खे जले स्थले । जम्बूद्वीपे पयोनाये द्वीपे वा घातकीमिति ॥६६॥
 कुलपर्वतकुञ्जेषु काननान्तेषु मेरुषु । नगरेषु विचित्रेषु रम्येषु व्योमचारिणाम् ॥६७॥
 गहनैषु समस्तेषु नानाविधापराक्रमाः । जानीत दिक्खु सर्वान् सती भूविबरेषु च ॥६८॥

पिताके घर नहीं गई और वहीं रहने लगी ॥५३॥ वह अत्यन्त शीलवती तथा जिनधर्मके धारण करनेमें तत्पर रहती हुई दरिद्र देवार्चककी कुटीमें बैठी थी सो भ्रमण करते हुए तुमने उसे देखा ॥५४॥ उसके पति बन्धुदत्तेन परदेशको जाते समय उसे जो रत्नकम्बल दिया था वह आज भी राजा यत्नके घरमें सुरक्षित रक्खा है ॥५५॥ इस प्रकार कहने पर उसने हितकारी मुनिराजको नमस्कार कर उनकी बहुत स्तुति की । तदनन्तर वह तलवार लिये ही शीघ्रतासे राजा यत्नके पास गया ॥५६॥ और बोला कि यदि तू मेरे जन्मका सच-सच कारण स्पष्ट नहीं बताता है तो मैं इसी तलवारसे तेरा मस्तक काट डालूँगा ॥५७॥ इतना कहने पर राजा यत्नने सब कारण व्यो-का-त्यां बतला दिया और साथ ही वह रत्नकम्बल दिखलाते हुए कहा कि यह अब भी जरायुके लेपसे लिप्त है ॥५८॥ तदनन्तर उसका अपने पूर्व माता-पिताके साथ समागम हो गया और महा वैभवसे आश्चर्यमें डालनेवाला बड़ा उत्सव हुआ ॥५९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! प्रकरण आ जानेसे यह वृत्तान्त मैंने तुमसे कहा अब फिर प्रकृत बात कहता हूँ सो सावधान होकर श्रवण कर ॥६१॥

तदनन्तर सुग्रीव, लक्ष्मणको आगे कर शीघ्र ही रामके समीप आया और नमस्कार कर खड़ा हो गया ॥६१॥ तत्पश्चात् उसने पराक्रमके गर्वसे सदा स्पष्ट चेष्टाओंके करनेवाले एवं उच्च कुलोमें उत्पन्न समस्त किकरोको बुलाकर जिन महोभोगी किङ्करोने यह वृत्तान्त नहीं सुना था उन्हें रामका अद्भुत कार्य बतला कर आश्चर्यसे चकित किया ॥६१-६३॥ तथा जो इस वृत्तान्तको जानते थे प्रभुका कार्य करनेमें तत्पर रहनेवाले उन किङ्करोका वचन द्वारा सन्मान करते हुए उनसे रामका प्रत्युपकार करनेके लिए यह कहा ॥६४॥ कि हे उत्तम विभ्रमोंको धारण करनेवाले श्रीसम्पन्न समस्त पुरुषो ! तुम लोग शीघ्र ही सीताका पता चलाओ कि वह कहाँ है ? ॥६५॥ तुम लोग नामा प्रकारकी बियाओ और पराक्रमसे युक्त हो अतः इस समस्त भूतलमें, पातालमें, आकाशमें, जलमें, थलमें, जम्बूद्वीपमें, समुद्रमें, घातकीखण्ड द्वीपमें, कुलाचलोके

१. 'सत्यतो यदि मे जन्म नास्ति त्व स्फुटकारणम्' म० । २. प्राकृते म० । ३. महामोहतात्पिकान् म० ।
 ४. श्रीमन्बुत्सवाः (?) म० ।

शेषामिव ततो मूर्ध्नि ते कृत्वाऽज्ञां प्रमोदिनः । उत्पत्य दिक्षु सर्वासु द्रुतं जम्बुरहंयवः ॥६६॥
 युवविद्याभृता लब्धं नाययित्वा यथाविधि । ज्ञातनिःशेषवृत्तान्तो वैदेहोऽप्युपपादितः ॥७०॥
 ततोऽसौ स्वसृदुःखेन नितान्तोद्विग्नमानसः । सुग्रीव इव रामस्य नितरां निमृतोऽभवत् ॥७१॥
 स्वयमेव च सुग्रीवः पर्यटन् भानुवल्मना । तारानिकरचक्रैण समप्रवृत्तो गवेणेन ॥७२॥
 दुष्टविद्याधरानेकपुरान्वेषणतत्परः । ध्वजं दूरात् समालोक्य समीरणविकम्पितम् ॥७३॥
 जम्बूद्वीपमहीप्रस्थ शिखरेणोपलक्षितम् । नभस्तलं परं प्राप बलदंशुकपल्लवः ॥७४॥
 वियतोऽवतरद् वीर्य विमानं भानुभासुरम् । उत्पाताशङ्कितो जातो रत्नकेशी समाकुलः ॥७५॥
 आसीदनुसमालोक्य तदसावतिविह्वलः । चैतयेयात् परित्रस्तः सङ्कोच यथोरगः ॥७६॥
 आसन्नं च परिज्ञाय ध्वजेन कपिलचमणम् । रत्नकेशी गतश्चिन्तामिति मृत्युमयाकुलः ॥७७॥
 लङ्काधिपतिना नृव क्रुद्धेन अनितागता । प्रेषितो मद्विनाशाय सुग्रीवोऽयमुपागतः ॥७८॥
 किं न प्रतिभये शीघ्रं मृतो रत्नाकराभसि । हा थिगन्त्रान्तरे द्वीपे मरणं समुपागतम् ॥७९॥
 मनोरथं पुरस्कृत्य विद्यावीर्यविवर्जितः । जीवितैस्पृह्याविष्टः प्रापयिष्यामि किम्वहम् ॥८०॥
 इति चिन्तयतस्तस्य सम्प्राप्तो वानरध्वजः । शोचयन् सहसा द्वीपं द्वितीय इव आस्करः ॥८१॥
 तर्कं धूसरसर्वाङ्गमालोक्य वनपांशुभिः । वानराङ्गवृत्तान्तोऽप्युत्पन्नकम्पासमुद्बभूव ॥८२॥

निकुञ्जोंमें, वनके अन्त भागोंमें, सुमेरु पर्वतोंमें, विद्याधरोंके चित्र-वचित्र मनोहर नगरोंमें, समस्त दिशाओंमें और भूमिके विचरों अर्थात् कन्दराओंमें सीताका पता चलाओ ॥६६-६८॥

तदनन्तर हर्षसे भरे अहंकारी वानर शेषाक्षतकी तरह सुग्रीवकी आज्ञाको शिरपर धारणकर शीघ्र ही उड़कर समस्त दिशाओंमें चले गये ॥६६॥ एक तरुण विद्याधरके द्वारा विधिपूर्वक पत्र भेजकर भामण्डलके लिए भी समस्त वृत्तान्तसे अवगत कराया गया ॥७०॥ तदनन्तर वहिनके दुःखसे भामण्डल अत्यन्त दुःखी हुआ और सुग्रीवके समान रामका अतिशय आज्ञाकारी हुआ ॥७१॥ सुग्रीव, स्वयं भी सीताकी खोज करनेके लिए ताराओंके समूहके साथ आकाशमार्गसे चला ॥७२॥ वह दुष्ट विद्याधरके अनेक नगरोंके बीच सीताकी खोज करनेमें तत्पर हुआ भ्रमण कर रहा था । तदनन्तर हवासे हिलती हुई ध्वजाको दूरसे देखकर वह जम्बूद्वीपके एक पर्वतके शिखरसे उपलक्षित आकाशमें पहुँचा । उस समय उसके वस्त्रका अञ्जल हवासे हिल रहा था ॥७३-७४॥ उस पर्वत पर रत्नकेशी विद्याधर रहता था, सो वह आकाशसे उतरते हुए सूर्यके समान देदीप्यमान सुग्रीवके विमानको देखकर उत्पातकी आशङ्कासे युक्त हो गया ॥७५॥ विमान को देखकर वह अत्यन्त विह्वल हो गया और जिस प्रकार गरुडसे भयभीत हो सर्प संकुचित होकर रह जाता है उसी प्रकार रत्नकेशी भी उस विमानसे भयभीत हो संकुचित होकर रह गया ॥७६॥ जब सुग्रीव बिलकुल निकट आ गया तब उसे उसकी ध्वजासे वानरवंशी जानकर रत्नकेशी मृत्युके भयसे व्याकुल होता हुआ इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥७७॥ जान पड़ता है कि मैंने लङ्काधिपति-रावणका अपराध किया था अतः कुपित होकर उसके द्वारा मुझे नष्ट करनेके लिए भेजा हुआ यह सुग्रीव आया है ॥७८॥ हाय मैं भय उत्पन्न करनेवाले लवण समुद्रमें गिर कर शीघ्र ही क्यों नहीं मर गया । मुझे धिक्कार है जिसे इस अन्य द्वीपमें मरण प्राप्त हुआ है—मरनेका अवसर प्राप्त हो रहा है ॥७९॥ मैं विद्यावलसे रहित होकर भी इच्छाओं को आगे कर जीवित रहनेकी इच्छासे युक्त हूँ सो देखूँ अब क्या प्राप्त करता हूँ ? ॥८०॥ इस प्रकार रत्नकेशी विचार कर ही रहा था कि इतनेमें द्वितीय सूर्यके समान द्वीपको प्रकाशित हुआ सुग्रीव वहाँ शीघ्र ही जा पहुँचा ॥८१॥ वनकी धूलिसे जिसका समस्त शरीर धूसर हो रहा था

१. अहंकारयुक्त- । २. जम्बूद्वीपमहीन्द्रस्थ म० । जम्बूद्वीपमहेन्द्रस्थ क० । ३. पल्लवम् म० । ४. समुपागतः म० । ५. जीवितः स्पृहया म० । ६. -दनुकम्प- म० ।

स त्वं रत्नजटी पूर्वमासीद् विद्यासमुन्नतः । अवस्थामादृशीं कस्मादधुना भद्रं सङ्गतः ॥८३॥
 इत्युक्तोऽप्यनुकम्पेन सुम्रीणेन सुखाकरम् । सर्वाङ्गं कम्पयन् भीत्या दीनो रत्नजटी नृशम् ॥८४॥
 मा भैर्याभद्रं मा भैर्यारित्युक्तश्च पुनः पुनः । जगौ कृतानतिर्धरिमतिः प्रकटिताचरम् ॥८५॥
 प्रतिपत्नी भवन् साधो रावणेन दुरात्मना । सीताहरणसक्तेन छिन्नविधोऽहमीदृशः ॥८६॥
 जीविताशां समालम्ब्य कथञ्चिदैवयोगतः । ध्वजमेतं समुत्सृज्य स्थितोऽस्मि कपिपुङ्गव ॥८७॥
 उपलब्धप्रवृत्तिश्च तोषोद्वेगं वहन् द्रुतम् । गृहीत्वा रत्नजटिनं सुग्रीवः स्वपुरं ययौ ॥८८॥
 समर्चं लक्ष्मणस्याथ महतां च खगामिनाम् । जगौ रत्नजटी पद्मं विनयी विहिताञ्जलिः ॥८९॥
 देव देवी नृशसेन सती सीता दुरात्मना । हृता लङ्कापुरीन्द्रणे विद्या च मम कोपिनः ॥९०॥
 कुर्वन्तो सा महाक्लृप्तं ध्वनिना चित्तहारिणा । मृगीव व्याकुलीभूता नीता तेन बलीयसा ॥९१॥
 येनासीत् समरे भीमे निजित्य सुमहाबलः । इन्द्रो विद्याभूतामीशो वन्दिग्रहमुपाहृतः ॥९२॥
 स्वामी भरतलपदानां यस्त्रयाणां निरङ्कुशः । कैलासोद्धरणे येन विशालं सङ्गतं यशः ॥९३॥
 सागरान्ता महौ यस्य दासीबाजां प्रतीच्छति । सुरासुरैर्न यो जेतुं संहतैरपि शक्यते ॥९४॥
 श्रेष्ठेन विदुषां तेन धर्माधर्मविवेकिना । कर्मदं निर्मितं क्रूर मोहो जयति पापिनाम् ॥९५॥
 तच्छ्रुत्वा विविधं विभ्रदसं काकुत्स्थनन्दनः । अङ्गस्पर्शं ददौ सर्वं सादरं रत्नकेशिने ॥९६॥
 देवोपगीतसंज्ञे च पुरे गोत्रक्रमागतम् । अन्वजानादधीशत्वं विच्छिन्नमरिमिश्रितम् ॥९७॥

ऐसे उस रत्नकेशीको देखकर दया धारण करते हुए सुम्रीवने पूछा ॥८२॥ कि तू रत्नजटी तो पहले विद्याधरोसे समुन्नत था । हे भद्र ! अब ऐसी दशाको किस कारण प्राप्त हुआ है ? ॥८३॥ इस प्रकार दयाके धारक सुम्रीवने उससे सुखसमाचार पूछा तो भी भयके कारण उसका समस्त शरीर काँप रहा था तथा वह अत्यन्त दीन जान पड़ता था ॥८४॥ तदनन्तर सुम्रीवने जब उससे बार-बार कहा कि हे भद्र ! भयभीत मत हो, भयभीत मत हो तब कहीं धैर्यधारण कर उसने नमस्कार किया और स्पष्ट अक्षरोमे कहा कि हे सत्पुरुष ! दुष्ट रावण सीताके हरनेमें तत्पर था उस समय मैंने उसका विरोध किया जिससे उसने मेरी विद्याएँ छीनकर मुझे ऐसा कर दिया ॥८५-८६॥ हे कपि श्रेष्ठ ! दैवयोगसे जीवित रहनेकी आशासे मैं यहाँ इस ध्वजाको ऊपर उठाकर किसी तरह स्थित हूँ—रह रहा हूँ ॥८७॥ तदनन्तर समाचार प्राप्त हो जानेसे जो हर्षजन्य उद्वेगको धारण कर रहा था ऐसा सुग्रीव शीघ्र ही रत्नजटीको लेकर अपने नगरकी ओर गया ॥८८॥

अथानन्तर विनयसे भरे रत्नजटीने हाथ जोड़कर लक्ष्मण तथा अन्य बड़े-बड़े विद्याधरोंके सामने रामसे कहा कि हे देव ! अतिशय दुष्ट, लङ्कापुरीके राजा क्रूर रावणने पतिव्रता सीतादेवीको तथा क्रोध करनेवाले मुक्त रत्नजटीकी विद्याको हरा है ॥८९-९०॥ जो चित्तको हरण करनेवाली ध्वनिसे महाखुदन करती हुई मृगीके समान व्याकुल हो रही थी ऐसी सीताको वह बलवान् हर कर ले गया है ॥९१॥ जिसने भयङ्कर संग्राममें अत्यन्त बलवान्, विद्याधरोके अधिपति इन्द्रको जीतकर कारागारमें डाला था ॥९२॥ जो भरतक्षेत्रके तीन खण्डोंका अद्वितीय स्वामी है, जिसने कैलास पर्वतके उठानेमें विशाल यश प्राप्त किया है, समुद्रान्त पृथ्वी दासीके समान जिसकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करती है, सुर तथा असुर मिलकर भी जिसे जीतनेके लिए समर्थ नहीं हैं, जो विद्वानोंमें श्रेष्ठ है तथा धर्म—अधर्मके विवेकसे युक्त है, उसी रावणने यह क्रूर कार्य किया है सो कहना पड़ता है कि पापी जीवोंका मोह बड़ा प्रबल है ॥९३-९४॥ यह सुनकर नाना प्रकारके स्नेहकी धारण करते हुए रामने आदरके साथ रत्नजटीके लिए अपने शरीरका स्पर्श दिया अर्थात् उसका आलिङ्गन किया ॥९६॥ और देवोपगीत नामक नगरका स्वामित्व रत्नजटीके वंशपरम्परासे चला आता था पर वीचमे शत्रुओंने छीन लिया था सो उसे उसका स्वामित्व प्रदान किया—

पुनः पुनरपृच्छच्च वार्त्तामालिङ्ग्य तं वृषः । पुनः पुनर्जगादासी प्रमोदव्याकुलाक्षरः ॥६८॥
 ततः समुत्सुकः पद्मः पर्यपृच्छदतिव्रुतम् । लङ्कापुरी क्रियद्दूरे विवेद्यत खेचराः ॥६९॥
 इत्युक्तास्ते गता मोहं निश्चलीभूतविग्रहाः । अत्राहमुखा गतच्छाया बभूवुर्वाग्विवर्जिताः ॥१००॥
 अभिप्रायं ततो ज्ञात्वा विशीर्णहृदयास्तके । अवज्ञामन्द्या दृष्ट्वा राघवेन विलोकिताः ॥१०१॥
 अथ भीतिपरित्रस्ताः ज्ञाताः स्म इति लज्जिताः । ऊचुर्धीरं मनःकुला करकुटुम्बलमस्तकाः ॥१०२॥
 यदीयं देव नामापि कथञ्चित्समुदीरितम् । उबरमानयति त्रासाद्वह्ममस्त्वपुः कथम् ॥१०३॥
 क्व वयं क्षुद्रसामर्थ्याः क्व च लङ्कामहेश्वरः । त्यजानुबन्धमेतस्मिन् ज्ञाते सत्प्रति वस्तुनि ॥१०४॥
 अथावश्यमिदं वस्तु श्रोतव्यं श्रूयतां प्रभो । कोऽत्र दोषः समञ्चं ते किञ्चिद्वक्तु हि शक्यते ॥१०५॥
 अस्यत्र लवणाम्भोधिं क्रूरग्राहसमाकुले । प्रख्यातो राक्षसद्वीपः प्रभूताद्भुतसङ्कुलः ॥१०६॥
 शताभिः सप्त विस्तीर्णो योजनानां समन्ततः । परिच्छेपेण तान्यैव साधिकान्येकविंशतिः ॥१०७॥
 मध्ये मन्दरतुल्योऽस्य त्रिकूटो नाम पर्वतः । योजनानि नवोत्तुङ्गपञ्चाशद्विपुलवतः ॥१०८॥
 हेमनानामणिरुक्ताः शिलाजालावलीकृतः । आसीत्तोर्यद्वाहस्य दत्तो नाथेन रक्षसाम् ॥१०९॥
 तस्य कूल्यैर्दुर्गैश्चैत्रैः शिखरे कृतभूषणे । लङ्घ्येति नगरी भाति मणिरत्नमरीचिभिः ॥११०॥
 विमानसदृशैः रत्नैः प्रासादैः स्वर्गसज्जितैः । मनोहरैः प्रदेशैश्च क्रीडनादिक्रियोचितैः ॥१११॥
 विशदं योजनमानेन परिच्छिन्ना समन्ततः । महाप्राकारपरिखा द्वितीयेन वसुन्धरा ॥११२॥

वहोका राजा बनाया ॥६७॥ राम, बार-बार आलिङ्गन कर उससे यह समाचार पूछते थे और वह हर्ष से स्खलित होते हुए अन्तर्गम्य बार-बार उक्त समाचार सुनाता था ॥६८॥

तदनन्तर अत्यन्त उत्सुकतासे भरे रामने शीघ्र ही पूछा कि हे विद्याधरो ! बतलाओ कि लंका कितनी दूर है ? ॥६९॥ इस प्रकार रामके कहने पर सब विद्याधर मोहको प्राप्त हो गये उनके शरीर निश्चल हो रहे तथा वे नम्रमुख, कान्तिहीन और वचनोंसे रहित हो गये ॥१००॥ तदनन्तर जिनके हृदय भयसे विशीर्ण हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंका अभिप्राय जानकर रामने उनकी ओर अबङ्गापूर्ण दृष्टिसे देखा ॥१०१॥ तत्पश्चात् 'हम श्रीराम की दृष्टिमें भयभीत जाने गये हैं' इस विचारसे जो लज्जित हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंने हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मनको धीर कर कहा कि ॥१०२॥ हे देव ! किसी तरह उच्चारण किया हुआ जिसका नाम ही भयसे उबर उत्पन्न कर देता है उसके विषयमें हम आपके सामने क्या कहें ? ॥१०३॥ क्षुद्र शक्तिके धारक हम लोग कहीं और लंकाका स्वामी रावण कहीं ? अतः इस समय आप इस जानी हुई वस्तुकी दृष्ट छोड़िए ॥१०४॥ अथवा हे प्रभो ! यह सुनना आवश्यक ही है तो सुनिए कहनेमें क्या दोष है ? आपके समक्ष तो कुछ कहा जा सकता है ॥१०५॥ दुष्ट मगरमच्छोंसे भरे हुए इस लण्णसमुद्रमें अनेक आश्चर्यकारी स्थानोंसे युक्त प्रसिद्ध राक्षसद्वीप है ॥१०६॥ जो सब ओरसे सात योजन विस्तृत है तथा कुछ अधिक इक्कीस योजन उसकी परिधि है ॥१०७॥ उसके बीचमें सुमेरु पर्वतके समान त्रिकूट नामका पर्वत है जो नौ योजन ऊँचा और पचास योजन चौड़ा है ॥१०८॥ सुवर्ण तथा नाना प्रकारके मणियोंसे देदीप्यमान एवं शिलाओंके समूहसे व्याप्त है । राक्षसोंके इन्द्र भीमने मेघवाहनके लिए वह दिया था ॥१०९॥ तट पर उत्पन्न हुए नाना प्रकारके चित्र-विचित्र वृक्षोंसे सुशोभित उस त्रिकूटाचलके शिखर पर लङ्का नामकी नगरी है जो मणि और रत्नोंकी किरणों तथा स्वर्गके विमानोंके समान मनोहर महलों एवं क्रीड़ा आदिके योग्य सुन्दर प्रदेशोंसे अत्यन्त शोभायमान है ॥११०-१११॥ जो सब ओरसे

लङ्कायाः परिपार्येषु सन्त्यन्येषु मनोहराः । स्वभावावस्थिता रत्नमणिकान्नमूर्तयः ॥११३॥
 प्रदेशा नगरोपेता रक्षसां क्रीडभूमयः । अधिष्ठिता महाभोगैस्ते च सर्वे नमश्चरैः ॥११४॥
 सन्ध्याकारः सुवेल्ल काञ्चनो ह्लादनस्तथा । योधनो हसनामा च हरिसागरनिस्वनः ॥११५॥
 अर्द्धस्वर्गोद्दयक्षान्यो द्वीपाः सर्वर्द्धिभोगदाः । प्रदेशा इव नाकस्य काननादिविभूषिताः ॥११६॥
 सुहृद्भिर्भ्रातृभिः पुत्रैः कलत्रैर्बान्धवैः सह । रमते येषु लङ्केशो भृत्यवर्गसमावृतः ॥११७॥
 तं क्रीडन्तं जनो दृष्ट्वा महाविद्याधराधिपम् । देवाधिपोऽपि मन्येऽहं समाशङ्कं प्रपद्यते ॥११८॥
 भ्राता विभीषणो यस्य बली लोकसमुत्कटः । परैरपि परैराज्ञावज्ज्यो राजपुङ्गवः ॥११९॥
 त्रिदशस्तस्मनो बुद्ध्या नास्ति नास्त्येव मातुषः । तेनैकेनैव पर्याप्तं रावणस्य जगत्प्रभो ॥१२०॥
 अपरोऽन्यदुजस्तस्य विद्यते गुणभूषणः । आलुक्कण इति ख्यातस्त्रिशूलपरमायुधः ॥१२१॥
 भ्रङ्गुर्दं कुटिलो यस्य भीष्मा कालकुटीमिव । न शक्नुवन्ति संग्रामे सुरा अन्यवलोकितुम् ॥१२२॥
 महेन्द्रजितसंज्ञश्च क्षितौ स्थानिसुपागतः । तस्यैव तनयो यस्य जगदाभासते करे ॥१२३॥
 एवमाद्याः सुबहवः प्रणतास्तस्य किङ्कराः । नानाविद्याङ्गुतोपेताः प्रतापप्रणतारयः ॥१२४॥
 यस्यात्पन्नमालोक्ष्य पूर्णचन्द्रसमप्रभम् । त्वजन्ति रिपवो दुर्घं समरे चिरपोषितम् ॥१२५॥
 अमृत्युं पुस्तकमपि^१ चित्रं वा सहतेक्षितम् । नाम चोच्चारित शक्तमरीणां त्रासकर्मणि ॥१२६॥
 एवंविधममुं युद्धे कः शक्ती जेतुमुद्धतः । कथा चैषा न कर्तव्या चित्तस्थितामपरा गतिः ॥१२७॥

तीस योजन चौड़ी है तथा बहुत बड़े प्राकार और परिखासे युक्त होनेके कारण दूसरी पृथिवीके समान जान पड़ती है ॥११२॥ लङ्काके समीपमें और भी ऐसे स्वाभाविक प्रदेश हैं जो रत्नमणि तथा स्वर्णसे निर्मित हैं ॥११३॥ वे सब प्रदेश उत्तमोत्तम नगरोंसे युक्त हैं, राक्षसोंकी क्रीड़ा-भूमि हैं तथा महाभोगोंसे युक्त विद्याधरोंसे सहित हैं ॥११४॥ संध्याकार, सुवेल, काञ्चन, ह्लावन, योधन, हंस, हरिसागर और अर्द्ध स्वर्ग आदि अन्य द्वीप भी वहाँ विद्यमान हैं जो समस्त ऋद्धियों तथा भोगोंको देनेवाले हैं, वन-वपवन आदिसे विभूषित हैं तथा स्वर्ग प्रदेशोंके समान जान पड़ते हैं ॥११५-११६॥ लङ्काधिपति रावण भृत्यवर्गसे आवृत हो मित्रों, भाइयों, पुत्रों, स्त्रियों तथा अन्य इष्टजनोके साथ उन प्रदेशोंमें क्रीड़ा किया करता है ॥११७॥ क्रीड़ा करते हुए उस विद्याधरोंके अधिपतिको देखकर मैं समझता हूँ कि इन्द्र भी आशङ्काको प्राप्त हो जाता है ॥११८॥ जिसका भाई विभीषण लोकमें अत्यधिक बलवान् है, युद्धमें बड़े-बड़े लोगोंके द्वारा भी अजेय है और राजाओंमें श्रेष्ठ है ॥११९॥ बुद्धि द्वारा उसकी समानता करनेवाला देव भी नहीं है फिर मनुष्य तो निश्चित ही नहीं है । जगत्प्रभु रावणको उसी एक भाईका संसर्ग प्राप्त होना पर्याप्त है ॥१२०॥ उसका गुणरूपी आभूषणोंसे सहित एक छोटा भाई भी है जो कुम्भकर्ण इस नामसे प्रसिद्ध है तथा त्रिशूल नामक महाशस्त्रसे सहित है ॥१२१॥ युद्धमें यमराजकी कुटीके समान जिसकी भयंकर कुटिल भ्रुकुटीकी देव भी देखनेके लिए समर्थ नहीं हैं फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥१२२॥ युद्धमें ख्यातिको प्राप्त होनेवाला इन्द्रजित, उसीका पुत्र है ऐसा पुत्र कि जिसके हाथमें सारा संसार जान पड़ता है ॥१२३॥ इन सबको आदि लेकर रावणके ऐसे अनेक किङ्कर हैं जो नाना प्रकारकी विद्याओंके आश्रयसे सहित हैं तथा प्रतापसे जिन्होंने शत्रुओंको नष्टीभूत बना दिया है ॥१२४॥ पूर्ण चन्द्रके समान आभावाले जिसके छत्रको देखकर शत्रु युद्धमें अपना चिरसंचित अहंकार छोड़ देते हैं ॥१२५॥ सहसा दृष्टिमें आया इसका पुतला, अथवा चित्र अथवा उच्चारण किया हुआ नाम भी शत्रुओंको भय उत्पन्न करनेमें समर्थ है ॥१२६॥ इस प्रकारके इस रावणको युद्धमें जीतनेके लिए कौन बलवान्

१. मरुत्यमरोपेते ख० । २. आनौ = संग्रामे, अनन्य इतिच्छेदः । ३. कर्मणि म० ।

ततोऽनादृतस्तेषामेकैकं वाच्यं लक्ष्मणः । अमाणीदृक्षितं वाच्यं वनाघनघनस्वनः ॥१२८॥
 सत्यं यदीदृशः स्थातुं शक्तिमान् दशवक्त्रकः । तत् किमश्रान्यनाम स्वमसौ स्त्रीतस्को भवेत् ॥१२९॥
 दाम्भिकस्यातिभीतस्य मोहिनः पापकर्मणः । रक्षोऽधमस्य तस्यास्ति कुतः स्वस्यापि श्रुता ॥१३०॥
 अत्रवीरपद्मानामश्च किमुक्तेनेह शूरिणा । वार्तागमोऽपि दुःप्रापो द्रिष्टवा लब्धो मया स च ॥१३१॥
 चिन्त्यमस्यपरं नातः क्षोभ्यतां राक्षसाधमः । जायतामुचितं भावि फलं कर्मानिलेरितम् ॥१३२॥
 अथैनमूचिरे वृद्धाः क्षणं स्थित्वेव सादराः । शोकं जह्रीहि पद्मानमत्रास्माकमधीश्वरः ॥१३३॥
 विद्याधरकुमारीणां गुणैरप्सरसामिव । सव भर्ता भ्रमन् लोके त्रियुक्ताशेषदुःखधीः ॥१३४॥
 पद्मोऽवदत्त मेऽन्याभिः प्रसदाभिः प्रयोजनम् । विजयन्ते महालीलां यदि शच्या अपि स्त्रियः ॥१३५॥
 प्रीतिरचेन्मयि युष्माकमस्ति कापि नमश्चराः । अनुकम्पापि वा सीतां ततो दर्शयत द्रुतम् ॥१३६॥
 जाम्बूनदस्ततोऽवोचत्प्रभो मूढग्रहस्त्वया । त्यज्यतां सुदृढवन्मा मूर्खयूर इव दुःखितः ॥१३७॥
 अस्ति वेणातटे मेही नाम्ना सर्वलक्षिः किल । सुतो विनयदत्तोऽस्य गुणपूर्णसमुद्भवः ॥१३८॥
 विशालभूतिसञ्ज्ञश्च वयस्योऽस्यातिबलवान् । तन्नाययां समासक्तो गृहलक्ष्मीं दुरात्मकः ॥१३९॥
 तस्या पुत्र च वाच्येन विद्वत्क्षिप्रना वनम् । नीत्वा विनयदत्तं स वनयोपरि शाश्विनः ॥१४०॥
 वध्वा च तं ततो गेहं क्रूरकर्मा हताशयः । विधाय चोत्तरं किञ्चिद्वतस्ये कृतार्थवत् ॥१४१॥

समर्थ है ? अर्थात् कोई नहीं । इसलिए यह कथा ही छोड़िये कोई दूसरा उपाय सोचिये ॥१२७॥
 तदनन्तर अनादरसे उनमें प्रत्येककी ओर देखकर मेघके समान गम्भीर शब्दको धारण करनेवाले लक्ष्मणने इस प्रकार धलपूर्ण वचन कहे कि यदि रावण सचमुच ही ऐसा प्रसिद्ध बलवान् है तो जिसका नाम भी श्रवण करने योग्य नहीं रहता ऐसा स्त्रीका चोर क्यों होता ? ॥१२८-१२९॥ वह तो कपटी, भीरु, मोही, पापकर्मा नीच राक्षस है उसमें थोड़ी भी शूर वीरता कहाँ है ? ॥१३०॥ रामने भी कहा कि इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या ? जिस समाचारका मिलना भी दुष्कर था वह समाचार दैवकी अनुकूलतासे हमने प्राप्त कर लिया है ॥१३१॥ इसलिए अब दूसरी बात सोचनेकी आवश्यकता नहीं है, अब तो उस नीच राक्षसको क्षोभित किया जाय । कर्मरूपी बायुसे प्रेरित हुआ उचित ही फल होगा ॥१३२॥

अथानन्तर क्षण भर ठहर कर वृद्ध लोगोंने आदर पूर्वक कहा कि पद्मान ! शोक छोड़ो, हमारे स्वामी होओ, गुणासे अप्सराओंकी समानता करनेवाली विद्याधर कुमारियोके भर्ता होओ तथा सब दुःख छोड़कर आनन्दसे लोकमें भ्रमण करो ॥१३३-१३४॥ रामने उत्तर दिया कि मुझे अन्य स्त्रियोंसे प्रयोजन नहीं है भले ही वे स्त्रियाँ इन्द्राणीकी महालीलाको जीतती हों ॥१३५॥ हे विद्याधरो ! यदि आप लोगोंकी मुफ्त पर कुछ भी प्रीति अथवा दया है तो शीघ्र ही सीताको दिखाओ ॥१३६॥ तदनन्तर जाम्बूनदने कहा कि हे प्रभो ! इस मूर्ख इठको छोड़ो जिस प्रकार कृत्रिम मयूरके विषयमें बुद्धनामा मनुष्य दुःखी हुआ था उस तरह तुम दुःखी मत होओ ॥१३७॥ मैं यह कथा कहता हूँ सो सुनो—

वेणातट नामक नगरमें सर्वर्षच नामका एक गृहस्थ रहता था । उसके गुणपूर्ण नामक स्त्रीसे उत्पन्न विनयदत्त नामका पुत्र था ॥१३८॥ विनयदत्तका एक विशालभूति नामक अत्यन्त प्यारा मित्र था सो वह पापी, विनयदत्तकी स्त्री गृहलक्ष्मीमें आसक्त हो गया ॥१३९॥ एक दिन उसी स्त्रीके कहनेसे विशालभूति विनयदत्तको भ्रमण करनेके छलसे वनमें ले गया और उसे वृक्षके ऊपर बँध आया ॥१४०॥ दुष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाला क्रूरकर्मा विशाल भूति

अत्रान्तरे तमुद्देशं दिग्मूढः प्रच्युतः पथः । आजगाम भ्रमन् खिन्नः क्षुद्रोऽपश्यच्च तं तरुम् ॥१४२॥
घनच्छायाकृतश्रद्धस्तस्याधश्च जगाम सः । कणितं वाश्र्मणोन्मन्दमुन्मुखश्च व्यलोकयत् ॥१४३॥
यावत्पश्यति तं बद्धं निविडं दडरज्जुभिः । अत्यन्ततुङ्गशाखाग्रे विचेष्टीकृतविग्रहम् ॥१४४॥
आरुह्य तेन मुक्तः सोऽनुकम्पासकचेतसा । गतो विनयदत्तस्तु स्वं तेनैव समाश्रयम् ॥१४५॥
स्वजनस्योत्सवे जातो महानन्दसमुत्कटः । विशालभूतिरालोक्य तं च दूरात्पलायितः ॥१४६॥
क्षुद्रस्याय शिखी जातु शिखिपत्रममयोऽन्यथा । रमणो वात्यया नीतः सम्प्राप्तो राजसूनुना ॥१४७॥
तस्मिन् महाशोकः क्षुद्रो मित्रमभाषत । मां चेदिच्छसि जीवन्तं यच्छ तन्मे मयूरकम् ॥१४८॥
बद्धस्तथाविधो दृष्टे मया त्वं परिमोचितः । अस्योपकारमुख्यस्य प्रतिदानं प्रयच्छ मे ॥१४९॥
ततो विनयदत्तस्तमुवाचान्यमयूरकम् । गृहाण मणिरत्नं वा कृतस्तं ते ददाम्यहम् ॥१५०॥
सोऽञ्जोचहीयतां महां स एवेति पुनः पुनः । मूढस्तथाविधो जातो भवानपि नरोत्तमः ॥१५१॥
राजपुत्रकरं प्राप्ता कृत्रिमासौ मयूरिका । कथं लभ्या वधो यस्मात्कलभते यत्र तत्परैः ॥१५२॥
त्रिवर्णभोजनेत्राणां कन्यानां कनकखिपाम् । पर्वारस्तनकुम्भानां विशालजघनश्रियाम् ॥१५३॥
वस्त्रकान्तिजितेन्दूनां पूर्णानां चारुभिर्युगैः । पतिर्भव महाभोग प्रसीद रघुसन्धन ॥१५४॥

घर आकर कृतकृत्यकी तरह आनन्दसे रहने लगा तथा पूछने पर विनयदत्तके विषयमे कुछ इधर-उधरका उत्तर देकर चुप हो जाता ॥१४१॥ इसी नीचमे क्षुद्र नामका एक मनुष्य दिशा भूलकर मार्गसे च्युत हो भ्रमण करता हुआ खेदखिन्न हो वहाँसे निकला और उसने उस वृक्षको देखा ॥१४२॥ वृक्षकी सघन छाया देखकर विश्राम करनेकी इच्छासे वह वृक्षके नीचे गया । वहाँ उसने विनयदत्तके कराहनेका मन्द-मन्द शब्द सुन ऊपरकी मुख उठाकर देखा ॥१४३॥ तो उसे अत्यन्त ऊँची शाखाके अग्रभाग पर भजवृत रसियोसे बंधा हुआ निश्चेष्ट शरीरका धारक विनयदत्त दिखा ॥१४४॥ जिसका चित्त दयामे आसक्त था ऐसे क्षुद्र नामक पुरुषने ऊपर चढ़कर उसे धन्यन मुक्त किया । तदनन्तर विनयदत्त नीचे उतर उस क्षुद्रकी साथ ले अपने घर चला गया ॥१४५॥ विनयदत्तके लानेसे उसके घरमे महान् आनन्दसे युक्त उत्सव हुआ और विशाल-भूति उसे देख दूर भाग गया ॥१४६॥ क्षुद्र, विनयदत्तके घर रहने लगा उसके पास मयूरपत्रकी बना हुआ एक मयूरका खिलौना था सो वह खिलौना एक दित हवामे डङ्ग गया और राजाके पुत्रकी मिल गया ॥१४७॥ उस कृत्रिम मयूरके निमित्त बहुत भारी शोक करता हुआ क्षुद्र, अपने मित्रसे बोला कि हे मित्र ! यदि मुझे जीवित चाहते हो तो मेरा वह कृत्रिम मयूर मुझे देओ ॥१४८॥ मैंने तुम्हे उस तरह वृक्ष पर बंधा हुआ छोड़ा था सो इस मुख्य उपकारका बदला मेरे लिए देओ ॥१४९॥ तब विनयदत्तने उससे कहा कि तुम उसके बदले दूसरा मयूर ले लो अथवा मणि या रत्न ले लो तुम्हारा वह मयूर कहाँसे दूँ ॥१५०॥ इसके उत्तरमे वह बार-बार यही कहता था कि नहीं, मेरे लिए तो वहीं मयूर देओ । सो क्षुद्र तो मूर्ख होकर उस प्रकार हठ करता था पर आप तो नरोत्तम होकर भी ऐसी हठ कर रहे हैं ॥१५१॥ आप ही कहो कि राजपुत्रके हाथमे पहुँची कृत्रिम मयूरी कैसे प्राप्त हो सकती थी । राजपुत्रसे तो केवल मोंगनेवालोको मृत्यु ही मिल सकती थी ॥१५२॥ इसलिए हे रघुनन्दन ! सीताकी इच्छा वोड़ो और जिनके नेत्र सफेद काले तथा लाल रङ्गके हैं, जिनकी कान्ति सुवर्णके समान है, जिनके स्तनकलश अत्यन्त स्थूल हैं, जिनके जघनकी शोभा विशाल है, जिन्होंने मुखकी क्रान्तिसे चन्द्रमाको जीत लिया है तथा जो अनेक सुन्दर गुणोंसे युक्त हैं ऐसी कन्याओंके पति होकर महाभोग भोगो, प्रसन्न होओ ॥१५३-१५४॥

अनुबन्धमिदं हास्यं त्वज दुःखविवर्धनम् । मयूरशष्पशोकातो माभूः क्षुद्रकवद् वृष ॥१५५॥
 सर्वदा सुलभाः पुंसः शिखिशष्पोपमाः स्त्रियः । त्रयोमि राघव त्वाहं प्राज्ञैः शोको न धार्यते ॥१५६॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽजोत्तरमो वाक्यवर्त्मनि । जाम्बूनदेदशं नेदमिदमेतादृशं शृणु ॥१५७॥
 आसीद्गृहपतिः ख्यातः पुरे कुसुमनामनि । प्रभवाख्यः प्रिया तस्य यमुनेति प्रकीर्तिता ॥१५८॥
 धनबन्धुपृहक्षेत्रपशुप्रभृतयः सुताः । पालान्तास्तस्य सेवन्ते शब्दानामन्तमागताः ॥१५९॥
 भन्वर्थसंश्रुकास्ते च कुटुम्बार्थं सदोद्यताः । कुर्वन्ति कर्मविश्रान्तिं चणमप्यनुपागताः ॥१६०॥
 आत्मश्रेयोभिधानश्च सुतोऽस्यैवाखिलांघरः । पुण्योदयादसौ भोगान् भुङ्क्ते देवकुमारवत् ॥१६१॥
 "भ्रातृभिः स पितृभ्यां च चिरं कटुभिरक्षरैः । निर्मलितोऽन्यदा यातो मानी बाह्यापरिभ्रमन् ॥१६२॥
 सुकुमारशरीरोऽसौ निर्वेदं परमं गतः । कर्म कर्तुमशक्तात्मा मरणं स्वस्य बाण्ड्वति ॥१६३॥
 पूर्वकर्मनुभावेन प्रेरितः कथिकश्च तम् । समागत्याभणीदेवं श्रूयतामपि मानव ॥१६४॥
 पृथुस्थानधिपस्याहं सुभासुरिति नन्दनः । गोत्रिकाकान्तदेशः सन् कुर्वन्मिस्रभाषितम् ॥१६५॥
 पर्यटन् वसुधातेसां देवात् कूर्मपुरं गतः । आचार्येणाभियोग्येन सहं प्राप्नोऽस्मि तत्र च ॥१६६॥
 अयोमयामिद् तेन दत्तं मे वलयं शुभम् । मार्गदुःखामिमृताय कारुण्याकारचेतसा ॥१६७॥
 एतच्च सर्वरोगाणां शमनं बुद्धिवर्धनम् । ग्रहोत्तरपिशाचादिवशीकरणासुप्तम् ॥१६८॥

इस हास्यजनक दुःखवर्धक हठको छोड़ो और हे विद्वन् ! क्षुद्रके समान मयूर रूपो
 वृणके शोकसे पीड़ित नहीं होओ ॥१५५॥ मयूररूपी वृणके समान स्त्रियों पुरुषको सदा सुलभ
 हैं इसलिए हे राघव ! मैं आपसे कह रहा हूँ । बुद्धिमान् मनुष्य कभी शोक धारण नहीं
 करते ॥१५६॥

तदनन्तर बचनोंके मार्गमे अतिशय निपुण लक्ष्मणने कहा जि हे जाम्बूनद । यह बात ऐसी
 नहीं है किन्तु ऐसी है सो सुनो ॥१५७॥ कुसुमपुर नामक नगरमें एक प्रभव नामका प्रसिद्ध गृहस्थ
 रहता था उसकी लीका नाम यमुना था ॥१५८॥ उन दोनोंके धनपाल, बन्धुपाल, गृहपाल,
 क्षेत्रपाल और पशुपाल नामके पाँच पुत्र थे ॥१५९॥ ये सभी पुत्र सार्थक नाम वाले थे और
 कुटुम्बके पालनके लिए सदा तत्पर रहते थे तथा ज्ञानभरके लिए भी अपने कार्यसे विश्राम नहीं
 लेते थे ॥१६०॥ इन सबसे छोटा आत्मश्रेय नाम कुमार था सो वह पुण्योदयसे देवकुमारके
 समान भोग भोगता था ॥१६१॥ कुछ करता नहीं था इसलिए भाई तथा माता पिता निरन्तर
 कटुक अक्षरों द्वारा उसका तिरस्कार करते रहते थे । एक दिन वह मानी घरसे निकलकर नगरके
 बाहर चला गया ॥१६२॥ अत्यन्त सुकुमार शरीरका धारक था इसलिए कुछ कर सकनेके लिए
 समर्थ नहीं था अतः परम निर्वेदको प्राप्त हो आत्मघात करने की इच्छा करने लगा ॥१६३॥
 उसी समय पूर्व कर्मोदयसे प्रेरित हुआ एक पथिक उसके पास आकर बोला के हे मनुष्य ! सुन
 ॥१६४॥ मैं पृथुस्थान नगरके राजाका पुत्र सुभासु हूँ निमित्तज्ञानोके आदेशका पालन करता
 हुआ मैं अब तक अनेक देशोंमें भ्रमण करता हूँ ॥१६५॥ इस पृथ्वीपर भ्रमण करता हुआ मैं
 दैवयोगसे कूर्मपुर नामा नगरमें पहुँचा वहाँ एक उत्तम आचार्यके साथ समागमको प्राप्त
 हुआ ॥१६६॥ मैं मार्गके दुःखसे दुःखी था इसलिए दयालु चित्तके धारक उन आचार्यने मुझे
 यह लोहेका कड़ा दिया था ॥१६७॥ यह कड़ा समस्त रोगोंकी शान्त करनेवाला तथा बुद्धिको

नैमित्तादिप्रकालस्य सम्प्राप्तश्च समावधिः । आत्मीयमधुना राज्यं कर्तुं यामि निजं पुरम् ॥१६६॥
 राज्यस्थस्य प्रमादाश्च जायन्ते यणतोऽस्मिताः । एतच्च छिद्रमासाद्य नियतं नाशकारणम् ॥१७०॥
 'गृहाणैतत्तत्तत्सुभ्यं यच्छामि बल्यं पुरम् । उपसर्गविनिर्मुक्तं यदि वाम्बुसि जीवितम् ॥१७१॥
 लब्धस्य च पुनर्दानं संसन्ति सुमहाफलम् । यशश्च प्राप्यते लोके पूजयन्ति च तं जनाः ॥१७२॥
 ततस्तमेवमित्युक्त्वा गृहीत्वा हृदमायसम् । आत्मश्रेयो गतो धाम सुभानुश्च निजं निजम् ॥१७३॥
 यावत्पत्नी नरेन्द्रस्य दृष्टा शसनमोजिना । निश्चेष्टा दग्धुमानीता चितोद्देशे स पश्यति ॥१७४॥
 कटकस्थ प्रसादेन तस्य लोहमयस्य ताम् । जीवयित्वा परं प्रापदसौ पूजां नरेन्द्रतः ॥१७५॥
 महान्तस्तस्य सज्जाता भोगाः परमसौख्यदाः । सर्ववन्धुसमेतस्य पुण्यकर्मानुभावतः ॥१७६॥
 उत्तरीयांशुकस्योद्धू निधाय बल्यं सरः । प्रविष्टो यावदादाय गोधेरोऽनश्यदुद्वतः ॥१७७॥
 महातरोरधस्तावत् प्रविवेश विलं महत् । शिलानिकरसम्बद्ध निहारं घोरनिस्वनम् ॥१७८॥
 तेन गोधेरशब्देन किल नित्यप्रवृत्तिना । बभूव स्थानमन्येतत्प्रलयाशंकिमानसम् ॥१७९॥
 आत्मश्रेयस्ततो वृषमुन्मूल्य स शिलाघनम् । गोधेरं नाशयित्वा तं निधानं प्राप्य सांगदम् ॥१८०॥
 आत्मश्रेयाःसमः पद्मः सीता बल्यमूर्तिवत् । प्रमादवच्च कौर्षाद्यं शब्दस्तच्छब्दवद्विभोः ॥१८१॥
 महानिधानवत्कला गोधेरो दशवक्त्रकः । जनास्त इव निर्भीता धूर्तं भवत साम्प्रतम् ॥१८२॥

वदनेवाला है और ग्रह उरग पिशाच आदिका उत्तम वशीकरण है ॥१६८॥ निमित्तज्ञानीने मुझे भ्रमण करनेके लिए जो समय बताया था अब उसकी अवधि आ गई है । इसलिए मैं अपना राज्य करनेके लिए अपने नगरको जाता हूँ ॥१६९॥ राज्य कार्यमें स्थिर रहनेवाले पुरुषके अगणित प्रमाद होते रहते हैं और किसी प्रमादको पाकर यह कड़ा निश्चित ही नाशका कारण बन सकता है ॥१७०॥ इसलिए यदि तू उपसर्ग रहित जीवन चाहता है तो इस उत्तम कड़ेको ले ले मैं तुझे देता हूँ ॥१७१॥ अपने लिए प्राप्त हुई वस्तुका दूसरेके लिए दे देना महाफलकारक है, उससे यश प्राप्त होता है और लोग उसकी पूजा करते हैं ॥१७२॥ तदनन्तर उससे 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर तथा लोहेका कड़ा लेकर आत्मश्रेय अपने घर चला गया और सुभानु भी अपने नगर चला गया ॥१७३॥ इतनेमें ही राजाकी पत्नीको सोंपने डँस लिया था जिससे वह निश्चेष्ट हो गई थी तथा जलानेके लिए श्मशानमें लाई गई थी । आत्मश्रेयने उसे देखा ॥१७४॥ और देखते ही उस लोह निर्मित कड़ेके प्रसादसे उसे जिलाकर उसने राजासे बहुत सन्मान प्राप्त किया ॥१७५॥ अब पुण्य कर्मके प्रभावसे उसके लिए समस्त वन्धुओंके साथ साथ परम सुख देनेवाले बड़े बड़े भोग प्राप्त हो गये ॥१७६॥ एक बार उसने उस कड़े को उत्तरीय बन्धके ऊपर रखकर जब तक सरोवरमें प्रवेश किया तब तक एक उद्दण्ड गृहेरा उसे लेकर चला गया ॥१७७॥ वह गृहेरा एक महावृक्षके नीचे बने हुए अपने बड़े विलमें घुस गया । उसका वह शिलाओंके समूह से आच्छादित, प्रवेश करनेके अयोग्य तथा भयंकर शब्दसे युक्त था ॥१७८॥ वह गृहेरा उस विलमें बैठकर निरन्तर शब्द करता रहता था जिससे उस विलको देख मनमें प्रलयकी आशाका होती थी ॥१७९॥ तदनन्तर आत्मश्रेयने शिलाओंसे सघन उस वृक्षके मूलको उखाड़कर तथा गृहेरको मारकर कड़ेके साथ साथ उसका सब खजाना ले लिया ॥१८०॥ सो राम तो आत्मश्रेयके समान हैं, सीता कड़ेके समान है, लामकी इच्छा प्रमादके समान हैं, रात्रुका शब्द गृहेरेके शब्दके समान है, लंका महानिधानके समान है, रावण गृहेरेके समान है, इसलिए हे विद्याधरो ! तुम सब इस समय निर्भय होओ ॥१८१-१८२॥

१. गृहाण तत्तत्सुभ्यं ज० । २. गृहीताहृद म० । ३. श्वसनमोजिना म० । नागेनेत्यर्थः ।
 ४. श्मसाने । ५. दूर्वतः म० ।

तच्छ्रुत्वा समुपाख्यानं जितजाम्बूनदोदितम् । वह्नो विस्मयापन्ना बभूवुः स्मितकारिणः ॥१८३॥
 जाम्बूनदादयः सर्वे ततः कृत्वा प्रधारणम् । इदमृचुः पुनः पञ्चं शृणु राजन् समाहितः ॥१८४॥
 अनन्तवीर्ययोगीन्द्रं सम्प्रणम्य पुरा मुदा । रावणेनात्मनो मृत्युं परिपृष्टः समादिशत् ॥१८५॥
 यो निर्वाणशिलां पुण्यामतुलामर्चितां सुरैः । समुद्यतां स ते मृत्योः कारणत्वं गमिष्यति ॥१८६॥
 सर्वज्ञोक्तं निशम्येतदचिन्तयदसाविदम् । मविता पुरुषः कोऽसौ तां यश्चालयितुं क्षमः ॥१८७॥
 नास्त्येव मरणे हेतुर्ममैत्युक्तं भवत्यदः । वचोयुक्तिर्विचित्रा हि विदुषामर्थदेशने ॥१८८॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽब्रवीच्चक्षुःश्रामो न चिरं हितम् । ईक्षामहे शिलां सैद्धी भव्यानां रोमहर्षणीम् ॥१८९॥
 रहस्यमेतत्सन्मनस्य सुनिश्चित्य समन्ततः । सर्वे ते गन्तुमुद्युक्ताः प्रमादपरिवर्जिताः ॥१९०॥
 जाम्बूनदो महाबुद्धिः किष्किन्धाधिपतिस्तथा । विराधितोऽर्कमाली च बलनीली विचक्षणौ ॥१९१॥
 सपुरस्कारमारोग्य विमाने रामलक्ष्मणौ । सम्प्रयाता दुतं ज्योतिन रात्रौ तमसि गह्वरे ॥१९२॥
 भवतेहः सर्मापे च यत्र सा सुमनोहरा । शिला परमगम्भीरा सुरासुरनमस्कृता ॥१९३॥
 उपसन्नश्च ते सर्वे मस्तकन्यस्तपाणयः । आशारक्षानवस्थाप्य प्रयातान् सुसमाहितान् ॥१९४॥
 सुगन्धिभिर्महोभोजैः पूर्णैर्गुणैर्मण्डलैः । अन्यैश्च कुसुमैश्चैरर्चिता तैस्सो शिला ॥१९५॥
 सितचन्द्रनदिगङ्गा कुङ्कुमांशुकधारिणी । धृतालङ्कारा भाति सा शचीव मनोरमा ॥१९६॥

इस प्रकार जाम्बूनदके कथनको खण्डित करनेवाला लक्ष्मणका उपाख्यान सुन बहुत लोग आश्चर्यको प्राप्त हो मन्दहास्य करने लगे ॥१८३॥ तत्पश्चात् जाम्बूनद आदि सभी विद्याधर परस्परमें विचारकर रामसे यह कहने लगे कि हे राजन् ! एकाम्र चित्त होकर सुनिये ॥१८४॥ पहले एक बार रावणने हर्षपूर्वक अनन्तवीर्यनामा योगीन्द्रको नमस्कार कर उनसे अपनी मृत्युका कारण पूछा था सो उन योगीन्द्रने कहा था कि जो देवोंके द्वारा पूजित, अनुपम, पुण्यमयी निर्वाण शिला—कोटिशिलाको उठावेगा वही तेरी मृत्युका कारण होगा ॥१८५-१८६॥ सर्वज्ञके यह वचन सुन रावणने विचार किया कि ऐसा कौन पुरुष होगा जो उसे चलानेके लिए समर्थ होगा ॥१८७॥ भगवान्के कहनेका तात्पर्य यह है कि मेरे मरणका कोई भी कारण नहीं है सो ठीक ही है क्योंकि अर्थके प्रकट करनेमें विद्वानोंकी वचन योजना विचित्र होती है ॥१८८॥

तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हमलोग अभी चलते हैं विलम्ब करना हितकारी नहीं है, अन्यजीवोंको आनन्द देने वाली सिद्धशिलाके अभी दर्शन करेंगे ॥१८९॥ तत्पश्चात् सबलोग परस्परमें मन्त्रणा कर तथा सब ओरसे निश्चय कर प्रमाद छोड़ लक्ष्मणके साथ जानेके लिए उद्यत हुए ॥१९०॥ महाबुद्धिमान् जाम्बूनद, किष्किन्धाका स्वामी—सुमीव, विराधित, अर्कमाली, अतिशय विद्वान् नल और नील, सम्मानके साथ राम और लक्ष्मणको विमान पर बैठा कर रात्रि के सघन अन्धकारमें शीघ्र ही आकाशमार्गसे चले ॥१९१-१९२॥ और जहाँ वह अत्यन्त मनोहर परम गम्भीर एवं सुर असुरोंके द्वारा नमस्कृत सिद्धशिला पासमें थी वहाँ उतरे ॥१९३॥ तदनन्तर सावधान चित्त हो कर आगे गये हुए दिशारक्षकों को नियुक्त कर वे सब हाथ जोड़ मस्तकसे लगा उस सिद्धशिलाके समीप गये ॥१९४॥ धवहाँ जाकर उन्होंने अत्यन्त सुगन्धित तथा पूर्ण चन्द्रमाके विम्बके समान सुशोभित बड़े-बड़े कमलों तथा नाना प्रकारके अन्य पुष्पोंसे उस शिला की पूजा की ॥१९५॥ जिसके ऊपर सफेद चन्दनका लेप लगाया गया था, जो केशर रूप वस्त्रको धारण कर रही थी, तथा जो नाना अलंकारोंसे अलंकृत थी ऐसी वह शिला उस समय इन्द्राणीके

तस्यां सिद्धात्रमस्कृत्य शिरस्थकरकुड्मलाः । भक्त्या प्रदक्षिणं चक्रुः क्रमेण विधिपण्डिताः ॥१६७॥
 ततः परिकरं बद्ध्वा सौमित्रिविंशयं बहन् । नमस्कारपरो भक्तः स्तुतिं कर्तुं समुद्यतः ॥१६८॥
 जयशब्दं समुद्योष्य प्रहृष्टा वानरध्वजाः । स्तोत्रं परिपठन्तीदमुत्तमं सिद्धमङ्गलम् ॥१६९॥
 स्थिताल्लोक्यशिखरे स्वर्यं परमभास्वरे । स्वरूपभूतया स्थित्या पुनर्जन्मविवर्जितान् ॥२००॥
 भवार्णवसमुत्तीर्णाग्निःश्रेयसं समुद्रवान् । आधाराभ्युक्तिसौख्यस्य केवलज्ञानदर्शनान् ॥२०१॥
 अनन्तवीर्यसम्पन्नान् स्वभावसमवस्थितान् । सुसमीचीनतायुक्ताग्निःश्रेयसीकर्मणः ॥२०२॥
 भवगाहनधर्मोक्तानमूर्तान् सूक्ष्मतायुजः । गुरुत्वलघुताभुक्तानसंख्यातप्रदेशिनः ॥२०३॥
 अग्रमेयगुणाधारान् क्रमादिपरिवर्जितान् । साधारणान् स्वरूपेण स्वार्थकाष्टामुपागतान् ॥२०४॥
 सर्वथा शुद्धभागांश्च ज्ञातशेषास्त्रिजनात् । इयधर्ममहाकवान् विशुद्धध्यानतेजसा ॥२०५॥
 तेजःपटपरितेन भक्तितो वज्रपाणिना । संस्तुतान् भवभीतेन चक्रवर्त्यादिभिस्तथा ॥२०६॥
 संसारधर्मनिर्मुक्तान् सिद्धधर्मसमाश्रितान् । सर्वान् बन्दाग्ने सिद्धान् सर्वसिद्धिसमावहान् ॥२०७॥
 अस्यां च ये गताः सिद्धिं शिलायां शीलधारिणः । उपगीताः पुराणेषु सर्वकर्मविवर्जिताः ॥२०८॥
 जिनेन्द्रसमतां याताः कृतकृत्या महौजसाः । मङ्गलस्मरणैतान् भक्त्या बन्दाग्ने मुहुः ॥२०९॥

समान मनोहर जान पड़ती थी ॥१६६॥ उस शिलासे जो सिद्ध हुए थे उन्हें नमस्कार कर जिन्होंने हाथ जोड़ मस्तकसे लगाये थे तथा जो सब प्रकारकी विधि विधानसे निपुण थे ऐसे उन सब लोगोंने भक्ति पूर्वक क्रमसे उस शिलाकी प्रदक्षिणा दी ॥१६७॥

तदनन्तर विनयको धारण करने वाले, नमस्कार करनेमें तत्पर एवं भक्तसे भरे लक्ष्मण कमर कस कर स्तुति करनेके लिए उद्यत हुए ॥१६८॥ हर्षसे भरे वानरध्वज राजा, जय-जय शब्दका उच्चारण कर सिद्ध भगवान्के निम्नाङ्कित स्तोत्रको पढ़ने लगे ॥१६९॥ स्तोत्र पढ़ते हुए उन्होंने कहा कि हम उन सिद्ध परमेश्वरोंको नमस्कार करते हैं कि जो अतिशय देदीप्यमान तीन लोकके शिखर पर स्वर्य विराजमान हैं, आत्माको स्वरूपभूत स्थितिसे युक्त है तथा पुनर्जन्मसे रहित हैं ॥२००॥ जो संसार सागरसे पार हो चुके हैं, परमकल्याणसे युक्त हैं, मोक्ष सुखके आधार हैं तथा केवलज्ञान और केवलदर्शनसे सहित हैं ॥२०१॥ जो अनन्त बलसे युक्त हैं, आत्मस्वभावमें स्थित हैं, श्रेष्ठतासे युक्त हैं, और जिनके समस्त कर्म क्षीण हो चुके हैं ॥२०२॥ जो अवगाहन गुणसे युक्त हैं, अमूर्तिक हैं, सूक्ष्मत्व गुणसे सहित हैं, गुरुता और लघुतासे रहित तथा असंख्यातप्रदेशी हैं ॥२०३॥ जो अपरिभित—अनन्तगुणोंके आधार हैं, क्रम आदिसे रहित हैं, आत्मस्वरूपकी अपेक्षा सब समान हैं और जो आत्म प्रयोजनकी अन्तिम सीमाको प्राप्त हैं—कृतकृत्य हैं ॥२०४॥ जिनके भाव सर्वथा शुद्ध हैं जिन्होंने जानने योग्य समस्त पदार्थोंको जान लिया है, जो निरञ्जन—कर्म कालिमासे रहित हैं और निर्मल ध्यान शुक्लध्यान रूपी अग्निसे द्वारा जिन्होंने कर्मरूपी महाअटवीको भस्म कर दिया है ॥२०५॥ संसार से भयभीत तथा तेज रूपी पटसे परिवृत इन्द्र तथा चक्रवर्ती आदि महापुरुष जिनकी स्तुति करते हैं ॥२०६॥ जो संसार रूप धर्मसे रहित हैं, सिद्ध रूप धर्मको प्राप्त हैं तथा जो सब प्रकारकी सिद्धियोंको धारण करने वाले हैं ऐसे समस्त सिद्ध परमेश्वरोंको हम नमस्कार करते हैं ॥२०७॥ शीलको धारण करने वाले जो भी पुरुष इस शिलासे सिद्धिको प्राप्त हुए हैं पुराणोंमें जिनका कथन है, जो सर्व कर्मोंसे रहित हैं, जिनेन्द्र देवकी समानताको प्राप्त हुए हैं, कृतकृत्य हैं तथा जो महा प्रतापके धारक हैं उन सबको हम भक्ति पूर्वक मङ्गल स्मरण करते हुए बार-बार बन्दाग्ने करते हैं

एवं च सुचिरं^१ स्तुत्वा पुनरेवं वभाषिरे । लक्ष्मीधरं समुद्दिश्य स्थापितैकाग्रमानसाः ॥२१०॥
 शिलायांमिह ये सिद्धा ये चान्ये हतकिल्बिषाः । ते विघ्नसुदनाः सर्वे भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२११॥
 अहन्तो मङ्गलं सन्तु तव सिद्धाश्च मङ्गलम् । मङ्गलं साधवः सर्वे मङ्गलं जिनशासनम् ॥२१२॥
 इति मङ्गलनिस्वानैर्दिहायस्तलचारिणाम् । शिलामचालयत् चित्रं लक्ष्मणो विमलद्युतिः ॥२१३॥
 सा लक्ष्मणकुमारेण नानालङ्कारभूषणा । केयूरकान्तबाहुभ्यां घृता कुलवधूचर ॥२१४॥
 अथान्तरिक्षे देवानां महाशब्दो महानभूत् । सुग्रीवाद्याश्च राजेन्द्रा विस्मयं परमं ययुः ॥२१५॥
 ततः सिद्धान् प्रमोदाढ्याः प्रणम्य भयवर्जितान् । सम्प्रेक्ष्य शिखरस्थं च जिनेन्द्रं मुनिसुव्रतम् ॥२१६॥
 निपया ऋषभाद्रीनामभ्यर्च्य च यथाविधि । सकल भरतक्षेत्रं वञ्चयुस्ते प्रदक्षिणम् ॥२१७॥
 सायाह्ने सौम्यवपुषो दिव्यैर्यानैर्मनोजवैः । कृताभिवन्दना शब्दैर्जयनन्दादिभिर्भृशम् ॥२१८॥
 परिवार्य महावीर्यं रामं लक्ष्मणसङ्गतम् । किष्किन्धनगरं प्रापुर्विविशुश्च महर्द्धयः ॥२१९॥
 शयिताश्च यथास्थानं विस्मितेनान्तरात्मना । एकीभूय पुनः प्रीता हृद्यन्योन्यं वभाषिरे ॥२२०॥
 वीचयध्वं वासरैः स्वल्पैः पृथिव्यां राज्यमेतयोः । निःशेषैः कण्टकैर्मुक्तं शक्तिं धारयतोः पराम् ॥२२१॥
 सा निर्वाणशिला येन चालयित्वा समुद्धृता । उस्ताद्वल्लय चित्रं रावणं नात्र संशयः ॥२२२॥
 तथापरे वचः प्राहुः कैलासो येन भूधरः । तदा समुद्धृतः सार्यं शिलोधारस्य किं समः ॥२२३॥
 आहुरन्ये समुद्धारः कैलासस्य कृतो यदि । विद्यावलयतस्तत्र विस्मयः कस्य जायते ॥२२४॥

॥२०८-२०९॥ इस प्रकार चिर काल तक स्तुति कर एकाग्रचित्तके धारण उन विद्याधरोंने लक्ष्मण को लक्ष्यकर कहा कि इस शिलासे जो सिद्ध हुए हैं तथा अन्य जिन पुरुषोंने पापकर्म नष्ट किये हैं वे सब विघ्न विनाशक तुम्हारे लिए मङ्गलस्वरूप हों ॥२१०-२११॥ अरहन्त भगवान् तुम्हारे लिए मङ्गलस्वरूप हों, सिद्ध परमेष्ठी मङ्गलस्वरूप हों । सर्वसाधु परमेष्ठी मङ्गल स्वरूप हों और जिन शासन मङ्गलरूप हो ॥२१२॥ इसप्रकार विद्याधरोंकी मङ्गलध्वनिके साथ, महातेजको धारण करने वाले लक्ष्मणने शीघ्र ही उस शिलाको हिला दिया ॥२१३॥ तदनन्तर लक्ष्मण कुमारने कुलवधूके समान नाना अलंकारोंसे सुशोभित उस शिलाको बाजूबन्दोंसे सुशोभित अपनी भुजाओंसे ऊपर उठा लिया ॥२१४॥ उसी समय आकाशमें देवोंका महाशब्द हुआ और सुग्रीव आदि राजा परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥२१५॥

तदनन्तर हर्षसे भरे सब लोग भयसे रहित सिद्ध परमेष्ठियों, सम्प्रेक्ष्य शिखर पर विराजमान श्री मुनिसुव्रत नाथ जिनेन्द्रकी तथा ऋषभ आदि तीर्थंकरोंके निर्वाणस्थान कैलाश आदिकी विधिपूर्वक पूजा कर समस्त भरत क्षेत्रमें घूमें ॥२१६-२१७॥ तदनन्तर वन्दना करनेके बाद सौम्यशरीरके धारक तथा महा वैभवसे सम्पन्न सब लोगोंने सार्यकालके समय मनके समान वेग-शाली दिव्य विमानों द्वारा 'जय' 'नन्द' आदि शब्दोंके साथ महापराक्रमी राम लक्ष्मणको घेर कर किष्किन्धनगरमें प्रवेश किया ॥२१८-२१९॥ सब ने यथा स्थान शयन किया । तदनन्तर आश्चर्य चकित चित्तसे एकत्रित हो सब बड़ी प्रसन्नतासे परस्पर इस प्रकार कहने लगे ॥२२०॥ कि तुम लोग परम शक्तिको धारण करने वाले इन दोनोंका कुछ ही दिनोंमें पृथिवी पर समस्त कण्टकों अर्थात् शत्रुओंसे रहित राज्य देखोगे ॥२२१॥ जिसने उस निर्वाण शिलाको चला कर उठा लिया ऐसा यह लक्ष्मण शीघ्र ही रावणको मारेगा इसमें संशय नहीं है ॥२२२॥ कुछ लोग इस प्रकार कहते लगे कि उस समय जिसने कैलाश उठाया था ऐसा रावण क्या इस शिला उठाने वालेके समान है ! ॥२२३॥ कुछ अन्यलोग कहने लगे कि यदि रावणने कैलाश पर्वत उठाया था

एके च वचनं प्रोबुः किं विवादैरिमैर्युथा । जगद्धिताय सन्ध्यर्थं किं नोपायो निरूप्यते ॥२२५॥
 तत्समादानीयतां सीतां समन्वय्य दशाननम् । राघवायापैयिष्यामि विग्रहे किं प्रयोजनम् ॥२२६॥
 सङ्ग्रामे तारको नष्टो मेरुकश्च महाबलः । कृतवीर्यसुताधारव महासैन्यसमन्विताः ॥२२७॥
 एते खण्डवबाधिशो महाभागा महौजसः । अन्ये हि बहवो नष्टा रणे सामन्ततः परम् ॥२२८॥
 अन्योन्यमभिमन्यैवं विद्याविधिविशारदाः । राघवं विनयोपेताः सम्भूय यथुरादरात् ॥२२९॥
 सुग्रीवाद्याः समासीना नयनाचन्दकारिणम् । विरेजुः परितो राममरन्दमिवामराः ॥२३०॥
 पद्मानभस्ततोऽवोचत् किमद्याप्यबलमन्यते । मया विनान्तरे द्वीपे दुःखं तिष्ठति मैथिली ॥२३१॥
 दीर्घसूत्रत्वमुत्सृज्य क्षिप्रमद्यैव सर्वथा । त्रिकूटगमने सज्जिः क्रियते न किमुद्यमः ॥२३२॥
 तमूचुर्मन्त्रिणो बुद्धा नयविस्तरकोविदाः । सशयेनात्र किं देव कल्पतामेकनिरचयः ॥२३३॥
 किं त्वमिच्छसि वैदेहीं विरोधमय रक्षसाम् । विजयः प्राप्यते दुःखं नायं सदृशविग्रहः ॥२३४॥
 भरतस्य त्रिखण्डस्य प्रतिपक्षोऽस्मिन् प्रभुः । सागरद्वीपविख्यात एक एव दशाननः ॥२३५॥
 शक्तितो धातकीद्वीपो द्योतितामपि भीतिदः । जाम्बूद्वीपे पर प्राप्सो महिमानं खगाधिपः ॥२३६॥
 शर्यभूतोऽस्य विशस्य कृतानेकाङ्कतक्रियः । ईदृशो राघवो राम कथं ससाध्यते त्वया ॥२३७॥
 तत्समादुद्धिं रणे त्यक्त्वा यद् वयं संवदामहे । प्रसीद क्रियतां देव तदेवोद्यच्छ शान्तये ॥२३८॥
 मा भूत्सस्मिन् कृतक्रोधे जगदेतन्महाभयम् । विष्वस्तप्राणिसङ्घातं नष्टनिःशेषसक्रियम् ॥२३९॥

तो इससे क्या हुआ क्योंकि विद्यावलके रहते हुए उसके इस कार्यमें किसे आश्चर्य हो सकता है ? ॥२२४॥ कुछ लोग यह भी कहने लगे कि इन व्यर्थके विवादोंसे क्या लाभ है ? जगत्का कल्याण करनेके लिए सन्धिका उपाय क्यों नहीं बताया जाता है ? ॥२२५॥ इसलिये रावणकी पूजा कर सीताको लाया जावे उसे हम रामके लिये सौंप देंगे फिर युद्धका क्या प्रयोजन है ? ॥२२६॥ संग्राममें तारक, महाबलवान् मेरुक और वड़ी-बड़ी सेनाओंसे सहित कृतवीर्यके पुत्र आदि मारे गये हैं ॥२२७॥ ये सभी तीन खण्डके स्वामी महाभागवान् तथा महाप्रतापी थे । इनके सिवाय और भी अनेक राजा रणमें सब ओर नष्ट हुए हैं ॥२२८॥

इस प्रकार विद्याओंके प्रयोग करनेमें निपुण सब लोग परस्पर सलाहकर विनय सहित आकर पूर्वक मिलकर रामके पास आये ॥२२९॥ नेत्रोंको आनन्द उत्पन्न करने वाले रामके चारों ओर बैठे हुए सुग्रीव आदि राजा उस समय उस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि अमरेन्द्रके चारों ओर देव सुशोभित होते हैं ॥२३०॥ तदनन्तर रामने कहा कि अब और किसकी अपेक्षा की जा रही है ? दूसरे द्वीपमें सीता मेरे बिना दुःखी होती होगी ॥२३१॥ शीघ्र ही दीर्घसूत्रताको छोड़कर आज ही आप लोग त्रिकूटाचल पर चलनेके लिए उद्यम क्यों नहीं करते है ? ॥२३२॥ तब नीतिके विस्तारमें निपुण बुद्ध मन्त्रियोंने कहा कि हे देव ! इस विषयमें संशयकी क्या बात है ? निश्चय बताइए कि ॥२३३॥ आप सीताकी चाहते हैं या राक्षसोंके साथ युद्ध ? यदि युद्ध चाहते है तो विजय कठिनाईसे प्राप्त होगी क्योंकि राक्षसोंका और आपका यह युद्ध सदृश युद्ध—बराबरी वालोका युद्ध नहीं है ॥२३४॥ क्योंकि रावण द्वीप और सागरोंमें प्रसिद्ध, तीन खण्ड भरतका शत्रुरहित एक—अद्वितीय ही प्रभु है ॥२३५॥ धातकीखण्ड नामा दूसरा द्वीप भी उससे शक्ति रहता है, वह ज्योतिषी देवोंको भी भय उत्पन्न करने वाला है तथा जम्बूद्वीपमें परम महिमाको प्राप्त अद्वितीय विद्याधराका स्वामी है ॥२३६॥ जो समस्त संसारके लिए शल्य स्वरूप है, तथा जिसने अनेक अद्भुत कार्य किये है ऐसा राक्षस हे राम ! तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥२३७॥ इसलिये हे देव ! रणकी भावना छोड़ हम लोग जो कह रहे हैं वही कीजिए, प्रसन्न हूँजिये और शान्तिके लिए उद्योग कीजिए ॥२३८॥ उसके कुपित होनेपर यह

१. दीर्घसूत्र त्व म० । २. शिल्पभूतोऽस्य । ३. सक्रियम् म० ।

योऽसौ विभीषणः ख्यातः स्वयं ब्रह्मा स कीर्तितः । क्रूरकर्मनिवृत्तात्मा भावितोऽणुव्रतैर्दण्डम् ॥२४०॥
 अलंध्यवचनं तस्य क्रुस्ते खेचराधिपः । तयोर्हि परमा भीतिरन्तरायविवर्जिता ॥२४१॥
 बोधितस्तेन दाक्षिण्याद् यशः पालनतोऽपि वा । लज्जया वा विदेहस्य तनयां प्रेषयिष्यति ॥२४२॥
 विज्ञापनवचोयुक्तिकुशलः नयपेशलः । अन्विष्यतामरं कश्चित्प्रसादो रावणस्य यः ॥२४३॥
 ततो महोदधिर्नाम्ना स्थातो विद्याधराधिपः । अन्नर्वादेव वृत्तान्तो भवतां नागतः श्रुतिम् ॥२४४॥
 यन्त्रैर्बहुजनचोदैर्लङ्कागम्या निरन्तरम् । कृतातिशयदुःप्रेषा सुभीमात्यन्तगह्वरा ॥२४५॥
 एषां मध्ये न पश्यामि महाविद्यं न भश्चरम् । लङ्कां गत्वा द्रुतं भूयो वः समर्थो निवर्तितुम् ॥२४६॥
 पवनजयराजस्य श्रीशैलः प्रथितः सुतः । विद्यासत्त्वप्रतापाढ्यो बलोलुङ्गः स याच्यताम् ॥२४७॥
 समं दशाननेनास्य विद्यतोऽजयमुत्तमम् । युक्तः करोत्यसौ साम्यं निर्विघ्नं पुरुषोत्तमः ॥२४८॥
 प्रतिपन्नैस्ततः सर्वैरेवमस्त्विति सादरैः । मास्तेरन्तिकं दूतः श्रीभूतिः प्रहितो द्रुतम् ॥२४९॥
 शक्तिं दधतापि परां प्राप्यापि परं प्रबोध्यमोरम्येः । अवितन्मं नयस्ति नारद्विरिव काले स धातुदयम् ॥२५०॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे कोटिशिलाक्षेपणाभिधानं नाम अष्टचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४८॥

संसार महाभयसे युक्त न हो, प्राणियोंके समूहका विध्वंस न हो तथा समस्त उत्तम क्रियाएँ नष्ट न हों ॥२३६॥ रावणका भाई विभीषण अत्यन्त प्रसिद्ध है, मानो स्वयं ब्रह्मा ही है। वह दुष्टता पूर्ण कार्योंसे सदा दूर रहता है और अणुव्रतोंका दृढ़तासे पालन करता है ॥२४०॥ उसके वचन अलंध्य है वह जो कहता है रावण वही करता है। यथार्थमें उन दोनोंमें निर्वाध परम प्रेम है ॥२४१॥ विभीषण उसे समझावेगा इसलिए, अथवा उदारतासे, अथवा कीर्ति रक्षा के अभिप्रायसे अथवा लज्जाके कारण रावण सीताको भेज देगा ॥२४२॥ इसलिए शीघ्र ही किसी ऐसे पुरुषकी खोज की जाय जो निवेदन करनेवाले वचनोंकी योजनामें कुशल हो, नीति-निपुण हो और रावणको प्रसन्न करनेवाला हो ॥२४३॥

तदनन्तर महोदधि नामसे प्रसिद्ध विद्याधरोंके राजाने कहा कि क्या यह वृत्तान्त आप लोगोंके श्रवणमें नहीं आया ॥२४४॥ कि लंका अनेक जनोंका विघात करनेवाले यन्त्रोंसे निरन्तर अगम्य कर दी गई है, उसका देखना भी कठिन है तथा अत्यन्त भयङ्कर गम्भीर गतोंसे युक्त हो गई है ॥२४५॥ इन सबके बीचमें मैं महाविद्याओंके धारक एक भी ऐसे विद्याधरको नहीं देखता हूँ कि जो लंका जाकर शीघ्र ही पुनः लौटनेके लिए समर्थ हो ॥२४६॥ हाँ, पवनजय राजाका पुत्र श्रीशैल विद्या, सत्त्व और प्रतापसे सहित है तथा अतिशय बलवान् है सो उससे याचना की जाय ॥२४७॥ इसका दशाननके साथ उत्तम सम्बन्ध भी है इसलिए यदि इसे भेजा जाय तो यह श्रेष्ठ पुरुष निर्विघ्न रूपसे शान्ति स्थापित कर सकता है ॥२४८॥ तदनन्तर सब विद्याधरोंने 'एवमस्तु' कहकर महोदधि विद्याधरका प्रस्ताव स्वीकृत कर श्रीशैल (हनुमान्) के पास शीघ्र ही श्रीभूति नामका दूत भेजा ॥२४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि परम शक्तिके धारक राजाको भी प्रारम्भ करने योग्य कार्यके विषयमें परम विवेकको प्राप्तकर नीतिज्ञ होना चाहिए क्योंकि ऐसा राजा ही सूर्यके समान समय आनेपर अभ्युदयको प्राप्त होता है ॥२५०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें कोटिशिला उठानेका वर्णन करनेवाला अष्टतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४८॥

एकोनपञ्चाशत्तमं पर्व

ततो नमः समुत्पत्य जगामासौ मरुच्चरः । अत्युत्तुङ्गैर्गृहेः पूर्णं श्रीपुरं श्रीनिकेतनम् ॥१॥
 तत्र हेमद्रव्यस्तलेन्यतेजःसमुज्ज्वलम् । कुन्दासवलभीशोभि रत्ननिर्मितशेखरम् ॥२॥
 सुक्तादामसमाकीर्णं वातायनविराजितम् । उद्यानाकीर्णपर्यन्तं प्राविशन्मास्तेर्गृहम् ॥३॥
 अपूर्वलोकासङ्घातं पश्यत्तत्तस्य साङ्गुतम् । मनोगतागस्तं भूयो गतं कृच्छ्रेण धीरताम् ॥४॥
 प्रविष्टे भारतेर्गेहं तस्मिन् दूते ससम्भ्रमे । अनङ्गकुसुमोत्पातं जगामेन्दुनखात्मजा ॥५॥
 सस्पन्दं दक्षिणं चक्षुरवधार्य व्यचिन्तयत् । प्राप्तव्यं विधिवोगेन कर्म कर्तुं न शक्यते ॥६॥
 क्षुद्रशक्तिसमास्तका मानुपास्तावदासताम् । न सुरैरपि कर्माणि शक्यन्ते कर्तुमन्यथा ॥७॥
 वेदितागमनस्तावद् दूतो नमदद्या सन्नाम् । प्रस्वेदकणसम्पूर्णः प्रतीहार्यां प्रवेशितः ॥८॥
 जगादप्यथावृत्त निःशेषं प्रणताननः । दण्डकाद्रिं समायाता, पञ्चनाभादयः पुरा ॥९॥
 शम्बुकस्य वधं युद्धं विषमं खरदूषणम् । पञ्चतागमनं तस्य मानवैश्चतस्रैः सह ॥१०॥
 ततो निगम्य तां वार्तां शोकविह्वलविग्रहा । अनङ्गकुसुमा मूर्च्छासुपेता मुकुलेक्षणा ॥११॥
 चान्दनेन द्रव्यैर्तां सिन्धुसामां क्रियोज्ज्वलाम् । विलोक्यान्तःपुराभ्योधिः परमं क्षोभमागतः ॥१२॥
 बीजातन्त्रीसहस्राणां प्राप्तानां कोणताडनम् । ऋद्वर्तीनां समं रम्यो ध्वनिः स्त्रीणां समुद्वगतः ॥१३॥

तदनन्तर—वायुके समान वेगका धारक श्रीभूति दूत, आकाशमे उड़कर अत्यन्त ऊँचे-ऊँचे महलोसे परिपूर्ण, लक्ष्मीके घर स्वरूप श्रीपुर नगरमे पहुँचा ॥१॥ वहाँ जाकर उसने श्रीशैलके उस भवनमे प्रवेश किया जो स्वर्णमय पानीके लेपसे उत्पन्न तेजसे अत्यन्त देदीप्यमान था, कुन्दके समान उज्ज्वल अट्टालिकाओंसे सुशोभित था, रत्नमयी शिखरोसे जगमगा रहा था, मोतियोंकी मालाओंसे व्याप्त था, झरोखोंसे सुशोभित था, और जिसका समीपवर्ती प्रदेश वाग-वगीचौसे व्याप्त था ॥२-३॥ वहाँ लोगोकी अपूर्व भीड़ तथा आश्चर्यकारी अत्यधिक यातायात देख श्रीभूतिका मन बड़ी कठिनाईसे धीरताको प्राप्त हुआ ॥४॥ जब आश्चर्यमे पड़े हुए श्रीभूति दूतने हनुमान्के घरमें प्रवेश किया तब चन्द्रनखाकी पुत्री अनङ्गकुसुमा उत्पातको प्राप्त हुई ॥५॥ दक्षिण नेत्रको फड़कते देख उसने विचार किया कि दैव योगसे जो कार्य जैसा होना होता है उसे अन्यथा नहीं किया जा सकता ॥६॥ हीन शक्तिके धारक समुच्च तो दूर रहें देवोंके द्वारा भी कर्म अन्यथा नहीं किये जा सकते ॥७॥ तदनन्तर अनङ्गकुसुमाकी प्रहासिका सखीने जिसके आगमन की सूचना दी थी, और स्वेदके कणोंसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था ऐसे उस श्रीभूति दूतको प्रतीहारिने सभाके भीतर प्रविष्ट कराया ॥८॥

अथानन्तर नम्र मुख होकर उसने सब वृत्तान्त ज्योंका त्यों इस प्रकार सुनाया कि राम आदि दण्डक वनमे आये, शम्बुकका वध हुआ, खरदूषणके साथ विषम युद्ध हुआ, और उत्तम मनुष्योंके साथ खरदूषण मारा गया ॥९-१०॥ तदनन्तर यह वार्ता सुन अनङ्गकुसुमा शोकसे विह्वल शरीर हो मूर्च्छित हो गई तथा उसके नेत्र निमीलित हो गये ॥११॥ उसका हलन-चलन बन्द हो गया तथा चन्द्रनके द्रवसे उसे सींचा जाने लगा, यह देख समस्त अन्तःपुर रूपी सागर परम क्षोभको प्राप्त हुआ ॥१२॥ अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियों एक साथ रुदन करने लगीं तो उनके

अनङ्गकुसुमा कृच्छ्रालम्बिता प्राणसङ्गमम् । अश्रुसिकस्तनी तारं विललापातिदुःखिता ॥१४॥
 हा तात क प्रयातोऽसि प्रयच्छ वचनं मम । हा आतः किमिदं जातं दीयतां दर्शनं सकृत् ॥१५॥
 वनेऽतिभीषणे कष्टं रणाभिमुखतां गतः । भृगोचरैः कथं तात मरणत्वमुपाहृतः ॥१६॥
 शोकाकुलजनाकीर्णं जाते श्रीशैलेश्वरमनि । नीतो नर्मदया दूतः प्रदेशं वचनोचितम् ॥१७॥
 पितृग्राह्य दुःखेन तसा चन्द्रनखात्मजा । कुच्छ्रेण शमनं नीता सङ्गिः प्रशमकोविदैः ॥१८॥
 जिनमार्गप्रवीणास्तौ बुद्ध्वा संसारसंस्थितिम् । लोकाचारानुकूलत्वाच्चक्रे प्रेतक्रियाविधिम् ॥१९॥
 अन्येषु दूतमाहूय पवनजयनन्दनः । अपृच्छच्छोकसंस्पृष्टः मौल्लोकसमावृतः ॥२०॥
 निःशेषं दूतं यद्वृत्तं तन्निवेद्य सामप्रतम् । हृत्युक्त्वा कारणं मृत्योः खरदूषणमस्मरत् ॥२१॥
 ततोऽस्य क्रोधसंस्रद्धसर्वाङ्गस्य महाद्युतेः । भ्रूस्तरङ्गवती रेजे तद्विद्वेखे चञ्चला ॥२२॥
 ततस्त्रासपरोताङ्गो सुहृदूतः प्रतापवान् । जगाद मधुरं प्राज्ञः कोपविध्वंसकारणम् ॥२३॥
 ज्ञातमेव हि देवस्य किष्किन्धाधिपतेः परम् । दयितादुःखमुत्पन्नं तत्समाकारहेतुकम् ॥२४॥
 अतस्तेन स दुःखेन पद्मं शरणमागमत् । प्रतोष्य सोऽतिविध्वंसं किष्किन्धनगरं गतः ॥२५॥
 सुग्रीवाकृतचौरैर्ण समं तत्र महानभूत् । चिरं भ्रान्तमहायोधः सप्रायः श्वसुरस्य ते ॥२६॥
 उत्थाय पद्मनाभेन ततो भूयो महौजसा । तस्याहृतस्य नष्टासौ वेताली स्तेयकारणम् ॥२७॥
 ततः साहसगत्याख्यः स्वस्वभावं समाश्रितः । विज्ञातो रामनिर्मुक्तैर्दुःखं नातः शिलीमुखैः ॥२८॥

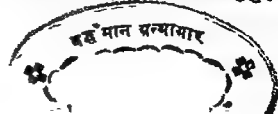
रवनका शब्द ऐसा उठा मानो बीणाओके हजारो तार कोणके ताड़नको प्राप्त हो एक साथ शब्द करने लगे हों ॥११॥ तदनन्तर अनङ्गकुसुमा वड़े कष्टसे प्राणांके समागमको प्राप्त हुई अर्थात् सचेत हुई । सचेत होने पर अश्रुओंसे स्तनोंको सिकत करती तथा अतिशय दुःख प्रकट करती हुई वह जोर-जोरसे विलाप करने लगी ॥१४॥ वह कहने लगी कि हाय तात ! तुम कहाँ गये मुझे वचन देओ—मुझसे बार्तालाप करो । हाय भाई ! यह क्या हुआ ? एक बार तो दर्शन देओ ॥१५॥ हे तात ! अत्यन्त भयंकर वनमें रणके सन्मुख हुए तुम भूमिगोचरियोंके द्वारा मरणको कैसे प्राप्त हो गये ? ॥१६॥ इस प्रकार जब श्रीशैलका भवन शोकाकुल मनुष्योंसे भर गया तब अनङ्गकुसुमाकी नर्मदा—सखी दूतको बात करने योग्य स्थान पर ले गई ॥१७॥ पिता और भाईके दुःखसे संतप्त चन्द्रनखाकी पुत्री अनङ्गकुसुमा, सान्त्वना देनेमें निपुण सत्यरुपोंके द्वारा बड़ी कठिनाईसे शान्तिको प्राप्त कराई गई ॥१८॥ जिन मार्गमें प्रवीण अनङ्गकुसुमाने संसारकी स्थिति जानकर लोकाचारके अनुकूल पिताकी मरणोत्तर क्रिया की ॥१९॥

अथानन्तर दूसरे दिन शोकसे व्याप्त तथा मन्त्री आदि मौलवर्गसे परिवृत्त श्रीशैल—हनुमान्ने दूतको बुलाकर पूछा कि 'हे दूत ! खरदूषणकी मृत्युका जो कुछ कारण हुआ है वह सब कहो, यह कह कर हनुमान् खरदूषणका स्मरण करने लगा ॥२०-२१॥ तदनन्तर क्रोधसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था ऐसे महादीप्तिमान् हनुमान्की फड़कती हुई भाँह चञ्चल विजली की रेखाके समान जान पड़ती थी ॥२२॥ तत्पश्चात् भयसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था ऐसे महाप्रतापी बुद्धिमान्ने हनुमान्का क्रोध दूर करनेवाले निम्नाङ्कित मधुर वचन कहे ॥२३॥ उसने कहा कि हे देव ! आपको यह तो विदित ही है कि किष्किन्धाके अधिपति सुग्रीवको उसीके समान रूप धारण करनेवाले साहसगति विद्याधरके कारण स्त्रीसम्बन्धी दुःख उपस्थित हुआ था ॥२४॥ उस दुःखसे दुखी हुआ सुग्रीव रामकी शरणमें आया था और राम भी उसका दुःख नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा कर किष्किन्धनगर गये थे ॥२५॥ वहाँ आपके श्वसुर-सुग्रीवका, उसकी आकृतिके चौर—कुत्रिम सुग्रीवके साथ बड़े-बड़े योद्धाओंको थका देनेवाला चिरकाल तक महा-युद्ध हुआ ॥२६॥ तदनन्तर महातेजस्वी रामने उठकर उसे ललकारा । उन्हें देखते ही चोरीका कारण जो वेतालीविद्या थी वह नष्ट हो गई ॥२७॥ तब साहसगति अपने असली स्वरूपको

तच्छ्रुत्वा विगतक्रोधो जातः पवननन्दनः । पुनरुक्त जगौ तुष्टः विकसन्मुखपङ्कजः ॥२६॥
 कृत कृतमहो साष्ट्र प्रिय पयो नः परम् । यत्सुग्रीवकुल मञ्जदकीर्तौ चिप्रमुद् दृतम् ॥२७॥
 हेमकुम्भोपमं गोत्र अयशःकृपगह्वरे । निमज्जद्गुणहस्तेन तेन सन्मतितोदृष्टम् ॥२८॥
 पद्ममादिपर भूरि प्रशसन् रामलक्ष्मणौ । कस्मिन्नपि ममज्जासौ सारसौख्यमहाण्वि ॥२९॥
 श्रुत्वा पङ्कजरगायाः पितुः शोकपरिचयम् । उत्सवः सुमहान् जातो दानपूजादिसंस्तुतः ॥३०॥
 उद्देगानन्दसम्पन्नं हतच्छायसमुज्ज्वलम् । श्रीशैलभवनं जातं रसद्वयसमुत्कटम् ॥३१॥
 एवं विपमतां प्राप्ते स्वजने पावनजयिः । किञ्चित्समत्वमाधाय किष्किन्धामिसुखं ययौ ॥३२॥
 कक्ष्याभिगच्छत्तस्तस्य वलेनात्यर्थभूरिणः । जगादन्यदिवोद्भूतमाकाशपरिवर्जितम् ॥३३॥
 विमानं सुमहत्तस्य सगिरसमुज्ज्वलम् । प्रमां दिवसरसस्य जह्वा स्वमरीचिभिः ॥३४॥
 गच्छन्तं तं महाभाग्यं शतशो बन्धुपार्थिवाः । अनुजग्मुः सुनासीरं यथा त्रिदशपुङ्गवाः ॥३५॥
 अग्रतः पृष्ठतश्चास्य पार्श्वतश्च जयस्वनैः । गच्छतां त्रैचरेन्द्राणामासीच्छब्दमयं नभः ॥३६॥
 विघ्नमासीद्यद्विधानं विहायस्तलगामिनाम् । मनोहारी गजानां च विलासः स्वतन्त्रचित्तः ॥३७॥
 महागुरुरसंयुक्तैः रथैरुच्चैर्गतेभ्यः । विहायस्तल जातं मन्ये कल्पनगाकुलम् ॥३८॥
 सितानामातपत्राणां मण्डलेन महीयसा । जातं कुसुदखण्डानामिव पूर्णं वियत्तलम् ॥३९॥

प्राप्त हो गया, सबकी पहिचानमें आया और रामके द्वारा छोड़े हुए बाणोंसे मृत्युको प्राप्त हुआ ॥२८॥ यह सुनकर हनुमान् क्रोधरहित हो गया । प्रसन्नतासे उसका मुखकमल खिल उठा और संतुष्ट हो कर उसने बार-बार कहा कि अहो ! रामने बहुत अच्छा किया, मुझे बहुत अच्छा लगा जो उन्होंने अपक्रीर्तिमें डूबते हुए सुग्रीवके कुलका शीघ्र ही उद्धार कर लिया । ॥२९-३०॥ स्वर्ण कलशके समान सुमीवका कुल अपयश रूपी कूपके गर्तमें पड़कर डूब रहा था सो उत्तम बुद्धिके धारक रामने गुण रूपी रस्सी हाथमें ले उसे निकाला है ॥३१॥ इस प्रकार रामलक्ष्मणकी अत्यधिक प्रशंसा करतो हुका हनुमान् किसी अद्भुत श्रेष्ठ सुखरूपी सागरमें निमग्न हो गया ॥३२॥

हनुमान्की दूसरी स्त्री सुमीवकी पुत्री पद्मरागा थी सो पिताके शोकका क्षय सुनकर उसे बड़ा दुःख हुआ उसने दान पूजा आदिके द्वारा महा उत्सव किया ॥३३॥ उस समय हनुमान्के भवनमें एक ओर तो शोक मनाया जा रहा था और दूसरी ओर हर्ष प्रकट किया जा रहा था । वह एक ओर तो कान्तिसे शून्य हो रहा था और दूसरी ओर देदीप्यमान हो रहा था । इस प्रकार दो स्त्रियोंके कारण वह दो प्रकारके रससे युक्त था ॥३४॥ इस प्रकार जब कुटुम्बके लोग विषमताको प्राप्त हो रहे थे तब हनुमान् कुछ-कुछ मध्यस्थताको धारण कर किष्किन्धानगरकी ओर चला ॥३५॥ वैभवके साथ जाते हुए हनुमान्की बहुत बड़ी सेनासे उस समय संसार आकाशसे रहित होनेके कारण ऐसा जान पड़ता था मानो दूसरा ही उत्पन्न हुआ हो ॥३६॥ मणियों और रत्नोंसे जगमगाता हुआ उसका बड़ा भारी विमान, अपनी किरणोंसे सूर्यकी प्रभाको हर रहा था ॥३७॥ जाते हुए उस महाभाग्यशालीके पीछे सैकड़ों मित्रराजा उस प्रकार चल रहे थे जिस प्रकार कि इन्द्रके पीछे उत्तमोत्तम देव चलते हैं ॥३८॥ उसके आगे पीछे और दोनों ओर चलने वाले विद्याधर राजाओंको जयध्वनिसे आकाश शब्दमय हो गया था ॥३९॥ आकाशतलमें चलने वाले उसके घोड़ोंसे आश्चर्य उत्पन्न हो रहा था तथा हाथियोंकी अपने शरीरके अनुरूप मनोहारी चेष्टा प्रकट हो रही थी ॥४०॥ जिनमें बड़े-बड़े घोड़े जुते हुए थे तथा जिन पर पताकार फहरा रही थीं ऐसे रथोंसे उस समय आकाशतल ऐसा जान पड़ता था मानो कल्पवृक्षोंसे व्याप्त ही हो ॥४१॥ धवल छत्रोंके विशाल समूहसे आकाशतल ऐसा जान पड़ता था मानो कुमुदोंके



गम्भीरो दौन्दुभो धीरो ध्वानो ध्वस्तापरध्वनिः । चक्रवालं दिशां व्याप्य प्रतिध्वनिधनः स्थितः ॥४३॥
 सङ्कुलं चलता तेन सैन्येन गगनाङ्गणम् । खण्डखण्डैरिवच्छन्नमन्तरेषु ब्यलोकयते ॥४४॥
 भासां भूषणजातानां बहुवनयुजां चयैः । विशिष्टशिल्पिना रक्तं नभो वस्त्रमिवाभवत् ॥४५॥
 ध्वनिं मासुतिर्व्यस्य श्रुत्वा सख्यं गङ्गायम् । तोपं कपिध्वजाः प्रापुः शिखिनोऽन्धध्वनिं यथा ॥४६॥
 कृतापणमहाशोभं ध्वजमालासमाकुलम् । रत्नतोरणसंयुक्तं किष्किन्धनगरं कृतम् ॥४७॥
 बहुभिः पूज्यमानोऽसौ विभवैस्त्रिदशोपमैः । विवेश नगरं सद्यः सुग्रीवस्य च पुष्कलम् ॥४८॥
 सुग्रीवेण प्रतीष्टश्च यथाहं रचितादरः । कथितं चाखिलं तस्य पद्मनाभादिचेष्टितम् ॥४९॥
 अनेनैव ततो युक्ताः सुग्रीवाद्या नरेश्वराः । धारयन्तः परं हर्षं पद्मनाभमुपाययुः ॥५०॥
 अपरयत्नं नरश्रेष्ठं तं लक्ष्मीधरपूर्वजम् । नीलकुञ्जितसूक्ष्मातिस्निग्धकेशं मरुत्तुतः ॥५१॥
 लक्ष्मीलताविपकाङ्गं कुमारमिव भास्करम् । शशाङ्कमिव लिम्पन्तं कान्तिपद्मेन पुष्करम् ॥५२॥
 नयनानां समानन्दं मनोहरणकोविदम् । अपूर्वकर्मणां सर्गं स्वर्गादिव समागतम् ॥५३॥
 ज्वलद्बिद्युद्बलमागुरुहर्गर्भसमप्रभम् । मनोज्ञा गतनासाग्रं सङ्गतश्रवणद्वयम् ॥५४॥
 मूर्तिमन्तसिवाङ्गं पुण्डरीकनिभेक्षणम् । चापानतन्म्रुवं पूर्णशरदेन्दुनिभाननम् ॥५५॥
 बिम्बप्रवालरक्तोष्ठं कुन्दरवेतद्विजाबलिम् । कन्दुकण्ठं मृगेन्द्राभवसोभावं महासुजम् ॥५६॥

समूहसे ही व्याप्त हो ॥४२॥ दूसरोंको ध्वनिको नष्ट करने वाला उसकी दुन्दुभिका धीर गम्भीर शब्द दिशाओंके मण्डलको व्याप्त कर स्थित था तथा उसकी जोरदार प्रतिध्वनि उठ रही थी ॥४३॥ उसकी चलती हुई सेनासे व्याप्त आकाशाङ्गण ऐसा दिखाई देता था मानो बीच-बीचमें खण्ड-खण्डोंसे आच्छादित हो ॥४४॥ उसके नाना प्रकारके भूषणोंके समूहकी कान्तिसे रंगा हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो किसी विशिष्ट—कुशल शिल्पीके द्वारा रंगा वस्त्र ही हो ॥४५॥ हनुमान्की तुरहीका गम्भीर शब्द श्रवण कर सब वानरवंशी इस प्रकार संतोषको प्राप्त हुए जिस प्रकार कि मेघका शब्द सुनकर मयूर संतोषको प्राप्त होते हैं ॥४६॥ उस समय किष्किन्ध नगरके बाजारोंमें महाशोभा की गई; ध्वजाओं तथा मालाओंसे नगर सजाया गया और रत्नमयी तोरणोंसे युक्त किया गया ॥४७॥ देवोंके समान अनेक विद्याधरोने बड़े वैभवसे जिसकी पूजा की थी ऐसा हनुमान् सुग्रीवके विशाल अहलमें प्रविष्ट हुआ ॥४८॥ सुग्रीवने यथायोग्य आदरकर उसका सम्मान किया तथा राम आदिकी समस्त चेष्टाएँ उसके समक्ष कहीं ॥४९॥ तदनन्तर हनुमान्से युक्त सुग्रीव आदि राजा परमहर्षको धारण करते हुए रामके समीप आये ॥५०॥ तत्पश्चात् हनुमान्ने उन श्रीरामको देखा तो मनुष्योंमें श्रेष्ठ थे, लक्ष्मणके अग्रज थे, जिनके केश काले, छेवराले, सूक्ष्म तथा अत्यन्त स्निग्ध थे ॥५१॥ जिनका शरीर लक्ष्मीरूपी लतासे आलिङ्गित था, जो बालसूर्यके समान जान पड़ते थे अथवा जो कान्तिरूपी पङ्केके द्वारा आकाशको लिप्त करते हुए चन्द्रमाके समान सुशोभित थे ॥५२॥ जो नेत्रोंको आनन्द देनेवाले थे, मनके हरण करनेमें निपुण थे, अपूर्व कर्मोंकी मानो सृष्टि ही थे और स्वर्गसे आये हुएके समान जान पड़ते थे ॥५३॥ देदीयमान निर्मल स्वर्णकमलके भीतरी भागके समान जिसकी प्रभा थी, जिनकी नासाका अग्रभाग मनोहर था, जिनके दोनों कर्ण उत्तम सुडौल अथवा सज्जनोंको प्रिय थे ॥५४॥ जो मूर्तिधारी कामदेवके समान जान पड़ते थे, जिनके नेत्र कमलके समान थे, जिनकी भौह चढ़े हुए घनुपके समान नक्षीभूत थी, जिनका मुख शरद् ऋतुके पूर्ण चन्द्रमाके समान था ॥५५॥ जिनका ओंठ बिम्ब अथवा मूंगा या किसलयके समान

१. वयैः म० । २. कान्तिपद्मेन । ३. पुष्कलम् ख० । ४. मनोज्ञा गतनासाग्र । ५. सङ्गतं

श्रवणद्वयम् म० ।

श्रीवन्सकान्तिसम्पूर्णमहाशोभस्तनान्तरम् । गम्भीरनाभिवत्साममध्यदेशविराजितम् ॥५७॥
 प्रशान्तगुणसम्पूर्णं नानालक्षणभूषितम् । सुकुमारकरं वृत्तपात्रोद्ग्रहयस्तुतम् ॥५८॥
 कूर्मपृष्ठमहातेजःसुकुमारक्रमद्वयम् । चन्द्राङ्कुरारुणच्छायानखपङ्क्तिसमुज्ज्वलम् ॥५९॥
 अक्षोभ्यसत्त्वगम्भीरं वज्रसङ्घातविग्रहम् । सर्वसुन्दरसन्दोहमिव कृत्वा विनिर्मितम् ॥६०॥
 महाप्रभावसम्पन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम् । प्रियाङ्गुनाविद्योगेन बालसिंहमिवाकुलम् ॥६१॥
 शक्येव रहितं शक्रं रोहिण्येव विना विभुम् । रूपसौभाग्यसम्पन्नं सर्वशाखविशारदम् ॥६२॥
 शौर्यमाहात्म्यसंयुक्तं मेघादिगुणसंयुतम् । एवंविधं समालोक्य मारुतिः क्षोभमागतः ॥६३॥
 अचिन्तयच्च सम्भ्रान्तस्तत्प्रभाववशीकृतः । तच्छरीरप्रभाजालसमालिङ्गितविग्रहः ॥६४॥
 श्रीमाननयसौ राजा रामो दशरथात्मजः । यस्येह लक्ष्मणो भ्राता लोकश्रेष्ठः स्थितो वसो ॥६५॥
 यस्यालोक्य तदा संस्थेः क्षत्रं शीतांशुसन्निभम् । सा साहसगतैर्मया वैताली परिनिःसृता ॥६६॥
 दृष्ट्वा वज्रधरं पूर्वं हृदयं यच्च कम्पितम् । तदद्य मम हृद्वैर्न संक्षोभं परमं गतम् ॥६७॥
 इति विस्मयमापन्नः समनुसृत्य तान् गुणान् । ससारं पावनिः पद्मं श्रीमदम्भोजलोचनम् ॥६८॥
 दूरादुत्थाय हृद्वैर् पशुलक्ष्मीधरादिभिः । असौ प्रहृष्टचेतोभिः परिप्वक्तो यथाक्रमम् ॥६९॥
 परस्परं समालोक्य सम्भाष्य विनयोचितम् । उपधानविचित्रेषु स्वासनेष्ववतरिधरे ॥७०॥

लाल था जिसकी दाँतीकी पंक्ति कुन्द कुसुमके समान शुक्ल थी, कण्ठ शङ्खके समान था, जो सिंहके समान विस्तृत वक्षस्थलके धारक थे, महाभुजाओंसे युक्त थे ॥५६॥ जिनके स्तनोंका मध्यभाग श्रीवत्स चिह्नकी कान्तिसे परिपूर्ण महाशोभाको धारण करनेवाला था, जो गम्भीर नाभिसे युक्त तथा पतली कमरसे सुशोभित थे ॥५७॥ जो प्रशान्त गुणोंसे युक्त थे, नाना लक्षणोंसे विभूषित थे, जिनके हाथ अत्यन्त सुकुमार थे, जिनकी दोनों जोंबे गोल तथा स्थूल थीं ॥५८॥ जिनके दोनों चरण कलुवैके पृष्ठभागके समान महातेजस्वी तथा सुकुमार थे, जो चन्द्रमाकी किरणरूपी अङ्गुरोंसे लाल-लाल दीखनेवाली नखावलीसे उज्ज्वल थे ॥५९॥ जो अक्षोभ्य धैर्यसे गम्भीर थे, जिनका शरीर मानो वज्रका समूह ही था, अथवा समस्त सुन्दर वस्तुओंको एकत्रितकर ही मानो जिनकी रचना हुई थी ॥६०॥ जो महाप्रभावसे युक्त थे, न्यग्रोध अर्थात् वट-शृङ्खके समान जिनका मण्डल था, जो प्रिय स्त्रीके विरहके कारण बालसिंहके समान व्याकुल थे ॥६१॥ जो इन्द्राणीसे रहित इन्द्रके समान, अथवा रोहिणीसे रहित चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे, जो रूप तथा सौभाग्य दोनोंसे युक्त थे, समस्त शास्त्रोंमें निपुण थे ॥६२॥ शूर-वीरताके माहात्म्यसे युक्त थे तथा मेघा-सद्वुद्धि आदि गुणोंसे युक्त थे । ऐसे श्रीरामको देखकर हनुमान् क्षोभको प्राप्त हुआ ॥६३॥

तदनन्तर जो रामके प्रभावसे वशीभूत हो गया था और उनके शरीरकी कान्तिके समूहसे जिसका शरीर आलिङ्गित हो रहा था ऐसा हनुमान् संभ्रममें पड़ विचार करने लगा ॥६४॥ कि यह वही दशरथके पुत्र लक्ष्मीमान् राजा रामचन्द्र हैं, लोकश्रेष्ठ लक्ष्मण जैसा भाई जिनका आज्ञाकारी है ॥६५॥ उस समय युद्धमें जिनका चन्द्रतुल्य क्षत्र देखकर साहसगति की वह वैताली विद्या निकल गई ॥६६॥ मेरा जो हृदय पहले इन्द्रको देखकर भी कम्पित नहीं हुआ वह आज इन्द्रें देखकर परम क्षोभको प्राप्त हुआ है ॥६७॥ इस प्रकार आश्चर्यको प्राप्त हुआ हनुमान् इनके गुणोंका अनुसरण कर कमललोचन रामके पास पहुँचा ॥६८॥ जिनका चित्त हर्षित हो रहा था ऐसे राम, लक्ष्मण आदिने इसे देख दूरसे ही छटाकर यथाक्रमसे इसका आलिङ्गन किया ॥६९॥ परस्पर इक दूसरेको देखकर तथा विनयके योग्य वार्तालापकर सब

तत्र भद्रासने रम्ये स्थितः काकुत्स्थनन्दनः । केयूरभूषितमुखो ज्वलन्मृगया समन्ततः ॥७१॥
 'स्वच्छनीलाम्बरधरश्चूडामणिरिवोज्ज्वलः । रराज वरहारेण सोढुचन्द्र इवोदगतः ॥७२॥
 दिव्यपीताम्बरधरो हारकेयूरकुण्डलो । सुमित्रातनयो रेजे सतलज्जलदो यथा ॥७३॥
 वानराभोगमुकुटः सुरवारणविक्रमः । अभात्सुग्रीवरानोऽपि लोकपाल इवोर्जितः ॥७४॥
 विराधितः कुमारोऽपि सौमित्रेः पृष्ठतः स्थितः । अलक्ष्यत नृसिंहस्य चक्ररत्नमिवौजसा^१ ॥७५॥
 हनूमानप्यल रेजे पञ्चनाभस्य धीमतः । समोपे पूर्णचन्द्रस्य स्फीतो बुध इवोदितः ॥७६॥
 'सुगन्धिसाल्यवस्त्राद्यैरलङ्कारैश्च भूषितौ । अङ्गाङ्गद्वौ भासेतां यमवैश्रवणाविव ॥७७॥
 नलनीलप्रभृतयः शतशोऽन्ये च पार्थिवाः । आसीना रेखुरत्यन्तमावृत्य रघुनन्दनम् ॥७८॥
 पञ्चसङ्गन्धताम्बूलगन्धसङ्गतमाहता । विभूषणकृतोद्योता सा समेन्द्रसमोपमा ॥७९॥
 विस्मिन्स्य सुचिरं राम प्रीतः पावनिरध्वनीत् । समर्धं न गुणा प्राह्या भवतो रघुनन्दन ॥८०॥
 इहापि निखिले लोके दृश्यते स्थितिरिदंशी । किमपि प्रियवक्त्रा प्रत्यक्षगुणकीर्तनम्^२ ॥८१॥
 आसीच्चस्याधिसाहाय्यं श्रुतमस्माभिरुर्जितम् । दृष्टः सत्त्वहितः स त्वं सरववान् चक्षुषा स्वयम् ॥८२॥
 सर्वसौन्दर्ययुक्तस्य गुणरत्नाकरस्य ते । शुभ्रेण यशसा राजन् जगदेतदलङ्कृतम् ॥८३॥

नाना प्रकार तालियोसे सुशोभित अपने-अपने आसनोपर बैठ गये ॥७०॥ वहाँ जो उत्तम आसनपर विराजमान थे जिनकी भुजा बाजूबन्दसे सुशोभित थी, जो लक्ष्मीके द्वारा सब ओरसे देदीप्यमान् थे जो स्वच्छ नीलवस्त्र धारण किये हुए थे तथा उत्तम हारसे सुशोभित थे ऐसे श्रीराम नक्षत्र सहित उदित हुए चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे ॥७१-७२॥ दिव्य पीताम्बरको धारण करने वाले तथा हार केयूर और कुण्डलोंसे अलंकृत लक्ष्मण विजली सहित मेघके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७३॥ जिसका सुविस्तृत मुकुट वानरके चिह्नसे युक्त था, तथा देवगज—देरावतके समान जिसका पराक्रम था ऐसा सुग्रीवराम भी अतिशय बलवान् लोकपालके समान सुशोभित हो रहा था ॥७४॥ लक्ष्मणके पीछे बैठा विराधित कुमार भी अपने तेजसे ऐसा दिखाई देता था मानो नारायणके समीप रक्खा हुआ चक्ररत्न ही हो ॥७५॥ अतिशय बुद्धिमान् रामचन्द्रके समीप हनुमान् भी ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो पूर्णचन्द्रके समीप उदित हुआ अत्यन्त देदीप्यमान् बुधग्रह ही हो ॥७६॥ सुगन्धित माला तथा वस्त्रादि एवं अलंकारोंसे अलंकृत अङ्ग और अङ्गद्वयम तथा वैश्रवणके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७७॥ इनके सिवाय रामको घेर कर बैठे हुए नल नील आदि सैकड़ों अन्य राजा भी उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥७८॥ नाना प्रकारकी उत्तम गन्धसे युक्त ताम्बूल तथा सुगन्धित अन्य पदार्थोंके समागमसे जहाँ वायु सुगन्धित हो रही थी तथा जहाँ आभूषणोंके द्वारा प्रकाश फैल रहा था ऐसी वह सभा इन्द्रकी सभा के समान जान पड़ती थी ॥७९॥

तदनन्तर चिरकाल तक आश्चर्यमें पड़कर प्रीतियुक्त हनुमान्ने रामसे कहा कि हे राघव ! यद्यपि आपके गुण आपके ही समक्ष नहीं कहना चाहिए क्योंकि इस लोकमें भी ऐसी ही रीति देखी जाती है फिर भी प्रत्यक्ष ही आपके गुण कथन करनेको उत्कट लालसा है सो ठीक ही है क्योंकि जो प्रिय वक्ता है उन्हें प्रत्यक्ष ही गुणोंका कथन करना अद्भुत आह्लादकारी होता है ॥८०-८२॥ जिनका बलपूर्ण लोकोत्तर माहात्म्य हमने पहलेसे सुन रक्खा था उन प्राणि हितकारी धैर्यशाली आपको मैं स्वयं नेत्रोंसे देख रहा हूँ ॥८२॥ हे राजन् ! आप सम्पूर्ण सौन्दर्यसे युक्त हैं,

धनुलम्बोदये लब्धः सहस्रामररक्षिते । सीतास्वयंवरेऽस्माभिः श्रुतस्तव पराक्रमः ॥८४॥
 पिता दशरथो यस्य यस्य भामण्डलः सुहृत् । आता यस्य च सीमन्निः स त्वं राम जगत्पतिः ॥८५॥
 अहो शक्तिरहोरूपमेव नारायणः स्वयम् । समुद्रावर्तचपेणो यस्माद्वाक्येण रतः ॥८६॥
 अहो वैद्यमहो त्यागो यत्पितुः पालयन् वचः । महाप्रतिभयाकारं प्रविष्टो दण्डकं वनम् ॥८७॥
 पतन्नं कुरुते वन्दुस्तुष्टश्च त्रिदशधिपः । अहो त्वया नाथ कृतं यदस्माकमतिप्रियम् ॥८८॥
 सुग्रीवरूपसम्पन्नं हत्वा संयति साहसम् । यत्कपिपञ्चनवंशस्य कलङ्को दूरमुज्झितः ॥८९॥
 विद्याबलविधिर्ज्ञैयधस्य मायामयं वपुः । अस्माभिरपि नो सख्यं दुर्जयं च विरोधतः ॥९०॥
 तेन सुग्रीवरूपेण गृहीतुं प्लावगं बलम् । दर्शनादेव युष्माकं तद्रूपं तस्य निःसृतम् ॥९१॥
 कतुं प्रत्युपकारं यो न शक्नोत्युपकारिणः । सुलभां भावशुद्धिं स तस्मै न कुरुते कुतः ॥९२॥
 का तस्य बुद्धिन्यायेषु भवेदेकमपि क्षणम् । यः कृतस्वोपकारस्य विरोधं नावबुध्यते ॥९३॥
 स्वपाकादपि पापीयान् लुब्धकादपि निर्गुणः । असम्भाष्यः सतां नित्यं योऽकृतज्ञो वराधमः ॥९४॥
 स्वशरीरमपि त्यजन्ता सत्यं वयमनन्यपाः । सर्वे समुद्युताः कर्तुमुपकारं तव प्रभो ॥९५॥
 गत्वा प्रबोधयिष्यामि त्रिदशधिपतिं बुधम् । तव पत्नीं महाबाहो त्वरावानानयाम्यहम् ॥९६॥
 सीताया वदनलम्बोजं प्रसन्नेन्दुनिबोधितम् । सन्देहेन विनिर्मुक्तं शीघ्रं परयसि रावण ॥९७॥

तथा गुणरूपी रत्नोकी आकर अर्थात् खान अथवा समुद्र हैं । आपके शुक्ल यशसे यह संसार अलंकृत हो रहा है ॥८३॥ हे नाथ ! वज्रावर्त धनुषकी प्राप्तिसे जिसका अश्रुमुदय हुआ था तथा एक हजार देव जिसकी रक्षा करते थे ऐसे सीताके स्वयंवरमें आपको जो पराक्रम प्राप्त हुआ था वह सब हमने सुना है ॥८४॥ दशरथ जिनका पिता है, भामण्डल जिनका मित्र है, और लक्ष्मण जिनका भाई है, ऐसे आप जगत्के स्वामी राजा राम हैं ॥८५॥ अहो ! आपकी शक्ति अद्भुत है, अहो ! आपका रूप आश्चर्यकारी है कि सागरावर्त धनुषका स्वामी नारायण स्वयं ही जिनकी आज्ञा पालन करनेमें तत्पर है ॥८६॥ अहो ! आपका वैद्य आश्चर्यकारी है, अहो ! आपका त्याग अद्भुत है जो पिताके वचनका पालन करते हुए आप महाभय उत्पन्न करनेवाले दण्डक वनमें प्रविष्ट हुए हैं ॥८७॥ हे नाथ ! आपने हम लोगोंका जो उपकार किया है वह न तो भाई ही कर सकता है और न संतुष्ट हुआ इन्द्र ही ॥८८॥ आपने सुग्रीवका रूप धारण करनेवाले साहस-गतिकी युद्धमें मारकर वानरवंशका कलंक दूर किया है ॥८९॥ विद्याबलकी विधिके जाननेवाले हम लोग भी जिसके मायामय शरीरकी सहन नहीं कर सकते थे तथा हम लोगोंके लिए भी जिसका जीतना कठिन था उस सुग्रीव रूपधारी साहसगतिने वानर वंशी सेनाको प्राप्त करनेके लिए कितना प्रयत्न किया परन्तु आपके दर्शनमात्रसे उसका वह रूप निकल गया ॥९०-९१॥ जो अत्यन्त उपकारी मनुष्यका प्रत्युपकार करनेके लिए समर्थ नहीं है वह उसके विषयमें भावशुद्धि क्यों नहीं करता अर्थात् उसके प्रति अपने परिणाम निर्मल क्यों नहीं करता जब कि यह भावशुद्धि विषकुल ही सुलभ है ॥९२॥ जो मनुष्य, किये हुए उपकार की विशेषताको नहीं जानता है उसकी एक अङ्गके लिए भी न्यायमें बुद्धि कैसे हो सकती है ? ॥९३॥ जो नीच मनुष्य अकृतज्ञ है वह चाण्डालसे भी अधिक पापी है, शिकारीसे भी अधिक निर्दय है और सत्पुरुषोंसे निरन्तर वार्तालाप करनेके लिए भी योग्य नहीं है ॥९४॥ हे प्रभो ! हम सब किसी अन्य की शरणमें न आकर आपकी ही शरणमें आये हैं और सचमुच ही अपना शरीर छोड़कर भी आपका उपकार करनेके लिए लयत हैं ॥९५॥ हे महाबाहो ! मैं जाकर रावणको समझाऊँगा । वह बुद्धिमान है अतः अवश्य समझेगा और मैं शीघ्र ही आपकी पत्नीको वापिस ले आता हूँ ॥९६॥ हे रावण !

मन्त्री जाम्बूनदोऽवोचत्ततो वाक्यं परं हितम् । वत्स वत्स मरुपुत्र त्वमेकोऽस्माकमाश्रयः ॥६८॥
 अप्रमत्तेन गन्तव्यं लङ्को रावणपालिताम् । न विरोधः क्वचित् कार्यः कदाचित् केनचित्सह ॥६९॥
 एवमस्त्विति सम्भाष्य तं सम्प्रस्थितमुज्जतम् । बिलोक्य परमां प्रीतिं पद्मनाभः समागमत् ॥७०॥
 पुनः पुनः समाहूय मारुतिं चारुलक्षणम् । सर्वोदरं जगदेदं स्फूर्तिं राजीवलोचनः ॥७१॥
 मद्राज्याहुच्यतां सीता त्वद्वियोगात् स राघवः । अबुना बिन्दते साधि न मनोनिर्वृतिं क्वचित् ॥७२॥
 अत्यन्तं तदहं मन्ये हतं पौरुषमात्मनः । अतिरोधं प्रपन्नासि वर्तमानेऽपि यन्मयि ॥७३॥
 वेधि निर्मलशोभाया यथा त्वं मदनुग्रहा । जीवितं वान्कुसि त्यक्तुं मद्वियोगेन दुःखिता ॥७४॥
 अलं तथापि सदृक्प्रे द्युःसमाधानमृच्छुना । धार्यन्तां मैथिलिं प्राणा न जीनं त्यक्तुमर्हसि ॥७५॥
 दुर्लभः सङ्गो भूयः पूजितः सर्ववस्तुषु । ततोऽपि दुर्लभो धर्मो जिनेन्द्रवदनुद्गताः ॥७६॥
 दुर्लभादप्यलं तस्मान्मरणं सुसमाहितम् । तस्मिन्नसति जन्मेदं तुषणिः सारमीक्षितम् ॥७७॥
 इदं च प्रत्ययोत्पादि प्रियायै मम जीवतः । सततं संस्तुतं देवमहोदीयकमुत्तमम् ॥७८॥
 वायुपुत्रं दूतं गत्वा सीतायास्तं महाप्रभम् । ममापि प्रत्ययकरं चूडामणिमिहानय ॥७९॥
 यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा रत्नवानरमौलिभृत् । कृताञ्जलिपुटो नत्वा सौमित्रिं च समोऽक्षलिः ॥८०॥
 बहिर्बिनिर्गमौ हृष्टः पूर्यमाणो विभूतिभिः । क्षोभयन् तेजसा सर्वं सुग्रीवभवनान्निजम् ॥८१॥

इसमें संदेह नहीं कि तुम उदित हुए चन्द्रमाके समान निर्मल सीताका मुखकमल शीघ्र ही देखोगे ॥६७॥

तदनन्तर सुग्रीवके मन्त्री जाम्बूनदने परम हितकारी वचन कहे कि हे वत्स हनुमन् ! इस लोगोंका आधार एक तू ही है ॥६८॥ अतः तुम्हें सावधान होकर रावणके द्वारा पालित लंका जाना चाहिए और कहीं कभी किसीके साथ विरोध नहीं करना चाहिए ॥६९॥ 'एवमस्तु'—'ऐसा ही हो' यह कहकर उदार हनुमान् लंकाकी ओर प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हुआ सो उसे देख राम परम प्रीतिको प्राप्त हुए ॥७०॥ विदलित कमललोचन रामने सुन्दर लक्ष्मणोंके धारक हनुमान्को बार-बार दुलाकर बड़े आदरके साथ यह कहा कि तुम मेरी ओरसे सीतासे कहना कि हे साधि ! इस समय राम तुम्हारे विद्योगसे किसी भी वस्तुमें मानसिक शान्तिको प्राप्त नहीं हो रहे हैं—उनका मन किसी भी पदार्थमें नहीं लगता है ॥७१-७२॥ मेरे रहते हुए भी जो तुम अन्यत्र प्रतिरोध—रुकावटको प्राप्त हो रही हो सो इसे मैं अपने पौरुषका अत्यधिक घात समझता हूँ ॥७३॥ तुम जिस प्रकार निर्मल शीलव्रतसे सहित हो तथा एक ही व्रत धारण करती हो उससे समझता हूँ कि तुम मेरे विद्योगसे दुःखी होकर यद्यपि जीवन छोड़ना चाहती होगी पर हे सुमुखि ! तो भी छोटे परिणामोंसे मरना व्यर्थ है । हे मैथिलि ! प्राण धारण करो । जीवनका त्याग करना उचित नहीं है ॥७४-७५॥ सर्व वस्तुओंका पुनः उत्तम समागम प्राप्त होना दुर्लभ है और उससे भी दुर्लभ अरहन्त भगवान्के मुखारविन्दसे प्रकट हुआ धर्म है ॥७६॥ यद्यपि उक्त धर्म दुर्लभ है तो भी समाधि-भरण उसकी अपेक्षा दुर्लभ है क्योंकि समाधि भरणके बिना यह जीवन तुम्हें समान साररहित देखा गया है ॥७७॥ और प्रियाके लिए मेरे जीवित रहनेका प्रत्यय—विश्वास उत्पन्न हो जाये इसलिए यह सदा की परिचित उत्तम अंगूठी उसे दे देना ॥७८॥ तथा हे पवनपुत्र ! तुम शीघ्र ही जाकर तुम्हें विश्वास उत्पन्न करनेवाला सीताका महा कान्तिमान् चूडामणि यहाँ ले आना ॥७९॥ 'जैसी आज्ञा हो' यह कह कर रत्नमय वानरसे चिह्नित मुकुटको धारण करनेवाला हनुमान् राम तथा लक्ष्मणको हाथ जोड़ नमस्कार कर बाहर निकल आया । उस समय वह अत्यन्त हर्षित था, विभूतियोंसे युक्त था और अपने तेजसे सुग्रीवके भवन-

१. चास्तामरसेक्षणम् ज० । २. कमलनेत्रः स्फूर्तिरा राजीवलोचनः म० । ३. जीवितं म० ।

४. मैथिली म० । ५. कृताञ्जलिः म० ।

सन्दिदेश च सुग्रीवं यावदागमनं भ्रम । स्थातव्यं तावदत्रैव प्रसादपरिवर्जितैः ॥११२॥
विमानं चारुशिखरमारुहो मारुतिस्ततः । विभाति मस्तके मेरोञ्चैत्यालय इवोज्ज्वलः ॥११३॥
प्रययौ परया क्षुत्वा सितच्छत्रोपशोभितः । विलसद्भस्मसङ्काशैश्चामरैरुपनीवितः ॥११४॥
वायुशर्वसैरथैर्जङ्गमैर्द्विसमैर्गजैः । सैन्यैस्त्रिदशसङ्काशैर्जगाम परितो वृतः ॥११५॥
एवं युक्तो महाभूत्या रामादिभिरुदीक्षितः । समाक्रम्य रवेर्मार्गमयासीत्सुनिरन्तरम् ॥११६॥

उपजातिवृत्तम्

पूर्णं जगत्तिष्ठति जन्तुवर्गेर्नानाविधैरुत्तमभोगयुक्तैः ।
कश्चित्तु तेषां परमार्थकृत्ये नियुज्यते यत्परमं यशस्तत् ॥११७॥
कृतं परेणाप्युपकारयोगं स्मरन्ति नित्यं कृतिनो मनुष्याः ।
तेषां न तुल्यो सुवने शशाङ्को नवा कुबेरो न रविर्न शक्रः ॥११८॥

इत्यार्षे रविप्रेषाचार्यप्रोक्ते पञ्चपुराणो हनुमत्प्रस्थानं नाम एकोनपञ्चाशत्तमं पर्व ॥४६॥

सम्बन्धी समस्त आंगनको क्षोभयुक्त कर रहा था ॥११०-१११॥ उसने सुग्रीवसे कहा कि जब तक मैं न आ जाऊँ तब तक आप सबको यहीं सावधान होकर ठहरना चाहिए ॥११२॥

तदनन्तर हनुमान् सुन्दर शिखरसे युक्त विमान पर आरुह हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसा कि सुमेरुके शिखर पर देदीप्यमान चैत्यालय सुशोभित होता है ॥११३॥ तत्पश्चात् उसने परम कान्तिसे युक्त हो प्रयाण किया । उस समय वह सफेद छत्रसे सुशोभित था और उड़ते हुए हंसोकी समानता करनेवाले चमर उस पर ढोरे जा रहे थे ॥११४॥ वह वायुके समान वेगशाली घोड़ा, चलते-फिरते पर्वतोंके समान हाथियों और देवोंके समान सैनिकोंसे घिरा हुआ जा रहा था ॥११५॥ इस प्रकार जो महाविभूतिसे युक्त था, तथा राम आदि जिसे ऊपरको दृष्टिकर देख रहे थे, ऐसा वह हनुमान् सूर्यके मार्गका उल्लङ्घन कर निरन्तर आगे बढ़ा जाता था ॥११६॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! यह समस्त संसार नाना प्रकारके उत्तम भोगोंसे युक्त जन्तुओंसे भरा हुआ है उनमेंसे कोई विरला पुरुष ही परमार्थरूप कार्यमें लगता है तथा परम यशको प्राप्त होता है ॥११७॥ जो उत्तम मनुष्य दूसरेके द्वारा किये हुए उपकारका निरन्तर स्मरण रखते हैं इस संसारमें उनके समान न चन्द्रमा है, न कुबेर है, न सूर्य है और न इन्द्र ही है ॥११८॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविप्रेषाचार्य कथित, पञ्चपुराणमें हनुमान्के प्रस्थानका वर्णन करनेवाला उनचासवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४६॥

पञ्चाशत्तमं पर्व

अथासावाञ्जो गच्छन्नम्बरे परमोदयः । स्वसारमिव वैदेहीमाचिनोऽपूरराजम् ॥१॥
 सुहृद्वाजाप्रवृत्तस्य विनीतस्य महात्मनः । शुद्धभावस्य तस्यासीदुत्तमः कोऽपि चैतसः ॥२॥
 परयतः प्रीडया हृष्या स्थितस्य रविगोचरे । दिशो मण्डलमस्यासीच्छरीरावयवोपमम् ॥३॥
 लङ्कां जिगमिषोरस्य महेन्द्रनगरोपमम् । महेन्द्रनगरं दृष्टेरामिमुख्यमुपागतम् ॥४॥
 वेदिकापुण्डरीकामैः प्रासादैः शशिपाण्डुरैः । पर्वतस्य स्थितं मूर्ध्नि तद्विदूरे प्रकाशते ॥५॥
 वज्रपाणेरिवाभ्युक्ष्य^१ तस्मिन् बालिपुरोपमे । न बभूवतरां प्रीतिः तस्मादेवमचिन्तयत् ॥६॥
 इदं शिखरिणो मूर्ध्नि तन्महेन्द्रपुरं स्थितम् । महेन्द्रको वृषो यत्र हुर्मतिः सोऽवतिष्ठते ॥७॥
 दुःखतापितसर्वाङ्गा जाता येनागता मम । निर्वासिता मयि प्राप्ते कुचिवासं दुरात्मना ॥८॥
 पपाऽसौ विजनेऽरण्ये गुहा यत्र स सन्मुनिः । पर्यङ्कयोगयुक्तात्मा नाम्नामितगतिः स्थितः^२ ॥९॥
 अस्यां भगवता तेन साधुबाणैः कृपाकृता । माता मां जनितायवासा प्रसूता बन्धुवर्जिता ॥१०॥
 श्रुतं केसरिजं कृच्छ्रं श्रुत्वा^३ मातुरुपप्लवम् । सायोज्ञ सङ्गमं सैषा रम्या रम्या च मे गुहा ॥११॥
 मातरं शरणं प्राप्तां मम निर्वास्य यः कृती । न्यसनप्रतिदानेन महेन्द्रं किन्तु^४ तं भजेत् ॥१२॥
 अहयुरयमत्यन्तं मां किल द्वेष्टि सन्ततम् । महेन्द्र (महेन्द्रो) गर्भमेतस्य तस्मादपनयाम्यहम् ॥१३॥

अथानन्तर परम अभ्युदयको धारण करनेवाला हनुमान आकाशमें जाता हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बहिन सीताको लेनेके लिए भामण्डल ही जा रहा हो ॥१॥ मित्र— श्रीरामकी आज्ञामें प्रवृत्त, चिनयवान्, उदाराशय एवं शुद्धभावके धारक हनुमान्के हृदयमें उस समय कोई अद्भुत आनन्द छाया हुआ था ॥२॥ सूर्यके मार्गमें स्थित हनुमान् जब मौढ़ दृष्टिसे दिङ्मण्डलकी ओर देखता था तब उसे दिङ्मण्डल शरीरके अवयवोंके समान जान पड़ता था ॥३॥ लङ्काकी ओर जानेके लिए इच्छुक हनुमान्की दृष्टिके सामने राजा महेन्द्रका नगर आया जो इन्द्रके नगरके समान जान पड़ता था ॥४॥ वह नगर पर्वतके शिखर पर स्थित था तथा वेदिका पर स्थित सफेद कमलोंके समान आभाको धारण करनेवाले चन्द्रतुल्य धवल भवनोंके द्वारा दूरसे ही प्रकाशित हो रहा था ॥५॥ जिस प्रकार बालिके नगरमें इन्द्रको प्रीति नहीं हुई थी उसी प्रकार राजा महेन्द्रके उस नगरमें हनुमान्को कोई प्रीति उत्पन्न नहीं हुई अपितु उसे देखकर वह विचार करने लगा ॥६॥ कि यह पर्वतके शिखर पर राजा महेन्द्रका नगर स्थित है जिसमें कि वह दुर्बुद्धि राजा महेन्द्र निवास करता है ॥७॥ मेरे गर्भवासके समय दुःखसे भरी मेरी माता इसके नगर आई पर इस दुष्टने उसे निकाल दिया ॥८॥ तब मेरी माता निर्जन वनकी उस गुफामें—जिसमें कि पर्यंक योगसे अमितगति नामा मुनि विराजमान थे—रही । इसी गुफामें उन दयालु मुनिराजने उत्तम बच्चनोंके द्वारा उसे सान्त्वना दी और बन्धुजनोसे रहित अकेली रहकर उसने मुझे जन्म दिया ॥९-१०॥ इसी गुफामें माताको सिद्धसे उत्पन्न कष्ट प्राप्त हुआ था और इसी गुफामें उसे मुनिराजका सन्निधान प्राप्त हुआ था इसलिए यह गुफा मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥११॥ जो मेरी शरणागत माताको निकाल कर कृतकृत्य हुआ था उस महेन्द्रको अब मैं कष्टका बदला देकर क्या उसकी सेवा करूँ ॥१२॥ यह महेन्द्र बड़ा अहंकारी है तथा मुझसे निरन्तर द्वेष रखता है इसलिए इसका गर्व अवश्य ही दूर करता हूँ ॥१३॥

१. -नमीषुः राज सः म०, ब० । २. लङ्का म० । ३. मुख्यम् म० । ४. स्थिताः म० । ५. उपप्लवम् म० । ६. किन्तु न यजेत् म०, क० ।

प्रलम्बाबुद्वन्द्वीशनादा दुन्दुभयस्ततः । महालम्पाकमेवञ्च पटहाश्च समाहताः ॥१३॥
 धृमाताः शङ्खा जगत्कपा भट्टस्फटचेष्टितैः । युद्धरौण्डैः समुल्लुष्टं समुल्लासितहेतिभिः ॥१५॥
 शुक्ला परबलं प्राप्तं महेन्द्रः सर्वसेनया । प्रत्येकं विविक्कम् मेघवृन्दमिवाचलः ॥१६॥
 सप्रहारिततो लूनैर्दृष्टसीदक्षिणं बलम् । चापसुखम् माहेन्द्रिः प्राप्तस्त्वङ्गी रथस्थितः ॥१७॥
 हनूमानिषुभिस्तस्य धनुस्तित्थमिरायतम् । चिच्छेद् गुप्तिभिर्योगी यथामानं समुत्थितम् ॥१८॥
 चापं यावद्वितीयं स गृह्णात्याकुलमानसः । शरैस्तावद्वयान्मुक्ताः प्रचण्डास्तस्य बाजिनः ॥१९॥
 रथात्ते विगताः शीघ्राप्रपला बभ्रमुर्ध्वम् । हृषीकाणीव सनतो मुक्तानि विपर्यैपिणः ॥२०॥
 माहेन्द्रिरथ सभ्रान्तो विभानं वरमाश्रितः । तदप्यस्व शरैर्लुप्तं मत्तं दुष्टमतेरिणः ॥२१॥
 माहेन्द्रमुदितो भूयो विद्याबलविकारगः । पतत्रिचक्रकनकैर्गुण्युपेज्जातमासुरैः ॥२२॥
 विद्ययाऽनिलपुत्रोऽपि तं शङ्खौघमवारयत् । यथामचिन्तया योगी परीपहकदम्बकम् ॥२३॥
 निर्दयोन्यमुक्तशङ्खोऽसावास्तृणो महाग्निवत् । गृहोतो बाधुपुत्रेण गच्छेनेव पक्तावः ॥२४॥
 प्राप्सरोर्धं सुतं दृष्ट्वा महेन्द्रः क्रोधलोहितः । रथी माहतिमभ्यार रामं सुग्रीवरूपवत् ॥२५॥
 अर्कभस्म्यन्दनः सोऽपि हारिहारो धनुर्धरः । क्षुराणामग्रणी दीप्तो मातुः पितरमभ्यगात् ॥२६॥

तदनन्तर ऐसा विचार कर उसने धूमते हुए मेघ-समूहके समान उच्च शब्द करनेवाली दुन्दुभिर्गो, महा विकट शब्द करनेवाली भेरियों और जगाड़े वजवाये ॥१३॥ उद्दट चेष्टाओंको धारण करनेवाले योद्धाओंने जगत्को कँपा देनेवाले शङ्ख फूँके तथा शस्त्रोको चमकानेवाले रणवीर योद्धाओंने जोरसे गर्जना की ॥१५॥ पर बलको आया सुन, राजा महेन्द्र सर्व सेनाके साथ बाहर निकला और जिस प्रकार पर्वत, मेघसमूहको रोकता है उसी प्रकार उसने हनूमान्के दलको रोका ॥१६॥ तदनन्तर लगी हुई चोटोंसे अपनी सेनाको नष्ट होती देख, छत्रधारी, तथा रथ पर बैठा हुआ राजा महेन्द्रका पुत्र धनुष तानकर सामने आया ॥१७॥ सो हनूमान् तीन बाण छोड़ कर उसके लम्बे धनुषको उस तरह छेद डाला जिस तरह कि मुनि तीन गुप्तियोंके द्वारा उठते हुए मानको छेद डालते हैं ॥१८॥ वह व्याकुल चित्त होकर जब तक दूसरा धनुष लेता है तब तक हनूमान्ने तीक्ष्ण बाण चलाकर उसके चञ्चल घोड़े रथसे छुड़ा दिये ॥१९॥ सो रथसे झूटे हुए वे चञ्चल घोड़े शीघ्र ही इधर-उधर इस प्रकार धूमने लगे जिस प्रकार कि विषयाभिलाषी मनुष्यकी मनसे छूटी हुई इन्द्रियों इधर-उधर धूमने लगती हैं ॥२०॥ अथानन्तर महेन्द्रका पुत्र घबड़ा कर उत्तम विमान पर आरुढ़ हुआ सो हनूमान्के बाणोंसे वह विमान भी उस तरह खण्डित हो गया जिस तरह कि किसी दुर्बुद्धिका मत खण्डित हो जाता है ॥२१॥ तदनन्तर विद्याके बलसे विकारको प्राप्त हुआ महेन्द्रपुत्र पुनः हर्षित हो अलातचक्रके समान देदीप्यमान बाण चक्र तथा कनक नामक शस्त्रोंसे युद्ध करने लगा ॥२२॥ तब हनूमान्ने भी विद्याके द्वारा उस शस्त्र समूहको उस तरह रोका जिस तरह कि योगी आत्मव्यानके द्वारा परीपहोंके समूहको रोकता है ॥२३॥ तदनन्तर जो निर्दयताके साथ शस्त्र छोड़ रहा था और प्रचण्ड अग्निके समान सब ओरसे आच्छादित कर रहा था ऐसे महेन्द्र पुत्रको हनूमान्ने उस तरह पकड़ लिया जिस तरह कि गरुड़ सर्पको पकड़ लेता है ॥२४॥ पुत्रको पकड़ा देख क्रोधसे लाल होता हुआ महेन्द्र रथ पर सवार हो हनूमान्के सन्मुख उस तरह आया जिस तरह कि सुग्रीवका रूप धारण करनेवाला कृत्रिम सुग्रीव रामके सन्मुख आया था ॥२५॥

तदनन्तर जिसका रथ सूर्यके समान देदीप्यमान था, जो सुन्दर हारका धारक था, धनुर्धारी था, शूरोंमें श्रेष्ठ था तथा अविशय देदीप्यमान था ऐसा हनूमान् भी माताके पिता राजा

१. जगत्कपा म० । २. सम्यहारे ततो लम्बे ज० । ३. मुक्ता निर्विपर्यैपिणः म० । ४. अर्कभः स्यन्दनः म० ।

तयोरभून्महत्सङ्गं क्रकृचासिशिलीमुखैः । परस्परकृताघातं वायुवस्याब्दयोरिव ॥२७॥
 सिंहाविव महारोषी ॥ तानुद्वृत्तवलयान्वितौ । ज्वलत्स्फुल्लिरक्ताक्षौ रवसन्तौ सुजगाविव ॥२८॥
 परस्परकृताघेपौ गर्वाहासस्फुटस्वनौ । धिक् ते शौर्यमहोद्युद्धमित्यादिवचनोद्यतौ ॥२९॥
 चक्रतुः परम युद्धं मायाबलसमन्वितौ । हाकारजयकारादि कारयन्तौ मुहुर्निजैः ॥३०॥
 महेन्द्रोऽथ महावीर्यो विक्रियाशक्तिसङ्गतः । क्रोधस्फुरितदेहश्रीर्मुमोचायुधसंहतिम् ॥३१॥
 भुपुण्ड्रीः परशुश्च वाणान् शतघ्नीमुद्गरान् गदाः । शिखराणि च शैलानां शालन्यप्रोषपादपान् ॥३२॥
 एतैरन्यैश्च विविधैरायुधैर्मल्लसुतः । न विन्यये यथा शैलो महामेषकदम्बकैः ॥३३॥
 तद्विष्यमायया स्पृष्टं शस्त्रवर्षं महेन्द्रजम् । उल्काविद्याप्रभावेन वायुसुरचूर्णयत् ॥३४॥
 उत्पत्य च रथे तस्य निपत्य सुमहाजवः । ककुप्करिकाकारकराभ्यां कृतरोधनम् ॥३५॥
 मातामहं समादाय बलं विश्रद्भुत्तमम् । दत्तसाधुस्त्वनः शूरैः समारोहज्जिनं रथम् ॥३६॥
 उल्कालाङ्गुलपाणिं तं दौहित्रं परमोदयम् । प्रशंसितुं समारब्धो महेन्द्रः सौम्यथा गिरा ॥३७॥
 अहो ते वत्स माहात्म्यं परमेष्ठिन्या श्रुतम् । पूर्वमासीदिदानीं नु नियतं प्रत्यक्षगोचरम् ॥३८॥
 आसीदेवेन्द्रयुद्धेऽपि निजितो यो न केनचित् । विजयार्थनगस्योर्ध्वमहाविद्यायुधाकुले ॥३९॥

महेन्द्रके सम्मुख गया ॥२६॥ तदनन्तर वायुके वशीभूत दो मेघोमे जिस प्रकार परस्पर टक्कर होती है उसी प्रकार उन दोनोंमें करोत, खड्ग तथा वाणोंके द्वारा परस्पर एक दूसरेका घात करनेवाला महायुद्ध हुआ ॥२७॥ जो सिंहोंके समान महाक्रोधी तथा उल्कट बलसे सहित थे, जिनके नेत्र देदीप्यमान तिलगोंके समान लाल थे, जो सर्पोंके समान साँसे भर रहे थे—फुंकार रहे थे, जो एक दूसरेपर आक्षेप कर रहे थे, जिनके अहङ्कारपूर्ण हास्यका स्फुट शब्द हो रहा था, 'तेरी शूर-वीरताको धिक्कार है, अहो! युद्ध करने चला है' जो इस प्रकारके शब्द कह रहे थे, जो मायाबलसे सहित थे और जो अपने पक्षके लोगोंसे कभी हा-हाकार कराते थे तो कभी जय-जयकार कराते थे ऐसे हनूमान् तथा राजा महेन्द्र दोनों ही चिरकाल तक परमयुद्ध करते रहे ॥२८-३०॥ तदनन्तर जो महाबलवान् था, विक्रिया शक्तिसंगत था और क्रोधसे जिसके शरीरकी शोभा देदीप्यमान हो रही थी ऐसा महेन्द्र हनूमान्के ऊपर शस्त्रोंका समूह छोड़ने लगा ॥३१॥ भुपुण्ड्री, परशु, वाण, शतघ्नी, मुद्गर, गदा, पहाड़ोंके शिखर और सागौन तथा घटके धुत्त उसने हनूमान्पर छोड़े ॥३२॥ सो इनसे तथा नाना प्रकारके अन्य शस्त्रोंके समूहसे हनूमान् उस तरह विचलित नहीं हुआ जिस प्रकार कि महामेघोंके समूहसे पर्वत विचलित नहीं होता है ॥३३॥ राजा महेन्द्रकी दिव्यमायासे उत्पन्न शस्त्रोंको उस वर्षाको पवन-पुत्र हनूमान्ने अपनी उल्का-विद्याके प्रभावसे चूर-चूर कर डाला ॥३४॥ और उसी समय वेगसे भरे, विग्गजोंके शुण्डादण्डके समान विशाल हाथोंसे युक्त तथा उत्तम बलको धारण करनेवाले हनूमान्ने मातामह महेन्द्रके रथपर उछलकर उसे रोकनेपर भी पकड़ लिया । शूर वीरोने उसे साधुवाद दिया और वह पकड़े हुआ मातामहको लेकर अपने रथपर आरूढ़ हो गया ॥३५-३६॥ वहाँ जिसकी विक्रियाकृत लाज्जल और हाथोंसे उल्काएँ निकल रही थीं तथा जो परम अभ्युद्यको धारण करनेवाला था ऐसे दौहित्र-हनूमान्की वह महेन्द्र सौम्य वाणी द्वारा स्तुति करने लगा ॥३७॥ कि अहो वत्स ! तेरा यह उत्तम माहात्म्य यद्यपि मैंने पहलेसे सुन रक्खा था पर आज प्रत्यक्ष ही देख लिया ॥३८॥ विजयार्थ पर्वतके ऊपर महाविद्याओं तथा शस्त्रोंसे आकुल इन्द्र

१. वायुवशंगतमेवयोरिव । २. युद्धवत्तलान्वितौ म० । ३. शिखरिणि च म० । ४. साधुः त्वनः म० ।

असौ प्रसन्नकीर्तिर्मे पुत्रो माहात्म्यसद्गतः । त्वया पराजितः प्राप्तो रोधुं चित्रमिदं परम् ॥४०॥
 अहो पराक्रमो भद्र तव धैर्यमहो परम् । अहो रूपमनौपम्यमहो संग्रामशौण्डत ॥४१॥
 प्रजातेन त्वया वत्स महानिश्चययोगिना । कुलमुद्योतितं सर्वमस्मदीयं सुकर्मणा ॥४२॥
 विनयावैपुन्यैर्युक्तो राशिः परमतेजसः । कल्याणमूर्तिरित्यर्थं कल्पवृक्षस्त्वमुद्गतः ॥४३॥
 जनतो गुरुभूतस्त्वं बान्धवानां समाश्रयः । दुःखादित्यप्रवृत्तानां समस्तानां घनावनः ॥४४॥
 इति प्रशस्य तं स्नेहामुदञ्चात्तुल्यकरः । अजिघ्रन्मस्तके नञ् पुलकी परिपस्वजे ॥४५॥
 प्रणम्य बायुपुत्रोऽपि तमार्थं विहिताञ्जलिः । अतिचिद्विनीतात्मा क्षणाघातोऽन्यतामिव ॥४६॥
 मया शिशुत्वा किञ्चिदार्थं यत्ने विचेष्टितम् । दोषमेवं समस्तं मे प्रतीप्य च्छनुमर्हसि ॥४७॥
 समस्तं च समाख्यातं तेनागमनकारणम् । पञ्चागमादिकं श्रावदात्मागमनमाहृतम् ॥४८॥
 अहमर्थं गमिष्यामि त्रिकूटमतिकारणम् । त्वं किष्किन्धपुरं गच्छ कार्यं दाशरथेः कुह ॥४९॥
 ह्युक्त्वा बायुसम्भूतः ससुप्तस्य ययौ सुखम् । त्रिकूटमिमुखाः चित्रं सुरलोकमिवामरः ॥५०॥
 गत्वा महेन्द्रकेतुश्च तनयौ नयकोविदः । प्रसन्नकीर्तिना सार्द्धं वत्सलः समपूजयत् ॥५१॥
 मातापितृसमायोगं सोऽवरस्य च दर्शयत् । अञ्जनासुन्दरी प्राप्य जगाम परमां हृत्तिम् ॥५२॥
 महेन्द्रं निवृत्तं क्षुत्वा किष्किन्धाभिमुखोऽगमत् । विराचितप्रभृतयस्तोपमाययुक्तमम् ॥५३॥

विद्याधरके युद्धमें भी जो किसीके द्वारा पराजित नहीं हुआ था तथा जो माहात्म्यसे युक्त था ऐसा मेरा पुत्र प्रसन्नकीर्ति तुमसे पराजित हो बन्धनको प्राप्त हुआ, यह बड़ा आश्चर्य है ॥३६-४०॥ अहो भद्र ! तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है, तुम्हारा धैर्य परम आश्चर्यकारी है, अहो तुम्हारा रूप अनुपम है और युद्धकी सामर्थ्य भी आश्चर्यकारी है ॥४१॥ हे वत्स ! निश्चयको धारण करनेवाले तुमने हमारे पुण्योद्दयसे जन्म लेकर हमारा समस्त कुल प्रकाशमान किया है ॥४२॥ तू विनयादि गुणोंसे युक्त है, परम तेजकी राशि है, कल्याणकी मूर्ति है तथा कल्पवृक्षके समान उदयको प्राप्त हुआ है ॥४३॥ तू जगत्का गुरु है, बान्धवजनोका आधार है और दुःखरूपी सूर्यसे सन्तप्त समस्त मनुष्योंके लिए मेघस्वरूप है ॥४४॥ इस प्रकार प्रशंसा कर स्नेहके कारण जिसके नेत्रोंसे अश्रु छलक रहे थे तथा जिसके हाथ हिल रहे थे, ऐसे मातामह महेन्द्रने उसका मस्तक सूँघा और रोमाञ्चित हो उसका आलिङ्गन किया ॥४५॥ बायुपुत्र—हनूमानने भी हाथ जोड़कर उन आर्य-मातामहको प्रणाम किया तथा क्षमाके प्रभावसे विनीतात्मा होकर वह क्षणभरमे ऐसा ही गया मानो अन्य रूपताको ही प्राप्त हुआ हो ॥४६॥ उसने कहा कि हे आर्य ! मैंने लङ्कपनके कारण आपके प्रति जो कुछ चेष्टा की है सो हे पूज्य ! मेरे इस समस्त अपराधको आप क्षमा करनेके योग्य है ॥४७॥ उसने रामचन्द्रके आगमनको आदि लेकर अपने आगमन तकका समस्त वृत्तान्त वड़े आदरके साथ प्रकट किया ॥४८॥ उसने यह भी कहा कि हे आर्य ! मैं अत्यावश्यक कारणसे त्रिकूटाचलको जाता हूँ तब तक तुम किष्किन्धपुर जाओ और श्रीरामका काम करो ॥४९॥ इतना कह हनूमान् आकाशमें उड़कर शीघ्र त्रिकूटाचलकी ओर सुखपूर्वक इस प्रकार गया जिस प्रकार कि देव स्वर्गकी ओर जाता है ॥५०॥ नीति निपुण तथा स्नेहपूर्ण राजा महेन्द्र केतुने अपने प्रियपुत्र प्रसन्नकीर्तिके साथ जाकर पुत्री—अंजनाका सम्मान किया ॥५१॥ अंजना सुन्दरी, माता-पिताके साथ समागम तथा सार्द्धा दर्शन प्राप्तकर परम धैर्यको प्राप्त हुई ॥५२॥ राजा महेन्द्रको आया सुनकर किष्किन्धाका पति सुगीव उसे लेनेके लिए सन्मुख गया तथा विराचित आदि उत्तम सन्तोषको प्राप्त हुआ ॥५३॥

चंशस्थवृत्तम्

पुरा विशिष्टं चरितं कृतात्मनां सुचेतसामुत्तमचारुतेजसाम् ।
 महात्मनामुन्नतगर्वशालिनो भवन्ति वर्याः पुरुषा बलान्विताः ॥५३॥
 ततः समन्तादनुपास्य मानसं जना यत्तत्त्वं सततं सुकर्मणि ।
 फलं यदीयं समवाप्य पुष्कलं रवेः समानामुपवाथ दीप्तताम् ॥५४॥

इत्यार्षे रविप्रेषाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे महेन्द्रद्वहितासमागमाभिधानं
 नाम पञ्चाशत्तमं पर्व ॥५०॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि कृतकृत्य, सुचेता, तथा उत्तम सुन्दर तेजको धारण करनेवाले पुण्यात्मा और जीवोंका पूर्व चरित ही ऐसा विशिष्ट होता है कि उन्नत गर्वसे सुशोभित बल-शाली मनुष्य उनके आधीन—आज्ञाकारी होते हैं ॥५३॥ इसलिए हे भव्यजनो ! सब ओरसे मनकी रक्षाकर सदा उस शुभ कार्यमें यत्न करो कि जिसका पुष्कल फल पाकर सूर्यके समान दीप्तताको प्राप्त होओ ॥५४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविप्रेषाचार्य कथित पद्मपुराणमें महेन्द्रका
 पुत्रीके साथ समागमका वर्णन करनेवाला पचासवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५०॥

एकपञ्चाशत्तमं पर्व

अंगोलस्य विषयुच्चैर्विमानस्थस्य गच्छतः । बभूव सुगुणैर्युक्तो द्वीपो दधिमुखोऽन्तरे ॥१॥
यस्मिन् दधिमुखं नाम प्रासादैर्दधिपाण्डुरैः । पुरं परममायामि चास्काञ्चनतोरणम् ॥२॥
नवमेघप्रतीकाशैरुद्यानैः कुसुमोज्ज्वलैः । प्रदेशा यस्य शोभन्ते सनच्चत्राम्बरोपमा ॥३॥
स्फटिकस्वच्छकलिला वाप्यः सोपानशोभिताः । पद्मोत्पलादिभिरवृक्षा यत्र आन्ति कचिद् कचिद् ॥४॥
तस्मिन् विप्रकृष्टे तु देशे नगरगोचरात् । बृहत्पणलतावल्लीद्रुमकण्टकसङ्घटे ॥५॥
शुष्कागकृतसरोधे रौद्रश्चापदनादिते । धोरेऽतिपरुषाकारे प्रचण्डानिलचञ्चले ॥६॥
पतितोदारवृक्षौघे महाभयसमावहे । विशुद्धचारसरसि कङ्कपृष्ठादिसेविते ॥७॥
दुर्बने विजने राजन् साधुयुग्म नभश्चरम् । जटालं लम्बितभुज योगमुग्रमुपाश्रितम् ॥८॥
तस्य क्रोशचतुर्भागात्रयेशो व्यवस्थिताः । मनोज्ञनयनाः कन्याः सितवस्त्रा जटाधराः ॥९॥
तस्यन्ते विधिवद्घोरं तपस्तिष्ठः सुचेतसः । शोभालोकत्रयस्यैव नवभूषणतां गताः ॥१०॥
अथासौ साधुयुगलं ग्रस्यमानं महान्विना । अञ्जनातनयोऽपरयत् पादपद्मयनिश्चलम् ॥११॥
असमासमताः ताश्च कन्याः लावण्यपूरिताः । उद्गमद्भूमजालेन स्पृष्टा बहलवर्तिना ॥१२॥
अथातस्सौ सनिर्ग्रन्थी युक्तयोगी शिवस्पृहौ । त्यक्तारणादिसङ्केच्छौ निरस्तांयुक्तभूषणौ ॥१३॥

अथानन्तर जब हनुमान् विमानमें बैठकर आकाशमें बहुत ऊँचे जा रहा था तब उत्तम गुणोसे युक्त दधिमुख नामक द्वीप बीचमें पड़ा ॥१॥ उस दधिमुख द्वीपमें एक दधिमुख नामका नगर था जो दहीके समान सफेद महलोंसे सुशोभित तथा लम्बायमान स्वर्णके सुन्दर तोरणोसे युक्त था ॥२॥ नवीन मेघके समान श्याम तथा पुष्पोसे उज्ज्वल उद्यानोसे उसके प्रदेश ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रोंसे सहित आकाशके प्रदेश ही हों ॥३॥ उस नगरमें जहाँ-तहाँ स्फटिकके समान स्वच्छ जलसे भरी, सीढ़ियोंसे सुशोभित एवं कमल तथा उत्पल आदिसे आच्छादित वापिकाएँ सुशोभित थीं ॥४॥ नगरसे दूर चलकर एक महाभयङ्कर वन मिला जो वड़े-वड़े तृणों, लताओं, वेलों, वृक्षों और काँटोंसे व्याप्त था ॥५॥ वह वन सूखे वृक्षोंसे विरा था, भयङ्कर जङ्गल पशुओंके शब्दसे शब्दायमान था, भयङ्कर था, अत्यन्त कठोर था, प्रचण्ड वायुसे चञ्चल था, गिरे हुए वड़े-वड़े वृक्षोंके समूहसे युक्त था, महाभय उत्पन्न करनेवाला था, अत्यन्त खारे जलके सरोवरोंसे सहित था, कङ्क, गृद्ध आदि पक्षियोंसे सेवित था तथा मनुष्योंसे रहित था । गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस वनमें दो चारण श्रद्धिधारी मुनि आठ दिनका कठिन योग लेकर विराजमान थे । उनकी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं ॥६-८॥ उस मुनियोंसे पावकेश दूरी पर तीन कन्याएँ, जिनके नेत्र अत्यन्त मनोहर थे, जो शुक्लवस्त्रसे सहित थीं, जटाएँ धारण कर रही थीं, शुद्ध हृदयसे युक्त थीं, तीन लोककी मानो शोभा थीं । और नूतन आमूपण स्वरूप थीं, विधिपूर्वक घोर तप कर रही थीं ॥९-१०॥

तदनन्तर हनुमान्ने देखा कि दोनों मुनि महाअग्निसे अस्त हो रहे हैं और वृक्ष युगलके समान निश्चल खड़े हैं ॥११॥ जिनका व्रत समाप्त नहीं हुआ था तथा जो लावण्यसे युक्त थीं ऐसी वे तीनो कन्याएँ भी निकलते हुए अत्यधिक धूमसे स्पष्ट हो रही थीं ॥१२॥ उन्हें देख

१. -मायति म० । २. विप्रकृष्टेन म० । ३. धोरे पतिस्वाकारे म० । ४. दुर्बने म० । ५. राजन् म० । ६. गतः म० । ७. उद्गमद्भूम- म० ।

प्रलम्बितमहाबाहू प्रशान्तवदनाकृती । युगान्तापितसदृष्टी प्रतिमास्थानमाश्रितौ ॥१४॥
 मृत्युजीवननिःक्रांतावनघौ शान्तमानसौ । समप्रियाप्रियासङ्गौ समपापणकाङ्क्षौ ॥१५॥
 दावेन^२ महता राजन् तेषाल्यासन्नवर्तिना । अभिभूतौ समालोक्य वात्सल्यं कर्तुमुद्यतः ॥१६॥
 आकृत्य सागरजलं मेघहस्तः ससम्भ्रमः । अवर्षदुन्नतौ व्योम्नि परम भक्तिसङ्गतः ॥१७॥
 सुभृशं तेन वह्निः स वारिपूरेण नाशितः । महाक्रोध इवोद्भूतः क्षान्तिमविन साधुना ॥१८॥
 यावच्च कुरुते पूजां भक्त्या पवननन्दनः । तयोर्भेदन्तयोर्नानापुष्पादिद्रव्यसम्पदा ॥१९॥
 तावत्ताः सिद्धसंसाध्या मेरुं कृत्वा प्रदक्षिणम् । तत्सकाशमनुप्राप्ताः कुमार्यः सुमनोहराः ॥२०॥
 प्रणेतुश्च समं तेन साधू ध्यानपरायणौ । विनयाम्बितया बुद्ध्या प्रशशसुखं मार्ततम् ॥२१॥
 अहो जिनेश्वरे भक्तिवर्जता कापि बद्धुतम् । त्वया तात परित्राता वर्य साधुसमाश्रयात् ॥२२॥
 अस्मद्द्वारसमाधातो महानयमुपप्लवः । स्तोत्रेनाहो न योगिम्यामहो नो भवितव्यता ॥२३॥
 अथाङ्गनात्मजोऽपृच्छदेवं संशुद्धमानसः । भवन्त्य इह निःशून्ये का वनेऽत्यन्तभीषणे ॥२४॥
 अवोचज्जयायसी तासां पुरे दधिमुखाङ्गये । अत्र गन्धर्वराजस्य वयं तिष्ठोऽमरासुताः ॥२५॥
 प्रथमा चन्द्रलेखाख्या ज्ञेया विद्युत्प्रभा ततः । अन्या सरङ्गमालेति सर्वगोत्रस्य वल्गभाः ॥२६॥

हनुमान्के हृदयमें उन सबके प्रति बड़ी आस्था उत्पन्न हुई। तदनन्तर जो योग अर्थात् ध्यानसे युक्त थे, मोक्ष की इच्छासे सहित थे, जिन्होंने रागादि परिग्रहकी इच्छा छोड़ दी थी, वस्त्र तथा आभूषण दूर कर दिये थे, भुजाएँ नीचेकी ओर लटका रखी थीं, जिनके मुखकी आकृति अत्यन्त शान्त थी, युगप्रमाण दूरी पर जिनकी दृष्टि पड़ रही थी, जो प्रतिमा योगसे विराजमान थे, जीवन और मरणकी आकांक्षासे रहित थे, निष्पाप थे, शान्तचित्त थे, इष्ट अनिष्ट समागममे मध्यस्थ थे, तथा पापाण और काष्त्रनमें जो समभाव रखते थे ऐसे उन दोनों मुनियोंको अत्यन्त निकटवर्ती बड़ी भारी दावानलसे आक्रान्त देख, हे राजन् ! हनूमान् वात्सल्यभाव प्रकट करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१३-१६॥ भक्तिसे भरे हनूमान्ने शीघ्रतासे समुद्रका जल खींच, मेघ हाथमें धारण किया और आकाशमें डँके जाकर अत्यधिक वर्षा की ॥१७॥ उस वरसे हुए जलप्रवाहसे वह दावानि उस प्रकार शान्त हो गई जिस प्रकार कि उत्पन्न हुआ महाक्रोध, मुनिके क्षमाभावसे शान्त हो जाता है ॥१८॥ भक्तिसे भरा हनूमान् जबतक नाचा प्रकारकी पुष्पादि सामग्रीसे उन दोनों मुनियोंकी पूजा करता है, तब तक जिनके मनोरथ सिद्ध हो गये थे ऐसी वे तीनों मनोहर कन्याएँ मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देकर उसके पास आ गईं ॥१९-२०॥ उन्होंने ध्यानमें तत्पर दोनों मुनियोंको हनूमान्के साथ-साथ विनयपूर्वक नमस्कार किया तथा हनूमान्की इस प्रकार प्रशंसा की कि अहो ! तुम्हारी जिनेश्वरदेवमें बड़ी भक्ति है जो शीघ्रतासे कहीं अन्यत्र जाते हुए तुमने मुनियोंके आश्रयसे हम सबकी रक्षा की ॥२१-२२॥ हमारे निमित्तसे यह महा उपद्रव उत्पन्न हुआ था सो मुनियोंको रक्षमात्र भी प्राप्त नहीं हो पाया। अहो ! हमारी भवितव्यता धन्य है ॥२३॥

अथानन्तर पवित्र हृदयके धारक हनूमान्ने उनसे इस प्रकार पूछा कि इस अत्यन्त भयङ्कर निर्जन वनमें आपलोग कौन है ? ॥२४॥ तदनन्तर उन कन्याओंमें जो ज्येष्ठ कन्या थी वह कहने लगी कि हम तीनों दधिमुख नगरके राजा गन्धर्वकी अमरानामक रानीकी पुत्रियाँ हैं ॥२५॥ इनमें प्रथम कन्या चन्द्रलेखा, दूसरी विद्युत्प्रभा और तीसरी सरङ्गमाला है। हम सभी

यावन्तो भुवने केचिद्विजयाद्यादिसम्भवाः । विद्याधरकुमारान्द्राः कुलपुष्करभास्कराः ॥२७॥
 तेऽस्मद्ग्रथं शिवं कापि न विन्दन्तेऽर्थिनो भृशम् । दुष्टस्त्वङ्गारको नाम तापं धत्ते विरोधतः ॥२८॥
 अन्यदापरिपृष्टश्च तातेनाष्टाङ्गविन्मुनिः । स्थानेषु भगवन् केषु भन्या दुहितरो मम ॥२९॥
 सोऽजोचत् साहसगतौ यो हनिष्यति संयुगे । आसां कतिपयाहोभी रमणोऽसौ भविष्यति ॥३०॥
 निशम्यामोषवाक्यस्य मुनेस्त्वद्वचनं ततः । अचिन्तयत् पिताऽस्माकं विधाय स्मेरमाननम् ॥३१॥
 कस्त्वसौ भविता लोके नरो वज्रायुधोपमः । विजयार्थोत्तरश्रेणीश्रेष्ठं यो हन्ति साहसम् ॥३२॥
 अथवा न मुनेर्वाक्यं कदाचिज्ज्ञायतेऽनृतम् । इति विस्मयमाविष्टः पिता माता जनस्तथा ॥३३॥
 चिरं प्रार्थयमानोऽपि यदासौ लब्धवान् नः । तदास्मद्दुःखचिन्तास्थः सञ्जातोऽङ्गारकेतुकः ॥३४॥
 ततः प्रभृति चात्माकमयमेव मनोरथः । ब्रह्मामस्तं कदा वीरमिति साहससूदनम् ॥३५॥
 एतच्च वनमायाता दारुणद्रुमसङ्कटम् । मनोऽनुगामिनीं नाम विद्यां साधयितुं पराम् ॥३६॥
 दिवसो द्वादशोऽस्माकं वसन्तीनामिहान्तरे । प्राप्तस्य साधुयुग्मस्य वर्तते दिवसोऽष्टमः ॥३७॥
 अङ्गारकेतुना तेन वीक्षिताच्च दुरात्मना । ततस्तेनानुबन्धेन क्रोधेन पूरितोऽभवत् ॥३८॥
 ततोऽस्माकं वर्षं कर्तुमेता दश दिशः जगत् । धूमाङ्गारकवर्षेण वह्निना पिञ्जरीकृताः ॥३९॥
 पद्भिः संवत्सरैः सप्तैर्यष्टदुःसाध्यं प्रसाध्यते । दत्त्वाङ्गमुपसर्गस्य तद्वधैव हि साधितम् ॥४०॥
 इहापि महाभाग नामविष्यद् भवान् यदि । अथकथाम् हि योगिन्यां सहारण्ये सती भुवम् ॥४१॥

अपने समस्त कुलके लिए अत्यन्त प्यारी है ॥२६॥ इस संसारमें अपने कुलरूपी कमलोंको विकसित करनेके लिए सूर्यके समान, विजयार्थ आदि स्थानोमे उत्पन्न हुए जितने कुल विद्याधर कुमार है वे सब हम लोगोंके अत्यन्त इच्छुक हो कहीं भी मुख नहीं पा रहे हैं । उन कुमारोमे अङ्गारक नामक दुष्ट कुमार विशेष रूपसे सन्तापको धारण कर रहा है ॥२७-२८॥ किसी एक दिन हमारे पिताने अष्टाङ्ग निमित्तके ज्ञाता मुनिराज से पूछा कि हे भगवन् ! मेरी पुत्रियों किन स्थानोंमें जावेंगी ॥२९॥ इसके उत्तरमे मुनिराजने कहा था कि जो युद्धमे साहसगतिको मारेगा वह कुल ही दिनोंमे इनका भर्ता होगा ॥३०॥ तदनन्तर अमोष वचनके धारक मुनिराजका वह वचन सुन हमारे पिता मुखको मन्द हास्यसे युक्त करते हुए विचार करने लगे कि ॥३१॥ संसार मे इन्द्रके समान ऐसा कौन पुरुष होगा जो विजयार्थ पर्वतकी उत्तर श्रेणीमे श्रेष्ठ साहसगतिको मार सकेगा ॥३२॥ अथवा मुनिके वचन कभी मिथ्या नहीं होते यह विचार कर माता - पिता आदि आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥३३॥ चिरकाल तक याचना करने पर भी जब अंगारक हम लोगोंको नहीं पा सका तब वह हम लोगोंको दुःख देनेवाले कारणोकी चिन्तामें निमग्न हो गया ॥३४॥ उस समयसे लेकर हम लोगोका यही एक मनोरथ रहता है कि हम साहसगतिको नष्ट करनेवाले उस वीरको कब देखेंगे ॥३५॥ हम तीनों कन्याएँ मनोऽनुगामिनी नामक उत्तम विद्या सिद्ध करनेके लिए कठोर वृत्तोंसे युक्त इस वनमे आई थीं ॥३६॥ यहाँ रहते हुए हम लोगोका यह बारहवाँ दिन है और इन दोनों मुनियोंको आये हुए आज आठवाँ दिवस है ॥३७॥ तदनन्तर उस दुष्ट अंगारकेतुने हम लोगोको यहाँ देखा और एक पूर्वोक्त संस्कारके कारण वह क्रोधसे परिपूर्ण हो गया ॥३८॥ तत्पश्चात् हम लोगोका वध करनेके लिए उसने उसी जग्नं दशों दिशाओंको धूस तथा अंगारकी वर्षा करनेवाली अग्निसे पिछर वर्ण—पीत वर्ण कर दिया ॥३९॥ जो विद्या ज्ञः वर्षसे भी अधिक समयमें बड़ी कठिनाईसे सिद्ध होती है वह विद्या उपसर्गका निमित्त पाकर आज ही सिद्ध हो गई ॥४०॥ हे महाभाग । यदि इस आपत्तिके समय आप यहाँ नहीं होते तो निश्चित ही हम सब दोनों मुनियोंके साथ-साथ वनमे जल जाती ॥४१॥

साधु साध्विति संस्मित्य ततो मारुतिरब्रवीत् । 'भवतीनां श्रमः श्लाघ्यः फलयुक्तश्च निश्चयः ॥१२॥
 अहो वो विमला बुद्धिरहो स्थाने मनोरथः । अहो भव्यत्वमुत्तुङ्गं येन विद्या प्रसाधिता ॥१३॥
 आत्मातं च क्रमात् सर्वं यथावृत्तं सविस्तरम् । पद्मागमादिकं यावदात्मागमनकारणम् ॥१४॥
 तत्तश्च श्रुतवृत्तान्तो गन्धर्वोऽमरया सह । समागतो महातेजास्तमुद्देशं सहानुगः ॥१५॥
 नभश्चरसमायोगे देवागमनसन्निभे । ज्ञेयं तद्वनं जातं सर्वं नन्दनसुन्दरम् ॥१६॥
 किष्किन्धं च पुरं गत्वा भूत्वा दुहितुभिः समम् । शासने पद्मनाभस्य गन्धर्वो रतिमाश्रयत् ॥१७॥
 ताश्च निस्सीमसौभाग्या विभूत्या परयान्विताः । उपनिन्ये पराः कन्या रामाद्यान्निष्ठकर्मणे ॥१८॥
 पृताभिरपरामिश्च सेव्यमानो विभूतिभिः । अपश्यन् जानकों पद्मो मेने शून्या दिशो दृश ॥१९॥

अतिरुचिरावृत्तम्

गुणान्वितैर्भवति जवैरलङ्कृता समस्तभूः शुभललितैः सुसुन्दरैः ।
 विना 'जनं मनसि कृतास्पदं सदा व्रजत्यसौ गहनवनेन तुल्यताम् ॥५०॥
 पुराकृतादृतिनिधितात् समुत्कटाजिनः परां रतिमनुयाति कर्मणः ।
 ततो जगत्सकलमिदं स्वगोचरे प्रवर्तते विधिरविणा प्रकाशते ॥५१॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यैर्षोके पद्मपुराणे पद्मस्य गन्धर्वकन्यालामाभिधानं नाम एकपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५१॥

तदनन्तर हनुमान्ने 'ठीक है' 'ठीक है' इस तरह मन्दहास पूर्वक कहा कि आप लोगोंका श्रम प्रशंसनीय है तथा निश्चित ही फलसे युक्त है ॥४२॥ अहो ! तुम सबकी बुद्धि निर्मल है । अहो ! तुम सबका मनोरथ योग्य स्थानमें लगा । अहो ! तुम्हारी उत्तम होनहार थी जिससे यह विद्या सिद्ध की ॥४३॥ तत्पश्चात् हनुमान्ने रामके आगमनको आदि लेकर अपने वहाँ आने तक का समस्त वृत्तान्त धींका धींका विस्तारके साथ क्रमपूर्वक कहा ॥४४॥ तदनन्तर समाचार सुन कर महा तेजस्वी गन्धर्व राजा अपनी अमरा नामकी रानी और अनुचरोंके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥४५॥ इस प्रकार ज्ञान भरमें वह समस्त वन देवागमनके समान विद्याधरोंका समागम होनेसे नन्दन वनके समान हो गया ॥४६॥ तदनन्तर राजा गन्धर्व पुत्रियोंको साथ ले वड़े वैभवसे किष्किन्धपुर गया और वहाँ रामकी आज्ञामें रह कर प्रीतिको प्राप्त हुआ ॥४७॥ उसने असीम सौभाग्यकी धारक तथा परम विभूतिसे युक्त तीनों उत्कृष्ट कन्याएँ शान्त चेष्टाके धारक रामके लिये समर्पित की ॥४८॥ सो राम इन कन्याओंसे तथा अन्य विभूतियोंसे यद्यपि सेव्यमान रहते थे तथापि सीताको न देखते हुए वे दशो दिशाओंको शून्य मानते ॥४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यद्यपि समस्त भूमि गुणोंसे सहित, शुभ चेष्टाओंके धारक तथा अतिशय सुन्दर मनुष्योंसे अलङ्कृत रहे तो भी मनमें वास करनेवाले मनुष्यके विना वह भूमि गहन वन की तुल्यता धारण करती है ॥५०॥ पूर्वोपासित तथा तीव्र रूपसे वन्धको प्राप्त हुए उत्कट कर्मसे यह जीव परम रतिको प्राप्त होता है और उस रतिके कारण वह समस्त संसार अपने अधीन रहता है तथा कर्म रूपी सूर्यसे प्रकाशमान होता है ॥५१॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्यकथित पद्मपुराणमें रामको गन्धर्व कन्याओंकी आसिका वर्णन करनेवाला इक्कावनवौं पर्व समाप्त हुआ ॥५१॥

१. 'भवतीनां श्रमः' इत्याख्य 'अहो वो विमला बुद्धिरहो स्थाने मनोरथः' इत्यन्तः पाठः ल० युक्तो नास्ति । २. जवैः म० ।

द्विपञ्चाशत्तमं पर्व

असी पवनपुत्रोऽपि प्रतापाढ्यो महाबलः । त्रिकूटाम्बुखोऽयासीत् सोमवन्मन्दरं प्रति ॥१॥
 अथास्य धनतो ज्योतिर्न सुमहाकाशुकाकृतिम् । वक्रमेण्याप्रतीकाशं जातं सैन्यं निरोधवत् ॥२॥
 उवाच च गतिः केन मम सैन्यस्य विन्निता । अहो विज्ञायता चित्रं कस्येदमनुचेष्टितम् ॥३॥
 किं स्यादसुरनाभोऽयं चमरो गर्वपर्वतः । आलण्डलः शिखण्डी वा नैवामेकोऽपि युज्यते ॥४॥
 प्रतिमा किन्तु जैनेन्द्री शिखरेऽस्य महीमृतः । अवेद् वा भगवान् कश्चिन्मुनिश्चरमविग्रहः ॥५॥
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वितर्ककृतवर्षनम् । मन्त्री पृथुमतिर्नाम वान्यमेतदुदाहरत् ॥६॥
 निवर्त्तस्व महाबुद्धे श्रीशैल ननु किं तव । क्रूरयन्त्रयुतो नार्यं मायाशालो मतिं गतः ॥७॥
 चक्षुस्ततो नियुज्यासावपदत्यपन्नलोचनः । दुःप्रवेशं महाशालं विरकस्त्रीमनःसमम् ॥८॥
 अनेकाकारवक्त्राढ्य भीममाशालिकात्मकम् । त्रिदशैरपि दुर्गैर्न सर्वमर्थं प्रभासुरम् ॥९॥
 सङ्कोक्ततीक्ष्णाग्रमृकचाचलिवेष्टितम् । रुधिराद्गारजिह्वाग्रसहजविलसचटम् ॥१०॥
 स्फुरद्भुजङ्गविस्फारिकाधूतारशब्दितम् । विषभूमान्धकारान्तज्वलद्गारदुःसहम् ॥११॥
 यत्तं सर्पतिं मूढात्मा क्षीर्यमानसमुद्धतः । निःकामति न भूयोऽसी मण्डूकोऽहिमुखादिव ॥१२॥
 लङ्काशालपरिचेष सूर्यमार्गसमुत्तमम् । दुर्लभं दुर्गिरीचयं च सर्वदिक्षु सुयोजितम् ॥१३॥
 युगान्तकालमेधौघनिर्घोषसमीपणम् । हिंसाग्रन्थमिवात्यन्तपापकर्मविनिर्मितम् ॥१४॥

अथानन्तर प्रतापसे सहित महाबलवान् हनुमान् त्रिकूटाचलके सन्मुख इस प्रकार चला जिस प्रकार कि सुमेरुके सन्मुख सोम चलता है ॥ १ ॥ तदनन्तर आकाशमे चलते हुए हनुमान् की सेना अचानक रुककर किसी बड़े धनुषके समान हो गई और ऐसी जान पड़ने लगी मानो कुटिल मेघोका समूह ही हो ॥ २ ॥ यह देख, हनुमान्ने कहा कि मेरी सेनाकी गति किसने रोकी है ? अहो ! शीघ्र ही मालूम करो कि यह किसकी चेष्टा है ? ॥ ३ ॥ क्या यहाँ असुरोंका इन्द्रचमर है, अथवा इन्द्र है या शिखण्डी है ? अथवा इनमेसे यहाँ एकका भी होना उचित नहीं जान पड़ता ॥ ४ ॥ किन्तु हो सकता है कि इस पर्वतकी शिखर पर जैनेन्द्र भगवान्की प्रतिमा हो, अथवा कोई ऐश्वर्यवान् चरम शरीरी मुनिराज विराजमान हो ॥ ५ ॥ तदनन्तर हनुमान्के वितर्कपूर्ण वचन सुनकर पृथुमति मन्त्रीने यह वचन कहे कि हे महाबुद्धिमन् श्रीशैल ! तुम शीघ्र ही लौट जाओ, तुम्हें इससे क्या प्रयोजन है ? यह आगे क्रूर यन्त्रोंसे युक्त मायामयी कोट जान पड़ता है ॥ ६-७ ॥ तत्पश्चात् कमललोचन हनुमान्ने स्वयं दृष्टि डालकर उक्त मायामयी महाकोटको देखा । वह कोट विरक्त स्त्रीके मनके समान दुष्प्रवेश था ॥ ८ ॥ अनेक आकारके मुखोंसे सहित था, भयङ्कर पुतलियोंसे युक्त था, सबको भक्षण करनेवाला था, देदीप्यमान था और देवोंके द्वारा भी दुर्गन्ध था ॥ ९ ॥ जिनके अग्रभाग संकटसे उत्कट तथा अत्यन्त तीक्ष्ण थे ऐसी करोतीकी श्रेणीसे वह कोट वेष्टित था, तथा उसके तट रुधिरको उगलनेवाली हजारों जिह्वाओंके अग्रभागसे सुशोभित थे ॥ १० ॥ चञ्चल सर्पोंके तने हुए फणाओंकी शूत्कारसे शब्दायमान था तथा जिनसे विपैला धूम रूपी अन्धकार उठ रहा था ऐसे जलते हुए अंगारोंसे ढुंढुंहा था ॥ ११ ॥ शूर वीरताके अहंकारसे उद्धत जो मनुष्य उस कोटके पास जाता है वह फिर उस तरह लौटकर नहीं आता जिस प्रकार कि सोंपके मुखसे मेंढक ॥ १२ ॥ यह लंकाके

१. चक्रे, मेध्या प्रतीकाश म० । २. तिरोभवत् म० । ३. खगतिः म० । ४. विन्निता म० ।
 ५. सुमीश्वरमविग्रहः (?) म० । ६. महान् बुद्धे ख० । ७. युतेनार्यं म०, न० । ८. जिह्वाग्रं म० ।

तं दृष्ट्वा मास्तुतिर्दध्यावहो नाथेन रक्षसाम् । दाक्षिण्यमुज्जितं पूर्वं मायाप्रकारकारिणा ॥१५॥
 उन्मूलयन्निदं यन्त्रं विद्याबलसमुज्जितम् । मानसुन्मूलयाम्यस्य ध्यानी मोहमलं यथा ॥१६॥
 युद्धे च मानसं कृत्वा तत्सैन्यं १६० महास्वयम् । गगने सागराकारं समयेतिष्ठिषत् सुधाः ॥१७॥
 विद्याकवचयुक्तं च १६१ कृत्वात्मानं गदाकरः । विषेयं सालिकावकं राहुवक्त्रं रविर्धया ॥१८॥
 ततः कुचिगुहां तस्याः परीतकैकसावृताम् । विद्यानखैरलं तीक्ष्णैः कैसरीयं व्यपादयत् ॥१९॥
 निर्दयेऽथ गदावातेधौरोधौपरचूर्णयत् । घातिकर्मस्थितिं यद्वृद्धयानी भावैः सुनिर्मलैः ॥२०॥
 अथाशालिकविद्यायां यावत्ता भेदं भयावहम् । समो नीलाम्बुवाहानामभूच्छटवृट्पानिः ॥२१॥
 तेन सम्मान्यमानोऽसौ शालो नष्टोऽतिचञ्चलः । स्तोत्रेणैव जितेन्द्राणां कलुषः कर्मसञ्चयः ॥२२॥
 ततस्तन्निदं श्रुत्वा युगान्तजलदोन्नतम् । दृष्ट्वा विशीर्यमाणं च यन्त्रप्रकारमण्डलम् ॥२३॥
 १२४ राजन् वज्रमुखः क्रुद्धः शालरक्षाधिकारवान् । त्वरितं रथमारुह्य सिंहो दावसिवाभ्यगात् ॥२४॥
 ततोऽभिमुखमेतस्य वीक्ष्य मास्तनन्दनम् । नानाधानयुधा बोधाः प्रचण्डा योद्धुमुद्यतः ॥२५॥
 बलं १२५ बाणमुखं दृष्ट्वा प्रबलं योद्धुमुद्यतम् । परमं शोभमायातं हनून्मत्सैन्यमुत्थितम् ॥२६॥
 किमत्र बहुलोकेन प्रवृत्तं तत्तथा रणम् । यथा स्वामिकृते पूर्वं सम्माननविमानने ॥२७॥

कोटका घेरा सूर्यके मार्ग तक ऊँचा है, दुर्लभ्य है, दुर्निरीक्ष्य है, सब दिशाओंमें फैला है, प्रलय कालीन मेघसमूहकी गर्जनाके समान तीव्रण गर्जनासे भयङ्कर है, तथा हिसामय शास्त्रके समान अत्यन्त पापकर्मा जनोंके द्वारा निर्मित है ॥ १४ ॥ उसे देखकर हनुमान्ने विचार किया कि अहो ! मायामयी कोटका निर्माण करनेवाले रावणने अपनी पहलेकी सरलता छोड़ दी है ॥ १५ ॥ मैं विद्याबलसे बलिष्ठ इस यन्त्रको उखाड़ता हुआ इसके मानको उस तरह उखाड़ दूँगा, जिस तरह कि ध्यानी मनुष्य मोहको उखाड़ देता है ॥ १६ ॥

तदनन्तर बुद्धिमान् हनुमान्ने युद्धमें मन लगाकर अर्थात् युद्धका विचार कर अपनी गरजती हुई समुद्राकार सेनाको तो संकेत देकर आकाशमें खड़ा कर दिया और अपने स्वयं विद्यामय कवच धारणकर तथा गदा हाथमें ले पुतलीके मुखमें उस तरह घुस गया जिस तरह कि राहुके मुखमें सूर्य प्रवेश करता है ॥ १७-१८ ॥ तत्परचात् चारों ओरसे हड्डियाँसे आवृत उस पुतलीकी उदररूपी गुहाको उसने सिंहकी भोंति विद्यामयी तीक्ष्ण नखोंसे अच्छी तरह चीर डाला ॥ १९ ॥ और भयंकर शब्द करनेवाले गदाके निर्दय प्रहारोंसे उसे उस प्रकार चूर-चूर कर डाला जिस प्रकार कि ध्यानी मनुष्य अपने अतिशय निर्मल भावोंसे वातिया कर्मोंकी स्थितिको चूर-चूर कर डालता है ॥ २० ॥ तदनन्तर भङ्गको प्राप्त होती हुई आशालिक विद्याका नील मेघोंके समान भयंकर चट-चट शब्द हुआ ॥ २१ ॥ उस शब्दसे यह अतिशय चंचल मायामय कोट इस प्रकार नष्ट हो गया जिस प्रकार कि जितेन्द्र भगवान्की स्तुतिसे पापकर्मोंको समूह नष्ट हो जाता है ॥ २२ ॥ तदनन्तर प्रलयकालके मेघोंके समान उन्नत उस शब्दको सुनकर तथा यन्त्रमय कोटको नष्ट होता देख, कोटकी रक्षाका अधिकारी वज्रमुख नामका राजा कुपित हो शीघ्र ही रथ पर आरुढ़ हो हनुमान्के सन्मुख उस प्रकार आया जिस प्रकार कि सिंह दावानलके सन्मुख जाता है ॥ २३-२४ ॥ तदनन्तर हनुमान्को उसके सन्मुख देख, नाना प्रकारके वाहनों और शस्त्रोंसे सहित प्रचण्ड योधा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥ २५ ॥ इधर वज्रमुखकी प्रबल सेनाको युद्धके लिए उद्यत देख परम क्षोभको प्राप्त हुई हनुमान्की सेना भी युद्धके लिए उठी ॥ २६ ॥ आचार्य कहते हैं कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? उन दोनों सेनाओंमें उस तरह युद्ध हुआ जिस तरह कि पहले स्वामीके द्वारा किये हुए सम्मान और तिरस्कारमें होता है ॥ २७ ॥

१. -मूर्जित म० । २. -कारिणा म० । ३. मोहमलं म०, ख० । ४. सुमहास्वन् म० । ५. कृत्वा मानं म० । ६. राजा म० । ७. वज्रमुखं म० । ८. सम्मानन म०, व० ।

स्वामिनो दृष्टिर्मागस्थाः सुभटाः कृतगर्जिताः । जीवितेष्वपि विस्नेहा वम्बुः किमिहोच्यताम् ॥२८॥
ततः कपिश्वजैर्भोगाश्चिरकृतमहाहवाः । वज्रायुधस्य निर्भेगाः क्षणान्निपुणितस्ततः ॥२९॥
चक्रेणानिलसुनुश्च तेजोऽहरत् विद्विषाम् । ऋचविम्बमिवाकाशादपातयदरेः शिरः ॥३०॥
संख्ये पितृवर्धं दृष्ट्वा तं लङ्कासुन्दरी तदा । नियम्य कृच्छृतः शोकममर्षविषदूषिता ॥३१॥
जवनाश्वरथारूढा कुण्डलोद्योतितानना । शरासनायतोरस्का कुञ्चितभ्रूलतायुगा ॥३२॥
उत्केत्र सङ्गतादित्यतेजोमण्डलवारिणी । धूमोद्गारसमायुक्ता घनप्राग्भारवर्तिनी ॥३३॥
संरम्भवशस्त्रफुल्ललोहिताम्भोजलोचना । क्रूरसंदष्टविम्बोष्ठी क्रुद्धेन श्रीः शनोपतेः ॥३४॥
अथावदिषुमुद्गुल्य कृत्यमाना मनोहरा । मया श्रीशैल इष्टोऽसि तिष्ठ ते शक्तिरस्ति चेत् ॥३५॥
अद्य ते रावणः क्रुद्धो नमश्चरमहेश्वरः । करिष्यति यदेतत्तु करोमि हतचेष्टित ॥३६॥
^१ ह्यं यमालयं पापं भवन्त प्रेयान्महम् । दिग्मूढ इव जातस्त्वमनिष्टस्यानगोरः ॥३७॥
तस्यास्त्वरितमायान्था यावच्छत्रमपातयत् । बाणेन तावदेतस्य तथा चापं द्विधा कृतम् ॥३८॥
सा यावद्व्यूहोच्छ्रक्ति तावद्भामाकतिना शरैः । नमरुद्धं समायान्ती मित्रा शक्तिश्च सान्तरे ॥३९॥
सा विद्याबलगम्भीरा वज्रदण्डसमान् शरान् । परशुकुन्तचक्राणि शतघ्नीमुशालान् ^२ शिलाः ॥४०॥
बर्षं धायुषवस्य रथे हिमवदुक्ते । विकाले वारिणो भेदान् मेघसन्ध्या यथोन्नता ॥४१॥

जो योद्धा स्वामीकी दृष्टिके मार्गमें स्थित थे अर्थात् स्वामी जिनकी ओर दृष्टि उठाकर देखता था वे योद्धा गर्जना करते हुए प्राणोंका भी स्नेह छोड़ देते थे इस विषयमें अधिक क्या कहा जाय ? ॥ २८ ॥ तदनन्तर जिन्होंने चिरकाल तक बड़े-बड़े युद्ध किये थे ऐसे वज्रायुद्धके योद्धा वानरोके द्वारा क्षणभरमें पराजित होकर इधर-उधर नष्ट हो गये—भाग गये ॥ २९ ॥ और हनूमानने चक्रके द्वारा शत्रुओंका तेज हर लिया तथा नक्षत्र विम्बके समान शत्रुका शिर काटकर आकाशसे नीचे गिरा दिया ॥ ३० ॥ युद्धमें पिताका वध देख वज्रायुधकी पुत्री लंकासुन्दरी कठिनाईसे शोकको रोककर क्रोधरूपी विषसे दूषित हो हनूमानकी ओर दौड़ी । उस समय वह वेगशाली घोड़ोंके रथ पर बैठी थी, कुण्डलोंके प्रकाशसे उसका मुख प्रकाशित हो रहा था, धनुषके समान उसका वक्षःस्थल आयात था, उसकी दोनों शृङ्खलियाँ टेढ़ी हो रही थीं, वह ऐसी जान पड़ती थी मानो उल्का ही प्रकट हुई हो, वह सूर्यके समान तेजका मण्डल धारण कर रही थी, घूमके उद्गारसे सहित थी, अर्थात् उसके शरीरसे कुछ कुछ धुआँ-सा निकलता दिखता था और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो मेघसमूहके बीचमें विद्यमान थी, क्रोधके कारण उसके नेत्र फूले हुए लाल कमलके समान जान पड़ते थे, वह क्रोधसे अपना ओठ चाब रही थी, तथा ऐसी जान पड़ती थी मानो क्रोधसे भरी इन्द्रकी लक्ष्मी ही हो ॥ ३१-३४ ॥ वह देखनेमें सुन्दर थी तथा अपनी प्रशंसा कर रही थी, इस तरह धनुष पर बाण चढ़ाकर वह दौड़ी और बोली कि अरे श्रीशैल ! मैंने तुम्हें देख लिया है, यदि तुम्हें कुछ शक्ति है तो खड़ा रह ॥ ३५ ॥ आज क्षुपित हुआ विद्याधरोंका राजा रावण तेरा जो कुछ करेगा रे नीच ! वही मैं तेरा करती हूँ ॥ ३६ ॥ यह मैं तुम्हें पापीको यमराजके घर भेजती हूँ, तू दिग्भ्रान्तकी तरह आज इस अशिष्ट स्थानमें आ पड़ा है ॥ ३७ ॥ वेगसे आती हुई लंकासुन्दरीका छत्र जब तक हनूमानने नीचे गिराया तब तक उसने एक बाण छोड़ कर हनूमानके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥ ३८ ॥ लंकासुन्दरी जब तक शक्ति नामक राक्ष उठाती है तब तक हनूमानने बाणोंसे आकाशको आच्छादित कर दिया और आती हुई उसकी शक्तिको बीचमें ही तोड़ डाला ॥ ३९ ॥ विद्याबलसे गम्भीर लंकासुन्दरीने हनूमानके हिमालयके समान ऊँचे रथपर वज्रदण्डके समान बाण, परशु, कुन्त, चक्र, शतघ्नी, सुसल तथा शिलाएँ उस प्रकार वरसाईं जिस प्रकार कि उत्पातके समय उच्च

१. कच्छमाना म० । २. मनोहरं ख०, ज०, क० । ३. हतचेष्टितः म० । ४. इमं म० । ५. शिलान् म० ।

तथा नानाशुशोभैः सर्ववेगसमीरितैः । आच्छाद्यत महातेजाः शुचिसूर्य इवाम्बुदैः ॥४२॥
 विक्रान्तः स च शङ्खौघमनिर्विण्णोऽन्तरस्थितम् । व्यपोहत निवैः शक्तैः मायाविधिविशारदः ॥४३॥
 शराः शरैरुप्यन्त तोमराद्याः स्वजातिभिः । शक्तयः शक्तिभिर्बुद्धा समोष्ठा दूरमुद्युतः ॥४४॥
 चक्रक्रकचसर्वतकनकाटोपपिञ्जरम् । बभूव शीघ्रं व्योम विद्युद्गिरिव सङ्कुलम् ॥४५॥
 तं लङ्कासुन्दरी भूयो रूपेणालम्बयसिमा । धीरा स्वभावतो राजन् लक्ष्मीः कमललोचना ॥४६॥
 ज्ञानध्यानहरैः कान्तैर्दुर्दैर्गुणसज्जतैः । लावण्याहतसौन्दर्यैर्मनोऽन्तर्मेन्द्रकोविदैः ॥४७॥
 नेत्रचापविनिर्मुक्तैर्विन्ध्यधे स्मरसायकैः । तथेतरवनुमुक्तैः शरैराकर्णसंहतैः ॥४८॥
 विस्मये जगतः शक्ता सौभाग्यगुणगर्विता । तस्यालसक्रियस्यैवं प्रविष्टा हृद्रयोदरम् ॥४९॥
 शरशक्तिशतघ्नीभिर्न तथा समपीड्यत । यथा मदनबाणौघैर्ममदारणकारिभिः ॥५०॥
 इयं मनोहराकारा ललितैर्विशिष्टैरपि । सबाह्याभ्यन्तरं हृत्ति मामित्येवमचिन्तयत् ॥५१॥
 वरमस्मिन् दृष्टे मृत्युः पूर्वमाणस्य सायकैः । अनया विप्रयुक्तस्य अंबितं न सुरालये ॥५२॥
 चिन्तयत्येवमेवस्मिन् साग्न्यनङ्गेन चोदिता । त्रिकूटसुन्दरी कन्या कल्याणसकमानसा ॥५३॥
 विकस्मरमनोदेहं तं पद्मच्छद्रलोचनम् । अवालेन्दुमुखं बाल किरीटन्यस्तवानरम् ॥५४॥
 मूर्त्तियुक्तमिवानङ्गं सुन्दरं बाहुनन्दनम् । हन्तं समुद्यतां शक्तिं सज्जहार त्वरावती ॥५५॥

मेधावली नाना प्रकारके जल धरसाती है ॥४०-४१॥ उसके पूर्ण वेगसे छोड़े हुए नाना प्रकारके शस्त्र समूहसे महातेजस्वी हनूमान् उस तरह आच्छादित हो गया जिस प्रकार कि मेघोंसे आपादका सूर्य आच्छादित हो जाता है ॥४२॥ इतना सब होने पर भी खेदसे रहित, पराक्रमी एवं मायाके विस्तारमें निपुण हनूमान्ने अपने शस्त्रोंके द्वारा उसके शस्त्र समूहको बीचमें ही दूर कर दिया ॥४३॥ उसके बाण बाणोंसे छुप हो गये, तोमर आदि तोमर आदिके द्वारा, तथा शक्तियों शक्तियोंके द्वारा खण्डित होकर उल्काओंके समान दूर जा गिरी ॥४४॥ चक्र, क्रकच, सर्वतक तथा कनक आदिके विस्तारसे पीतवर्ण आकाश ऐसा भयंकर हो गया मानो विजलियोंसे ही व्याप्त होगया हो ॥४५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! तदनन्तर रूपसे अनुपम, स्वभावसे धीर, कमललोचना, लक्ष्मीके समान लंकासुन्दरी, नेत्ररूपी धनुषसे छोड़े हुए कामके बाणों अर्थात् कटाक्षोंसे हनूमान्को डूबर जुदा भेद रही थी और डूबर अन्य धनुषसे छोड़े तथा कान तक खींचे हुए बाणोंसे जुदा भेद रही थी । लङ्कासुन्दरीके वे कामबाण, ज्ञान-स्थानके हरनेवाले थे, मनोहर थे, दुर्घर थे, गुणोंसे युक्त थे, लावण्यके द्वारा सौन्दर्यको हरनेवाले थे, और मनके भीतर भेदनेमें निपुण थे ॥४६-४८॥ इस तरह जगत्को आश्चर्य करनेमें समर्थ तथा सौभाग्यरूपी गुणसे गर्वित लंकासुन्दरी हनूमान्के हृदयके भीतर प्रविष्ट होगई ॥४९॥ वह हनूमान्, बाण, शक्ति तथा शतघ्नी आदि शस्त्रोंसे इस प्रकार पीड़ित नहीं हुवा था जिस प्रकार कि सूर्यको बिदारण करनेवाले कामके बाणोंसे पीड़ित हुवा था ॥५०॥ हनूमान् विचार करने लगा कि यह मनोहराकार की धारक, अपनी ललित चेष्टा रूपी बाणोंसे मुझे भीतर और बाहर दोनों ही स्थानों पर घायल कर रही है ॥५१॥ इस युद्धमें बाणोंसे मरकर मर जाना अच्छा है किन्तु इसके बिना स्वर्गसे भी जीवन विताना अच्छा नहीं है ॥५२॥ डूबर इस प्रकार हनूमान् विचार कर रहा था डूबर जिसका मन दयामें आलस्य था तथा जो त्रिकूटाचलकी अद्वितीय सुन्दरी थी ऐसी कन्या लंका सुन्दरीने कामसे प्रेरित हो, देवीप्यमान मन तथा शरीरके धारक, कमलदललोचन, तरुण चन्द्रवदन, मुकुट पर वानरका चिह्न धारण करनेवाले, नवयौवनसे युक्त एवं मूर्तिधारी कामदेवके समान सुन्दर हनूमान्को मारनेके लिए ठाई हुई शक्ति

दध्यौ च मारयाम्येतं कथं दोषमपि श्रितम् । रूपेणानुपमानेन क्षिप्ते मर्माणि यो मम ॥५६॥
यद्यनेन समं सक्ता कामभोगोदययुतिम्^१ । न निषेवे च लोकेऽस्मिन् ततो मे जन्म निष्फलम् ॥५७॥
अतः सपथमुद्दिश्य स्वनामाङ्गं हनूमते । प्रजिघाय शरं मुग्धा विह्वलेनान्तरात्मना ॥५८॥
पराजिता त्वया नाथ साहं मन्मथसायकैः । सुरैरपि न या शक्या जेतुं सङ्घातवर्तिभिः ॥५९॥
प्रवाच्य मारुतिर्वाणमङ्गं स्वैरसुपागतम् । घृतिं परां परिप्राप्नो रथादरमवातरत् ॥६०॥
उपसृत्य च तां कन्यां शृगेन्द्रसमविक्रमः । कृत्वाङ्गे गाढमालिङ्गत् कामो रतिमिवापरम् ॥६१॥
अथ^२ प्रशान्तवैरासावल्लुङ्गिर्नलोचना । तातप्रयाणशोकार्ता जगदे वायुसुनुना ॥६२॥
मा रोदीः सौम्यवक्त्रे^३ त्वमलं शोकेन भामिनि । विहिता गतिरेपैव क्षात्रधर्मे सनातने ॥६३॥
ननु ते ज्ञातमेवैतद्यथा राज्यविवौ स्थिताः । पित्रादीनपि निष्कन्ति वराः कर्मबलेरिताः ॥६४॥
वृथा रोदिषि किन्वेतद्ध्यानमार्तं विवर्जय । अस्मिन् हि सकले लोके विहितं भुज्यते प्रिये ॥६५॥
निहितोऽपमनेनेति द्विद्वज् व्याजमात्रकम् । आयुःकर्मालुभावेन प्राप्तकालो विपद्यते ॥६६॥
वचोभिरेभिरन्यैश्च युक्तशोका व्यराजत । सहिता वातिनां^४ यद्वदिन्दुना निर्घना निशा ॥६७॥
प्रेमनिर्भरपूर्णं तयोरालिङ्गनेन सः । सद्ग्रामजः श्रमो दूरमथायातः सुचेतसोः ॥६८॥

शीघ्र ही संहत करली—पीछे हटा ली ॥ ५६-५४ ॥ वह विचार करने लगी कि यद्यपि यह पिताके मारनेसे दोषी है तो भी जो अनुपम रूपसे मेरे मर्मस्थान विदार रहा है ऐसे इसे किस प्रकार मारूं ? ॥ ५६ ॥ यदि इसके साथ मिलकर कामभोगरूपी अभ्युदयका सेवन न करूं तो इस लोकमें मेरा जन्म लेना निष्फल है ॥ ५७ ॥ तदनन्तर विह्वल मनसे मुग्ध उस लंकासुन्दरीने समीचीन मार्गके उद्देश्यसे अपने नामसे अंकित एक बाण हनूमान्के पास भेजा ॥ ५८ ॥ उस बाणमें उसने यह भी लिखा था कि हे नाथ ! जो मैं इकट्ठे हुए देवोंके द्वारा भी नहीं जीती जा सकती थी वह मैं, आपके द्वारा कामके बाणोंसे पराजित हो गई ॥ ५९ ॥ गोदमें आये हुए उस बाणको अच्छी तरह बॉच कर परम धैर्यको प्राप्त हुआ हनूमान् शीघ्र ही रथसे उतरा ॥ ६० ॥ और उसके पास जाकर सिंहके समान पराक्रमी हनूमान् उसे गोदमें बिठा उसका ऐसा गाढ आलिङ्गन किया मानो कामदेवने दूसरी रतिका ही आलिङ्गन किया हो ॥ ६१ ॥

तदनन्तर जिसका बैर शान्त हो गया था, जिसके नेत्रोंसे दुर्दिनकी भौंति अविरल अश्रुओंकी वर्षा हो रही थी तथा जो पिताके मरण-सम्बन्धी शोकसे पीड़ित थी ऐसी उस लंकासुन्दरीसे हनूमान्ने कहा ॥ ६२ ॥ कि हे सौम्यमुखि ! रोओ मत ! हे भामिनि ! शोक करना व्यर्थ है । सनातन क्षत्रिय धर्मकी तो यही रीति है ॥ ६३ ॥ यह तो तुम्हें विहित ही है कि राजकार्यमें स्थित मनुष्य, कर्मबलसे प्रेरित हो पिता आदिको भी मार डालते हैं ॥ ६४ ॥ व्यर्थ ही क्यों रोती हो ? इस आर्तव्यानको छोड़ो । हे प्रिये ! इस समस्त संसारमें अपना किया हुआ ही सब भोगते हैं अर्थात् जो जैसा करता है वैसा भोगता है ॥ ६५ ॥ 'यह शत्रु इसके द्वारा मारा गया' यह कहना तो झलसात्र है यथार्थमें तो आयुर्कर्मके प्रभावसे समय पाकर यह जीव मरता है ॥ ६६ ॥ इस प्रकार इन तथा अन्य वचनोंसे जिसका शोक छूट गया था ऐसी लंकासुन्दरी हनूमान्के साथ इस प्रकार सुशोभित हो रही थी जिस प्रकार कि मेघरहित रात्रि चन्द्रमाके साथ सुशोभित होती है ॥ ६७ ॥ तदनन्तर उत्तम हृदयके धारक उस दोनोंका संग्रामसे उत्पन्न हुआ श्रम, प्रेमरूपी निर्भरसे परिपूर्ण आलिङ्गनके द्वारा दूर भाग गया ॥ ६८ ॥

१. युतिः म० । कामभोगादय युतिम् ज० । २. प्रोवाच म० । ३. प्रशान्तवैरा + अत्यौ + अवल्लुङ्गिन् ।
४. सौम्यवक्त्रे म० । ५. वात्स्यापत्यं पुमान् वातिः, तेन हनूमता ।

सतो यत्र नभोदेशे स्तम्भिन्या विद्यया खंगाः । स्तम्भिता बलमत्रैव रचितावासमाश्रितम् ॥६६॥
 सन्ध्यात्काभ्रसङ्काशं गीर्वाणनगरोपमम् । श्रीशैलस्य तद्व्यन्तं शिविरं पर्यराजत ॥७०॥
 गजवाजिदिमानस्या रथस्थारश्च महानृपाः । तत्पुरं ध्वजमालाढ्यं विविशुः घृष्टवातयः ॥७१॥
 स्थितास्तत्र यथान्यायं लब्धोत्साहसमुत्सवाः । कथाभिरतिचित्राभिः सुरसङ्ग्रामजन्मभिः ॥७२॥
 अथ तत्स्मरितामानं वार्तिं गन्तुं समुद्यतम् । बाला विश्रब्धमप्राचीदिति प्रेमपरायणा ॥७३॥
 विविधागोभिरापूर्णः श्रुतदुःसहविक्रमः । कान्तं लङ्कां किमर्थं त्वं वद गन्तुं समुद्यतः ॥७४॥
 तस्यै जगाद वृत्तान्तमशेषं वायुनन्दनः । कृत्यं प्रत्युपकारस्य बान्धवैरनुमोदितम् ॥७५॥
 सीतया सह रामस्य भद्रे भद्रसमागमः । हतया राक्षसेन्द्रेण कर्तव्यः सर्वथा मया ॥७६॥
 साञ्जवीव समतिक्रान्तं सौहार्दं तत्पुरातनम् । श्रद्धास्नेहस्ये नष्टा प्रदीपस्य यथा शिखा ॥७७॥
 आसीद् रथ्योपशोमाढ्यां ध्वजमालाकुलीकृतम् । प्राविचदादतो लङ्कां भवान् दिवमिवामरः ॥७८॥
 अधुना त्वयि दोषाख्ये रावणश्रेष्ठशासनः । प्रकाशं ब्रजति क्रोधं गृहीष्यति न संशयः ॥७९॥
 यदोपलभ्यते चार्त्तं विशुद्धिः कालदेशयोः । विशुद्धात्मानमध्यग्रं तदा तं दण्डमर्हसि ॥८०॥
 एवमेवेति सोऽबोधयद्भवीपि विचक्षणः । आकृतं तस्य विज्ञातुं गत्वा बान्धवाभि सुन्दरि ॥८१॥
 कीदृशी वा सती सीता रूपेण प्रथिता भवेद् । चालितं मेखबद्धीरं रावणस्य मनो यथा ॥८२॥

तदनन्तर स्तम्भिनी विद्याके द्वारा आकाशके जिस प्रदेशमें विद्याधर रोक दिये गये थे प्रदेशमें आकाश बनाकर वह सेना ठहराई गई ॥६६॥ सन्ध्याके रक्त मेघके समान दिखनेवाला उसी हनूमान्का वह शिविर देवनगरके तुल्य अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥७०॥ उस सेनामें जो बड़े-बड़े राजा थे उन्होंने हनूमान्से पूछकर हाथियों, घोड़ों, विमानों तथा रथोंपर सवार हो ध्वजाओंके समूहसे युक्त उस नगरमें प्रवेश किया ॥७१॥ वे शूर-वीरोके संग्रामसे उत्पन्न नाना प्रकारकी कथाएँ करते हुए उस नगरमें उत्साह और उल्लासको प्राप्तकर यथायोग्य ठहरे ॥७२॥

अथानन्तर जिसका मन शीघ्रतासे युक्त था ऐसे हनूमान्को जानेके लिए उद्यत देख प्रेमसे भरी लङ्कासुन्दरीने एकान्तमें उससे पूछा कि ॥७३॥ हे नाथ ! आप रावणके दुःसह पराक्रमकी बात सुन चुके हैं और स्वयं नाना अपराधोंसे परिपूर्ण हैं फिर किसलिए लंका जानेको उद्यत हैं सो तो कहो ॥७४॥ इसके उत्तरमें हनूमान्ने उसे सब वृत्तान्त कहा और यह बताया कि प्रत्युपकारका करना बन्धुजनोंके द्वारा अनुमोदित है ॥७५॥ हे भद्रे ! राक्षसोंका इन्द्र रावण सीताको हर ले गया है सो उसके साथ रामका समागम मुझे अवश्य कराना है ॥७६॥ यह सुन लंका-सुन्दरीने कहा कि रावणके साथ आपका जो पुराना सौहार्द था वह नष्ट हो चुका है जिस प्रकार तैलके नष्ट हो जानेसे दीपकी शिखा नष्ट हो जाती है उसी प्रकार आपके प्रति श्रद्धाके नष्ट हो जानेसे रावणका सौहार्द नष्ट हो गया है ॥७७॥ एक समय था कि जब आपमागोंकी शोभासे युक्त तथा ध्वजाओंकी पंक्तिसे अलंकृत लङ्कामें बड़े आदरके साथ उस तरह प्रवेश करते थे जिस तरह कि देव स्वर्गमें प्रवेश करता है ॥७८॥ परन्तु आज आप अपराधी होकर यदि लंकामें प्रकट रूपसे जाते हैं तो कठोर शासनको धारण करनेवाला रावण आपपर क्रोध प्रहण करेगा इसमें संशय नहीं है ॥७९॥ अतः जिस समय देश और कालकी उत्तम शुद्धि-अनुकूलता प्राप्त हो तथा रावणका हृदय शुद्ध एवं व्यग्रता रहित हो उस समय उसका साक्षात्कार करना योग्य है ॥८०॥ इसके उत्तरमें हनूमान्ने कहा कि विदुषि ! तुमने जैसा कहा है यथार्थमें वैसा ही है । किन्तु हे सुन्दरि ! मैं रावणका अभिप्राय जानना चाहता हूँ ॥८१॥ और यह भी देखना चाहता हूँ कि वह

एवमुक्त्वा मरुपुत्रस्तद्विन्यस्तमहाबलः । तथा युक्तो विवेकिन्या त्रिकूटाभिमुखं ययौ ॥८३॥

- दोषकवृत्तम्

चित्रमिदं परमत्र नृलोके, यत्परिहाय नृशं रसमेकम् ।
तत्क्षणमेव विशुद्धशरीरं जन्तुरूपंति रसान्तरसङ्गम् ॥८४॥
कर्मविचेष्टितमेतदयुस्मिन् किन्त्वथवाद्भुतमस्ति निसर्गं ।
सर्वमिदं स्वशरीरनिबद्धं दक्षिणमुत्तरतश्च रवीहा ॥८५॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनूमत्पञ्चासुन्दरीकन्यालामाभिधानं नाम
द्विपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५२॥

सती सीता कैसी रूपवती है कि जिसने मेरुके समान धीर, वीर रावणका मन विचलित कर दिया है ॥८२॥ इस प्रकार कहकर तथा अपनी सेना उसीके पास छोड़कर हनूमान् उस विवेकवतीसे छूटकर त्रिकूटाचलकी ओर चला ॥८३॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! इस संसारमे यह परम आश्चर्यकी बात है कि प्राणी एक रसको छोड़कर उसी क्षण विशुद्ध रूपको धारण करनेवाले दूसरे रसको प्राप्त हो जाता है ॥८४॥ सो इस संसारमें यह प्राणियोंके कर्मकी ही अद्भुत चेष्टा है । जिस प्रकार सूर्यकी गति कभी दक्षिण दिशाकी ओर होती है और कभी उत्तर दिशाकी ओर । उसी प्रकार प्राणियोंके शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाला यह सब व्यवहार कर्मकी चेष्टानुसार कभी इस रसरूप होता है और कभी उस रसरूप होता है ॥८५॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें हनूमान्को लका-
सुन्दरी कन्याकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला चावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५२॥

त्रिपञ्चाशत्तमं पर्व

मगधेन्द्र ततो वातिः प्रभादोदयसङ्गतः । लङ्कां विवेश निःशङ्कः स्वल्पानुगसमन्वितः ॥१॥
 द्वारे च रचिताभ्यर्चं विभीषणनिकेतनम् । विवेश योग्यमेतेन सम्मानं च समाहृतः ॥२॥
 ततः स्थित्वा क्षणं किञ्चित् संस्पृष्टाग्निः परस्परम् । वार्ताभिरिति सद्वाक्यं व्याजहार मत्स्रुतः ॥३॥
 उचितं किमिदं कर्तुं यद्वास्याह्वयपतिः स्वयम् । क्रुते क्षुद्रवल्कलचिह्नोरणं परयोपितः ॥४॥
 मर्यादानां नृपो मूलमापगानां यथा वसः । अनाचारे स्थिते तस्मिन् लोकस्तत्र प्रवर्तते ॥५॥
 ईदृशे चरिते कृत्ये सर्वलोकविनिन्दिते । सहनीयं समस्तानां दुःखमेव्यति नो भ्रुवम् ॥६॥
 तत् क्षेमङ्करमस्माकं हिताय जगतां तथा । उच्यतां रावणः शीघ्रं वचो न्यायानुपालकम् ॥७॥
 यथा किल इदं लोके निन्दनीयं विचेष्टितम् । मा कार्षीः जगतो नाथ कीर्तिविश्वसकारणम् ॥८॥
 चिमलं चरितं लोके न केवलमिहेष्यते । किन्तु गीर्णलोकेऽपि रचिताञ्जलिभिः सुरैः ॥९॥
 कैकसीनन्दनोऽशोचद् बहुशोऽभिहितो मया । ततः प्रभृति नैवासौ मया सम्पाद्यते समम् ॥१०॥
 तथापि भवतो वाक्यान् नः समेत्य वरेवरम् । वक्तास्मि किन्तु दुःखेन त्यक्त्यत्येतदसौ ग्रहम् ॥११॥
 अहोऽर्थकादृशं जातं सीताया वक्ष्यचोष्णम् । तथापि विरतिः काचिह्वहेन्द्रस्य न जायते ॥१२॥
 तच्छ्रुत्वा वचन सद्यः महाकारुण्यसङ्गतः । प्रमदाह्वयमुद्यानं मारुतिर्गन्तुमुद्यतः ॥१३॥
 अपरयत्नं लताजालैस्तप्तं वैराकुलीकृतम् । अरुणैः पङ्क्तैः व्याप्तं वरुणीकरचारुभिः ॥१४॥

अथानन्तर-गौतम स्वामी कहते हैं कि हे मगधराज ! प्रभाव और अभ्युदयसे सहित तथा स्वल्प अनुचरोंसे युक्त हनूमान्ने निःशङ्क होकर लङ्कामें प्रवेश किया ॥१॥ वहाँ जिसके द्वारपर सत्कार किया गया था ऐसे विभीषणके महलमें प्रवेश किया और विभीषणने यथायोग्य उनका सम्मान किया ॥२॥ तदनन्तर वहाँ परस्पर इधर-उधरकी कुछ वार्ताएँ करते हुए क्षण भर ठहर कर हनूमान्ने इस प्रकारके सद्बचन कहे कि तीन खण्डका अधिपति किसी क्षुद्र मनुष्यकी तरह पर-स्त्रीकी चोरी करता है सो क्या ऐसा करना उचित है ? ॥३-४॥ जिस प्रकार पर्वत नदियोंका मूल है उसी प्रकार राजा मर्यादाओंका मूल है । यदि राजा स्वयं अनाचारमें स्थित रहता है तो उसकी प्रजा भी अनाचारमें प्रभृति करने लगती है ॥५॥ फिर ऐसा कार्य तो सर्वलोक विनिन्दित है—सब लोगोंकी निन्दाका पात्र है । इसके करने पर सब लोगोंको दुःख सहन करना पड़ता है और हम लोगोंको तो निश्चित ही दुःख प्राप्त होता है ॥६॥ इसलिए हम सबके कल्याणके लिए तथा जगत्के हितके लिए शीघ्र ही रावणसे ऐसे वचन कहिये जो न्यायकी रक्षा करनेवाले हों ॥७॥ उन्हें बतलाइये कि हे जगतके नाथ ! दोनों लोकोंमें निन्दनीय तथा कीर्तिको नष्ट करनेवाली चेष्टा मत कीजिये ॥८॥ निर्मल-निर्दोष चरित्रकी न केवल इस लोकमें चाह है अपितु स्वर्गलोकमें देव भी हाथ जोड़कर उसकी चाह करते हैं ॥९॥

तदनन्तर विभीषणने कहा कि मैंने रावणसे अनेक बार कहा है पर वह उस समयसे मेरे साथ बात ही नहीं करता है ॥१०॥ फिर भी आपके कहनेसे मैं कल राजाके पास जाकर कहूँगा किन्तु यह निश्चित है कि वह बड़े दुःखसे ही इस हठको छोड़ेगा ॥११॥ यद्यपि आज सीताको आहार पानी छोड़े ग्यारहवाँ दिन है तथापि लङ्काधिपतिको कुछ भी विरति है—इस कार्यसे रज्जुमात्र भी विरक्तता नहीं है ॥१२॥ विभीषणके यह वचन सुन महा दयाभावसे युक्त हनूमान् प्रमदोद्यानमें जानेके लिए उद्यत हुआ ॥१३॥ जाकर उसने उस प्रमदोद्यानको देखा जो कि नई-नई लताओंके

१. त्रिलङ्कामरताधिपः । २. विभीषणः । ३. त्यज्यते न ह्यसौ म० । ४. वल्लभोष्णम् म० । ५. तप्तं वैराकुलीकृतम् म० ।

अमरप्रावृत्तैर्गुणैः सुजातैर्बद्धशेखरम् । फलैरानतशाखाग्रं किञ्चित् पवनकम्पितम् ॥१५॥
 पद्मादिच्छादितैः स्वच्छैः सरोभिः सदलङ्कृतम् । भासुरं कल्पवल्लीभिः सङ्गताभिर्महातरुम् ॥१६॥
 शीतलकुलदेशाभं प्रसूनरजसावृतम् । नन्दनस्य दधत्साम्यमनेकाद्भुतसङ्कुलम् ॥१७॥
 ततो लीलां वहन् रम्भां बायू राजीवलोचनः । विवेश परमोद्यानं सीतादर्शनकाङ्क्षया ॥१८॥
 प्रजिघाप च सर्वासु दिक्षु चक्षुरतिस्वरम् । विविचद्रुमदेशेषु गहनेषु दलादिभिः ॥१९॥
 इष्टा च दूरतः सीतामन्यदर्शनवर्जितः । अचिन्तयदसी सैषा रामदेवस्य सुन्दरी ॥२०॥
 स्निग्धज्वलनसङ्काशा वाष्पपूरितलोचना । करविन्यस्तवक्त्रेन्दुमुक्तकेशी कुशोदरी ॥२१॥
 अहो रूपमिदं लोके जिताशेषमनोहरम् । परमां ख्यातिमायातं सत्यवस्तुनिबन्धनम् ॥२२॥
 रहिता शतपत्रेण नास्या लक्ष्मीः समा भवेत् । दुःखार्णवं गताभ्येषा सदशी नान्ययोपिता ॥२३॥
 निपत्य शिखरादद्रेस्स्य मृत्युमुपेयहम् । विरहे पद्मनाभस्य धारयामि न जीवितम् ॥२४॥
 कृतप्रचिन्तनामेव वैदेहीं पवनात्मजः । निःशब्दादसम्भातः प्राहो रूपान्तरं दधत् ॥२५॥
 ततोऽङ्गुलीयकं तस्या विसर्जयाम्बुवासलि । सहसा सा तमालोक्त्य स्मेराऽमूरपुलकाचिता ॥२६॥
 तस्यामेवमवस्थायाम् गात्रा नार्यस्वरान्विताः । तोषाद्वचनं दिष्ट्या रावणं तत्परायणम् ॥२७॥

समूहसे व्याप्त था, उत्तम स्त्रियोके हाथोंके समान सुन्दर लाल-लाल पल्लवाँसे युक्त था, अमरोसे आच्छादित सुन्दर गुच्छोंके द्वारा जिस पर सेहरा बँध रहा था, जहाँ फलोंके भारसे शाखाओंके अप्रभाग नम्रीभूत हो रहे थे, जो वायुके द्वारा कुछ-कुछ हिल रहा था, कमल आदिसे आच्छादित स्वच्छ सरोवरोसे जो अलङ्कृत था, जो वड़े-वड़े वृक्षोंसे लिपटी हुई कल्पलताओंसे देदीप्यमान था, जो देवकुल प्रदेशके समान जान पड़ता था, फूलोंकी परागसे आवृत था, अनेक आश्चर्योंसे व्याप्त था तथा नन्दनवनकी समानता धारण कर रहा था ॥१४-१७॥ तदनन्तर मनोहर लीलाको धारण करता हुआ कमल लोचन हनूमान् सीताके दर्शनकी इच्छासे उस उत्कृष्ट उद्यानमें प्रविष्ट हुआ ॥१८॥ वहाँ जाकर उसने शीघ्र ही समस्त दिशाओंमें तथा पल्लवों आदिसे सघन नाना वृक्षोंके समूहमें दृष्टि डाली ॥१९॥ वहाँ दूरसे ही सीताको देखकर वह अन्य वस्तुओंके दर्शनसे रहित हो गया अर्थात् उसी ओर टकटकी लगाकर देखता रहा। तदनन्तर उसने विचार किया कि वह रामदेवकी सुन्दरी यही है ॥२०॥ यह स्निग्ध अग्निके समान है, इसके नेत्र आँसुओंसे भर रहे हैं, वह हथेलीपर मुखरूपी चन्द्रमाको रखे हुई है, केश इसके खुले हुए हैं तथा उदर इसका अत्यन्त कुरा है ॥२१॥ उसे देखकर हनूमान् विचार करने लगा कि अहो ! लोकमें इसका रूप समस्त मनोहर पदार्थोंको पराजित करने वाला है, परम ख्यातिकी प्राप्त है तथा सत्य वस्तुओंका कारण है ॥२२॥ कमलसे रहित लक्ष्मी अर्थात् कमलसे निकली हुई साक्षात् लक्ष्मी इसकी बराबरी नहीं कर सकती। अहो ! यह दुःखरूपी सागमे निमग्न है वो भी अन्य स्त्रियोके समान नहीं है ॥२३॥ वह इस प्रकार विचार कर रही थी कि मैं इस पर्वतके शिखरसे गिरकर मृत्युको प्राप्त कर सकती हूँ परन्तु रामके विरहमें जीवन नहीं धारण करूँगी ॥२४॥ इस प्रकार विचार करती हुई सीताके पास, हनूमान् चुपचाप पैर रखता हुआ दूसरा रूप धारण कर गया ॥२५॥

तदनन्तर हनूमान्ने सीताकी गोदके वक्षपर अंगूठी छोड़ी उसे देखकर वह सहसा हँस पड़ी तथा रोमाञ्चसे युक्त हो गई ॥२६॥ सीताकी ऐसी अवस्था होनेपर वहाँ जो स्त्रियो थीं उन्होंने शीघ्रतासे जाकर सीताका समाचार जाननेमें तत्पर रहनेवाले रावणको शुभ समाचार

सन्तुष्टोऽङ्गगतं ताम्यो वस्त्ररत्नादिकं ददौ । श्रुत्वा स्मेराननां सीतां सिद्धं कार्यं विचिन्तयन् ॥२८॥
 विधातुं महिमानं च किञ्चिदादिशुत्सुकः । सुवापरमिव प्राप्तः समुल्लासधरे हृदि ॥२९॥
 स्वनाथवचनाद् साध्वी सर्वान्तःपुरसंयुता । गता मन्दोदरी शीघ्रं यत्रासौ अनकात्मजा ॥३०॥
 विक्रान्त्यद्युतिं सीतां द्रष्टुं मन्दोदरी चिराद् । जगौ बाले त्वयाऽस्माकं परमोऽनुग्रहः कृतः ॥३१॥
 अधुना भज लोकेशं रावणं शोकवर्जिता । सुराणां श्रीरिवाधीशं लब्धविशेषसम्पदम् ॥३२॥
 इत्युक्ता कुपिताबोचयद्वाद् भवतीरितम् । पद्मः खेचरि जानाति त्रियते ते पतिभूवम् ॥३३॥
 वार्ता समागता भर्तुरिति तोषमुपागता । अकार्षं वदन् स्मेरं भजन्ती परमां हृतिम् ॥३४॥
 इति ता वचनं श्रुत्वा राक्षसेशस्य बोधितः । ऊचुः शुद्धवक्त्रेण लपत्येपेति सस्मिता ॥३५॥
 ततः श्रेणिकं वैदेही नितान्तं तुह्यता गिरा । परमं वित्तमयं प्राप्ता जगादैवं समुत्सुका ॥३६॥
 गताया व्यसनं घोरमविधर्वापे महाभये । कोऽयं सन्निहितः साधुर्वन्धुभूतोऽतिवत्सलः ॥३७॥
 ततो नभस्वतः सूरुरेवमर्थितदर्शनः । अभिप्रायमिमं चक्रे साधुतायुक्तमानसः ॥३८॥
 परार्थं यः पुरस्कृत्य पुनः स्वं विनिगूहति । सोऽतिभीरुतयात्यन्तं जायते निहृतो नरः ॥३९॥
 परमापदि सीदन्तं जनं सन्धारयन्ति ये । अनुकम्पनशालानां तेषां जन्म क्षुनिर्मलम् ॥४०॥
 हानिः पुरुषकारस्य न चास्मिन्निर्दिशिते । प्रकाश्ये गुरुतां याति जगति श्रीयशस्विनी ॥४१॥

सुना हर्षसे वृद्धिगत किया ॥२८॥ रावणने सन्तुष्ट होकर उन स्त्रियोके लिए अपने शरीरपर स्थित वस्त्र तथा रत्न आदिक दिये और सीताको प्रसन्नमुखी सुन अपना कार्य सिद्ध हुआ समझा ॥२९॥ उसके हृदयमें इतना उल्लास हुआ मानो अमृतके पूरको ही प्राप्त हुआ हो । उसी समय उसने वत्सुक हो अनिवर्चनीय उत्सव करनेका आदेश दिया ॥२९॥ अपने पतिके कहनेसे पतिव्रता मन्दोदरी भी समस्त अन्तःपुरके साथ शीघ्र ही वहाँ गई जहाँ सीता विद्यमान थी ॥३०॥ बहुत दिन बाद आज जिसके मुखकमलकी कान्ति विकसित हो रही थी ऐसी सीताको देख मन्दोदरीने कहा कि हे बाले ! आज तूने हम सब पर बड़ा अनुग्रह किया है ॥३१॥ जिस प्रकार समस्त सम्पदाओंसे युक्त देवेन्द्रकी लक्ष्मी सेवा करती है उसी प्रकार तू भी अब शोक रहित हो जगत्पति रावणकी सेवा कर ॥३२॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर सीताने कुपित होकर कहा कि हे विद्याधर ! यदि तेरा यह कहना राम जान पावें तो तेरा पति निश्चित ही मारा जावे ॥३३॥ आज मेरे भर्ताका समाचार आया है इसलिए सन्तोषको प्राप्त हो परम धैर्यको प्राप्त हुई हूँ और इसीलिए मैंने मुखको मन्दहास्यसे युक्त किया है ॥३४॥ सीताके यह वचन सुनकर रावणकी स्त्रियों कहने लगीं कि छुषाके कारण इसे वायुरोग हो गया है इसीलिए यह हँसती हुई ऐसा बक रही है ॥३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इसके बाद परम आश्चर्यको प्राप्त हुई सीताने अत्यन्त उत्सुक हो अतिशय उच्च वाणीमें इस प्रकार कहा कि जो समुद्रके भीतर विद्यमान महाभयदायक इस द्वीपमें कष्टको प्राप्त हुई है ऐसा मेरा कौन स्नेही उत्तम बन्धु यहाँ निकट आया है ॥३६-३७॥

तदनन्तर जिसके दर्शनकी प्रार्थनाकी गई थी तथा जिसका मन सज्जनतासे युक्त था ऐसे हनूमान्ने इस प्रकार विचार किया कि ॥३८॥ जो मनुष्य दूसरेका कार्य आगेकर अर्थात् पहलेसे स्वीकृतकर फिर अपने आपको छिपाता है वह अत्यन्त भीरु होनेके कारण नीच मनुष्य होता है ॥३९॥ और जो आपत्तिमें पड़े हुए दूसरे मनुष्यको आलम्बन देते हैं उन दयालु मनुष्योंका जन्म अत्यन्त निर्मल होता है ॥४०॥ इसके सिवाय अपने आपको प्रकटकर देनेमें पुरुषत्वकी कुछ हानि भी तो नहीं मालूम होती अपितु प्रकटकर देनेपर यशस्विनी लक्ष्मी संसारमें गौरवको प्राप्त होती है ॥४१॥ तदनन्तर हनूमान् भामण्डलकी नौई हजारों उत्तम स्त्रियोंके बीच

उत्तमस्त्रीसहस्राणां ततो मध्यगतमिमाम् । प्रभामण्डलकरोऽसौ पद्मपत्नीमुपागमत् ॥४२॥
 निःशङ्कद्विपकान्तः सम्पूर्णैन्दुसमाननः । सहस्रांशुसमो दीप्या साल्थान्बलविभूषितः ॥४३॥
 रूपेणाप्रतिमो युक्तः कान्त्या निर्गुणचन्द्रमा । किरीटे वानरं बिभ्रदमोदाहृतपदपदः ॥४४॥
 चन्दनार्चितसर्वङ्गः पीतचर्चिविराजितः । ताम्बूलरक्तविम्बोष्ठः प्रलम्बांशुकशोभितः ॥४५॥
 चलकुण्डलविद्योतविहसद्गण्डमण्डलः । परं सहननं विभ्रद्दीर्घेणान्तविवर्जितः ॥४६॥
 सर्पन् सीतां समुद्दिश्य हनूमान् गुणभूषणः । महाप्रतापसंयुक्तः शोभासुपययौ पराम् ॥४७॥
 कान्तिभासिमुखं दृष्ट्वा तं युतं परया श्रिया । पद्मायतेक्षणा नार्यस्ता वभूवुः समाकुलाः ॥४८॥
 दधती हृदये कर्णं सन्दोदयौतविस्मया । समलोकत सोतायाः समीपे वायुनन्दनम् ॥४९॥
 उपगम्य ततः सीतां विनीतः पवनात्मजः । करकुड्मलमाधाय मस्तके नम्रतायुधि ॥५०॥
 कुलं गोत्रं च संश्राव्य पितरं जननीं तथा । अवेदयच्च विभ्रदं पद्मनाथेन चोदितम् ॥५१॥
 श्रिविष्टपसमे साध्वि विमाने विमवान्वितः । रतिं न लभते रामो भग्नस्त्वद्विरहार्णवे ॥५२॥
 त्यक्तनिःशेषकर्तव्यो मौनं प्रायेण वारयन् । स त्वां मुनिरिव ध्यायन्नोक्तवानोऽनघतिष्ठते ॥५३॥
 वेणुतन्त्रीसमायुक्तं गीतं प्रचर्योपिताम् । न कर्णजाहमेतस्य कदाचिद्याति पावने ॥५४॥
 सदा करोति सर्वस्मै कथां स्वामिनि ते मुदा । त्वदीक्षणाशया प्राणान् बद्ध्वा धत्ते स केवलम् ॥५५॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा पतिजीवनवेदनम् । प्रमोदं परमं प्राप्ता सीता विकसितेक्षणा ॥५६॥
 विषादं सहता भूयो जलप्रतिलोचना । ऊचे शान्ता हनूमन्तं विनीतं स्थितमग्रतः ॥५७॥

वैठी हुई सीताके समीप गया ॥४२॥ जो शङ्का रहित हाथीके समान पराक्रमी था, जिसका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर था, जो दीप्तिसे सूर्यके समान था, माला और बखोसे सुशोभित था । रूपसे अनुपम था । कान्तिसे स्रग रहित चन्द्रमाके समान जान पड़ता था, मुकुटमें धानरका चिह्न धारण कर रहा था, सुगन्धिसे जो भ्रमरोको आकर्षित कर रहा था, चन्दन से जिसका समस्त शरीर चर्चित था, जो पीत विलेपनसे सुशोभित था, जिसका विम्बोष्ठ ताम्बूलके रससे लाल था, जो नीचे लटकते हुए बखसे सुशोभित था, चञ्चल कुण्डलोके प्रकाशसे जिसका गण्डस्थल सुशोभित हो रहा था, जो उत्कृष्ट संहननको धारण कर रहा था, जिसके पराक्रमकी सीमा नहीं थी, जो गुणरूपी आभूषणोंसे युक्त था, तथा महाप्रतापसे सहित था ऐसा हनूमाच सीताको लक्ष्यकर धीरे-धीरे जाता हुआ परम शोभाको प्राप्त हो रहा था ॥४३-४७॥ जिसका मुख कान्तिसे सुशोभित था, ऐसे उत्कृष्ट लक्ष्मीसे युक्त हनूमान्को देखकर वे कमललोचना स्त्रियों व्याकुल हो उठीं ॥४८॥ जिसके हृदयमें कर्णकपी छूट रही थी ऐसी सन्दोदरीने सीताके समीप हनूमान्को बड़े आश्चर्यके साथ देखा ॥४९॥

तदनन्तर सीताके समीप पहुँचकर परम विनीत हनूमानने भुके हुए मस्तकपर अञ्जलि बौध पहले अपने कुल, गोत्र तथा माता-पिताका नाम सुनाया । उसके बाद निश्चित हो रामका सन्देश कहा ॥५०-५१॥ उसने कहा कि हे पतिव्रते ! तुम्हारे विरहरूपी सागरमें डूबे राम, स्वर्गके समान वैभवसे युक्त विमानमें भी रतिको प्राप्त नहीं हो रहे हैं ॥५२॥ अन्य सब कार्य छोड़कर वे प्रायः मौन धारण किये रहते हैं और मुनिकी भाँति एकाग्र चित्त हो तुम्हारा ध्यान करते हुए बैठे रहते हैं ॥५३॥ हे पावने—हे पवित्र कारिणि ! वीसुरी तथा वीणासे युक्त उत्तम स्त्रियोंका संगीत कभी भी उनके कर्णमूलमें नहीं पहुँचता है ॥५४॥ हे स्वामिनि ! वे सदा सबके सामने वड़े हर्षसे तुम्हारी ही कथा करते रहते हैं और केवल तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषासे ही प्राणोंको बौधकर धारण किये हुए हैं ॥५५॥ इस प्रकार पतिके जीवनको सूचित करनेवाले हनूमान्के वचन सुन सीता परम प्रमोदको प्राप्त हुई । उसके नेत्र-कमल खिल उठे ॥५६॥

तदनन्तर विषादको प्राप्त, शान्त सीताने नेत्रोंमें जल भरकर सामने बैठे हुए विनयी

साहमस्यामवस्थायां निमग्ना कपिलचण । तुष्टा किं ते प्रयच्छामि हतेन विचिनाम्निता ॥५८॥
 ऊचे च वायुपुत्रेण दर्शनेनैव ते शुभे । अद्य मे सुखं सर्वं जातं जगति पूजिते ॥५९॥
 ततो मुकाफलस्यूतवाष्पविन्दुचिताधरा । सीता श्रीरिव दुःखार्ता पप्रच्छ कपिलचणम् ॥६०॥
 भकरग्राहणक्रादिकोभितं भीममर्णवम् । भद्रं दुस्तरमुखलब्धं विस्तीर्णं कथमागतः ॥६१॥
 अवस्थां वा गतामेतां कार्यसंनिधिमागताम् । किमर्थं सामिहागतं नयस्याश्वासमुत्तमम् ॥६२॥
 लावण्यद्युतिरूपाब्जः कान्तिसागरसंभृतः । श्रिया कीर्त्या च संयुक्तः प्रियो मे भद्रं बान्धव ॥६३॥
 प्रदेशे स त्वया करिम्बं प्राणनाथो ममेक्षितः । सत्यं जीवति सद्गोत्रं कचिल्लक्ष्मणसद्वृतः ॥६४॥
 किं नु दुःखेचरैः संख्ये भीमैः व्यापादितोऽनुजः । लक्ष्मणेनैव तुल्यः स्यात्पद्मः पद्माभलोचनः ॥६५॥
 किं वा मद्विरहादुग्रदुःखं नाथः समाश्रितः । संदिश्य भवतः किञ्चिदनेन लोकान्तरं गतः ॥६६॥
 जिनेन्द्रविहिते मार्गे जिःशेषमश्वजितः । तपस्वन् किमसायास्ते भवनिर्वदपण्डितः ॥६७॥
 शिथिलीभूतविशेषशरीरस्य वियोगतः । अङ्गुलीतश्च्युतं प्राप्तं त्वया स्यादङ्गुलीयकम् ॥६८॥
 त्वया सह परिश्रान्तिर्नासीदेव सम प्रभोः । कार्येण रहितः प्राप्तः कथं त्वं तस्य मित्रताम् ॥६९॥
 न च प्रत्युपकाराय शक्ता तुष्टाव्यहं तव । अङ्गुलीयकमेतच्च समानीतं कृपावता ॥७०॥
 एतत्सर्वं भम आतः समाचक्ष्व विशेषतः । सत्येन आवितः पित्रोर्देवस्य च मनोजुषः ॥७१॥
 इति पृष्टः समाधानो शास्त्राम्भुगकिरीटधृत् । शिरस्थकरराजोभो जगद् विकचैकणः ॥७२॥

हनुमानसे कहा कि हे कपिभञ्ज ! मैं इस अवस्थामें निमग्न तथा दुर्भाग्यसे युक्त हूँ । सन्तुष्ट होकर तुम्हें क्या दूँ ? ॥५७-५८॥ इसके उत्तरमें हनुमान्ने कहा कि हे शुभे—हे भद्रलक्ष्मण ! हे पूजिते ! आज आपके दर्शनसे ही मुझे संसारमें सब कुछ सुख हो गया है ॥५९॥ तदनन्तर मोतियोंके समान बड़ी-बड़ी अश्रुओंकी बूँदोंसे जिसका आँठ व्याप्त हो रहा था तथा जो दुःखसे पीड़ित लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ऐसी सीताने हनुमान्से पूछा कि हे भद्र ! मकर—ग्राह तथा नाक आदिसे कोभित इस भयंकर दुस्तर तथा लम्बे-चौड़े समुद्रको लाँघकर तू किस प्रकार आया है ? ॥ इस अवस्था अथवा कार्यकी सिद्धिको प्राप्त हुई जो मैं हूँ सो मुझे यहाँ आकर तू किसलिये उत्तम वैयर्थ प्राप्त करा रहा है ॥६०-६२॥ हे भद्र ! तू लावण्य-कान्ति तथा रूपसे सहित, कान्तिरूपी सागरसे घिरा, तथा लक्ष्मी और कीर्तिसे युक्त मेरा प्यारा भाई ही है ॥६३॥ तूने मेरे प्राणनाथको कहाँ देखा था ? हे कुलोन ! क्या सचयुक्त ही मेरे प्राणनाथ, लक्ष्मणके साथ कहीं जीवित है ? ॥६४॥ ऐसा तो नहीं है कि उन भयंकर दुष्ट विद्याधरोंके द्वारा युद्धमे झोटा भाई लक्ष्मण मारा गया हो और उस दुःखसे दुःखी हो कमललोचन राम भी उसीकी तुल्य अवस्थाको प्राप्त हो गये हों ॥६५॥ अथवा तुम्हें सन्देश देनेके बाद मेरे विरहसे अत्यन्त उग्र दुःखको प्राप्त हो नाथ, किसी वनमें लोकान्तरको प्राप्त हो गये हों ? ॥६६॥ अथवा वे संसारसे विरक्त रहनेमें निपुण थे अतः समस्त परिग्रहका त्यागकर जिनेन्द्र प्रणीत मार्गमें दीक्षित हो कहीं तपस्या करते हुए विद्यमान हैं ? ॥६७॥ अथवा वियोगके कारण जिनका समस्त शरीर शिथिल हो गया है ऐसे श्रीरामकी अँगुलीसे यह अँगुठी कहीं गिर गई होगी सो तुम्हें मिली है ? ॥६८॥ तुम्हारे साथ मेरे स्वामीका परिचय पहले नहीं था फिर बिना कारण तू उनकी मित्रताकी कैसे प्राप्त हो गया ? ॥६९॥ तू दयालु होकर यह अँगुठी लाया है सो सन्तुष्ट होकर भी मैं तेरा प्रत्युपकार करनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥७०॥ हे भाई ! तू अपने माता-पिता अथवा हृदयमें विद्यमान श्रीजिनेन्द्रदेवके कारण सत्य ही कथन करेगा ॥७१॥ इस प्रकार पूछे जानेपर चित्तकी एकाग्रतासे युक्त, वानर-चिह्नित मुकुटको धारण करनेवाला, तथा विकसित नेत्रोंसे सहित

१. प्राणनाथे म० । २. व्यापादितानुजः क०, ख० । ३. ते पश्यन् (?) म० । ४. मनोजुषा न०
 बारण-म० ।

सायके विहाताख्ये लक्ष्मणेन निचीकृते । गत्वा चन्द्रनखाविष्टा रमणं समरोषयत् ॥७३॥
 यावदाहूयते स्वामी रक्षसां सुमहाबलः । दूषणस्तावदायातो शोद्धुं दाशरथिं द्रुतम् ॥७४॥
 लक्ष्मणो दूषणेनामा युध्यते यावदुद्धतम् । तावद्दशमुखः प्राप्तस्तमुद्देशं बलान्वितः ॥७५॥
 धर्माधर्मविवेकज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः । सर्वतीं वीक्ष्य स क्षुब्धो बभूव भवसो वशः ॥७६॥
 भ्रष्टनिःशेषनीतिश्च निस्सारीभूतचेतनः । मायासिंहस्त्वनं चक्रे भवतीस्तेनकाणम् ॥७७॥
 श्रुत्वा सिंहस्त्वनं पद्मो ययौ यावद्गणस्थितम् । लक्ष्मणं तावदेतेन पापेन त्वमिहाहृतः ॥७८॥
 प्रेषितः पद्मनाभश्च लक्ष्मणेन त्वरावता । गत्वा भूयस्तमुद्देशं न त्वामैतत् सचमे ॥७९॥
 ततश्चिरं वनं भ्रान्त्वा त्वद्गवेषणकारणम् । ईच्छाञ्जके रलयग्राणं मृत्स्वासन्नं जटाशुभम् ॥८०॥
 तस्मै दत्त्वा स जैनैर्नदीं श्रियमाणाय देशनाम् । भवतस्थे वने द्रुक्षी भवतीगतमानसः ॥८१॥
 गतश्च लक्ष्मणः पथं निहत्य खरदूषणम् । आनीता रत्नजटिना त्वत्प्रवृत्तिः प्रियस्थ ते ॥८२॥
 सुग्रीवरूपसंयुक्तः पद्मनाभेन साहसः । बलं हन्तुं समुद्युक्तो विद्यया वर्जितो हतः ॥८३॥
 कृतव्यायोपकारस्थः कुलपावनकारिणः । अहं प्रत्युपकाराय प्रेषितो गुरुबान्धवैः ॥८४॥
 प्रीत्या विमोचयामि त्वां विग्रहो निःप्रयोजनः । कार्यसिद्धिरिहाभीष्टा सर्वथा न्ययशालिभिः ॥८५॥
 सोऽयं लङ्कापुरीनाथो घृणवान् विनयान्वितः । धर्मार्थकामवान् धीरो हृदयेन मृदुः परम् ॥८६॥
 सौम्यः क्रौर्यविनिर्मुक्तः सत्यव्रतकृतस्थितिः । करिष्यति वचो नूनं मम त्वामर्पयिष्यति ॥८७॥

हनुमान्, हस्त-कमल जोड़ मस्तकसे लगा इस प्रकार कहने लगा ॥७२॥ कि जब लक्ष्मणने सूर्यहास खङ्ग अपने आधीनकर लिया और चन्द्रनखाको जब राम-लक्ष्मणने चाहा नहीं तब उसने अपने पति खरदूषणको रोषयुक्त कर दिया अर्थात् विपरीत भिड़ाकर उसे कुपित कर दिया ॥७३॥ सहायताके लिए जब तक महाबलवान् राक्षसोंके स्वामी—रावणको बुलाया तबतक खरदूषण शीघ्र ही युद्ध करनेके लिए रामके समीप आया ॥७४॥ उधर लक्ष्मण जब तक खरदूषणके साथ विकट युद्ध करता है तब तक इधर अतिशय बलवान् रावण उस स्थान पर आता है ॥७५॥ यद्यपि रावण धर्म अधर्मके विवेककी जाननेवाला एवं समस्त शास्त्रोंका विशारद था, वो भी वह छुद्र आपको देख मनके बरौभूत हो गया ॥७६॥ तदनन्तर जिसकी समस्त नीति भ्रष्ट हो गई थी और चेतना निःसार हो चुकी थी ऐसे उस रावणने आपको चुनानेके लिए मायामय सिंहनाद किया ॥७७॥ उस सिंहनादकी सुन जब तक राम, युद्धमें स्थित लक्ष्मणके पास गये तब तक यह पापी तुम्हें हरकर यहाँ ले आया ॥७८॥ उधर लक्ष्मणने शीघ्र ही युद्धक्षेत्रसे रामको वापिस किया सो वहाँसे आकर जब वे पुनः उस स्थानपर आये तब हे पतिव्रते ! उन्होंने तुम्हें नहीं देखा ॥७९॥ तदनन्तर तुम्हें खोजनेके लिए चिरकाल तक वनमें भ्रमण कर उन्होंने शिथिल प्राण एवं मरणासन्न जटाशुको देखा ॥८०॥ तदनन्तर उस मरणोन्मुखके लिए जिनेन्द्र धर्मका उपदेश देकर वे द्रुक्षी हो वनमें बैठ गये । उस समय उनका मन एक आपमें ही लगा रहा था ॥८१॥

लक्ष्मण, खरदूषणको मारकर रामके पास आये और रत्नजटी तुम्हारे पतिके लिए तुम्हारा घृष्टान्त ले आया ॥८२॥ इसी बीचमे सुग्रीवके रूपसे युक्त साहस गति नामका विद्याधर रामको मारनेके लिए उद्यत हुआ परन्तु रामके प्रभावसे विद्यासे रहित होनेके कारण वह स्वयं मारा गया ॥८३॥ इस प्रकार रामने हमारे कुलको पवित्र करनेवाला यह जो महान् उपकार किया था उसका बदला चुकानेके लिए ही गुरुजनोंने मुझे भेजा है ॥८४॥ मैं तुम्हें प्रीतिपूर्वक छुड़वाता हूँ । युद्ध करना निष्प्रयोजन है, क्योंकि नीतिज्ञ मनुष्योंको सब तरहसे कार्यकी सिद्धि करना ही संसारमे इष्ट है ॥८५॥ यह लंकापुरीका राजा रावण दयालु है, विनयी है, धर्म-अर्थ-कामरूप त्रिवर्गसे सहित है, धीर है, हृदयसे अत्यन्त कोमल है ॥८६॥ सौम्य है, करतासे रहित है और सत्यव्रतका पालनेवाला है, अतः निश्चित ही मेरा क्रहा करेगा और तुम्हें मेरे

कीर्तिरस्य निजा पाल्या धवला लोकविश्रुता । लोकापवादतश्चैव विभेति नितरं कृती ॥८८॥
 सतः परं प्ररिप्राप्ता प्रमोदं जनकात्मजा । हनुमन्तमिदं वाच्यं बगाद विपुलेष्वा ॥८९॥
 पराक्रमेण धैर्येण रूपेण विनयेन च । कपिष्वजास्त्वया तुल्याः कियन्तो मत्प्रियाश्रिताः ॥९०॥
 मन्दोदरी ततोऽवोचच्छूराः सत्त्वयशोऽर्निविताः । गुणोल्का न शंसन्ति धीराः स्वं स्वयमुत्तमाः ॥९१॥
 वैदेहि तव न ज्ञातः किमयं येन पृच्छसि । कपिष्वजः समानोऽस्य वास्येयस्मिन्न विद्यते ॥९२॥
 विमानवाहनघण्टासंघट्टपरिमण्डले । रणे दशमुखस्यायं प्राप्तः साहाय्यकं परम् ॥९३॥
 दशाननसहायत्वं कृतं येन महारणे । स हनूमानितिख्यातश्चाक्षनातनयः परः ॥९४॥
 महापतिं निमग्नस्य दशवक्त्रस्य विद्विषः । छेदामनोष्यधामिष्या एकेनानेन निर्जिताः ॥९५॥
 अनङ्गकुसुमा लब्धा येन चन्द्रनखात्मजा । गम्भीरस्य जनो यस्य सदा बाण्डकृति दर्शनम् ॥९६॥
 अस्य पौरसमुद्रस्य यः कान्तः शिशिरशुभवत् । सहोदरसमं वेत्ति यं लङ्कापरमेष्ठिनः ॥९७॥
 हनूमानिति विख्यातः सोऽयं सकलविष्टे । गुणैः समुन्नतो वीतो दूतत्वं चित्तिगोचरैः ॥९८॥
 अहो परमिदं चित्रं निन्दनीयं विप्रोपतः । वीतः प्राकृतवल्कश्चिद्गौर्यवद्भृत्यतामयम् ॥९९॥
 इत्युक्ते वचनं वातिजगाद स्थिरमानसः । अहो परममूढत्वं भवत्येदमनुष्ठितम् ॥१००॥
 सुखं प्रसादतो यस्य जीव्यते विभवान्वितः । अकार्यं बाण्डवस्तस्य वीर्यते न मतिः कथम् ॥१०१॥
 आहारं भोजकामस्य विज्ञातं विपनिश्रितम् । मित्रस्य कृतकामस्य कथं न प्रतिपिष्यते ॥१०२॥

लिए सौंप देगा ॥८७॥ इसे अपनी लोकप्रसिद्ध चञ्चल कीर्तिकी भी तो रक्षा करना है अतः यह विद्वान् लोकापवादसे बहुत डरता है ॥८८॥

तदनन्तर परम हर्षको प्राप्त हुई विशाल लोचना सीता हनूमान्से यह वचन बोली कि पराक्रमसे, धैर्यसे, रूपसे और विनयसे तुम्हारी सदृशता धारण करनेवाले कितने वानरध्वज हमारे प्राणनाथके साथ हैं ? ॥८९-९०॥ तब मन्दोदरी बोली कि जो शूरवीर हैं, सत्त्व और यशसे सहित हैं, गुणोंसे उज्ज्वल हैं तथा धीर-वीर हैं ऐसे उत्तम पुरुष स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं करते ॥९१॥ हे वैदेहि ! तू इसे क्या जानती नहीं है जिससे ऐसा पूछ रही है ? इस भरत क्षेत्र भरमें इसके समान दूसरा वानर ध्वज नहीं है ॥९२॥ विमानों तथा नाना प्रकारके वाहनोंके समूहकी जहाँ अत्यधिक भीड़ होती है ऐसे संग्राममें यह रावणकी परम सहायता करता है ॥९३॥ जिसने महायुद्धमें रावणकी सहायता की है ऐसा यह हनूमान् इस नामसे प्रसिद्ध अङ्गनाका उत्कृष्ट पुत्र है ॥९४॥ एक बार रावण महा विपत्तिमें फँस गया था तब उसके ऐसे अनेक शत्रु विद्याधरोंको इसने अकेले ही मार भगाया था जिनके कि नाम सुनतेमात्रसे मनको पीड़ा होती थी ॥९५॥ जिसने चन्द्रनखाकी पुत्री अनांग कुसुमा प्राप्त की है । जो इतना गम्भीर है कि मनुष्य सदा जिसके दर्शनकी इच्छा करते हैं ॥९६॥ जो यहाँके नागरिक जन रूपी समुद्रको वृद्धिजन्य करनेके लिए चन्द्रमाके समान मनोहर है और लङ्काका अधिपति रावण जिसे भाईके समान समझता है ॥९७॥ ऐसा यह हनूमान् समस्त संसारमें प्रसिद्ध, उत्कृष्ट गुणोंका धारक है फिर भी भूमि गोचरियोंने इसे दूत बनाया है ॥९८॥ यह बड़े आश्चर्यकी बात है । इससे अधिक निन्दनीय और क्या होगा कि इसे साधारण मनुष्यके समान, भूमि गोचरियोंने दासता प्राप्त करायी है अर्थात् अपना दास बनाया है ॥९९॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर दृढचित्तके धारक हनूमान्ने इस प्रकार कहा कि अहो ! तुमने जो यह कार्य किया है सो परम मूर्खता की है ॥१००॥ जिसके प्रसादसे नैमवके साथ सुखपूर्वक जीवन बिताया जा रहा है वह यदि अकार्य करना चाहता है तो उसे सद्बुद्धि क्यों नहीं दी जाती है ? ॥१०१॥ इच्छा-नुसार काम करनेवाला मित्र यदि विपनिश्रित भोजन करना चाहता है तो उसे मना क्यों नहीं

भविष्यं कृतज्ञेन जनेन सुखमीयुषा । वेत्ति स्वार्थं न यस्तस्य जीवितं पशुना समम् ॥१०३॥
मन्दोदरि परं गर्वं निःसारं वहसे युधा । यद्ग्रमहिपी भूत्वा दूतीत्वमसि संश्रिता ॥१०४॥
कं यातमधुना तत्ते सौभाग्यं रूपमुन्नतम् । अन्यस्त्रीगतचित्तस्य दूतीत्वं संश्रितासि यत् ॥१०५॥
प्राकृता परमा सा त्वं चर्तसे रतिवस्तुनि । महिपीत्वं न मन्येऽहं जाता गौरसि दुर्भगे ॥१०६॥
मन्दोदरी ततोऽबोचत् कोपालिङ्गितमानसा । अहो तव सद्रोषस्य प्रगल्भत्वं निरर्थकम् ॥१०७॥
दूतत्वेनागतं सीतां यदि त्वां वेत्ति रावणः । भवेत्प्रकरणं तत्ते जातं यन्नैव कस्यचित् ॥१०८॥
येनैवेन्दुनखानाथो दैवयोगेन मारितः । पुरस्कृत्य तमेवाप्य कथं सुग्रीवकादयः ॥१०९॥
भृत्यस्य दशवन्नस्य विस्तृत्य स्वरूपचेतसः । स्थिताः किमथवा कुर्युर्वराकाः कालबोदिताः ॥११०॥
अतिमृदुहतात्मानो निर्लज्जाः क्षुद्रवृत्तयः । अकृतज्ञा वृथोत्सिकाः स्थितास्ते मृत्युसन्निधौ ॥१११॥
इत्युक्ते वचनं सीता जगौ कोपसमाश्रिता । मन्दोदरि सुमन्द ! त्वमेवं या कस्यसे वृथा ॥११२॥
शूरकोविदगोष्ठाप्य कीर्त्यमानो न किं त्वया । प्रियो मे पद्मानामोऽसौ श्रुतोऽप्यङ्कितविक्रमः ॥११३॥
वज्रावर्तयमुर्धोर्ध्वं श्रुत्वा यस्य रणागमे । भयवर्जितकम्पाङ्गाः सीदन्ति रणशालिनः ॥११४॥
लक्ष्मीधरोऽनुजो यस्य लक्ष्मीमिलयविग्रहः । शत्रुपक्षार्थं कर्तुं समर्थो वीक्षणादपि ॥११५॥
किमत्र बहुनोक्तेन समुत्तीर्य महार्णवम् । पतिरेव समायाति लक्ष्मणेन समन्वितः ॥११६॥

किया जाता है ? ॥१०२॥ सुख प्राप्त करनेवाले मनुष्यको कृतज्ञ होना चाहिए । जो सुखदायकके लाभको नहीं समझता है उसका जीवन पशुके समान है ॥१०३॥ हे मन्दोदरि ! तुम व्यर्थ ही निःसार गर्व धारण करती हो जो पटराज्ञी होकर भी दूतीका कार्य कर रही हो ॥१०४॥ तुम्हारा वह सौभाग्य तथा उन्नतरूप इस समय कहाँ गया जो परस्त्रीसक्त पुरुषकी दूती बनने बैठी हो ? ॥१०५॥ जान पड़ता है कि तुम रतिकार्यके विषयमें अत्यन्त साधारण स्त्री हो गई हो । अब मैं तुममें महिपीत्व (पट्टरानी पना) नहीं मानता, हे दुर्भगे ! अब तो तुम गौ हो गई हो ॥१०६॥

तदनन्तर जिसका मन क्रोधसे आलिङ्गित हो रहा था ऐसी मन्दोदरीने कहा कि अहो ! अपराधी होकर भी तू निरर्थक प्रगल्भता बता रहा है—बढ़-बढ़कर बात कर रहा है ॥१०७॥ तू दूत बनकर सीताके पास आया है यदि यह बात रावण जान पायेगा तो तेरी वह दशा होगी जो किसीकी नहीं हुई होगी ॥१०८॥ जिसने दैव योगसे चन्द्रनखाके पति-खरदूषणको मारा है उसीको आगे कर ये क्षुद्रचेता सुग्रीवादि रावणकी दासता भूल एकत्रित हुए हैं, सो यमके प्रेरे ये नीच कर ही क्या सकते हैं ? ॥१०९-११०॥ जान पड़ता है कि जिनकी आत्मा अत्यन्त मृदुतासे उपहत है, जो निर्लज्ज हैं, क्षुद्रचेष्टाके धारक हैं, अकृतज्ञ हैं, और व्यर्थ ही अहंकारमें फूल रहे हैं ऐसे वे सब मृत्युके निकट आ पहुँचे हैं ॥१११॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहने पर सीताने क्रुपित होकर कहा कि हे मन्दोदरि ! तू अत्यन्त मूर्ख है जो इस तरह व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा कर रही है ॥११२॥ शूरवीर तथा विद्वानोकी गोष्ठीमें जिनकी अत्यन्त प्रशंसा होती है तथा जो अद्भुत पराक्रमके धारक हैं ऐसे मेरे पति रामका नाम क्या तुने नहीं सुना है ? ॥११३॥ रणके प्रारम्भमें जिनके वज्रावर्त धनुषका शब्द सुनकर युद्धमें निपुण मनुष्य ज्वरसे कोपते हुए दुःखी होने लगते हैं ॥११४॥ जिसके शरीरमें लक्ष्मीका निवास है ऐसा लक्ष्मण जिनका छोटा भाई है ऐसा भाई कि जो देखनेमात्रसे शत्रुपक्षका क्षय करनेमें समर्थ है ॥११५॥ इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? हमारा पति लक्ष्मणके साथ समुद्रको तैरकर

पश्यात्मीयं पतिं युद्धे स्वल्पकैरेव वासरैः । निहतं मम नाथेन जगदुत्कृष्टतेजसा ॥११७॥
 एषा गन्तासि वैधव्यं क्रन्दस्येषा चिरोविभक्ता । या त्वं पापतेर्मर्तुरनुकूलत्वमागता ॥११८॥
 मयदैव्यात्मजा तमिमेवमुक्ततिकोपगा । परम क्षोभमायाता कम्पमानाऽवराधरा ॥११९॥
 एका नानासपत्नीनां सहस्रैः सम्भ्रमस्पृशाम् । अष्टादशभिरत्युग्रैः कोपकम्पितमूर्तिभिः ॥१२०॥
 समं करतलैर्हन्तुमुद्यता वेगधारिणिः । निर्भर्त्सनमतिकूर्पराक्रोशैः कुर्वती शृणाम् ॥१२१॥
 श्रीमांस्तावन्मस्त्युग्रः समुत्थाय जवान्वितः । अवस्थितोऽन्तरे तासां सरितामिव भूधरः ॥१२२॥
 ता दुःखहेतवः सर्वा वैदेहीं हन्तुमुद्यताः । वेदना इव वैद्येन श्रीशैलेन निवारिताः ॥१२३॥
 पादताडितभूभागा विशूपादरवर्जिताः । गयुः क्रूराशयाः सर्वा वनितास्ता दशाननम् ॥१२४॥
 आजनेन ततः सीता ग्रणिपत्य महादरम् । विज्ञापिता सुवाक्येन भोजनं प्रति साधुना ॥१२५॥
 समश्रितपतिज्ञातौ सुनिर्मलमनोरया । अभ्युपागच्छदाहारं कालदेशज्ञानसा ॥१२६॥
 ससागरा मही देवि रामदेवस्य शासने । वर्त्तते तेन नैवेदमन्नं सन्त्यक्तुमर्हसि ॥१२७॥
 एवं हि बोधिता तेन वैदेही करुणावनिः । ऐच्छदन्न यतः साध्वी सर्वोच्चारविचक्षणा ॥१२८॥
 इरा वाम ततस्तेन चोदिता कुलपालिता । यथाज्ञं प्रवरं श्लाघ्यं नूतनामीयतामिति ॥१२९॥
 मुक्ता कन्या स्वशिविरं श्रीशैलेन क्षपाक्षये । भानावभृदिते जातो विभीषणसमागमः ॥१३०॥

अभी आता है ॥११६॥ तू कुछ ही दिनोंमें लोकोत्तर तेजके धारक मेरे पतिके द्वारा अपने पतिकी युद्धमें मरा हुआ देखेगी ॥११७॥ जो तू पापमें प्रीति रखनेवाले पतिकी अनुकूलताको प्राप्त हुई है सो इसके फलस्वरूप वैधव्यको प्राप्त होगी और पतिरहित होकर चिरकालतक रुदन करेगी ॥११८॥ इस प्रकार कठोर वचन कहनेपर जो अत्यन्त कोपको प्राप्त हो रही थी तथा जो कोंपते हुए ओठकी धारण कर रही थी । ऐसी मन्दोदरी परम क्षोभको प्राप्त हुई ॥११९॥ यद्यपि मन्दोदरी एक थी तो भी वह संभ्रमको प्राप्त तथा क्रोधसे कम्पित शरीरको धारण करनेवाली अपनी अठारह हजार सपत्नियोंके साथ सीताको वेगशाली करतलोसे मारनेके लिए उद्यत हुई । वह उस समय अत्यन्त क्रूर अपशब्दोंसे उसका अत्यधिक तिरस्कार कर रही थी ॥१२०-१२१॥ उसी समय लक्ष्मीसे सुशोभित तथा वेगसे युक्त हनुमान् उठकर उन सबके बीचमें उस प्रकार खड़ा हो गया जिस प्रकार कि नदियोंके बीच कोई पर्वत आ खड़ा होता है ॥१२२॥ दुःखकी कारण, तथा सीताको मारनेके लिए उद्यत उन सब स्त्रियोंको हनुमान्ने उस प्रकार रोक दिया जिस प्रकार कि वैद्य वेदनाओंको रोक देता है ॥१२३॥ तदनन्तर जो पैरोसे पृथिवीके प्रदेश ताडित कर रही थी तथा जिन्होंने आभूषण धारण करनेका आदर छोड़ दिया था ऐसी दुष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाली वे सब स्त्रियाँ रावणके पास गई ॥१२४॥

तदनन्तर साधु स्वभावके धारक हनुमान्ने बड़े आदरके साथ सीताको प्रणाम कर उत्तम वचनोंके द्वारा भोजन करनेकी प्रार्थना की ॥१२५॥ सो जिसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी थी । जिसका मनोरथ निर्मल था और जिसका मन देश कालका ज्ञाता था ऐसी सीताने आहार ग्रहण करना स्वीकृत कर लिया ॥१२६॥ प्रार्थना करते समय हनुमान्ने इस प्रकार समझाया था कि हे देवि ! यह समुद्र सहित पृथिवी राम देवके शासनमें है इसलिए यहाँका यह अन्न छोड़नेके योग्य नहीं है ॥१२७॥ इस प्रकार समझाये जाने पर दयाकी भूमि सीताने अन्न ग्रहण करनेकी इच्छाकी थी, सो ठीक ही है क्योंकि वह पतिव्रता सब प्रकारका आचार जाननेसे निपुण थी ॥१२८ तदनन्तर हनुमान्ने इरा नामकी कुलपालितासे कहा कि शीघ्र ही उत्तम तथा प्रशंसनीय अन्न लाओ ॥१२९॥ इस प्रकार कहने पर कन्या अपने शिविर अर्थात् डेरेमें गई और रात्रि समाप्त होने तथा सूर्योदय होने पर हनुमान्का विभीषणके साथ समागम हुआ ॥१३०॥

आहारो वायुपुत्रेण तत्र भुक्तो मनोहरः । एवं कर्तव्ययोगेन सुहृतांस्ते त्रयो गताः ॥१३१॥
 सुहृतेभ्य चतुर्थं तु समानोत्तमिराख्या । आहारं मैथिलीमुक्तमिति जानन्ति कोविदाः ॥१३२॥
 चन्दनादिभिरालिप्ते भूतले दर्पणप्रभे । पुष्पोपकारसम्पन्ने नलिनीपत्रशोभिते ॥१३३॥
 सद्गन्धं विबुधैस्त्वच्छ्रुत्वा पथ्यं पेयादिपूर्वकम् । स्थाल्यादिभिर्महापात्रैः सौवर्ण्यैरिभिराहृतम् ॥१३४॥
 घृतसूपदिभिः काश्चित्पान्थो राजन्ति पूरिताः । कुन्दपुष्पसम्बन्धायैः शालीनां काश्चिदोदनैः ॥१३५॥
 पट्टरसैरुपदशैश्च काश्चिद्वोचनकारिभिः । व्यञ्जनैस्तरलैः काश्चिरिण्डीवन्धोचितैस्तथा ॥१३६॥
 पयसा संस्कृतैः काश्चिद्वन्याः परमदायिकैः । लेह्यैः काश्चिन्महात्वादिरन्याः पञ्चाज्ञापेवितैः ॥१३७॥
 एवं परममाहारमिरा परिजनान्विता । हनूमन्तं पुरस्कृत्य आवृभावेन ध्वत्सला ॥१३८॥
 महाश्रद्धान्वितस्वान्ता प्रणिपत्य जिनेश्वराय । समाम्य नियमं धीरा ध्यातातिथिसमागमा ॥१३९॥
 निधाय हृदये राममभिरामं पतिव्रता । पवित्राह्ना दिने शुद्धे साधुलोकप्रपूजितम् ॥१४०॥
 रविररिमकृतोद्योतं सुपवित्र मनोहरम् । पुण्यवर्धनमारोग्यं दिवाभुक्तं प्रशस्यते ॥१४१॥
 निवृत्तभोजनविधिः किञ्चिद्विशिष्टतां गता । विज्ञापितेति भूयोऽपि सोता पवनसूनुवा ॥१४२॥
 आरोह देवि मे स्कन्धे पवित्रे गुणभूषणे । समुह्य नदीनाथं नेष्यामि भवती क्षणात् ॥१४३॥
 पश्य त त्रिभैर्युक्तं राशवं त्वत्परायणम् । भवद्योगसमानन्दं जनोऽनुभवतु प्रियः ॥१४४॥

हनूमान्ने विभीषणके घर ही मनोहर आहार ग्रहण किया । इस प्रकार कर्तव्य कार्य करते हुए तीन सुहृत् निकल गये ॥१३१॥ तदनन्तर चतुर्थं सुहृत्तमं इरा, सीताके भोजनके योग्य आहार ले आई ॥१३२॥ वहाँकी भूमि चन्दनादिसे छीपकर दर्पणके समान स्वच्छ की गई, फूलोंके उपलरसे सजाई गई जिससे वह कमलिनी पत्रके समान सुशोभित हो उठी ॥१३३॥ स्वर्ण आदिसे बने हुए स्थाली आदि बड़े-बड़े पात्रोंमें सुगन्धित, अत्यधिक, स्वच्छ और हितकारी पेय आदि पदार्थ लाये गये ॥१३४॥ वहाँ कितनी ही थालियाँ थीं, दाल आदिसे भरी हुई सुशोभित हो रही थीं, कितनी ही कुन्दके फूलके समान उज्ज्वल धानके भातसे युक्त थी ॥१३५॥ कितनी ही थालियों रुचि बढ़ानेवाले पट्टरसके भोजनोपे परिपूर्ण थीं, कितनी ही पतली तथा कितनी ही पिण्ड बँधनेके योग्य व्यञ्जनोंसे युक्त थीं ॥१३६॥ कितनी ही दूधसे निर्मित, कितनी ही वहीसे निर्मित पदार्थोंसे युक्त थीं, कितनी ही चाटनेके योग्य रवड़ी आदिसे, कितनी ही महात्वादिर भोजनोंसे तथा कितनी ही भोजनके बाद सेवन करने योग्य पदार्थोंसे परिपूर्ण थीं ॥१३७॥ इस प्रकार इरा अपने परिजनके साथ उत्तम आहार ले आई, सो हनूमान्को आगे कर जिसके भाईका स्नेह उमड़ रहा था, ऐसी सीताने हृदयमें महाश्रद्धा धारण कर जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार किया, 'जब तक पतिका समाचार नहीं मिलेगा तब तक आहार नहीं लेंगी' यह जो नियम लिया था उसको बड़ी धीरतासे समाप्त किया । अतिथियोंके समागमका विचार किया, स्नानादिकसे शरीरको पवित्र किया । तदनन्तर अभिराम (मनोहर) रामको हृदयमें धारणकर उस पतिव्रताने दिनके समय साधुजनोंके द्वारा प्रशंसित उत्तम आहार ग्रहण किया, सो ठीक ही है क्योंकि जो सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित है, अतिशय पवित्र है, मनोहर है, पुण्यको बढ़ानेवाला है, आरोग्य-दायक है और दिनमें ही ग्रहण किया जाता है ऐसा भोजन ही प्रशंसनीय माना गया है ॥ १३८-१४१॥

तदनन्तर भोजन करनेके बाद जब सीता कुछ विश्रामको प्राप्त हो चुकी तब हनूमान्ने जाकर उससे पुनः इस प्रकार निवेदन किया कि हे देवि ! हे पवित्रे ! हे गुणभूषणे ! मेरे कन्धे पर चढ़ो मैं समुद्रको लोचकर अभी क्षण भरमें आपको ले चढ़ूँगा ॥१४२-१४३॥ तुम वैभवसे युक्त एवं तुम्हारे

ततोऽक्षलिपुर्दं बद्ध्वा रुदती जनकालम्बा । जगादादरसंयुक्ता विचिन्तितयथास्थितिः ॥१४५॥
 'अन्तरेण प्रभोरात्रां गमनं मे न युज्यते । इत्यवस्थां गता दास्ये तस्मै किमहमुत्तरम् ॥१४६॥
 प्रयेति नाधुना लोकः शुद्धिं मे सृत्युना विना । नाथ एव ततः कृत्यं मम ज्ञास्यति साम्प्रतम् ॥१४७॥
 चावन्नोपद्रवः कश्चिन्नायते दशवक्त्रकात् । तावद्वज्र द्रुतं आतनालिम्बनमिह क्षणम् ॥१४८॥
 त्वया मद्भक्त्याद् वाच्यः सम्यक् प्राणमहेस्वरः । अभिधानैरिमैर्मुनिभिर्नाथ करकुड्मलम् ॥१४९॥
 तस्मिन् देव मया सार्द्धं मुनयो व्योमचारिणः । चन्द्रिताः परमं भक्त्या त्वया स्तवनकारिणा ॥१५०॥
 विमलाम्बसि पद्मिन्या नितरायुपशोभिते । सरसि क्रीडतां स्वेच्छमस्माकमतिमुन्दरम् ॥१५१॥
 भार्गव्यकस्तदा हस्ती समायातो भयङ्करः । ततो मया समाहृतस्वमुन्मद्यो जलान्वरात् ॥१५२॥
 'उद्दामाऽस्ती सहानागाश्चास्तीकनकारिणा । समस्तं त्याजितो दर्पं भवता विश्वलीकृतः ॥१५३॥
 आसीच्च नन्दनच्छाये बने पुष्पभरानते । शाखां पल्लवलोभेन नमयन्ती प्रयासिनी ॥१५४॥
 भ्रमश्चिश्चल्लैर्गैरभिभूता ससम्भ्रमा । भुजाग्यां भवतारिण्य जनिताकुलतोषिकता ॥१५५॥
 उद्यन्तमन्यदा भानुं माहेन्द्रादिग्विभूषणम् । अहमम्भोजपण्डस्य त्वया सह तदे स्थिता ॥१५६॥
 अशंसिपं ततः किञ्चिद्विष्यारसमुपेयुषां । बालेनोत्पलनालेन मधुरं ताडिता त्वया ॥१५७॥
 अन्यदा रतियौलस्य प्राग्भारस्य मया प्रिय । घृष्टस्त्वमिति विभ्रत्या कौतुकं परशोभया ॥१५८॥
 एतस्मिन् क्रुधुमैः पूर्णां विपुला स्निग्धताञ्जुपः । किन्मासानो द्रुमा नाथ मनोहरणकोविदाः ॥१५९॥

ध्यानमे तत्पर रहनेवाले रामके दर्शन करो तथा प्रेमी जन—मित्रगण आप दोनोंके समागमसे उत्पन्न होनेवाले हर्षका अनुभव करें ॥१४४॥ तदनन्तर सब स्थितिका यथायोग्य विचार करने-वाली एवं आदरसे संयुक्त सीताने हाथ जोड़कर रोती हुई यह कहा कि स्वामीकी आज्ञाके बिना मेरा जाना योग्य नहीं है । इस अवस्थामे पड़ी हुई मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगी ॥१४५-१४६॥ इस समय लोग सृत्युके बिना मेरी शुद्धिका प्रत्यय नहीं करेंगे, इसलिए प्राणनाथ ही आकर मेरे कार्यको शोध्य जानेंगे ॥१४७॥ हे भाई ! जब तक रावणकी ओरसे कोई उपद्रव नहीं होता है तब तक तू शीघ्र ही यहाँसे चला जा । यहाँ क्षणभर भी विलम्ब मत कर ॥१४८॥ तू हाथ जोड़ भक्तसे लगा, इन परिचायक कथानकोके साथ-साथ मेरे वचनोंमें प्राणनाथसे अच्छी तरह कहना कि हे देव ! उस वनमें एक दिन स्तवन करते हुए आपने मेरे साथ बड़ी भक्तिसे आकाशगामी मुनियोंकी वन्दना की थी ॥१४९-१५०॥ एक बार निर्मल जलसे युक्त तथा कमलिनियोंसे सुशोभित सरोवरमें हमलोग इच्छानुसार सुन्दर क्रीड़ा कर रहे थे कि इतनेमें एक भयङ्कर जङ्गली हाथी वहाँ आ गया था, उस समय मैंने आपको पुकारा था सो आप जलके मध्यसे तत्काल ऊपर निकल आये थे ॥१५१-१५२॥ और सुन्दर क्रीड़ा करते हुए आपने उस उद्दाम महाहस्तीका सब गर्व छुड़ाकर उसे निश्चल कर दिया था ॥१५३॥ एक बार नन्दनवनके समान सुन्दर तथा फूलोंके भारसे भुके हुए वनमें, मैं नूतन पत्रोंके लोभसे प्रयत्नपूर्वक वृक्षकी एक शाखाको भुका रही थी । तब उड़ते हुए चञ्चल भ्रमरोंने धावा बोलकर मुझे आकुल कर दिया था, उस समय मुझ बबड़ाई हुईको आपने अपनी भुजाओसे आलिङ्गन कर छुड़ाया था ॥१५४-१५५॥ एक बार मैं आपके साथ कमलवनके तटपर वैठी थी उसी समय पूर्व दिशाके आभूषणस्वरूप सूर्यको उदित होता देख मैंने उसकी प्रशंसाकी थी तब आपने कुछ ईर्ष्यारसकी प्राप्त हो मुझे नीलकमलकी एक छोटी-सी दंडीसे मधुर रीतिसे ताडित किया ॥१५६-१५७॥ एक बार रतिगिरिके शिखर पर अत्यधिक शोभाके कारण कौतुकको धारण करती हुई मैंने आपसे पूछा था कि हे प्रिय ! इधर फूलोंसे परिपूर्ण, विशाल, स्निग्धताको धारण करनेवाले एवं मनके हरण करनेमें निपुण ये कौनसे वृक्ष हैं ? ॥१५८-१५९॥ तब इस प्रकार

ततस्त्वयेति पृष्टेन प्रसन्नमुखशोभिना । आख्यातमिति देव्येते यथा नन्दिद्रुमा इति ॥१६०॥
 कर्णकुण्डलनद्याश्च स्थितास्तारे वयं यदा । तदा सन्निहितौ जातौ मध्याह्ने च्योमगौ मुनी ॥१६१॥
 त्वया मया च भिक्षार्थं तयोरागतयोस्ततः । अस्त्युत्थाय महाश्राद्धं रचितं पूजनं महत् ॥१६२॥
 अन्नं च परमं ताभ्यां दत्तं विधिसमन्वितम् । पञ्च चातिशया जातास्तत्प्रभावेन सुन्दराः ॥१६३॥
 पात्रदानमहोदानं महादानमिति ध्वनिः । अन्तरिक्षेऽभ्रैश्चक्रे साधु सम्यग्ध्वनिश्रितः ॥१६४॥
 अट्टटतुमिदं वैदुन्दुभिः सध्वनिः कृतः । पपात गगनाद्वृष्टिः कौसुमी वृद्धनादिता ॥१६५॥
 सुखशीतो बवौ वायुः सुगन्धिर्नौरजो मृदुः । मणिरत्नसुवर्णाङ्गा धाराश्रममपूरयत् ॥१६६॥
 चूडामणिमिमं चोद्धृत् इदमत्ययकारणम् । दर्शयिष्यसि नायाय तस्यात्यन्तमर्थं प्रियः ॥१६७॥
 जानामि नाथ ते भावं प्रसादिनमलं मयि । तथापि यत्नतः प्राणाः पाल्याः सङ्गमनाशया ॥१६८॥
 प्रसादाद्भवतो जातो वियोगोऽयं मया सह । साम्प्रतं त्वयि यत्नस्ये सङ्गमो नो विंशत्यः ॥१६९॥
 इत्युक्ते वदतीं सीतां समाभास्य प्रयत्नतः । यथाज्ञापयसीलुक्त्वा निरैत्सीताप्रदेशतः ॥१७०॥
 पाण्डुलीयकं सीता तदार्थस्तशरीरिका । मानसस्य कृताधार्स मेने पत्युः समागमम् ॥१७१॥
 अयोधानगता नार्यंस्तसारङ्गलोचनाः । वायुनन्दनमालोक्य स्मितविस्मितसङ्गताः ॥१७२॥
 परस्परं समालापमिति कर्तुं समुद्यताः । अस्य पुष्पनगस्योर्ध्वं कोऽप्यहो नरपुङ्गवः ॥१७३॥
 अवतीर्णः किमेवः स्याद्विश्रमी कुसुमायुधः । देवः कोऽपि तु रीलस्य शोभां द्रष्टुं समागतः ॥१७४॥

पूछे जाने पर आपने प्रसन्नमुख मुद्रासे सुशोभित हुए कहा था कि हे देवि ! ये नन्दि वृद्ध हैं ॥१६०॥ एक बार हम सब कर्णकुण्डल नदीके तीर पर ठहरे हुए थे, उसी समय मध्याह्न कालमें दो आकाशगामी मुनि निकट आये थे ॥१६१॥ तब आपने और मैंने बैठकर, भिक्षाके लिए आये हुए उन मुनियोंकी बड़ी अद्भुत साथ विशाल पूजा की थी ॥१६२॥ तथा विधिपूर्वक उन्हें उत्तम आहार दिया था, उसके प्रभावसे वहाँ अत्यन्त सुन्दर पञ्च आश्चर्य हुए थे ॥१६३॥ आकाशमें देवोंने यह मधुर शब्द किये कि अहो ! पात्रदान ही दान है, यही सबसे बड़ा दान है ॥१६४॥ जिनका शरीर दीख नहीं रहा था ऐसे देवोंने दुन्दुभि बाजे बजाये, आकाशसे जिसपर भ्रमर शब्द कर रहे थे ऐसी पुष्पवृष्टि हुई ॥१६५॥ सुखकारी, शीतल, सुगन्धित पर्व धूलि रहित कोमल वायु चली थी और मणि, रत्न तथा सुवर्णकी धाराने उस आश्रमको भर दिया था ॥१६६॥ हे भाई ! इसके बाद दृढ़ विश्वासका कारण यह उत्तम चूडामणि प्राणनाथको दिखाना, क्योंकि यह उन्हें अत्यन्त प्रिय था ॥१६७॥ ऊपरसे यह सन्देश कहना कि हे नाथ ! आपका सुसुपर अतिशय प्रसन्नतासे भरा जो भाव है उसे मैं यद्यपि जानती हूँ तो भी पुनः समागमकी आशासे प्राण प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने योग्य हैं ॥१६८॥ प्रसादके कारण मेरे साथ आपका यह वियोग हुआ है परन्तु इस समय जब कि आप प्रयत्न कर रहे हैं तब हम दोनोंका समागम निःसन्देह होगा ॥१६९॥ इतना कह कर सीता रोने लगी, तदनन्तर उसे प्रयत्नपूर्वक सान्त्वना देकर और 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर हनुमान्, सीताके उस स्थानसे बाहर निकल आया ॥१७०॥ उस समय जिसका शरीर अशक्त हो रहा था ऐसी सीताने अङ्गुलिको हाथमें पहिनकर ऐसा माना था मानो मनको आनन्द देनेवाला पतिका समागम ही प्राप्त हुआ हो ॥१७१॥

अथानन्तर उस उद्यानमें भयभीत मृगके समान नेत्राको धारण करनेवाली जो स्त्रियाँ थी वे हनुमान्को देख मन्द मुसकान और आश्चर्यसे युक्त हो परस्पर इस प्रकार बातलाप करने लगी कि अहो ! इस झूलोके पर्वतके ऊपर यह कोई श्रेष्ठ पुरुष अवतीर्ण हुआ है सो क्या यह शरीरधारी कामदेव है ? अथवा पर्वतकी शोभा देखनेके लिए कोई देव आया है ? ॥१७२-१७४॥

तासामाकुलिका काचिन्निधाय शिरसि स्रजम् । उपवीणनमारेभे कर्तुं किञ्चरनिस्तता ॥१७५॥
 काचिदिन्द्रमुखी वामे हस्तेऽवस्थाप्य दर्पणम् । दिदृक्षन्ती समालोक्य तं बभूवन्मथ्यामनाः ॥१७६॥
 ईष्यकाचिदभिज्ञाय वधुरिदमचिन्तयत् । अलम्बद्धारसन्मानः कुतो मोक्षतिरागतः ॥१७७॥
 वरस्त्रीजनमुद्याने कृत्वा सम्भ्रान्तमानसम् । हारमाह्वयाम्बरधरो भास्वान् वद्विकुमारवत् ॥१७८॥
 निसर्गकान्तया गत्या प्रदेशं किञ्चिदभ्यगात् । तथाविधां च तां वार्त्तामश्लोद्गात्साधिपः ॥१७९॥
 क्रोधसंस्पृष्टचित्तेन निरपेक्षत्वमोयुषा । तावदाज्ञापिताः शूरा रावणेनोऽप्रकिङ्कराः ॥१८०॥
 विचारेण न चः कृत्यं पुष्पोद्यानाश्विरिति यः । मद्वोही कोऽप्यर्थं चित्रं नीयतामन्तमायुषः ॥१८१॥
 असौ ततः समागत्य दध्युर्विस्मयमागतः । किमिन्द्रजिह्वरेशः स्वाज्ञास्करः श्रवणोऽथवा ॥१८२॥
 पश्यामस्तत्तावदिदृशुस्त्वा तैरित्युक्तं समन्ततः । भो भो श्युत निम्येषा उद्यानस्थाभिरक्षकाः ॥१८३॥
 किं तिष्ठत सुविश्रब्धाः किङ्कराः कृतित्वां भिताः । किमिति श्रुतमस्माभिः कथ्यमानमिदं बहिः ॥१८४॥
 कोऽप्युद्दामतयोद्यानं प्रविष्टो दुष्टसेचरः । स चित्रं मार्यतामेप गृह्यतां दुर्विनीतकः ॥१८५॥
 धावध्वमसौ कोऽसौ सोऽथमेव यतः कुतः । कस्य कस्तादृशः क्वेति किङ्करध्वनिस्तद्गतः ॥१८६॥
 ततः काशुम्भिकान् वद्वान् शाक्तिकान् गदिकांश्च तान् । खड्गिकान् कौम्तिकान्, बह्वसङ्गातानायतो बहून् १८७
 किञ्चित् सम्भ्रान्तधीर्वात्सिङ्गाधिपपरक्रमः । रक्षशास्त्रासृगच्छायासमुद्दीपितपुष्करः ॥१८८॥
 अवरोहन्ततो देशात्तैरदृश्यत किङ्करैः । आकुलत्वविनिर्मुक्तः प्रलम्बं विभ्रदम्बरम् ॥१८९॥

उन स्त्रियोंमें कामसे आकुल होकर कोई स्त्री शिर पर माला रख किन्तु उसके समान मधुर स्वरसे वीणा बजाने लगी ॥१७५॥ कोई चन्द्रमुखी बाँये हाथमें दर्पण रख उसमें हनुमान्का प्रतिबिम्ब देखने की इच्छा करती हुई अन्यथा चिन्त हो गई ॥१७६॥ कोई स्त्री कुछ-कुछ पहिचान कर यह विचार करने लगी कि जिसे द्वारपर सम्मान प्राप्त नहीं हुआ ऐसा यह हनुमान् यहाँ कहाँ आ गया ? ॥१७७॥ इस प्रकार बनमें स्थित उत्तम स्त्रियोंको सम्भ्रान्त चित्त कर हार, माला तथा उत्तम वस्त्रोंको धारण करनेवाला एवं अग्निकुमारके समान देदीप्यमान हनुमान्, अपनी स्वभावसुन्दर चालसे किसी स्थानकी ओर जा रहा था कि रावणने यह सब समाचार सुना ॥१७८-१७९॥ सुनते ही जिसका चित्त आगबबूला हो गया था तथा जो निरपेक्ष भावको प्राप्त हो चुका था—सब प्रकारका स्नेह भुला चुका था ऐसे रावणने उसी समय अपने शूरवीर प्रधान किङ्करोको आज्ञा दी कि तुम लोगोंको विचार करनेसे प्रयोजन नहीं है । पुष्पोद्यानसे जो पुरुष बाहर निकल रहा है वह कोई द्रोही है उसे शीघ्र ही आयुका अन्त कराया जाय—मारा जाय ॥१८०-१८१॥

तदनन्तर किङ्कर आकर आश्चर्यको प्राप्त हो इस प्रकार विचार करने लगे कि क्या यह इन्द्रको जीतनेवाला कोई राजा है, या सूर्य है अथवा श्रवण नक्षत्र है ? ॥१८२॥ अथवा कुछ भी हो चलेकर देखते हैं इस प्रकार कह कर उन्होंने सब ओर आवाज लगायी कि हे उद्यानके समस्त रक्षको ! सुनो, तुम लोग निश्चिन्त होकर क्यों बैठे हो ? हमने उद्यानके बाहर चर्चा सुनी है कि कोई एक दुष्ट विद्याधर अपनी उद्विग्नतासे उद्यानमें प्रविष्ट हुआ है सो यह क्या बात है ? उस दुर्विनीतको शीघ्र ही मारा जाय अथवा पकड़ा जाय ॥१८३-१८४॥ रावणके प्रधान किङ्करोंकी बात सुनकर उद्यानके रक्षक किङ्करोंने 'दौड़ो, कौन है वह, यहाँ कहाँ होगा, वह किसका कौन है ? उसके समान कौन कहाँ है ?' इस प्रकारका हल्ला मचाया ॥१८५॥ उन किङ्करोंमें कोई धनुष लिए हुए थे, कोई शक्ति धारण कर रहे थे, कोई गदाके धारक थे, कोई-तलवारोंसे युक्त थे, कोई भाले संभाले हुए थे, और कोई मुण्डके-मुण्ड बनाकर बहुसंख्यामें आ रहे थे । उन सबको देख हनुमान्के मनमें कुछ सम्भ्रम उत्पन्न हुआ परन्तु वह तो सिंहके समान पराक्रमी था उसने रत्नमयी बानर जैसी कान्तिसे आकाशको देदीप्यमान कर दिया ॥१८७-१८८॥ तदनन्तर आकुलता

ततस्तमुद्यदादित्यमण्डलप्रतिमस्विपम् । प्रदष्टाधरमालोक्य विशीर्णाः किङ्करा गणाः ॥१६०॥
 ततः किलापरैः क्रूरैः प्रत्यतैः किङ्करादिपैः । तस्किङ्करबलं गच्छदित्यनेनश्च चारितम् ॥१६१॥
 शक्तिमोरचकासिगदाकामुकपाणय । सर्वतो वास्तुर्ज्ञेयं मुखराः किङ्करास्ततः ॥१६२॥
 मुमुक्षुश्च धनं शस्त्र ज्येष्ठता यथा वुसम् । अदृष्टमास्करोद्योता परं सङ्घातवर्त्तिनः ॥१६३॥
 उत्पात्य वायुपुत्रोऽपि निःशक्तो धीरपुङ्गवः । संघातं तुङ्गवृत्तानां शिलानां वारमस्तिपत् ॥१६४॥
 भीमभोगिमहङ्गोगमास्वङ्कुजवेरितैः । पादपादिभिरादिसन् कालमेव हवोद्यतः ॥१६५॥
 अथस्थान् शालन्यप्रोधान्दिचम्पककेसरान् । नीपाशोककदम्बांश्च पुञ्जागानर्जुनान् धवान् ॥१६६॥
 आत्रानात्रातकांज्ञोष्ठा (स्तूणराजान्) स्थवीयसैः । विशालान् पनसाद्यांश्च चित्तेषु क्षेपवर्जितः ॥१६७॥
 वमज्ज स्वरितं कांश्चिदपरानुदमूलयत् । मुष्टिपादग्रहारेण पिपेपान्थान् महाबलः ॥१६८॥
 'आकृपारसम तेन सैन्यमेकेन तत्कृतम् । समाकुलं गतं क्वापि जणेन प्रियजीवितम् ॥१६९॥
 सहायैर्मृगराजस्य कुर्वतो मृगशासनम् । कियद्भिरपरैः कृत्यं त्यक्त्वा सत्वं सहोद्भवम् ॥२००॥
 पुष्पाद्रेवतीर्णस्य कंकुलवलयरोधनम् । भूयो युद्धमभू दुर्गं प्रान्तविष्वस्तकिङ्करम् ॥२०१॥

से रहित एवं लटकते हुए लम्बे वस्त्रको धारण करनेवाला हनूमान् जब उद्यानके उस प्रदेशसे नीचे उतर रहा था तब किङ्करोने उसे देखा ॥१८६॥ उस समय क्रोधके कारण हनूमान्की कान्ति उदित होते हुए सूर्यमण्डलके समान देदीप्यमान हो रही थी तथा वह अपना ओठ चबा रहा था । उसे देख किङ्करोके मुण्ड भाग खड़े हुए ॥१८०॥ तदनन्तर जो किङ्करोमें प्रधान क्रूर एवं प्रसिद्ध दूसरे किङ्कर थे उन्होंने इधर-उधर भागते हुए किङ्करोके दलको इकट्ठा किया ॥१८१॥ तदनन्तर जिनके हाथमे शक्ति, तोमर, चक्र, खड्ग, गदा और धनुष थे ऐसे उन किङ्करोने चिल्ला कर सब ओरसे हनूमान्को घेर लिया ॥१८२॥ वे किङ्कर इतनी अधिक भीड़ इकट्ठी कर विद्यमान थे कि उनके कारण सूर्यका प्रकाश भी अदृष्ट हो रहा था । तदनन्तर जिस प्रकार जेठ मासकी वायु भूसा उड़ाती है उसी प्रकार वे अत्यधिक शस्त्र छोड़ने लगे ॥१८३॥ धीरशिरोमणि पवन-पुत्र हनूमान् यद्यपि शस्त्र रहित था परन्तु तो भी उसने बड़े-बड़े वृक्षों और शिलाओंके समूह उखाड़-उखाड़कर फेंके ॥१८४॥ मर्यकर शेषनागके शरीरके समान सुशोभित भुजाओंके वेगसे फेंके हुए वृक्ष आदिसे प्रहार करता हुआ हनूमान् उस समय प्रलयकालके उन्नत मेघके समान जान पड़ता था ॥१८५॥ हनूमान् बिना किसी विलम्बके पीपल, सागौन, वट, चन्द्री, चम्पक, बकुल, नीम, अशोक, कदम्ब, नागकेसर, कोहा, धवा, आम, मिल्मो, लोध्र, खजूर तथा कटहल आदिके बड़े मोटे तथा ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंको उखाड़कर फेंक रहा था ॥१८६-१८७॥ उस महाबलवान्ने कितने ही लोगोको शीघ्र ही खण्डित कर दिया, कितने ही योधाओंको उखाड़ डाला—पैर पकड़कर पछाड़ दिया और कितने ही किङ्करोको लात तथा घुँसोके प्रहारसे पीस डाला ॥१८८॥ उस अकेलेने ही समुद्रके समान भारी सेनाकी वह दशा की कि जिससे वह ध्याकुल हो क्षण भरमे प्राण वचाकर कहीं भाग गई ॥१८९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मृगोपर शासन करनेवाले मृगराज—सिंहको अन्य सहायकोकी क्या आवश्यकता है ? और जो स्वाभाविक तेजको छोड़ चुके हैं उन्हें दूसरे सहायकोसे क्या लाभ है—निस्तेज मनुष्यका अन्य सहायक क्या भला कर सकते हैं ? ॥२००॥

तदनन्तर पुष्पगिरिसे नीचे उतरे हुए हनूमान्का दिङ्मण्डलको रोकनेवाला तथा जिसमें

१. वाङ्मनेत म० । २. यथाम्बुधम् म० । ३. अतित्यूल्न । ४. सागरसदृशम् । ५. चक्रवर्त्तय-रोधनम् म० ।

सभावापीविमानानामुत्थानोत्तगसन्धनाम् । चूर्णितानां तदावातैर्भूमयः केवलाः स्थिताः ॥२०२॥
 पादमार्गप्रदेशेषु ध्वस्तेषु वनवेरमसु । महारण्यापथा जाताः शुक्लसगरसन्निभाः ॥२०३॥
 भयोत्तुहपणश्रेणिः पातितानेककिङ्करः । वभूव राजमार्गोऽपि महासग्रामभूसमः ॥२०४॥
 पतन्निस्तोरणैस्तुङ्गैः कम्पितज्वजपङ्क्तिभिः । वभूवाम्बरमुत्पातादिव अरयत्सुरायुधम् ॥२०५॥
 जङ्घावेगात्समुद्यद्भी रजोभिर्बहुवर्णकैः । हन्द्रायुधसहस्राणि रचितानीव युष्करे ॥२०६॥
 पादावष्टम्भभिन्नेषु भूभागेषु निमज्जताम् । वभूव गृहशैलानां पातालेष्विव निस्वनः ॥२०७॥
 दृष्ट्वा कञ्चित्करेणान्यं कञ्चित्पादेन किङ्करम् । उरसा कञ्चिदंसेन वातेनान्यं जवान सः ॥२०८॥
 आलीयमानमात्राणां किङ्कराणां सहस्रशः । पततामुत्करै रस्था जाता पूरसमागता ॥२०९॥
 हाहाहीकारगम्भीरः पौराणामुदगतो ध्वनिः । क्वचिच्च रत्नकूटानां भङ्गात्कणकनस्वनः ॥२१०॥
 वेगेनोपततस्तस्य समाकूटमहाध्वजाः । कोपादिबोधयुः पञ्चाकूतघण्टादिनिःस्वनाः ॥२११॥
 उन्मूलितमहालाना वज्रमुः परमा गजाः । वायुमण्डलपर्णानामाश्वासुत्पत्तमगास्ताः ॥२१२॥
 अभस्तात् स्फुटिता वाप्यः प्राप्ताः पङ्कजशेपताम् । चक्रारुडेव निःशेषा जाता लङ्का समाकूटा ॥२१३॥
 लङ्काकमलिनोत्खण्डं ध्वस्तराक्षसमीनकम् । श्रीशैलवारणो यावद्विद्योम्य वहिराश्रितः ॥२१४॥

निकटवर्ती किङ्कर मारे गये थे ऐसा भयंकर युद्ध पुनः हुआ ॥२०१॥ उस समय हनूमान्के प्रहारसे जो चूर-चूर किये गये थे ऐसे सभा, वापिका, विमान तथा बाग बगीचोंसे सुशोभित मकानोंमें केवल भूमि ही शेष रह गई थी ॥२०२॥ उसके पैदल चलनेके मार्गोंमें जो बाग-बगीचे तथा महल थे उन सबको उसने नष्ट कर दिया था, जिससे वे लम्बे-चौड़े मार्ग सुखे समुद्रके समान हो गये थे ॥२०३॥ जहाँ अनेक ऊँची-ऊँची टुकानोंकी पंक्तियाँ तोड़ कर गिरा दी गई थीं, तथा अनेक किकर मारकर गिरा दिये गये थे ऐसा राजमार्ग भी महायुद्धकी भूमिके समान हो गया था ॥२०४॥ गिरते हुए ऊँचे-ऊँचे तोरणों और कोंपती हुई ध्वजाओंकी पंक्तिसे उस समय आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो उत्पातके कारण उससे वज्र ही गिर रहा हो ॥२०५॥ जङ्घाओंके वेगसे उड़ती हुई रङ्ग विरङ्गी धूलियोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशमें हजारों इन्द्रधनुष ही बनाये गये हों ॥२०६॥ चरणोंके प्रहारसे विदीर्ण हुई भूमिमें महलरूपी पर्वत नीचेको धँस रहे थे जिससे ऐसा भारी शब्द हो रहा था मानो वे महल रूपी पर्वत पातालमें ही धँसे जा रहे हों ॥२०७॥ वह किसी किङ्करको दृष्टिसे मार रहा था, किसीको हाथसे पीस रहा था, किसीको पैरसे पीट रहा था, किसीको वक्त्रस्थलसे मार रहा था, किसीको कन्धेसे नष्ट कर रहा था और किसीको वायुसे ही उड़ा रहा था ॥२०८॥ आते ही साथ गिरनेवाले हजारों किङ्करोके समूहसे वह लम्बा चौड़ा मार्ग ऐसा हो गया था मानो उसमें पूर ही आ गया हो ॥२०९॥ कहीं नागरिक जनोका हा हा ही आदिका गम्भीर शब्द उठ रहा था तो कहीं रत्नमयी शिखरोंके टूटनेसे कण-कण शब्द हो रहा था ॥२१०॥ जब हनूमान् ऊपरको छलांग भरता था तब उसके वेगसे बड़ी-बड़ी ध्वजाएँ खिंचीं चली जातीं थीं जिससे वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो घण्टाका शब्द करती हुईं कीधसे उसके पीछे ही उड़ी जा रहीं हों ॥२११॥ बड़े-बड़े हाथी खम्भे खड़ा कर ईधर-उधर घूमने लगे और छोड़े वायु मण्डलसे उड़ते हुए पत्तोंकी तुल्यताको प्राप्त हो गये ॥२१२॥ वापिकाएँ नीचेसे फूटकर बह गईं जिससे उनमें कीचड़ मात्र ही शेष रह गया तथा सम्पूर्ण लंका चक्र पर चढ़ी हुईके समान व्याकुल हो उठी ॥२१३॥ जिसमें राक्षसरूपी मीन मारे गये थे ऐसे लंकारूपी कमलवनको क्षोभितकर ज्योंही हनूमान्रूपी हाथी बाहर आया ॥२१४॥

तावचोयदवाहेन समं संनह्य वेगतः । पश्चादिन्द्रजितो लभ्यते द्विपस्यन्दनमध्यगः ॥२१५॥
 हनूमान्यावदेतेन समं योद्धुं समुद्यतः । प्राप्तं तावदितं तस्य बलं यन्मेघपृष्ठगम् ॥२१६॥
 बाह्यायां भुवि लङ्कायां महाप्रतिभयं रणम् । जातं हनूमतः खेटैः लक्ष्मणयेव दौषणम् ॥२१७॥
 युद्धं सुचतुरैर्यदै रथमारुह्य पावतिः । समुद्रच्छत्य शरं सैन्यं राजसानामधिवत ॥२१८॥
 अथेन्द्रजितवीरेण पार्श्वमैहोरेगैस्सितः^१ । चिरमायोषितो नीतः पुरं किञ्चिद्विजितयन् ॥२१९॥
 ततो नगरलोकेन विश्रब्धं स निरीक्षितः । कुर्वन् भञ्जनमासीद्यो विद्युद्दण्डवद्विहितः ॥२२०॥
 प्रवेशितस्य चास्थान्यां तस्य दोषान् दशाननः । कथ्यमानान् शृणोति स्म तद्विजिः पुरुषैर्निजैः ॥२२१॥
 दूताहूतः समायातः किञ्चिन् स्वपुरादयम् । महेन्द्रनगरध्वंसं चक्रे तं च वयं रिपोः ॥२२२॥
 साधूपसर्गमथने द्वीपे दधियुक्ताहूये । गन्धर्वकन्यकास्तित्तः पद्मस्याभ्यनुमोदिताः ॥२२३॥
 विध्वंसं वज्रशालस्य चक्रे वज्रमुखस्य च । कन्यामाम्बिलवत्स्य बहिरस्यापयद् बलम् ॥२२४॥
 भग्नं पुष्पनगोधानं तत्पत्न्यं^२ विह्वलीकृतः^३ । बहवः किङ्करा ध्वस्ताः प्रपदि च विनशितम् ॥२२५॥
 घटस्तनविसुक्तेन पुष्पस्नेहास्त्रिन्तरम् । पयसा पोषिताः स्त्रीभिर्वृक्षका ध्वंसमाहृताः ॥२२६॥
 वृक्षैर्विपोजिता वक्ष्यस्तरलायितपल्लवाः । धरण्यां पतिता भान्ति विधवा इव योषिताः ॥२२७॥
 फलपुष्पमरानम्रा विविधास्तरुजातयाः । रमशापपादपच्छाया पतेन ध्वसिताः स्थिताः ॥२२८॥

त्योही हाथियों के रथपर सवार इन्द्रजित मेघबाहनके साथ तैयार होकर शीघ्र ही उसके पीछे लग गया ॥२१५॥ हनूमान् जब तक इसके साथ युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ तब तक मेघबाहन के पीछे लगी सेना आ पहुँची ॥२१६॥ तदनन्तर लंका की बाह्यभूमिसे हनूमान्का विद्याधरोके साथ उस तरह महाभयङ्कर युद्ध हुआ जिस प्रकार कि लक्ष्मणका खरदण्डके साथ हुआ था ॥२१७॥ हनूमान् चार घोड़ोंसे जुते रथ पर सवार हो बाण खींचकर राजसौकी सेनाकी ओर दौड़ा ॥२१८॥

अथानन्तर चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद जो धीर इन्द्रजितके द्वारा नागपाशसे बाँध लिया गया था ऐसा हनूमान् कुछ विचार करता हुआ नगरके भीतर ले जाया गया ॥२१९॥ जो पहले तोड़-फोड़ करता हुआ विद्युद्दण्डके समान देखा गया था वही हनूमान् अब नगरवासियोंके द्वारा निश्चिन्ततापूर्वक देखा गया ॥२२०॥ तदनन्तर वह रावणकी सभामें ले जाया गया वहाँ रावणने अपने विश्व पुरुषोंके द्वारा कहे हुए उसके अपराध श्रवण किये ॥२२१॥ विश्व पुरुषोंने उसके विषयमें बताया कि यह दूतके द्वारा बुलाये जाने पर अपने नगरसे किञ्चिन् नगर गया । वहाँसे लंका आते समय इसने राजा महेन्द्रका नगर ध्वस्त किया तथा उसे शत्रुके आधीन किया ॥२२२॥ दधिमुखनामक द्वीपसे मुनियुगलका उपसर्ग दूर किया और गन्धर्वराजकी तीन कन्याएँ रामको बरनेके लिए उत्सुक थीं सो उनका अनुमोदन किया ॥२२३॥ राजा वज्रमुखके वज्रकोटका विध्वंस किया तथा उसकी कन्या लंकासुन्दरीको स्वीकृत कर उसके नगरके बाहर अपनी सेना रक्खी ॥२२४॥ पुष्पगिरिका उद्यान नष्ट किया, उसकी रत्नक स्त्रियोंकी विह्वल किया, बहुतेसे किंकर नष्ट किये और प्रपा-पानी पीने आदिके स्थान विनष्ट किये ॥२२५॥ स्त्रियोंने जिन्हें पुत्रके समान स्नेहसे घट रूपी स्तनोंसे छोड़े हुए जलके द्वारा निरन्तर पुष्ट किया था वे छोटे-छोटे वृक्ष इसने नष्ट कर दिये हैं ॥२२६॥ जिनके पल्लव चञ्चल हो रहे हैं ऐसी लताएँ इसने वृक्षोंसे अलग कर पृथिवीपर गिरा दी हैं जिससे वे विधवा स्त्रियोंके समान जान पड़ती हैं ॥२२७॥ फल और फूलोंके भारसे झुकी हुई नाना वृक्षोंकी जातियों इसके द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दी गई हैं जिससे वे

१. महोरगसम्बन्धिभिः । २. वद्धः स्मितः ख० । ३. तत्पत्न्या विह्वलाः कृताः व० । ४. प्रपा पानीय-शालिका तत्पत्यति ।

अपराधानिसाञ् श्रुत्वा रावणः कोपमागतः । अवन्धयत्तमाहूय विनाशं लोहशृङ्गलैः ॥२२६॥
 उपविष्टोऽर्कसङ्काशो दशास्यः सिंहविष्टरे । पूजायोग्यं पुरा वातिमाक्रोशदिति निर्दयम् ॥२२७॥
 उद्बृत्तोऽयमसौ पापः निरपेक्षपोऽस्मिन् । अधुनैतस्य का क्षाया धियेतेनेषितेन किम् ॥२२८॥
 व्यापाद्यते न किं दुष्टः कर्ता नानागसामयम् । कथं न गणितं पूर्वं मम दाक्षिण्यमुन्नतम् ॥२२९॥
 ततस्तम्भण्डप्रान्तस्थिताः प्रवरविभ्रमाः । महामाग्या विलसिन्धो नवयौवनपूजिताः ॥२३०॥
 कोपस्मितसमायुक्ता निमीलितविलोचनाः । विधाय शिरसः कम्पनेनमृचुरनादरात् ॥२३१॥
 प्रसादाद्यस्य यातोऽसि प्रभुतां क्षितिमण्डले । पृथिव्यां विचरन् स्वेच्छं समस्तबलवर्जितः ॥२३२॥
 एतत्तत्सवामिनः प्रीतेर्भवता दर्शितं फलम् । भूमिगोचरदूतत्वं यत्प्राप्तोऽस्यतिनिन्दितम् ॥२३३॥
 सुकृतं दशवक्त्रस्य कथमाधाय दृष्टतः । वसुधाहिण्डनविलौ भवता तौ पुरस्कृतौ ॥२३४॥
 पवनस्य सुतो न त्वं जातोऽप्यन्येन केनचित् । अदृष्टमकुलीनस्य निवेदयति चेष्टितम् ॥२३५॥
 विद्वानि विद्वज्जातस्य सन्ति नाङ्गेषु कानिचित् । नहि नोचं समाश्रित्य जीवन्ति कुलजा नराः ॥२३६॥
 मत्ताः केसरिणोऽप्ये शृङ्गालानाश्रयन्ति किम् । नहि नोचं समाश्रित्य जीवन्ति कुलजा नराः ॥२३७॥
 सर्वस्वेनपि यः पुण्यो यद्यप्यसकृदागतः । सुचिरादागतो द्रोही त्वं निग्राह्यस्तु वर्तसे ॥२३८॥
 इमं निर्गदितैः क्रोधात् ग्रहस्थोवाच मारुतिः । को जानाति विना पुण्यनिग्राहः को विधेरिति ॥२३९॥

श्मशानके वृक्षोंके समान जान पड़ने लगी है ॥२२८॥ हनूमानके इन अपराधोंको सुनकर रावण क्रोधको प्राप्त हुआ तथा विशिष्ट प्रकारके नागपाशसे वेष्टित हुए उसे समीपमें बुलाकर लोहेकी साँकलोंसे बंधवा दिया ॥२२९॥

नदनन्तर सिंहासनपर बैठता, सूर्यके समान देदीप्यमान रावण, पहले जिसको पूजा करता था ऐसे हनूमानके प्रति निर्दयताके साथ इस प्रकार, कठोर वचन बकने लगा ॥२३०॥ कि यह दुराचारी है, पापी है, निरपेक्ष है, निर्लज्ज है, अब इसकी क्या शोभा है ? इसे धिक्कार है, इसके देखनेसे क्या लाभ है ? ॥२३१॥ नाना अपराधोंको करनेवाला यह दुष्ट क्यों नहीं मारा जाय ? अरे ! मैंने पहले इसके साथ जो अत्यन्त उदारताका व्यवहार किया इसने उसे कुछ भी नहीं गिना ॥२३२॥ तदनन्तर रावणके समीप ही उत्तम चेष्टाओंसे युक्त महाभाग्यशाली एवं नवयौवनसे सुशोभित जो विलासिनी स्त्रियों खड़ी थीं वे क्रोध तथा मन्द हास्यसे युक्त हो नेत्र बन्द करतीं तथा शिर हिलाती हुई अनादरसे इस प्रकार कहने लगीं कि हे हनूमान् ! तू जिसके प्रसादसे पृथिवीमण्डलपर प्रभुताको प्राप्त हुआ है तथा समस्त प्रकारके बलसे रहित होकर भी पृथिवीपर इच्छानुसार सर्वत्र भ्रमण करता है ॥२३३-२३४॥ उस स्वामीकी प्रसन्नताका तूने यह फल दिखाया है कि भूमिगोचरियोंकी अतिशय निन्दनीय दूतताको प्राप्त हुआ है ॥२३५॥ रावणके द्वारा किये हुए उपकारोंको पीछे कर तुमने पृथिवीपर परिभ्रमण करनेसे खेदको प्राप्त हुए राम लक्ष्मणकी कैसे आगे किया ॥२३७॥ जान पड़ता है कि तू पवनज्जयका पुत्र नहीं है, किसी अन्यके द्वारा उत्पन्न हुआ है, क्योंकि अकुलीन मनुष्यकी चेष्टा ही उसके अदृष्ट कार्यको सूचित कर देती है ॥२३८॥ जारसे उत्पन्न हुए मनुष्यके शरीरपर कोई चिह्न नहीं होते, किन्तु जब वह खोटा आचरण करता है तभी नीच जान पड़ता है ॥२३९॥ वनमें क्या मदोन्मत्त सिंह सियारोंकी सेवा करते हैं ? ठीक ही कहा है कि कुलीन मनुष्य नीचका आश्रय लेकर जीवित नहीं रहते ॥२४०॥ तू यद्यपि पहले अनेक बार आया फिर भी सर्वस्वके द्वारा पूज्य रहा परन्तु अबकी बार बहुत काल बाद आया और राजद्रोही बनकर आया अतः निग्रह करनेके योग्य है ॥२४१॥ इन वचनोंसे हनूमानको क्रोध आ गया जिससे वह हँस कर बोला कि कौन जानता है पुण्यके विना विधाताका

स्वयं दुर्मतिना सार्द्धमनेनासन्नमृत्युना । इतो दिनैः कतिपयैर्द्रव्यामः क प्रयास्यथ ॥२४३॥
 सौमित्रिः सह पद्मेन बलोत्तुङ्गः समापतन् । न मेव इव संरोद्धुं नवैः शक्नो भवेन्मृपैः ॥२४४॥
 अतूतः परसाहारैः कामिकैरमृतोपमैः । याति कश्चिद्यथा नाशमेकेन विषबिन्दुना ॥२४५॥
 अतूतः स्त्रीसहस्रोपैरिन्धनैरिव पावकः । परस्त्रीतुल्यगया सोऽयं विनाशं क्षिप्रमेव्यति ॥२४६॥
 या येन भाविता बुद्धिः शुभाशुभगता दृढम् । न सा शक्याऽन्यथाकर्तुं पुरन्दरसमेरुपि ॥२४७॥
 निरर्थक प्रियशतैर्दुर्मतौ दीयते मतिः । नूनं विहितमस्यैतद्विहितेन हतो हतः ॥२४८॥
 प्राप्ते विनाशकालेऽपि बुद्धिर्जन्तोर्विनश्यति । विधिना प्रेरितस्तेन कर्मपाकं विचेष्टते ॥२४९॥
 मर्त्यधर्मा यथा कश्चित्सुगन्धि मधुर पयः । प्रमादी विषसन्मिश्रं पीत्वा ध्वंसं प्रपद्यते ॥२५०॥
 तथाविधो दशास्य त्व परस्त्रीसुखलोछुपः । वचनेन विना क्षिप्रं विनाशं प्रतिपत्स्यते ॥२५१॥
 गुरुन् परिजनं वृद्धान् मित्राणि प्रियबान्धवान् । मात्रादीनपकर्णं त्वं प्रवृत्तः पापवस्तुनि ॥२५२॥
 कदाचारसमुद्भे त्वं मदनावर्तमभ्यगाः । प्राप्नो नरकपातालं कष्टं दुःखमावस्थसि ॥२५३॥
 त्वया दशास्य जातेन महारत्नश्रवो नृपात् । अन्वयोऽधमपुत्रेण रक्षसां लयमाहृतः ॥२५४॥
 अनुपाकितमर्यादाः चित्वा पूजितचेष्टिताः । पुत्रावा भवतो वंशयास्त्वं तु तेषां गुलाकवत् ॥२५५॥
 इत्युक्तः क्रोधवर्त्तकः खड्गमालोक्य रावणः । जगाद् दुर्विनीतोऽयु दुर्बुध्चननिर्भरः ॥२५६॥
 त्यक्तमृत्युमयो भिन्नप्रगल्भत्वं ममाग्रतः । द्राक् खलोकियतां मय्ये नगरस्य दुरीहितः ॥२५७॥

निग्राह्य-दण्ड देने योग्य कौन है ॥२४२॥ जिसकी मृत्यु निकट है ऐसे इस दुर्बुद्धिके साथ स्वयं ही यहाँ कुछ दिनोंमें देखेंगे कहाँ जाओगे ॥२४३॥ प्रचण्ड बलका धारी लक्ष्मण रामके साथ आ रहा है सो जिसप्रकार पर्वत मेघको नहीं रोक सकते उसी प्रकार राजा उसे नहीं रोक सकते ॥२४४॥ जिस प्रकार इच्छानुसार प्राप्त हुए अमृत तुल्य उत्तम आहारोंसे रोग नहीं होने वाला कोई मनुष्य विषकी एक बूँदसे नाशको प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जो ईधनोसे अग्निके समान हजारों खियोंके समूहसे रोग नहीं हुआ ऐसा यह दशानन परस्त्रीकी रण्णासे शीघ्र ही नाशको प्राप्त होगा ॥२४५-२४६॥ जिसने जो शुभ-अशुभ बुद्धि प्राप्त की है उसे इन्द्रके समान पुरुष भी अन्यथा करनेके लिए समर्थ नहीं हैं ॥२४७॥ दुर्बुद्धि मनुष्यके लिए सैकड़ों प्रियवचनोंके द्वारा हितका उपदेश व्यर्थ ही दिया जाता है । जान पड़ता है कि इसकी यह होनहार निश्चित ही है अतः वह अपनी होनहारसे ही नष्ट होता है ॥२४८॥ विनाशका अवसर प्राप्त होनेपर जीवकी बुद्धि नष्ट हो जाती है । सो ठीक है, क्योंकि भवितव्यताके द्वारा प्रेरित हुआ यह जीव कर्मोदयके अनुसार चेष्टा करता है ॥२४९॥ जिस प्रकार कोई प्रमादी मनुष्य विषमिश्रित सुगन्धित मधुर दुग्ध पीकर विनाशको प्राप्त होता है उसी प्रकार हे रावण ! तू परस्त्री सुखका लोभी हुआ बिना कुछ कहे ही शीघ्र ही विनाशको प्राप्त होगा ॥२५०-२५१॥ गुरु, परिजन, वृद्ध, मित्र, प्रियबन्धु तथा माता आदिको अनसुना कर तू पापकर्ममें प्रवृत्त हुआ है ॥२५२॥ तू दुराचार रूपी समुद्रमें कामरूपी भ्रमरके बीच फँसकर नीचे नरकमें जावेगा और वहाँ अतिशय दुःख प्राप्त करेगा ॥२५३॥ हे दशानन ! महाराजा रत्नश्रवासे उत्पन्न हुए तुझ अधम पुत्रने राक्षसांका वंश नष्ट कर दिया ॥२५४॥ तुम्हारे वंशज पृथिवीपर मर्यादाका पालन करनेवाले प्रशस्त चेष्टाके धारक उत्तम पुरुष हुए परन्तु तू उन सबमें झिलकेके समान निःसार हुआ है ॥२५५॥

इस प्रकार कहनेपर रावण क्रोधसे लाल हो गया । वह कृपाणकी ओर देखकर बोला कि यह उदण्ड अत्यधिक दुर्बुध्चनोसे भरा है तथा मृत्युका भय छोड़कर मेरे सामने बड़प्पन धारण कर रहा है अतः नगरके बीच ले जाकर इस दुष्ट की शीघ्र ही दुर्दशा की जाय ॥२५६-२५७॥

सशब्दैरायतेः स्थूलैर्बद्धो रज्जुभिरायतेः । औवायां हस्तपादे च रेणुकृतिविग्रहः ॥२५८॥
 वेष्टितः किङ्करैः क्रूरैर्भोग्यतां च गृहे गृहे । हास्यमानः खरैर्वायैः कृतमण्डलपूकृतः ॥२५९॥
 इमकं वनिता दृष्ट्वा नराक्ष पुरवासिनः । शोचन्ति कृतधिकारा विह्वला कम्पिताननाः ॥२६०॥
 क्षितिगोचरदूतोऽयं सोऽयं दूतः प्रपूजितः । पर्यतैनमिति स्वानः पुरे सर्वत्र बोध्यताम् ॥२६१॥
 ततस्तैर्विधिप्राक्तोः संप्राप्तः कोपमुत्तमम् । अयासीद् बन्धनं क्षित्वा मोहपाशं यथा यतिः ॥२६२॥
 पादविन्यासमात्रेण भक्त्या गोपुरमुत्तमम् । द्वाराणि च तथान्यानि खमुत्पत्य ययौ मुदा ॥२६३॥
 शक्रप्रासादसङ्काश भवनं रत्नसां विभोः । हनूमत्पादघातेन विस्तीर्णं स्तम्भसङ्कुलम् ॥२६४॥
 पतता वेशमना तेन यन्त्रितापि महानगैः । धरणी कम्पमावीता पादवेगात्तुघाततः ॥२६५॥
 भूमिसम्प्राप्तसौवर्णप्राकारं रन्ध्रगह्वरम् । वज्रचूर्णितशैलार्भं जातं दाशमुखं गृहम् ॥२६६॥
 कपिलीक्षितामीश श्रुत्वैवविधिविक्रमम् । प्रमोदं जानको प्राप्ता विपादं च मुहुर्मुहुः ॥२६७॥
 वज्रोदरी ततोऽवोचत् किं ब्रूया देवि रोदिषि । सन्त्रोदय शृङ्खलं पश्य यातं मातृतिमम्बरम् ॥२६८॥
 निशम्य वचनं तस्या विकसन्नप्राङ्गजा । गच्छन्तं मासति दृष्ट्वा निजसैन्यसमागतम् ॥२६९॥
 अधिपत्यदयं वार्तां मया नाथस्य मे ध्रुवम् । कथयिष्यति यत्प्रेष गच्छतः प्रवरो जवः ॥२७०॥
 पृष्ठतश्चास्य सामन्दा पुष्पाक्षलिममुद्धत । समाधानपरा भूषा श्रीदिवेशस्य तेजसाम् ॥२७१॥
 उवाच च प्रहाः सर्वे भवन्तु सुखदास्तव । हस्तविघ्नश्चिरंजीव भोगवान् वायुनन्दन ॥२७२॥

शब्द करनेवाली लक्ष्मी मोटी लोहेकी सांकर्लोसे इसे गरदन तथा हाथों और पैरोंमें कसकर बाँधा जाय, धूलिसे इसकी शरीर धूसर किया जाय, दुष्ट किंकर इसे घेर कर कठोर वचनोंसे इसकी हँसी करे तथा घर-घर घुमावे । इस दुर्दशासे यह रो उठेगा ॥२५८-२५९॥ इसे देख लियाँ तथा नगरके लोग धिक्कार देते तथा मुखको विकृत और कम्पित करते हुए इसके प्रति शोक प्रकट करेंगे ॥२६०॥ इसके आगे-आगे नगरमें सर्वत्र यह बोषणा की जाय कि यह वही सम्मानको प्राप्त हुआ भूमिगोचरीका दूत है इसे सब लोग देखें ॥२६१॥

तदनन्तर उन विविध प्रकारके अपशब्दोंसे परम क्रोधको प्राप्त हुआ हनूमान बन्धनको छेड़कर उस प्रकार चला गया जिस प्रकार कि यति मोहरूपी पाशको छेड़ कर चला जाता है ॥२६२॥ वह पैर रखने मात्रसे उन्नत गोपुर तथा अन्य दरवाजोंको तोड़कर हर्ष पूर्वक आकाश में जा उड़ा ॥२६३॥ रावणका जो भवन इन्द्रभवनके समान था वह हनूमानके पैरकी आघातसे इस प्रकार बिखर गया कि उसमें खाली खम्भे-ही-खम्भे शेष रह गये ॥२६४॥ यद्यपि वहाँकी पृथिवी बड़े-बड़े पर्वतोंसे जकड़ी हुई थी तथापि वरणोंके वेगके अनुपातसे गिरते हुए उस भवनके द्वारा हिल उठी ॥२६५॥ जिसका स्वर्णमय कोट भूमिमें मिल गया था तथा जिसमें अनेक गहरे गड्ढे हो गये थे ऐसा रावणका घर वज्रसे चूर-चूर हुए पर्वतके समान हो गया ॥२६६॥ मुकुटमें कणिका चिह्न धारण करने वाले वातरवंशिपोंके राजा हनूमानको इस प्रकारका पराक्रमी सुन सीता हर्षको प्राप्त हुई तथा बन्धनका समाचार सुन बार-बार विषादको प्राप्त हुई ॥२६७॥ तदनन्तर पासमें बैठी हुई वज्रोदरीने कहा कि हे देवि ! व्यर्थ ही क्यों रुदन करती हो ? देखो, वह हनूमान बन्धन तोड़कर आकाशमें उड़ा जा रहा है ॥२६८॥ उसके एक वचन सुन तथा अपनी सेनाके साथ हनूमानको जाता देख सीताके नयन-कमल खिल उठे ॥२६९॥ वह विचार करने लगी कि जिसका जाते समय यह तीव्र वेग है ऐसा यह हनूमान अवश्य ही मेरे लिए मेरे नाथकी वार्ता कहेगा ॥२७०॥ इस प्रकार विचार कर सावधान चित्त की धारक सीताने हर्ष पूर्वक हनूमानके पीछे उस प्रकार पुष्पाक्षलि छोड़ी जिस प्रकार कि लक्ष्मी तेजके स्वामीके पीछे छोड़ती है ॥२७१॥ साथ ही उसने यह कहा कि हे पवन

मालिनीवृत्तम्

इति सुविहितवृत्ताः पूर्वजन्मन्युदाराः सकलभुवनरोषि व्याप्यर्षीतिप्रधानाः ।
 अभिसरपरिमुक्ताः कर्म तत्कर्तुमीशाः अनयति परमं तद्विस्मयं दुर्बिचिन्त्यम् ॥२७३॥
 भजत सुकृतसङ्गं तेन निमुच्य सर्वं विरसफलविधायि क्षुद्रकर्म प्रयत्नात् ।
 भवत परमसौख्यात्वादलोभप्रसक्ताः परिजितरविभासो जन्तवः कान्तलीलाः ॥२७४॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणो हनुमत्प्रत्याभिगमनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५३॥

पुत्र ! समस्त ग्रह तेरे लिए सुखदायक हो तथा तू बिज्जाओं को नष्ट कर भोग युक्त होता हुआ चिरकाल तक जीवित रह ॥२७२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिन्होंने पूर्वजन्ममें उत्तम आचरण किया है, जो उदार है, तथा जिनकी कीर्तिका समूह समस्त संसारमें व्याप्त है ऐसे मनुष्य परिभ्रमणसे रहित हो वह कर्म करनेके लिए समर्थ होते हैं जो कि बहुत भारी अचिन्तनीय आश्चर्य उत्पन्न करता है ॥२७३॥ इसलिए नीरस फल देनेवाले समस्त क्षुद्र कर्मको प्रयत्न पूर्वक छोड़ कर एक पुण्यका ही समागम प्राप्त करो जिससे परम सुखके आस्वादेके लोभी हो, पुरुष अपनी प्रभासे सूर्यकी प्रभाको जीतने वाला एवं मनोहर लीलाओंका धारक होता है ॥२७४॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें हनुमान्के लौटने आदिका वर्णन करनेवाला तिरपनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५३॥

चतुःपञ्चाशत्तमं पर्व

अथाससाद् कैक्किन्धं हनूमान् बलमग्रतः । विधाय^१ पुरिविष्वस्तध्वजङ्गत्रादिचारुतम् ॥१॥
 वह्निर्किन्धान्तकैक्किन्धजनसागरवीक्षितः । विधेश नगरं धीरो निसर्गोदारविभ्रमः ॥२॥
 विक्षिताङ्गान् महायोधान् दष्टुं नगरयोपिताम् । गवाक्षार्पितवक्त्राणां संभ्रमः परमोऽभवत् ॥३॥
 प्राप्य च वासभारमीयं हितो भूत्वा पिता यथा । वातिरावासयत्^३ सैन्यं यथायोग्यं समन्ततः ॥४॥
 ततः सुग्रीवराजेन संगत्य ज्ञापितक्रियः । जगाम पद्मनाभस्य पादमूर्च्छं निवेदितुम् ॥५॥
 प्रिया जीवसि ते भद्रेत्येवमागत्य मारुतिः । वेदयिष्यति मे साङ्गरिति चिन्तामुपागतम् ॥६॥
 क्षीणमत्यभिरामाङ्गं क्षीयमाणं निरङ्कुशम् । वियोगवद्विना नागं दावेनेवाकुलीकृतम् ॥७॥
 वर्तमानं महाशोकपाताले द्विष्टविषम् । पथं वातिरुपासयन् मूर्धन्यस्तकराम्बुसूदं ॥८॥
 प्रथमं वात्सिना हर्षप्रियमाणोरुचक्षुषा । वक्त्रेण जानकीवातां शिष्टावाचां^४ ततोऽखिला ॥९॥
 अभिज्ञानादिकं सर्वं निवेद्योक्तं स सीतया । चूडामणि नरेन्द्राय समर्प्यमात् कृतार्थताम् ॥१०॥
 चिन्तयेव हृत्पद्मायः निपण्णः आन्तवक्त्रे^५ । शोकबलान्त इवासीत्स वेणोर्ध्वमलीमसः ॥११॥

अथानन्तर—जिसकी भवजाओं और छत्रादिकी सुन्दरता नष्ट हो गई थी ऐसी सेना आगे कर हनूमान् किष्किन्धा नगरीको प्राप्त हुआ ॥१॥ तदनन्तर किष्किन्धा निवासी मनुष्योंकी सागरके समान अपार भीड़ने बाहर निकल कर जिसके दर्शन किये थे, जो धीर था तथा स्वभावसे ही उत्तम चेष्टाओंका धारक था ऐसे हनूमान्ने नगरमें प्रवेश किया ॥२॥ उस समय क्षत-विक्षत शरीरके धारक महायोधाओंको देखनेके लिए जिन्होंने झरोखोंमें मुख लगा रक्खे थे, ऐसी नगर-निवासिनी स्त्रियोंमें बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ ॥३॥ तत्पश्चात् अपने निवास स्थान पर आकर हनूमान्ने पिताकी तरह हितकारी हो सेनाको सब ओर यथायोग्य ठहराया ॥४॥ तदनन्तर राजा सुग्रीवके पास मिलकर, लंकामें जो कार्य हुआ था वह उसे बतलाया । तत्पश्चात् समाचार देनेके लिए रामके चरणमूलमें गया ॥५॥ उस समय श्रीराम इस प्रकारकी चिन्ता करते हुए बैठे थे कि सत्पुरुष हनूमान् आकर मुझसे कहेगा कि हे भद्र ! तुम्हारी प्रिया जीवित है ॥६॥ अत्यन्त सुन्दर शरीरके धारक राम क्षीण हो चुके थे तथा उत्तरोत्तर क्षीण होते जा रहे थे । वे वियोगरूपी अग्निसे उस तरह आकुलित हो रहे थे जिस तरह कि दावानलसे कोई हाथी आकुलित होता है ॥७॥ वे महा शोकरूपी पातालमें विद्यमान थे तथा समस्त संसारसे उन्हें द्वेष उत्पन्न हो रहा था । हनूमान् हस्तकमल जोड़कर तथा मस्तकसे लगाकर उनके पास गया ॥८॥ प्रथम तो हनूमान्ने, जिसके विशाल नेत्र, हर्षसे युक्त थे ऐसे मुखके द्वारा जानकीका समाचार कहा और उसके बाद उत्तम वचनोंके द्वारा सब समाचार प्रकट किया ॥९॥ सीताने जो कुछ अभिज्ञान अर्थात् परिचय कारक वृत्तान्त कहे थे वे सब कह चुकनेके बाद उसने राजा रामचन्द्रके लिए चूडामणि दिया और इस तरह वह कृतकृत्यताको प्राप्त हुआ ॥१०॥ वह चूडामणि कान्ति रहित था, सो ऐसा जान पड़ता था मानों चिन्ताके कारण ही उसकी कान्ति जाती रही हो । वह रामके हाथमें इस प्रकार विद्यमान था मानों थककर ही बैठा हो और सीताकी चोटीमें बँधे रहनेसे मलिन हो गया था सो ऐसा जान पड़ता था मानों शोकसे ही दुःखी होकर मलिन हो

१. पुरिविष्वस्तध्वज-क० । पुरि विसस्त ख० । २. जीक्षिताङ्गान् म० । ३. -राखासयन् म० ।
 ४. शिष्टावाचा म० । ५. आन्तवक्त्रकः म० ।

पद्मस्याञ्जलिर्घातोऽसौ पतद्वाष्पो हतप्रभः । दृशा दृष्टो नु पांसो नु वार्ता घृष्टानु संभ्रमात् ॥१२॥
 आसीनमङ्गलावेनं दौर्बल्यविरलाङ्गुली । गलक्किरणधारीष शुशोच घरणपीतः ॥१३॥
 पूरिताञ्जलिमंशुनामालोकेन तमानने । चक्रे सोऽपि रुदित्वैव नरेशः सलिलाञ्जलिम् ॥१४॥
 प्रियायास्तदभिज्ञानं यन्प्राप्यहे नियोजितम् । तेन तस्यापि वैदेहीपरिबद्ध इवामभवत् ॥१५॥
 सर्वव्यापी समुद्रिष्ठो रोमाञ्चः कर्कशो घनः । अङ्गेष्वसम्भवस्तस्य प्रमोद इव निर्भरः ॥१६॥
 अश्रुच्छ्रव परिप्लव्य मारुति कृतसम्भ्रमः । अपि सत्त्वं प्रिया प्राणान् धारयत्यतिकोमला ॥१७॥
 जगाद् प्रणतो वातिः नाथ जीवति नान्यथा । मया वार्त्ता समानीता सुखी भव इल्लापते ॥१८॥
 किन्तु त्वद्विरहोदारदावमध्यविचरिनी । गुणौघनिभगा बाला नेत्रांशुकृतदुर्दिना ॥१९॥
 वेणीवन्धयुतिच्छायमुर्द्धजात्यन्तदुःखिता । मुहुर्निधसती दीनं चिन्तासागरवर्तिनी ॥२०॥
 तन्दूरी स्वभावेन विशेषेण वियोगतः । आराध्यमानिका स्त्रीभिः क्रुद्धाभी रञ्जसां विभोः ॥२१॥
 सतत चिन्तयन्ती त्वां त्यक्तसर्वतनुस्थितिः । दुःखं जीवति ते कान्ता क्रुह देव यथोचितम् ॥२२॥
 सामोरणिष्व. श्रुत्वा म्लानपद्मेक्ष्णक्षिरम् । चिन्तयाकुलितः पद्मो बभूवात्यन्तदुःखितः ॥२३॥
 दौर्बल्यमुष्णं च निरवस्थ सस्तालसशरीरभृत् । निनिन्द जीवितं स्वस्थ जन्म चानेकया भृशम् ॥२४॥

गया हो ॥११॥ वह प्रभाहीन चूडामणि रामकी अञ्जलिमें पहुँचकर ऐसा लगने लगा मानो अश्रु ही छोड़ रहा हो । रामने उसे बड़ी उत्सुकताके कारण नेत्रोंसे देखा था, या पिया था, या उससे क्रुशाल समाचार पूछा था सो कहनेमें नहीं आता ॥१२॥ दुर्बलताके कारण जिसकी अंगुलियों विरल हो गई थी ऐसी अञ्जलिमें विद्यमान तथा जिससे किरणरूपी धाराओका समूह भर रहा था ऐसे उस चूडामणिके प्रति रामने शोक प्रकट किया ॥१३॥ तदनन्तर किरणोंके प्रकाशसे जिसने अञ्जलि भर दी थी ऐसे उस चूडामणिको रामने मस्तक पर धारण किया । उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो उस चूडामणिने स्वयं रोंकर ही जलकी अञ्जलि भर दी हो ॥१४॥ प्रियाके उस अभिज्ञानको रामने अपने जिस अङ्गपर धारण किया उसीने मानो सीताका आलिङ्गन प्राप्त कर लिया था ॥१५॥ उस समय उनके समस्त अङ्गोंमें जिसकी संभावना भी नहीं थी ऐसा सर्वव्यापी, कठोर तथा सघन रोमाञ्च निकल आया मानो हर्षका निर्भर ही फूट पड़ा हो ॥१६॥ रामने वड़े संभ्रमके साथ हनूमान्का आलिङ्गन कर उससे पूछा कि क्या सचमुच ही मेरी कोमलाङ्गी प्रिया प्राण धारण कर रही है—जीवित है ? ॥१७॥ इसके उत्तरमें हनूमान्ने नम्रोभूत होकर कहा कि हे नाथ ! जीवित है । मैं अन्यथा समाचार नहीं लाया हूँ, हे राजन् ! सुखी होइए ॥१८॥ किन्तु इतना अवश्य है कि गुणोंके समूहकी नदी स्वरूप वह बाला तुम्हारे विरह-रूपी दाधानलके मध्यमें वर्तमान है, अश्रुओंके द्वारा दुर्दिन बना रही है—निरन्तर वर्षा करती रहती है ॥१९॥ वेणीवन्धनके छूट जानेसे उसके केश कान्तिहीन हो गये हैं, वह अत्यन्त दुःखी है, बार-बार दीनतापूर्वक सांसे भरती है और चिन्तारूपी सागरमें डूबी है ॥२०॥ वह क्रुशोदरी तो स्वभावसे ही थी पर अब आपके वियोगसे और भी अधिक क्रुशोदरी जान पड़ती है । रावणकी क्रोधभरीं स्त्रियों उसकी निरन्तर आराधना करती रहती हैं ॥२१॥ वह शरीरकी सर्व चिन्ता छोड़ निरन्तर आपकी ही चिन्ता करती रहती है । इस तरह हे देव ! आपकी प्रियवल्लभा दुःखमय जीवन व्यतीत कर रही है अतः यथायोग्य प्रयत्न कीजिए ॥२२॥ हनूमान्के उक्त वचन सुन कर रामके नेत्रकमल म्लान हो गये । वे बहुत देर तक चिन्तासे आकुलित हो अत्यन्त दुःखी हो बैठे ॥२३॥ शिथिल एवं अलसाये शरीरको धारण करनेवाले राम लम्बी तथा गरम सांस

१. जातोऽसौ म० । २. पृथानुसम्भ्रमात् म० । ३. रुदित्वा च० म० । ४. हे महीपते ! ।
 ५. च्युतच्छाय ख० ।

ततस्तदिकितं ज्ञात्वा सौमित्रिरिदमब्रवीत् । किं शोचसि महाबुद्धे कर्तव्ये दीयतां मनः ॥२५॥
 लघयते दीर्घसूत्रयं किष्किन्धनगरप्रभोः । कृताह्वानश्च भूयोऽपि सीताश्रया चिरायति ॥२६॥
 'दशास्य कस्य नगरी' श्वो गन्तास्म्य विसंशयम् । नौभिरण्वमुत्तीर्य बाहुभ्यामेव वा द्रुतम् ॥२७॥
 अथोचे सिंहनादाख्यो मधुरो खेचरो महान् । अभिमानिसमं मैवं आपिष्टाः कोविदो भवान् ॥२८॥
 भवतो या गतिः सैव जातास्माकमिहाधुना । अतो निरूप्य कर्तव्यं सर्वेभ्यो हितमादरात् ॥२९॥
 गत्वा पवनपुत्रेण सभाकाराद्विगोपुरा । लङ्का विध्वंसिता तेन सोद्यानोपवनान्विता ॥३०॥
 अधुना रावणे मुद्धे महाविद्याधराधिपे । सङ्घातशूलपुरस्माकं सम्प्राप्तोऽयं विधेर्वशात् ॥३१॥
 ऊचे चन्द्रमरीचिश्च परं वचनमूजितम् । किं त्वं हरेरिव प्राप्तः सन्त्रासं भृगवत्परम् ॥३२॥
 विभेति दसवक्त्राङ्गः^४ को वासी किं प्रयोजनम् । अन्यायकारिणस्तस्य वर्तते मृत्युप्रभतः ॥३३॥
 अस्माकं बहवः सन्ति खेचरेन्द्रा महारथाः । विद्याविभवसम्पन्नाः कृताश्रयाः सहस्रशः ॥३४॥
 खयातो धनगतित्स्तीव्रो भूतनादो गजस्वनः । क्रूरः केली किलो भीमः कुण्डो गोरतिरहृदः^५ ॥३५॥
 नलो नीलो तडिद्वक्त्रो मन्दरोऽश्वविरण्वः । चन्द्रज्योतिर्मृगेन्द्राङ्गो वज्रदंष्ट्रो दिवाकरः ॥३६॥
 उल्काकाङ्गश्च दिव्यास्त्रप्रत्युहोऽस्मिन्तपौरुषः । हनूमान् सुमहाविद्यः प्रभामण्डलसुन्दरः ॥३७॥
 महेन्द्रकैतुरत्युत्तमरीणपराक्रमः । प्रसन्नकीर्तिस्त्वृत्तः सुतास्तस्य महाबलः ॥३८॥

भरकर अपने जीवनकी अनेक प्रकारसे अत्यधिक निन्दा करने लगे ॥२४॥ तदनन्तर उनकी चेष्टा जानकर हनूमान्ने यह कहा कि हे महाबुद्धिमान् ! शोक क्यों करते हो ? कर्तव्यमे मन दीजिए ॥२५॥ किष्किन्ध नगरके राजा सुग्रीवकी दीर्घसूत्रता जान पड़ती है और सीताका भाई भामण्डल बार-बार बुलाने पर भी देर कर रहा है ॥२६॥ इसलिए हम लोग नौकाओं अथवा भुजाओंसे ही शीघ्र समुद्रको तैर कर कल ही निःसन्देह नीच रावणकी नगरी लंकाको चलेगे ॥२७॥

तदनन्तर सिंहनाद नामक महाबुद्धिमान् विद्याधरने कहा कि इस तरह अभिमानकी समान मत कहो । आप विद्वान् पुरुष है ॥२८॥ आपकी जो दशा लंकासे हुई है वही इस समय यहाँ हम लोगोंकी होगी इसलिए आदरपूर्वक सब कुछ निश्चयकर हितकारी कार्य करना चाहिए ॥२९॥ पवन पुत्र हनूमान्ने कोट, अट्टालिकाएँ तथा गोपुरोंसे सहित एवं बाग-बगीचोंसे सुशोभित लंकापुरीको नष्ट किया है ॥३०॥ इसलिए महाविद्याधरोंका अधिपति रावण इस समय क्रुद्ध हो रहा है और उसके क्रुद्ध होनेपर दैव वश हम सबको यह सामूहिक मृत्यु प्राप्त हुई है ॥३१॥

तदनन्तर चन्द्रमरीचि नामक विद्याधरने अत्यन्त ओजपूर्ण वचन कहे कि क्या तुम सिंहसे हिरण्के समान अत्यन्त भयको प्राप्त हो रहे हो ? ॥३२॥ भयभीत तो रावणको होना चाहिए अथवा वह कौन है और उससे क्या प्रयोजन है ? उसने अन्याय किया है इसलिए मृत्यु उसके आगे नाच रही है ॥३३॥ हमारे पास ऐसे बहुत विद्याधर राजा हैं जो महावीरा शालो हैं तथा जिन्होंने हजारों बार अपने चमत्कार दिखाये हैं ॥३४॥ उनके नाम हैं धनगति, तीव्र, भूतनाद, गजस्वन, क्रूर, केलीकिल, भीम, कुण्ड, गोरति, अहृद, नल, नील, तडिद्वक्त्र, मन्दर, अशनि, अर्णव, चन्द्रज्योति, मृगेन्द्र, वज्रदंष्ट्र, दिवाकर, उल्का और लाङ्गूल नामक दिव्य अस्त्रोंके समूहसे निर्वाध पौरुषको धारण करनेवाला हनूमान्, महाविद्याओंका स्वामी भामण्डल, तीव्र पवनके समान पराक्रमका धारक महेन्द्रकैतु, अद्भुत पराक्रमी प्रसन्नकीर्ति और उसके महाबलवान् पुत्र । इनके सिवाय किष्किन्धनगरके स्वामी राजा सुग्रीवके और भी अनेक

१. 'दशास्य नगरी' श्वो हि गन्तास्मेति विसंशयम्' म० १-२-भाषिष्ट म० १ ३. सप्ताकापत्रिगोपुरा म० । ४. वक्त्राख्यः ख० । ५. गोरविरण्वः ज० ।

किंकिण्यस्वामिचोऽन्येऽपि सामन्ताः परसौजसः । विद्यन्तेऽर्चतकर्मणीषो निर्भृत्याः शासनेपिणः ॥३६॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा खेचराऽध्वरुणतमम् । लक्ष्मीधराग्रजं तेन निदधुर्बिनयाश्रिततम् ॥३७॥
अथेवाद्भिकरे तस्य वदनेऽन्यकसौम्यके । अकुटीजालकं भीमं मृत्योरिव लतागृहम् ॥३८॥
लङ्कायां तेन विन्यस्तां दृष्टिं शोणस्फुरत्पिपम् । केतुरेखामिवोद्याताम् राक्षसचयशंसिनीम् ॥३९॥
तामेव च पुनन्यस्तां चिरमव्यथतां गते । दृष्टस्याग्निं निजे चापे कृतान्तभूलतोपमे ॥४०॥
कोपकम्परलथं चास्य केशभारं स्फुरद्युतिम् । निधानमिव कालस्य निरोद्धुं तमसा जगत् ॥४१॥
तथाविधं च तद्वक्त्रं ज्योतिर्वलयमध्यगम् । जरठीभवदुत्पातप्रभाभास्करसन्निभम् ॥४२॥
गृहीतगमनव्येडं रक्षसां नाशनायतम् । दृष्ट्वा ते गमने सज्जा जातां सम्भ्रान्तमानसाः ॥४३॥
राघवाकृतमुखास्ते सम्पूज्येन्दुश्रुतेगिरिम् । चलिताः ज्योत्समाश्चित्रहेतयः सम्पदान्विताः ॥४४॥
प्रयाणतूर्यसङ्घातं नादपुरितगङ्गायम् । दापयित्वा रणौत्सुक्यौ प्रस्थितां रघुनन्दनौ ॥४५॥
बहुले मार्गशीर्षस्य पञ्चम्यामुदिते रवौ । सोत्साहैः शकुनैरेभिस्तेषां ज्ञेयं प्रयाणकम् ॥४६॥
दक्षिणावर्त्तचिर्धूमवज्जाला रम्यस्ववनः शिखौ । परमालङ्कृता नारी सुरभिरेकोऽनिलः ॥४७॥
निर्ग्रन्थसंयत्तरङ्गं गम्भीरं वाजिहेपितम् । घण्टानिस्त्वजितं कान्तं कलशो दधिपूरितः ॥४८॥

महापराक्रमी सामन्त हैं जो कार्यको प्रारम्भकर बीचमे नहीं छोड़ते, आह्लाकारी हैं और आदेशकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥ ३५-३६ ॥

तदनन्तर चन्द्रमरीचिके वचन सुनकर विद्याधरोने अपने नीचे नेत्र विनयपूर्वक रामके ऊपर लगाये अर्थात् उनकी ओर देखा ॥४०॥ तत्पश्चात् जिसका सौम्यभाव अव्यक्त था ऐसे रामके मुखपर उन्होंने वह भयङ्कर भृकुटीका जाल देखा जो कि यमराजके लतागृह-निकुञ्जके समान जान पड़ता था ॥४१॥ उन्होंने देखा कि श्रीराम लङ्काकी ओर जो लाल-लाल दृष्टि लगाये हुए है, वह राक्षसोका चय सूचित करनेके लिए उदित केतुकी रेखाके समान जान पड़ती है ॥४२॥ तदनन्तर उन्होंने देखा कि रामने वही दृष्टि अपने उस सुदृढ़ धनुष पर लगा रखी है जो चिरकालसे मध्यस्थताको प्राप्त हुआ है, तथा यमराजकी भृकुटीरूपी लताकी उपमा धारण करनेवाला है ॥४३॥ उनका केशोंके समूह क्रोधसे कम्पित तथा शिथिल होकर बिखर गया था और ऐसा जान पड़ता था मानो अन्धकारके द्वारा जगत्को व्याप्त करनेके लिए यमराजका खजाना ही खुल गया था ॥४४॥ तेजोमण्डलके बीचमें स्थित उनका उस प्रकारका मुख ऐसा जान पड़ता था मानो प्रलय कालका देदीप्यमान तरुण सूर्य ही हो ॥४५॥ इस तरह राक्षसोंका नाश करनेके लिए जो गमन सम्बन्धी लतावली कर रहे थे ऐसे रामको देखकर उन सब विद्याधरोके मन लुभित हो गये तथा सब शीघ्र ही प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हो गये ॥४६॥

अथानन्तर रामकी चेष्टाओंसे प्रेरित हुए समस्त विद्याधर चन्द्रमरीचिकी वाणीका सन्मान कर आकाशमार्गसे चल पड़े । उस समय वे सब विद्याधर नानाप्रकारके शस्त्र धारण किये हुए थे और उत्तमोत्तम सम्पदाओंसे सहित थे ॥४७॥ युद्धकी उत्कण्ठासे युक्त राम और लक्ष्मणने, ध्वनिके द्वारा गुफाओंको पूर्ण करनेवाले प्रयाणकालिक बाजे वज्रवा कर प्रस्थान किया ॥४८॥ मार्गशीर्ष वदी पञ्चमीके दिन सूर्योदयके समय उन सबका प्रस्थान हुआ था और प्रस्थान कालमे होनेवाले निम्नाङ्कित शुभ शकुनोंसे उनका उत्साह बढ़ रहा था ॥४९॥ उस समय उन्होंने देखा कि 'निर्धूम अग्नि'की ज्वाला दक्षिणावर्त्तसे प्रवर्धित हो रही है, समीप ही मयूर मनोहर शब्द कर रहा है, उत्तमोत्तम अलंकारोंसे युक्त स्त्री सामने खड़ी है, सुगन्धिकी फैलानेवाली वायु वह रही है ॥५०॥ निर्ग्रन्थ मुनिराज सामनेसे आ रहे हैं, आकाशमें छत्र फिर रहा है, घोड़ोंकी गम्भीर

१. कृतकर्मणी व०, क० । २. चक्षुरणलं व० । ३. दृष्ट्वा म० । ४. जठरीभव-म० । ५. गमने व० । ६. सोत्साहं च दापयित्वा म० ।

दक्षिणतरो ह्येव वामतो गोमयं नवम् । वायसो विस्फुरत्पक्षो निमुक्तमधुरस्वरः ॥५२॥
 मेरीशङ्करवः सिद्धिर्नयं नन्दं ब्रजं दुतम् । निर्बिम्बमिति शब्दाद्यं तेषां मङ्गलमुद्युतः ॥५३॥
 चतुर्दिग्भ्यः समायातैः पूर्वभाणो नक्षत्रैः । सुग्रीवो गन्तुमुद्युतः सितपक्षविधुपमः ॥५४॥
 नानायागविमानास्ते नानावाहनकैतवाः । व्रजन्तो ज्योतिर्न वेगेन वसुः खेचरपुङ्गवाः ॥५५॥
 किष्किन्वाधिपतिर्वातिः शल्यो दुर्मर्षणो नलः । नीलः कालः सुपेणश्च कुमुदाद्यास्तथाः नृपाः ॥५६॥
 पृते ध्वजोपरिन्त्यस्तमहाभासुरवानराः । अम्पमाला इवाकार्यं प्रवृत्ताः सुमहाबलाः ॥५७॥
 रेने विराधितस्यापि हारो निर्मलमासुरः । जाम्बवत्स्य महावृक्षो व्याघ्रो सिंहवत्स्य च ॥५८॥
 बारणो मेघकान्तस्य श्रेयाणामन्वयमाताः । ध्वजेषु चिह्नतां याता आचारक्षत्रेषु चोज्ज्वलाः ॥५९॥
 तेषां बभूव तेजस्वी भूतनादः पुरस्सरः । लोकापालोपमस्तस्य स्थितः पश्चात्तस्मिन्नुतः ॥६०॥
 वृत्ताः सामन्तचक्रेण यथात्वं परमौजसः । लङ्कां प्रति व्रजन्तस्ते रेवुः सज्जातस्मदाः ॥६१॥
 सुकेशतनयाः पूर्वं लङ्कां माल्यादयो यथा । विमानशिखराकूटादयैश्चः पद्मादयो नृपाः ॥६२॥
 पार्श्वस्थः पद्मनाभस्य विराधितनभश्चरः । पृष्ठतो जाम्बवत्तस्यौ सचिर्वरन्वितो निषीः ॥६३॥
 वामे भुजे सुपेणश्च सुग्रीवो दक्षिणे स्थितः । निमेषेण च सम्प्राप्ता वेल्न्धरमहोदधयम् ॥६४॥
 वेल्न्धरपुरत्वामी समुद्रो नाम तत्र च । नलस्य परमं शुद्धमातिष्यं समुपानयम् ॥६५॥

हिनहिनाहट फैल रही है, घण्टाका मधुर शब्द हो रहा है, दहीसे भरा कलश सामनेसे आ रहा है ॥५१॥ वायों और नवानं गोबरको धार-धार बिखेरता तथा पङ्क्तियों फैलाता हुआ काक मधुर शब्द कर रहा है ॥५२॥ मेरी और शङ्करा शब्द हो रहा है, सिद्धि हो, जय हो, समृद्धिमान होओ, तथा किसी विघ्न-बाधाके बिना ही शीघ्र प्रस्थान करो । इत्यादि मङ्गल शब्द हो रहे हैं ॥५३॥ इन मङ्गलरूप शुभशकुनोंसे उन सबका उत्साह वृद्धिगत हो रहा था । चारों दिशाओंसे आये हुए विद्याधरोंसे जिसकी सेना बढ़ रही थी और इसीलिए जो शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी उमा धारण कर रहा था ऐसा सुग्रीव चलनेके लिए उद्यत हुआ ॥५४॥ जो नाना प्रकारके यान और विमानोंसे सहित थे तथा जिनका वाहनों पर नाना प्रकारकी पताकाएँ फहरा रही थीं ऐसे वे सब विद्याधर राजा वेगसे आकाशमें जाते हुए अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥५५॥ किष्किन्ध-नगरके राजा सुग्रीव, हनुमान्, शल्य, दुर्मर्षण, नल, नील, काल, सुपेण तथा कुमुद आदि राजा आकाशमें उड़ें जा रहे थे, सो जिनकी ध्वजाओंमें अत्यन्त देदीप्यमान चानरके चिह्न थे ऐसे ये महाबलवान् विद्याधर ऐसे जान पड़ते थे मानो आकाशको घसनेके लिए ही उद्यत हुए हों ॥५६-५७॥ विराधितकी ध्वजामें निर्मलके समान हार, जाम्बवके ध्वजामें महावृक्ष, सिंहवकी ध्वजामें व्याघ्र, मेघकान्तकी ध्वजामें हाथी तथा अन्य विद्याधरोंकी ध्वजाओंमें वंश-परम्परासे चले आये अनेक चिह्न सुशोभित थे । ये सभी उज्ज्वल छात्रोंके धारक थे ॥५८-५९॥ अत्यन्त तेजस्वी भूतनाद उनके आगे चल रहा था और लोकापालके समान हनुमान् उसके पीछे स्थित था ॥६०॥ यथायोग्य सामन्तोंके समूहसे घिरे, परम तेजस्वी तथा हर्षसे भरे वे सब विद्याधर लङ्का जाते हुए अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥६१॥ जिस प्रकार पहले सुकेशके पुत्र माल्य आदि ने लङ्काकी ओर प्रयाण किया था उसी प्रकार राम आदि राजाओंने विमानोंके अग्रभागपर आरूढ़ हो लङ्काकी ओर प्रयाण किया ॥६२॥ विराधित विद्याधर रामकी वगलमें स्थित था और अपने मन्त्रियोंसे सहित जाम्बव उनके पीछे चल रहा था ॥६३॥ वायें हाथकी ओर सुपेण और दाहिने हाथकी ओर सुग्रीव स्थित था । इस प्रकार व्यवस्थासे चलते हुए वे सब निमेष मात्रमें वेल्न्धर नामक पर्वतपर जा पहुँचे ॥६४॥ वेल्न्धर नगरका स्वामी समुद्र नामका विद्याधर था

ततो नलने सस्रपदं जित्वा निहतसैनिकः । बद्धो बाहुबलाब्धेन समुद्रः खेचरः परः ॥६६॥
 सम्प्लव्य च पुनमुक्तः पद्मानामस्य शासने । स्थापितोऽवस्थिताश्चैते पुरे तत्र यथोचितम् ॥६७॥
 सत्यश्रीः कमला चैव गुणमाला तथापराः । रत्नचूला तथा कन्या समुद्रेण प्रमोदिता ॥६८॥
 कल्पिताः पुरुषोभाङ्गा योषिद्विगुणविभूषिताः । लक्ष्मीधरकुमाराश्च सुरक्षीसमविभ्रमाः ॥६९॥
 तत्रैका रजनीं स्थित्वा सुवेलमचलं गताः । सुवेलनगरे तत्र सुवेलो नाम खेचरः ॥७०॥
 जित्वा तमपि सहग्रासे हेलामात्रेण खेचराः । चिक्रीडमुदितस्तत्र त्रिदशा इव नन्दने ॥७१॥
 तत्राद्ययवने रम्ये सुखेनाक्षेपितक्षपाः । अन्येषु रुधिरा गन्तुं लङ्का तेन सुविभ्रमाः ॥७२॥
 तुह्यप्राकारयुक्तां तां हेमसन्धसमाकुलाम् । कैलासशिखराकारैः पुण्डरीकैर्विराजिताम् ॥७३॥
 विचित्रैः कुट्टिमतलैरालोकैनावभासिताम् । पद्मोद्यानसमायुक्तां प्रपादिकृतिभूषणाम् ॥७४॥
 चैत्यालयरैरलङ्घ्यैर्नानावर्णसमुज्ज्वलैः । विभूषितां पवित्रां च महेन्द्रनगरीसमाम् ॥७५॥
 लङ्कां दृष्ट्वा समासन्नां सर्वे खेचरपुङ्गवाः । हंसद्वीपकृताभासा बभूवुः परमोदयाः ॥७६॥
 युद्धे हंसरथ तत्र विजित्य सुमहाबलम् । रम्ये हंसपुरे क्रीडां चकुरिच्छानुगामिनीम् ॥७७॥
 मुहुः प्रेषितदूतोऽयमद्य श्वो वा विशंसयम् । भामण्डलः समायातीत्येवमाकाङ्क्षयास्थिताः ॥७८॥

मन्दाक्रान्ता

यं यं देशं विहितसुकृताः प्राणभाजः श्रयन्ते तस्मिन् तस्मिन् विजितरिपवो भोगसङ्गं भजन्ते ।
 नलोत्तेषां परजनमतं किञ्चिद्दापयुक्तानाम् सर्वं तेषां भवति मनसि स्थापितं हस्तसक्तम् ॥७९॥

सो उसने परम युद्धके द्वारा नलका आतिथ्य किया ॥६५॥ तदनन्तर बाहुबलसे युक्त नलने
 सर्द्धाके साथ उसके सैनिक मार डाले और उसे बंध लिया ॥६६॥ तदनन्तर रामका आह्वाकारी
 होनेपर उसे सन्मानित कर छोड़ दिया तथा उसी नगरका राजा बना दिया । राम आदि सन्त
 लोग भी उसके नगरमें यथायोग्य ठहरे ॥६७॥ राजा समुद्रकी सत्यश्री, कमला, गुणमाला और
 रत्नचूला नामकी कन्याएँ थीं जो उत्तम शोभासे युक्त थीं, स्त्रियोंके गुणोंसे विभूषित थीं तथा
 देवान्नासाओके समान ज्ञान पड़ती थीं । हर्षसे भरे राजा समुद्रने वे सब कन्याएँ लक्ष्मणके लिए
 समर्पित की ॥६८-६९॥ उस नगरमें एक रात्रि ठहरकर सब लोग सुवेलगिरिको चले गये ।
 वहाँ सुवेल नगरमें सुवेल नामका विद्याधर राज्य करता था ॥७०॥ सो उसे भी युद्धमें अनायास
 जीतकर विद्याधरोने हर्षित हो वहाँ उस प्रकार क्रीडा की जिस प्रकार कि देव नन्दन वनमें रहते
 हैं ॥७१॥ वहाँ अक्षय नामक मनोहर वनमें कुरालता पूर्वक रात्रि व्यतीत कर दूसरे दिन उत्तम
 शोभाको धारण करनेवाले विद्याधर लङ्का जानेके लिए उद्यत हुए ॥७२॥

तदनन्तर जो ऊँचे प्राकारसे युक्त थी, सुवर्णमय भवनोसे व्याप्त थी, कैलासके शिखरके
 समान सफेद कमलोंसे सुशोभित थी, नाना प्रकारके फलों और प्रकाशसे देदीप्यमान थी, कमल
 बनोंसे युक्त थी, प्याऊ आदिकी रचनाओंसे अलंकृत थी, नाना रङ्गोंसे उज्ज्वल ऊँचे-ऊँचे जिन-
 मन्दिरोंसे अलंकृत तथा पवित्र थी और महेन्द्रकी नगरीके समान ज्ञान पड़ती थी ऐसी लङ्काको
 निकटवर्तिनी देख परम वैभवके धारक विद्याधर हंसद्वीपमें ठहर गये ॥७३-७६॥ वहाँके हंसपुर
 नामा नगरमें महाबलवान् राजा हंसरथको जीतकर सबने इच्छानुसार क्रीडा की ॥७७॥ जिसके
 पास बार-बार दूत भेजा गया है ऐसा भामण्डल आज या कल अवश्य आ जावेगा इस प्रकार
 प्रतीक्षा करते हुए सब वहाँ ठहरे थे ॥७८॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि पुण्यात्मा प्राणी जिस-जिस देशमें जाते हैं उसी-उसी देशमें वे
 शत्रुओंको जीतकर भोगोंका समागम प्राप्त करते हैं । उद्यमशील पुण्यात्मा जीवोंके लिए कोई भी

तस्माद् भोगं भुवनविकटं भोक्तुकामेन कृत्यः । श्लाघ्यो धर्मो जिनवरमुखादुद्गतः सर्वसारः ।
आस्तां तावत्तयैपरिचितो भोगसङ्गोऽपि मोक्षम् । धर्मादस्माद्भजति रवितोऽप्युज्ज्वलं भग्नलोकः ॥८०॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे लङ्काप्रस्थानं नाम चतुःपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५४॥

वस्तु परके हाथमें नहीं रहती । समस्त मनचाही वस्तुएँ उनके हाथमें आ जाती हैं ॥७६॥ इसलिए जो भग्न संसारमें उत्तम भोग भोगना चाहता है उसे जिनेन्द्रदेवके मुखारविन्दसे उदित सर्व-
श्रेष्ठ प्रशंसनीय धर्मका पालन करना चाहिए । क्योंकि भोगोंका नश्वर संगम तो दूर रहा वह इस धर्मके प्रभावसे सूर्यसे भी अधिक उज्ज्वल मोक्षको प्राप्त कर लेता है ॥८०॥

इस प्रकार आप नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें लंकाके लिए प्रस्थानका
वर्णन करनेवाला चौवनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५४॥

पञ्चपञ्चाशत्तमं पर्व

अथाभ्यर्णस्थितं ज्ञात्वा प्रतिसैन्यबलं पुरु । युगान्तान्मोघिवेलेव लङ्का चोभमुपागतम् ॥१॥
 सम्भ्रान्तमानसः किञ्चित्कोपमाष दशाननः । चक्रे रणकथां लोको वृद्बन्धव्यवस्थितः ॥२॥
 महार्णवरवा भेर्यस्ताडिताः सुभयावहाः । त्र्ययङ्गस्वनस्तुहो बभ्राम रागनाङ्गणे ॥३॥
 रणभेरीनिवादेन परं प्रमुदिता भटाः । सज्जता रावणं तेन प्राप्ता स्वामिहितैषिणः ॥४॥
 भारीचोमलचन्द्रश्च आस्करः स्यन्दनो विभुः । तथा हस्तग्रहस्ताद्याः सज्जताः स्वामिनं श्रिताः ॥५॥
 अथ लङ्केश्वरं वीरं सद्ग्रासाय समुद्यतम् । विभीषणोऽन्युपागम्य प्रणम्य रचिताङ्गलिः ॥६॥
 शास्त्रानुगतमस्तुर्द्ध शिष्टानामविसममतम् । आयत्वा च सदात्वे च हितं स्वस्य जनस्य च ॥७॥
 शिवं सौम्याननो वाक्यं पदवान्यविशारदः । प्रमाणकोविदो धीरः प्रशान्तमिदमब्रवीत् ॥८॥
 विस्तीर्णां प्रवरा सम्पन्महेन्द्रस्येव ते प्रभोः । स्थिता च रोदसी व्याप्य कीर्तिः कुन्ददलामला ॥९॥
 श्रीहेतोः क्षणमात्रेण सेयं मागाः परिच्यम् । स्वामिन् सन्ध्याभरेखेव प्रसीद परमेश्वर ॥१०॥
 क्षिप्रं समर्प्यतां सीता तव किं कार्यमेतथा । दृश्यते न च दोषोऽत्र प्रस्पष्टः केवलो गुणः ॥११॥
 सुखोदयौ निमग्नरुतं स्वस्थस्तिष्ठ विचक्षण । जनवद्यो महाभोगस्तवासीयं समन्ततः ॥१२॥

अथानन्तर शत्रुकी बड़ी भारी सेनाको निकटमे स्थित जानकर लंका, प्रलयकाळीन समुद्रकी वेलाके समान क्षोभको प्राप्त हुई ॥१॥ जिसका चित्त संभ्रान्त हो रहा था ऐसा रावण कुछ क्रोधको प्राप्त हुआ और कुण्डोंके बीच बैठे हुए लोग रणकी चर्चा करने लगे ॥२॥ जिनका शब्द महासागरकी गर्जनाके समान था ऐसी भय उत्पन्न करने वाली भेरियों वजाई गई तथा तुरही और शङ्खोंका विशाल शब्द आकाशरूपी अङ्गणमें घूमने लगा ॥३॥ उस रणभेरीके शब्दसे परम प्रभोदको प्राप्त हुए, स्वामीके हितचिन्तक योद्धा तैयार होकर रावणके समीप आने लगे ॥४॥ भारीच, अमलचन्द्र, आस्कर, स्यन्दन, हस्त, ग्रहस्त आदि अनेक योद्धा कवच धारण कर स्वामीके पास आये ॥५॥

अथानन्तर लंकाके अधिपति वीर रावणको युद्धके लिए उद्यत देख विभीषण उसके समीप गया और हाथ जोड़ प्रणामकर शास्त्रानुकूल, अत्यन्त श्रेष्ठ, शिष्ट मनुष्योंके लिए अत्यन्त इष्ट, आगामी तथा वर्तमान कालमें हितकारी, आनन्दरूप एवं शान्तिपूर्ण निम्नाङ्कित वचन कहने लगा । विभीषण, सौम्यमुखका धारी, पदवान्यका विद्वान्, प्रमाणशास्त्रमें निपुण एवं अत्यन्त धीर था ॥६-८॥ उसने कहा कि हे प्रभो ! आपकी संपदा इन्द्रकी संपदाके समान अत्यन्त विस्तृत तथा उत्कृष्ट है और आपकी कुन्दकलीके समान निर्मल कीर्ति आकाश एवं पृथिवीको व्याप्त कर स्थित है ॥९॥ हे स्वामिन् ! हे परमेश्वर ! परस्त्रीके कारण आपकी यह निर्मल कीर्ति संध्याकाळीन मेघकी रेखाके समान क्षणभरमें नष्ट न हो जाय अतः प्रसन्न होओ ॥१०॥ इसलिये शीघ्र ही सीता रामके लिए सौंप दी जाय । इससे आपको क्या कार्य ही है ? सौंप देनेमें दोष नहीं दिखायी देता किन्तु गुण ही स्पष्ट दिखायी देता है ॥११॥ हे बुद्धिमन् ! तुम तो सुखरूपी सागरमें निमग्न हो सुखसे बैठो । तुम्हारे अपने सब महाभोग सब ओरसे निर्दोष

सभाने जानकी तस्मिन् पद्मनाभे निधुज्यताम् । निजः प्रकृतिसम्बन्धः सर्वथैव प्रशस्यते ॥१३॥
 श्रुत्वा तदिन्द्रजिह्वाभ्यं जगाद पितृचित्तवित् । स्वभावात्यन्तमानाढ्यमागमप्रतिकूलनम् ॥१४॥
 साधो केनासि पृष्टस्त्वं कोऽधिकारोऽपि वा तव । येनैवं भापसे वाक्यमुन्मत्तगदितोपमम् ॥१५॥
 अत्यन्तं यद्यधीरस्त्वं भीरुश्च क्लीबमानसः । स्ववेशमंविधरे स्वस्थस्तिष्ठ किं तव भापितैः ॥१६॥
 यदर्थं मत्तमातङ्गमहाबुद्ध्याभनकारिणि । पतद्विधिघण्टावै सहग्रामेऽत्यन्तभीषणे ॥१७॥
 हत्वा शत्रून् समुद्रवृत्तास्तीक्ष्णया खड्गधारया । भुजेनोपाख्यते लक्ष्मीः सुकुच्छाद् वीरसुन्दरी ॥१८॥
 सुदुर्लभाभिदं प्राप्य तत्क्षीरलमनुत्तनम् । गृहवन्मुच्यते कस्मात् त्वयाऽन्यथमुदाहृतम् ॥१९॥
 ततो विभीषणोऽबोचदिति निर्भर्त्तनोद्यतः । पुत्रनामासि शत्रुस्त्वमस्य द्रुस्थितचेतसः ॥२०॥
 महाशीतपरीतस्त्वमजानन् हितमात्मनः । अम्यचिन्ताभुरोधेन द्विमवारिणि मज्जसि ॥२१॥
 उद्गतं भवने वद्धिं शुष्कैः पूरयसीन्धनैः । अहो मोहग्रहातस्य विपरीतं तवेदितम् ॥२२॥
 जाम्बूनदमयो यावत्सप्राकारविमानिका । लक्ष्मणेन शरैस्तीक्ष्णैर्लङ्का न परिचूष्यते ॥२३॥
 तावन्तुपसुतौ साध्वी पद्माव स्थिरचेतसे । क्षेमाय सर्वलोकस्य युक्तमर्पयितुं द्रुतम् ॥२४॥
 नैया सीता समानीता पित्रा तव कुबुद्धिना । रक्षोभोगिविलं लङ्कामेपानीता विप्रीपथिः ॥२५॥
 सुमित्रानन्दनं क्रुद्धं तं लक्ष्मीधरः स्रजम् । सिंहं रणमुखे शक्ता न यूयं व्यूहितुं गता ॥२६॥

हैं ॥१२॥ श्रीराम यहाँ पधार है सो उनका सन्मानकर सीता उन्हें सौंप दी जाय क्योंकि अपने स्वभावका सम्बन्ध ही सर्व प्रकारसे प्रशंसनीय है ॥१३॥

तदनन्तर पिताके चित्तको जाननेवाला इन्द्रजित् विभीषणके उक्त वचन सुन, स्वभावसे ही 'अत्यन्त मानपूर्य तथा आगमके विरुद्ध निम्नाङ्कित वचन बोला ॥१४॥ उसने कहा कि हे भले पुरुष ! तुमसे किसने पूछा है ? तथा तुम्हें क्या अधिकार है ? जिससे इस तरह उन्मत्तके वचनोंके समान वचन बोले जा रहे हो ? ॥१५॥ यदि तुम अत्यन्त अधीर-डरपोक या नपुंसक जैसे दीनहृदयके धारक हो तो अपने घरके बिलमें आरामसे बैठो । तुम्हें इस प्रकारके शब्द कहनेसे क्या प्रयोजन है ? ॥१६॥ जिसके लिए मदीन्मत्त हाथियोंके मुण्डसे अन्धकार युक्त, पड़ते हुए अनेक शखोंके समूहसे सहित एवं अत्यन्त भयदायक संग्रामसे तलवारकी पैनी धारासे उहण्ड शत्रुओंको मारकर अपनी भुजाओं द्वारा बड़े कष्टसे वीर सुन्दरी लक्ष्मीका उपार्जन किया जाता है ऐसे उस सर्वोत्कृष्ट अत्यन्त दुर्लभ स्त्री-रत्नको पाकर मूर्ख पुरुषकी तरह क्यों छोड़ दिया जाय ? इसलिए तुम्हारा यह कहना व्यर्थ है ॥१७-१६॥

तदनन्तर डाँट दिखानेमें तत्पर विभीषणने इस प्रकार कहा कि तू मलिनचित्तको धारण करनेवाले इस रावणका पुत्र नामधारी शत्रु है ॥२०॥ तू अपना हित नहीं जानता हुआ महाशीत की बाधासे युक्त हो दूसरेकी इच्छानुसार शीतल जलमें डूब रहा है गोता लगा रहा है ॥२१॥ तू गृहमें लगी अग्निको रखे इन्धनसे पूर्ण कर रहा है, अहो ! मोहरूपी पिशाचसे पीड़ित होनेके कारण तेरी विपरीत चेष्टा हो रही है ॥२२॥ इसलिए यह कोट तथा उत्तम भवनोसे युक्त सुवर्णमयी लङ्का जबतक लक्ष्मणके वाणोंसे चूर नहीं की जाती है तबतक गम्भीर चित्तके धारक रामके लिए शीघ्र ही पतिव्रता राजपुत्री-सीताका सौंप देना सब छोड़ो कल्याणके लिए उचित है ॥२३-२४॥ तेरा दुर्बुद्धि पिता यह सीता नहीं लाया है किन्तु राक्षसरूपी सर्पोंके रहनेके लिए बिलस्वरूप इस लङ्का नगरीमें विषकी औषधि लाया है ॥२५॥ लक्ष्मीधरोंमें श्रेष्ठ एवं क्रोधसे युक्त लक्ष्मण सिद्धके समान है और तुम लोग हाथियोंके तुल्य हो अतः रणके अग्रभागमें उसे

अर्णवाहं धनुर्धरं यस्यादित्यसुखाः शराः । एषो भामण्डलो यस्य स कथं जीयते जनैः ॥२७॥
 ये तस्य प्रणतास्तुङ्गाः । खेचराणां महाधिपाः । महेन्द्रा मलयार्स्ताराः श्रीपर्वततनूरुहाः ॥२८॥
 किष्किन्धात्रिपुरा रत्नद्वीपवेलन्धरालकाः । कैलीकिला खतिलका सन्ध्याह्वाः हैहयास्तथा ॥२९॥
 प्राग्भारदधिवक्त्राश्च तथाये सुमहाबलाः । विद्याविभवसम्पन्नास्ते तु विद्याशरा न किम् ॥३०॥
 एवं प्रचदमानं तं क्रोधमैरितमानसः । उल्हाय रावणः खड्गमुद्रतो हन्तुमुद्यतः ॥३१॥
 तेनापि कोपवश्येन दृष्टान्तेनोपदेशने । उन्मूलितः प्रचण्डेन स्तम्भो वज्रमयो महान् ॥३२॥
 युद्धार्थमुद्रतायेतौ आतराखुप्रतेजसौ । सचिवैर्वारितौ कृच्छ्राद्रितौ स्वं स्वं निवेशनम् ॥३३॥
 कुम्भकर्णेन्द्रजित्मुत्पर्यैरैः प्रत्यायितस्ततः । जगाद् रावणो विश्रम्भानसं पौरुषाशयम् ॥३४॥
 आश्रयाश्च^१ इव स्वस्य स्थानस्याहिततत्परः । दुरात्मा मत्पुरीतोऽयं परिनिःकामतु द्रुतम् ॥३५॥
 अनर्थोद्यतचित्तेन स्थितेन किमिहासुता । स्वाह्नेनापि न मे कृत्वं प्रतिकूलप्रवृत्तिना ॥३६॥
 तिष्ठन्तमिह मृत्युं चेदेतर्कं न नयाम्यहम् । ततो रावण एवाहम् न भवामि विसंशयम् ॥३७॥
 श्रीरत्नश्रवसः पुत्रः सोऽप्यहं न भवामि किम् । इत्युक्त्वा निर्ययौ मानी लङ्कातोऽयं विभीषणः ॥३८॥
 साम्राजिश्चाहशस्त्राभिः^३ त्रिशङ्गिः परिचारितः । अक्षौहिणीभिरुद्युक्तो गन्तुं पद्मस्य संश्रयम् ॥३९॥
 विषुद्घनेभ्यश्चेन्द्रप्रचण्डचपलाभिधाः । उद्गातायनिसङ्घाताः कालाद्याश्च महाबलाः ॥४०॥
 शूराः परमसामन्ता विभीषणसमाधवाः । सान्तः पुराः ससर्वेन्द्रा नानाशस्त्रविजिताः ॥४१॥

चेरनेके लिए तुम समर्थ नहीं हो ॥२६॥ जिसके पास सागरावर्त धनुष और आदित्यमुख बाण हैं तथा भामण्डल जिसके पक्षमें है वह तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥२७॥ जो महेन्द्र, मलय, तीर, श्रीपर्वत, किष्किन्धा, त्रिपुर, रत्नद्वीप, वेलन्धर, अलका, कैलीकिल, गगनतिलक, संध्या, हैहय, प्राग्भार तथा दधिमुख आदिके बड़े-बड़े अभिमानी राजा तथा विद्याविभवसे सम्पन्न अतिशय बलवान् अन्य नृपति उन्हें प्रणाम कर रहें हैं—उनसे जा मिले हैं, सो क्या वे विद्याधर नहीं हैं ॥२८-३०॥ इस प्रकार उच्च स्वरसे कहनेवाले विभीषणको मारनेके लिए उधर क्रोधसे भरा रावण तलवार उभार कर खड़ा हो गया ॥३१॥ और इधर उपदेश देनेके लिए जिसका दृष्टान्त दिया जाता था ऐसे महाबलवान् विभीषणने भी क्रोधके वशीभूत हो एक वज्रमयी बड़ा खम्भा उखाड़ लिया ॥३२॥ युद्धके लिए उद्यत, उग्र तेजके धारक इन दोनों भाइयोंको मन्त्रियोंने बड़ी कठिनाईसे रोका । तदनन्तर रोके जाने पर वे अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥३३॥

तत्पश्चात् कुम्भकर्ण, इन्द्रजित् आदि मुख्य-मुख्य आप्त जनोंने जिसे विश्वास दिलाया था ऐसा रावण कठोर चित्तको धारण करता हुआ बोला कि जो अग्निके समान अपने ही आश्रयका अहित करनेमें तत्पर है ऐसा यह दुष्ट शीघ्र ही मेरे नगरसे निकल जावे ॥३४-३५॥ जिसका चित्त अनर्थ करनेमें उद्यत रहता है ऐसे इसके यहाँ रहनेसे क्या लाभ है ? मुझे तो विपरीत प्रवृत्ति करनेवाले अपने अङ्गसे भी कार्य नहीं है ॥३६॥ यहाँ रहते हुए इसे यदि मैं मृत्युको प्राप्त न कराऊँ तो मैं रावण ही नहीं कहलाऊँ ॥३७॥

अथानन्तर 'क्या मैं भी रत्नश्रवाका पुत्र नहीं हूँ' यह कहकर मानी विभीषण लङ्कासे निकल गया ॥३८॥ वह सुन्दर शस्त्रोंको धारण करनेवाली कुल अधिक तीस अक्षौहिणी सेनाओंसे परिबृत्त हो रामके समीप जानेके लिए उद्यत हुआ ॥३९॥ विषुद्घन, इभवज, इन्द्रप्रचण्ड, चपल, काल, महाकाल आदि जो बड़े-बड़े शूरवीर सामन्त विभीषणके आश्रयमें रहनेवाले थे वे वज्रमय शस्त्र उभारकर अपने-अपने अन्तःपुर और सारभूत श्रेष्ठ धन लेकर नाना शस्त्रोंसे सुशो-

म्रजन्तो बाहूनैश्चित्रैश्छादयित्वा नभस्तलम् । परिच्छिद्समायुक्ताः हंसद्वीपं समागताः ॥४२॥
 द्वीपस्य तस्य पर्यन्ते सुमनोहे ततस्तटे । ते सरिच्छुम्बिते तस्थुः सुरा नन्दीश्वरे यथा ॥४३॥
 विभीषणागमे जाते जातो वानरिणां महान् । हिमागमे दरिद्राणामिवाकम्पः समन्ततः ॥४४॥
 समुद्रावर्तभृत्सूर्यहासं लक्ष्मीशृङ्गैश्चत । वज्रावर्तं धनुः पद्मः पराश्वशृङ्गादरः ॥४५॥
 भ्रमन्त्रयन्तं सम्भूय मन्त्रिणः स्वैरमाकुलाः । सिंहादिसमिव त्रस्तं वृन्दबन्धमगाद् बलम् ॥४६॥
 युता विभीषणेनाथ दण्डपाणिर्विचक्षणः । प्रेषितः पद्मनाथस्य सकाशं मधुरावरः ॥४७॥
 समायासुपविष्टोऽसौ कृतप्रणतिराहृतः । निजगादालुपूर्वेण विरोधं आनुसम्भवम् ॥४८॥
 इति चावेदयन्नाथ तत्र पद्म विभीषणः । पादौ विज्ञापयत्येवं धर्मकार्यसमुद्यतः ॥४९॥
 भवन्तं शरणं भक्तः प्राप्तोऽहं श्रितवत्सल । आश्वादानेन मे तस्मात्प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥५०॥
 प्रदेशान्तरमेतस्मिन् प्रतीहारेण आपिते । सैन्यमन्त्रो मन्त्रिमिः सार्द्धं पद्मस्यैवमजायत ॥५१॥
 मत्तिकान्तोऽध्ववीरपद्मं कदाचिच्छिद्मन्नैपकः । प्रेषितः स्यादशस्येन विचित्रं हि वृषेहितम् ॥५२॥
 परस्परविधाताद्वा कलुषत्वमुपागतम् । प्रसादं पुनरप्येति कुलं जलमिव भुवम् ॥५३॥
 ततो मत्तिसमुद्रेण जगदे मत्तिशालिना । विरोधो हि तथोर्जातः श्रूयते जनवक्त्रतः ॥५४॥
 धर्मपक्षो महानीतिः शास्त्रमनुष्ठातिताशयः । अनुग्रहपरो नित्यं श्रूयते हि विभीषणः ॥५५॥
 सौन्दर्यकारणं नात्र कर्महेतुः पृथक् पृथक् । सततं तत्त्वभावेण स्थिता जगति चित्रता ॥५६॥

मित होते हुए चल पड़े ॥४०-४१॥ नाना प्रकारके वाहनोसे आकाशको आच्छादित कर अपने परिवारके साथ जाते हुए वे हंसद्वीपमें पहुँचे ॥४२॥ और नदियोंसे सुशोभित उस द्वीपके सुन्दर तट पर इस प्रकार ठहर गये जिस प्रकार कि देव नन्दीश्वर द्वीपमें ठहरते हैं ॥४३॥ जिस प्रकार शीतकालके आनेपर दरिद्रोंके शरीरमें सब ओरसे कँपकँपी छूटने लगती है उसी प्रकार विभीषणका आगमन होते ही वानरोंके शरीरमें सब ओरसे कँपकँपी छूटने लगी ॥४४॥ सागरावर्त धनुषको धारण करनेवाले लक्ष्मणने सूर्यहास खड्गकी ओर देखा तथा उत्कृष्ट आदर धारण करनेवाले रामने वज्रावर्त धनुषका स्पर्श किया ॥४५॥ धवड़ाये हुए मन्त्री एकत्रित हो इच्छानुसार मन्त्रणा करने लगे तथा जिस प्रकार सिंहसे भयभीत होकर हाथियोंकी सेना कुण्डके रूपमें एकत्रित हो जाती है उसी प्रकार वानरोंकी समस्त सेना भयभीत हो कुण्डके रूपमें एकत्रित होने लगी ॥४६॥

तदनन्तर विभीषणने अपना बुद्धिमान् एवं मधुरभाषी द्वारपाल रामके पास भेजा ॥४७॥ बुलाये जानेपर वह सभामे गया और प्रणाम कर बैठ गया । तदनन्तर उसने यथाक्रमसे दोनों भाइयोंके विरोधकी बात कही ॥४८॥ तत्पश्चात् यह कहा कि हे नाथ ! हे पद्म ! सदा धर्म कार्यमें उद्यत रहनेवाला विभीषण आपके चरणोंमें इस प्रकार निवेदन करता है कि हे आश्रितवत्सल ! मैं भक्तिसे युक्त हो आपकी शरणमें आया हूँ, सो आप आज्ञा देकर मुझे कृतकृत्य कीजिए ॥४९-५०॥ इस प्रकार जब द्वारपालने कहा तब रामके निकटस्थ मन्त्रियोंके साथ इस तरह उत्तम सलाह हुई ॥५१॥ मत्तिकान्त मन्त्रीने कहा कि कदाचित् रावणने जलसे इसे भेजा हो क्योंकि राजाओंकी चेष्टा विचित्र होती है ॥५२॥ अथवा परस्परके विरोधसे कलुषताको प्राप्त हुआ कुल, जलकी तरह निश्चित ही फिरसे प्रसाद (पक्षमें स्वच्छता) को प्राप्त हो जाता है ॥५३॥ तदनन्तर बुद्धिशाली मत्तिसागर नामक मन्त्रीने कहा कि लोगोके मुखसे यह तो सुना है कि इन दोनों भाइयोंमें विरोध हो गया है ॥५४॥ सुना जाता है कि विभीषण धर्मका पक्ष ग्रहण करनेवाला है, महानीतिमान् है, शास्त्ररूपी जलसे उसका अभिप्राय धुला हुआ है और निरन्तर अनुग्रह-उपकार करनेमें तत्पर रहता है ॥५५॥ इसमें भाईपना कारण नहीं है किन्तु अपना पृथक्-पृथक् कर्म ही

प्रकृतेऽस्मिन् स्वभाष्यान् श्रुतो कुत नैषिक^१ । गिरिगोभूतिनामानावभूतां वटुकी किल ॥५७॥
 तस्मिन् सूर्यदेवस्य राक्षी नाम्ना मतिप्रिया । अद्वादं व्रतकं तस्मादिदं सुकृतवान्कृत्या ॥५८॥
^२भोदनच्छादिते हेमपूर्णं पृथुकपालिके । गिरिः सुवर्णमालोभ्य लोभादितरमणिगोत् ॥५९॥
 अन्यच्च खलु कौशम्य्यां वणिग्नाम्ना बृहद्घनः । तद्भायां कुरुविन्दाख्या तस्य पुत्रौ बभूवतुः ॥६०॥
 अहिदेवमहीदेवौ तौ भूते जनके गतौ । सुघनी यानपात्रेण विमवच्छेदभीरुकी ॥६१॥
 सर्वभाष्येन तौ रत्नमेकमानयतां परम् । यस्य तज्जायते हस्ते स जिघांसति होतरम् ॥६२॥
 परस्परं च दुश्चिन्तां तौ विषेण समं गतौ । मात्रे चानीय तद्गत्वं विरागाभ्यां समर्पितम् ॥६३॥
 माता विषेण तौ हन्तुमैच्छुद्वयोधमिता पुनः । कालिन्ध्यां तैर्विरकैस्तद्गत्वं त्रिंशं श्वयोऽगिलत् ॥६४॥
 आनाथिकगृहीतोऽसौ विक्रीतस्तद्गृहे पुनः । ततस्तयोः स्वसा मस्य छिन्द्यानां रत्नमैवत ॥६५॥
 मातरं आतरी वैषा विष्यान्कृत् ततोऽलपत् । लोभमोहप्रभावेण स्नेहाच्च शममागता^४ ॥६६॥
 प्राग्ना विरचूर्णं तद्गत्वं ज्ञाताकृताः परस्परम् । संसारभाचनिर्विण्णाः समस्तास्ते प्रवव्रजुः ॥६७॥
 तस्माद्द्रव्यादिलोभेन आत्रादीनामपि स्फुटम् । ससारे जायते वैरं यौनवन्धो न कारणम् ॥६८॥
 हरयते वैरमेतस्मिन् दैवयोगापुनः शमः । गोभूतिः सोदरो लोभाद्विरिणा हत एव सः ॥६९॥
 तस्मात्प्रेषितदूतोऽयं महाबुद्धिविमोषणः । आनीयतां न योनीयदृष्टान्तोऽत्र परस्फुटः ॥७०॥

कारण है। कर्मके प्रभावसे ही संसारमें यह चित्रितता स्थित है ॥५६॥ इस प्रकरणमें तुम एक कथा सुनो—नैषिक नामक ग्राममें गिरि और गोभूति नामक दो ब्राह्मणोंके बालक थे ॥५७॥ उसी ग्राममें राजा सूर्यदेवकी रानी मतिप्रियाने पुण्यकी इच्छासे एक व्रतके रूपमें उन दोनों बालकोंके लिए मिट्टीके बड़े-बड़े कपालोंमें स्वर्ण रखकर तथा ऊपरसे मात ढककर दान दिया। उन दोनों बालकोंमें से गिरि नामक बालकने देख लिया कि इन कपालोंमें स्वर्ण है तब उसने स्वर्णके लोभ से दूसरे बालकको मार डाला और उसका स्वर्ण स्वयं ले लिया ॥५८-५९॥ दूसरी कथा यह है कि कौशाम्बी नामा नगरीमें एक बृहद्घन नामका वणिक् रहता था। कुरुविन्दा उसकी स्त्रीका नाम था और उससे उसके अहिदेव और महीदेव नामके दो पुत्र हुए थे। जब उन पुत्रोंका पिता मर गया तब वे जहाजमें बैठकर कहीं गये। 'सूनेमें कोई धन चुरा न ले' इस भयसे वे अपना सारभूत धन साथ ले गये थे। वहाँ सब वर्तन आदि बेचकर वे एक उत्तम रत्न लाये। वह रत्न दोनों भाइयोंमें से जिसके हाथमें जाता था वह दूसरे भाईको मारनेकी इच्छा करने लगता था ॥६०-६१॥ दोनों भाई अपने छोटे विचार एक दूसरेको बताकर साथ-ही-साथ घर आये और दोनोंने विरक्त होकर वह रत्न माताके लिए दे दिया ॥६३॥ माताने भी विष देकर पहले उन दोनों पुत्रोंको मारनेकी इच्छा की परन्तु पीछे चलकर वह ज्ञानको प्राप्त हो गई। तदनन्तर माता और दोनों पुत्रोंने विरक्त होकर वह रत्न यमुना नदीमें फेंक दिया जिसे एक मच्छने निगल लिया ॥६४॥ उस मच्छकको एक धीवर पकड़ लाया जो इन्हीं तीनोंके घर बेचा गया। तदनन्तर इनकी बहिनने मच्छकको काटते समय वह रत्न देखा ॥६५॥ सो लोभ और मोहके प्रभावसे वह माता तथा दोनों भाइयोंको विष देकर मारनेकी इच्छा करने लगी, परन्तु स्नेहवशा पीछे शान्त होगई ॥६६॥ तदनन्तर परस्पर एक दूसरेका अभिप्राय जानकर उन्होंने उस रत्नको पत्थरसे चूर-चूरकर फेंक दिया और उसके बाद संसारकी दशासे विरक्त हो सभी ने दीक्षा धारण कर ली ॥६७॥ इस कथासे यह स्पष्ट सिद्ध है कि द्वय आदिके लोभसे भाई आदिके बीच भी संसारमें वैर होता है इसमें योनि सम्बन्ध कारण नहीं है ॥६८॥ इस कथामें वैर दिखाई तो दिया है परन्तु दैवयोगसे पुनः शान्त होता गया है और पूर्व कथामें गिरिने अपने सगे भाई गोभूतिको मार ही डाला है ॥६९॥ इसलिये दूत भेजनेवाले इस महाबुद्धिमान् विमो-

१. नैषिके म० । २. उदन ज०, ख० । ३. यमुनाया । ४. शममागताः म० । ५. ज्ञाताकृताः म० ।

ततो दण्डिनमाहूय अगुरेत्विति तेन च । गत्वा निवेदिते प्राप्ते पक्षं रत्नश्रवणसुतः ॥७१॥
 ऊचे विभीषणो नत्वा प्रभुः त्वमिह जन्मनि । परत्र जिननाथश्च ममाप निश्चयः प्रभो ॥७२॥
 समये हि कृते तेन प्रोचे रामो विसंशयम् । योजयामि त्वक लङ्कतं भव सन्देहवर्जितः ॥७३॥
 विभीषणसमायोगे वर्त्तते भावदुस्त्ववः । तावत्सिद्धमहाविद्यः प्राप्तः पुण्यवतीसुतः ॥७४॥
 प्रभामण्डलमायात विजयार्द्धखगाधिपम् । पञ्चादयः परं दृष्ट्वा समानर्तुः प्रभाविणम् ॥७५॥
 निर्वाह्य दिवसान्धौ नगरे हंसनामनि । सम्यग्निश्चितकर्तव्या लङ्काभिमुखममजन् ॥७६॥
 स्यन्दनैर्विधिर्यनिः स्थूरीपृष्ठैर्मरुजवैः । प्रावृपेण्यघनच्छायैरनेकपकदम्बकैः ॥७७॥
 अनुरागोत्कटैश्चरैः वीरैः सन्नाहभूषणैः । ययुः खेचरसामन्ताः समन्ताच्छङ्खपुष्कराः ॥७८॥
 अग्रप्रयाणकन्यस्ताः प्रवीराः कपिकेतवः । सङ्गताधरणी प्रापुस्तद्योन्यत्वमुदाहृतम् ॥७९॥
 विंशतिर्जानान्यस्या रुद्रतापकिर्तितः । आयामस्य तु नैवास्ति परिच्छेदो रणरितेः ॥८०॥
 नानाबुधविचिह्नानां सहस्रेणलक्षिता । मृत्युचक्रमणिश्चैव समवर्चत युद्धम् ॥८१॥
 ततो नागारब्धदिहानां दुन्दुभीनां च निःस्वनम् । श्रुत्वा हर्षं दशास्योगाक्षिरागैरगोस्त्ववः ॥८२॥
 आज्ञादानेन चाशेषान् सामन्तान्सर्वान्भवत् । नहि ते वञ्चितस्तेन युद्धानन्देन जातुचित् ॥८३॥
 भास्कराभाः पयोदाह्वाः काञ्चना ज्योमवल्लभाः । गन्धर्वगीतनगराः कम्पनाः शिवमन्दिराः ॥८४॥

षणको बुलाया जाय । इसके विषममें योनि सम्बन्धी दृष्टान्त स्पष्ट नहीं होता अर्थात् एक योनिसे उत्पन्न होनेसे कारण जिस प्रकार रावण दुष्ट है उसी प्रकार विभीषणको भी दुष्ट होना चाहिये यह बात नहीं है ॥७०॥

तदनन्तर द्वारपालको बुलाकर सबने कहा कि विभीषण आवे । तत्पश्चात् द्वारपालके द्वारा जाकर खबर दी जानेपर विभीषण रामके पास आया ॥७१॥ उसने आते ही प्रणामकर कहा कि हे प्रभो ! मेरा यह निश्चय है कि इस जन्ममें आप मेरे स्वामी हैं और पर जन्ममें भी श्री जिनेन्द्र देव ॥७२॥ जब विभीषण निश्चलताकी शपथ कर चुका तब रामने संशय रहित होकर कहा कि तुम्हें लंकाका राजा बनाऊंगा, सन्देह रहित होओ ॥७३॥ इधर विभीषणका समागम होनेसे जब तक उत्सव मनाया जा रहा था तब तक उधर अनेक महाविद्याओंको सिद्ध करनेवाला पुष्पवतीका पुत्र भामण्डल आ पहुँचा ॥७४॥ विजयार्धके अधिपति, परम प्रभावशाली भामण्डल को आया देख राम आदिने उसका अत्यधिक सम्मान किया ॥७५॥ तदनन्तर उस हंस नामक नगरमें आठ दिन वितारकर और अपने कर्तव्यका अच्छी तरह निश्चितकर सबने लंकाकी ओर प्रयाण किया ॥७६॥

अथानन्तर रथों, नाना प्रकारके वाहनो, वायुके समान वेगशाली घोड़ों, वर्षाकालीन मेवोंके समान कान्तिवाले हाथियोंके समूहो, अनुरागसे भरे भृत्यो और कवचरूपी आभूषणोंसे विभूषित वीर योद्धाओंके द्वारा जिन्होंने आकाशको सब ओरसे आच्छादित कर लिया था ऐसे विद्याधर राजा बड़े उत्साहसे आ रहे थे ॥७७-७८॥ वे सबके आगे चलनेवाले अत्यन्त वीर बानरवंशी राजा युद्धकी भूमिमें सबसे पहले जा पहुँचे सो यह उनके लिये उचित ही था ॥७९॥ इस रणभूमिकी चौड़ाई बीस योजन थी और लम्बाईका कुछ परिमाण ही नहीं था ॥८०॥ नाना प्रकार शस्त्र और विविध चिह्नोंको धारण करनेवाले हजारों योद्धाओंसे सहित वह युद्धकी भूमि मृत्युके चक्रवर्त्तकी भूमिके समान जान पड़ती थी ॥८१॥ तदनन्तर जिसे चिरकाल बाद रणका उत्सव प्राप्त हुआ था ऐसा रावण हाथी, घोड़े, सिंह और दुन्दुभियोंका शब्द सुन परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८२॥ उसने आज्ञा देकर समस्त सामन्तोंका आदर किया सो ठीक ही है क्योंकि उसने उन्हें युद्धके आनन्दसे कभी वंचित नहीं किया था ॥८३॥ सूर्यामपुर, मेघपुर,

सूर्योदयास्ताभिस्थ्याः शोभासिंहपुराभिधाः । नृत्यगीतपुरालक्ष्मीकिन्नरस्वनसंज्ञकाः ॥८५॥
 बहुनादा महाशैलाश्रकाह्वा सुरनूपुराः । श्रीमन्तो मलयानन्दाः श्रीगुहा श्रीमनोहराः ॥८६॥
 रिपुञ्जयाः शशिस्थानाः मार्तण्डाभविशालकाः । ज्योतिर्दण्डाः परिचोदा अश्वरत्नपराजयाः ॥८७॥
 एवमाद्याः पुराभिस्थाः महाखेचरपार्थिवाः । सचिवैरन्विताः प्रीता दशाननसुपागताः ॥८८॥
 भस्त्रवाहनसन्नाहप्रभृतिप्रतिपत्तिभिः । रावणोऽपूज्यद्भूपान् सुत्रामा त्रिदशानिब ॥८९॥
 अक्षौहिणीसहस्राणि चवारि त्रिककुप् प्रभोः । स्वशक्तिज्जितं प्रोक्तं बलस्य प्रमितं बुधैः ॥९०॥
 एकमक्षौहिणीनां तु किष्किन्धनगरप्रभोः । सहस्रं साम्रमेकं तु भामण्डलविभोरपि ॥९१॥
 सुग्रीवः सचिवैः सार्कं तथा पुण्यवतीसुतः । आवृत्य परमोद्युक्तौ तत्स्थतुः पङ्कजचमौ ॥९२॥
 अनेकगोत्रचरणा नानाजल्युपलक्षणाः । नानागुणक्रियाख्याता नानाशब्दा नभश्चराः ॥९३॥
 पुण्यालुभावेन महानाराणो भवन्ति शत्रोरपि पार्थिवाः स्वाः ।
 कुपुण्यभाजा तु चिरं सुराका विनाशकाले परतो भजन्ते ॥९४॥
 आता ममायं सुहृदेष वश्यो ममैष बन्धुः सुखदः सदेति ।
 संसारवैचित्र्यविदा नरेण नैतन्मयीपारविणा विविन्त्या ॥९५॥

इत्यार्षे रविवेणाचार्योक्ते पञ्चपुराणे विभीषणसमागमामिधानं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५५॥

काञ्चनपुर, गगनवल्लभपुर, गन्धर्व गीतनगर, कंपनपुर, शिवमन्दिरपुर, सूर्योदयपुर, अमृतपुर, शोभापुर, सिंहपुर, नृत्यगीतपुर, लक्ष्मीगीतपुर, किन्नरगीतपुर, बहुनादपुर, महाशैलपुर, चक्रपुर, सुखपुर, श्रीमन्तपुर, मलयानन्दपुर, श्रीगुहापुर, श्रीमनोहरपुर, रिपुञ्जयपुर, शशिस्थानपुर, मार्तण्डाभपुर, विशालपुर, ज्योतिर्दण्डपुर, परिचोदपुर, अश्वपुर, रत्नपुर और पराजयपुर आदि अनेक नगरोंके बड़े-बड़े विद्याधर राजा, प्रसन्न हो, अपने-अपने मन्त्रियोंके साथ रावणके समीप आ गये ॥८४-८८॥ रावणने अस्त्र, वाहन तथा कवच आदि देकर उन सब राजाओंका उस तरह सन्मान किया जिस तरह कि इन्द्र देवोंका सन्मान करता है ॥८९॥ विद्वानोंने रावणकी सेनाका प्रमाण चार हजार अक्षौहिणी दल बतलाया है । उनका यह दल अपनी सामर्थ्यसे परिपूर्ण था ॥९०॥ किष्किन्धनगर के राजा सुग्रीवकी सेनाका प्रमाण एक हजार अक्षौहिणी और भामण्डलकी सेनाका प्रमाण कुछ अधिक एक हजार अक्षौहिणी दल था ॥९१॥ परम उद्योगी सदा सावधान रहनेवाले सुग्रीव और भामण्डल, अपने-अपने मन्त्रियोंके साथ सदा राम लक्ष्मणके समीप रहते थे ॥९२॥ उस समय युद्ध-भूमिमें नानावंश, नानाजातियों, नानागुण तथा नानाक्रियाओंसे प्रसिद्ध एवं नानाप्रकारके शब्दोंका उच्चारण करनेवाले विद्याधर एकत्रित हुए थे ॥९३॥ गौतमम्बामी कहते हैं कि हे राजन् ! पुण्यके प्रभावसे महापुरुषोंके शत्रु राजा भी आत्मीय हो जाते हैं और पुण्यहीन मनुष्योंके चिरकालीन मित्र भी विनाश के समय पर हो जाते हैं ॥९४॥ यह मेरा भाई है, यह मेरा मित्र है, यह मेरे आधीन है, यह मेरा बन्धु है और यह मेरा सदा सुख देनेवाला है, इस प्रकार बुद्धिरूपी सूर्यसे सहित तथा संसारकी विचित्रताको जाननेवाले मनुष्यको कभी नहीं विचारना चाहिए ॥९५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविवेणाचार्य द्वारा कथित पञ्चपुराणमें विभीषणके समागमका वर्णन करनेवाला पंचपनवो पर्व पूरा हुआ ॥५५॥

सुपीवरसुजो वीरो दुर्धरस्त्रिदशैरपि । भुवने कस्य न ज्ञातः कुम्भकर्णो महाबलः ॥३१॥
 यस्त्रिशूलधरः सङ्ख्ये कालाग्निरिव दीप्यते । सोढ्यं विजीयते केन जगदुत्कटविक्रमः ॥३२॥
 यस्यातपत्रमालोभ्य शरदिन्दुमिवोद्गतम् । शत्रुसैन्यतमोर्ध्वसमुपयाति समन्ततः ॥३३॥
 उदात्तेजसस्तस्य स्थातुं यस्याग्रतोऽपि कः । समर्थः पुरुषो लोके निजजीवितनिस्पृहः ॥३४॥
 इति बहुविधवाचां द्वेपरागाश्रितानां प्रकटितनिजचित्प्रार्थनासङ्कटानाम् ।
 द्वितयबलजनानां दृष्टनानाक्रियाणाम् अजनि जनिवशङ्को भावसागो विचित्रः ॥३५॥
 चरितजननकालाऽभ्यस्तारागेतराणां भवमपरमितां नामप्यथं चित्तमार्गः ।
 भवति खलु तथैव व्यक्तमेतं हि लोकं स्वचरितरविरेव प्रेरयत्यात्मकार्ये ॥३६॥

इत्याथं रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे—उभयबलप्रमाणविधानं नाम षट्पञ्चाशत्तमं पर्व ॥५६॥

तेजस्वी मनुष्योंके मस्तकपर अधिष्ठित है अर्थात् समस्त प्रतापी मनुष्योंमें श्रेष्ठ है ऐसे (अर्थ) चक्रवर्ती रावणका नाम भी सुननेके लिए कौन समर्थ है ? ॥३०॥ जिसकी भुजाएँ अत्यन्त स्थूल हैं एवं जो देवोंके द्वारा भी दुर्धर है—रोका नहीं जा सकता ऐसे महाबलवान् कुम्भकर्णको कौन नहीं जानता ? ॥३१॥ जो त्रिशूलका धारक, युद्धमें प्रलयकालकी अग्निके समान देदीप्यमान होता है तथा जिसका पराक्रम संसारमें सबसे अधिक है ऐसा यह कुम्भकर्ण किसके द्वारा जीता जा सकता है ? ॥३२॥ उद्धित हुए शरत्कालीन चन्द्रमाके समान जिसका छत्र देखकर शत्रुओंकी सेनारूपी अन्धकार सब ओरसे नष्ट हो जाता है उस प्रबल पराक्रमी कुम्भकर्णके सामने संसारमें ऐसा कौन समर्थ मनुष्य है जो अपने जीवनसे निःस्पृह हो खड़ा होनेके लिए भी समर्थ हो ॥३३-३४॥ इस प्रकार जो नाना भौतिके वचन बोल रहे थे, जो राग और द्वेषके आधार थे, जिन्होंने अपने मनोगत विचारोंके संकट प्रकट किये थे, तथा जिनकी नाना प्रकारकी क्रियाएँ देखी गई थीं । ऐसे उभयपक्षके लोगोंकी विचारधारा विचित्र एवं शङ्काको उत्पन्न करनेवाली हुई थी ॥३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य संयम उत्पत्तिके योग्य समयमें भी रागी, द्वेषी बने रहते हैं अन्य भवमें पहुँच जानेपर भी उनका मनोमार्ग वास्तवमें वैसा ही रहा आता है—राग द्वेषका अभ्यासी बना रहता है सो उचित ही है क्योंकि मनुष्यका अपना चारित्ररूपी सूर्य ही उसे आत्म-कार्यमें प्रेरित करता रहता है ॥३६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें राम और रावणकी सेनाओं के प्रयोगका कथन करनेवाला छुपनवौं पर्व समाप्त हुआ ॥५६॥

सप्तपञ्चाशत्तमं पर्व

परसैन्यसमारलेपममृष्यन्तोऽथ मानवाः । उद्गच्छद्दर्पसंकोभ्या इष्टा सन्नद्धमुखताः ॥१॥
 उद्देष्टेयं दयिताबाहुपाशं कृच्छ्रेण केचन । संभ्रम्य सिंहसङ्काशा लङ्कातो निर्ययुर्मटाः ॥२॥
 वीरपत्नी प्रियं काचिदालिख्यैवमभाषत । श्रुतानेकमहायोधपरमाहवविभ्रमा ॥३॥
 सङ्ग्रामे विरूतः पृष्ठे यदि नाथागमिष्यसि । दुर्यशस्तदहं प्राणान् मोक्षयामि श्रुतिमात्रतः ॥४॥
 किङ्कराणामतः पत्न्यो वीराणामेतिगर्विताः । धिक्शब्दं मे प्रदात्यन्ति किं नु कष्टमतः परम् ॥५॥
 रणप्रत्यागतं धीरसुरोन्नविभूषणम् । विशीर्णकवचं प्राप्तजयलब्धभटस्तवम् ॥६॥
 द्रक्ष्यामि यदि धन्याहं भवन्तमविकल्पनम् । जिनेन्द्रानर्चयिष्यामि ततो जाम्बलदाम्बुजैः ॥७॥
 आभिसुख्यगतं मृत्युं वरं प्राप्ता महाभटाः । पराङ्मुखा न जीवन्तो धिक्शब्दमलिनीकृताः ॥८॥
 स्तनद्वयसमुत्पीडं काचिदालिख्य मानवम् । जगाद पुनरेव सा प्रहृष्यामि जयान्वितम् ॥९॥
 भवद्भक्त्यल्लुप्यानरकचन्दनचर्चया । परां स्तनद्वयं शोभां मम यात्यति सर्वया ॥१०॥
 प्रातिवेशिकयोधानामपि पत्न्यो जितप्रियाम् । न सहे कुत एवेश सहिष्ये त्वां विनिर्जितम् ॥११॥
 काचिजगाद ते नाथ हताशं द्रणभूषणम् । पुराणं रुढकं जातं ततो नैवातिशोभसे ॥१२॥
 अतो नवव्रणन्यस्तस्तनमण्डलसौख्यदम् । द्रक्ष्येऽहं वीरपत्नीमिविकसिमुखपङ्कजा ॥१३॥

अथानन्तर परचक्रके आक्रमणको नहीं सहन करनेवाले मनुष्य उठते हुए अहंकारसे लुभित हो हर्ष पूर्वक कवच आदिक धारण करनेके लिए उद्यत हुए ॥१॥ सिंहकी समानता करनेवाले कितने ही शूर-वीर योद्धा गलेमें पड़े हुए प्राणबल्लभाके बाहुपाशको बड़ी कठिनाईसे दूरकर लुभित हो लंकासे बाहर निकल आये ॥२॥ जिसने महायुद्धमें अनेक बड़े-बड़े योद्धाओंकी चेष्टाओंका वर्णन सुन रक्खा था, ऐसी किसी वीरपत्नीने पतिका आलिङ्गनकर इस प्रकार कहा कि ॥३॥ हे नाथ ! यदि संग्राममें घायल होकर पीछे आओगे तो बड़ा अपयश होगा और उसके सुनने मात्रसे ही मैं प्राण छोड़ दूंगी ॥४॥ क्योंकि ऐसा होनेसे वीर किकरोकी गर्वाली पत्नियों मुझे धिक्कार देंगी । इससे बढ़कर कष्टकी बात और क्या होगी ? ॥५॥ जिनके वक्षस्थलमें घाव आभूषणके समान सुरोभित हैं, जिनका कवच टूट गया है, प्राप्त हुई विजयसे योद्धागण जिनकी स्तुति कर रहे हैं, जो अतिशय धीर हैं तथा गम्भीरताके कारण जो अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं कर रहे हैं ऐसे आपको युद्धसे लौटा हुआ यदि देखूंगी तो मैं सुवर्णमय कमलोंसे जिनेन्द्रदेवकी पूजा करूंगी ॥६-७॥ महायोद्धाओंका सम्मुखागत मृत्युको प्राप्त हो जाना अच्छा है किन्तु पराङ्मुखको धिक्कार शत्रुसे मलिन जीवन विताना अच्छा नहीं है ॥८॥ कोई स्त्री दोनों स्तनोसे पतिका आलिङ्गनकर बोली कि जब आप विजयी हो लौटकर आवेंगे तब फिर ऐसा ही आलिङ्गन करूंगी ॥९॥ आपके वक्षस्थलके गाढ़े-गाढ़े रक्तरूपी चन्दनोकी चर्चासे मेरे दोनों स्तन सब प्रकारसे परम शोभाको प्राप्त होंगे ॥१०॥ हे स्वामिन् ! जिसका पति हार जाता है ऐसी पड़ोसी योद्धाओंकी पत्नीको भी मैं सहन नहीं करती फिर हारे हुए आपको किस प्रकार सहन करूंगी ? ॥११॥ कोई स्त्री बोली कि हे नाथ ! आपका यह अभाग्य पुराना धावरूपी आभूषण रुढ हो गया है—पुरकर सूख गया है, इसलिए आप अधिक सुरोभित नहीं हो रहे हैं ॥१२॥ अब नूतन धावपर रखे हुए स्तनमण्डलको सुख पहुँचानेवाले आपको जब देखूंगी तो मेरा

१. उद्देष्टेयं म० । २. योर्वं म० । ३. विभ्रमं म० । ४. सङ्गते । ५. मपि म० । ६. हतसत्रण-भूषणम्-म० ।

काचिदूचे यथैतत्ते वदन् सुमिवत्तं मया । तथा^१ वचसि सज्ज्ञात्तं सुमिष्यामि ज्ञानाननम् ॥१४॥
 अनतिप्रौढिका काचिद्वधूरभिनवोदिका । संग्रामे प्रोद्यते नाथे प्रौढत्वं समुपागता ॥१५॥
 चिराय रक्षितं मानं काचिन्नाथे रणोन्मुखे । तत्प्राप्त्यैकपदे काम्ता काम्तसंरक्षेत्तत्परा ॥१६॥
 अवितृप्तं भटी काचिर्नृनक्तवासवं पर्या । तथापि मदनप्राप्ता रणयोग्यमशिक्षयत् ॥१७॥
 काचिदुसन्तिष्ठ^२ भर्तुर्वदन् वनजेच्छगा । नैमिषोन्मिस्तमद्राक्षीत् सुचिरं दृष्टुमुन्वना ॥१८॥
 काचिद्वक्षस्तदे भर्तुः करजघ्नमुज्ज्वलम् । भविष्यच्छस्त्रपातस्य सन्त्यङ्कारनिवारणाय ॥१९॥
 इति सज्ज्ञातचेष्टासु दयितासु यथायथम् । भटानामित्यनूद्वाणी महामंत्रामशालिनान् ॥२०॥
 नरास्ते दक्षिते श्लाघ्या ये गता रणमस्तकम् । त्यजन्त्यभिमुखा जीवं शत्रूणां लब्धकीर्तयः ॥२१॥
 उन्मिन्नदन्तिदन्ताग्रगोलादुल्लङ्घिते भटाः । कुर्वन्ति न विना पुण्यैः शत्रुनिघोषितस्तथाः ॥२२॥
 गजदन्ताग्रभिन्नस्य कुम्भशरणकारिणः । यत्सुखं नरसिंहस्य तत् कः कथयितुं क्षमः ॥२३॥
 व्रत्तं शरणायात्तं दत्तपृष्ठं द्युतायुधम् । पस्तिष्य पतिष्यामो दक्षिते शत्रुमस्तके ॥२४॥
 भवत्या बाञ्छितं कृत्वा प्रत्यागत्य रणाजिरात् । प्रार्थयिष्ये समारलेषं भवन्तीं तोषधारिणीम्^३ ॥२५॥
 एवमादिभिरार्षैः पतिसाम्ब्य निजप्रियाः । धीरा निर्गन्तुमुद्युक्ताः^४ सङ्ख्यसौख्यसमुत्सुकाः ॥२६॥

मुखकमल खिल उठेगा और वीर पत्नियों सुके वड़े गौरवसे देखेगी ॥१३॥ कोई स्त्री बोली कि मैंने जिस प्रकार आपके इस मुखका चुम्बन किया है उसी प्रकार वक्षस्थलपर उत्पन्न हुए धावके मुखका चुम्बन करूँगी ॥१४॥ कोई नवविवाहिता स्त्री यद्यपि अधिक प्रौढ़ नहीं थी तथापि पतिके युद्धके लिए उद्यत होनेपर वह प्रौढ़ताको प्राप्त हो गई ॥१५॥ कोई स्त्री चिरकालसे मानको रक्षा करती बैठी थी परन्तु जब पति युद्धके सम्मुख हो गया तब उसने सब मान एक साथ छोड़ दिया और पतिका आलिङ्गन करनेमें तत्पर हो गई ॥१६॥ यद्यपि किसी बाँझाकी स्त्री पतिके मुखकी मदिरा पीती-पीती दृष्ट नहीं हुई थी तथापि कामाङ्कलित हो उसने पतिके लिए रणके योग्य शिक्षा दी थी ॥१७॥ कोई कमललोचना स्त्री पतिके ऊपर उठावे हुए मुखको दिसकार रहित नेत्रोंसे चिरकाल तक देखती रही और उसका चुम्बन करती रही ॥१८॥ किसी स्त्रीने पतिके वक्षःस्थलपर नखका उज्ज्वल धाव बना दिया मानो आगे चलकर जो शस्त्रपात होगा उसका वयाना ही दे दिया था ॥१९॥ इस प्रकार जब स्त्रियोंमें नाना प्रकारकी चेष्टाएँ हो रही थीं तब महायुद्धसे सुशोभित योद्धाओंकी इस प्रकार वाणी प्रकट हुई ॥२०॥ कोई बाँझा कि हे प्रिये ! वे मनुष्य प्रशंसनीय हैं जो रणाग्रभागमें जाकर शत्रुओंके सम्मुख प्राण छोड़ते हैं तथा सुयश प्राप्त करते हैं ॥२१॥ शत्रु भी जिनका विरद वस्त्रान रहे हैं, ऐसे योद्धा पुण्यके विना सद्गोन्मत्त हाथियोंके दोंतोंके अग्रभागसे मूला नहीं मूल सकते ॥२२॥ हाथीदोंतोंके अग्रभागसे विदीर्ण तथा हाथीके गण्डस्थलको विदीर्ण करनेवाले श्रेष्ठ मनुष्यको जो सुख होता है उसे कहनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२३॥ कोई कहने लगा कि हे प्रिये ! मैं भयभीत, शरणागत, पीठ छिलानेवाले एवं शस्त्र ढाल देनेवाले पुद्गलको छोड़ शत्रुके मस्तकपर दृढ़ पड़ूँगा ॥२४॥ कोई कहने लगा कि मैं आपकी अमिलापा पूर्णकर तथा रणाङ्गसे लौटकर जब आपको सन्तुष्ट कर दूँगा तभी आपसे आलिङ्गनकी प्रार्थना करूँगा ॥२५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकारके बावलोंपासे अपनी प्राणवल्लभाओंको सान्त्वना देकर बुद्धसम्बन्धी सुख प्राप्त करनेमें उत्सुक वीर मनुष्य घरोंसे बाहर निकलनेके लिए उद्यत हुए ॥२६॥ किसीका पति हाथमें शस्त्र लेकर जब जाने लगा तब वह उसके गलेसे दोनों भुजाएँ ढालकर ऐसी मूल गई मानो किसी गजराजके गलेमें कमलिनी ही

१. यथा म० । २. अवितृप्तभटी म० । ३. मदनं प्राप्ता म० । ४. कुचानि म० । ५. प्रापयिष्ये न० ।
 ६. तोषधारिणीम् ज० । ७. संख्ये ज० ।

यियासोः शस्त्रहस्तस्य कण्ठापितमुजह्वया । काचिहोलायनं चक्रे गजेन्द्रस्यैव पद्मिनी ॥२७॥
 काचित्सन्नाहुरुद्धस्य पत्युर्देहस्य सङ्गमम् । अप्राप्य वरमं प्राप्ता पीडामङ्गमपि श्रिता ॥२८॥
 अर्द्धबाहुलिकां दद्या काचिकान्तस्य वक्षसि । ईर्ष्यारसेन संस्पृष्टा किञ्चिद्विचित्रलोचना ॥२९॥
 अर्द्धसन्नाहनामाय मया परिहिता प्रिये । इति पुंशन्दयोगेन पुनस्तोषमुपागता ॥३०॥
 ताम्बूलप्रार्थनव्यङ्गात् काचित् प्राप्य प्रियाधरम् । अमुञ्चत् सुखिनी कृच्छ्रात् कृत्वा व्रणविभूषितम् ॥३१॥
 काचिन्नित्यमानापि प्रियेण रणकंक्षिणा । सन्नाहकण्ठसूत्रस्य बन्धव्याजेन गच्छति ॥३२॥
 एकतो दयितादष्टिरन्यतः तूर्यनिस्वनः । इति हेतुद्वयादोलामारूढ मटमानसम् ॥३३॥
 स्त्रीणां परिहरन्तीनां वाष्पपातममङ्गलम् । सत्यामपि दिदृक्षायां निमेषो नाभवत् दशाम् ॥३४॥
 अगृहीत्वैव सन्नाह केचित् खरितमानसाः । यथालम्बायुधं योवा निर्ययुर्दृष्टशालिनः ॥३५॥
 रणसङ्गतातोषेण शरीरे पुष्टिमागते । कस्यचिद् रणसौण्डर्यं वर्मं माति स्म नो निजम् ॥३६॥
 श्रुत्वा परचमूर्त्यस्वन कश्चिद् मटोत्तमः । चिररूढैर्नैः रक्त मुमोचोक्तासविग्रहः ॥३७॥
 पिबद्धं कस्यचिद् वर्मं सुदृढं तोषहारिणः । वर्द्धमान ततः शीर्णं पुराणं कट्ठायितम् ॥३८॥
 विश्रब्ध कस्यचिजाया समाधानपरायणा । सारस्यन्ती मुहुस्तस्यै शिरस्त्राण सुभाषिता ॥३९॥
 प्रियापरिमलं कश्चिद्दीयमानः स्ववक्षसः । केकट प्रति नो चक्रे मनः सद्यःप्रामलालसः ॥४०॥
 एव विनिर्गता योधाः कृच्छ्रतः साम्बितप्रियाः । आकुलीभूतचित्ताश्च शयनान्येषु ताः स्थिताः ॥४१॥

फूल रही हो ॥२७॥ किसी स्त्रीके पतिने कवच पहिन रख्वा था इसलिए उसके शरीरका संगम न प्राप्त होनेसे वह गोदमे स्थित होनेपर भी परम पीड़ाको प्राप्त हो रही थी ॥२८॥ कोई एक स्त्री पतिके वक्षःस्थलपर अर्द्धबाहुलिका देख ईर्ष्यासे भर गई तथा उसके नेत्र कुछ-कुछ संकुचित हो गये ॥२९॥ उसे अप्रसन्न जान पतिने कहा कि हे प्रिये ! यह आधा कवच मैंने पहिना है । इस प्रकार पतिके कहनेसे पुनः सन्तोषको प्राप्त हो गई ॥३०॥ किसी सुखिया स्त्रीने ताम्बूल याचनाके वहाने पतिका अधरोष्ठ पाकर उसे दन्ताघातसे विभूषितकर बड़ी कठिनाईसे छोड़ा ॥३१॥ रणके अभिलाषी किसी पुरुषने यद्यपि अपनी स्त्रीको लौटा दिया था तथापि वह कवचके कण्ठका सूत्र बाँधनेके वहाने चली जा रही थी ॥३२॥ एक ओर तो वल्लभाकी दृष्टि और दूसरी ओर तुरहीका शब्द, इस प्रकार योद्धाका मन दो कारण रूपी दोलाके ऊपर आरुढ़ हो रहा था ॥३३॥ अमाङ्गलिक अश्रुपातको बचानेवाली स्त्रियोंके यद्यपि पतिको देखनेकी इच्छा थी तो भी वे नेत्रोंका पलक नहीं झपाती थी ॥३४॥ जिनके मन उतावलीसे भर रहे थे ऐसे कितने ही अर्द्ध-कारी योद्धा, कवच पहिने बिना ही जो शस्त्र मिला उसे ही लेकर निकल पड़े ॥३५॥ किसी रणवीरका शरीर रणसे उत्पन्न संतोषके कारण इतना पुष्ट हो गया कि उसका निजका कवच भी शरीरमें नहीं माता था ॥३६॥ किसी उत्तम योद्धाका शरीर पर-चक्रकी तुरहीका शब्द सुनकर इतना फूल गया कि वह चिरकालके भरे घावोंसे रक्त छोड़ने लगा ॥३७॥ किसी योद्धाने नया मजबूत कवच पहिना था परन्तु हर्षित होनेके कारण उसका शरीर इतना बढ़ गया कि कवच फटकर पुराने कवचके समान जान पड़ने लगा ॥३८॥ किसीका टोप ठीक नहीं बैठ रहा था सो उसे ठीक करनेमें तत्पर उसकी स्त्री निश्चिन्ततापूर्वक मधुर शब्द कहती हुई बार-बार टोपको चला रही थी ॥३९॥ किसीकी स्त्रीने पतिके वक्षस्थलपर सुगन्धिका लेप लगा दिया था सो उसकी रक्षा करते हुए उसने युद्धकी अभिलाषा होते हुए भी कवच धारण करनेकी ओर मन नहीं किया था—कवच धारण करनेका विचार नहीं किया था ॥४०॥ इस प्रकार जो बड़ी कठिनाईसे प्रियाओं

अथाप्रकीर्तिमाध्वीकरसास्वादनलालसौ । द्विरदस्यन्दनारुद्धावसोढीरिवलस्वनौ ॥४२॥
 प्रथमं निर्गतोदात्तप्रतापौ शौर्यशालिनौ । हस्तप्रहस्तनामानौ लङ्कातो निर्गती नृपौ ॥४३॥
 अनापृच्छाऽपि तत्काले स्वामिनो राजते तयोः । दोषोऽपि हि गुणीभावं प्रस्तावे प्रतिपद्यते ॥४४॥
 मारीचः सिंहजवनः स्वयम्भूः शम्भुरुचमः । पृथुः पृथुवलोपेतश्चन्द्रार्कौ शुक्रसारणी ॥४५॥
 राजवीभत्सनामानौ वज्राक्षौ वज्रधृदद्युतिः । गम्भीरानिनदो नक्रो मकरः कुलिशस्वनः ॥४६॥
 उग्रनादस्तथा सुन्दः निकुम्भकुम्भशब्दिनः । सन्ध्याक्षौ विभ्रमक्रूरो माल्यवान् खरनिस्त्रनः ॥४७॥
 जम्बूमाली शिखावीरो दुर्द्वपश्च महाबलः । एते केसरिभिर्युक्तैः सामन्ता निर्ययू रथैः ॥४८॥
 वज्रोदरोऽथ शक्राभः कृतान्तो विधटोदरः । महाशनिरवश्चन्द्रनखो मृत्युः सुभीषणः ॥४९॥
 कुलिशोदरनामा च धूम्राक्षो मुदितस्तथा । विद्युज्जिह्वो महामाली कनकः क्रोधनध्वनिः ॥५०॥
 क्षोभणो धुन्धु उद्दामा डिण्डिण्डिमहम्बराः । प्रचण्डो डमरश्चण्डकुण्डहालाह्लादयः ॥५१॥
 व्याघ्रयुक्तैरिमैस्तुङ्गै रथैरुह्नासिताम्बरैः । अर्हयवो विनिर्याताः शत्रुविषयसद्वृद्धयः ॥५२॥
 विद्याकौशिकविक्रान्तिः सर्पबाहुमहाद्युतिः । शंखप्रशङ्खनामानौ रागो भिक्षाञ्जनप्रभः ॥५३॥
 पुष्पचूडो महारक्तो घटाक्षः पुष्पखेचरः । अनङ्गकुसुमः कामः कामावर्त्तस्मरायणौ ॥५४॥
 कामाग्निः कामराशिश्च कनकामः शिलीमुखः । सौम्यवक्त्रो महाकामो हेमगौरादयस्तथा ॥५५॥
 एतेऽपि वातरहोभी रथैर्युक्ततुरङ्गमैः । यथावथं विनिर्जग्मुरालयेभ्यो रसद्वजलाः ॥५६॥
 कदम्बविटपौ भीमो भीमनादो भयानकः । शार्दूलक्रीडितः सिंहशलाह्नो विद्युदग्न्युक्तः ॥५७॥

को समम्भा-वुष्मा सके थे ऐसे योधा तो बाहर निकले और उनकी स्त्रियों व्याकुल चित्त होती हुई शय्याओंपर पड़े रहीं ॥४१॥

अथानन्तर उत्तम कीर्तिरूपी मधुरसके आस्वादनमें जिनका मन लग रहा था, जो हाथियोंके रथ पर आरुढ़ थे, जिन्होंने शत्रु सेनाका शब्द सहन नहीं किया था, जिनका उत्कट प्रताप पहले ही निकल चुका था, और जो शूरवीरतासे सुशोभित थे, ऐसे हस्त और प्रहस्त नामके दो राजा लंकासे सर्वप्रथम निकले ॥४२-४३॥ यद्यपि वे दोनों स्वामीसे पूछकर नहीं निकले थे तथापि उस समय उनका स्वामीसे नहीं पूछना शोभा देता था क्योंकि अवसरपर दोष भी गुणरूपताकी प्राप्ति हो जाता है ॥४४॥ मारीच, सिंहजवन, स्वयम्भू, शम्भु, उत्तम, विशाल, सेना, से सुशोभित पृथु, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, सारण, गज, वीभत्स, इन्द्रके समान कान्तिको धारण करनेवाला वज्राक्ष, गम्भीर-नाद, नक्र, मकर, वज्रनाद, उग्रनाद, सुन्द, निकुम्भ, कुम्भ, सन्ध्याक्ष, विभ्रम, क्रूर, माल्यवान्, खरनाद, जम्बूमाली, शिखावीर और महाबलवान् दुर्द्वप ये सब सामन्त सिंहासे जुते हुए रथोंपर सवार हो बाहर निकले ॥४५-४८॥ उनके पीछे वज्रोदर, शक्राभ, कृतान्त, विधटोदर, महावज्ररथ, चन्द्रनख, मृत्यु, सुभीषण, वज्रोदर, धूम्राक्ष, मुदित, विद्युज्जिह्व, महामाली, कनक, क्रोधनध्वनि, क्षोभण, धुन्धु, उद्दामा, डिण्डि, डिण्डिम, डम्बर, प्रचण्ड, डमर, चण्ड, कुण्ड और हालाहल आदि सामन्त, जिनमें व्याघ्र जुते थे, जो ऊँचे थे तथा आकाशको देदीप्यमान करनेवाले थे ऐसे रथोंपर सवार हो बाहर निकले । ये सभी सामन्त महा अर्हकारी तथा शत्रु नाशकी भावना रखनेवाले थे ॥४९-५२॥ उनके पीछे विद्याकौशिक, सर्पबाहु, महाद्युति, शङ्ख, प्रशङ्ख, राग, भिक्षाञ्जनप्रभ, पुष्पचूड, महारक्त, घटाक्ष, पुष्पखेचर, अनङ्गकुसुम, काम, कामावर्त्त, स्मरायण, कामाग्नि, कामराशि, कनकाम, शिलीमुख, सौम्यवक्त्र, महाकाम तथा हेमगौरा आदि सामन्त, वायुके समान वेगशाली घोड़ोंके रथोंमें सवार हो यथायोग्य अपने-अपने घरोंसे निकले । इन सबकी सेनाएँ प्रचण्ड शब्द कर रहीं थीं ॥५३-५६॥ तदनन्तर कदम्ब, विटप, भीम, भीमनाद, भयानक,

१. -वसोढी विरलस्वनौ म० । २. प्रयाणे म० । ३. सिंहजवनः ब०, ख० । ४. वज्राक्षो म० । ५. गम्भीरो निनदो म० । ६. विभ्रमः क्रूरो म०, ख० । ७. -प्रभौ म० ।

हृद्गदनश्चपलश्चोलश्चलश्चलकादयः । गजादिभिरिभैर्युक्तैर्निर्ययुर्भास्वरै रथैः ॥५८॥
 कियन्तः कथयिष्यन्ते नाम्ना प्राग्रहराः नराः । अध्यर्द्धपञ्चमीकोट्यः कुमारार्णां स्मृताः ब्रुवैः ॥५९॥
 विशुद्धराक्षसानुकाः कुमारस्तुल्यविक्रमाः । प्रख्यातयशसः सर्वे विज्ञेया गुणमण्डनाः ॥६०॥
 आवृतास्ते ससुद्युतैः कुमारैर्मरविभ्रमाः । बलिनो मेघवाहाद्याः कुमारैर्न्मा विनिर्ययुः ॥६१॥
 अर्ककीर्तिसमो भूत्वा दशाननमहाप्रियः । इन्द्रजित्तिर्ययौ कान्तो जयन्त इव धीरधीः ॥६२॥
 विमानमर्कसङ्काश नाम्ना ज्योतिःप्रस महत् । कुम्भकर्णः समारूढखिशुलाखो विनिरगतः ॥६३॥
 मेरुशृङ्गप्रतीकाशं लोकप्रितयशविदितम् । विमान पुष्पकामिथ्यामारूढः शक्रविक्रमः ॥६४॥
 सन्ध्याय रोदसी सैन्यैर्भास्वरायुधपाणिभिः । निष्कान्तो रावणस्तिग्मकिरणप्रतिमद्युतिः ॥६५॥
 स्यन्दनैर्वारणैः सिंहैर्वराहैः रुचिर्भयैः । सुमरैर्विहगैश्चित्रैः सौरभैर्यैः क्रमेणैकैः ॥६६॥
 ययुर्भिर्महि परैर्यैर्जलस्थलसमुद्भवैः । सामन्ता निर्ययुः शीघ्र बाहनेर्बहु रूपकैः ॥६७॥
 भामण्डलं प्रतिक्रुद्धाः किष्किन्धाधिपतिं तथा । हित्वा राक्षसनाथाय निर्ययुः क्षेचराधिपाः ॥६८॥
 अथ दृशिणतो दृष्टा भयानकमहास्त्वनाः । प्रयाणवारणोद्युक्ता भरुका बद्धमण्डलाः ॥६९॥
 बद्धान्यतमसा पचैर्गुण्डा विकृतानिस्त्वनाः । आनयन्ति गगने भीमाः कथयन्तो महालयम् ॥७०॥
 अन्येऽपि शकुनाः क्रूरं क्रन्दन्तो भयशंसिनः । वयं बुराकुलीयूता भीमा वैहायसास्तथा ॥७१॥
 शौर्यादिगर्वसम्पूढा विदन्तोऽप्यशुभानिमाव । महासैन्योद्धता योद्धुं रत्नोवर्गा विनिर्ययुः ॥७२॥

शार्दूलविक्रीडित, सिंह, चलाङ्ग, विद्युदम्बुक, हृद्गद, चपल, चोल, चल और चञ्चल आदि सामान्त हाथियों आदिसे जुते हुए देदीप्यमान रथों पर आरूढ होकर निकले ॥५८-५८॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! नाम लेले कर कितने प्रधान पुरुष कहें जावेगो ? उस समय सब मिला कर साढ़ेचार करोड़ कुमार बाहर निकले थे ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥५९॥ ये सभी कुमार विशुद्ध राक्षसवंशी, समान पराक्रम के धारी, प्रसिद्ध यशसे सुशोभित एवं गुणरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाले थे ॥६०॥ युद्धके लिए उद्यत इन सब कुमारोंसे घिरे, कामके समान सुन्दर, महाबलवान् मेघवाहन आदि श्रेष्ठ राजकुमार भी बाहर निकले ॥६१॥ तदनन्तर जो विभूतिसे सूर्यके समान था और रावणको अतिशय प्यारा था, ऐसा धीर वीर बुद्धिका धारक सुन्दर इन्द्रजित्, जयन्तके समान बाहर निकला ॥६२॥ त्रिशूल शस्त्रका धारी कुम्भकर्ण, सूर्यके समान देदीप्यमान ज्योतिः-प्रभ नामक विशाल विमान पर आरूढ होकर निकला ॥६३॥ तदनन्तर जो तीनों लोकोंसे प्रसिद्ध मेरुकी शिखरके समान सुशोभित पुष्पक नामक विमानपर आरूढ था, इन्द्रके समान पराक्रमी था और सूर्यके समान कान्तिका धारक था ऐसा रावण हाथोंमें नानाप्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले सैनिकोंसे आकाश और पृथ्वीके अन्तरालको आच्छादितकर निकला ॥६४-६५॥ तपश्चात् रथ, हाथी, सिंह, सूकर, कृष्णमृग, सामान्यमृग, सामर, नानाप्रकारके पक्षी, बैल, ऊँट, घोड़े, मँसे आदि जलयुक्त उत्पन्न हुए नानाप्रकारके वाहनोंपर सवार होकर सामन्त लोग बाहर निकले ॥६६-६७॥ जो भामण्डल और सुग्रीव के प्रति क्रुद्ध थे तथा रावण के हितकारी थे ऐसा विद्याधर राजा बाहर निकले ॥६८॥ अथानन्तर जो महामयङ्कर शब्द कर रहे थे, जो प्रयाणके रोकनेमें तत्पर थे तथा जो मण्डल बौधकर खड़े हुए थे ऐसे रीढ़ दक्षिणकी ओर दिखायी दिये ॥६९॥ जिन्होंने अपने पङ्क्तोंसे गाढ़ अन्धकार उत्पन्न कर रक्खा था, जिनका शब्द अत्यन्त विकृत था तथा जो महाविनाशकी सूचना दे रहे थे ऐसे भयंकर गीघ आकाशमें उड़ रहे थे ॥७०॥ इस प्रकार क्रूर शब्द करते तथा भयकी सूचना देते हुए पृथ्वी तथा आकाशमें चलनेवाले अन्य अनेक पक्षी व्याकुल हो रहे थे ॥७१॥ शूरवीरताके बहुत भारी गर्वसे मूढ़ तथा बड़ी-बड़ी सेनाओं से उद्यत राक्षसोंके समूह यद्यपि इन अशुभ स्वप्नोंको जानते थे तो भी युद्ध करने के लिए वरावर

प्राप्ते काले कर्मणामालुस्याद्वातुं योग्यं तत्फलं निश्चयाप्यम् । -

शक्तो रोद्धुं नैव शक्नोऽपि लोके वार्तान्वेषां केव वाङ्मात्रभाजाम् ॥७३॥

वीरा योद्धुं दत्तचित्ता महान्तो बाहुरूढाः शस्त्रभाराजिहस्ताः । ,

कृत्वावज्ञां वारकाणां समेषां भ्रान्त्यप्युद्ग्राहो रवि प्रत्यसीताः ॥७४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रावणबलनिर्गमनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५७॥

नगरीसे बाहर निकल रहे थे ॥७२॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि जब कर्मोंकी अनुकूलताका समय आता है तब देनेके योग्य समस्त पर्यायकी प्राप्ति निश्चयसे होती है उसे रोकनेके लिए लोकमें इन्द्र भी समर्थ नहीं है । फिर दूसरे प्राणियोंकी तो वार्ता ही क्या है ॥७३॥ जिनका चित्त युद्धमें लग रहा था, जो स्वयं महान् थे, बाहनों पर सवार थे और शस्त्रोंकी कान्तिका समूह जिनके हाथ में था अथवा जिनके हाथ शस्त्रोंकी कान्तिसे सुशोभित थे ऐसे शूरवीर मनुष्य निर्भीक हो निषेध करनेवाले इन समस्त अशकुनोंकी उपेक्षा करते हुए उस प्रकार आगे बढ़े जाते थे जिस प्रकार राहु सूर्यमण्डलके प्रति बढ़ता जाता है ॥७४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें रावणकी सेना लङ्कासे बाहर निकली इस बातका वर्णन करनेवाला संतावनवौं पर्व समाप्त हुआ ॥५७॥

अष्टपञ्चाशत्तमं पर्व

'भास्तृण्द्वीचय तत्सैन्यमुद्धेलमिव सागरम् । नलनीलमरुपुत्रजाम्बवाधाः सुखेचराः ॥१॥
 रामकार्यसमुद्युक्ताः परमोदारचेष्टिताः । महाद्विपयुतैर्दक्षैः स्वन्दनैर्निर्ययुर्वरैः ॥२॥
 सम्मानो जयमित्रश्च चन्द्राभो रतिवर्धनः । कुमुदावर्तसज्ञश्च महेन्द्रो भानुमण्डलः ॥३॥
 अनुद्धरो दृढरथः प्रीतिकण्ठो महाबलः । समुन्नतबलः सूर्यज्योतिः सर्वप्रियो बलः ॥४॥
 सर्वसारश्च दुर्बुद्धिः सर्वदः सरभो भरः । अभृष्टो निर्विनष्टश्च संत्रासो विघ्नसूदनः ॥५॥
 नादो वर्वरकः पापो लोलपाटनमण्डलौ । सङ्ग्रामचपलाशाश्च परमा खेचराधिपाः ॥६॥
 शार्बलसङ्गतैस्तुङ्गै रथैः परमसुन्दरैः । नानाद्युधस्ताटोपा निर्जङ्गुः शृष्टतेजसः ॥७॥
 प्रस्तरो हिमवान् भङ्गः प्रियरूपाद्यस्तथा । एते द्विपयुतैर्योद्धुः निर्ययुः सुमहारथैः ॥८॥
 दुःश्रेष्ठः पूर्णचन्द्रश्च विधिः सागरनिःस्वनः । प्रियविग्रहनामा च स्कन्दश्चन्दनपादपाः ॥९॥
 चन्द्रांशुरप्रतीघातो महाभैरवकीर्तनः । दुष्टसिंहकटिः क्रुष्टः समाधिबहुलो हलः ॥१०॥
 इन्द्रायुधो गतत्रासः सङ्कटप्राहरादयः । एते हरियुतैस्त्वेर्ण सामन्ता निर्ययु रथैः ॥११॥
 विद्युत्कर्णो बलः शीलः स्वपद्मचनो घनः । सम्मेदो विचलः सालः कालः क्षितिबरोऽङ्गदः ॥१२॥
 विकालो लोलकः कालिभङ्गश्चण्डोर्मिरुजितः । तरङ्गस्तिलकः कीलः सुपेणस्तरलो बलिः ॥१३॥
 भीमो भीमरथो धर्मो मनोहरमुखः सुखः । प्रमत्तो मर्दको मत्तः सारो रत्नजटी शिवः ॥१४॥
 दूषणो भीषणः कोणः विघटाख्यो विराधितः । मेरु रणखनिः क्षेमः बेलाक्षेपी महाधरः ॥१५॥
 नक्षत्रलब्धसंज्ञश्च सङ्ग्रामो विजयो जयः । नक्षत्रमालकः खोदः तथातिविजयादयः ॥१६॥

अधानन्तर लहराते हुए सागरके समान व्याप्त होती हुई रावणकी उस सेनाको देख,
 श्रीरामके कार्य करनेमें उद्यत परम उदार चेष्टाओंके धारक नल, नील, हनुमान्, जाम्बव आदि
 विद्याधर, महागजोंसे जुते देदीप्यमान उत्तम हाथियोंसे युक्त रथोंपर सवार हो कटकसे निकले
 ॥१-२॥ सम्मान, जयमित्र, चन्द्राभ, रतिवर्धन, कुमुदावर्त, महेन्द्र, भानुमण्डल, अनुद्धर,
 दृढरथ, प्रीतिकण्ठ, महाबल, समुन्नतबल, सूर्यज्योति, सर्वप्रिय, बल, सर्वसार, दुर्बुद्धि, सर्वद,
 सरभ, भर, अभृष्ट, निर्विनष्ट, संत्रास, विघ्नसूदन, नाद, वर्वरक, पाप, लोल, पाटनमण्डल और
 संग्रामचपल आदि उत्तमोत्तम विद्याधर राजा व्याघ्रोंसे जुते हुए परम सुन्दर ऊँचे
 रथोंपर सवार हो बाहर निकले । ये सभी विद्याधर नाना प्रकार के शस्त्रोंके समूहको धारण कर
 रहे थे तथा विशाल तेजके धारक थे ॥३-७॥ प्रस्तर, हिमवान्, भङ्ग तथा प्रियरूप आदि ये
 सब हाथियोंसे जुते उत्तम रथोंपर सवार हो युद्धके लिए निकले ॥८॥ दुष्प्रेक्ष, पूर्णचन्द्र, विधि,
 सागर निःस्वन, प्रियविग्रह, स्कन्द, चन्दनपादप, चन्द्रांशु, अप्रतीघात, महाभैरव, दुष्ट, सिंहकटि,
 क्रुष्ट, समाधिबहुल, हल, इन्द्रायुध, गतत्रास और संकटप्राहार आदि, ये सब सामन्त सिंहासे जुते
 रथोंपर सवार हो शीघ्र ही निकले ॥९-११॥ विद्युत्कर्ण, बल, शील, स्वपद्मचन, घन, सम्मेद,
 विचल, साल, काल, क्षितिचर, अङ्गद, विकाल, लोलक, कालि, भङ्ग, चण्डोर्मि, ऊर्जित, तरङ्ग,
 तिलक, कील, सुपेण, तरल, बलि, भीम, भीमरथ, धर्म, मनोहरमुख, सुख, प्रमत्त, मर्दक, मत्त,
 सार, रत्नजटी, शिव, दूषण, भीषण, कोण, विघट, विराधित, मेरु, रणखनि, क्षेम, बेलाक्षेपी,

एते वाजियुतैः कान्तैर्मनोरथजवै रथैः । महासैनिकमध्यस्थैरध्यासत रणाजिरम् ॥१७॥
 विष्णुदाहो मरुदाहः सानुर्जलदवाहनः । रवियानः प्रचण्डालिरिमेऽपि घनसन्निभैः ॥१८॥
 महारथचरैर्नानावाहनोज्ञासिताम्बरैः । युद्धश्रद्धासमायुक्ता दधादुर्मरुतैः समाः ॥१९॥
 विमानसुत्तमाकारं नाम्ना रत्नप्रभं महत् । आरुढो यत्नवानस्थात् पद्मपद्मो विभीषणः ॥२०॥
 युद्धावर्तौ वसन्तश्च कान्तः कौमुदिनन्दनः । भूरिः कोलाहलो हेडो भावितः साधुवत्सलः ॥२१॥
 अर्द्धचन्द्रो जिनप्रेमा सागरः सागरोपमः । मनोज्ञो जिनसंज्ञश्च तथा जिनमतदायः ॥२२॥
 नानावर्णविमानाग्रम्भिकास्थितमूर्च्छयः । दुर्द्धरा निर्ययुर्यौद्धुं वद्धसन्नाहविग्रहाः ॥२३॥
 पद्मनाभः सुमित्राजः सुग्रीवो जनकात्मजः । एते हंसविमानस्था विरेह्यगंगनान्तरे ॥२४॥
 महाशुद्धप्रतीकाशा नानायानसमाश्रिताः । लङ्काभिमुखमुद्युक्ता गन्तुं श्लेषरपाधिवाः ॥२५॥
 संधारलम्बिताम्भोदवृन्दनिघोषमैरवाः । शङ्खकोटिचनोन्मिश्रास्तूर्याणामुद्युतः स्वनाः ॥२६॥
 भम्भामेयौ मृदद्वाश्च लम्पाका धुन्धुमण्डकाः । भ्रमरभ्रमरात्कह्नकारश्च हुङ्गरा दुन्दुकाणकाः ॥२७॥
 भ्रमरा हेतुकुञ्जश्च काहला दूर्धुरादयः । समाहता महानादं सुमुचुः कर्णधूर्णकम् ॥२८॥
 वेषुनादाद्दहासाश्च ताराहलहलारवाः । ययुः सिंहद्विपस्वाना महिपत्यन्दनस्वनाः ॥२९॥
 क्रमेलकमहारावा निनादा मृगपक्षिणाम् । उत्तस्थुः पिहितागोपाशोपविष्टपनिःस्वनाः ॥३०॥
 तथोरन्धोन्यमासङ्गे जाते परमसैन्ययोः । लोकः संशयमारुढः समस्तो जीवितं प्रति ॥३१॥
 कोणी क्षोभं परं प्राप्ता विकल्पितमहीचरा । प्रशोपं गन्तुमारब्धः प्रक्षुब्धः क्षौरसागरः ॥३२॥

महाधर, नक्षत्रलुब्ध, संग्राम, विजय, रथ, नक्षत्रमालक, चोद तथा अतिविजय आदि घोड़ोंसे जुते मनोहर, इच्छानुसार वेग वाले, तथा महासैनिकों के मध्य स्थित रथोंपर सवार हो रणाङ्गणमें पहुँचे ॥१२-१७॥ विष्णुदाह, मरुदाह, सानु, मेघवाहन, रवियान और प्रचण्डालि ये सब सामन्त भी मेघोंके समान नाना प्रकारके वाहनोंसे आकाशको देदीप्यमान करनेवाले उत्तमोत्तम रथोंपर सवार हो युद्ध की अभिलाषासे दौड़े । ये सब वायुके समान तीव्रवेग वाले थे ॥१८-१९॥ जिसे रामकी पक्ष थी ऐसा यत्नवान् विभीषण रत्नप्रभ नामक उत्तम विमानपर आरुढ़ हुआ ॥२०॥ युद्धावर्त, वसन्त, कान्त, कौमुदिनन्दन, भूरि, कोलाहल, हेड, भावित, साधुवत्सल, अर्द्धचन्द्र, जिनप्रेमा, सागर, सागरोपम, मनोज्ञ, जिनसंज्ञ तथा जिनमत आदि योद्धा युद्ध करनेके लिए बाहर निकले । ये सब नाना वर्णों वाले विमानोंकी अप्रभूमिमें स्थित थे, दुर्धर थे और सबके शरीर कवचोंसे कसे हुए थे ॥२१-२३॥ पद्मनाभ—राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और भामण्डल ये सब हंसोंके विमानोंमें बैठे हुए आकाशके बीचमें अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥२४॥ जो महामेघोंके समान जान पड़ते थे तथा नाना प्रकारके वाहनोंपर आरुढ़ थे, ऐसे विद्याधर राजा लंकाकी ओर जानेके लिए तत्पर हुए ॥२५॥ प्रलयकालीन घनघटाकी गर्जनाके समान जिनके भयंकर शब्द थे, तथा जो करोड़ों शङ्खोंके शब्दसे मिले हुए थे ऐसे तुरही वादित्तोंके शब्द उत्पन्न होने लगे ॥२६॥ भ्रमरा, भेरी, मृदङ्ग, लम्पाक, धुन्धु, मण्डुक, भ्रमरा, भ्रमरात्कह्नकार, हुङ्गरा, दुन्दुकाणक, भ्रमर, हेकगुब्जा, काहल और दूर्धुरा आदि बाजे वादित्त होकर कानोंको घुमानेवाले महाशब्द छोड़ने लगे ॥२७-२८॥ नाँसोंके शब्द, अट्टहासकी ध्वनि, तारा तथा हलहलके शब्द, सिंहों और हाथियोंके शब्द, भैंसाओं और रथोंके शब्द, ऊँटोंके विशाल शब्द तथा मृग और पक्षियोंके शब्द उठने लगे । इन सबके शब्दोंने शेष समस्त संसारके शब्दोंको आच्छादितकर दिया ॥२९-३०॥ जब उन दोनों विशाल सेनाओंका परस्परमें समागम हुआ तब समस्त लोक अपने जीवनके प्रति संशयमें पड़ गये ॥३१॥ पृथिवी अत्यन्त क्षोभको प्राप्त हुई, पर्वत हिलने लगे और क्षुभित हुआ

सदपैर्निर्गतैर्गौरैरसहैर्निजवर्गतः । दन्तुरीभूतमल्युग्रं बलह्वयमलच्यत ॥३२॥
 चक्रक्रकचकुन्तासिगदाशक्तिशिलीमुखैः । भिण्डिमालादिभिश्चोग्रं प्रवृत्तं युद्धमेतयोः ॥३३॥
 आह्वयन्तः सुसन्नदाः शस्त्रज्वलितबाहवः । समुत्पेतुर्भटाः शूराः परसैन्यं विचक्ष्वः ॥३४॥
 अतिवेगसमुत्पाताः प्रविष्टाः शात्रवं बलम् । शस्त्रसञ्चारमार्गार्थमपससुः पुनर्मनाक् ॥३५॥
 लङ्कानिवासिभिर्यौधैर्दुर्गतैरतिभूरिभिः । सिंहैरिव गजा भङ्गं नीता वानरपक्षिणः ॥३६॥
 पुनरन्यैर्भटैः शीघ्रमसीदन्तः समुज्ज्वलाः । रघोयोधान् विनिर्जन्तुर्भासुरा वानरध्वजाः ॥३७॥
 मेघमान बलं दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य सर्वतः । स्वामिरागसमाकृष्टौ महाबलसमावृतौ ॥३८॥
 राजध्वजसमालम्ब्यौ गजस्यन्दनवर्तिवौ । मा भैष्टेति कृतस्वानौ परमोत्कटविग्रहौ ॥३९॥
 हस्तप्रहस्तसामन्तावुत्थाय सुमहाजवौ । निन्यतुः परमं भङ्गं बलं वानरलक्ष्मणम् ॥४०॥
 शास्त्रासुगन्धर्वौ तावत्प्रतापं निश्रुतो परम् । क्रोडवारणसंबुजबाह्व्यूढमहारथौ ॥४१॥
 शौर्यगर्वाविचायुक्तशरीरौ परमयुतौ । नलनीलौ परिक्रुद्धौ भीषणौ योद्धुसुचतौ ॥४२॥
 ततो बहुविधैः शस्त्रैश्चिरं जाते महाहवे । क्रमाससाङ्गनिस्त्रागे निपतद्गदसङ्घटे ॥४३॥
 नलेनोपत्य हस्तो वा विद्धलो विरथीकृतः । प्रहस्त इव नीलेन कृतश्च गतजीवितः ॥४४॥
 तावालोक्ष्य ततो राजन् विपर्यस्तौ महोत्तले । विनायका बभूवैतद्वाहिनीयं पराद्सुखा ॥४५॥

लवण समुद्र शोषणको प्राप्त होने लगा ॥३२॥ अपने-अपने वर्गसे निकलकर बाहर आये हुए, असह्यनशील, अहंकारी योद्धाओंसे व्याप्त हुई दोनों सेनाएं अत्यन्त भयंकर दिखने लगीं ॥३३॥ कुछ ही समय बाद दोनों सेनाओंमें चक्र, क्रकच, कुन्त, खड्ग, गदा, शक्ति, बाण और भिण्डिमाल आदि शस्त्रोंसे भयंकर युद्ध होने लगा ॥३४॥ जो एक दूसरेको बुला रहे थे, जो कवचोंसे युक्त थे, जिनकी मुजाएँ शस्त्रोंसे देदीप्यमान हो रही थीं और जो पर-चक्रमें प्रवेश करना चाहते थे ऐसे शूर वीर योद्धा उल्लङ्घन रहे थे ॥३५॥ ये योद्धा अत्यन्त वेगसे उल्लङ्घनकर पहले तो शत्रुओंके दलमें जा चुके अनन्तर शस्त्र चलानेके योग्य मार्ग प्राप्त करनेकी इच्छासे पुनः कुछ पीछे हट गये ॥३६॥ लंका निवासी योद्धा अधिक संख्या में थे तथा अत्यधिक शक्तिशाली थे इसलिए उन्होंने वानर-पक्षके योद्धाओंको उस तरह पराजितकर दिया जिस तरह कि सिंह हाथियोंको पराजितकर देते हैं ॥३७॥ तदनन्तर शीघ्र ही जो अन्य योद्धाओंके द्वारा नहीं दबाये जा सकते थे ऐसे प्रतापी तथा देदीप्यमान वानर राजाओंने राक्षस योद्धाओंको मारना शुरू किया ॥३८॥ तत्पश्चात् रावणकी सेनाको सब ओरसे नष्ट होती देख स्वामीके प्रेमसे खिंचे तथा बड़ी भारी सेनासे घिरे हस्त और प्रहस्त नामक सामन्त उठकर आगे आये । ये हाथीके चिह्नसे सुशोभित ध्वजासे प्रथक् ही जान पड़ते थे, हाथियोंके रथपर आरूढ़ थे, 'ढरो मत, ढरो मत' यह शब्दकर रहे थे, अत्यन्त उत्कट शरीरके धारक थे और महावेगशाली थे । उन्होंने आते ही वानरोंकी सेनामें तीव्र मार-काट मचा दी ॥३९-४१॥ यह देख जो परम प्रतापकी धारण कर रहे थे, सूकर, हाथी तथा घोड़े जिनके वड़े-वड़े रथ खींच रहे थे, जो शरीरधारी शूर वीरता और गर्वके समान जान पड़ते थे, परमदीप्तिके धारक थे, अत्यन्त क्रुद्ध एवं भयंकर थे, ऐसे वानरवंशी नल और नील युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥४२-४३॥

तदनन्तर जिसमें क्रम-क्रमसे साधु-साधु बहुत अच्छा बहुत अच्छाका शब्द हो रहा था तथा जो गिरते हुए योद्धाओंसे व्याप्त था ऐसा महायुद्ध जब चिरकाल तक नाना प्रकारके शस्त्रोंसे हो चुका तब नलने उल्लङ्घन हस्तको रथ रहित तथा विद्धल कर दिया और नीलने प्रहस्तको निर्जीव बना दिया ॥४४-४५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! तदनन्तर

वंशस्थवृत्तम्

विभक्तिं तावद् दृढनिश्चयं जनः प्रभोर्मुखं पश्यति यावदुन्नतम् ।
गतविनाशं स्वपतीं विशीयते यथारचक्रं परिशीर्णतुम्बकम् ॥४७॥

उपेन्द्रवज्रावृत्तम्

सुनिश्चितानामपि सज्जराणां विना प्रधानेन न कार्ययोगः ।
शिरस्यपेते हि शरीरबन्धः प्रपद्यते सर्वत एव नाशम् ॥४८॥
प्रधानसम्बन्धमिदं हि सर्वं जगद्यथेष्टं फलमभ्युपैति ।
राहूपसृष्टस्य रवेर्विनाशं प्रयासि सन्दो निरकरः करणाम् ॥४९॥

इत्यार्षे श्रीरविपेणाचार्यश्रोत्रे पद्मपुराणे हस्तप्रहस्तवधामिधानं नामाष्टपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५८॥

हस्त और प्रहस्तको पृथ्वीपर पड़ा देख रावणकी सेना, नायकसे रहित होनेके कारण विमुख हो गई—भाग खड़ी हुई ॥४६॥ सो ठीक ही है क्योंकि जब तक यह मनुष्य, स्वामीके ऊँचे उठे मुखको देखता रहता है तभी तक दृढ़ निश्चयको धारण करता है और जब अपना स्वामी नष्ट हो जाता है तब समस्त सेना जिसका पुट्टा बिखर गया है ऐसी गाड़ीके पहियेके समान बिखर जाती है ॥४७॥ आचार्य कहते हैं कि यद्यपि निश्चित किये हुए मनुष्योका कार्य किसी प्रधान पुरुष के बिना नहीं होता है क्योंकि शिर नष्ट हो जानेपर शरीर सब ओर से नाश ही को प्राप्त होता है ॥४८॥ प्रधानके साथ सम्बन्ध रखनेवाला यह समस्त जगत् यथेष्ट फलको प्राप्त होता है, सो ठीक ही है क्योंकि राहुके द्वारा आक्रान्त सूर्यकी किरणोंका समूह मन्द होता हुआ विनाशको ही प्राप्त होता है ॥४९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य विरचित पद्मपुराणमें हस्त प्रहस्तके वधका कथन करनेवाला अठारहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५८॥

एकोनषष्टितमं पर्व

उवाच श्रेणिकोऽर्थं विधाविधिविशारदौ । हस्तप्रहस्तसामन्तौ जितपूर्वौ न केनचित् ॥१॥
महदाश्चर्यमेतन्मे ताभ्यां तौ निहतौ कथम् । अत्र मे कारणं नाथ गणध्वजतुमर्हसि ॥२॥
ततो गणधरोऽवोचच्छृणु तत्स्वविशारदः । राजन् कर्माभिलुप्तानां जन्तूनां गतिरोदृशी ॥३॥
पूर्वकर्मानुभावेन स्थितिर्दुःकृतिनामियम् । असौ मारयिता तस्य यो येन निहितः पुरा ॥४॥
असौ मोचयिता तस्य बन्धनव्यसनादिषु । यो येन मोचितं पूर्वमनर्थं पतितो नरः ॥५॥
आसँह्यौकिकमर्यादाः प्रातिवेदिमकवासिनः । निःस्वाः कुटुम्बिनः स्थाने कुशस्थलकनामनि ॥६॥
इन्धकः पल्लवश्चैव तत्रकोदूरसम्भवौ । पुत्रदारपरिविलटौ विप्रौ लाल्लकर्मकौ ॥७॥
साधुकम्पौ स्वभावेन साधुनिन्दापराङ्मुखौ । जैनमित्रपरिष्वङ्गाद् भिषादानादिसेविनौ ॥८॥
द्वितीयं निःस्वयुगलं प्रतिवेदमोषितं तयोः । स्वभावनिर्दयं क्रूरं लौकिकोन्मार्गमोहितम् ॥९॥
वन्दने राजदानस्य सञ्जाते कलहे सति । ताम्यामत्यन्तरौद्रार्भ्यां हताविन्धकपल्लवौ ॥१०॥
साधुदानाद्वरिक्षेत्रे जातौ सज्जोगभोजिनौ । पत्युद्वयस्य जातौ देवलोकनिवेशिनौ ॥११॥
अधर्मपरिणामेन क्रूरौ तु प्राप्तपञ्चतौ । शशौ कालञ्जरारण्ये जातौ दुःखातिसङ्घे ॥१२॥
मिथ्यादृशंयुक्तानां साधुनिन्दनकारिणाम् । प्राणिनां पापकृटानां भवत्येवेदृशी गतिः ॥१३॥

अथानन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे इस प्रकार कहा कि हे भगवन् ! विद्याओंकी विधिमे निपुण जो हस्त और प्रहस्त नामक सामन्त पहले किसीके द्वारा नहीं जीते जा सके वे बड़ा आश्चर्य है कि नल और नील के द्वारा कैसे मारे गये ? हे नाथ ! आप मेरे लिए इसका कारण कहिए ॥१-२॥ तदनन्तर श्रुत रहस्यके ज्ञाता गौतम गणधरने कहा कि हे राजन् ! कर्मोंसे प्रेरित प्राणियोंकी ऐसी ही गति होती है ॥३॥ पूर्व कर्मके प्रभावसे पापी जीवोंकी यह दशा है कि पहले जो जिसके द्वारा मारा जाता है वह उसे मारता है ॥४॥ पहले जिसने विपत्तिमे पड़े हुए जिस मनुष्यकी उस विपत्तिसे छुड़ाया है वह उसे भी बन्धन तथा व्यसन-संकट आदिके समय छुड़ाता है ॥५॥

इनकी कथा इस प्रकार है कि कुशस्थल नामक नगरमें लौकिक मर्यादाको पालनेवाले कुछ दरिद्र कुटुम्बी पास-पासमें रहते थे ॥६॥ उनमे इन्धक और पल्लवक नामक दो भाई थे जो एक ही माताके उदरसे उत्पन्न थे, पुत्रों तथा स्त्रियोंके कारण क्लेशको प्राप्त रहते थे, जातिके ब्राह्मण थे, हल चलानेका काम करते थे, स्वभावसे दयालु थे; साधुओंकी निन्दासे विमुख थे, तथा अपने एक जैन-मित्रकी संगतिसे आहारदान आदि कार्योंमें तत्पर रहते थे ॥७-८॥ उन दोनोंकी पत्नीसमे ही एक दूसरा दरिद्र कुटुम्बियोंका युगल रहता था जो स्वभावसे निर्दय था, दुष्ट था और लौकिक मिथ्या प्रवृत्तियोंसे मोहित रहता था ॥९॥ एक बार राजाकी ओरसे जो दान वेंदता था उसमे कलह हो गई जिससे अत्यन्त क्रूर परिणामोंके धारक उन दरिद्र कुटुम्बियोंके द्वारा इन्धक और पल्लवक मारे गये ॥१०॥ शुनि दानके प्रभावसे दोनों, हरिक्षेत्रमे उत्तम भोगोंको भोगनेवाले आर्य हुए । वहाँ दो पत्युकी उनकी आयु थी । उसके पूर्ण होनेपर दोनों ही देवलोकमें उत्पन्न हुए ॥११॥ दूसरे जो क्रूर दरिद्र कुटुम्बी थे वे अधर्म रूप परिणामसे मर कर दुःखोंसे परिपूर्ण कालञ्जर नामक वनमें खरगोश हुए ॥१२॥ सो ठीक

१. जृणु तत्स्वविशारदः म० । २. पुत्राद- म० । ३. विद्वौ म० । ४. विभागकरणे, बन्धने म० । ५. काले जारण्ये म० ।

ततस्तिर्यङ्मुखिर्भ्राम्वा विविधयोगिषु । कृच्छ्रान्मनुष्यतां प्राप्तीं तापसस्त्वपुपागतीं ॥१३॥
 बृहज्जटौ बृहलकायौ फलपण्यादिभोजिनी । तपोभिः कर्षितौ तीमैः कुक्षाने द्वौ श्रुतौ च तौ ॥१५॥
 क्रमादरिञ्जये जातावशिवन्याः कुक्षिसम्भवौ । पुत्रौ वह्निर्कुमारस्य विजयार्दस्य दक्षिणे ॥१६॥
 आशुकारासुराकाराविमौ जगति विश्रुतौ । हस्तप्रहस्तनामानौ सचिवौ रक्षसां विभोः ॥१७॥
 पूर्वौ तु प्रच्युतौ नाकात् सुमनुष्यत्वमागतौ । गृहाश्रमे तपः कृत्वा पुनर्जातौ सुरोत्तमौ ॥१८॥
 पुण्यक्षयात् परिभ्रष्टौ स्वर्गादिन्धकपञ्चवौ । किन्तुसंज्ञे पुरे जातौ नलनीली महाबलौ ॥१९॥
 यत्तद्वस्तुप्रहस्तभ्यां नलनीली भवान्तरे । निहृतौ फलमेतस्य परावृत्य तदागतम् ॥२०॥
 हतवायुं हन्यते पूर्वं पालकः पाल्यतेऽधुना । औदासीन्यमुदासीने जायते प्राणधारिणाम् ॥२१॥
 यं वीक्ष्य जायते कोपो दृष्टकारणवर्जितः । निःसन्दिग्धं परिज्ञेयः स रिपुः पारलौकिकः ॥२२॥
 यं वीक्ष्य जायते चित्तं प्रह्लादि सह चक्षुषा^१ । असन्दिग्धं सुविज्ञेयो मित्रमन्यत्र जन्मनि ॥२३॥
 क्षुब्धोर्मिणि जले सिन्धोः^२ शीर्णपोतं स्फादयः । स्थले स्लेच्छाञ्च धाघन्ते यत्तद्वह्नुःकृतजं फलम् ॥२४॥
 मत्सैर्गिरिनिभैर्नगैर्योर्ध्वैर्बहुविधायुधैः । सुवेगैर्वाजिभिर्हस्तैश्चैवैवैश्च कवचावृतैः ॥२५॥
 विग्रहेऽविग्रहे वापि निःप्रमादस्य सन्ततम् । जन्तोः स्वपुण्यहीनस्य रक्षा नैवोपजायते ॥२६॥
 निरस्तमपि^३ निर्यन्त यत्र तत्र स्थितं परम् । तपोदानानि रक्षन्ति न देवा न च बान्धवाः ॥२७॥

ही है क्योंकि मिथ्यादर्शनसे युक्त तथा साधुओंकी निन्दा करनेवाले पापी प्राणियों की ऐसी ही गति होती है ॥१३॥ तदनन्तर तिर्यञ्चोंकी नाना योनियोंमें चिरकाल तक भ्रमणकर दोनों बड़ी कठिनतासे मनुष्य पर्याय प्राप्तकर तापस हुए ॥१४॥ वहाँ वे बड़ी-बड़ी जटाएँ रखाये हुए थे, डील-डौलके विशाल थे, फल तथा पत्ते आदिका भोजन करते थे और तीव्र तपस्यासे दुर्बल हो रहे थे । मिथ्याज्ञानके समय ही दोनोंकी मृत्यु हुई ॥१५॥ दोनों ही मरकर विजयार्ध पर्वतके दक्षिणमें वह्निर्कुमार विद्याधरकी अश्विनी नामा स्त्रीकी कुक्षिसे दो पुत्र हुए ॥१६॥ ये दोनों ही शीघ्रतासे कार्य करने वाले असुरोंके समान आकारके धारक थे, जगत्में अतिशय प्रसिद्ध थे तथा आगे चलकर रावणके हस्त, प्रहस्त नामक मन्त्री हुए थे ॥१७॥ पहले जिनका कथन कर आये हैं ऐसे इन्धक और पल्लवकस्वर्गसे च्युत हो कर उत्तम मनुष्य पर्यायकी प्राप्त हुए । तदनन्तर गृहस्थाश्रममें ही तपकर दोनों उत्तम देव हुए ॥१८॥ फिर पुण्यका क्षय होनेसे स्वर्गसे च्युत हो किष्कु नामक नगरमें महाबलके धारक नल और नील हुए ॥१९॥ हस्त और प्रहस्तने भवान्तरमें जो नल और नीलकी मारा था इसका फल लौटकर इस भव में उन्हींकी प्राप्त हुआ अर्थात् उनके द्वारा वे मारे गये ॥२०॥ पूर्वभवमें जो जिसे भारता है वह इस भवमें उसके द्वारा मारा जाता है, पूर्वभवमें जो जिसकी रक्षा करता है वह इस भवमें उसके द्वारा रक्षित होता है तथा पूर्वभवमें जो जिसके प्रति उदासीन रहता है वह इस भवमें उसके प्रति उदासीन रहता है ॥२१॥ जिसे देखकर अकारण क्रोध उत्पन्न होता है उसे निःसन्देह परलोक सम्बन्धी शत्रु जानना चाहिए ॥२२॥ और जिसे देखकर नेत्रोंके साथ-साथ मन आह्लादित हो जाता है उसे निःसन्देह पूर्वभवका मित्र जानना चाहिए ॥२३॥ समुद्रके लहराते जलमें जर्जर नाकवाले मनुष्यको जो मगर, मच्छ आदि बाघा पहुँचाते हैं तथा स्थलमें स्लेच्छ पीड़ा पहुँचाते हैं वह सब पापकर्मका फल है ॥२४॥ पर्वतों के समान मदोन्मत्त हाथियों, नाना प्रकारके राक्ष धारण करनेवाले योद्धाओं, तीव्र वेगके धारक घोड़ों एवं कवच धारण करनेवाले अहंकारी श्रुत्योंके साथ युद्ध हो अथवा नहीं हो और आप स्वयं सदा प्रमादरहित सावधान रहे तो भी पुण्यहीन मनुष्यकी रक्षा नहीं होती ॥२५-२६॥ इसके विपरीत पुण्यात्मा

१. आशुकारशराकाशै च० ख०, आशुकारशुराकाशै क० । २. उदासीन- म० । ३. चक्षुषाम् म० ।
 ४. शीर्ण पोतं म० । ५. निर्यतं म० । ६. स्थिरं म० ।

दश्यते बन्धुमध्यस्थः पित्राभ्यालिङ्गितो धनी । अग्र्यमाणोऽतिशूरश्च कोऽन्यः शक्तोऽभिरक्षितम् ॥२८॥
पात्रदानैः व्रतैः शीलैः सम्यक्त्वपरितोषितैः । विग्रहेऽविग्रहे वापि रक्ष्यते रक्षितैर्नरैः ॥२९॥
दयादानादिना येन धर्मो नोपार्जितः पुरा^१ । जीवितं चेज्यते दीर्घं वाञ्छा तस्यातिनिःफला ॥३०॥

न विनश्यन्ति कर्माणि जनानां तपसा विना ।

इति ज्ञात्वा क्षमा कार्या विपश्चिच्चिरिष्वपि ॥३१॥

दोधकवृत्तम्

एष ममोपकरोति सुचेताः दुष्टतरोऽपकरोति ममायम् ।

बुद्धिरियं निपुणा न जनानां कारणमत्र निजार्जितकर्म ॥३२॥

इत्यधिगम्य विचक्षणमुख्यैर्वाङ्मुखसुखगौणनिमित्तैः ।

रागतं कलुषं च विमिश्रं कृत्यमपोऽस्मिन्नुत्सितचेष्टैः ॥३३॥

भूविचरेषु निपातमुपैति ग्रावणि सज्जति गच्छति सर्पस्य ।

सन्तमसापिहिते पथि नेत्री नो रविणा जनितप्रकाशे ॥३४॥

इत्यार्षे रविषेणाचार्यश्रोत्रो पद्मपुराणे हस्तग्रहस्तनलनीलपूर्वमवानुकीर्तनं नामैकोनषष्टितमं पर्व ॥५६॥

मनुष्य जहाँसे हृदय है, जहाँसे बाहर निकलता है अथवा जहाँ स्थिर रहता है वहाँ तप तथा दान ही उसकी रक्षा करते हैं, यथार्थमें न देव रक्षा करते हैं और न भाई-बन्धु ही ॥२७॥ देखा जाता है कि जो भाई-बन्धुओंके मध्यमे स्थित है, पिता जिसका आलिङ्गन कर रहा है, जो धनी और अत्यन्त शूरवीर है वह भी मृत्युको प्राप्त होता है, कोई दूसरा पुरुष उसकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होता है ॥२८॥ युद्ध हो चाहे न हो सम्यग्दर्शनके साथ-साथ अच्छी तरह पाले हुए पात्रदान, व्रत तथा शील ही इस मनुष्यकी रक्षा करते हैं ॥२९॥ जिसने पूर्व पर्यायमें दया दान आदि के द्वारा धर्मका उपार्जन नहीं किया है और फिर भी दीर्घ जीवनकी इच्छा करता है सो उसकी वह इच्छा अत्यन्त निष्फल है ॥३०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि 'तपके विना मनुष्योंके कर्म नष्ट नहीं होते' यह जानकर विद्वान् पुरुषोंको शत्रुओं पर भी क्षमा करनी चाहिए ॥३१॥ यह उत्तम हृदयका धारक पुरुष मेरा उपकार करता है और यह अतिशय दुष्ट मनुष्य मेरा अपकार करता है । लोगोको ऐसा विचार करना अच्छा नहीं है क्योंकि इसमें अपने ही द्वारा अर्जित कर्म कारण हैं ॥३२॥ ऐसा जानकर जिन्होंने सुख-दुःखके बाढ़ निमित्तोंको गौण कर खोटी चेष्टाओंका परित्याग कर दिया है ऐसे श्रेष्ठ विद्वानोंको निमित्त कारणोंसे तीव्र राग अथवा दोष नहीं करना चाहिये ॥३३॥ गाढ़ अन्धकारके द्वारा आच्छादित मार्ग जब सूर्यके द्वारा प्रकाशित हो जाता है तब नेत्रवान् मनुष्य न तो पृथ्वीके गड्ढोंमें गिरता है; न पत्थर पर टकराता है और न सर्प-ही को प्राप्त होता है ॥३४॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें हस्त-ग्रहस्त और तनल-नीलके पूर्वमंत्रोंका वर्णन करनेवाला उनसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५६॥

षष्ठितमं पर्व

हस्तप्रहस्तसद्दीरो विशाव निहतौ ततः । अन्येषु रूद्रधुरक्रोधा बहवो योद्धुमुद्यताः ॥१॥
 मारीचः सिंहजघनः स्वयम्भुः शम्भुरुजितः । शुक्रसारणचन्द्रार्कजगद्दीभस्तनिःस्वनः ॥२॥
 ज्वरोग्रनक्रमकरा वज्राख्योद्यामनिष्ठुराः । गम्भीरनिनदाद्याश्च सज्जदारभसान्विताः ॥३॥
 सिंहसम्बद्धबाहोदस्यन्दनापितभूतयः । चोमयन्तः परिप्राप्ताः कपिकेतुवरुधिनीम् ॥४॥
 तान् समापततो दृष्ट्वा राक्षसान् पार्थिवान्परात् । हमे वानरवंशायाः पार्थिवा योद्धुमुद्यताः ॥५॥
 मदनान्कुरसन्तापप्रस्थिताक्रोशवैन्दवाः । दुरितानघपुष्पास्त्रविघ्नप्रीतिह्वरादयः ॥६॥
 अन्योन्याहृतमेतेपासमवत् परमं रणम् । कुर्वद्भिर्जटिलं ज्योम शस्त्रैर्वहुविधैर्यनम् ॥७॥
 अमिलव्यति सन्तापो मारीचं समरे तदा । प्रथितः सिंहजघनमुद्यानं विघ्नसंज्ञकः ॥८॥
 आक्रोशः सारणं पापः शुक्रार्थं नन्दनो ज्वरम् । तेषां स्पृहवतामेवं युद्धं जातं नियन्त्रितम् ॥९॥
 ततः क्लिष्टेन सन्तापो मारीचैव निपातितः । नन्दनेन हतः कृच्छ्राज्ज्वरः कुन्तेन वक्षसि ॥१०॥
 प्रथितः सिंहकटिना विघ्नश्चोद्यामकीर्तिना । हतोऽथ युद्धसंहारः सवितास्तं समागमत् ॥११॥
 श्रुत्वा स्वं स्वं हतं नार्थं निमग्नाः शोकसागरे । स्त्रियो विभावरीमेतामनन्तामिव मेनिरे ॥१२॥
 अन्येषुः सन्ततक्रोधाः सामन्ता योद्धुमुद्यताः । वज्राख्यः क्षपितारिश्च सुगेन्द्रदमनो विधिः ॥१३॥
 शम्भुः स्वयम्भुश्चन्द्राकोस्तथा वज्रोदरादयः । राक्षसाधिपवर्गीयास्तैर्म्योऽन्ये वानरध्वजाः ॥१४॥

अथानन्तर हस्त और प्रहस्त वीरोंको मरा सुन दूसरे दिन उत्कट क्रोधसे भरे बहुतसे योद्धा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥१॥ जिनके कुछ नाम इस प्रकार हैं—मारीच, सिंहजघन, स्वयंभू, शम्भु, अर्जित, शुक्र, सारण, चन्द्र, अर्क, जगद्दीभत्स, तिःस्वन, ज्वर, उग्र, नकर, मकर, वज्राख्य, उद्याम, निष्ठुर और गम्भीर, निनद आदि । ये सभी योद्धा कवच धारणकर युद्धके लिए तैयार थे, वेगसे सहित थे, सिंहों और परिपुष्ट घोड़ोंसे जुते हुए रथोंपर आरुढ़ थे तथा वानर वंशियोंकी सेनाको क्षोभित करते हुए आ पहुँचे ॥२-४॥ उन राक्षस वंशी उत्तमोत्तम राजाओंको आते देखे वानरवंशके प्रधान राजा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥५॥ इनमेसे कुछके नाम इस प्रकार हैं—मदन, अंकुर, संताप, प्रस्थित, आक्रोश, नन्दन, दुरित, अनघ, पुष्पाक्ष, विघ्न और प्रीतिकर आदि ॥६॥ आकाशको अत्यन्त जटिल करनेवाले नाना प्रकारके शस्त्रोंसे दोनों पक्षके लोगोका एक दूसरेको ललकार-ललकार कर भयंकर युद्ध हुआ ॥७॥

उस समय युद्धमें संताप, मारीचको चाह रहा था; प्रथित, सिंह जघनको; विघ्न, उद्यामको; आक्रोश, सारणको, पाप, शुक्रको और नन्दन, ज्वरको; देख रहा था । इस प्रकार स्पर्धासे भरे हुए इन सब योद्धाओका विकट युद्ध हुआ ॥८-९॥ तदनन्तर क्लेशसे भरे हुए मारीचके सन्ताप को गिरा दिया । नन्दनने वक्षःस्थलमें भालेका प्रहारकर बड़े कष्टसे ज्वरको मार डाला ॥१०॥ सिंह जघनने प्रथितको और उद्यामने विघ्नको मार गिराया । तदनन्तर सूर्य अस्त हुआ और उस दिनके युद्धका उपसंहार हुआ ॥११॥ अपने-अपने पतिको मरा सुन स्त्रियाँ शोकरूपी सागरमें निमग्न हुईं और उस रात्रिको अनन्त—बहुत मारी मानने लगीं ॥१२॥

तदनन्तर दूसरे दिन तीव्र क्रोधसे भरे वज्राख्य, क्षपितारि, सुगेन्द्रदमन, विधि, शम्भु, स्वयंभू, चन्द्र, अर्क तथा वज्रोदर आदि राक्षस पक्षके और उनसे भिन्न दूसरे वानर पक्षके योद्धा

१. वज्राक्षो घाति निष्ठुराः म०, क० वज्राक्षोघाननिष्ठुराः ब०, क० । २. सवृत्त- ज० । ३. क्रोध- ज० ।
 ४. शुक्राक्षं म० । ५. वज्राक्षः म० ।

जन्मान्तराजितक्रोधकर्मबन्धोदयेन ते । योद्धुं परममाश्रया निजजीवितनिस्पृहाः ॥१५॥
 क्षपितारिः समाहूतः संक्रोधेन महारुषा । मृगारिदमनो बलिना संहृतो बाहुशालिना ॥१६॥
 विधिर्वितापिनाऽन्योन्यमेवं जाते महाहवे । भटेवज्जातसंज्ञेषु निपतत्सुपलेष्विव ॥१७॥
 शार्दूलस्ताडितः पूर्वं वज्रोदरमताडयत् । सकोपं सुचिरं युद्धं क्षपितारिरमारयत् ॥१८॥
 विशालद्युतिनामा च शम्भुना विनिपातितः । मृत्युं स्वयमुवा नीतो विजयो यष्टिताडितः ॥१९॥
 वितार्पिष्विधिना ध्वस्तो गदाघातेन कृच्छृतः । सामन्तैरिति हन्यन्ते सामन्ताः शतशस्तदा ॥२०॥
 भवसौदततो दद्रोस्त्वं किष्किन्धपतिर्बलम् । परमक्रोधसम्भारो यावत्सद्बुधमुद्यतः ॥२१॥
 अञ्जनासनयस्तावत्स्वसैन्येन युग्महीम् । चारणोढं रथं हेममारुढो योद्धुमुद्ययौ ॥२२॥
 रक्षःसामन्तसङ्घातो द्रष्टव्य पवनात्मजम् । गवाभिव गणो भ्रान्तस्त्रस्तः केशरिदर्शनात् ॥२३॥
 जनुश्च राक्षसाः सोऽयं हनूमान् वानरध्वजः । अद्यैव विधवा योपाः परं बह्वीः करिष्यति ॥२४॥
 माली तस्याग्रतो मृतो युद्धार्थी राक्षसोत्तमः । समुद्बुध्य शरं तस्य पुरो वासिरजायत ॥२५॥
 तयोरभूमहयुद्धं शरैराकर्णसहितैः । उपात्तसाधुनिस्त्राणं क्रमेण परमोद्धतम् ॥२६॥
 सचिवाः सचिवैः साकं रथिनो रथिभिस्तथा । सादिनो सादिभिः सत्रा लम्बा युक्तरणोद्यताः ॥२७॥
 मालिन नष्टमालोक्य शक्या पवनजन्मनः । वज्रोदरोऽभवत्सस्य पुरः परमविक्रमः ॥२८॥
 चिरकृतरणोऽप्यथ वातिना विरथीकृतः । रथसम्यं समारुह्य मार्गं समभावत ॥२९॥
 कृत्वा तं विरथ भूयो मार्गतिः परमोदयः । उपर्यबाहयत्सस्य रथं मार्गतरङ्गसम् ॥३०॥

युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥१३-१४॥ जन्मान्तरोर्मैं संचित क्रोध कर्मके तीव्र उदयसे वे अपने जीवनसे निःस्पृह हो भयंकर युद्ध करनेमें जुट पड़े ॥१५॥ महाक्रोधसे भरे संक्रोधने क्षपितारिको ललकारा, भुजाओंसे सुशोभित बलीने सिंह दमनको बुलाया और वितार्पिने विधिको पुकारा । इस प्रकार परस्पर महायुद्ध होनेपर जिनके नामोंका पता नहीं था ऐसे अनेक योद्धा मर-मरकर ऐसे गिरने लगे मानो पत्थर ही बरस रहे हों ॥१६-१७॥ जिसपर पहले प्रहार किया गया था ऐसे शार्दूलने वज्रोदरको मारा । दीर्घकाल तक युद्ध करनेवाले संक्रोधको क्षपितारिने मार डाला ॥१८॥ शम्भुने विशालद्युतिको मार गिराया, स्वयंभूने यष्टिकी चोटसे विजयको मृत्यु प्राप्त करा दी और विधिने गदाके प्रहारसे वितार्पिको बड़ी कठिनाईसे मार पाया । इस प्रकार उस समय सामन्तोंके द्वारा सैकड़ों सामन्त मारे गये थे ॥१९-२०॥

तदनन्तर अपनी सेनाको नष्ट होती देख परमक्रोधसे भरा सुग्रीव जबतक कबच धारण करनेके लिए उद्यत हुआ तबतक अपनी सेनासे पृथिवीको व्याप्त करनेवाला हनूमान् हाथियोंसे जुते स्वर्णमय रथपर सवार हो युद्ध करनेके लिए उठ खड़ा हुआ ॥२१-२२॥ जिस प्रकार सिंहको देखकर गायोंका समूह भयभीत हो इधर-उधर भागने लगता है, वसी प्रकार हनूमान्को देख राक्षस-सामन्तोंका समूह भयभीत हो इधर-उधर भागने लगा ॥२३॥ राक्षस परस्पर कहने लगे कि यह हनूमान् आज ही अनेक स्त्रियोंको विधवाएँ कर देगा ॥२४॥ तदनन्तर युद्धका अभिलाषी राक्षसोंका शिरोमणि, माली हनूमान्के आगे आया सो हनूमान् भी बाण निकालकर उसके सामने जा पहुँचा ॥२५॥ कानोंतक खीच-खींचकर चढ़ाये हुए बाणोंसे उन दोनोंका ऐसा महायुद्ध हुआ कि जिसमें क्रम-क्रमसे ठीक-ठीक शब्दका उच्चारण हो रहा था, तथा जो परम उद्धततासे युक्त था ॥२६॥ योग्य युद्ध करनेमें तत्पर सचिव, सचिवोंके साथ, रथी रथियोंके साथ और युद्धसवार युद्धसवारोंके साथ जूझ पड़े ॥२७॥ हनूमान्की शक्तिसे मालीको नष्ट हुआ देख परम पराक्रमी वज्रोदर उसके सामने आया ॥२८॥ चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद हनूमान् ने जय उसे रथ-रहितकर दिया तब वह दूसरे रथपर सवार हो हनूमान्की ओर दौड़ा ॥२९॥ परम अभ्युदयके

स्मन्दनोद्वाहिनागाहिनूतः सं रणाजिरे । अमुञ्चत हुतं प्राणान् हुङ्कारेणापि वजितः ॥३१॥
 ततोऽस्याभिसुखं तस्यौ स्वपचवचकोपितः । जम्बूमालीति विख्यातो रावणस्य सुतो बली ॥३२॥
 असावुत्थितमात्रघ्नं ध्वजं बानरलान्घ्रनम् । चिच्छेद वायुपुत्रस्य चन्द्रार्द्धसदृशेषुणा ॥३३॥
 केतुकल्पनद्वयेन तस्य मारुतिना धनुः । कवचं च ततो नीतं पुराणतुणशीर्णताम् ॥३४॥
 'ततस्तनूदरीमुखं ध्वान्यं कवचं ददम् । अताडयन्मरुत्युत्तुं तीक्ष्णैर्वचसि सायकैः ॥३५॥
 बालनीलोत्पलम्लाननालस्पर्शसमुद्भवैः । असेवत स तैः सौख्यं धरणीधरधीरवीः ॥३६॥
 अथास्य वायुपुत्रेण रथयुक्तं सहोद्धतम् । सुक्तं सिंहशत पट्टीचन्द्रवक्त्रेण पत्रिणा ॥३७॥
 दंष्ट्राकरालवदनैः स्फुरद्बोहितलोचनैः । तैरुत्पत्य निजं सैन्यं सकलं विद्वलीकृतम् ॥३८॥
 महाकल्लोलसङ्काशास्तस्य सैन्याणवस्थ ते । क्रूरनक्रसमाना वा जाताः प्रबलमूर्तयः ॥३९॥
 चण्डसौदामिनीदण्डमण्डलाकारहारिणः । सैन्यमेघसमूहं ते परमं चोभमानयन् ॥४०॥
 रणसंसारचक्रोऽसौ सैन्यलोकः समन्ततः । सिद्धकर्मनिरत्यर्थमहादुःखवशीकृतः ॥४१॥
 बाजिनो वारणा सत्ता रथारोहाश्च विद्वलाः । रणव्यापारनिर्मुक्तानिर्मुदंश्च दिशस्ततः ॥४२॥
 ततो नष्टेषु सर्वेषु सामन्तेषु यथायथम् । अपश्यद्वाघ्रं वातिर्वैज्वल्यितमग्रतः ॥४३॥
 आरुह्य च रथं सिंहैर्युक्तं परमभासुरैः । अथावद्वाणमुद्धृत्य विशत्यर्द्धसुखं प्रति ॥४४॥

धारक हनूमान्ने उसे पुनः रथरहित कर दिया और उसके ऊपर वायुके समान वेगशाली अपना रथ चढ़ा दिया ॥३०॥ जिससे रथको खींचनेवाले हाथियोंके पैरोसे चूर-चूर होकर उसने रणाङ्गणमें शीघ्र ही प्राण छोड़ दिये । अब हूँकारसे भी रहित हो गया ॥३१॥

तदनन्तर रावणका जम्बूमाली नामका प्रसिद्ध बलवान् पुत्र, अपने पक्षके लोगोंकी मृत्युसे क्रुपित हो हनूमान्के सामने खड़ा हुआ ॥३२॥ इसने खड़े होते ही, अर्धचन्द्र सदृश बाणके द्वारा हनूमान् की बानरचिह्नित ध्वजा छेद डाली ॥३३॥ तदनन्तर ध्वजाके छेदसे हर्षित हुए हनूमान्ने उसके धनुष और कवचको जीर्ण तृणके समान जर्जरता प्राप्त करा दी अर्थात् उसका धनुष और कवच दोनों ही तोड़ दिये ॥३४॥ तदनन्तर मन्दोदरीके पुत्र जम्बूमालीने तत्काल ही दूसरा मजदूत कवच धारण कर तीक्ष्ण बाणों द्वारा हनूमान्के वक्त्रस्थलपर प्रहार किया ॥३५॥ सो पहाड़के समान अत्यन्त धीर बुद्धिको धारण करनेवाले हनूमान्ने उन बाणोंसे ऐसे सुखका अनुभव किया मानो बाल नीलकमलके मुरझाये हुए नालोंके स्पर्शसे उत्पन्न हुए सुखका ही अनुभव कर रहा हो ॥३६॥ तदनन्तर हनूमान्ने पट्टीके चन्द्रमाके समान कुटिल बाणके द्वारा जम्बूमालीके रथमें जुते हुए महा उद्धत सौ सिंह छोड़ दिये अर्थात् एक ऐसा बाण चलाया कि उससे जम्बूमालीके रथमें जुते सौ सिंह छूट गये ॥३७॥ जिनके मुख दाढ़ीसे भयंकर थे तथा लाल-लाल आँखें चमक रही थीं ऐसे उन सिंहोंने उल्लङ्घन अपनी समस्त सेनाको विद्वलकर दिया ॥३८॥ उस सेनारूपी सागरके मध्यमें वे सिंह बड़ी-बड़ी तरङ्गोंके समान जान पड़ते थे अथवा अतिशय बलवान् क्रूर मगर-मच्छोंके समान दिखायी देते थे ॥३९॥ चमकते हुए विद्युद्-दण्डके समूहका आकार धारण करनेवाले उन सिंहोंने सेनारूपी मेवोंके समूहको अत्यन्त चोभ प्राप्त कराया था ॥४०॥ युद्धरूपी संसारचक्रके बीचमें सैनिकरूपी प्राणी, सिंहरूपी कर्मोंके द्वारा सब औरसे अत्यन्त दुःखी किये गये थे ॥४१॥ घोड़े, मन्दोन्मत्त हाथी और रथोंके सवार—सभी लोग विद्वल हो युद्ध सम्बन्धी कार्य छोड़ दर्शों दिशाओंमें भागने लगे ॥४२॥ तदनन्तर यथायोग्य रीतिसे सब सामन्तोंके भाग जानेपर हनूमान्ने कुछ दूर सामने स्थित रावणको देखा ॥४३॥ तदनन्तर वह अत्यन्त देदीप्यमान सिंहोंसे युक्त रथपर सवार हो बाण खींचकर रावणकी

दशास्यस्त्रासितं वीच्य निजं केसरिभिर्वल्म । समीपं चार्त्तनासुचुं कृतान्तमिव दुर्दरम् ॥४५॥
 चक्रे योद्धुमभिप्रायं यावत्सन्नाहतत्परः । तावन्महोदरोऽस्थान्ते संरम्भेण समुद्ययौ ॥४६॥
 महोदरस्य च वातेश्च वर्त्तते यावदाहवः । तावत्ते हरयः प्राज्ञैर्गृहीताः स्वामिभिः शनैः ॥४७॥
 वशीभूतेषु सिंहेषु जाता सन्तो महारूपः । वायुपुत्रं समुत्पेतुः समस्ता राक्षसध्वजाः ॥४८॥
 तथाप्यनिलसुनुस्तान् मुञ्चत शरसंहतीः । दधार मण्डलीभूतान् पतत्रिसचिवैः कृती ॥४९॥
 ते शिलीमुखसङ्घाताः प्रहितास्तस्य राक्षसैः । संयतस्य यथाऽऽकोशा नामवन्कम्पकारिणः ॥५०॥
 रक्षोभिर्घटितं दृष्ट्वा तैस्तमतिभूरिभिः । इमे वानरवर्गीणाः समराय समुद्ययुः ॥५१॥
 सुपेणो नलनीलो च प्रीतिङ्करो विराधितः । सन्त्रासको हरिकटिः सूर्यज्योतिर्महाबलः ॥५२॥
 जाम्बूनदसुताद्याश्च सिंहेश्वरवयुतैः रथैः । कृच्छ्राद्वाणसैन्यस्य निवारयितुमुद्यताः ॥५३॥
 तैः समापतितैः सैन्यं दशग्रीवस्य सर्वतः । परीपहैरिव ध्वस्तं महातुच्छधर्तं व्रतम् ॥५४॥
 आत्मीयानाकुलान् दृष्ट्वा युयुत्सुं च दशाननम् । आदित्यश्रवणो योद्धुमुद्गतो सुमहाबलः ॥५५॥
 दृष्ट्वा तमुद्गतं वीर उल्लसन् रणतेजसा । सुपेणादीनिमे प्रापुः साधारयितुमाकुलाः ॥५६॥
 इन्दुररिमज्यस्कन्दश्चन्द्राभो रतिवर्द्धनः । अङ्गोऽङ्गदोष्य सम्मेदः कुमुदः शशिमण्डलः ॥५७॥
 वलिश्चण्डतरङ्गश्च सारो रत्नजटी जयः । बेलाक्षेपी वसन्तश्च तथा कोलाहलादयः ॥५८॥
 ततस्तैः बहुबलचैन प्रवीराः पद्मपक्षिणः । लम्ना महाहर्षं कर्तुं शत्रुसामन्तदुःसहम् ॥५९॥

अथ दौडा ॥४४॥ अपनी सेनाको सिंहोंके द्वारा त्रासित तथा यमराजके समान दुर्घर हनुमान्को पास आया देख, कवच आदि धारण करनेमें तत्पर रावणने ज्योही युद्धका विचार किया त्योंही उसके पास बैठा महोदर क्रोधपूर्वक उठ खड़ा हुआ ॥४५-४६॥ इसपर जब तक महोदर और हनुमान्का युद्ध होता है तब तक वे छूटे हुए सिंह धीरे धीरे बुद्धिमान् स्वामियोंके द्वारा पकड़ लिये गये ॥४७॥ सिंहोंके वशीभूत होने पर जिनका तीव्र क्रोध बढ़ रहा था ऐसे समस्त राक्षस यद्यपि पवन पुत्र पर दृढ़ पड़े ॥४८॥ तथापि अतिशय कुशल हनुमान्ने, बाण समूहको छोड़ने वाले उन ससत् राक्षसोंको बाणरूपी मन्त्रियोंके द्वारा रोक लिया ॥४९॥ जिस प्रकार राक्षसों के द्वारा कहे हुए दुर्वचन संघीम मनुष्यके कम्पन उत्पन्न करने वाले नहीं होते वसी प्रकार राक्षसों के द्वारा छोड़े हुए बाणोंके समूह हनुमान्के कम्पन उत्पन्न करने वाले नहीं हुए अर्थात् धीर वीर हनुमान्, राक्षसोंके बाणोंसे कुछ भी विचलित नहीं हुआ ॥५०॥

तदनन्तर हनुमान्को बहुतसे राक्षसोंके द्वारा घिरा देख वानर पक्षके ये योद्धा युद्धके लिए उद्यत हुए ॥५१॥ सुपेण, वल, नील, प्रीतिङ्कर, विराधित, सन्त्रासक, हरिकटि, सूर्यज्योति, महाबल और जाम्बूनदके पुत्र आदि । ये सब सिंह, हाथी और घोड़ोंसे जुते हुए रथों पर सवार हो बड़ी कठिनायीसे रावणकी सेनाको रोकनेके लिए उद्यत हुए ॥५२-५३॥ जिसप्रकार किसी अत्यन्त तुच्छ पुरुषके द्वारा धारण किया हुआ श्रत परिवर्द्धके द्वारा ध्वस्त—चष्ट—भ्रष्ट हो जाता है वसी प्रकार सब ओरसे आते हुए वानर पक्षके योद्धाओंसे रावणकी सेना ध्वस्त हो गई ॥५४॥ अपने पक्षके लोगोंको व्याकुल देख रावण युद्ध करनेका अभिलाषी हुआ, सो उसे देख महाबलवान् भासुकर्ण (कुम्भकर्ण) युद्ध करनेके लिए उठा ॥५५॥ रणके तेजसे देदीप्यमान वीर भासुकर्णको उठा देख, ये लोग सुपेण आदिको सहारा देनेके लिए पहुँचे ॥५६॥ चन्द्ररश्मि, जयस्कन्द, चन्द्राभ, रतिवर्द्धन, अङ्ग, अङ्गद, संमेद, कुमुद, चन्द्रमण्डल, वलि, चण्डतरङ्ग, सार, रत्नजटी, जय, बेलाक्षेपी, वसन्त, तथा कोलाहल आदि ॥५७-५८॥ ये सब राम पक्षके अत्यन्त बलवान् योद्धा,

कुट्टेन कुम्भकर्णेन ततस्ते रणपामनाः । विद्यया स्वापिताः सर्वे दर्शनावरणी जया^१ ॥६०॥
 निद्रावृणितनेत्राणां तेषां शब्दावसङ्गिनाम् । करेभ्यः सायकाः पेतुः शिथिलेभ्यः समन्ततः ॥६१॥
 निद्राविद्राणसङ्ग्रामानेतानव्यक्तचेतनान् । दृष्ट्वाभ्युद्यत सुग्रीवो विद्यां द्वाकप्रतिबोधिनाम् ॥६२॥
 प्रतिबुद्धास्तथा तेभ्य सुतरां जाततेजसः । हनून्मदादयो योद्धुं प्रवृत्ताः सङ्कुलं परम् ॥६३॥
 शास्त्रिकेसरिचिह्नानां बलमप्यर्थपुष्कलम् । छत्रासिपत्रसङ्कीर्णमच्छिन्नरणलालसम् ॥६४॥
 स्पन्दमानं समालोक्य क्षुब्धसागरसन्निभम् । अवस्थां च^२ स्ववाहिन्याः परिप्राप्तमसुन्दरीम् ॥६५॥
^३उत्सेहे रावणो योद्धुः प्रणम्य च तमिन्द्रजित् । कृताञ्जलिरिदं वाक्यममापत महाद्युतिः ॥६६॥
 तात तात न ते युक्तं सम्प्राप्तं मयि विद्यति । निष्फलत्वं हि मे जन्म सत्येवं प्रतिपद्यते ॥६७॥
 नखच्छेद्ये तूष्णि किं वा परशोरुचिता गतिः । ततो भव सुविश्रब्धः क्रोम्येप तवेप्सितम् ॥६८॥
 ह्ययुक्त्वा सुविश्रान्तमाह्लादं गिरिसन्निभम् । त्रैलोक्यकण्टकामिष्यं गजेन्द्रं^४ परमप्रियम् ॥६९॥
 गृहीतादरसर्वस्वो महासचिवसङ्गतः । क्रद्धथास्त्रण्डलसङ्काशः प्रवीरो योद्धुमुद्यतः ॥७०॥
 कपिभ्वजबल तेन विविधायुधसङ्कटम् । अस्तमुत्थितं मात्रेण महावीर्येण मानिना ॥७१॥
 किष्किन्धाधिपतेः सैन्ये न सोऽस्ति कपिकेतनः । यो न शक्तजिता विद्रः शरैराकर्णसंहितैः ॥७२॥
 किमर्थं शक्तजिज्ञाषं शक्नो बह्मिर्यं नु किम् । उतापमपरो भानुरिति वाचः समुद्ययुः ॥७३॥

ऐसा महायुद्ध करने लगे कि जो शत्रु-सामन्तांको अत्यन्त दुःसह था ॥५६॥ तदनन्तर रणको खाजसे युक्त उन सब वीरोको क्रोधसे भरे भानुकर्णने निद्रा नामा विद्याके द्वारा सुला दिया ॥६०॥ तत्पश्चात् निद्रासे जिनके नेत्र धूम रहे थे ऐसे शत्रुओंको धारण करनेवाले उन वीरोके हाथ सब ओरसे शिथिल पड़ गये तथा उनसे अस्त्र-शस्त्र नीचे गिरने लगे ॥६१॥ निद्राके कारण जिनका युद्ध बन्द हो गया था तथा जिनकी चेतना अव्यक्त हो चुकी थी ऐसे उन सबको देख सुग्रीवने श्रीश्री ही प्रतिबोधिनी नामकी विद्या छोड़ी ॥६२॥ तदनन्तर उस विद्याके प्रभावसे प्रतिबुद्धि होनेके कारण जिनका तेज अत्यन्त बढ़ गया था ऐसे हनूमान् आदि वीर अत्यन्त भयङ्कर युद्ध करनेके लिए प्रवृत्त हुए ॥६३॥ वानर वंशियों की वह सेना बहुत बड़ी थी, छत्र, खड्ग तथा बाहुनोंसे व्याप्त थी, उसकी युद्ध की लालसा समाप्त नहीं हुई थी, उत्तरोत्तर स्पर्धा करनेवाली थी, और कोभ को प्राप्त हुए सागरके समान ज्ञान पड़ती थी । इसके विपरीत रावणकी सेनाकी दशा अत्यन्त अशोभनीय हो रही थी सो वानर वंशियोंकी सेना तथा अपनी सेनाकी दशा देख रावण युद्धके लिये उत्साही हुआ सो महावीरिका धारक इन्द्रजित् प्रणाम कर तथा हाथ जोड़कर यह कहने लगा कि ॥६४-६६॥ हे तात ! हे तात ! मेरे रहते हुए इस समय आपका युद्धके लिए तत्पर होना उचित नहीं है क्योंकि ऐसा होने पर मेरा जन्म निष्फलताको प्राप्त होता है ॥६७॥ अरे ! जो वृण नखके द्वारा छेदा जा सकता है वहाँ परशुका प्रयोग करना क्या उचित है ? इसलिए आप निश्चिन्त रहिये आपका मनोरथ मैं पूर्ण करता हूँ ॥६८॥ इतना कहकर अत्यधिक प्रसन्नतासे भरा इन्द्रजित् पर्वतके समान त्रैलोक्यकण्टक नामक अपने परम प्रिय गजेन्द्र पर सवार होकर युद्धके लिये उद्यत हुआ । उस समय जिसने आदर रूपी सर्वस्व ग्रहण किया था, ऐसा वह इन्द्रजित् महामन्त्रियोंसे सहित था, सम्पदासे इन्द्रके समान ज्ञान पड़ता था तथा अतिशय वीर-वीर था ॥६९-७०॥ उस महाबलवान् मानी इन्द्रजित्ने उठते ही नाना शस्त्रोंसे भरी वानरांकी सेना क्षणमात्रमे प्रसन्न ली—दवा दी ॥७१॥ सुग्रीवकी सेनामे ऐसा एक भी वानर नहीं था जिसे इन्द्रजित्ने कान तक खिंचे हुए बाणोंसे घायल नहीं किया हो ॥७२॥ उस समय लोगोंके मुखसे

१. यया म०, यथा क०, यथा ज० । २. स वाहिन्याः म० । ३. उत्सेहे म० । ४. परमं प्रियः म० ।
 ५. मस्थित-म० । ६. बह्मिर्यं म० ।

प्रस्थमानं निजं सैन्यं वीक्ष्य शक्रजिता ततः । सुग्रीवः स्वयमुच्चातः प्रभामण्डल एव च ॥७४॥
तद्वदनामयूद्धमन्योन्याह्वानसङ्कुलम् । शस्त्रान्वकारिताकाशमनपेक्षितजीवितम् ॥७५॥
'अश्वैश्वाः समं लग्नाः नागा नागै रथा रथैः । निजनाथानुरागेण महोत्साहो भटा भटैः ॥७६॥
जगादेन्द्रजितः क्रुद्धः किष्किन्धेशं पुरः स्थितम् । अपूर्वशस्त्रभूतेन स्वरेण गगनस्पृशा ॥७७॥
दशस्थशासनं त्यक्त्वा शाखाभृगपशो त्वया । क्वाभुना गम्यते पाप मयि कोपमुपागते ॥७८॥
इन्दीवरनिभेनाथ सायकेन तवामुना । शिरश्छिन्नदमि संरक्षां कुरुतां चित्तिगोचरी ॥७९॥
किष्किन्धेशस्ततोऽब्रुवत् किमेमिर्गजितैर्मुधा । मानश्रद्धमिदं भग्नं तच्च परय मयाभुना ॥८०॥
इत्युक्ते कोपसम्भारं वहन्निन्द्रजितोऽब्रुवत् । चापमास्फालयन्नस्य समीपत्वमुपागतः ॥८१॥
शशिमण्डलसङ्काशच्छन्नछायाजुसेवितः । सुमोच शरसङ्घातं किष्किन्धाधिपतिं प्रति ॥८२॥
सोऽप्याकर्णसमाकुट्टितम् बाणाज्जादोपलक्षितान् । निजरक्षामहादक्षशिक्षेपेन्द्रजितं प्रति ॥८३॥
तेन बाणसमूहेन सन्ततेन निरन्तरम् । जातं नमस्तत् सर्वं मूर्तियुक्तामिवापरम् ॥८४॥
मेघवाहनवीरेण प्रभामण्डलसुन्दरः । आहूतो वज्रनक्रश्च विराधितमहीभृता ॥८५॥
विराधितनरेन्द्रेण वज्रनक्रनरोत्तमः । राजन् वक्षसि चक्रेण भासुरेणाभिपातितः ॥८६॥
ताडितो वज्रनक्रेण सोऽपि चक्रेण वक्षसि । विना हि प्रतिदानेन महती जायते त्रपरा ॥८७॥
चक्रसत्ताहनिपेजन्मवह्निकणोत्करैः । चक्रदुल्कास्फुल्लिङ्गौघपिद्धतां गगनं गतम् ॥८८॥

इसप्रकारके वचन निकल रहे थे कि—यह इन्द्रजित् नहीं है ? किन्तु इन्द्र है ? अथवा अग्निकुमार देव है, अथवा कोई दूसरा सूर्य ही उदित हुआ है ॥७३॥ तदनन्तर अपनी सेनाको इन्द्रजीतूके द्वारा दवी देख स्वयं सुग्रीव और भामण्डल युद्धके लिए उठे ॥७४॥ तत्पश्चात् उनके योद्धाओंसे ऐसा युद्ध हुआ कि जो परस्परके बुलानेके शब्दसे व्याप्त था, शस्त्रोंके द्वारा जिससे आकाश अन्धकारयुक्त हो रहा था और जिससे प्राणोंकी अपेक्षा नहीं थी ॥७५॥ बोढ़े बोढ़ोसे, हाथी हाथियोंसे, रथ रथोंसे और अपने स्वामीके अनुरागके कारण महोत्साहसे युक्त पैदल सैनिक पैदल सैनिकोंसे भिड़ गये ॥७६॥

अथानन्तर क्रोधसे भरा इन्द्रजित् सामने खड़े हुए सुग्रीवको लक्ष्य कर अपूर्व शस्त्रभूत गगनस्पर्शी स्वरसे बोला ॥७७॥ कि अरे ! पशु तुल्य नीच बानर ! पापी ! रावणकी आज्ञा छोड़ कर अब तू मेरे कुपित रहते हुए कहाँ जाता है ? ॥७८॥ आज मैं इस नील कमलके समान श्याम तलवारसे तेरा मस्तक काटता हूँ, भूमिगोचरी राम लक्ष्मण तेरी रक्षा करे ॥७९॥ तदनन्तर सुग्रीवने कहा कि इन व्यर्थकी गर्जनाओंसे क्या लाभ है ? देख तेरा मान रूपी शिखर मैं अभी ही भग्न करता हूँ ॥८०॥ इतना कहते ही क्रोधके भारको धारण करने वाला इन्द्रजित् अद्भुत रूपसे धनुषका आस्फालन करता हुआ सुग्रीवके समीप पहुँचा ॥८१॥ तत्पश्चात् इधर चन्द्रमण्डलके समान छत्र की छायासे सेवित इन्द्रजित्ने सुग्रीवको लक्ष्य कर बाणोंका समूह छोड़ा ॥८२॥ उधर अपनी रक्षा करनेमें अत्यन्त चतुर सुग्रीवने भी कान तक खिचे तथा शब्दसे युक्त बाण इन्द्रजित् की ओर छोड़े ॥८३॥ उन विस्तृत बाणोंके समूहसे निरन्तर व्याप्त हुआ समस्त आकाश ऐसा हो गया मानो मूर्तिधारी दूसरा ही आकाश हो ॥८४॥ उधरसे वीर मेघवाहनेन भामण्डलको ललकारा और इधरसे राजा विराधितने वज्रनक्रको पुकारा ॥८५॥ गौतम स्वासी श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन ! राजा विराधितने वज्रनक्र राजाकी छाती पर देदीप्यमान चक्रकी चोट देकर उसे गिरा दिया ॥८६॥ इसके बदले वज्रनक्रने भी संभलकर विराधितकी छाती पर चक्रका प्रहार किया सो ठीक ही है क्योंकि बदला चुकाये बिना बड़ी लज्जा उत्पन्न होती है ॥८७॥ उस समय

१. अश्वैरथैः म० । २. महोत्साहमयः म० । ३. समाकुलम् म० । ४. निजरक्षमहारम् म० । ५. राजवक्षसि म० ।

लङ्कानाथस्य पुत्रेण निरुद्धः सूर्यनन्दनः । कृतः सङ्ग्रामशौण्डेन सङ्ग्रामादनिवर्तकः ॥८६॥
 तेनापि तस्य वज्रेण सर्वशस्त्रं निराकृतम् । पुण्यानुकूलितानां हि नैरन्तर्यं न जायते ॥८७॥
 अवतीर्य ततः क्रुद्धो नागादिन्द्रजितो द्रुतम् । सिंहस्यन्दनमारुह्य पिङ्गरीकृतपुष्करम् ॥८८॥
 समाहितमतिर्नागाविद्यास्त्रगतिपण्डितः । योद्धुमभ्युद्यतो विभ्रद्सत्त्वविवाहवे ॥८९॥
 अस्त्रं घनौघनिर्घोषं सम्यगुच्य सवारुणम् । दिशः किङ्किण्धराजस्य चकारालोकवर्जिताः ॥९०॥
 तेनापि पवनारोहेण कृतछत्रध्वजादिना । तदस्त्रं वारुणं क्वापि नीतं तूलोत्करोपम् ॥९१॥
 घनवाहनवीरोऽपि प्रभामण्डलभृष्टतः । आग्नेयास्त्रनियोगेन चकार धनुर्निधनम् ॥९२॥
 तस्य स्फुलिङ्गसंसर्गादन्येषामपि चापिनाम् । भूभोद्गारानमुच्चन्त धनुषि भयवीक्षितम् ॥९३॥
 नितान्तबहुयोद्धृणां जीवितप्रसनादिव । प्राप्तानां परमाजीर्णं धनुषां ते तदामवन् ॥९४॥
 वारुणेन ततोऽख्येण त्वरितं जनकालजः । आग्नेयास्त्रं निराचक्रे स्वचक्रे कृतपालनः ॥९५॥
 ततो मन्दोदरीसूनुश्चक्रे त रथवर्जितम् । तथाविधमहासत्त्वमाकुलत्वविनर्जितम् ॥९६॥
 प्रयोगकुशलश्चास्त्रमस्त्रं तामसमक्षिपत् । तेनान्धकारितं सैन्धवं सर्वं जनकजन्मनः ॥९७॥
 ३ त नाजानाद् द्विप न चमं नास्मीयं न च शात्रवम् । अन्धध्वान्तपरिच्छन्नो मूच्छांमिव समागतः ॥९८॥

चक्र और कवचकी टक्करसे जो आग्निके कण उत्पन्न हुए थे, उनके समूहसे आकाश इस प्रकार पीला हो गया मानो चमकती हुई उल्काओंके तिलगोंके समूहसे ही पीला हो रहा हो ॥८८॥ युद्ध-निपुण लङ्कानाथके पुत्र इन्द्रजित्ने सुग्रीवको निःशस्त्र कर दिया फिर भी वह प्रभामसे पीछे नहीं हटा ॥८९॥ प्रत्युत इसके विपरीत सुग्रीवने भी वज्रके द्वारा इन्द्रजित्के सर्वशस्त्र दूर कर दिये सो ठीक ही है क्योंकि पुण्यात्मा जीवोंके किसी कार्यमें अन्तर नहीं पड़ता ॥९०॥ तदनन्तर क्रोध से भरा इन्द्रजित् शीघ्र ही हाथीसे उतर कर आकाशको पीला करने वाले सिंहके रथपर आरुढ हुआ ॥९१॥ तत्पश्चात् जिसकी बुद्धि स्थिर थी, जो नाना विद्यामय अस्त्र-शस्त्रोंके चलायेमें निपुण था और जो युद्धमें मानो नवीन रस धारण कर रहा था ऐसा इन्द्रजित् मायामय युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥९२॥ प्रथम ही उसने मेघ-समूहके समान गर्जना करने वाला वारुण अस्त्र छोड़ कर सुग्रीवकी दिशाओंको प्रकाशसे रहित कर दिया ॥९३॥ इसके बदले सुग्रीवने भी छत्र तथा ध्वजा आदिको छेदने वाला पवन वाण चलाया जिससे इन्द्रजित्का वारुण अस्त्र रुईके समूहके समान कहीं चला गया ॥९४॥

उधर वीर मेघवाहनने भी आग्नेय वाण चलाकर राजा भामण्डलके धनुषको इन्धन बना दिया अर्थात् जला दिया ॥९५॥ उस धनुषके तिलगोंके सम्बन्धसे अन्य धनुष धारियोंके धनुष भी धूम छोड़ने लगे जिसे सब सेनाने बड़े भयसे देखा ॥९६॥ उन धनुषोंने अनेक योद्धाओंके प्राण ग्रसित किये थे इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो उन्हें अत्यधिक अजीर्ण ही हो गया हो ॥९७॥ तदनन्तर अपने चक्र—सेनाकी रक्षा करते हुए भामण्डलने शीघ्र ही वारुण अस्त्र छोड़ कर आग्नेय अस्त्रका निराकरण कर दिया ॥९८॥ तत्पश्चात् मन्दोदरीके पुत्र मेघवाहनने उस प्रकारके महापराक्रमी एवं आकुलतासे रहित भामण्डलको रथ रहित कर दिया अर्थात् उसका रथ तोड़ डाला ॥९९॥ यही नहीं प्रयोग करनेसे कुशल मेघवाहनने सुन्दर तामस वाण भी चलाया जिससे भामण्डलकी समस्त सेना अन्धकारसे युक्त हो गई ॥१००॥ वह उस समय अन्धकारके कारण न अपने हाथी तथा पृथिवीको जान पाता था, न शत्रु सम्बन्धी हाथी तथा पृथिवी ही को जान पाता था । गाढ़ अन्धकारसे आच्छादित हुआ वह मानो मूच्छाको ही प्राप्त हो रहा था

अन्धीभूतो दशास्यस्य सुतेन जनकात्मजः । विमुक्तविषधूमौघैः वेष्टितो नागसायकैः ॥१०२॥
 तै रसौ व्याहसर्वाङ्गो विस्फुरद्भोगमासुरैः । चन्दनद्रुमसङ्काशः पपात वसुधातले ॥१०३॥
 एवमिन्द्रजितेनापि कृता किष्किन्धमृशूतः । अवस्थाध्वान्तनागासङ्घस्यपारकारिणा ॥१०४॥
 ततो विभीषणो विद्वान् विद्यास्त्ररणवस्तुनि । कृत्वा करपुटं भूमिं बभापे पद्मलक्ष्मणौ ॥१०५॥
 पद्म पद्म महाबाहो वीर लक्ष्मण लक्ष्मण । पुताः पश्य दिशश्छद्वाः शरैरिन्द्रजितेरितैः ॥१०६॥
 वियत्तलं धरित्री च तस्य वाणैर्निरन्तरैः । उत्पातभूतनागामैरातेनेज्यन्तदुःखदैः ॥१०७॥
 कृतौ सुग्रीववैदेहौ निरसौ नागसायकैः । बद्धौ निपातितौ भूमौ मयजासुतनिःसृतैः ॥१०८॥
 उदारै विजिते देवै श्रीभामण्डलपण्डितैः । वीरै सुग्रीवराजे च बहुविद्याधराधिपैः ॥१०९॥
 सङ्घातमृत्युमस्माकमासन्नं बिद्धि रावच । एतौ हि नायकावुग्रावस्मत्पत्न्यस्य केवलौ ॥११०॥
 एतामनायकीभूतं विद्याधरवरुधिनीम् । पलायनोद्यतां पश्य समाश्रित्य दिशो दृश ॥१११॥
 आदित्यश्रवणेनासौ पश्य मारुतनन्दनः । विजित्य समुहायुद्धे कराम्यां वद्धविग्रहः ॥११२॥
 शरजर्जरितच्छत्रनेतृकामुक्ककङ्कटः । गृहीतः प्रसभं वीरः पुनश्च ध्वजपुङ्गवः ॥११३॥
 यावत्सुग्रीवभाष्यैर्न पतितो धरणीतले । न सम्भावयते क्षिप्रं रावणो रणकोविदः ॥११४॥
 तावदेतौ स्वयं गत्वा निश्चेदावानयास्यहम् । त्वं साधारण्यं निर्वाधामिमां खेचरवाहिनीम् ॥११५॥
 यावदेवमसौ पद्मं लक्ष्मणं चाभिभाषते । सुनारातनयस्तावद् गत्वा स्वैरमलक्षितः ॥११६॥

॥१०१॥ जव भामण्डल उस तामसचाणसे अन्धा हो रहा था तब मेघवाहनने उसे विपरीत धूम का समूह छोड़ने वाले नागवाणोंसे वेष्टित कर लिया ॥१०२॥ उठते हुए फनोसे सुशोभित उन नागोंसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था और इसीलिए जो चन्दन वृत्तके समान जान पड़ता था ऐसा भामण्डल पृथिवी पर गिर पड़ा ॥१०३॥ इसी प्रकार तामस और नाग पाश इन दो अस्त्रों को चलाते बाले इन्द्रजितने भी सुग्रीवकी दशाकी अर्थात् उसे तामसास्त्रसे अन्धा कर नागपाशसे बाँध लिया ॥१०४॥

तदनन्तर विद्यामय शस्त्रोंसे युद्ध करनेमें कुशल विभीषणने हाथ जोड़ भस्त्रफसे लगा राम-लक्ष्मणसे कहा कि हे महाबाहो ! राम ! राम ! हे वीर ! लक्ष्मण ! लक्ष्मण ! देखो, ये दिशाएँ इन्द्रजित् के द्वारा छोड़े हुए वाणोंसे आच्छादित हो रही हैं ॥१०५-१०६॥ उत्पातकारी नागोंके समान आभावाले, अत्यन्त दुःखदायी उसके निरन्तर वाणोंसे आकाश और पृथिवी व्याप्त हो रही है ॥१०७॥ मन्दोदरीके पुत्रोंने सुग्रीव और भामण्डलको अस्त्र रहित कर दिया है, तथा अपने द्वारा छोड़े हुए नाग वाणोंसे उन्हें बाँधकर पृथिवी पर गिरा दिया है ॥१०८॥ हे देव ! अतिशय चतुर भामण्डल और अनेक विद्याधरोंके राजा वीर सुग्रीवके पराजित होने पर हे रावच ! समझ लीजिये कि हम लोगोंकी सामूहिक मृत्यु निकटवर्ती है, क्योंकि ये दोनों ही हमारे पक्षके प्रमुख नायक हैं ॥१०९-११०॥ इधर देखो, यह विद्याधरोंकी सेना नायकसे रहित होनेके कारण दशों दिशाओंमें भागनेके लिए उद्यत हो रही है ॥१११॥ उधर देखो कुम्भकर्णने महायुद्धमें हनूमान्को जीतकर अपने हाथोंसे उसे कैदकर रक्खा है ॥११२॥ जिसका छत्र, ध्वज, धनुष और कवच वाणोंसे जर्जर कर दिया गया है, ऐसा यह वीर हनूमान् वलात् कैद किया गया है ॥११३॥ रण-विशारद रावणका पुत्र, जब तक पृथिवी पर पड़े हुए सुग्रीव और भामण्डलके समीप शीघ्रतासे नहीं पहुँचता है तब तक निश्चेष्ट पड़े हुए इन दोनोंको मैं स्वयं जाकर ले आता हूँ, तुम नायक-रहित इस विद्याधर सेनाको आश्रय दो ॥११४-११५॥ इस तरह जब तक विभीषण राम और लक्ष्मण

१ म पुष्पके त्वेवं पाठः 'सर्वाङ्गे विस्फुरद्भोगमासुरैश्चन्दनद्रुमः । यथा तथायं तैर्युक्तः पपात वसुधातले ॥' २. निरस्तौ म० । ३. मन्दोदरीपुत्र । ४. देवे म० । ५. भामण्डली ।

अश्वरं भातुकर्णस्य परिधानममुञ्चत । हीमाराकुलितो जातः सेतुद्वरणविह्वलः ॥११०॥
 यावद्वासः समाधानपरोऽसौ राक्षसोऽभवत् । भुजपाशोदरादस्य निःसृतस्तावदग्निलिः ॥१११॥
 नवो बद्धो यथा पक्षी निर्गतः पञ्चरोदरात् । आसीत्सुचकितो नातिः प्रत्युग्रशुतिसङ्गतः ॥११२॥
 ततो मुदितसम्प्रीती विमानशिखरस्थितौ । हनूमदद्वादौ वीरौ रेजतुः सुरसन्निभौ ॥११३॥
 ताभ्यामहङ्गुमारणं चन्द्रोदरसुतेन च । सम लक्ष्मीधरः सेनां समारवायसिन्धुं स्थितः ॥११४॥
 मन्दोदरीसुत तावदभियाय विभीषणः । स पितृव्यं समालोचय चिन्तामेतामुपगतः ॥११५॥
 तावत्स्यास्य च को भेदो न्यायो यदि निरीक्ष्यते । ततोऽभिमुखमेतस्य नावस्थानुं प्रशस्यते ॥११६॥
 नागपाशैरिमौ बद्धौ मृत्युं यातौ विशंसयम् । पुतावच्चेह कर्तव्यं युक्तं तदवसर्पणम् ॥११७॥
 इति सञ्चिन्त्य निर्याताविन्द्रजिन्मेघवाहनौ । गहनाहवमेदिन्याः कृतार्थवाभिमानिनौ ॥११८॥
 अन्तर्द्धौ सेविते ताभ्यां सम्भ्रान्तात्मा विभीषणः । त्रिशूलहेतिरामुक्तकङ्कटस्तस्त्वेक्षणः ॥११९॥
 उत्तार्य स्वर्थाद्वीरस्तपोर्विकम्पदेहयोः । अवस्थान्तरमद्राक्षीबागसायकनिर्मितम् ॥१२०॥
 ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत् पञ्चनाभं विचक्षणः । श्रवतां नाथ यत्रेमौ महाविद्याधराधिपौ ॥१२१॥
 अत्युज्जितौ महासैन्यौ महाशक्तिसमन्वितौ । श्रीभामण्डलसुग्रीवौ कीर्तावन्नविमुक्तात्मा ॥१२२॥
 रावणस्य कुमाराभ्यां स्मृतायुरगमागणैः । तत्र त्वया मया वापि साध्यते किं दशाननः ॥१२३॥
 ततः पुण्योदयात्पन्नः स्मृत्वा लक्ष्मणमग्रवीत् । सदा स्मर वर लब्धं योग्युपद्रवनाशने ॥१२४॥

से कहता है तब तक सुतारके पुत्र अङ्गदने छिपे-छिपे जाकर कुम्भकर्णका अधोवस्त्र खोल दिया जिससे वह लज्जासे व्याकुल हो वक्त्रके संभालनेमें लग गया ॥११६-११७॥ जब तक कुम्भकर्ण वस्त्रके संभालनेमें लगता है तब तक हनूमान उसकी भुजपाशके मध्यसे निकल भागा ॥११८॥ जिस प्रकार नया बंधा पक्षी पिजड़ेके मध्यसे निकलने पर चकित हो जाता है, उसी प्रकार हनूमान भी कुम्भकर्णके भुजबन्धनसे निकलने पर चकित तथा खप तेजसे युक्त हो गया ॥११९॥ तदनन्तर प्रसन्नता और संतोषसे युक्त वीर हनूमान और अङ्गद विमानके अग्रभाग पर बैठ देवोंके समान सुशोभित होने लगे ॥१२०॥ उधर अंगदके भाई अंग और चन्द्रोदरके पुत्र विराधितके साथ लक्ष्मण, विद्याधरोंकी सेनाकी धैर्य बंधानेके लिए जा डटे ॥१२१॥ अब विभीषण, मन्दोदरी के पुत्र इन्द्रजित्के सामने गया सो वह काकाको देख इस चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥१२२॥ कि यदि न्यायसे देखा जाय तो पितामे और इससे क्या भेद है ? इसलिए इसके सम्मुख खड़ा रहना अच्छा नहीं है ॥१२३॥ ये सुग्रीव और विभीषण नागपाशसे बंधे हैं सो निःसन्देह मृत्युको प्राप्त हो चुके हैं, इसलिए इस समय यहाँसे चला जाना ही उचित है ॥१२४॥ ऐसा विचार कर कृतकृत्यताके अहंकारसे भरे इन्द्रजित् और मेघवाहन दोनों ही युद्धभूमिसे बाहर निकल गये ॥१२५॥ उन दोनोंके अन्तर्हित हो जाने पर जिसकी आत्मा घबड़ा रही थी, जो त्रिशूल नामक शस्त्र धारण कर रहा था, जिसने कवच पहिन रखा था, तथा जिसके नेत्र अत्यन्त चञ्चल थे ऐसा वीर विभीषण अपने रथसे उतर कर वहाँ गया जहाँ सुग्रीव और भामण्डल निश्छेद पड़े हुए थे । वहाँ जाकर उसने नागपाशसे निर्मित दोनोंकी चिन्तनीय दशा देखी ॥१२६-१२७॥

तदनन्तर बुद्धिमान् लक्ष्मणने रामसे कहा कि हे नाथ ! सुनिये, जहाँ वे महाविद्याधरोके स्वामी, अतिशय बलवान्, बड़ी-बड़ी सेनाओंसे सहित और महाशक्तिसे सम्पन्न ये भामण्डल और सुग्रीव भी रावणके पुत्रों द्वारा अस्त्र रहित अवस्थाको प्राप्त हो नागपाशसे बंध लिये गये हैं वहाँ क्या तुम्हारे या हमारे द्वारा रावण जीता जा सकता है ? ॥१२८-१२९॥ तब पुण्योदयसे स्मरण कर रामने लक्ष्मणसे कहा कि भाई ! उस समय देशभूषण-कुलभूषण सुनिर्वाको उपसर्ग दूर

महालोचनदेवस्य तदभिष्याचमात्रतः । सुखावस्थस्य सहसा सिंहासनमकम्पत ॥१३२॥
 अलोचनविधनेत्रेण ततो विज्ञाय सम्भ्रमी । विद्याभ्यां प्राहिणोद्युक्त चिन्तावेगं निजं सुरम् ॥१३३॥
 गत्वा कथित स क्षेमः सन्देशः सादरं सुरः । ताम्यामुद्धे ददौ विधे परिवारसमन्विते ॥१३४॥
 १सैह पयावदातस्य यानमर्पयद्भुतम् । समुद्योतितदिक्चक्र सौमित्राय च गारुडम् ॥१३५॥
 २विद्येसं प्राप्य सम्मान्य धीरौ चिन्तागतिमुदा । पृष्ठवार्तौ जिनेन्द्राणां पूजां तौ चक्रतुः परम् ॥१३६॥
 पर साधुप्रसादं च प्रस्तावे सङ्गतोदयम् । सशसुसुसुदोदारगुणग्रहणतः परौ ॥१३७॥
 ३अद्राष्टां च सुरास्त्राणि भासुराणि सहस्रशः वारुणास्त्रिमरुत्यष्टिप्रभृतीनि सुविभ्रमौ ॥१३८॥
 चन्द्रादित्यसमे छत्रे चारुचामरमण्डिते । रत्नानि च प्रदत्तानि पिहितानि निजौजसा ॥१३९॥
 गदाप्रहरणं विद्युद्वज्रा लघमीधर शिवा । हलं समुसलं पद्म दैत्यानां मयकारणम् ॥१४०॥
 महिमानं परं प्राप्य ताम्नां सम्मदसङ्गतः । आशीशतानि दत्त्वासौ गतो देवस्त्रिविष्टपम् ॥१४१॥

मन्दाक्रान्तावृत्तम्

धर्मस्यैतद्विधियुक्तकृतस्यानवद्यस्य धीरैर्ज्ञेयं स्तुत्यं फलमनुपमं युक्तकालोपजातम् ।
 यत्सम्प्राप्य प्रमदकलिताः दूरमुक्तोपसर्गाः सञ्जायन्ते स्वपरकुशलं कर्तुमुदभूतवीर्याः ॥१४२॥

करने पर हमलोगोंको जो वर प्राप्त हुआ था उसका स्मरण करो ॥१३१॥ उसी समय रामके स्मरण मात्रसे सुखसे बैठे हुए महालोचन नामक गरुडेन्द्रका सिंहासन सहसा कम्पायमान हुआ ॥१३२॥ तदनन्तर अर्धविज्ञान रूपी नेत्रके द्वारा सब समाचार जान कर गरुडेन्द्रने श्रीश्री ही दो विद्याओं के साथ अपना चिन्तावेग नामका देव भेजा ॥१३३॥ वहाँ जाकर जिसने आदरके साथ कुशल संदेश सुनाया था ऐसे उस देवने राम-लक्ष्मणके लिए परिवारसे सहित दो प्रशस्त विद्याएँ दी ॥१३४॥ रामके लिए तो आश्चर्य उत्पन्न करने वाली सिंहवाहिनी विद्या और लक्ष्मणके लिए दिक्समूहको देदीप्यमान करने वाली गरुडवाहिनी विद्या दी ॥१३५॥ धीर वीर राम-लक्ष्मणने, दोनों विद्याएँ प्राप्तकर चिन्तागति देवका बड़ा सम्मान किया, उससे कुशल समाचार पूछा और तदनन्तर जिनेन्द्रदेवकी उत्तम पूजा की ॥१३६॥ उत्तम गुणोंके ग्रहण करनेमें तत्पर रहनेवाले राम-लक्ष्मणने योग्य अवसरपर प्राप्त हुए गरुडेन्द्रके उस उत्तम प्रसादकी वड़े हर्षसे स्तुतिकी प्रशंसा की ॥१३७॥ उत्तम शोभाको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मणने उसी समय वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र तथा वायव्यास्त्र आदि हजारों देवोपनीत देदीप्यमान शस्त्र सामने खड़े देखे अर्थात् उस देवने वे सब शस्त्र उन्हें दिये ॥१३८॥ सुन्दर चमरोसे सुशोभित चन्द्रमा और सूर्यके समान छत्र तथा अपनी कान्तिसे आच्छादित अनेक रत्न भी उस देवने प्रदान किये ॥१३९॥ विद्युद्वज्र नामक गदा लक्ष्मणको प्राप्त हुई और दैत्योंको भय उत्पन्न करनेवाले हल तथा मुसल नामक शस्त्र रामको प्राप्त हुए ॥१४०॥ इस प्रकार वह देव राम-लक्ष्मणके साथ हर्षपूर्वक मिलकर तथा परम महिमाको प्राप्तकर उन्हें सैकड़ों आशीर्वाद देता हुआ वह देव अपने स्थानको चला गया ॥१४१॥

गौतम स्वामी राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! जो योग्य समय पर प्रशंसनीय एवं अनुपम फलकी प्राप्ति होती है वह विधिपूर्वक किये हुए निर्दोष धर्मका ही फल है ऐसा धीर वीर मनुष्योंको जानना चाहिये । धर्मसे वह फल प्राप्त होता है जिसे पाकर मनुष्य उत्तम हर्षसे युक्त होते हैं, उनके उपसर्ग दूरसे ही छूट जाते हैं और वे महाशक्तिके सम्पन्न हो स्वपरका

आस्तां तावन्मनुजजनिताः^१ सम्पदः काञ्चितानां यच्छ्रन्तीष्टादधिकमतुलं वस्तु नाकश्चितोऽपि ।
तस्मात्पुण्यं कुरुत सततं हे जनाः सौख्यकांक्षाः येनानेकं रविसमरुचः प्राप्नुताश्चर्ययोगम् ॥१७३॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे विद्यालामो नाम षष्ठितमं पर्व ॥६०॥

कल्याण करनेमें समर्थ होते हैं ॥१४२॥ अथवा मनुष्य पर्यायमे उत्पन्न होनेवाली सम्पदाओंकी बात दूर रहे, स्वर्ग सम्बन्धी सम्पदाएँ भी इसे इच्छासे भी अधिक अनुपम सामग्री प्रदान करती है । इसलिए सुखकी इच्छा रखनेवाले हे भण्यजनो ! निरन्तर पुण्य करो जिससे सूर्यके समान कान्तिके धारक होते हुए तुम अनेक आश्चर्यकारी वस्तुओंके संयोगको प्राप्त हो सको ॥१४३॥

इत प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राम-लक्ष्मणको विद्याओंकी प्राप्ति का वर्णन करनेवाला साठवें पर्व समाप्त हुआ ॥६०॥

एकषष्टितमं पर्व

एतस्मिन्नन्तरे दिव्यकवचच्छुभविग्रही । लक्ष्मीश्रीवत्सलक्ष्माणौ तेजोमण्डलमध्यगी ॥१॥
 नागारिवाहनारूढौ सुकान्तौ पद्मलक्ष्मणौ । सैन्यसागरमध्यस्थौ सैन्धवारुडकेतनौ ॥२॥
 परपञ्चक्षय कर्तुमुद्यतौ परमेश्वरौ । सग्रामघरणीमध्य तेन सत्ततुरुत्कटौ ॥३॥
 अग्रतस्त्वरितो जातः सौमित्रिमित्रवत्सलः । दिव्यातपत्रविचित्रदूरभास्करदीधितिः ॥४॥
 श्रीशैलप्रमुखैर्वीरैर्वृत्तः पुष्पगकेतनैः । दधानखैर्दशं रूपमशक्यपरिवर्णनम् ॥५॥
 अग्रतः प्रस्थिते तस्मिन् द्वादशादित्यभास्वरम् । दृष्टं विभीषणेनेदं जगद्विस्मिततेजसा ॥६॥
 गरुत्मकेतने तस्मिन् सम्प्राप्ते तत्तथावनम् । अस्त्र सान्त्वमसं कापि गतं गरुडतेजसा ॥७॥
 गरुत्मपञ्चवातेन क्षोभितचारसिन्धुना । नीता विषधरा नाशं क्रुभावा इव साधुना ॥८॥
 तार्क्ष्यपञ्चविनिर्मुक्तमयूखालोकसङ्गतम् । जाम्बूनदरसेनेव जगदासीद्विनिर्मितम् ॥९॥
 ततो नभश्चराधीशौ गतपञ्चगवन्धनौ । प्रनामण्डलसुग्रीवौ समाधासनमापनुः ॥१०॥
 सुखेन प्राप्य निद्रां च रक्षांशुकसमावृतौ । अलगादलतरेखासमलङ्कृतचित्तग्रहौ ॥११॥
 अधिक आसमानादौ ज्वत्क्षोष्णालविनिर्गमौ । निद्राक्षये परं कान्तौ स्वैस्थसुखाविबोधिपतौ ॥१२॥
 ततो विस्रमयापन्नः श्रीवृत्तप्रथिताद्यः । विद्याधरगणाधीशः पञ्चच्छुः कृतपूजनाः ॥१३॥
 नाथावापसु वामेपा दृष्टपूर्वा न जातुचित् । विभूतिरद्भुता जाता कृतश्रिदिति कथ्यताम् ॥१४॥

अथानन्तर इसी बीचमे जिनके शरीर दिव्य कवचोंसे आच्छादित थे, जो लक्ष्मी और श्रीवत्स चिह्नके धारक थे, तेजोमण्डलके मध्यमे गमन कर रहे थे, सिंह तथा गरुड़ वाहनपर आरुढ थे, अत्यन्त सुन्दर थे, सेनारूपी सागरके मध्यमे स्थित थे, सिंह तथा गरुड़ चिह्नसे चिह्नित पताकाओंसे युक्त थे, पर-पक्षका क्षय करनेके लिए उद्यत थे और उत्कट बलके धारक थे, ऐसे परममहिमा सम्पन्न राम और लक्ष्मण विभीषणके साथ रणभूमिके मध्यमें आये ॥१-३॥ जिन्होंने दिव्यवृत्त के द्वारा सूर्यकी किरणें दूर हटा दीं थीं तथा जो मित्रोंके साथ स्नेह करनेवाले थे ऐसे शीघ्रतासे भरे लक्ष्मण आगे हुए ॥४॥ उस समय लक्ष्मण हनूमान् आदि प्रमुख वानरवंशी वीरोंसे घिरे थे तथा जिसका वर्णन करना अशक्य था ऐसे देवसदृश रूपको धारण कर रहे थे ॥५॥ लक्ष्मणके आगे प्रस्थान करने पर आश्चर्यजनक तेजके धारक विभीषणने देखा कि यह संसार एक साथ उड़ित हुए बारह सूर्योंसे ही मानो देदीप्यमान हो रहा है ॥६॥ लक्ष्मणके आते ही वह उस प्रकारका सघन तामस अस्त्र गरुड़के तेजसे न जाने कहीं चला गया ॥७॥ लक्ष्मण समुद्रके जलको क्षोभित करनेवाली गरुड़के पङ्क्तोंकी वायुसे सब नाग इस प्रकार नष्ट हो गये जिस प्रकार कि साधुके द्वारा छोटे भाव नष्ट हो जाते हैं ॥८॥ गरुड़के पङ्क्तोंसे छोड़ी हुई किरणोंके प्रकाशसे युक्त संसार ऐसा जान पड़ने लगा मानो स्वर्णरससे ही बना हो ॥९॥

तदनन्तर जिनके नागपाशके बन्धन दूर हो गये थे ऐसे विद्याधरोंके अधिपति सुग्रीव और भामण्डल धैर्यको प्राप्त हुए ॥१०॥ जो सुखसे निद्रा प्राप्तकर रत्नमयी कन्वलोंसे आवृत थे, सर्परूपी लताओंकी रेखाओंसे जिनके शरीर अलङ्कृत थे अर्थात् जिनके शरीरमें नागपाशके गड़रा पड़ गये थे, जो पहलेसे कहीं अधिक सुशोभित थे, और जिनके श्वासोच्छ्वासका निकलना अब स्पष्ट हो गया था, ऐसे दोनों ही राजा इस प्रकार उठ बैठे, जिस प्रकार कि सुखसे सोये पुरुष निद्रान्ध्र होनेपर उठ बैठते हैं ॥११-१२॥ तदनन्तर आश्चर्यको प्राप्त हुए श्रीवृत्त आदि विद्याधर राजाओंने

वाहनावस्त्रसम्पत्तिरातपत्रे परा बुद्धिः । ध्वजौ रत्नानि चित्राणि श्रूयते दिव्यमोदशम् ॥१५॥
 पञ्चनाभस्ततोऽग्नाद्दीप्तैर्भ्यो हिण्डनमात्मनः । उपसर्गे च शैलाग्रे देशगोत्रविभूषयोः ॥१६॥
 चतुराननयोगेन स्थितयोर्देवनिर्मितम् । प्रातिहार्यं समुद्भूतं केवलं च सुरागमम् ॥१७॥
 गरुडेन्द्रस्य तोषं च परिप्राप्तिं वरस्य च । अनुष्ठानप्रयोगेन महाविद्यासमागमम् ॥१८॥
 ततस्तेऽवहिताः श्रुत्वा परमां योगिसङ्ख्याम् । इदमूचुः परिप्राप्ताः प्रमोदं विकचाननाः ॥१९॥

चंशस्थवृत्तम्

इहैव लोके विकटं परं यशो मतिप्रगल्भत्वमुदारचेष्टितम् ।
 अवाप्यसे पुण्यविधिश्च निर्मलो नरेण भक्त्यापितसाधुसेवया ॥२०॥
 तथा न माता च पिता न बा सुहृत् सहोदरो वा कुस्ते नृणां प्रियम् ।
 प्रदाय धर्मे मतिमुत्तमां यथा हितं परं साधुजनः शुभोदयम् ॥२१॥
 इतिप्रशंसापित्तभाविताक्षिरं जिनेन्द्रमार्गोक्तविस्मिताः परम् ।
 बलं सत्परायणमाभिता यमुर्महाविभूत्या समुपाश्रिता नृपाः ॥२२॥

शार्दूलविक्रीडितम्

भव्याम्भोजमहासंयुतसवकरीं श्रुत्वा पवित्रां कथां
 सर्वे हर्षमहारसोदधिगताः प्रीतिं दधानाः पराम् ।
 तौ निद्रोऽस्मिन्तपुण्डरीकनयनौ सम्प्राप्तदेवार्चनौ
 ते विद्याधरपुङ्गवाः सुरसमाः सर्वात्मनापूजयन् ॥२३॥

पूजा कर राम लक्ष्मणसे पूछा कि हे नाथ ! आप दोनोंकी विपत्तिके समय जो पहले कभी देखने में नहीं आई ऐसी यह अद्भुत विभूति किस कारण प्राप्त हुई है सो कहिये ॥१३-१४॥ बाहन, अस्त्ररूपी संपत्ति, छत्र, परम कान्ति, ध्वजाएँ और नाना प्रकारके रत्न जो कुछ आपको प्राप्त हुए हैं वे सब दिव्य हैं, देवोपनीत हैं ऐसा सुना जाता है ॥१५॥ तदनन्तर रामने उन सशके लिए कहा कि एकवार वंशस्थविल पर्वतके अग्रभाग पर देशभूषण और कुलभूषण मुनियोंको उपसर्ग हो रहा था सो मैं वहाँ पहुँच गया ॥१६॥ मैंने उपसर्ग दूर किया, उसी समय दोनों मुनिराजोंको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ, चतुर्मुखाकार होकर दोनों विराजमान हुए, देवनिर्मित प्रातिहार्य उत्पन्न हुए, देवोका आगमन हुआ, गरुडेन्द्र हमसे संतुष्ट हुआ और उससे हमें घरकी प्राप्ति हुई । इस समय उसी गरुडेन्द्रके ध्यानसे इन महाविद्याओंकी प्राप्ति हुई है ॥१७-१८॥ तदनन्तर सावधान हो मुनियोंकी उत्तम कथा श्रवण कर, जो परम प्रमोदको प्राप्त हो रहे थे और जिनके मुखकमल हर्षसे विकसित हो रहे थे । ऐसे उन सब विद्याधर राजाओंने कहा कि ॥१९॥ भक्ति पूर्वककी हुई साधुसेवाके प्रभावसे मनुष्य इसीभवमें विशाल उत्तम यश, बुद्धिकी प्रगल्भता, उदार चेष्टा और निर्मल पुण्य विधिकी प्राप्त होता है ॥२०॥ मुनिजन् उत्तम बुद्धिकी धर्ममें लगा कर मनुष्योंका जैसा मोदयसे संपन्न परम प्रिय हित करते हैं वैसा हित न माता करती है, न पिता करता है, न मित्र करता है और न सगा भाई ही करता है ॥२१॥ इस प्रकार चिरकाल तक प्रशंसा कर जिन्होंने अपनी भावनाएँ समर्पित की थीं और जिनेन्द्रमार्गकी छत्रातिसे जो परम आश्रयको प्राप्त हो रहे थे, ऐसे महावैभवसे युक्त राजा, राम और लक्ष्मणका आश्रय पाकर अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥२२॥ इस तरह मन्व्य जीव रूपी कमलोंके उत्सवको करने वाली पवित्र

वंशस्थवृत्तम्

उपात्तपुण्यो जननान्तरे जनं करोति योगं परमैरिहोत्सवैः ।

न केवलं स्वस्थ परस्थ^१ भूयसा रविर्यथा सर्वपदार्थदर्शनात् ॥२४॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे सुग्रीवभामण्डलसमाश्वासनं नामैकषष्ठितमं पर्व ॥६१॥



कथा सुनकर जो हर्ष रूपी महारसके सागरमें निमग्न हो परम प्रीतिको धारण कर रहे थे, ऐसे देवोंके समान समस्त विद्याधर राजाओंने, विकसित कमलोंके समान नेत्रोंको धारण करने वाले उन देव पूजित राम-लक्ष्मणकी सब प्रकारसे पूजा की ॥२३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जन्मान्तरमें पुण्यका संचय करने वाला मनुष्य, इस संसारमें न केवल अपने आपका ही उत्तम उत्सवोंसे संयोग करता है किन्तु सूर्यके समान समस्त पदार्थोंको दिखाकर अन्य लोगोंका भी अत्यधिक वैभवके साथ संयोग करता है अर्थात् पुण्यात्मा मनुष्य स्वयं वैभवको प्राप्त होता है और दूसरों को भी वैभव प्राप्त कराता है ॥२४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें सुग्रीव और भामण्डलका नागपाश से युक्त हो आश्वासन प्राप्ति का वर्णन करने वाला इकसठवां पर्व समाप्त हुआ ॥६१॥

द्राघष्टितमं पर्व

अपरेद्युर्महोद्भूतविक्रमोक्रमकोविदाः । युद्धार्थोपात्तसम्भारा रणशौण्डाः समुद्युः ॥१॥
 वानरीयैः खमालोक्य सैन्यैर्व्याप्तं निरन्तरम् । शङ्खदुन्दुभिसन्मिश्रं श्रुत्वेभामध्वनिं तथा ॥२॥
 अभ्युजितमतिमानां सादरोऽस्मरविभ्रमः । सत्त्वप्रतापसंयुक्तः सैन्यार्णवसमावृतः ॥३॥
 तेजसा शङ्खजातेन अवलयन्निव विष्टपम् । कैलासोद्धातवीरोऽपि निरैन्द्राज्जादिभिः समम् ॥४॥
 उद्रता बद्धकवचाः सङ्ग्रामात्यर्थलालसाः । नानायानसमारूढा नानाविधमहायुधाः ॥५॥
 पूर्वानुबन्धसङ्क्रोधमहारौरवसज्जिताः । परस्परं भटा धीराः लग्नास्ताडनकर्मणि ॥६॥
 चक्रक्रकचपाशासिन्धुष्टपाष्टिघनमुद्गरैः । कनकैः परिघाद्यैश्च गगनं गहनीकृतम् ॥७॥
 लग्नमन्धीयमन्धीयैर्गजैर्गजतन्मगात् । रथिनश्च महाधीरा उद्यता रथिभिः समम् ॥८॥
 सैहं सैहेन पादात् पादातेन च चञ्चलम् । समं महाद्वयं कर्तुमुद्यतं समविक्रमम् ॥९॥
 ततः कापिध्वजं सैन्यं रक्षोघोषैः पराजितम् । नीलादिभिः पुनर्नीतं शङ्खसम्पातयोग्यताम् ॥१०॥
 भूयोजलधिकरुलोलललङ्घेन्द्रपाथिवाः । इमे समुद्युर्दृष्ट्वा निजसैन्यपरामवम् ॥११॥
 विद्युद्बन्मारीचचन्द्रार्कशुक्रसारणाः । क्रतान्तसुत्युजीमूतनादसङ्क्रोधनादयः ॥१२॥

अथानन्तर दूसरे दिन जिन्हें महापराक्रम उत्पन्न हुआ था, जो क्रमको जाननेमें निपुण थे, एवं युद्धके लिए जिन्होंने सब सामग्री ग्रहण की थी ऐसे रणवाङ्कुरे वीर युद्धके लिए उद्यत हुए ॥१॥ वानरोकी सेनासे समस्त आकाशको निरन्तर व्याप्त देख तथा शङ्खों और दुन्दुभियोंके शब्दोंसे मिली हाथियों और घोड़ोंकी आवाज सुन कैलासको उठानेवाला वीर रावण भी भाइयों आदिके साथ निकला । रावण अत्यन्त बलवती बुद्धिका धारक था, मानी था, आदरसे युक्त था, देवोंके समान शोभासे सहित था, सत्त्व और प्रतापसे युक्त था, सेनारूपी सागरसे घिरा हुआ था, और शङ्खसे उत्पन्न तेजके द्वारा संसारको जलाता हुआ-सा जान पड़ता था ॥२-४॥ तदनन्तर जिन्होंने उठकर कवच बंध रखले थे, जिन्हें संग्रामकी उत्कट लालसा भरी हुई थी, जो नाना प्रकारके बाहनोंपर आरूढ थे, नाना प्रकारके बड़े-बड़े शङ्ख जिन्होंने धारण कर रखले थे और जो पूर्वानुबद्ध क्रोधके कारण महानारकीके समान जान पड़ते थे, ऐसे धीर वीर थोड़ा परस्पर मार-काट करनेमें लग गये ॥५-६॥ चक्र, क्रकच, पाशा, खड्ग, यष्टि, वज्र, घन, मुद्गर, कनक तथा परिघ आदि शस्त्रोंसे आकाश सघन हो गया ॥७॥ घोड़ोंका समूह घोड़ोंके समूहके साथ जुट पड़ा, हाथियोंका समूह हाथियोंके समूहके सम्मुख गया, महा धीर-वीर रथोंके सवार रथसवारोंके साथ खड़े हो गये ॥८॥ सिंहोंके सवार सिंहोंके सवारोंके साथ और चञ्चल तथा समान पराक्रमको धारण करनेवाला पैदल सैनिकोंका समूह पैदल सैनिकोंके साथ महायुद्ध करनेके लिए उद्यत हो गया ॥९॥

तदनन्तर प्रथम तो राक्षस योद्धाओंने वानरोंकी सेनाको पराजित कर दी, परन्तु उसके बाद नील आदि वानरोंने उसे पुनः शङ्खवर्षा करनेकी योग्यता प्राप्त करा दी। अर्थात् वानरोंकी सेना पहले तो कुछ पीछे हटी, परन्तु ज्योंही नील आदि वानर आगे आये कि वह पुनः राक्षसोंपर शङ्ख वर्षा करने लगी ॥१०॥ पश्चात् अपनी सेनाका परामव देख, समुद्रकी तरङ्गोंके समान चञ्चल लङ्काके निम्नाङ्कित राजा पुनः युद्धके लिए उद्यत हुए ॥११॥ विद्युद्बक्त्र, मारीच, चन्द्र

१. विक्रमक्रम म० । २. अश्वानां समूहः । ३. गजाना समूहः । ४. सौयोगं म० । ५. कपिध्वजसैन्यं म० । ६. विद्युद्बक्त्र म० ।

भज्यमानं निजं सैन्यं वीक्ष्य तैः । राक्षसोत्तमैः । कपिध्वजमहायोधाः परिप्रापुः सहस्रशः ॥१३॥
 प्रस्ता राक्षससैन्यास्तैश्चित्रैर्विविधायुधैः । महाप्रतिभयैर्वीरैर्युदात्तविचेष्टितैः ॥१४॥
 निजसैन्यान् पूर्वं दृष्ट्वा पीयमानं समन्ततः । शङ्खज्वालाविलसेन कपिप्रलयवद्विना ॥१५॥
 लङ्केशः कोपनो योद्धुं बलवान् स्वयमुत्थितः । शुष्कपत्रोपमानं दूरं विचिपन् शत्रुसैनिकान् ॥१६॥
 ततः पलायनोद्युक्तान् परिप्राप्य तदा द्रुतम् । स्थितो विभीषणो योद्धुं महायोधविभीषणः ॥१७॥
 आहवेऽभिमुखोभूतं आतरं वीक्ष्य रावणः । वमाणं पृथुकक्रोधो वाक्यमादरवर्जितम् ॥१८॥
 कनीयानसि स त्वं मे आता हन्तुं न युज्यते । अपसर्पामृतो मास्थाः न त्वां शक्तोऽस्मि वीक्षितुम् ॥१९॥
 विभीषणकुमारेण जगदे पूर्वजस्ततः । कालेन गोचरत्वं मे नीतः किमवसर्प्यते ॥२०॥
 ततः कुमारकोपस्तं पुनरप्याह रावणः । क्लीबं छिष्टं धिगस्तु त्वां नरकात् कुचेष्टितम् ॥२१॥
 त्वया व्यापादितेनापि नैव मे जन्म्यते हृतिः । भवद्विधा हि नो योग्याः कर्तुं हर्षं न दीनताम् ॥२२॥
 बह्विधाधरसन्तानं त्यक्त्वा मूढोऽन्यमाश्रितः । कर्मणामतिदौरात्म्याज्जनं त्यक्त्वेव शासनम् ॥२३॥
 ततो विभीषणोऽबोचत् किमत्र बहुभाषितैः । शृणु रावण कल्याणं भण्यमानमनुत्तमम् ॥२४॥
 एवं गतोऽपि चेत् कर्तुं स्वस्य श्रेयः स मेच्छसि । रावणेन समं प्रीतिं कुरु सीतां समर्पय ॥२५॥
 अभिमानोर्जितं त्यक्त्वा प्रसादय रघूत्तमम् । मा कलङ्कं स्ववंशस्य कार्ष्णिर्गोपिनिमित्तकम् ॥२६॥
 अथवा मर्तुमिष्टं ते कुरुपे यज्ञ मद्रचः । मोहस्य दुस्तरं किं वा बलिनो बलिनामपि ॥२७॥

अर्क, शुक, सारण, कृतान्त, मृत्यु, मेघनाद और संक्रोधन आदि ॥१२॥ इन राक्षस योद्धाओंके द्वारा अपनी सेनाको नष्ट होते देख बानर पक्षके हजारों महायोद्धा आ पहुँचे ॥१३॥ और आते ही उन्नत, नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले, महाभयंकर, वीर और अत्यन्त उदात्त चेष्टाओंको धारक उन बानर योद्धाओंने राक्षसोंकी सेनाको धर दबाई ॥१४॥ तदनन्तर शस्त्ररूपी ज्वालाओंसे सुशोभित बानर रूपी प्रलयानिके द्वारा अपनी सेना रूपी सागरको सब ओरसे पिया जाता देख क्रोधसे भरा बलवान् रावण, शत्रु सैनिकोंको सूखे पत्तोंके समान दूर फेंकता हुआ युद्ध करनेके लिए स्वयं उद्यत हुआ ॥१५-१६॥ तदनन्तर महायोद्धाओंको भयभीत करनेवाला विभीषण भागनेमें तत्पर बानरोंकी शीघ्र ही रक्षा कर युद्ध करनेके लिए खड़ा हुआ ॥१७॥ युद्धमें भाईको सम्मुख खड़ा देख जिसका क्रोध भड़क उठा था ऐसा रावण निरादरताके साथ वह वचन बोला कि तू छोटा भाई है अतः तुझे तेरा मारना योग्य नहीं है, तू सामनेसे हट जा, खड़ा मत रह मैं तुझे देखनेके लिए भी समर्थ नहीं हूँ ॥१८-१९॥ तदनन्तर विभीषणने बड़े भाई—रावणसे कहा कि तू यमके द्वारा मेरे सामने भेजा गया है अतः अब पीछे क्यों हटता है ? ॥२०॥ पश्चात् विभीषणकुमारपर क्रोध प्रकट करते हुए रावणने उससे पुनः कहा कि रे नपुंसक ! संजिह्म ! नरकात् । तुझ कुचेष्टीको धिक्कार है ॥२१॥ तुझे मार डालनेपर भी मेरा यश नहीं होगा, क्योंकि तेरे समान तुच्छ मनुष्य न तुझे हर्ष उत्पन्न कर सकते हैं और न दीनता ही उत्पन्न करनेके योग्य है ॥२२॥ जिस प्रकार कोई, कर्मोंका अत्यन्त अशुभ उदय होनेसे जिन शासनको छोड़ अन्य शासनको ग्रहण करता है, उसी प्रकार तुझ मूर्खने भी विद्याधरको सन्तानको छोड़ अन्य भूमिगोचरीको ग्रहण किया है ॥२३॥

तदनन्तर विभीषणने कहा कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? हे रावण ! तेरे कल्याण के लिए जो उत्तम वचन कहे जा रहे हैं उन्हें सुन ॥२४॥ इस स्थितिमें आने पर भी यदि तू अपना भला करना चाहता है तो रामके साथ मित्रता कर और सीताको समर्पित कर दे ॥२५॥ अर्थात् छोड़कर रामको प्रसन्न कर स्त्रीके निमित्त अपने वंशको कलङ्कित मत कर ॥२६॥ अथवा तुझे मरना ही इष्ट है इसीलिए मेरी बात नहीं मान रहा है सो ठीक ही है क्यों कि बलवान्

विनिशम्य वचस्तस्य तरुणक्रोधसङ्गतः । निशातं वाणमुद्धृत्य समवावत रावणः ॥२८॥
 रथाश्वचारणाकृताः स्वामितोषे हि तत्पराः । अन्येऽपि पाथिवा लया रणे सुभट्टाक्षणे ॥२९॥
 आयातोऽभिमुखं तस्य राक्षसेन्द्रस्य रंहसा । अष्टमीचन्द्रवक्रेण ध्वजं आन्तेयुणाऽक्लिन्त ॥३०॥
 तेनापि तस्य संरम्भसम्भाराक्रान्तचेतसा । धनुर्हिधाकृतं चिप्त्वा सायकं निशिताननम् ॥३१॥
 ततोऽपरमुपादाय चापमाश्रु विभीषणः । द्विधाकरोद्धनुस्तस्य प्रतिकारविचक्षणः ॥३२॥
 एवं तयोर्महायुद्धे प्रवृत्ते वीरसंक्षये । जनकस्य परं भक्तः शक्रजिह्वोद्धुसुद्ययौ ॥३३॥
 लक्ष्मीधरेण रुद्धोऽसौ पर्वतेनेव सागरः । पद्मनेत्रेण पद्मेन भानुकर्णोऽमृतः कृतः ॥३४॥
 ययौ सिंहकटिं नीलो युद्धशम्भुं तथा नलः । स्वयम्भुं दुर्मतिः क्रुद्धो दुर्मर्षोऽपि घटोदरम् ॥३५॥
 दुष्टः शक्राशनिं कालिस्तथा चन्द्रनखं नृपम् । स्कन्दो भिन्नाङ्गनं विष्णं विराधितनराधिपः ॥३६॥
 श्यातं मयमहादैत्यमद्भदो भासुराद्भदः । कुम्भकर्णसुतं कुम्भं समीरणसमुद्रवः ॥३७॥
 किष्किन्वेशः समात्प्राप्य केतुं जनकमन्दनः । काम हृदयः क्षुब्धः चोभणभित्तमूर्जितम् ॥३८॥
 अन्येऽप्येव महायोधा यथायोग्यं परस्परम् । आरेभिरे रण कर्तुमाङ्गानमुत्तराननाः ॥३९॥
 गृहाण प्रहरागच्छ जहि व्यापाद्योद्विहः । क्षिप्रं भिन्धि चिपोत्तिष्ठ तिष्ठ दारय धारय ॥४०॥
 यथान् एकोदयार्कं सुखं चूर्णय नाशय । सहस्व दत्स्व निःसर्पं सन्धस्त्वोच्छ्रय कल्पय ॥४१॥
 किं भीतोऽसि न हन्मि त्वां धिक् त्वां कातरको भवान् । कस्त्वं विमेषि नष्टोऽसि मा कम्पिष्ठा क्षम्यते ॥४२॥

मनुष्योको भी इस बलवान् मोहका तिरसा अत्यन्त कठिन है ॥२७॥ तदनन्तर विभीषणके वचन सुन तीव्र क्रोधसे युक्त हुआ रावण तीव्र वाण चढ़ाकर दौड़ा ॥२८॥ स्वामीको संतुष्ट करनेमें तत्पर रहने वाले, रथों, घोड़ों और हाथियों पर बैठे हुए अन्य राजा लोग भी योद्धाओंको भय उत्पन्न करने वाले युद्धमें लग गये ॥२९॥ तदनन्तर वड़े वेगसे सन्मुख जा कर विभीषणने अष्टमी के चन्द्रके समान कुटिल घूमने वाले वाण से रावणकी ध्वजा छेद डाली ॥३०॥ और क्रोधके भार से जिसका चित्त व्याप्त था ऐसे रावणने भी एक तीक्ष्णमुख वाण चला कर विभीषणके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥३१॥ प्रख्यात प्रतिकार करनेमें निपुण विभीषणने शीघ्र ही दूसरा धनुष लेकर रावणके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥३२॥ इस प्रकार जब रावण और विभीषणके बीच अनेक वीरोंका क्षय करने वाला महायुद्ध चल रहा था तब पिताका परमभक्त इन्द्रजित् युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥३३॥ सो जिस प्रकार पर्वत समुद्रको रोकता है उसी प्रकार लक्ष्मणने उसे रोका और कमललोचन रामने भानुकर्णको अपने आगे किया अर्थात् उससे युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥३४॥ नील, सिंहकटि (सिंहजघन)के सन्मुख गया, नलने युद्ध शम्भुका, दुर्मतिने स्वयम्भुका, क्रोधसे भरे दुर्मर्षने कुम्भोदरका, दुष्टने इन्द्रवज्रका, कान्तिने चन्द्रनखका, स्कन्धने भिन्नाङ्गनका, विराधित राजाने विघ्नका, देदीप्यमान केयूरके धारक अङ्गदने प्रसिद्ध, मय नामक महा दैत्यका, हनुमान्ने कुम्भकर्णके पुत्र कुम्भका, सुधीवने सुमालीका, भामण्डलने केतुका, हृदयने कामका और क्षुब्धने चोभण नामक बलवान् सामन्तका सामना किया ॥३५-३८॥ इनके सिवाय बुलातेके शब्दसे जिनके मुख शब्दायमान हो रहे थे ऐसे अन्य महायोधाओंने भी परस्पर यथायोग्य युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥३९॥ उस समय योद्धाओंमें परस्पर इस प्रकारके शब्द हो रहे थे कोई किसीसे कहता था कि लो, इसके उत्तरमें दूसरा कहता था कि मारो, आओ, मारो, जानसे मारडालो, छेदो, मेदो, फेंक दो, उठो, बैठो, खड़े रहो, विदारण करो और धारण करो ॥४०॥ बाँधों, फोड़ डालो, बसीटो, छोड़ो, चूर-चूर कर डालो, छोड़ो, नष्ट करो, सहन करो, देओ, पीछे हटो, संधि करो, उन्नत हो ओ, समर्थ बनो । तू क्यों डर रहा है ? मैं तुम्हें नहीं मारता, तुम्हें धिक्कार है, तू बड़ा कातर है, तुम्हें धिक्कार है, तू क्यों कम्पित हुआ जा रहा है ? क्या तू भूल गया है ? कम्पित मत हो,

अयं स वर्तते कालः शूराशूरविचारकः । भुज्यतेऽञ्जं यथा मृष्टं न तथा युध्यते रणे ॥४३॥
 गजितैरिति धीराणां तूर्यनादैस्तथोज्ज्वलैः । नर्दन्तीव दिशो मत्ताः क्षतजातान्धकारिताः ॥४४॥
 चक्रशक्तिगदायष्टिकनकाष्टिघनादिभिः । दङ्गालमिव सज्जातं गगनं भीषणं परम् ॥४५॥
 रक्ताशोकवनं किं तत् किं वा किञ्चिक्काननम् । परिभ्रष्टदुमारप्यभुत जातं चतं बलम् ॥४६॥
 कश्चिद्विघटितं दृष्ट्वा कष्टं चिन्तयन्धनम् । सन्धत्ते त्वरितं भूयः स्नेहं साधुजनो यथा ॥४७॥
 कश्चित्सन्धार्थं दन्ताग्रैः खद्वगं परिकरं ददम् । बध्वा दीप्रः पुनर्योद्धुं श्रममुक्तः प्रवर्तते ॥४८॥
 मत्तवारणदन्ताग्रक्षतवक्षस्थलोऽपरः । चलत्कर्णसमुद्धूतवैजितः कर्णचामरैः ॥४९॥
 उशीर्णस्वामिकर्तव्यो निराकुलमतिः परम् । दन्तोत्सङ्गे तप्तः शिरये सम्प्रसार्य मुजद्वयम् ॥५०॥
 धातुपर्वतसङ्काशः केचित् क्षतजनिर्जराः । मुमुक्षुः शंकरासारसेकबोधितमूर्च्छिताम् ॥५१॥
 पर्यस्ता भूतले केचिद्दृष्ट्वाः शास्त्रपाणयः । कुञ्चितभ्रूदूरीक्यास्या वीरा मुञ्चन्ति जीवितम् ॥५२॥
 उपसंहृत्य संरम्भं त्यक्तशस्त्रास्तथापरे । मुञ्चन्ति जीवितं धीरा ज्ञायन्तः परमाचरम् ॥५३॥
 विपाणकोटिसक्तपाणयः केचिदुत्कटाः । आन्दोलनं गजेन्द्राणामग्रतः समुपासिरे ॥५४॥
 रक्तच्छुटो विमुञ्चन्तश्चञ्चलाः शस्त्रपाणयः । कबन्धा नर्चनं चक्रुः शतशोऽतिभयानकम् ॥५५॥
 केचिद्वह्निमुक्तं जर्जरंभूतकण्टका । प्रविष्टाः सलिलं विलष्टा जीवितशापरादमुक्ताः ॥५६॥

तू अकेला कहाँ जायगा ? ॥४१-४२॥ यह वह समय है जिसमें शूर और कायरका विचार किया जाता है । जैसा मीठा अन्न खाया है वैसा रणमें युद्ध नहीं कर रहे हो ॥४३॥

इस प्रकार धीर-वीरोंकी गर्जना और तुरहीके उन्नत शब्दोंसे दिशाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो रुधिरकी वर्षासे अन्धकार युक्त तथा पागल हो चिल्ला ही रही हो ॥४४॥ चक्र, शक्ति, गदा, यष्टि, कनक, आर्ष्टि और घन आदि शस्त्रोंसे आकाश उस प्रकार अत्यन्त भयंकर हो गया मानो सबको निगलनेके लिए दाँढ़ी ही धारण कर रहा हो ॥४५॥ खूनसे लथपथ घायल सेनाको देख कर ऐसा संदेह होता था कि क्या यह अशोकका लाल वन है ? या पलाशका कानन है, या पारिभ्रष्ट वृक्षोंका वन है ? ॥४६॥ किसीका कवच टूट गया तथा उसके वन्धन खुल गये, इसलिए उसने शीघ्र ही दूसरा कवच उसप्रकार धारण किया जिस प्रकार कि साधु पुरुष एक बार स्नेहके टूट जाने पर उसे शीघ्र ही पुनः धारण कर लेते हैं ॥४७॥ कोई तेजस्वी योद्धा दाँतोके अग्रभागसे तलवार दवा तथा हाथोंसे कमर कस कर अमरहित हो फिरसे युद्ध करने के लिए तैयार हो गया ॥४८॥ मदोन्मत्त हाथीके दन्ताग्रसे जिसका वक्षःस्थल घायल हो गया था ऐसा कोई योद्धा हाथी के चञ्चल कानोंसे ऊपर उठे हुए कर्णचामरोंसे वोजित हो रहा था ॥४९॥ जिसने स्वामी का कर्त्तव्य पूरा किया था ऐसा कोई एक योद्धा निराकुल चित्त हो दोनों हाथ पसार कर हाथीके दाँतोंके बीच सो रहा था ॥५०॥ जिनसे खूनके निर्भर भर रहे थे तथा जो गेरुके पर्वतके समान जान पड़ते थे ऐसे कितने ही योद्धाजोने जलकणोंकी वर्षाके सिञ्चनसे सचेत हो मूर्च्छा छोड़ी थी ॥५१॥ जो ओठ डस रहे थे, हाथोंमें शस्त्र लिये थे और टेढ़ी भौंहोंसे जिनके मुख भयंकर दिख रहे थे ऐसे कितने ही योद्धा पृथिवी पर पड़कर प्राण छोड़ रहे थे ॥५२॥ कितने ही धीर वीर योद्धा ऐसे भी थे जो क्रोधका संकोच तथा शस्त्रोंका त्याग कर परब्रह्मका ध्यान करते हुए प्राण छोड़ रहे थे ॥५३॥ कितने ही प्रचण्ड वीर खींसोंके अग्रभागको हाथोंसे पकड़ कर हाथियोंके आगे झूला झूल रहे थे ॥५४॥ जो रक्तकी छटा छोड़ रहे थे तथा हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए थे, ऐसे सैकड़ों उछलते कबन्ध—शिररहित घड़ अत्यन्त भयंकर नृत्य कर रहे थे ॥५५॥ जिनके कवच जर्जर हो गये थे ऐसे कितने ही दुःखी योद्धा, जीवनकी आशासे विमुख हो शस्त्र

१. मुञ्चतेऽञ्जं म० । २. तदुन्नतैः म० । ३. पारिभ्रष्टदुमारपाणां म० । ४. समुद्धूतैः म० । ५. विमुञ्चन्ति म० ।

ईदृशे समरे जाते लोकसन्नासकारिणि । परस्परसमुद्भूतमहामृष्टपरिचये ॥५७॥
 महेन्द्रजित्वा वाणैर्लक्ष्मीमन्तं सिताननैः । लक्षरज्जादयितुं धीरस्तथा तमपि लक्ष्मणः ॥५८॥
 महातामसशस्त्रं च भीमं शकजिद्विषत् । विनाशं भानवीयेन तद्वस्त्रेणानयद्विषुः ॥५९॥
 तमुग्रैः शकजिद्वभूयः शरैराशीविपात्मकैः । आरब्धो वेष्टितुं क्रुद्धः सस्रं शस्त्रवाहनम् ॥६०॥
 नैनतेयास्त्रयोगेन नागास्त्रं स निराकरोत् । पूर्वोपात्तं यथा पापजालं योगी महातपाः ॥६१॥
 ततोऽमर्त्यगणान्तस्थं हस्तिवृन्दस्थलावृतम् । विरथं लक्ष्मणशस्त्रे दशवक्त्रसमुद्भवम् ॥६२॥
 पालयन् स निजं सैन्यं वचसा कर्मणा तथा । प्रायुङ्क्तास्त्र महाध्वान्तपिहितारिदशास्यकम् ॥६३॥
 विधया तपनास्त्रं च हत्वा तस्य विचिन्तितम् चिक्षेपेच्छाकृताकारानाशीमुखशिलीमुखात् ॥६४॥
 सद्ग्रामामिमुखो नागैः कुटिलं न्यासविग्रहः । इन्द्रजित्पतितो भूमौ पुरा भामण्डलो यथा ॥६५॥
 पद्मेनाऽऽदित्यकर्णोऽपि सुयुद्धे विरथीकृतः । आदित्यास्त्रं शनैर्हत्वा नागास्त्रं संप्रयुज्य च ॥६६॥
 सन्वेष्टेष्ट सर्वतो नागैः पतितो घर्णीतले । पुरेव बाहुबलिनः श्रीकण्ठो नमिनन्दनः ॥६७॥
 'विश्रं श्रेणिक ते बाणाः भवन्ति धनुराग्नितः । वल्कामुखास्तु गच्छन्तः शरीरे नागमूर्त्ययः ॥६८॥
 क्षणं बाणाः क्षणं दण्डाः क्षणं पाशत्वसागताः । आमरा ह्यस्त्रभेदास्ते यथा विन्तितरुपाः ॥६९॥
 कर्मपाशैर्यथा जीवो नागपाशैः स वेष्टितः । भामण्डलेन पद्माज्ञां प्राप्याऽऽस्मीये रथे कृतः ॥७०॥

छोड़ पानीमें धुस गये ॥५६॥ इस तरह जब परस्पर महायोद्धाओंका क्षय करने वाला, लोक संत्रास कारी महायुद्ध हो रहा था तब इन्द्रजित् तीक्ष्ण बाणोंसे लक्ष्मणको और लक्ष्मण इन्द्रजित्को आच्छादित करनेमें लीन थे ॥५७-५८॥ इन्द्रजित्ने अत्यन्त भयंकर महातामस नामक शस्त्र छोड़ा जिसे लक्ष्मणने सूर्यास्त्रके द्वारा नष्ट कर दिया ॥५९॥ तदनन्तर क्रोधसे भरे इन्द्रजित्ने नाग बाणोंके द्वारा रथ, शस्त्र तथा वाहन के साथ लक्ष्मणको वेष्टित करना प्रारम्भ किया । तब लक्ष्मणने गरुडास्त्रके द्वारा उस नागास्त्र को उस तरह दूर कर दिया जिस प्रकार कि महातपस्वी योगी पूर्वोपाजित पापोंके समूहको दूर कर देता है ॥६०-६१॥

तदनन्तर मन्त्रिसमूहके मध्यमें स्थित तथा हाथियोंके समूहसे वेष्टित इन्द्रजित्को लक्ष्मण ने रथरहित कर दिया ॥६२॥ तब वचन तथा क्रियासे अपनी सेनाकी रक्षा करते हुए इन्द्रजित्ने ऐसा तामसाक्ष छोड़ा कि जिसने महा अन्धकारसे रावणको छिपा लिया ॥६३॥ इसके बदले लक्ष्मण ने सूर्यास्त्र छोड़कर इन्द्रजित्का मनोरथ नष्ट कर दिया और इच्छानुसार आकृतिको धारण करने वाले नागबाण छोड़े ॥६४॥ इनके फलस्वरूप संग्रामके लिए आते हुए इन्द्रजित्का समस्त शरीर नागोंके द्वारा व्याप्त हो गया और उनके कारण जिस प्रकार पहले भामण्डल पृथिवीपर गिर पड़ा था उसी प्रकार वह भी पृथिवीपर गिर पड़ा ॥६५॥ उधर रामने भी धीरेसे सूर्यास्त्रको नष्ट कर तथा नागास्त्रको चलाकर युद्धमें भातुकर्णको रथ रहितकर दिया ॥६६॥ पहले जिस प्रकार बाहुबलीने नमिके पुत्र श्रीकण्ठको जीतकर नागपाशसे बाँध लिया था, उसी प्रकार रामने भी भातुकर्ण को सब ओरसे नागपाशसे वेष्टित कर लिया जिससे वह पृथिवीतल पर गिर पड़ा ॥६७॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! वे बाण बड़े ही विचित्र थे । जब वे धनुषपर चढ़ाये जाते थे तब बाणरूप रहते थे, चलते समय उल्काके समान मुखवाले हो जाते थे और शरीरपर जाकर नागरूप हो जाते थे ॥६८॥ वे बाण क्षण भरके लिए बाण हो जाते थे, क्षण भरमें दण्डरूप हो जाते थे और क्षण भरमें नागपाशरूप हो जाते थे, यथार्थमें ये सब शस्त्रोंके भेद देवोपनीत थे तथा मन चाहे रूपको धारण करनेवाले थे ॥६९॥ आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार संसारी प्राणी कर्मरूपी पाशसे वेष्टित रहता है, उसी प्रकार भातुकर्ण भी नागपाशसे वेष्टित

१. रिपुम् म० । २. हत्वा म० । ३. सुयुद्धो म० । ४. म० पुस्तके ६८-६९तमश्लोकयोर्मध्ये 'नजितैर्याणं दृष्ट्वा पीयमानं समन्ततः । शस्त्रज्वालाविलासेन कपिप्रलयवह्निना ।' एष श्लोकोऽधिको वर्तते ।

मन्दोदरीसुतोऽप्येव बद्धो नारायणाज्ञया । विराधितेन याने स्वे स्थापितः क्लान्तविग्रहः ॥७१॥
 तावद्गणमुखेऽभागीदृ दशवक्त्रो विभीषणम् । सद्क्रुद्धोऽभिसुखीभूतं चिरं सोढारणक्रियम् ॥७२॥
 प्रहारात्मिकमेकं मे प्रतीच्छ यदि मन्यसे । सत्यं पुरुषमात्मानं रणकण्डूप्रचण्डकम् ॥७३॥
 इत्युक्त्वा विस्फुरत्पिङ्गस्फुल्लिङ्गलिङ्गिताम्बरम् । शूलं चिक्षेप लुप्तोऽसौ लक्ष्मणेनान्तरे शरैः ॥७४॥
 तं भस्मीकृतमालोक्य शूलमत्युग्रमायुधम् । अधिकं रावणः क्रुद्धः शक्तिं जग्राह दारुणाम् ॥७५॥
 यावत्परयति सङ्गातमग्रतो गरुडध्वजम् । प्रौढेन्द्रीवरसङ्काश भासुरं पुरुषोत्तमम् ॥७६॥
 प्रलयाम्भोदसम्भारगम्भीरोदारनिस्वनः । विशल्यर्द्धमुखोऽबोचत् तमेवं ताडयन्निव ॥७७॥
 अन्यस्यैव मया शस्त्रमुद्यतं वधकारणम् । यदि तत्कोऽधिकारस्ते स्थातुमासन्नतो मम ॥७८॥
 अभिवाङ्मसि मर्चुं वा यदि दुर्मतं लक्ष्मण । प्रतीच्छेमं प्रहारं मे तिष्ठ प्रगुणविग्रहः ॥७९॥
 विभीषणं समुत्सार्य सोऽपि कृच्छ्रेण मानवान् । दशास्यमभिदुद्राव धिरं सङ्ग्रामखेदितम् ॥८०॥
 निःसर्पत्तारकाकारस्फुल्लिङ्गनिकरां ततः । चिक्षेप रावणः शक्तिं कोपसम्भारसङ्गतः ॥८१॥
 वक्षस्तस्य तथा भिन्नं महारौलतटोपमम् । अमोघक्षेपया शक्त्या दिव्ययाप्यन्तर्दीपया ॥८२॥
 लक्ष्मणरोसि सा सक्ता भासुराङ्गमनोहरा । परमर्षेयसम्बद्धा शोभते स्म बधूरिव ॥८३॥
 गाढप्रहारदुःखार्चः स परायत्तविग्रहः । महीतलं परिप्राप्तो गिरिवज्राहतो यथा ॥८४॥

हो गया । तदनन्तर रामकी आज्ञा पाकर भामण्डलने उसे अपने रथपर डाल लिया ॥७०॥ वधर जिसका शरीर वैचैन हो रहा था ऐसे नागपाशसे बँधे हुए इन्द्रजित्को भी लक्ष्मणकी आज्ञासे विराधितने अपने रथपर रख लिया ॥७१॥

उसी समय रणके मैदानमें क्रोधसे भरे रावणने, चिरकाल तक रणक्रियाको सहन करने-वाले विभीषणने कहा कि ॥७२॥ यदि तू अपने आपको सचमुच ही रणकी खोजसे प्रचण्ड पुरुष मानता है तो मेरे इस एक प्रहार को मेल ॥७३॥ इतना कहकर उसने निकलते हुए पीले तिलगोंसे आकाशको व्याप्त करने वाला शूल चलाया, सो लक्ष्मणने उसे अपने वाणोंसे बीचमें ही समाप्त कर दिया ॥७४॥ उस अत्यन्त भयङ्कर शूल नामक शस्त्रको भस्मीकृत देख रावणने अत्यन्त कुपित हो भयानक शक्ति उठायी ॥७५॥ रावण शक्ति उठाकर ज्योंही सामने देखता है तो उसे आगे खड़े हुए, तरुण नील कमलके समान श्याम, देदीप्यमान पुरुषोत्तम, लक्ष्मण दिखायी दिये ॥७६॥ लक्ष्मणको देख प्रलय कालीन मेघ समूहके समान गम्भीर शब्द करनेवाला रावण ताड़न करते हुए के समान इस प्रकार बोला ॥७७॥ कि जब मैंने दूसरेका ही वध करनेके लिए शस्त्र उठाया है तब तुझे मेरे निकट खड़े होनेका क्या अधिकार है ? ॥७८॥ अथवा रे मूर्ख लक्ष्मण ! यदि तू मरना ही चाहता है तो सीधा खड़ा हो और मेरा यह प्रहार मेल ॥७९॥ यह सुन मानी लक्ष्मण भी कठिनायीसे विभीषणको अलग कर जो चिरकाल तक युद्ध करनेसे खेद खिन्न हो गया था ऐसे रावणके सन्मुख दौड़ा ॥८०॥

तदनन्तर क्रोधके भारसे भरे रावणने जिससे ताराओंके समान तिलगोंका समूह निकल रहा था ऐसी शक्ति चलायी और जिसका चलाना कभी व्यर्थ नहीं जाता तथा जो अत्यन्त देदीप्यमान थी ऐसी उस शक्तिसे महापर्वतके तटके समान लक्ष्मणका वक्षःस्थल खण्डित हो गया ॥८१-८२॥ लक्ष्मणके वक्षःस्थलपर लगी देदीप्यमान आकृतिसे मनोहर वह शक्ति, परम प्रेमसे लिपटी स्त्रीके समान सुशोभित हो रही थी ॥८३॥ जो गाढ प्रहारजन्य दुःखसे दुःखी ये तथा जिनका शरीर विवश हो गया था ऐसे लक्ष्मण वज्रसे ताड़ित पर्वतके समान पृथिवी पर गिर

द्यूः तं पतितं भूमौ पद्मः पद्मालोचनः । विनियम्य परं शोकं शत्रुपातार्थमुद्यतः ॥८५॥
 सिंहयुक्तं समारूढः स्यन्दनं क्रोधपूरितः । शत्रुमायातमात्रेण चकार विरयं बली ॥८६॥
 रथान्तरं समारूढश्छिन्नपूर्वशरासनः । यावच्चापं समादत्ते भूयोऽयं विरथीकृतः ॥८७॥
 पद्मामस्य शरैर्ग्रस्तो दशास्यो विह्वलीकृतः । न समर्थो बभूवेषु ग्रहीतुं न च कामुकम् ॥८८॥
 लोठितोऽपि शरैस्तीव्रैस्तथापि घरणीतले । रथे विलोक्यते भूयो रावणः खेदसङ्गतः ॥८९॥
 विच्छिन्नचापकवचः पट्टवारं विरथीकृतः । तथापि शक्यते नैव स साधयितुमद्भुतः ॥९०॥
 प्रोक्तं पद्मनाभेन परं प्राप्तेन विस्मयम् । नात्पायुष्को भवानेव यो न प्राप्नोऽसि पञ्चताम् ॥९१॥
 मदबाहुप्रेरितैर्वाणैर्वैगवज्जिः शिताननैः । महीमृतोऽपि शीर्यन्ते मन्येऽन्यत्र किमुच्यताम् ॥९२॥
 तथापि रक्षितः पुण्यैर्जन्मान्तरसमजितैः । शृणु जल्पामि किं चित्ते वचनं खेचराधिप ॥९३॥
 सद्प्राप्तेऽभिमुखो आता यो मे शक्या त्वया हृतः । प्रेतस्याभिसुखं तस्य वीक्ष्य यथानुमन्यसे ॥९४॥
 एवमस्त्विति सम्भाष्य प्रार्थनामद्भुर्विधः । ययौ दशाननो लङ्काभ्युदयाऽऽसन्नपलसश्रिभः ॥९५॥
 धृक्तावद्वयं ध्वस्तो मया शत्रुर्महोत्कटः । इति किञ्चिद्वर्णितं प्राप्नो विवेश भवनं निजम् ॥९६॥
 अन्विष्य विस्तृतांस्तत्र योधान् विक्रान्तवस्त्रलः । विवेशान्तःपुरं धीरो दशनश्रमनोवनः ॥९७॥
 निरुद्धं आतरं श्रुत्वा पुत्राचरणकारिणौ । शोचन् प्रियजनं पश्यन्नाशां चक्रे दशाननः ॥९८॥

पड़े ॥८५॥ उन्हें भूमिपर पड़े देख कमल लोचन राम, तीव्र शोकको रोककर शत्रुका घात करनेके लिए उद्यत हुए ॥८५॥ सिंह जुते रथपर बैठे एवं क्रोधसे भरे वलवान् रामने सामने जाते ही शत्रुको रथरहित कर दिया ॥८६॥ जब तक वह दूसरे रथ पर चढ़ता है तब तक रामने उसका धनुष तोड़ दिया । तदनन्तर वह जब तक दूसरा धनुष उठाता है तब तक उसे पुनः रथरहित कर दिया ॥८७॥ रामके वाणोंसे ग्रस्त हुआ रावण इतना विह्वल हो गया कि वह न तो वाण ग्रहण करनेके लिए समर्थ था और न धनुष ही ॥८८॥ यद्यपि रामने तीव्र वाणोंके द्वारा रावणको पृथिवीपर लुटा दिया था तथापि वह खेद-खिन्न हो पुनः दूसरे रथपर आरूढ हो गया ॥८९॥ इस प्रकार यद्यपि रामने छह बार उसका धनुष तोड़ा तथा छह बार उसे रथरहित किया तथापि आश्चर्यसे भरा रावण जीता नहीं जा सका ॥९०॥ तब परम आश्चर्यको प्राप्त हुए रामने उससे कहा कि आप जब इस तरह मृत्युको प्राप्त नहीं हुए तब अल्पायुष्क नहीं हो, यह निश्चित है ॥९१॥ मैं समझता हूँ कि मेरी भुजाओंसे छोड़े हुए वेगशाली तीक्ष्णमुख वाणोंसे पहाड़ भी ढह जाते हैं फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है ॥९२॥ इतना होनेपर भी जन्मान्तरमे सञ्चित पुण्य कर्मने तेरी रक्षा की है । अब हे विद्याधरराज ! सुन, मैं तुम्हसे कुछ वचन कहता हूँ ॥९३॥ संप्राममे सामने आये हुए मेरे जिस भाईको तुने शक्तिके द्वारा धायल किया है वह मरनेके सन्मुख है, यदि तू अनुमति दे तो उसका मुख देख ले ॥९४॥ तदनन्तर जो प्रार्थना भङ्ग करनेमें द्रिष्ट था और इन्द्रके समान जिसकी शोभा बढ़ रही थी ऐसा रावण 'एवमस्तु' कह कर वैभवके साथ लङ्काकी ओर चला गया ॥९५॥ 'यह एक महाबलवान् शत्रु तो मेरे द्वारा मारा गया' इस प्रकार हृदयमें कुछ धैर्यको प्राप्त हुए रावणने अपने भवनमें प्रवेश किया ॥९६॥ पराक्रमी मनुष्योंके साथ स्नेह रखनेवाले धीर वीर रावणने धायल योद्धाओंकी खोज कराकर उनकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखा तथा इस तरह उनका खेद दूर कर अन्तःपुरमें प्रवेश किया ॥९७॥ भाई कुम्भकर्ण और युद्ध करनेवाले इन्द्रजित् तथा मेघवाहन नामक दो पुत्रोंको शत्रुके पास रुका सुन रावण शोक करने लगा परन्तु प्रियजनोंकी ओर देखते हुए उसने उन्हें शीघ्र ही छुड़ानेकी आशा की ॥९८॥

मालिनीवृत्तम्

इति निजचरितस्यानेकरूपस्य हेतोर्न्यतिगतभवजस्यावश्यलभ्योदयस्य ।
इह जनुषु विचित्रं कर्मणो भावयन्ते फलमविरतयोगाज्जन्तवो भूरिभावाः^१ ॥६६॥
व्रजति विधिनियोगात्कश्चिदेवेह नाशं हृत्तिपुरपरश्च स्वं पदं याति धीरः ।
विफलतृप्युशक्तिर्वन्धनं सेवतेऽन्यो रविचिंतपदार्थोक्तासने हि प्रव्रीणः ॥१००॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे शक्तिसन्तापामिधानं नाम द्वाषष्टितमं पर्व ॥६२॥



गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! नाना प्रकारके भावोंको धारण करनेवाले जीव, अपने विविध आचरणोंके अनुरूप पूर्वभावोंमें जो कर्मका सञ्चय करते हैं उन्हें उसका उदय अवश्य ही भोगना पड़ता है और उसके उदयके अनुरूप ही वे इस जन्ममें निरन्तर नाना प्रकारका फल भोगते हैं ॥६६॥ इस संसारमें कर्मयोगसे कोई नाशको प्राप्त होता है, कोई धीर वीर शत्रुको नष्ट कर अपने पदको प्राप्त होता है, कोई अपनी विशाल शक्तिके निष्फल हो जानेसे बन्धनको प्राप्त होता है और कोई सूर्यके समान योग्य पदार्थोंको प्रकाशित करनेमें समर्थ होता है ॥१००॥

इस प्रकार आर्प नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें लक्ष्मणके शक्ति लगनेके दुःखका वर्णन करनेवाला वासठवौ पर्व समाप्त हुआ ॥६२॥

त्रिषष्टितमं पर्व

ततः समाकुलस्वान्तः पद्मः शोकेन ताडितः । परिप्राप समुद्रेशं यत्र तिष्ठति लक्ष्मणः ॥१॥
 निविचेष्टं तमालोक्य क्षितिमण्डलमण्डनम् । शक्याऽऽलिङ्गितवक्षस्कं पद्मो मूर्च्छासुप्रागतः ॥२॥
 सम्प्राप्य च चिरात् संज्ञां महाशोकसमन्वितः । दुःखाग्निदीपितोऽप्यन्तं विप्रलापमसेवत ॥३॥
 हा वत्स विधियोगेन महादुर्लङ्घ्यमर्णवम् । उत्तोर्यं सङ्गतोऽस्येतामवस्थामतिदारुणाम् ॥४॥
 अयि मद्भक्तिसच्चेष्टो मर्दर्थं सततोद्यतः । क्षिप्रं प्रयच्छ मे वार्षं किं मौनेनावतिष्ठसे ॥५॥
 जानास्येव वियोगं ते मुहूर्त्तमपि नो सहे । कुर्वालिङ्गनमुत्तिष्ठ क्व गतोऽसौ तवादरः ॥६॥
 अद्य केयूरद्वयौ मे भुजावेतौ महायतौ । भावमात्रकरी जातौ निष्क्रियौ निष्प्रयोजनौ ॥७॥
 निक्षेपो गुरुमिस्त्वं मे प्रचत्नेन समर्पितः । गत्वा किमुत्तरं तेभ्यो दास्यामि त्रपयोजितः ॥८॥
 क्व सौमित्रिः क्व सौमित्रिरिति गार्ढं समुत्सुकः । लोकोऽपि हि समस्तो मे प्रचयति प्रेमनिर्भरः ॥९॥
 रत्नं पुरुषवीराणां हारयित्वा त्वकामहम् । मन्ये जीवितमाल्मीर्यं हतं निहतपौरुषः ॥१०॥
 हुण्कृतस्योदयस्थस्य रचितस्य भवान्तरे । फलमेतन्मया प्राप्तं सीतया मे किमन्यथा ॥११॥
 यस्याः कृते ऋतोरन्क शक्या निर्दयनुज्ञया । भवन्तं भूतले सुप्तं पश्यामि दृढमानसः ॥१२॥
 कामाध्याः सुलभाः सर्वे पुरुषस्यागमास्तथा । विविधाश्चैव सम्बन्धा विष्टपेऽस्मिन् यथा तथा ॥१३॥
 पर्यव्य पृथिवीं सर्वां स्थानं पश्यामि तन्ननु । यस्मिन्नवाप्यते आता जननी जनकोऽपि वा ॥१४॥

अथानन्तर जिनका चित्त अत्यन्त व्याकुल हो रहा था तथा जो शोकसे पीडित हो रहे थे ऐसे श्रीराम उस स्थानपर पहुँचे जहाँ लक्ष्मण पड़े थे ॥१॥ जिनका वक्षःस्थल शक्तिसे आलिङ्गित था ऐसे पृथिवीतलके अलंकार स्वरूप लक्ष्मणको निश्चेष्ट देख राम मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥२॥ चिरकाल बाद जब सचेत हुए तब महाशोकसे युक्त एवं दुःख रूपी अग्निसे जलते हुए अत्यन्त विलाप करने लगे ॥३॥ वे कहने लगे कि हाय वत्स ! तू कर्मयोगसे इस दुर्लङ्घ्य सागर को उल्लंघ कर अब इस अत्यन्त कठिन दशाको प्राप्त हुआ है ॥४॥ अये वत्स ! तू सदा मेरी भक्तिमे सचेष्ट रहता था और मेरे कार्यके लिए सदा तत्पर रहता था, अतः शीघ्र ही मुझे वचन दे-मुझसे वार्तालाप कर मौनसे क्यों बैठा है ? ॥५॥ तू यह तो जानता ही है कि मैं तेरा वियोग मुहूर्त भरके लिए भी सहन नहीं कर सकता हूँ अतः उठ आलिङ्गन कर, तेरा वह आदर कहाँ गया ? ॥६॥ आज बाज्रवन्दसे सुशोभित मेरी ये लम्बी भुजाएँ नाममात्रकी रह गईं, तेरे विना सर्वथा निष्फल और निष्क्रिय हो गईं ॥७॥ माता-पिता आदि गुरुजनोंने तुझे धरोहरके रूपमे प्रयत्न पूर्वक मेरे लिए सौंपा था, अब मैं लज्जा रहित हुआ जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा ? ॥८॥ प्रेमसे भरे समस्त लोग अत्यन्त उत्सुक हो मुझसे पूछेंगे कि लक्ष्मण कहाँ है ? लक्ष्मण कहाँ है ? ॥९॥ तू वीर पुरुषोंमे रत्नके समान था सो तुझे हराकर मैं पुरुषार्थ हीन हुआ अपने जीवनको नष्ट हुआ समझता हूँ ॥१०॥ भवान्तरसे जो मैंने दुष्कृत-पाप कर्म किया था वह इस समय उदय मे आ रहा है । और उसीका फल मुझे प्राप्त हुआ है, हे भाई ! मुझे तेरे विना सीतासे क्या प्रयोजन है ? ॥११॥ मुझे उस सीतासे क्या प्रयोजन है जिसके लिए निर्दय-रावणके द्वारा चलायी हुई शक्तिसे तेरा वक्षःस्थल विदीर्ण हुआ है तथा मैं कठोर हृदय हो तुम्हें पृथिवी पर सोया हुआ देख रहा हूँ ॥१२॥ इस संसारमें पुरुषको काम और अर्थ तथा नाता प्रकारके सम्बन्ध सर्वत्र सुलभ है ॥१३॥ समस्त पृथिवीमें धूम कर मैं वह स्थान नहीं देख सका जिसमे भाई माता तथा

हे सुग्रीव सुहृद्वं ते दशितं खेचराधिप । व्रजाऽबुना निजं देशं भामण्डलं भवानपि ॥१५॥
 जीविताशं परित्यज्य दशितां जानकीमिव । ज्वलनं श्वः प्रवेशास्मि समं आत्रा विसंशयम् ॥१६॥
 विभीषण न मे शोकस्तथा सीताऽनुजोद्भव । यथा निरुपकारित्वं मम सम्भाव्यते त्वयि ॥१७॥
 उत्तमा उपकुर्वन्ति पूर्वं पश्चात्तु मय्यमाः । पश्चादपि न ये तेषामवमत्वं हतात्मनाम् ॥१८॥
 कृतपूर्वोपकारस्य साधोर्वन्धुविरोधिनः । कृते नोपकृतं किञ्चित्तेन दह्येतरामहम् ॥१९॥
 भो भामण्डलसुग्रीवौ चित्तां रचयतां द्रुतम् । परलोकं गमिष्यामि कुरुत युक्तमात्मनः ॥२०॥
 ततो लक्ष्मीधर स्मष्टुमिच्छन्त रघुनन्दनम् । अवारयन्महाबुद्धिर्जाम्बूनदमहत्तरः ॥२१॥
 मा स्माद्वीर्यलक्ष्मणं देव दिव्यास्त्रपरिमृच्छितम् । प्रमादो जायते ह्येवं प्रायो हि स्थितिरादृशी ॥२२॥
 प्रपद्यस्व च धीरत्वं कातरत्वं परित्यज । भवन्तीह प्रतीकाराः प्रायो विपद्भीयुषाम् ॥२३॥
 प्रतीकारो विलापोऽत्र नानुदात्तजनोचितः । परमार्थानुसारेण क्रियतां धीरमानसम् ॥२४॥
 उपायः सर्वथा कश्चिदिह देव भविष्यति । जीविष्यति तव आता ननु नारायणो ह्ययम् ॥२५॥
 ततो विषादिनः सर्वे परं विद्याधराधिपाः । उपायचिन्तनासकाश्चक्रुरित्यन्तरात्मनि ॥२६॥
 दिव्या शक्तिरियं शक्या न निराकृतुं भोषधैः । उद्गते ज्योतिषामीशे दुःखं जीवति लक्ष्मणः ॥२७॥
 भयोत्सायं कबन्धादोक्षिमिपाद्वैन सा मही । किङ्करं विहितोत्तुङ्गदूष्यप्राकारमण्डपा ॥२८॥

पिता पुनः प्राप्त हो सकते हैं ॥१४॥ हे विद्याधरोंके राजा सुग्रीव ! तुमने अपनी मित्रता दिखाई ।
 अब अपने देश जाओ । इसी तरह हे भामण्डल ! तुम भी अपने देश जाओ ॥१५॥ इसमें संशय
 नहीं कि मैं प्रिया जानकीके समान जीवनकी आशा छोड़ कर भाईके साथ अग्निमें प्रवेश करूँगा
 ॥१६॥ हे विभीषण ! तुम्हें सीता तथा छोटे भाईके वियोगसे उत्पन्न हुआ शोक उस प्रकार
 पीड़ा नहीं पहुँचा रहा है जिस प्रकार कि तुम्हारा कुल उपकार नहीं कर सकना ॥१७॥ उत्तम
 मनुष्य कार्यके पूर्व तथा मय्यम मनुष्य कार्यके पश्चात् उपकार करते हैं परन्तु जो कार्यके पीछे
 भी उपकार नहीं करते हैं उन दुष्टोंमें नीचताका ही निवास समझना चाहिये ॥२८॥ हे विभीषण !
 तू साधु पुरुष है । तूने मेरा पहले उपकार किया और मेरे पीछे बन्धुसे विरोध किया है फिर भी
 मैं तेरा कुल भी उपकार नहीं कर सका इससे मन हो मन जल रहा हूँ ॥२९॥ हे भामण्डल और
 सुग्रीव ! शीघ्र ही चिता बनाओ । मैं पर लोक जाऊँगा, आप दोनों अपने योग्य कार्य करो-
 जिसमें तुम्हारा कल्याण हो सो करो ॥३०॥

तदनन्तर रामने लक्ष्मणके स्पर्श करनेकी इच्छा की सो उन्हें महाबुद्धिमान् जाम्बूनदने
 मना किया ॥२१॥ उसने कहा कि हे देव ! दिव्यअस्त्रसे मूर्छित लक्ष्मणको मत छोओ क्यों कि ऐसा
 करनेसे प्रायः प्रमाद हो जाता है । इन दिव्य अस्त्रोंकी ऐसी ही स्थिति है ॥२२॥ आप धीरताको
 प्राप्त होओ, कातरता छोड़ो, विपत्तिमें पड़े हुए लोगोंके प्रतीकार इस संसारमें अधिकांश विद्यमान
 हैं ॥२३॥ बुद्ध मनुष्योंके योग्य विलाप करना इसका प्रतीकार नहीं है, हृदयको यथार्थमें धैर्य युक्त
 किया जाय ॥२४॥ हे देव ! इसका कोई न कोई उपाय अवश्य होगा और तुम्हारा भाई जीवित
 होगा क्यों कि यह नारायण है नारायणका असमयमें मरण नहीं होता ॥२५॥ तदनन्तर विषादसे
 भरे सव विद्याधर राजा उपायके चिन्तनमें तत्पर हो मनमें इस प्रकार विचार करने लगे कि यह
 दिव्य शक्ति औषधियोंके द्वारा दूर नहीं की जा सकती और सूर्योदय होने पर लक्ष्मण वड़ी
 कठिनाईसे जीवित रह सकेंगे अर्थात् सूर्योदयके पूर्व इसका प्रतीकार नहीं किया गया तो जीवित
 रहना कठिन हो जायगा ॥२६-२७॥

तदनन्तर किङ्करोने आवे निमेषमें ही शिर रहित धड़ आदिको हटा कर उस युद्धभूमिको
 शुद्ध किया और वहाँ कपड़ेके ऊँचे ऊँचे डेरे बनाते तथा मण्डप आदि खड़े कर दिये ॥२८॥ उस

सप्तकथ्याष्टसम्पन्ना^१ कृतदिवचयनिर्गमा^२ । बहिः कवचितैर्वैर्गुप्ता कामुकधारिभिः ॥२६॥
 प्रथमे गोपुरे नीलभ्राजापाणिः प्रतिष्ठितः । द्वितीये तु नलस्तस्थौ गदाहस्तो घनोपमः ॥३०॥
 विभीषणस्तृतीये तु शूलपाणिमहामनाः । सङ्माल्यविभ्रतर्त्ताङ्गुरीशानवदशोभतः ॥३१॥
 सञ्जदबद्धतूणीरस्तुरीये कुसुदः स्थितः । सुपेणः पञ्चमे ज्ञेयः कुन्तहस्तः प्रतापवान् ॥३२॥
 सुपीवरभुजो वीरः सुग्रीवः स्वयमेव च । रराज भिण्डिमालेन षष्ठे वज्रधरोपमः ॥३३॥
 प्रदेशे सप्तमे राजमहारिपुवलान्तकः । मण्डलाग्रं समाकृष्य स्वयं भामण्डलः स्थितः ॥३४॥
 पूर्वद्वारेण संचारे शरमः शरभध्वजः । रराज पश्चिमे द्वारे कुमारो जाम्बवो यथा ॥३५॥
 प्रदेशशौत्तरद्वारं व्यायामात्पीषसंकुलम् । स्थितश्चन्द्रमरीचिश्च बालिपुत्रो महाबलः ॥३६॥
 एवं विरचिता षोणी खेचरेशः प्रचल्लिभिः । रराज धौरिवात्थर्यं निर्मलैरुद्धमण्डलैः ॥३७॥
 वायव्यः केचिद्वन्ये तु समरादनिवर्त्तिनः । ते स्थिता दक्षिणामाशां व्याप्य चानरकेतवः ॥३८॥

उपजातिवृत्तम्

एवं प्रयत्नाः कृतयोगयश्चाः संदेहिनो लक्ष्मणजीवयोगे ।
 सविस्मयाः सौरभ्युचः ममानाः स्थिताः समस्ता गगनात्मनैः ॥३९॥
 न तस्मिन् नो ययैवो न नागा न चापि देवा विनिवारयन्ति ।
 यदासमा सञ्जितस्तस्य लभ्य-फलं नृणां कर्मणैः प्रकाशम् ॥४०॥

इत्यायं श्रीरविषेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे शक्तिभेदरामविलापामिधानं नाम त्रिषष्टितयं पर्व ॥६३॥

भूमिको सात चौकिओंसे युक्त किया, दिशाओंमें आवागमन बन्द किया और कवच तथा धनुष को धारण करने वाले योद्धाओंने बाहर खड़े रह कर उसकी रक्षा की ॥२६॥ पहले गोपुर पर धनुष हाथमें लेकर नील बैठा, दूसरे गोपुरमें गदा हाथमें धारण करने वाला मेघ तुल्य नील खड़ा हुआ, तीसरे गोपुरमें हाथमें शूल धारण करने वाला उदारचेता विभीषण खड़ा हुआ । वहाँ जिसकी मालाओंमें लगे नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणें सब ओर फैल रही थीं ऐसा विभीषण पेशानेन्द्रके समान सुशोभित हो रहा था ॥३०-३१॥ कवच और तरकसको धारण करनेवाला कुसुद चौथे गोपुर पर खड़ा हुआ । पांचवे गोपुरमें भाला हाथमें लिये प्रतापी सुपेण खड़ा हुआ ॥३२॥ जिसकी भुजाएं अत्यन्त शूल थीं और भिण्डिमाल नामक शस्त्रसे इन्द्रके समान जान पड़ता था ऐसा वीर सुग्रीव स्वयं छठवें गोपुरमें सुशोभित हो रहा था । तथा सातवें गोपुरमें बड़े बड़े शत्रुराजाओंकी सेनाको नीतके घाट उतारने वाला भामण्डल स्वयं तलवार खींच कर खड़ा था ॥३३-३४॥ पूर्व द्वारके मार्ग में शरभ चिह्नसे चिह्नित ध्वजाको धारण करने वाला शरभ पहरा दे रहा था, पश्चिम द्वारमें जाम्बव कुमार सुशोभित हो रहा था और मन्त्रि समूहसे युक्त उत्तर द्वारको घेर कर चन्द्ररश्मि नामका वालिका महाबलवान् पुत्र खड़ा हुआ था ॥३५-३६॥ इस प्रकार प्रयत्नशील विद्याधर राजाओंके द्वारा रची हुई वह भूमि, निर्मल नक्षत्रोंके समूहसे आकाश के समान अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥३७॥ इनके सिवाय युद्धसे नहीं लौटने वाले जो अन्य चानरध्वज राजा थे वे सब दक्षिण दिशाको व्याप्त कर खड़े हो गये ॥३८॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्होंने इस प्रकार प्रयत्न कर योग्य रक्षा की थी, जिन्हें लक्ष्मणके जीवित होने में संदेह था, जो आश्चर्यसे युक्त थे, बहुत भारी शोकसे सहित थे एवं मानो थे ऐसे सब विद्याधर राजा यथा स्थान खड़े हो गये ॥३९॥ अपने ही द्वारा अर्जित कर्म रूपी सूर्यके प्रकाश स्वरूप जो फल मनुष्योंको प्राप्त होने वाला है उसे न मनुष्य दूर कर सकते हैं, न छोड़े, न हाथी, और न देव भी ॥४०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविषेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें शक्तिभेद एवं रामविलापका वर्णन करनेवाला तिरसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६३॥

चतुःषष्टितमं पर्व

नियतं मरणं ज्ञात्वा लक्ष्मणस्य दशाननः । पुत्रव्रातुर्वर्धं बुद्धौ चकारात्यन्तदुःखितः ॥१॥
 हा आतः परमोदारं समाल्प्यन्तर्हितोद्यतः । कथमेतामवाप्नोसि वन्धावस्थामसङ्गताम् ॥२॥
 हा पुत्रौ सुमहावीर्यौ भुजाविभ इदौ मम । विवेर्नियोगतः प्राप्नो भवन्तौ वन्धनं नवम् ॥३॥
 किं करिष्यति वः शत्रुरित्याकुलितमानसः । न वेद्मि दुरितात्माहं विरसं वा करिष्यति ॥४॥
 भवद्भिरुत्तमैः प्रीतेर्वन्धदुःखं समागतैः । बाण्येहं नितरां कष्टं किमिदं मम वर्तते ॥५॥
 एवं गजेन्द्रबद्धनिजयूथमहागजः । अप्रकाशं परं शोकमसेवत स सन्ततम् ॥६॥
 शक्त्या हतं गतं भूमिं श्रुत्वा लक्ष्मीधरं परम् । सम्प्राप्ता जानकी शोकमकरोत्परिदेवनम् ॥७॥
 हा भद्र लक्ष्मण प्राप्तस्त्वमवस्थामिमां हताम् । क्लृते मे मन्दमाग्याया विनोत गुणभूषण ॥८॥
 ईदृशमपि धाम्निभिः भवन्तमहमीक्षितुम् । विमुक्ता इतदैवेन न लभे पापकारिणी ॥९॥
 भवन्तं तादृशं वीरं धृता पापेन शत्रुणा । क्व मे कृतो न सन्देहः प्रवीरं मरणं प्रति ॥१०॥
 विमुक्तो बन्धुभिः ब्राह्मरिष्टे संसक्तमानसः । अवस्थामागतोऽप्येतां कृच्छ्रादुद्योयं सागरम् ॥११॥
 अपि नाम पुनः क्रीडाकोविदं विनयान्वितम् । पश्येयं चास्वात्सवं त्वां परमाद्भुतकारिणम् ॥१२॥

अथानन्तर रावण लक्ष्मणका मरण निश्चित जान अत्यन्त दुखी होता हुआ मनमे पुत्रों और भाईके बचका विचार करने लगा । भावार्थ—रावणको यह निश्चय हो गया कि शक्तिके प्रहारसे लक्ष्मण अवश्य मर गया होगा और उसके प्रतिकार स्वरूप रामपक्षके लोगोंने कैद किये हुए इन्द्र-जित् तथा मेघवाहन इन दो पुत्रों और कुम्भकर्ण भाईको अवश्य मार डाला होगा । इस विचारसे वह मन ही मन बहुत दुःखी हुआ ॥१॥ वह विलाप करने लगा कि हाय भाई ! तू अत्यन्त उदार था और मेरा हित करनेमें सदा उद्यत रहता था सो इस अयुक्त वन्धनकी अवस्थाको कैसे प्राप्त हो गया ? ॥२॥ हाय पुत्रो ! तुम तो महा बलवान् और मेरी भुजाओंके समान दृढ़ थे । कर्मके नियोग से ही तुम इस नूतन वन्धनको प्राप्त हुए हो ॥३॥ शत्रु तुम लोगोंका क्या करेगा ? यह सोचकर मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है । मैं पापी शत्रुके कर्तव्यको नहीं जानता हूँ अथवा निश्चित ही है कि वह अनिष्ट ही करेगा अर्थात् तुम्हें मारेगा ही ॥४॥ आप जैसे उत्तम, प्रीतिके पात्र पुरुष वन्धनके दुःखको प्राप्त हुए हैं इसलिये मैं अत्यधिक पीड़ाको प्राप्त हो रहा हूँ । हाय, यह कष्ट मुझे क्यों रहा है ? ॥५॥ इस प्रकार जिसके यूथ—फुण्डका महागज पकड़ लिया गया है ऐसे अन्य गजराजकी तरह वह रावण निरन्तर अप्रकट रूपसे मन ही मन शोकका अनुभव करने लगा ॥६॥

तदनन्तर जब सीताने सुना कि लक्ष्मण शक्तिके बायल हो पृथिवी पर गिर पड़े हैं तब वह शोकको प्राप्त हो विलाप करने लगी ॥७॥ वह कहने लगी कि हाय भाई लक्ष्मण ! हाय विनोत ! हाय गुण रूपी आभूषण-से सहित ! तुम मुझ अभागिनीके लिए इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥८॥ यद्यपि मैं इस तरह संकटमे पड़ी हुई भी तुम्हारा दर्शन करना चाहती हूँ तथापि मैं अभागिनी पापिनी आपका दर्शन नहीं पा रही हूँ ॥९॥ आप जैसे वीरको मारते हुए पापी शत्रुने किस वीरके मारनेका सन्देह मुझे उत्पन्न नहीं किया है ? अर्थात् जब उसने आप जैसे वीरको मार डाला है तब वह प्रत्येक वीरको मार सकता है ॥१०॥ तुम भाईका भला करनेमें चिन्ता लगा पहले बन्धुजनोंसे विछोहको प्राप्त हुए और अब बड़ी कठिनाईसे समुद्रको पारकर इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥११॥ क्या मैं क्रीडा करनेमें निपुण विनयी, सुन्दर वचन बोलने वाले एवं

कुर्वन्तु सर्वथा देवास्तव जीवितपालनम् । विशल्यतां द्रुत गच्छ सर्वलोकमनोहर ॥१३॥
 एवं विलापिनी कृच्छ्राच्छोकिनी जनकात्मजा । भावप्रीतिभिरानीता खेचरीभिः प्रसान्त्वनम् ॥१४॥
 ज्ञायते देवि नाद्यापि निश्चयो देवरस्य ते । अतो न वर्तते कर्तुं भेतस्मिन् परिदेवनम् ॥१५॥
 भव धीरा प्रवीराणां भवत्येवेदस्यां गतिः । भवन्ति च प्रतीकाराश्चित्रं हि जगतांहितम् ॥१६॥
 इति विद्याधरीवाक्यात्किञ्चित्साऽभूदनाकुलः । शृण्विदानीं यदेतस्मिन्नातं लक्ष्मणपर्वणि ॥१७॥
 प्राप्तो दुःस्यगृहद्वारं पुरुषश्चाद्दर्शनः । प्रभामण्डलवारेण प्रविशन्निति नोदिता ॥१८॥
 कस्त्वं कस्य कुतो वाऽसि किमर्थं वा विविचसि । तिष्ठ तिष्ठ समाचक्ष्व नात्राविदितसंगमः ॥१९॥
 सोऽनोचदध मे मासः साग्रः प्राप्तस्य वर्तते । पद्मं समाभयामीति प्रस्तात्रो नत्वलम्ब्यत ॥२०॥
 अधुना दर्शये शीघ्रं जीवन्तं यदि लक्ष्मणम् । द्रष्टुं भवति बाष्ठा वस्तुत्रोपायं वदाम्यहम् ॥२१॥
 इत्युक्ते पतितुष्टेन भामण्डलमहीश्रुता । दत्त्वा प्रतिनिधिं द्वारे नीतोऽनी पद्मगोचरम् ॥२२॥
 संप्रयुज्य प्रणामं च स जगाद् महादरः । मा स्मित्वास्त्वं महाराज कुमारो जीवति भुवम् ॥२३॥
 सुप्रभा नाम मे माता जनकः शशिमण्डलः । देवगीते पुरेऽहं च चन्द्रप्रतिमसज्जकः ॥२४॥
 जातुकिञ्चिद्वचं व्योम्नि वेलाप्यक्षस्य सूनुना । सहस्रविजयाख्येन वैरिणाऽहं निरीक्षितः ॥२५॥
 ततो मैथुनिकावैरं स्मृत्वा क्रोध समीयुषः । तस्य जात मया साह्रं रणं सुभट्दाहणम् ॥२६॥

परम आश्चर्यके कार्य करने वाले तुम्हें फिर भी देख सकूँगी ? ॥१२॥ देव सब प्रकारसे तुम्हारे जीवनकी रक्षा करें और सब लोगोंके मनको हरण करने वाले तुम शीघ्र ही शल्य रहित अवस्थाको प्राप्त होओ ॥१३॥ इस प्रकार विलाप करने वाली शोकवती सीताको भावसे स्नेह रखने वाली विद्याधरियोने सान्त्वना प्राप्त कराई ॥१४॥ उन्होंने समझाते हुए कहा कि हे देवि ! तुम्हारे देवरका अभीतक निश्चय नहीं जान पड़ा है इसलिए इसके विषयमें विलाप करना उचित नहीं है ॥१५॥ धैर्य धारण करो, बीरोंकी तो ऐसी गति होती ही है । जो हो चुकता है उसको प्रतीकार होते है । यथार्थमें पृथिवीकी चेष्टा विचित्र है ॥१६॥ इस प्रकार विद्याधरियोके कहनेसे सीता कुछ निराकुल हुई । गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अब इस लक्ष्मण पर्वमें जो कुछ हुआ उसे श्रवण कर ॥१७॥

अथानन्तर इसी बीचमें एक सुन्दर मनुष्य डेरेके द्वार पर आकर भीतर प्रवेश करने लगा तब भामण्डलने उसे रोकते हुए कहा कि तू कौन है ? किसका आदमी है ? कहाँसे आया है ? और किस लिए प्रवेश करना चाहता है ? खड़ा रह खड़ा रह सब बात ठीक-ठीक बता, यहाँ अपरिचित लोगोंका आगमन निषिद्ध है ॥१८-१९॥ इसके उत्तरमें उस पुरुषने कहा कि मुझे यहाँ आये कुछ अधिक एक मास हो गया । मैं रामका दर्शन करना चाहता हूँ परन्तु अब तक अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ ॥२०॥ इस समय उनका दर्शन करता हूँ । यदि आप लोगोंकी लक्ष्मणकी शीघ्र ही जीवित दंष्ट्रनेकी इच्छा है तो मैं आपको इसका उपाय बताता हूँ ॥२१॥ उसके इतना कहते ही राजा भामण्डल बहुत सन्तुष्ट हुआ । वह द्वार पर अपना प्रतिनिधि बैठकर उसे रामके समीप ले गया ॥२२॥ उस पुरुषने बड़े आदरसे रामको प्रणाम कर कहा कि हे महाराज ! खेद मत कीजिये, कुमार निश्चित ही जीवित है ॥२३॥ मेरी माताका नाम सुप्रभा तथा पिताका नाम चन्द्रमण्डल है । मैं देवगीतपुरका रहने वाला हूँ तथा चन्द्रप्रतिम मेरा नाम है ॥२४॥ किसी समय मैं आकाशमें घूम रहा था उसी समय राजा वेलाप्यक्षके पुत्र सहस्रविजयने जो कि हमारा शत्रु था मुझे देख लिया ॥२५॥ तदनन्तर स्त्री सम्बन्धी वैरका स्मरणकर वह क्रोधको प्राप्त हो गया

१. दुःखग्रहद्वारं म० । २. विवचसि म० । ३. समन्वय (?) म० । ४. ननु लम्बते म० । न द्रु लम्बते । ५. विद्यास्त्वं ख० । ६. रणे म० ।

ततोऽहं चण्डरवया शक्या तेन समाहृतः । खान्महेन्द्रोदयोधाने नक्तं निपतितो घने ॥२७॥
 पतन्त मां समालोक्य तारकाबिम्बसज्जिसम् । साकेताधिपतिस्तर्की^१ भरतः समदौकृत ॥२८॥
 शक्तिशक्तियतवक्षश्च^२ सिकधन्वनवारिणा । तेनाह कर्णाचैनं साधुना जीवदायिना ॥२९॥
 शक्तिः पलायिता काऽपि जात रूपं च पूर्वकम् । अधिकं च सुखं जात तेन मे शन्धवारिणा ॥३०॥
 तेन मे पुरुषेन्द्रेण भरतेन महात्मना । जन्मान्तरमिदं दत्तं फलं यस्य त्वदीक्षणम् ॥३१॥
 अत्रान्तरे स सम्भ्रान्तः सुरूपो रघुनन्दनः । प्रयच्छ भद्रं जानामि तद्गन्धोदकसम्भवम् ॥३२॥
 सोऽनोचदेवं जानामि श्रूयतां वेदयामि ते । पृष्टो हि स मया राजा तेन चेति निवेदितम् ॥३३॥
 यथा किल समस्तोऽयं देशः पुरसमन्वितः । अभिभूतो महारोगैरासीदप्रतिकारकैः ॥३४॥
 उरोघातमहादाहज्वरलालापारिजवा । सर्वशूलारुचिच्छर्दिश्वयथुस्फोटकादयः ॥३५॥
 क्रुद्धा इव पर तीव्राः तवै रोगास्तदाऽभवन् । यैरत्र विषये प्राणी नैकोऽप्यस्ति न पातितः ॥३६॥
 केवलो द्रोणमेघाहः सभात्यपशुबान्धवः । नृपो देव इवारोगः श्रुतो निजपुरे मया ॥३७॥
 आह्राप स मयाऽवाचि माम त्व नौरुजो यथा । कालक्षेपविनिर्मुक्तं तथा मां कपुं महर्षि ॥३८॥
 ततः सौरभसरुद्धदूरदिग्बल्य जलम् । तेन सिकतोऽहमानाद्य प्राप्तोऽज्ञावतां पराम् ॥३९॥

जिससे उसका मेरे साथ योद्धाओंको भय उत्पन्न करनेवाला—कठिन युद्ध हुआ ॥२६॥ तत्पश्चात् उसने मुझे चण्डरवा नामक शक्तिसे मारा जिससे मैं रात्रिके समय आकाशसे अयोध्याके महेन्द्रोदय नामक सघन वनमें गिरा ॥२७॥ आकाशसे पड़ते हुए ताराबिम्बके समान मुझे देख अयोध्याके राजा भरत तर्क करते हुए मेरे समीप आये ॥२८॥ शक्ति लगनेसे जिसका वक्षःस्थल शल्ययुक्त था ऐसे मुझको देख राजा भरत दयासे दुखी हो उठे । तदनन्तर जीवन दान देनेवाले उन सत्पुरुषने मुझे चन्दनके जलसे सींचा ॥२९॥ उसी समय शक्ति कहीं भाग गई और मेरा रूप पहलेके समान हो गया तथा उस सुगन्धित जलसे मुझे अत्यधिक सुख उत्पन्न हुआ ॥३०॥ पुरुषोंमें इन्द्रके समान श्रेष्ठ उन महात्मा भरतने मुझे यह दूसरा जन्म दिया है जिसका कि फल आपका दर्शन करना है । भावार्थ—शक्ति निकालकर उन्होंने मुझे जीवित किया उसीके फल-स्वरूप आपके दर्शन पा सका हूँ ॥३१॥

इसी बीचमें परम हर्षको प्राप्त हुए, सुन्दर रूपके धारक रामने उससे पूछा कि हे भद्र ! उस गन्धोदककी उत्पत्ति भी जानते हो ? ॥३२॥ इसके उत्तरमें उसने कहा कि हे देव ! जानता हूँ सुनिये मैं आपके लिए बताता हूँ । मैंने राजा भरतसे पूछा था तब उन्होंने इस प्रकार कहा था ॥३३॥ कि नगर ग्रामादिसे सहित यह देश एक बार जिनका प्रतिकार नहीं किया जा सकता था ऐसे अनेक महारोगोंसे आक्रान्त हो गया ॥३४॥ उरोघात—जिसमें वक्षःस्थल-पसली आदिमें दर्द होने लगता है, महादाहज्वर—जिसमें महादाह उत्पन्न होता है, लालापारिजवा—जिसमें मुँहसे लार बहने लगती है, सर्व-शूल—जिसमें सर्वाङ्गमें पीड़ा होती है, अरुचि—जिसमें भोजनादिकी रुचि नष्ट हो जाती है, छर्दि—जिसमें वमन होने लगते है, श्वयथु—जिसमें शरीर पर सूजन आ जाता है, और स्फोटक—जिसमें शरीर पर फोड़े निकल आते हैं, इत्यादि समस्त रोग उस समय मानो परम क्रुद्ध हो रहे थे । इस देशमें ऐसा एक भी प्राणी नहीं बचा था जो कि इन रोगों द्वारा गिराया न गया हो ॥३५-३६॥ केवल, द्रोणमेघ नामका राजा मन्त्रिण्यो पशुओं तथा वन्धु आदि परिवारके साथ अपने नगरमें देवके समान नीरोग बचा था ऐसा मेरे सुननेमें आया ॥३७॥ मैंने उसे बुलाकर कहा कि हे माम ! जिस प्रकार तुम नीरोग हो उसी प्रकार मुझे भी अविलम्ब नीरोग करनेके योग्य हो ॥३८॥ तदनन्तर उसने बुलाकर अपनी सुगन्धिसे दूर-दूर तकके दिग्गुण्डलको व्याप्त करनेवाला जल मुझ पर सींचा और मुझे परम नीरोगता प्राप्त करा

न केवलमहं तेन वारिणांस्तःपुरं मम । पुरं देशश्च संजातं सर्वरोगविवर्जितम् ॥४०॥
 कर्ता रोगसहस्राणां वायुरत्यन्तदुःसहः । प्रणष्टो वारिणा तेन मर्मसम्प्रेदकोविदः ॥४१॥
 मयैवं सततं पृष्टो मामेतद्दुदकं कुतः । येनाऽऽश्चर्यमिदं शीघ्रं कृतं रोगविनाशनम् ॥४२॥
 सोऽजोचक्षुयतां राजश्रुति मे गुणशालिनी । विशल्या नाम दुहिता सर्वविज्ञानकोविदा ॥४३॥
 यस्यां गर्भप्रपन्नायामनेककन्याधिपीडिता । देवी ममोपकाराऽभूत्सर्वरोगविवर्जिता ॥४४॥
 जिनेन्द्रशासनासक्ता नित्यं पूजासमुद्यता । शेषेव सर्वबन्धनां पूजनीया मनोहरा ॥४५॥
 स्नानोदकमिदं तस्या महासौरम्यसङ्गतम् । कुरुते सर्वरोगाणां तत्क्षणेन विनाशनम् ॥४६॥
 ततस्तद्दहमाकर्ण्य द्रोणमेवस्य आपितम् । परं विस्मयमापन्नः सम्पदा तामपूजयम् ॥४७॥
 नगरीतश्च निष्क्रम्य नाम्ना सत्त्वहितं मुनिम् । गणेश्वरं समप्राच प्रणम्य विनयान्वितः ॥४८॥
 ततः 'लेखरपृष्टोऽसौ समाख्यासोन्महायतिः । वैशस्यं चरितं दिव्यं चतुर्हानी सुवत्सलः ॥४९॥
 विदेहे पौण्डरीकाख्ये विपैवै स्वर्गसन्निभे । चक्रो त्रिभुवनानन्दः पुरे चक्रधरऽभवत् ॥५०॥
 नाम्नाऽनङ्गशरा तस्य तनया गुणमण्डना । अपूर्वा कर्मणां सृष्टिर्लावण्यप्लवकारिणी ॥५१॥
 तां प्रतिष्ठपुराबीशः सामन्तोऽप्य पुनर्वसुः । दुर्धराहरदारोप्य विमानं स्मरकोदितः ॥५२॥
 क्रुद्धाचक्रधरादाज्ञां सम्प्राप्यामुप्य किह्वरी । चिरं कृतवतो युद्धं विमानं चूर्णितं भृशम् ॥५३॥
 चूर्ण्यमानविमानेन युक्ता तेनाकुलात्मना । पपात नभसः कान्तिरिव चन्द्रस्य शारदी ॥५४॥

दी ॥३६॥ उस जलसे न केवल मैं ही नीरोग हुआ किन्तु मेरा अन्तःपुर, नगर और समस्त देश रोग रहित हो गया ॥४०॥ हजारों रोगोंको उत्पन्न करनेवाली, अत्यन्त दुःसह, एवं मर्मघात करनेमें निपुण दूषित वायु ही उस जलसे नष्ट हो गई ॥४१॥ मैंने राजा द्रोणमेघसे बार-बार पूछा कि हे माम ! यह जल कहाँसे प्राप्त हुआ है जिसने शीघ्र ही रोगोंको नष्ट करनेवाला यह आश्चर्य उत्पन्न किया है ॥४२॥ इसके उत्तरमें द्रोणमेघने कहा कि हे राजन् ! मुनिये, मेरी, गुणोंसे सुशोभित तथा सब प्रकारके विज्ञानमें निपुण विशल्या नामकी पुत्री है ॥४३॥ जिसके गर्भमें आते ही अनेक रोगोंसे पीड़ित मेरी स्त्री सर्व रोगोंसे रहित हो मेरा उपकार करने वाली हुई थी ॥४४॥ वह जिन-शासनमें आसक्त है, निरन्तर पूजा करनेमें तत्पर रहती है, मनोहारिणी है और शोभायुक्तके समान सर्व बन्धु जनोकी पूज्या है ॥४५॥ यह महा सुगन्धिसे सहित उसीका स्नान-जल है जो कि क्षण भरमें सब रोगोंका नाश कर देता है ॥४६॥ तदनन्तर द्रोणमेघके वह बचन सुन मैं परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ और बड़े वैभवसे मैंने उस पुत्रीकी पूजा की ॥४७॥ नगरीसे निकलकर जब वापिस आ रहा तब सत्यहित नामक मुनिराज जो कि मुनिसंघके स्वामी थे वे मिले । मैंने विनयपूर्वक प्रणाम कर उनसे विशल्याका चरित्र पूछा ॥४८॥ राजा भरत विद्याधर से कहते हैं कि हे विद्याधर ! तदनन्तर मेरे पृच्छने पर चार ज्ञानके धारी, महास्नेही मुनिराज विशल्याका दिव्य चरित्र इस प्रकार कहने लगे कि—॥४९॥

विदेह क्षेत्रमें स्वर्गके समान पुण्डरीक नामक देश है उसके चक्रधर नामक नगरमें त्रिभुवनानन्द नामका चक्रवर्ती रहता था ॥५०॥ उसकी अंगशरा नामकी एक कन्या थी जो गुण रूपी आभूषणोंसे सहित थी, कर्मोंकी अपूर्व सृष्टि थी और सौन्दर्यका प्रवाह वहाने वाली थी ॥५१॥ चक्रवर्ती त्रिभुवनानन्दका एक पुनर्वसु नामका सामन्त था जो कि प्रतिष्ठपुर नगरका स्वामी था । कामसे प्रेरित हो उस दुर्बुद्धिने विमान पर चढ़ाकर उस कन्याका अपहरण किया ॥५२॥ क्रोधसे भरे चक्रवर्तीकी आज्ञा पाकर सेवकोंने उसका पीछा किया और बहुत काल तक युद्ध कर उसके विमानको अत्यधिक चूर कर डाला ॥५३॥ तदनन्तर जिसका विमान चूर चूर किया

विद्यया पर्णलक्ष्म्याऽसौ पुनर्वसुनियुक्तया । अटवोमागता स्वैरं नाम्ना थापदरौरवाम् ॥५५॥
 महाप्रतिभयाकारं महाविद्यामृतामपि । दुःप्रवेशां कृतध्वान्तां महाविटपसङ्घैः ॥५६॥
 नानावल्लीसमाश्लिष्टविविधोत्तुङ्गपादपाम् । पञ्चवोद्भासितैर्मुक्तां शीतैरिव रवेः क्रैः ॥५७॥
 तरङ्गशरभद्रीपिण्याग्रसिंहादिसेविताम् । उच्चावचखरचोणीं महाविवरसङ्घताम् ॥५८॥
 अरण्यानीं गता सेयं महाभयसमागता । कान्ता शिखेव दीपस्य सीदति स्म वराकिंका ॥५९॥
 नदीतीरं समागम्य कृत्वा दिग्वलोकनम् । महाखेदसमायुक्ता स्मृतबन्धुः स्म रोदिति ॥६०॥
 तेनाहं लोकपालेन देवेन्द्रप्रतिभासिता । सुचक्रवर्तिना जाता महादुर्ललितात्मिका ॥६१॥
 विधिना वारुणेनमामवस्थामनुसारिता । किं करोमि परिप्राप्ता वन दुःखनिरीक्षणम् ॥६२॥
 हा मात सकलं लोकं त्वं पालयसि विक्रमी । कथं मामपरित्राणां विपिने नानुकम्पसे ॥६३॥
 हा मातस्तादृशं दुःखं कुक्षिधारणपूर्वकम् । विपद्य साम्प्रतं कस्मात् कुरुषे नानुकम्पनम् ॥६४॥
 हा मेऽन्तःकरणच्छायपरिवर्णगुणोत्तम । अमुक्तां क्षणमप्येकं कथं त्यजसि साम्प्रतम् ॥६५॥
 जातमात्रा मृता नाऽहं कस्माद्दुःखस्य भूमिका । अथवा न विना पुण्यैरभिराश्रितमप्यते ॥६६॥
 किं करोमि कं गच्छामि दुःखिनीं संश्रयामि कम् । कं पश्यामि महाऽन्ये कथं तिष्ठामि पापिनी ॥६७॥
 स्वप्नः किमेव सम्प्राप्तं जन्मेदं नरके मया । सैव किं स्याद्दहं कोऽयं प्रकारः सहसोदरातः ॥६८॥
 एवमादि चिर कृत्वा विप्रलापं सुविह्वला । पशूनामपि तीव्राणां मनोद्ववणकारणम् ॥६९॥

जा रहा था ऐसे उस पुनर्वसुने कन्याको विमानसे छोड़ दिया जिससे वह चन्द्रमाकी शरद् कालीन कान्तिके समान आकाशसे नीचे गिरी ॥५४॥ पुनर्वसुके द्वारा नियुक्त की हुई पर्णलक्ष्मी नामक विद्याके सहारे स्वेच्छासे उतरती हुई वह श्वापद नामक अटवीमें आई ॥५५॥

तदनन्तर जो बड़े बड़े विद्याधरोके लिए भी भय उत्पन्न करने वाली थी, जिससे प्रवेश करना कठिन था, बड़े बड़े वृक्षोंकी सघन झाड़ियोंसे जिससे अन्धकार फैल रहा था, जहाँ विविध प्रकारके ऊँचे वृक्ष नाना लताओंसे आलङ्कित थे, पल्लवोंकी सघन छायासे दूर की हुई सूर्यके किरणोंने भयभीत होकर ही मानो जिसे छोड़ दिया था, जो भेड़िये, शरभ, चीते, तेंदुए तथा सिंहो आदिसे सेवित थी, जहाँकी कठोर भूमि ऊँची नीची थी, और जो बड़े-बड़े विलोसे सहित थी ऐसी उस महा अटवीमें जाकर महाभयको प्राप्त हुई बेचारी अनंगसेना दीपककी शिखाके समान कोंपने लगी ॥५६-५८॥ नदीके तीर आकर और सत्र दिशाओंकी ओर देख महाखेदसे युक्त होती हुई वह कुटुम्बीजनोको चितार-चितार कर रोने लगी ॥६०॥ वह कहती थी कि हाय मैं लोककी रक्षा करने वाले, इन्द्रके समान सुशोभित उन चक्रवर्ती पितासे उत्पन्न हुई और महानेहसे लालित हुई । आज प्रतिफूल दैवसे—माग्यकी विपरीततासे इस अवस्थाको प्राप्त हुई हूँ । हाय जिसका देखना भी कठिन है ऐसे इस वनमें आ पड़ी हूँ क्या करूँ ? ॥६१-६२॥ हाय पिता ! तुम तो महापराक्रमी, सब लोककी रक्षा करते हो फिर वनमें असहाय पड़ी हुई मुझ पर दया क्यों नहीं करते हो ? ॥६३॥ हाय माता ! गर्भ धारणका वैया दुःख सहकर इस समय दया क्यों नहीं कर रही हो ? ॥६४॥ हाय मेरे अन्तःकरणके समान प्रवृत्ति करने वाले तथा उत्तम गुणोंसे युक्त परिजन ! तुमने तो मुझे एक क्षणके लिए भी कभी नहीं छोड़ा फिर इस समय क्यों छोड़ रहे हो ? ॥६५॥ मैं दुःखिया क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किसका आश्रय लूँ ? किसे देखूँ और इस महावनमें मैं पापिनो कैसे रहूँ ? ॥६६॥ क्या यह स्वप्न है ? अथवा नरकमें मेरा जन्म हुआ है ? क्या मैं बही हूँ अथवा यह कौनसी दशा सदसा प्रकट हुई है ? ॥६७-६८॥ इस प्रकार चिरकाल तक चिलापकर वह अत्यन्त विह्वल हो गई । उसका वह चिलाप क्रूर पशुओंके

क्षुत्तृणापरिदग्धाङ्गा शोकसागरवर्तिनी । फलपर्णादिभिर्द्वैतमकरोद्दीनमानसा ॥७०॥
 अरण्याम्बुजलण्डानां शोभासर्वस्वमर्दनः । हिमकालस्तथा निन्ये भ्रुवं कर्मानुभावतः ॥७१॥
 श्वस्तपशुगणस्तीक्ष्णः शोपितानेकपादपः । सोढस्तथैव रुचङ्गो ग्रीष्मसूर्यातपस्तथा ॥७२॥
 स्फुरच्छब्दाचिरन्ज्योतिः शीतधारान्धकारितः । घनकालोऽपि निस्तीर्णः प्रवृत्तौघो यथा तथा ॥७३॥
 निरङ्गाय स्फुटितं क्षामं शीर्णकेशं मलावृतम् । वर्षोपहतचित्राभं स्थितं तस्याः शरीरकम् ॥७४॥
 सूर्यालोकहतच्छाया क्षीणेव शशिनः कला । जाता तन्वी तनुस्तस्या लावण्यपरिवर्जिता ॥७५॥
 कपित्थवनमानन्नं फलैः पाकाभिधूसरैः । श्रित्वा तातमनुध्यायं करुणं सा स्म रोदिति ॥७६॥
 जाता चक्रधरेणाऽहं प्राप्तावस्थामिमाम् वने । भ्रुवं कर्मानुभावेन सुपापेनाभ्यजन्मना ॥७७॥
 इत्यश्रुदुर्दिनीभूतवदना वीक्षितचित्तिः । कलान्यादाय सा शान्ता पतितानि स्वपाकतः ॥७८॥
 उपवासैः कृशीभूता परं पहाष्टमादिभिः । अम्बुना वाकरोद् बाला पारणामेकवेलिकाम् ॥७९॥
 शयनीयगतैः पुष्पैर्वा स्वकेशच्युतैरपि । अग्रहीत् खेदमेवासौ स्थण्डिलेशेत केवले ॥८०॥
 पितुः सङ्गीतकं श्रुत्वा या प्रबोधमसेवत । सेषं शिवादिनिर्मुक्तैरश्रुना भीषणैः स्वयैः ॥८१॥
 एवं वर्षसहस्राणि क्षीणि दुःखमहासहा । अकरोत्सा तपो बाह्यं प्रासुकआहारपारणा ॥८२॥
 ततो निर्वेदमापन्ना त्वैक्त्वाहारं चतुर्विधम् । निराशतां गता धीरा शिता सल्लेखनामसौ ॥८३॥

भी मनको पिघला देने वाला था । ६६॥ तदनन्तर भूख प्यासकी बाधासे जिसका शरीर फुलस गया था, जो निरन्तर शोक रूपी सागरमें निमग्न रहती थी और जिसका मन अत्यन्त दीन हो गया था ऐसी अनंगसेना फल तथा पत्रोंसे निर्वाह करने लगी ॥७०॥ वनके कमल समूहकी शोभाका सर्वस्व हरने वाला शीत काल आया सो उसने कर्मोंका फल भोगते हुए व्यतीत किया ॥७१॥ जिसमें पशुओंके समूह साँसे भरते थे, अनेक वृक्ष सूख गये थे, तथा जिससे शरीर अत्यन्त रुक्ष पड़ गया था ऐसे ग्रीष्म ऋतुके सूर्यका आतप उसने उसी प्रकार सहन किया ॥७२॥ जिसमें तीक्ष्ण बिजली कौंध रही थी, शीतल जलधारासे अन्धकार फैल रहा था, और नदियोंके प्रवाह बढ़ रहे थे ऐसा वर्षा काल भी उसने जिस किसी तरह पूर्ण किया ॥७३॥ कान्ति दीन, फटा, दुबला, बिखरे बालोंसे युक्त एवं मलसे आवृत उसका शरीर वर्षासे भीगे चित्रके समान निष्प्रभ हो गया था ॥७४॥ जिस प्रकार चन्द्रमाकी क्षीण कला सूर्यके प्रकाशसे निष्प्रभ हो जाती है उसी प्रकार उसका दुर्बल शरीर लावण्यसे रहित हो गया ॥७५॥ परिपाकके कारण घूसर वर्षा से युक्त फलोंसे भुके हुए कैथाओंके वनमें जाकर वह बार बार पिताका स्मरण कर रोने लगी थी ॥७६॥ मैं चक्रवर्तीसे उत्पन्न हो वनमें इस दशाको प्राप्त हो रही हूँ सो निश्चित ही जन्मान्तरमें किये हुए पापकर्मके उदयसे मेरी यह दशा हुई है ॥७७॥ इस प्रकार अधिरक्ष अश्रवर्षासे जिसका मुख दुर्दिनके समान हो गया था ऐसी वह अनंगसेना नीची दृष्टिसे पृथिवीकी ओर देख पक जानेके कारण अपने आप गिरे हुए फल लेकर शान्त हो जाती थी ॥७८॥ वेला तैला आदि उपवासोंसे जिसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था ऐसी वह बाला जब कभी केवल पानीसे ही पारणा करती थी सो भी एक ही बार ॥७९॥ जो अनंगसेना पहले अपने केशोंसे च्युत हो शय्या पर पड़े फूलोंसे भी खेदको प्राप्त होती थी आज वह मात्र पृथिवी पर शयन करती थी ॥८०॥ जो पहले पिताका संगीत सुन जागती थी वह आज शृगाल आदिके द्वारा छोड़े हुए भयंकर शब्द सुनकर जागती थी ॥८१॥ इस प्रकार महादुःख सहन करती तथा बीच बीचमें प्रासुक आहारकी पारणा करती हुई उस अनंगसेनाने तीन हजार वर्ष तक बाह्य तप किया ॥८२॥ तदनन्तर जब वह निराशताको प्राप्त हो गई तब विरक्त हो उस धीर वीराने चारों प्रकार

बाह्यं हस्तशताद्भूमि न गन्तव्य मयेति च । जग्राह नियमं पूर्वं श्रुतं जैनेन्द्रशासने ॥८४॥
 नियमावधितोऽतीते पट्टरात्रेऽथ नमश्चरः । लब्धिदास इति ख्यातो वंदित्वा मेरुमात्रवत् ॥८५॥
 तामपश्यत्तो नेतुरामरे मे तां समुद्यतः । पितुः स्थान निषिद्धश्च तथा सल्लेखनोक्तिः ॥८६॥
 लब्धिदासो लघु प्राप्तः सकाशं चक्रवर्त्तिनः । सम तेन समायातस्तमुद्देश्यमसौ गतः ॥८७॥
 अथ तामतिरौद्रेण शंयुनाऽतिस्थवीयसा । मच्च्यमाणासौ दृष्ट्वा समाधानप्रदोऽभवत् ॥८८॥
 प्राप्तसल्लेखनां चीणां संवृत्तामपराभिव । तादृशीं तां सुतां दृष्ट्वा चर्का निर्वेदमागतः ॥८९॥
 समं पुत्रसहस्राणां द्वाविंशत्या गतस्पृहः । महावैराग्यसम्पन्नः श्रमणत्वमुपागतः ॥९०॥
 कन्या त्वथ क्षुयात्तेन प्राप्तेनातिस्थवीयसा । नत्तिताञ्जगरेणागास्तवीं सानत्कुमारताम् ॥९१॥
 जानत्याऽपि तथा मृत्युं न समुत्सारितः शयुः । माभूस्त्वल्पापि पीडाऽप्य काचिदित्यनुकम्पया ॥९२॥
 उत्सार्प्य खेचराण्य संस्थे समस्तांश्च पुनर्वसुः । तदानन्दशरामिष्टामपश्यन्विहरावनौ ॥९३॥
 द्रुमसेनसुनेः पार्श्वे गृहीतं श्रमणव्रतम् । अत्यन्तदुःखितस्तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥९४॥
 कृत्वा निदानमेतस्याः कृतेऽयं प्राप्तपञ्चतः । सुरो जातश्च्युतश्चाय जातो लचमणसुन्दरः ॥९५॥
 प्रपन्नो सुरलोकाच्च जाताऽनन्दशराचरी । सुतेयं द्रोणमेघव्य विशल्येति प्रकीर्त्तिता ॥९६॥
 तैत्स्मिन्नगरे देशे भरते वा महागुणा । पूर्वकर्मानुभावेन सञ्जाताऽप्यन्तमुत्तमा ॥९७॥
 परमं ज्ञानवारीढं तेन सत्या महागुणम् । सोपसर्गं कृतं पूर्वं तथा येन महातपः ॥९८॥

का आहार त्याग कर सल्लेखना धारण कर ली ॥८३॥ उसने जिन-शासनमे पहले जैसा सुन रक्खा था वैसा नियम ग्रहण किया कि मैं सौ हाथसे वाहरकी भूमिमे नहीं जाऊँगी ॥८४॥

अथानन्तर उसे सल्लेखनाका नियम लिये हुए जब छह रात्रियों व्यतीत हो चुकी तब लब्धिदास नामक एक पुरुष मेरु पर्वतकी वन्दना कर लौट रहा था सो उसने उस कन्याको देखा । तदनन्तर जब लब्धिदास उसे पिताके घर ले जानेके लिए उद्यत हुआ तब उसने यह कह कर मना कर दिया कि मैं सल्लेखना धारण कर चुकी हूँ ॥८५-८६॥ तत्पश्चात् लब्धिदास शीघ्र ही चक्रवर्तीके पास गया और उसके साथ पुनः उस स्थान पर आया ॥८७॥ जब वह आया तब अत्यन्त भयंकर एक बड़ा मोटा अजगर उसे खा रहा था यह देख उसे समाधान करनेमे तत्पर हुआ ॥८८॥ तदनन्तर जिसने सल्लेखना धारण की थी, और दुर्बलताके कारण जो ऐसी जान पड़ती थी मानो दूसरी ही हो ऐसी उस पुत्रीको देख चक्रवर्ती वैराग्यको प्राप्त हो गया ॥८९॥ जिससे उसने सब प्रकारकी इच्छा छोड़ महावैराग्यसे युक्त हो वाईस हजार पुत्रोंके साथ दीक्षा धारण कर ली ॥९०॥ भूखसे पीड़ित होनेके कारण सामने आये हुए उस अत्यन्त स्थूल अजगरके द्वारा खाई हुई वह कन्या मर कर ईशान स्वर्गमे गई ॥९१॥ यद्यपि वह जानती थी कि इस अजगरसे मेरी मृत्यु होगी तथापि उसने उसे इस दया भावसे कि इसे थोड़ी भी पीड़ा नहीं हो दूर नहीं हटाया था ॥९२॥

तदनन्तर जब पुनर्वसु युद्धमे समस्त विद्याधरोको परास्त कर आया तब वह अपनी प्रेमपात्र अनंगशराको नहीं देख विरहकी भूमिमे पड़ बहुत दुखी हुआ । अन्तमे उसने द्रुमसेन नामक सुनिराजके समीप दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली और अत्यन्त कठिन तप तप कर इसीका निदान करता हुआ मरा जिससे स्वर्गमे देव हुआ और वहाँसे च्युत हो यह अत्यन्त सुन्दर लक्ष्मण हुआ है ॥९३-९४॥ पहलेकी अनङ्गराजा देवलोकेसे च्युत हो राजा द्रोणमेघकी यह विशल्या नामकी पुत्री हुई है ॥९६॥ महागुणोंको धारण करने वाली विशल्या इस नगर देश अथवा भरत क्षेत्रमे पूर्वकर्माके प्रभावसे अत्यन्त उत्तम हुई है ॥९७॥ यतश्च उसने पूर्वं भवमे उत्सर्ग सहित महातप

अनेन वारिणाऽमुस्मिन्देशेऽयं विषमोऽनिलः । महारोगकरो यातः क्षयं शासितविष्टपः ॥६६॥
 कुतोऽयमीदृशो वायुरिति पृष्टेन आपितम् । मुनिना भरतायैवं तदा कौतुकयोगिने ॥१००॥
 गजालङ्घनगरादेव विन्ध्यो नामा महाधनः । अयोध्यां सार्धवाद्देशः खरोद्गमहिषादिभिः ॥१०१॥
 मासानेकादशायुध्यां त्वन्नैर्यामसौ स्थितः । तस्यैकमहिपस्तीव्ररोगमारेण पीडितः ॥१०२॥
 पुरमध्ये महादुःखं कृत्वा कालं व्रणान्वितः । अकामनिर्व्रायोगादेवभूयमशिश्रियत् ॥१०३॥
 जातो वायुकुमारोऽसावथकेतुर्महाबलः । बाध्यावर्त्तं इति ख्यातो वायुदेवमहेश्वरः ॥१०४॥
 श्रेयस्करपुरस्वामी रसातलजातो महान् । असुरो भासुरः क्रूरो मनोयातक्रियासहः ॥१०५॥
 अज्ञासीत्सावधिज्ञानः प्राप्तपूर्वपराम्भवम् । सोऽहं महिषकोऽभूयं प्राप्नोऽयोध्यां तदा व्रणी ॥१०६॥
 क्षुत्पूण्यापरिदिग्वाङ्मो महारोगनिपीडितः । रप्याकर्दमनिर्भग्नस्ताडितो जनसंपदा ॥१०७॥
 कृत्वा मे मस्तके पादं तदाऽयासीज्जलोऽखिलः । पतितस्य विचेष्टस्य निर्दयो विद्वमलाक्षितम् ॥१०८॥
 अचिरात्प्रिग्रहं घोरं तस्य चेन्न करोम्यहम् । अनर्थकं सुरत्वं मे तदेवं जायते सह ॥१०९॥
 इति ध्यात्वा पुरेऽमुष्मिन् सदेशे क्रोधपूरितः । प्रावर्त्तयदसौ वायुं नामारोगसमाबहम् ॥११०॥
 सोऽयं नीतो विशल्याना वारिणा प्रलथं क्षणात् । भवति हि वलीर्यासो बलिनामपि विष्टपे ॥१११॥
 यथा सत्त्वहितेनेदं भरताय निवेदितम् । भरतेनापि मे तद्वन्मया ते पञ्च वेदितम् ॥११२॥

किया था इसलिए उसका यह ज्ञानजल महागुणोंसे सहित है ॥६८॥ इस देशमें जिसने सब लोगों पर शासन जमा रक्खा था तथा जो महारोग उत्पन्न करने वाली थी ऐसी विषय वायु इस जलसे क्षयको प्राप्त हो गई है ॥६९॥ 'यह वायु ऐसी क्यों हो गई?' इस प्रकार पूछने पर उस समय मुनिराजने कौतूहलको धारण करने वाले भरतके लिए इस प्रकार कहा कि ॥१००॥

विन्ध्या नामका एक महा धनवान् व्यापारी गधे, ऊँट तथा भैंसे आदि जानवर लड़ाकर गजपुर नगरसे आया और तुम्हारी उस अयोध्यानगरीमें ग्यारह माह तक रहा । अनेक वर्षोंसे सहित उसका एक भैंसा तीव्र रोगके भारसे पीडित हो नगरके बीच भरा और अकाम निर्जराके योगसे देव हुआ ॥१०१-१०३॥ वह अश्वचिह्नसे चिह्नित महाबलवान् वायुकुमार जातिका देव हुआ । बाध्यावर्त्त उसका नाम था, वह वायुकुमार देवोंका स्वामी था, श्रेयस्करपुर नगरका स्वामी, रसातलमें निवास करने वाला देदीग्यमान, क्रूर और इच्छानुसार क्रियाओंको करने वाला वह बहुत बड़ा भवनवासी देव था ॥१०४-१०५॥ अवधिज्ञानसे सहित होनेके कारण उसने पूर्वभवंमें प्राप्त हुए पराभवको जान लिया । उसे विदित हो गया कि मैं पहले भैंसा था और अयोध्यामें आकर रहा था । उस समय मेरे शरीर पर अनेक घाव थे । भूख प्यास आदिसे मेरा शरीर लीप्त था, अनेक रोगोंसे पीडित हुआ मैं मार्गकी कीचड़में पड़ा था, लोग मुझे पीटते थे । उस समय मैं गोबर आदि मलसे व्याप्त हुआ निश्चेष्ट पड़ा था और सब लोग मेरे मस्तक पर पैर रखकर जाते थे ॥१०६-१०८॥ अब यदि मैं शीघ्र ही उसका भयंकर निग्रह नहीं करता हूँ—बढ़ला नहीं चुकाता हूँ तो मेरा यह इस प्रकारका वड्डप्पन युक्त देव पर्याय पाना व्यर्थ है ॥१०९॥ इस प्रकार विचारकर उसने क्रोधसे पूरित हो उस देशमें नाना रोगोंको उत्पन्न करने वाली वायु चलाई ॥११०॥ यह वही देव विशल्याके स्नान जलके द्वारा क्षण भरमें विनाशको प्राप्त कराया गया है सो ठीक ही है क्योंकि लोकमें बलवानोंके लिए भी उनसे अधिक बलवान् होते हैं ॥१११॥ चन्द्रप्रतिम विद्याधर, रामसे कहता है कि यह कथा सत्त्वहित नामा मुनिने राजा भरतसे जिस प्रकार कही और भरतने जिस प्रकार मुझसे कही उसी प्रकार हे राम । मैंने

अभिपेक्षजलं तस्या तदा नेतुमतिव्वरम् । यत्नं कुरुत नास्त्यन्या गतिर्लक्ष्मणजीविते ॥११३॥

उपेन्द्रवज्रा

इति स्थितानामपि मृत्युमार्गे जनैरशेषैरपि निश्चितानाम् ।
महात्मनां पुण्यफलोदयेन भवत्युपायो विदितोऽमुदायी ॥११४॥

उपजातिः

अहो महान्तः परमा जनास्ते येषां महापत्तिसमागतानाम् ।
जनो बढत्युद्भवनाश्रुपायं रवे समस्तस्वनिवेदनेन ॥११५॥

इत्यार्षे श्रीरविष्याचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे विशल्यापूर्वभवामिधानं नाम चतुःषष्टितमं पर्व ॥६४॥



आपसे कही है ॥११२॥ इसलिए शीघ्र ही विशल्याका स्नान जल लानेका यत्न करो । लक्ष्मणके जीवित होनेका और दूसरा उपाय नहीं है ॥११३॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि जो इस तरह मृत्युके मार्गमें स्थित हैं तथा समस्त लोग जिनके मरणका निश्चय कर चुके हैं ऐसे महापुरुषोंके पुण्यकर्मके उदयसे जीवन प्रदान करने वाला कोई न कोई उपाय विदित हो ही जाता है ॥११४॥ अहो ! वे पुरुष अत्यन्त महान् तथा उत्कृष्ट हैं कि महाविपत्तिमें पड़े हुए जिनके लिए सूर्यके समान उज्ज्वल पुरुष यथार्थ तत्त्वका निवेदन कर विपत्तिसे निकलनेका उपाय बतलाते हैं—प्रकट करते हैं ॥११५॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविष्याचार्य कथित पद्मपुराणमें विशल्याके पूर्वभक्ता वर्णन करने वाला चौसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६४॥

पञ्चषष्टितमं पर्व

प्रतीन्दोर्वचनं श्रुत्वा राघवोऽत्यन्तसमदः । समं विद्याधराधीशैर्विस्मितस्तमपूजयत् ॥१॥
 अजनाजविदेहाजसुताराजास्ततः कृताः । अयोध्यां गमिनः कृत्वा सन्मंत्रं निश्चितं द्रुतम् ॥२॥
 ततश्चित्तमात्रेण ते ययुर्यत्र पार्थिवः । भरतः प्रवरः कीर्त्या प्रतापी गुणसङ्गतः ॥३॥
 सुतस्योत्थाप्यमानस्य सहसास्यसुखासिका । मा भूदिति सुख गीतं वैदेहादिभिराश्रितम् ॥४॥
 ततः सङ्गीतमाकर्ण्य दिव्यं श्रुतिमनोहरम् । शनैर्भावसमाकुलमुत्तस्यौ कोशलेश्वरः ॥५॥
 ज्ञापिताः सेवितद्वारास्ततस्तस्मै समागताः । वैदेहा हरणं प्रोचुर्निपात लक्ष्मणस्य च ॥६॥
 अथ शोकरसादुप्राप्तं णमनाश्रुतः परम् । राजा क्रोधरसं भेजे परम भरतश्रुतिः ॥७॥
 महाभेरीध्वनिं चाश्रु रणप्रीतिमकारयत् । सकला येन साकेता सप्राप्ताऽऽकुलतां परम् ॥८॥
 लोको जगाद् किं न्वेतद्वर्तते राजसधनि । महान् कलकलः शब्दः श्रूयतेऽत्यन्तभीषणः ॥९॥
 किन्तु रात्रौ निशीथेऽस्मिन् काले दुष्टमतिः परः । अतिवार्ययुतः प्राप्तो भवेदापातपंडितः ॥१०॥
 कश्चिद्वक्त्रगतां कान्तां त्यक्त्वा सन्नद्धमुद्यतः । सप्ताहनिरेपक्षोऽन्यः सायके करमर्पयत् ॥११॥
 सुगन्धबालकसादाय काचिद्वक्त्रे मृगेक्षणा । हस्तं स्तनतटे न्यस्य चक्रे दिग्वलोकनम् ॥१२॥
 काचिद्वीर्याकृतं त्यक्त्वा निद्रारहितलोचना । सुसमाश्रयते कान्त शयनार्थैकपार्श्वगम् ॥१३॥

अथानन्तर प्रतिचन्द्र विद्याधरके वचन सुन जिन्हें अत्यन्त हर्ष हो रहा था ऐसे श्रीरामने आश्चर्यचकित हो विद्याधर राजाओंके साथ-साथ उसका बहुत आदर किया ॥१॥ और शीघ्र ही निश्चित मन्त्रणाकर हनुमान् भागण्डल तथा अङ्गदकी अयोध्याकी ओर रवाना किया ॥२॥ तदनन्तर इच्छा करते ही वे सब वहाँ पहुँच गये जहाँ उत्तम कीर्तिके धारक प्रतापी एवं गुणवान् राजा भरत विराजमान थे ॥३॥ उस समय भरत सोये हुए थे इसलिए सहसा उठानेसे उन्हें दुःख न हो ऐसा विचार कर भागण्डल आदिने सुखदायी संगीत प्रारम्भ किया ॥४॥ तदनन्तर कर्ण और मनकी हरण करने वाले उस भावपूर्ण दिव्य संगीतको सुनकर भरत महाराज धीरे-धीरे जाग उठे ॥५॥ हनुमान आदि द्वारके पास तो खड़े ही थे इसलिए जागते ही खबर देकर उनके पास जा पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने सीताका हरा जाना तथा शक्ति लगनेसे लक्ष्मणका गिर जाना यह समाचार कहा ॥६॥

अथानन्तर णमनाश्रमे उत्पन्न हुए, अतिशय उग्र शोकरससे राजा भरत परम क्रोधको प्राप्त हुए ॥७॥ उन्होंने उसी समय रणमे प्रीति उत्पन्न करानेवाली रणभेरीका महाशब्द कराया जिसे सुनकर समस्त अयोध्या परस आकुलताको प्राप्त हो गई ॥८॥ लोग कहने लगे कि राजभवनमें अत्यन्त भय उत्पन्न करने वाला महान् कल-कल शब्द सुनाई पड़ रहा है सो यह क्या कारण है ? ॥९॥ क्या इस अर्धरात्रिके समय दुष्ट बुद्धिका धारक तथा आक्रमण करनेमें निपुण अतिवीर्यका पुत्र आ पहुँचा है ? ॥१०॥ कोई एक योद्धा अंकमें स्थित कान्ताको छोड़ कवच धारण करनेके लिए उद्यत हुआ और कोई दूसरा योद्धा कवचसे निरपेक्ष हो तलवार पर हाथ रखने लगा ॥११॥ कोई मृगनयनी स्त्री, सुन्दर बालकको गोदमे ले तथा स्तन तट पर हाथ रखकर दिशाओंका अवलोकन करने लगी अर्थात् भयसे इषर-उधर देखने लगी ॥१२॥ कोई एक स्त्री ईर्ष्या वश पतिसे हटकर पड़ी हुई थी और उसके नेत्रोंसे नींद नहीं आ रही थी । रणभेरीका शब्द सुन वह इतनी भयभीत हुई कि ईर्ष्याभाव छोड़ शय्याके एक ओर पड़े हुए निद्रातिमग्न पतिसे जा

पार्थिवप्रतिभः कश्चिद्वनी कान्तामुदाहरत् । कान्ते बुद्धयस्व किं शेषे किमपीदमशोभनम् ॥१४॥
 राजालये समुद्योतो लक्ष्यते जात्वलक्षितः । सन्नद्धा रथिनो मत्ता करिणोऽभी च सहिताः ॥१५॥
 नीतिज्ञः सततं मान्यसम्प्रभौः सुपण्डितैः^३ । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोपाय स्वापतेयं प्रयत्नतः ॥१६॥
 शतकौम्भानिमान्कुम्भान् कलधौतमयास्तथा । मणिरत्नकरडांश्च कुरु भूमिगुहान्तरे ॥१७॥
 पट्टवस्त्रादिसम्पूर्णानिमान् गर्भालयान् द्रुतम् । तालयान्यदपि द्रव्यं दुःस्थितं सुस्थितं कुरु ॥१८॥
 शत्रुघ्नोपि सुसंभ्रान्तो निद्रारुणितलोचन । आरुह्य द्विरहं शीघ्रं घण्टाटङ्कारनादिनम् ॥१९॥
 सचिवैः परमैर्युक्तं शस्त्राधिष्ठितपाणिभिः । विमुञ्चन् बकुलामोदं चलदम्बरपद्मम् ॥२०॥
 भरतस्यालये प्राप्तस्तथाऽन्ये नरपुङ्गवाः । शस्त्रहस्ताः सुसंनद्धा नरेन्द्रहिततत्पराः ॥२१॥
 यक्षस्त्राणां नरेशानां युद्धाय स्वयमुद्यतः । विनीताधिपतिः प्रोक्तो नत्वा आमंडलादिभिः ॥२२॥
 दूरे लङ्कापुरी देव गन्तुं नार्हति तां विशुः । क्षुब्धोर्मिजलजो घोरो वर्णते सागरोऽन्तरे^४ ॥२३॥
 मया किं तर्हि कर्तव्यमिति राक्षि कृतस्त्वने । उच्चारित विशल्यायाश्चरितं तैर्मनोहरम् ॥२४॥
 अधप्रमथनं नाथ पुण्यं जीवितपालनम् । द्रोणमेघसुतास्नानवारिदानं द्रुतं भज ॥२५॥
 प्रसादं कुरु यास्यामो यावन्नोदेति भास्कर । हतोऽरिमयनः शक्त्या दुःखं तिष्ठति लक्ष्मणः ॥२६॥
 भरतेन ततोऽवाचि किं वा ग्रहणमम्भसा । स्वयं सा सुभगा तत्र यातुं द्रोणधनात्मजा ॥२७॥
 सुनीशेन समादिष्टा तस्यैवास्ती सुभामिनी । स्मरन्त्यमुत्तमं सा हि कस्य वाऽन्यस्य युज्यते ॥२८॥

मिली—उससे सटकर पढ़ रही ॥१३॥ राजाकी तुलना प्राप्त करने वाला कोई धनी मनुष्य अपनी सीसे कहने लगा कि हे प्रिये ! जागो, क्यों सो रही हो ? यह कोई अशोभनीय बात है ॥१४॥ राजभवनमें जो कभी दिखाई नहीं दिया ऐसा प्रकाश दिखाई दे रहा है । रथोंके सवार तैयार खड़े हैं और ये मदनोन्मत्त हाथी भी एकत्रित हैं ॥१५॥ नीतिके जानकार पण्डित जनोंको सदा सावधान रहना चाहिये । उठो उठो धनको प्रयत्न पूर्वक छिपा दो ॥१६॥ ये सुवर्ण और चोर्दीके घट तथा मणि और रत्नोंके पिटारे तलघुहके भीतर कर दो ॥१७॥ रेशमी वस्त्र आदिसे भरे हुए इन गर्भगृहोंको शीघ्र ही बन्द कर दो तथा और जो दूसरा सामान अस्त-व्यस्त पड़ा है उसे ठीक तरहसे रख दो ॥१८॥ जिसके नेत्र निद्रासे लाल-लाल हो रहे थे ऐसा वज्रपाया हुआ शत्रुघ्न भी घंटाका शब्द करने वाले हाथी पर शीघ्र ही सवार हो भरतके महलमें जा पहुँचा । शत्रुघ्न, हाथीमें शस्त्र धारण करनेवाले उत्तमोत्तम मन्त्रियोंसे सहित था, बकुलकी सुगन्धिको छोड़ रहा था तथा उसके वस्त्र चञ्चल-चञ्चल हो रहा था । शत्रुघ्नके सिवाय दूसरे अन्य राजा भी जो हाथीमें शस्त्र धारण किये हुए थे, कवचोंसे युक्त थे तथा राजाका हित करनेमें तत्पर थे भरतके महलमें जा पहुँचे ॥१९-२१॥ अयोध्याके स्वामी भरत, राजाओंको आज्ञा देते हुए स्वयं युद्धके लिए उद्यत हो गये तब आमण्डल आदिने नमस्कार कर कहा कि ॥२२॥ हे देव ! लंकापुरी दूर है, वहाँ जानेके लिए आप समर्थ नहीं हैं, जिसकी लहरे और शङ्ख क्षोभको प्राप्त हो रहे हैं ऐसा भयंकर समुद्र वीचमें पड़ा है ॥२३॥ तो मुझे क्या करना चाहिए, इस प्रकार राजा भरतके कहने पर उन सबने विशल्याका मनोहर चरित कहा ॥२४॥ उन्होंने कहा कि हे नाथ ! द्रोण-मेघकी पुत्रीका स्नानजल पापको नष्ट करने वाला, पवित्र और जीवनकी रक्षा करने वाला है सो उसे शीघ्र ही दिलाओ ॥२५॥ प्रसाद करो, जब तक सूर्य उदित नहीं होता है उसके पहले ही हम चले जावेंगे । शत्रुओंका संहार करने वाले लक्ष्मण शक्तिसे घायल हो दुःखमें पड़े हैं ॥२६॥ तब भरतने कहा कि जलका क्या ले जाना, वह द्रोणमेघकी सुन्दरी पुत्री स्वयं ही वहाँ जावे अर्थात् उसे ही ले जाओ ॥२७॥ मुनिराजने कहा है कि यह उन्हींकी वल्लभा होगी । यथार्थमें वह उत्तम स्त्री है सो अन्य किसके योग्य हो सकती है ? ॥२८॥

ततो द्रोणघनाह्वस सकाशं प्रेषितो निजः । स चापि कुपितो योद्धुं मानस्तस्मसमुद्यतः ॥२६॥
 संक्षुब्धवास्तनवास्तस्य सञ्चद्धाः सचिवैः सह । परमाकुलतां प्राप्तां महादुर्लभितक्रियाः ॥३०॥
 भरतस्य ततो मात्रा स्वयं गत्वा महाद्वरम् । प्रतिबोधमुपानीतः स^१ तेन तनयामदात् ॥३१॥
 सा भामण्डलचन्द्रेण विमानशिखरं निजम् । आरोपिता महारथ्यं कान्तिपूरितदिङ्मुखा ॥३२॥
 सहस्रमधिकं चान्यत्कन्यानां सुमनोहरम् । राजगोत्रप्रसूतानां कृतं गामिं समं तथा ॥३३॥
 ततो निमेषमात्रेण प्राप्ता संग्रामसेदिनीम् । अर्च्यदिभिः कृतार्च्य^२ह्यं सर्वैः खेचरपुङ्गवैः ॥३४॥
 अवतीर्णा विमानायात्ततः कन्याभिरावृता । चारुचामरसङ्घातैः वीज्यमाना शनैः सुखम् ॥३५॥
 परयन्ती तुरगाद् द्वारे भक्तांश्च चरवारणाद् । महत्तरैः कृतानुज्ञा पुण्डरीकनिभानना^३ ॥३६॥
 यथा यथा महाभाग्या विशल्या सोपसर्पति । तथा तथाऽभजत्सौम्यं सुमित्रातनयोऽद्भुतम् ॥३७॥
 प्रभापरिकरं शक्तिस्ततो लघमवचसः । चकिता दुष्टयोपेव कामुकात् परिनिःसृता ॥३८॥
 स्फुरत्स्फुल्लिङ्गज्वाला च लङ्घयन्ती द्रुतं नभः । उत्पत्य वायुपुत्रेण गृहीता वेगशालिना ॥३९॥
 दिव्यस्त्रीरूपसम्पन्ना ततः सङ्गतपाणिना । सा जगाद् हनूमन्त्वं सम्भ्रान्ता बद्धवेपथुः ॥४०॥
 प्रसीद नाथ मुञ्चस्व न मे दोषोऽस्ति कश्चन । कुलितस्मद्विधानां हि प्रेम्णया स्थितिरिदृशी ॥४१॥
 अमोघविजया नाम प्रज्ञप्तेरहकं स्वसा । विद्या लोकत्रये ख्याता रावणेन प्रसाधिता ॥४२॥
 कैलासपर्वते पूर्वं बाली प्रतिसया स्थिते । सन्निधौ जिनविभ्यानां गायता भावितात्मना ॥४३॥

तदनन्तर भरतने द्रोणमेघके पास अपना आदमी भेजा सो मान वसन करनेमें उद्यत वह द्रोणमेघ भी युद्ध करनेके लिए कुपित हुआ ॥२६॥ प्रचण्ड बलको धारण करने वाले उसके जो पुत्र थे वे भी परम आकुलताको प्राप्त हो क्षुभित हो उठे तथा युद्ध करनेके लिए मन्त्रियोंके साथ साथ तैयार हो गये ॥३०॥ तब भरतकी माता केकयीने स्वयं जा कर उसे बड़े आदरसे समझाया जिससे उसने अपनी पुत्री देदी ॥३१॥ कान्तिसे दिशाओंको पूर्ण करने वाली उस कन्याको भामण्डलने अपने शीघ्रगामी विमानके अग्रभाग पर बैठाया ॥३२॥ इसके सिवाय राजकुलमें उत्पन्न हुई एक हजारसे भी अधिक दूसरी मनोहर कन्याएँ विशाल्याके साथ भेजीं ॥३३॥ तदनन्तर निमेष मात्रमें वह युद्धभूमिमें पहुँच गईं सो समस्त विद्याधरोंने अर्घ्य आदिसे उसका योग्य सन्मान किया ॥३४॥ तत्पश्चात् जो कन्याओंसे घिरी थी और जिसपर सुन्दर चमरोंके समूह धीरे धीरे सुख पूर्वक मेले जा रहे थे ऐसी विशाल्या विमानके अग्रभागसे नीचे उतरी ॥३५॥ द्वार पर खड़े घोड़ों और मदोन्मत्त हाथियोंको देखती, हुई वह आगे बढ़ी । बड़े बड़े लोग उसकी आह्वा पालन करनेमें तत्पर थे तथा कमलके समान उसका मुख था ॥३६॥ महाभाग्यशालिनी विशाल्या जैसे जैसे पास आती जाती थी वैसे वैसे लक्ष्मण आश्चर्यकारी सुखदशा को प्राप्त होते जाते थे ॥३७॥

तदनन्तर जिस प्रकार दुष्ट स्त्री चकित हो पतिके घरसे निकल जाती है उसी प्रकार कान्तिके मण्डलको धारण करने वाली शक्ति लक्ष्मणके वज्रस्थलसे बाहर निकल गई ॥३८॥ जिससे तिलगे और ज्वालाएँ निकल रही थीं ऐसी वह शक्ति, शीघ्र ही आकाशको लाँघती हुई जाने लगी सो वेगशाली हनूमान्ने उछल कर उसे पकड़ लिया ॥३९॥ तब वह दिव्यस्त्रीके रूपमें परिणत हो हाथ जोड़ कर हनूमान्से बोली । उस समय वह घबड़ाई हुई थी तथा उसके शरीर से कँपकँपी छूट रही थी ॥४०॥ उसने कहा कि हे नाथ ! प्रसन्न होओ मुझे छोड़ो इसमें मेरा दोष नहीं है हमारे जैसे सेवकोकी ऐसी ही निम्न दशा है ॥४१॥ मैं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध अमोघ-विजया नामकी विद्या हूँ, प्रज्ञासिद्धी वहिन हूँ और रावणने मुझे सिद्ध किया है ॥४२॥ कैलास

जिने मुने समुक्लृप्त शिरातन्त्री मनोहराम् । उपवीणयता दिव्यं जिनैन्द्रचरितं शुभम् ॥४३॥
 लब्धार्हं दशवक्त्रेण धरणाद्वागराजतः । कम्पितासनतः^१ प्राप्तात्ममोद विभ्रतः^२ परम् ॥४५॥
 भनिच्छ्वस्पर्सा तेन रत्नसौ परमेश्वरः । मां परिग्राहितः कृच्छ्रान् स हि ग्रहणदुर्विधः ॥४६॥
 साहज न कस्यचिच्छ्रया भुवनैस्त व्यपोहितुम् । विशल्यामुन्दरामेकां मुक्त्वा दुःसहतेजसम्^३ ॥४७॥
 मन्ये पराजये देवान् बलितो नितरामपि । अनया तु विकीर्णाह महत्या दूरयोचरा ॥४८॥
 भनुष्य भास्करं कुर्यादशीत शशलक्ष्मणम् । अनया हि तपोऽयुधं चरितं पूर्वजन्मनि ॥४९॥
 शिरीषकुसुमासार शरीरमनया पुरा । निर्युक्तं तपसि प्रायो मुनीनामपि दुःसह ॥५०॥
 पृतावतैव संसारः सुसारः प्रतिमावि मे । ईदृशानि प्रसाध्यन्ते यत्तपांसाह बन्तुभिः ॥५१॥
 वर्षाशीतातपैर्धौ रैर्महावातसुदुःसहैः । पृथा न कम्पिता तन्वी मन्दरस्येव चूलिका ॥५२॥
 अहो रूपमहो सत्त्वमहो धर्मदहं मनः । अशक्यं ध्यातुमप्यस्याः सुतपोऽस्याह्वानजैः ॥५३॥
 सर्वथा जिनचन्द्राणां मतेनोद्बुद्धते तपः । लोकत्रये जयत्येक यस्येदं फलमिदृशम् ॥५४॥
 भयवा नैव बिभ्रेयमाश्रयमिदमीदृशम् । प्राप्यते येन निर्वाणं किमन्यत्तस्य दुष्करम् ॥५५॥
 पराधीनक्रिया साहजं तपसा निजिताजनया । व्रजासि स्वं पद साधो^४ ज्ञम्यतां दुर्विचेष्टितम् ॥५६॥
 एवं कृतसमाकारां तपव्रतः शक्तिदेवताम् । विजुग्यावस्थितो वांतिः त्वसैन्येऽद्भुतचेष्टितः ॥५७॥

पर्वत पर पहाड़े जब बालिमुनि प्रतिमा योगसे विराजमान थे तब रावणने जिन-प्रतिमाओंके समीप भावनिमग्न हो मधुरगान किया था और अपनी भुजाकी नाड़ी रूपी मनोहर तन्त्री निकाल कर जिनैन्द्र भगवान्का दिव्य एवं शुभचरित वीणाद्वारा गाया था । रावणकी भक्तिके प्रभावसे धरणैन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ था जिससे परम प्रमोदको धारण करते हुए उसने वहाँ आकर रावणके लिए मुझे दिया था । यद्यपि राक्षसोंका इन्द्र रावण मुझे नहीं चाहता था तथापि धरणैन्द्रने प्रेरणा कर बड़ी कठिनाईसे मुझे स्वीकृत कराया था । यथार्थमे रावण किसीसे कोई यस्तुग्रहण करनेमें सदा संकुचित रहता था ॥४३-४६॥ वह मैं, इस संसारमे दुःसह तेजकी धारक एक विशल्याको छोड़ और किसीकी पकड़में नहीं आ सकती ॥४७॥ मैं अतिशय बलवान् देवोंको भी पराजित कर देती हूँ किन्तु इस विशल्याने दूर रहने पर भी मुझे पृथक् कर दिया ॥४८॥ यह सूर्यको ठण्डा और चन्द्रमाको गरम कर सकती है क्योंकि इसने पूर्वभवमे ऐसा ही अत्यन्त कठिन तपश्चरण किया है ॥४९॥ इसने पूर्वभवमे अपना शिरीषके फूलके समान सुकुमार शरीर ऐसे तपमे लगाया था कि जो प्रायः मुनियोंके लिए भी कठिन था ॥५०॥ मुझे इतने ही कार्यसे संसार सारभूत ज्ञान पड़ता है कि इसमे जीवों द्वारा ऐसे ऐसे कठिन तप सिद्ध किये जाते हैं ॥५१॥ तीव्र वायुसे जिनका सहन करना कठिन था ऐसे भयंकर वर्षा शीत और घामसे यह कृशाङ्गी सुमेरुकी चूलिकाके समान रश्मिमात्र भी कम्पित नहीं हुई ॥५२॥ अहो इसका रूप धन्य है, अहो इसका धर्म धन्य है और अहो धर्ममे दृढ़ रहनेवाला इसका मन धन्य है । इसने जो तप किया है अन्य स्त्रियों उसका ध्यान भी नहीं कर सकती ॥५३॥ सर्वथा जिनैन्द्र भगवान्के मतमे ही ऐसा विशाल तप धारण किया जाता है कि जिसका इस प्रकारका फल तीनों लोकोंमे एक जुदा ही जयवंत रहता है ॥५४॥ अथवा इसे कोई आश्चर्य नहीं मानना चाहिये क्योंकि जिससे मोक्ष प्राप्त हो सकता है उसके लिए और दूसरा कौन कार्य कठिन है ? ॥५५॥ मेरा काम तो पराधीन है देखिए न, इसने मुझे तपसे जीत लिया । हे सत्पुरुष ! अब मैं अपने स्थान पर जाती हूँ—मेरी दुःश्रेष्ठा क्षमा की जाय ॥५६॥ इस प्रकार वार्तालाप करने वाली उस शक्तिरूपी देवताको छोड़ कर तत्त्वका ज्ञानकार तथा अद्भुत चेष्टाका धारक हनुमान् अपनी सेनामे स्थित हो गया ॥५७॥

मुता तु द्रोणमेवस्य हियालंकृतदेहिना । पादपद्मद्वयं पात्रं प्रणम्य विहिताक्षलिः ॥५८॥
 विद्याधरमहामन्त्रिवचोभिः कृतशसना । वन्दिता खेचरैरन्यैराशीभिरभिनन्दिता ॥५९॥
 शक्रस्येव शची पार्श्वे लक्ष्मणस्य सुलक्ष्मणा । अवस्थिता महाभाग्या सखीवचनकारिणी ॥६०॥
 मुग्धा मुग्धमृगीनेत्रा पूर्णचन्द्रनिभानना । महानुरागसम्भारप्रेरितोदारमानसा ॥६१॥
 परिष्वज्य रहो नाथ सुखसुखं महीतले । सुकुमारकराम्भोजसवाहनसुचारुणा ॥६२॥
 गोशीर्षचन्दनेनैवमन्वलिम्पत सर्वतः । तथा पद्ममपि ग्रीढाकिञ्चित्कम्पितपाणिका ॥६३॥
 शोपाः कन्या यथायोग्य शोपाणां खेचरेशिनाम् । चन्दनेनास्पृशन्नात्रं विशल्याहस्तसङ्गिना ॥६४॥
 विशल्याहस्तसस्पृष्टं चन्दनं पद्ममवाक्यतः । कान्तमिन्द्रजितादीनामुपनीतं यथाक्रमम् ॥६५॥
 शीतलं त सम्राज्ञा कृत्वाङ्गेषु च सादरम् । निर्द्विषि परमां प्राप्ताः शुद्धामानो गतववराः ॥६६॥

उपजातिवृत्तम्

अन्ये च योधाः कृतविचिताङ्गा हिपास्तुरङ्गाः पदचारणम् ।
 अभ्युक्षितास्तत्सलिलेन जाता प्रणष्टशय्या नवभास्कराङ्गाः ॥६७॥
 जन्मान्तरं प्राप्त इवाथ कान्तः स्वभावनिद्रामिव सेवमानः ।
 उत्थाप्यते स्म प्रवरैर्मितान्त सङ्गीतकैर्बैष्णविनादगीतैः ॥६८॥
 ततः शनैरुच्छसितोरुवचा नेत्रे समुन्मील्य तिगिञ्छताम्ने ।
 विचिस्रबाहुः शनैर्निकुञ्च्य लक्ष्मीवरोऽमुञ्जत मोहशय्याम् ॥६९॥

अथानन्तर जिसका शरीर लज्जासे अलंकृत था, जिसने श्रीरामके चरण-कमलोमें प्रणाम कर हाथ जोड़े थे, विद्याधर महामन्त्रियोंके वचनोसे जिसकी प्रशंसा की गई थी, अन्य विद्याधरों ने जिसे वन्दना कर शुभाशीर्वादसे अभिनन्दित किया था, जो उत्तम लक्षणोंको धारण करने वाली थी; महाभाग्यवती थी, और सखियोंकी आज्ञाकारिणी थी ऐसी द्रोणमेवकी पुत्री विशल्या लक्ष्मणके पास जाकर उस प्रकार खड़ी हो गई जिस प्रकार मानो इन्द्रके पास इन्द्राणी ही खड़ी हो ॥५८-६०॥ जो अत्यन्त सुन्दरी थी, भोली मृगीके समान जिसके नेत्र थे, पूर्णचन्द्रके समान जिसका मुख था, और महा अनुरागके भारसे जिसका उदार हृदय प्रेरित था ऐसी विशल्याने एकान्तमें पृथिवी तल पर सुखसे सोये हुए प्राणनाथ लक्ष्मणका आलिङ्गन कर उन्हें सुकोमल हस्त कमलमें स्थित होनेसे अत्यन्त सुन्दर दिखने वाले गोशीर्ष चन्दनसे खुश अनुल्लिप्त किया तथा लज्जासे कुछ कुछ काँपते हुए हाथसे श्रीरामको भी चन्दनका लेप लगाया ॥६१-६३॥ शेष कन्याओं ने विशल्याके हाथमें स्थित चन्दनके द्वारा अन्य विद्याधरोंके शरीरका स्पर्श किया ॥६४॥ श्रीराम की आज्ञा अनुसार विशल्याके हाथका छुआ सुन्दर चन्दन यथाक्रमसे इन्द्रजित आदिके पास भी भेजा गया ॥६५॥ सो उस शीतल चन्दनको सूँघकर तथा आदर के साथ शरीर पर लगाकर वे सब परम सुखको प्राप्त हुए । सबकी आत्माएँ शुद्ध हो गई तथा सबका उबर जाता रहा ॥६६॥
 इन सबके सिवाय क्षत-विक्षत शरीरके धारक जो अन्य योधा हाथी, घोड़े और पैदल सैनिक थे वे सब उसके जलसे सींचे जा कर शल्यरहित तथा नूतन सूर्य—प्रातःकालीन सूर्यके समान देदीप्यमान शरीरसे युक्त हो गये ॥६७॥ अथानन्तर जो दूसरे जन्मको प्राप्त हुए के समान सुन्दर थे और मानो स्वाभाविक निद्राका ही सेवन कर रहे थे ऐसे लक्ष्मणको वांसीरुकी मधुर तानसे मिश्रित उत्तम संगीतके द्वारा उठाया गया ॥६८॥ तदनन्तर जिनका विशाल वच्चा-स्थल धीरे धीरे उच्छ्वसित हो रहा था और जिनकी मुजाएँ फैली हुई थीं ऐसे लक्ष्मणने कमलके समान लाल नेत्र खोल कर तथा मुजाओंको संकोचित कर मोहरूपी शय्याका परित्याग किया ॥६९॥

त्यन्त्रोपपादाश्लिशलामिवासी रणक्षितिं देव इवोद्यकायः ।
 उत्थाय रुष्टः ककुभो निरीच्य कासीं गतो रावण इत्युवाच ॥७०॥
 ततः प्रफुल्लान्बुजलीचनेन महाभिन्नन्दं भजताऽऽयजेन ।
 उदाररोमाञ्चसुकर्कशीनं प्रोक्तः परिष्वज्य लसद्भुजेन ॥७१॥
 कृतार्थवत्तात दशाननोऽसौ हत्वा भवन्तं विजहार शक्त्या ।
 त्वमप्यमुष्याऽऽश्चरितेन जीवं भूयोऽमजः संस्तुतकन्यकायाः ॥७२॥
 निःशेषतश्चास्य निवेदितं तच्छ्रुत्वाहतिप्रेरणवस्तुवृत्तम् ।
 अपूर्वमाश्चर्यमुद्गारभावं सुविस्मितैर्जम्बवसुन्दराद्यैः ॥७३॥
 तावद् त्रिवर्णाब्जविलासिनेत्रां शरत्समृद्धेन्दुसमानवक्त्राभ्याम् ।
 शातोदरीं दिग्गजकुम्भशोभिस्तनद्वयां नूतनयौवनस्थाभ्याम् ॥७४॥
 शरीरबद्धामिव मन्मथस्य क्रीडां विशालालससज्जितम्बाभ्याम् ।
 संगृह्य शोभामिव सार्वलोकां विनिर्मितां कर्मभिरैकतानैः ॥७५॥
 तां वीक्ष्य लक्ष्मीनिलयोऽन्तिकस्यामचिन्तयद् विस्मयस्तद्विचित्रः ।
 लक्ष्मीरियं किन्तु सुरेश्वरस्य कान्तिर्जु चन्द्रस्य नु भानुदीप्तिः ॥७६॥
 ध्यायन्तमेवं परिगम्य योषास्तमेवदुः कुशलप्रधानाः ।
 स्वामिन् विवाहोत्सवमेतया ते इष्टं जनो बान्धुति सङ्गतोऽयम् ॥७७॥
 कृतस्मितोऽस्तावगादयं समीपे ससंशये युक्तमिदं कथं नु ।
 ऊङ्गः पुनस्ते ननु वृत्त एव स्पर्शोऽनया ते प्रकटस्तु नासीद् ॥७८॥

जिस प्रकार उपपाद शय्याको छोड़ कर उत्तम शरीरका धारक देव वृत्त कर खड़ा होता है उसी प्रकार लक्ष्मण भी रणभूमिको छोड़ खड़े हो गये और दिशाओकी ओर देख रुष्ट होते हुए बोले कि वह रावण कहाँ गया ? ॥७०॥ तदनन्तर जिनके नेत्रकमल विकसित हो रहे थे जो महान् आनन्दको प्राप्त थे, उत्कट रोमाञ्चोसे जिनका शरीर कर्कश हो रहा था और जिनकी भुजाएँ अतिशय शोभायमान थीं ऐसे बड़े भाई श्रीरामने आलिङ्गन कर कहा कि हे तात ! रावण तो शक्तिके द्वारा आपको भार कृतकृत्यकी तरह चला गया है और तुम भी इस प्रशस्त कन्याके चरित्रसे पुनर्जन्मको प्राप्त हुए हो ॥७१-७२॥ तत्पश्चात् अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुए जान्मव और सुन्दर आदिने शक्ति लगनेसे लेकर समस्त वृन्तान्त लक्ष्मणके लिए निवेदन किया-सुनाया तथा उदार भावनासे युक्त अपूर्व आश्चर्य प्रकट किया ॥७३॥

तदनन्तर जिसके नेत्र लाल सफेद और नीले इन तीन रङ्गके कमलोंके समान सुशोभित थे, जिसका मुख शरद्भृतके पूर्णचन्द्रमाके समान था, जिसका उदर कृश था, जिसके दोनों स्तन दिग्गजके गण्डस्थलके समान सुशोभित थे, जो नूतन यौवन अवस्थामे स्थित थीं जो, मानो शरीर-धारिणी कामकी क्रीड़ा ही थीं, जिसके उत्तम नितम्ब विशाल तथा अलसाये हुए थे, और जिसे कर्माँने एकप्र चित्त हो सर्व संसारकी शोभा ग्रहण कर ही मानो बनाया था ॥७४-७५॥ ऐसी समीपमें स्थित उस विशाल्याको देख लक्ष्मणने आश्चर्यसे अवरुद्ध चित्त हो विचार किया कि क्या यह इन्द्रकी लक्ष्मी है ? या चन्द्रमाकी कान्ति है ? अथवा सूर्यकी प्रभा है ? ॥७६॥ इस प्रकार चिन्ता करते हुए लक्ष्मणकी देख, मङ्गलाचार करनेमें निपुण स्त्रियों उनसे बोलीं कि हे स्वामिन् ! यहाँ इकट्ठे हुए सब लोग इसके साथ आपका विवाहोत्सव देखना चाहते हैं ॥७७॥ यह सुन लक्ष्मणने मुसकराते हुए कहा कि जहाँ प्राणोंका संशय विद्यमान है ऐसे युद्ध क्षेत्रमें यह किस प्रकार

भवत्प्रभावक्षतसर्वविघ्नं पाणिग्रहं नाथ भज त्वमस्याः ।

इत्यर्थनाम्नैरवतश्च धाम्यादियेष लक्ष्मीनिलयो विवाहम् ॥७६॥

मालिनीवृत्तम्

क्षणविरचितसर्वश्लाघ्यकर्तव्ययोगः पवनपथविहारिस्फीतभूतिप्रपञ्चः ।

अभवदमरसम्पत्कल्पितानन्दतुल्यः प्रधनमुवि विशाखालक्ष्मणोद्वाहकल्पः ॥८०॥

इति विहितसुचेष्टाः पूर्वजन्मश्रुदाराः परमपि परिजित्य प्राप्तमाशुर्विनाशम् ।

द्रुतसुपगतचारुद्वयसम्बन्धभाजो विधुरविशुण्तुल्यां स्वामवस्थां भजन्ते ॥८१॥

इत्यार्षे श्रीरविषेणाचार्ययोक्ते श्रीपद्मचरिते विशाल्यासमागमामिधानं नाम पञ्चषष्टितमं पर्व ॥६५॥



वचित हो सकता है ? इसके उत्तरमें सबने पुनः कहा कि इसके द्वारा आपका स्पर्श तो हो ही चुका है परन्तु आपको प्रकट नहीं हुआ है ॥७८॥ हे नाथ ! आपके प्रभावसे जिसके समस्त विघ्न नष्ट हो चुके हैं ऐसा इसका पाणिग्रहण आप स्वीकृत करो । इस प्रकार लोगोंकी प्रार्थना तथा गौरवपूर्ण वचनोंसे लक्ष्मणने विवाह करनेकी इच्छा की ॥७९॥ तदनन्तर जिसने क्षणभरमें समस्त प्रशंसनीय कार्योंका योग किया गया था, विद्याधरोने जिसमें विशाल वैभवका विस्तार प्रदर्शित किया था, और जो देव सम्पदासे कल्पित आनन्दके समान था ऐसा विशाल्या और लक्ष्मणका विवाहोत्सव युद्धभूमिमें ही सम्पन्न हुआ ॥८०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्होंने पूर्वजन्ममें उत्तम आचरण किया है ऐसे उदार पुरुष प्राप्त हुए मरणको भी जीतकर शीघ्र ही उत्तम पदार्थोंके समागमको प्राप्त होते हैं और चन्द्रमा तथा सूर्यके गुणोंके समान अपनी अवस्था को प्राप्त करते हैं ॥८१॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, श्री रविषेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें विशाल्याके समागमका वर्णन करने वाला पैंसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६५॥

द्वितीयो भागः समाप्तः

श्लोकानामकाराद्यनुक्रमः

[अ]					
अशकान्तेन हृदयं	२६५	अचिन्तयच्च खौरेषा	१३७	अतिषण्योऽहमप्यद्य	१०८
अशुकेन वर कण्ठ	१४८	अचिन्तयच्च नो साध्वी	४५	अतिप्रकटवोर्यस्य	३५६
अशुकेन समालम्ब्य	१४६	अचिन्तयच्च पद्मोऽस्तः	२७५	अतिभूतिप्रभृतयो	६३
अशुकेनाम्बुवर्षेण	१४६	अचिन्तयच्च पर्यामि	२३	अतिभूतिश्च तद्वेतोः	६२
अकरोच्चन्द्ररश्मिश्च	२७४	अचिन्तयच्च मे कास्या	२३८	अतिमत्तान्नापाङ्ग-	५०
अकलमपं स्वभावेन	२६१	अचिन्तयच्च रामस्वी	२५३	अतिमधुररवं कराभिघाति-	२२०
अकलमात् सेयमुत्तुङ्ग	१३७	अचिन्तयच्च सम्प्रान्त-	३०३	अतिमूढहृतात्मानो	३३
अक्रीचिरिति निन्द्य-	२७३	अचिन्तयच्च सुव्यक्तं	२७४	अतिमृदुभुजमाला	१४
अकृष्टपद्मयर्षीजेन	१०१	अचिन्तयच्च हा कष्टं काम	२६५	अतिवीर्यः समस्तेषु	१५५
अक्षौण्यसर्वकोशोसा-	६४	अचिन्तयच्च हा कष्टं प्राप्तो	२३	अतिवीर्यं किमेतत्ते	१६३
अक्षौण्यसत्त्वगम्भीरं	३०३	अचिन्तयच्च ही साधु	१५२	अतिवीर्यमुनि दृष्ट्वा	१६८
अक्षौहिणस्ततः सप्त	२७४	अचिन्तयच्च वार्ता	३४२	अतिवीर्यस्ततोऽवोचन्न	१६५
अक्षौहिण्या प्रकीर्त्यानि	३५८	अचिन्तयच्च मुष्मद्ग्रे	२४१	अतिवीर्यो तथा बुद्धौ	१५७
अक्षौहिणीसहस्राणि	३५७	अचिराजिग्रहं घोरं	४०६	अतिवीर्योऽतिदुर्वार-	१५६
अगाधदिव भृङ्गाया	२१२	अजातचिन्तिता नून-	१४६	अतिवीर्योऽतिदुर्वार-	१५६
अग्राह्यैव सज्जार्हं	३६३	अजानानो विशेष वा	२७०	अतिवीर्योऽत्र पद्मेन	१६४
अग्निर्केतुर्विद्योगेन	२०७	अजिग्रदामरं गन्धं	२२३	अतिवीर्योऽपि दूतेन	१५८
अग्रतः पृष्ठतश्चास्य	३०१	अज्ञातमिदमप्राप्तं	१४१	अतिवीर्यं महाधन्य-	१६७
अग्रतः प्रस्थिते तस्मिन्	३८५	अज्ञातलोकावृत्तान्तो	५	अतिवीर्यं कषा कम्पो	१६४
अग्रतस्त्वरितो जातः	३८५	अज्ञाता एव ये कार्य	१६१	अतिविगसमुत्पाताः	३६६
अग्रतो भृशरुद्राग्रः	१८५	अज्ञातैरिदमस्माभिः	१५६	अतिशयपरम विनिहत-	३१
अग्रतोऽवग्रहं तस्य	६६	अज्ञातो मन्त्रिवर्गस्य	२७२	अतीतागामिशोकाभ्या-	३८
अग्रप्रयाणकन्यस्ताः	३५६	अज्ञानदोषतो नाशं	२७७	अतीते गणरात्रे च	२०३
अग्राह्यं वरभग्याना	७३	अज्ञानयोगमेतस्य	१६१	अतीत्य श्रीनितः कोशा-	१०२
अग्रप्रमथनं नाथ	४०६	अज्ञानोऽसौ विलङ्घः सं	२०७	अतुतः परमाहारैः	३४१
अङ्गः कृत्रिमसुग्रीवं	२७३	अज्ञासीत्सावधिज्ञानः	४०६	अतुतः क्षीसहलोचै-	३४१
अङ्गनाबनदृष्टीना	४६	अज्ञानावविदेहान	४०८	अतो जनकसम्बन्धं	१
अङ्गारक्रेतुना तेन	३१५	अज्ञानातनयस्ताव-	३७५	अतो न ता स्वयं देवि	२५६
अचलो नाम विख्यातो	२०६	अदृष्टासात् विमुञ्चन्तः	२६१	अतो नवव्रणन्मस्त-	३६१
अचिन्तयच्च किं नाम	२३६	अणुव्रतधरः साधु	११५	अतो ब्रवीमि राजत्वां	१६
अचिन्तयच्च किं न्वेत-	२६	अणुव्रतधरो यो ना	१३८	अतो ब्रवीमि राजत्वा यदी-	१०८
अचिन्तयच्च किं सीता	२८१	अणुव्रतानि संख्या	६१	अत्यन्तं तदहं मन्ये	३०६
अचिन्तयच्च को न्वेष	५८	अतः सत्यमुद्दिश्य	३२१	अत्यन्तं दुर्धरोदिष्टा	७५
अचिन्तयच्च खिन्नात्मा	२३०	अतस्तज्जिज्ये ताव-	१५६	अत्यन्तं यद्यधीरत्वं	३५२
अचिन्तयच्च ते नून-	३१	अतिजवमिह काले	२२१	अत्यन्तलुद्ध निर्लज्ज	२४५
		अतिदीनकृतावावा	२२६	अत्यन्तघनवन्धेन	३४

अत्यन्तदीनवदनः	२४२	अथ रत्नजटी व्रतः	२४८	अथाशालिकविद्याया	३१८
अत्यन्तदुर्लभा लोके	२७३	अथ राजसुतासमीरितं	२१६	अथाससाह कैष्किन्ध	३४४
अत्यन्तदुस्साह चेष्टा	६६	अथ लङ्केश्वरं वीर	३५१	अथासज्जत्वमागच्छद्	२३५
अत्यन्तमधुरवाक्यैः	१२८	अथ लङ्कामुद्रमात-	१७५	अथासावाञ्जो गच्छ	३०८
अत्यन्तविषमीभावं	४३	अथवा किं मनो व्ययं	४२	अथासौ ज्ञातसद्भावा	२
अत्यन्तस्निग्धया तन्व्या	१२७	अथवा क्षयमप्राप्ते	१८	अथासौ साधुयुगलं	३१३
अत्युग्रकर्मनिर्माकै-	६८	अथवात्यन्तमेवेदं	११३	अथास्य व्रजतो व्योमिनि	३१७
अत्यूर्जितौ महासैन्यौ	३८२	अथवा दक्षितो रत्या	२४६	अथास्य वायुपुत्रेण	३७६
अत्र किं क्रियते साधो	१०७	अथवा न सुनेवाक्यं	३१५	अथास्य शतदुःखेन	२०४
अत्र विभाति व्योमगह्वरं	२१८	अथवा निखिलो लोके	२५५	अथाहूतः पुनः प्रातः	२७७
अत्राग्निहोत्रशालाया-	१३३	अथवानेकशो दृष्टो	२६६	अथैवाचक्रिरे तस्य	३४७
अत्रान्तरे जगादैवं	८	अथवा नैव विज्ञेय-	४११	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	६०
अत्रान्तरे तमुद्देशं	२६१	अथवा मयि विश्वस्ते	३८	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	३३६
अत्रान्तरे नृपो मूर्छा	७६	अथवा मर्तुमिष्टं ते	३८६	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	२५१
अत्रान्तरे परिप्रातः	२३६	अथवा रामशोकेन	२६८	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	२६०
अत्रान्तरे प्रियाः प्राप्ता	४७	अथवा विरहव्याघ्रं	१२३	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	६३
अत्रान्तरे विदेहाजः	६२	अथवा शुद्धतत्त्वस्य	१२१	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	१७
अत्रान्तरे समागत्य	२३७	अथवा सर्वसैन्येन	१६	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	३४६
अत्रान्तरे स सम्भ्रान्तः	४०१	अथ शोकरसाहुग्रात्	४०८	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	३६७
अत्रान्तरे सुरूपाब्धौ	१२५	अथ सुग्रीवमाहृत्य	२७६	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	३३५
अत्रावसीदतो देव	१२१	अथ सद्ययानमाल्ढौ	१८०	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	१८५
अथ कूटमटाटोपः	२६६	अथ सेनापतिर्निम्ना	२४६	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	२८१
अथ मेहेऽपि लभेत	७७	अथग्रकीर्तिमाञ्चीक-	३६४	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	१८१
अथ तत्स्वर्गात्मानं	३२२	अथाञ्जनात्मजोऽपृच्छ-	३१४	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	१७१
अथ तत्क्षणमम्भृत-	१८३	अथातस्थौ सनिग्रन्थौ	३१३	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	६६
अथ तत्र ज्ञानं नीत्वा	८६	अथात्र नगरे राजा	१४७	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	२२८
अथ तामतिरीद्रेण	४०५	अथात्रैव वनोद्देशे	२०१	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	२४
अथ ते त्रिविधाभिख्याः	१३३	अथानरप्यनसारी	१६६	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	३३५
अथ तौ परमारभ्ये	६४	अथानरप्यराजस्य	६१	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	५६
अथ त्वं साधयत्येवं	१६१	अथान्तरिक्षे देवाना	२६६	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	६४
अथ दक्षिणतो दृष्टा	३६५	अथान्ते तस्य निखिर्ण	२२७	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	३६६
अथ नात्यन्तदूरस्थ-	२४१	अथाप्येकविहारस्य	६१	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	२४५
अथ नानाद्रुमक्षमासु	१७८	अथाभ्यर्णस्थितं ज्ञात्वा	३५१	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	३१६
अथ पक्षं समालोक्य	२७७	अथार्कजटिनः सन्तु-	२४८	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	४६
अथ पक्षोऽतिवीर्यस्य	१६७	अथावश्यमिदं वस्तु	२२७	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	२०५
अथ प्रशान्तवैरासा-	३२१	अथावोचत सीतेशः	११४	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	२३२
अथ प्रत्येयि नो राजन्	११२	अथावोचतः पथो	१२६	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	२३२
अथ भीतिपरिव्रजताः	२८८	अथावोचतः सीता	२७२	अथैवाचक्रिरे वृद्ध	३८३
अथ मेरीनिनादेन	५२	अथाशङ्काविषुकात्मा			

अधत्त चः पुरा शक्तिं	४६	अनिच्छयाथ विध्वस्ते	२३२	अन्नं च परमं ताभ्या	३३५
अधर्मपरिणामेन	३७१	अनिवार्यं समालोक्य	१६	अन्नं वरगुणं भुक्त्वा	१७१
अवतरणाः क्षितेरन्या	७	अनीकिन्यो दश प्रोक्ता	३५८	अन्यच्च खलु कौशम्या	३५५
अवस्तात् स्फुटिता वाप्यः	३३८	अनुकूलारिभिः पापै-	२०१	अन्यजन्मसु ये दारा	६२
अवावदियुमुद्रधृत्य	३१६	अनुगत्य सुदूरं तौ	१६७	अन्यथा क्व महीचारा	२५४
अधावल्लक्ष्मणस्तेषा	२०	अनुजो लक्ष्मणो यस्य	३५	अन्यदा तिथिवेलाया	१६६
अधिकं भाममानाङ्गौ	३८५	अनुद्धरो हृदयः	३६७	अन्यदाय तमुद्देशं	२४
अधिष्ये न कृते तस्मिन्	३७	अनुन्वरस्तु विहर-	१६०	अन्यदाथ महीपाल	१६७
अधिष्ठिते देवगणेश्च चापे	६६	अनुपमगुणधरमनुपमकार्यं	३२	अन्यदाय सुखासीनं	१५५
अधीश्वरः स यज्ञाणा	१३६	अनुपालितमर्यादाः	३४१	अन्यदा परिपृष्टश्च	३१५
अधुना त्वं मया ज्ञातः	१४४	अनुप्रायतुकामस्य	८३	अन्यदा प्रथितः क्षोण्यां	१८६
अधुना त्वयि दोषादये	३२२	अनुबन्धमहावाहा	२६४	अन्यदा योगमाश्रित्य	६१
अधुना वर्यये शीघ्र	४००	अनुबन्धमिदं ह्यस्यं	२६२	अन्यदा रतिशैलस्य	३३४
अधुना वेतुमिर्व्याप्तं	१४५	अनुमन्यस्व मा तात	७७	अन्यदा वज्रकर्णोऽयं	१०६
अधुना मया लोकेश	३२६	अनुरागोत्कटैर्भृत्यैः	३५६	अन्यदावधिना शाल्वा	१६३
अधुना रावणे क्रुद्धे	३४६	अनुलम्बनश्च तस्याग्नि-	२०४	अन्यदा सा पुरः सख्या	१११
अप्यर्द्धं तस्य पत्नीना	६६	अनुष्ठितं त्वया मातुः	२२८	अन्यदा सिंहनगरं	६६
अप्यायमानं गुरुणा	६३	अनुष्णं भास्करं कुर्या-	४११	अन्यस्यैव मया शङ्ख-	३६३
अश्रुवं देहमोगादि	६२	अनुद्धरेति विख्याता	१८५	अन्या गुणवती नाम	२७६
अश्याय घटकैर्मनैः	१०४	अनुसंयुजश्च तं नाना	६०	अन्यायमीदृशं कर्तुं	८१
अनङ्गकुसुमा कृच्छ्रा	३००	अनेकगोत्रचरणा	३५७	अन्या सुरवती नाम	२७६
अनङ्गकुसुमा लब्धा	३३०	अनेकयुद्धनिर्भग्न-	२६५	अन्यास्तत्रोचुरे कोऽपि	११८
अनतिप्रौढिका क्वाचि-	३६२	अनेकरत्नसम्पूर्णा	२२०	अन्ये च योधा क्षत-	४१२
अनत्युच्चैर्धनच्छायेः	१६६	अनेकशो मया प्राप्ता	६२	अन्ये अगुरिषं किमस्माकं	४०
अनन्तफलमानोति	६८	अनेकाकारवक्त्राढय-	३१७	अन्ये अगुरिय नून-	४०
अनन्तरं दृषादेशात्	११२	अनेन भूयता श्रेष्ठै-	१६७	अन्येद्युः सन्ततक्रोधाः	३७४
अनन्तवीर्यनामाथ	१६३	अनेन वारिणाऽमुष्मिन्	४०६	अन्येद्युर्वृतमाहूय	३००
अनन्तवीर्ययोगीन्द्र-	२६४	अनेन साधुना पश्य	१०६	अन्येऽपि शकुनाः क्रूर	३६५
अनन्तवीर्यसम्पन्नान्	२६५	अनेनामृतकल्पेन	११५	अन्येऽप्येवं महायोधा	३६०
अनन्यमानसोऽहौ हि	२८१	अनेनैव ततो युक्ताः	३०२	अन्योन्यं दत्तेन च	५६
अनन्यशरणत्वेन	५७	अन्तः कृत्वा शिशुगण-	२१४	अन्योन्यमभक्षणादीनि	६२
अनरण्ये च राजस्थे	४	अन्तरं विन्य शूरास्था-	३५६	अन्योन्यमभिमान्यैव	२६७
अनर्घ्यरत्नमदृशं	६६	अन्तरङ्गः प्रतीहारो	१२६	अन्योन्यस्य वयं द्रोह-	२७६
अनर्थाद्यतचित्तेन	३५३	अन्तरेण प्रमोदाज्ञा	३३४	अन्योन्याहृतमतेषा-	३७४
अनादृतः प्रभृतं च	२३०	अन्तर्द्धौ सेविते ताभ्या	३८२	अन्वगायदिमं लक्ष्मी-	१८१
अनाद्यमन्तनिर्मुक्तं	६८	अन्तर्हृत्य च संकुद्धा	२३०	अन्वयन्नतमस्माक-	५०
अनापृच्छापि तत्काले	३६४	अन्ते तस्या महारण्ये	७६	अन्वयसंज्ञकास्ते च	२६२
अनारतमिति व्यायन्	२६	अन्ते लक्ष्मणस्तत्र	१२७	अन्विष्यन्ती प्रभाते नौ	१७६
अनिच्छन्नप्यसौ तेन	४११	अन्वीभूतो दशास्यस्य	३८१	अन्विष्य विद्धतास्तत्र	३६४

अपकारिणि कासृण्यं	१२२	अन्नवीदस्ति कौशाम्बी	१३०	अमुष्मिन् वक्षमवने	१२६
अपमानेन दग्धस्य व्याकुलस्य	११२	अन्नवोद् ब्राह्मणैकान्ते	१३४	अमुष्ण व्यसनं कृत्वा	२३७
अपमानेन दग्धस्य हृदयस्था-	४६	अन्नवीत् पञ्चनाभश्च	२६०	अमृतस्वरसंज्ञोऽस्य	१८४
अपरः कृतसंकेता	८६	अन्नवोऽह्निष्वसंज्ञश्च	२७७	अमृतादिषु सुखादैः	२६४
अपराधविमुक्तस्य	११५	अभग्नमानशृङ्गेयं	१७३	अमोघविजया नाम	४१०
अपराधानिमान् भुत्वा	३४०	अमव्याना गतिः क्लिष्टा	६८	अम्भ मा गाद् विषादं	७६
अपराधाब्धिमग्नः सन्	२६८	अमाव्यी च तथा भाव्यी	६७	अम्बरं भानुर्कर्णस्य	३८२
अपरे त्रपया केचि-	८८	अभिज्ञानादिकं सर्वं	३४४	अम्भोविहारविज्ञान-	८६
अपरेद्युर्महोद्भूत-	३८८	अभिमानोन्नतिं त्यक्त्वा	३८६	अयं कुङ्कुमपङ्केन	२२७
अपरे शशरा रेजु-	२०	अभिप्रायं ततो ज्ञात्वा	२८८	अयक्वचित्फलमरनम्रपादपः	२१६
अपरोत्तरदिग्भागे	१४७	अभिलक्ष्य शिराबाल-	४८	अय प्रयत्नादिषु चित्रिताङ्गको	२१४
अपरो मानमुत्सृज्य	८६	अभिलष्यति सन्तापो	३७४	अयं प्रातोऽयमायातो	११६
अपश्यश्च समुत्थाय	१५०	अभिवाञ्छसि मर्तुं वा	३६३	अय मदाक्षसेक्षणः	२१३
अपश्यच्च तच्छृङ्खलं	२२६	अभिषिञ्चत मे पुत्रं	७३	अयं मृग इयोद्विग्नो	१५०
अपश्यच्च नरश्रेष्ठं	३०२	अभिषेकं विनेन्द्राणां कृत्वा	६७	अय शरणमायातो	२७५
अपश्यच्च परिस्तीताः	२६	अभिषेकं विनेन्द्राणां विधाय	६७	अयं स वर्तते कालः	२६१
अपश्यच्च मनश्चौरी	४६	अभिषेकबलं तस्या	४०७	अय स लक्ष्मणः खयातो	२३७
अपश्यच्च महामोह-	२३६	अभिषेकप्रभावेण	६८	अयं सत्यमुत्रं मुक्त्वा	२२१
अपश्यच्च लताबालै-	३२४	अमीतिदानपुण्येन	६७	अथलेनेव सा तेन	१७४
अपश्यच्च विचाराणां	२२७	अभूत सर्वशोकस्त-	२२५	अथमन्यश्च विषयो	१४५
अपश्यता च तस्यान्ते	१७८	अभूतां नृर्गने देव	४८	अथमस्य महात्र काभो	२३६
अपसर्गामुतो देशा-	११६	अभ्यङ्गोद्धत्यं सुस्तातं	१३१	अथमायामि देवेति	१५०
अपि चानुक्रमानुक्ति-	७७	अभ्युत्थानादिकामस्य	२७२	अथमिच्छन्नुत्सृज्य	३६
अपि दिनकरदीप्तिः कौमुदी	१४	अभ्युत्थानाभियानामि-	२००	अथास्वच्छादं नैताभ्या	८७
अपि द्रष्टु न ये शक्ये	५५	अभ्युत्थितमतिमानी	३८८	अथि देवि वच यातासि	२३६
अपि नाम पुनः क्रीडा	३६६	अमन्त्रयन्त सम्भूय	३५४	अथि पापे किमित्येषा	१३४
अपीक्ष्यन्त प्रजाः सर्वाः	३३	अमाल्य धूर्तमाहूय	३	अथि मद्भक्तिसन्नेष्टो	३६६
अपुण्यया मया नून-	२२८	अमात्यवदनं वीक्ष्य	१७३	अथि मुग्धे सुकथटेऽस्मिन्	१४६
अपूर्वलोकासङ्गात	२६६	अमी ततः समागत्य	३३६	अथि मृदे न पुण्येन	१७०
अपृच्छच्च परिष्वज्य	३४५	अमी निरागसः क्षुद्रा	१०८	अथि सुदरि हर्षस्य	२५७
अपृच्छत ततः पञ्चः	१०६	अमी भयाकुला म्लेच्छा	२१	अथोगमोहितं चेत-	२३१
अपृच्छत्तस्य वृत्तान्त-	६५	अमीभिरनुयातोऽहं	१५६	अथोगमामिदं तेनं	२६२
अप्येकाद्वारमिण्यति	४८	अमीभिरक्षरैः पञ्चः	२७६	अथरथदेवतापूजा	१४८
अप्रतर्क्य गगनगै-	२२४	अमी लङ्काश्रिता राजन्	२२५	अथरथमपि रथ्यत्वं	२५०
अप्रमत्तेन गन्तव्यं	३०६	अमीषामन्य व्याकारो	२६६	अथणात् पिङ्गलः प्रातो	६१
अप्रमेयगुणाधारान्	२६५	अमीषु स्वादचारुणि	१६६	अथण्याना गिरेर्मूनि	१५२
अप्राप्तानेव धीरोऽसौ	११७	अमी समीरणेरिते वरोधि-	२१६	अथण्यानीं गता सेयं	४०३
अशालेन्दुमुखा बाला	५५	अमुष्मिन्नीलवर्णं	२१३	अथण्यास्त्रुजखण्डानां	४०४
अन्नवीत् तौ युवा नाथा	१३१	अमुष्ण पुस्तकमपि चित्रं	२८६	अथण्ये तत्र निस्तोये	१३३

अण्ये निर्मनुष्येऽस्मिन्	२४१	अवतीर्य ततो वृद्धाद्	२६	अष्टाविमे गताः ख्यातिं	३५८
अस्या कर्षिताङ्गोऽसौ	५४	अवतीर्य तुरङ्गाच्च	६४	अष्टाहोपोषितं कृत्वा	४५
अरुण धवल कपिल हरितं	२१५	अवतीर्याम्बराच्चारु	२७	अष्टौ शतानि ससत्या	३५८
अर्ककीर्तिसमो भूत्वा	३६५	अवतीर्याम्बरादाशु	६५	असंख्या अपि मातङ्गा	३४
अर्कभस्मदनः सोऽपि	३०६	अवतेरुः समीपे च	२६४	असक्त इव तं द्रष्टु-	८३
अर्णवाह धनुर्यस्य	३५३	अवद्वारस्ततोऽवोचद्	२५	असमाप्तताः तारश्च	३१३
अर्थेन विप्रहीनस्य	१४४	अवद्वारेण निर्गस्य	८७	असमाप्तेन्द्रियसुखं	८४
अर्थोऽय दुस्तरोऽत्यन्त	२७१	अवनौ पूर्णकलशाः	१६५	असमाप्तोपयोगस्य	२२६
अर्धदधतश्च्छायं	४	अवरुद्धा च सचेष्टा	१६१	असावुत्थितमात्रश्च	३७६
अर्धरात्रे तदा स्पष्टे	१५०	अवरोहंस्ततो देशा-	३३६	अमारोऽयमहोऽत्यन्तं	१६०
अर्द्धचन्द्रो जितमेमा	३६८	अवलोक्य मुनीनित्यं	१८६	असिताभिः सिताभिश्च	१३६
अर्पितः पोषणायासौ	१२	अवश्यं यदि भोक्तव्या	१६६	असिपत्रवनं याता	७
अर्द्धबाहुलिका दृष्ट्वा	३६३	अवसर्प ममाङ्गानि	२५२	असिपत्रवनच्छन्नाः	७
अर्द्धसन्नाहनामाय	३६३	अवसीदत्ततो दृष्ट्वा	३७५	असौ दूतोऽन्यदा राजा	१८४
अर्द्धस्वर्गोदयश्चान्ये	२८६	अवस्था वा गतामेता	३२८	असौ पवनपुत्रोऽपि	३१७
अर्पितः पुण्यवत्यै च	६०	अवस्थितोऽयमत्रेति	१४३	असौ प्रसन्नकीर्तिर्मे	३११
अर्मक च ददशाति-	११	अवाचि च प्रिये कस्मात्	४६	असौ मोचयित्वा तस्य	३७१
अर्हच्छासनवेवीव	६६	अवार्यवीर्यसंप्राप्तः	१५६	अस्ति क्रौञ्चपुरं नाम	२८३
अर्हन्त समतिक्रम्य	१४०	अविवृत भटी काचिद्धर्तु-	३६२	अस्ति ते दुहिता राजन्	३२
अर्हन्तस्त्रिजगत्पूज्या	३५	अविदितपरमार्थैरेवमर्थेन	२३१	अस्ति वेणागते मेही	२६०
अर्हन्तो मङ्गल सन्धु	२६६	अविदित्वानयोर्मेट-	२७५	अस्त्यत्र कनको नाम	४२
अल कान्ते रुदित्वा ते	३८	अवोचज्ज्यायसी तासां	३१४	अस्त्यत्र प्रवरो नाम	२०७
अलाप्यवचन तस्य	२६८	अवोचल्लक्ष्मणः पद्मं	१२०	अस्त्यत्र मिथिला नाम	२५
अल तथापि सद्धक्त्रे	३०६	अव्यापारेण तातस्य	७४	अस्त्यत्र लवणाम्भोवी	२८८
अल प्रतिभयाकारा	१८२	अशंसिषं ततः किञ्चिद्वि-	३३४	अलं धनोधनिर्धोपं	३८०
अल रुदित्वा नान्येव	२३२	अशुचिः सर्वमासादो	२०२	अलवाहनसन्नाह-	३५७
अल वत्से रुदित्वा ते	२५४	अशुचिः कायतोऽन्योऽहं	६३	अस्मद्वद्धारसमायातो	३१४
अलङ्कारोदय नाम	२२४	अशेषवस्तुसम्पन्ना	१३६	अस्मरञ्च भव पूर्वं	६०
अलावचकसकाशः	४१	अशोकमालिनी नाम	२६३	अस्माकं बहवः सन्ति	३४६
अवगस्य तत्तत्समात्	१३०	अश्रद्धाना सरभ-	६८	अस्माकमत्र वसता	१६७
अवगम्य कुमारैवं	५५	अश्रुदुर्दिनवक्त्रायाः	१५२	अस्माकमपि नारीणा-	८२
अवगम्य ततो धर्म	१३८	अश्वग्रीवो महासेन्यः	२६७	अस्माभिः सह सुप्याक-	८८
अवगाहनधर्मोक्ता	२६५	अश्वयैस्तिन्तिडीकाभि-	२११	अस्मिन् वगत्त्रये राजन्	६७
अवग्रहोऽस्मदीयः क्व	२०६	अश्वत्यान् शालन्यग्रीषा	३३७	अस्मिन् महीधरे रम्ये	१७६
अवगारितमौर्ध्वाकं	४१	अश्वारूढः स तं दृष्ट्वा	१०७	अस्मिन् राघव नाकामे	१३४
अवतीर्यः किमेष स्या-	३५५	अश्वैश्वा समं लग्नाः	३७६	अस्मिन् सुगहनेऽग्रथे	२०६
अवतीर्या विमानाग्रा-	४१०	अष्टमोऽनीकनीसंज-	३५८	अस्मिन्नगोचरेऽन्येषा-	२२०
अग्रतीर्ष गजात्तत्र	१६४	अष्टादशसहस्राणि वेनूनां	१४६	अस्मिन्नुच्चैर्निर्जराः	२१५
अग्रतीर्थ ततः क्रुदो	३८०	अष्टादशसहस्राणि पत्नीना	३५६	अस्य गह्वरदेशेऽपि	२१५

अस्य पोरसमुद्रस्य	३३०	अम्बष्ठः प्रोष्ठिलो राजा-	१५६	आत्मीयवल्गुसश्च	२५१
अस्याः पुटः समासलां	१३८	आकारमात्रमत्रैत-	२५	आत्मीयानाकुलान् हृष्टा	३७७
अस्याः शृणु यदाकृत-	१६०	आकुला रक्षता चैता	२४८	आदरेण च तैः पृष्ठः	२५
अस्या च ये गताः सिद्धिं	२६५	आकुलो मन्त्रिभिः साकं	२६५	आदरेणानुयुक्तश्च	१३६
अस्या भगवता तेन	३०८	आकृपारसमं तेन	३३७	आदित्यश्रवणेनासौ	३८१
अस्या द्वारत्रयं पुर्याः	१३८	आकृष्टो नगरीमध्य	१५८	आद्विणेव स रामेण	२७७
अस्योद्देशाः शुभ्राः केचित्	२१६	आकृष्य श्चर्मकं कूरं	४१	आनयाभ्येप सत्कृत्यां	५६
अस्योपरि परिक्रन्दं	२४८	आकृष्य छुरिकां केचि-	११७	आनयेयमितः क्षिप्रं	१०५
अहं त्वां खेचरध्वाञ्च	२८३	आकृष्य सागरजलं	३१४	आनायिकपृहीतोऽसौ	३५५
अहं पुनरनुतात्मा	१०६	आक्रोशः सारणं पापः	३७४	आनाथितः पिता मृत्या	१२३
अहंयुरयमत्यन्तं	३०८	आख्यातं च क्रमात् सर्वं	३१६	आनन्दं सर्वलोफस्य	१६६
अहं स लक्ष्मणो युञ्ज	१४६	आगच्छाम्यहमित्युक्त्वा	१५६	आनन्दोद्यानमाश्रित्य	२७८
अहमार्यं गमिष्यामि	३११	आगच्छाशु ममाम्भारां	११३	आपातरमणीयानि	५०
अहर्नात् पिङ्गलः कन्या	६३	आगतं जनकं ज्ञात्वा	३०	आपूर्वमाणपर्यन्तौ	८७
अहिंसानिमल सार-	१४०	आगतश्च द्रुतं भूयः	२३३	आपृच्छ्या न मे किञ्चि-	७४
अहिंसा प्रवर मूलं	८	आगतो यश्च सैन्येन	२१	आसप्रधारणन्याय-	३८
अहिसारजमादाय	६६	आगत्य नाक्तः केऽपि	१३५	अभिमुखगतं मृत्युं	३६१
अहिदेवमहीदेवौ	३५५	आगन्तव्यं त्वया प्रीत्या	१५६	आभ्रानाम्भ्रातकाक्षोभ्रा-	३३७
अहो कान्तिरमुष्येयं	८६	आगमिष्यति मे पुत्रो	२२६	आयातोऽभिमुख तस्य	३६०
अहो जितेश्वरे भक्ति-	३१४	आघातः स चिरामोदो	६२	आयान्त्येव सती कस्माद्	२३०
अहो ते वत्स माहात्यं	३१०	आचार्यमार्यगुप्तं च	३	आयान्महुविचा म्लेच्छा-	१५५
अहोऽयैकादश जातं	३२४	आचार्यस्तु विविकैपी	५१	आरण्यकस्तदा हली	३३४
अहो धैर्यमहो त्यागो	३०५	आचार्येणैवमित्युक्ते-	१६६	आरण्यतृणपानीय-	१०८
अहो परमघन्येयं	८२	आज्ञादानेन चाशेषान्	३५६	आरब्धुं प्रसमं कार्यं	२३६
अहो परममाहात्म्यो	३	आज्ञादानेन तुष्टोऽसौ	२७	आरुह्य च रथं सिंहै-	३७६
अहो परमिदं चित्रं	३३०	आज्ञापयति नगरे	१५५	आरुह्य तेन मुक्तः सो-	२६१
अहो पराक्रमो भद्र	३११	आज्ञापयत्यसौ देवो-	११६	आरुह्य वासिता भद्रां	५२
अहो प्रीतिरहो भक्ति-	८२	आज्ञापयत्यसौ देवो भवन्त-	१५७	आरुह्य विचरन्त्येते	२११
अहो प्रौढकुमार्या	४२	आज्ञेनेन ततः सीता	३३२	आरोह देवि मे स्कन्धे	३३३
अहो महानुभावोऽयं	८१	आद्योपमीहशं हृष्टा	१७	आरोहन्ती गिरिं देवी	१८०
अहो महान्तः परमा जनास्ते	४०७	आहुदौकन् द्रुतं चार-	८१	आर्तस्तेन सद्गुःखेन	३००
अहो मे ययुना तेन	३०	आतिथेयाः स्वमावेन	१०१	आर्यदेशाः परिवृत्ता	१६
अहो रूपमहो सत्व-	४११	आतोद्यानुगतं द्रुतं	१६२	आर्यनैताञ्जनपदान्	१५
अहो रूपमिदं लोके	३२५	आत्मश्रेयः समः पद्मः	२६३	आर्यं विद्याभृता कन्याः	२७
अहो वीर्यमहो रूपं	१७५	आत्मश्रेयस्ततो बृह-	२६३	आलम्बे यदि नो यष्टि-	४६
अहो वो विमला बुद्धि-	३१६	आत्मश्रेयोऽभिवानश्च-	२६२	आलस्योपहतो मूढो	११६
अहो शक्तिरहो रूप-	३०५	आत्मार्यं कुर्वतः कर्म	२५७	आलिङ्गिता मनश्चोर्ध्वं	६२
[आ]		आलम्भार्थनिरतस्त्यक्त-	१६६	आलीयमानमात्राणां	३३८
आः पाप दयितादुःख-	२८२	आत्मीयं राज्यमापाय	५८	आलोक्य शस्त्रसङ्घातं	११६

आलोक्यावधिनेत्रेण	३८३	आस्ता स्वामिनि ते वाक्या-	१६५	इति ता कुर्वतोमुच्चै-	१२
आवयोः किल दारार्थं	१८६	आस्तृणद् वीक्ष्य तत्सैन्य-	३६७	इति ता वचनं श्रुत्वा	३२६
आवयोरधुना आत्रोः	२०७	आस्तृणानमथो दृष्ट्वा	११८	इति दीनमना गच्छन्	१३१
आवासास्त्रिगतोऽपश्य-	१६१	आस्फाल्यमारयाम्येनं	१०	इति व्यात्वा पुनरेऽमुष्मिन्	४०६
आवृतास्ते समुद्युक्तैः	३६५	आस्त्वादि महावीर्य-	६२	इति व्यात्वावलोकित्या	२३७
आशा च भजमानस्ता-	२४८	आस्वादमानो निजयेच्छयासौ	११०	इति व्यात्वाऽवहीरुपं	२४७
आशापरायण नित्य-	१४१	आहवेऽभिमुखीभूतं	३८६	इति ध्यायन् महाभीत्या	१०५
आशीविषाग्निभूतयं	२६०	आहार मोक्तुकामस्य	३३०	इति ध्यायन् विनिश्चित्य	६१
आशुकरासुराकारा-	३७२	आहारदानपुण्येन	६७	इति निगदति पद्मे केकयी-	१२२
आश्चर्यं मोहतः कष्ट-	१६२	आहारो वायुपुत्रेण	३३३	इति निगदति राघवोचमे	२१८
आश्लिष्य जानकीं देवि	१७५	आहार्यैर्विविधैः शास्त्र-	२००	इति निजचरितत्यानेकरूप-	३६५
आश्वास गच्छ विश्रवः	२०६	आहिताग्निद्विजस्तत्र	१३३	इति निर्यूहदेशेषु	८७
आश्वासितश्च बाणौघै-	१८	आहुरन्ये समुद्धारः	२६६	इति निर्वेदमापन्ना	६०
आश्रित्योत्तरं तीरं	२२४	आहूतोऽयं हितैः पुष्पिः	१२०	इति पूर्वभव ध्यानात्	२०१
आश्रयाश इव स्वस्य	३५३	आहो वंशस्थलं छित्त्वा	२३५	इति पृष्ठः समाधानी	३२८
आपादघञ्जलाष्टम्याः	४५	आह्वयन्तः सुसज्जदाः	३६६	इति पृष्ठो महातेजा	६७
आर्षेक्षौकिकमर्यादाः	३७१	आहाय स मयाऽवाचि	४०१	इति प्रशारयित्वाभावित्वा-	३८६
आसन्न च परिहाय	२८६	इ		इति प्रशस्य तं स्नेहा-	३११
आसन्नानां च वल्लीना	१८१	इक्ष्वाचके च देवेन्द्र	५६	इति प्रसजता प्राप्ते	२२३
आसन्नोऽयं महाप्राप्तो	१३३	इक्ष्वाकुवंशसम्भूता	३५	इति बहुविधवाचा	३६०
आसन्नमेन्द्रसमामे	२५५	इक्ष्वाकूणा कुलं श्रीमद्	७६	इति मङ्गलनिश्चानै-	२६६
आसीन्न नन्दनच्छाये	३३४	इच्छामात्रादपि क्षुद्र-	२५३	इति मंत्रयमाणस्य	१६१
आसीत् हृष्टेरष्टम्भ-	४८	इच्छामि विशदं श्रोतु-	१५७	इति राजः पुरः कृत्वा	५
आसीद्विशुभे तस्मिन्	४०	इतः क्षमापटलं मेरो-	६	इति वनगहनान्यपि प्रयाताः	१५४
आसीदस्तु कुमारेषु	४०	इतरोऽपि खलीकटुं	१६५	इति विज्ञाय विरसं	२०५
आसीदनुसमालोक्य	२५६	इतश्चेतश्च विस्तीर्ण-	११८	इति विद्याधरी वाक्या-	४००
आसीदनुसमालोक्य	२८६	इतश्चेतश्च विस्तीर्णा	५६	इति विस्मयमापन्न.	३०३
आसीद् गृहपतिः खयातः	२६२	इतस्तत्तश्च तत्रार्चा	२५१	इति विहितमुचेष्टाः	४१४
आसीद्देन्द्रयुद्धेऽपि	३१०	इति कृत्वा स्तुतिं जानु-	१४२	इति संवेगमापन्नः	३०३
आसीद्यस्याधिमाहात्म्य	३०४	इति केचित् समाधाय	१४१	इति सचिन्त्यन् क्रुद्धः	१०
आसाद् रथोपशोभाक्या	३२२	इति गत्या गतीः श्रुत्वा	१६४	इति सचिन्त्यन्ती सा	१५०
आसीनमञ्जलावेनं	३४५	इति गायति दैत्येन्द्रे	३२	इति सचिन्त्य कामार्तः	२३७
आसन्नं मम वपुः शैल-	४८	इति चावेदयन्नाय	१५४	इति सचिन्त्य ब्रजह	१०६
आसीन्मया कृत्वा बाह्या	१६५	इति चिन्त्यतस्तस्य कुमारौ	१८	इति सचिन्त्य जायायै	१५२
आसीन्मे शीर्षपतित-	१४५	इति चिन्त्यतस्तस्य प्रसन्ने	११०	इति सचिन्त्य तामङ्गा-	२३६
आस्ता तावदिदं राज्य	६४	इति चिन्त्यतस्तस्य सम्प्राप्तो	२८६	इति सचिन्त्य निराता	३८२
आस्ता तावदिदं वक्ष्ये	४	इति ज्ञात्वा क्षमं कर्तुं	१०	इति सचिन्त्य निशङ्को	१८६
आस्ता तावद्वाचन	१४४	इति ज्ञात्वा महादुःखं	८	इति सचिन्त्य नानाधु	२२६
आस्ता तावन्मनुजबनिताः	३८४	इति तद्वचनं श्रुत्वा	३२७	इति सचिन्त्य सन्त्यग	१६०

इति सञ्चिन्त्य सम्प्रान्त-	२४८	इत्युक्ते परिषत्सर्वा	११७	इत्युक्त्वा मोचयित्वा तं	१३५
इति सञ्चिन्त्य सा बाळा	१४८	इत्युक्ते पादयोर्दूतो	१५८	इत्युक्त्वा रथमारुह्य	१५६
इति सञ्जातचेष्टासु	३६२	इत्युक्ते पार्थिवोऽनोचत्	३७	इत्युक्त्वालङ्कितं क्षिप्र	१६२
इति सम्भाषिते तस्याः	१६२	इत्युक्तेऽमिदधे तात किं	७६	इत्युक्त्वावस्थित व्योम्नि	२४५
इति सुविमललीलः	२२०	इत्युक्तेऽमिदधे तात हृषीक	७७	इत्युक्त्वा वायुसम्भूतः	३११
इति सुविहितवृत्ताः	३४३	इत्युक्ते मुञ्जती वाष्प-	७५	इत्युक्त्वावार्धमाणापि	१३३
इति स्थितानामपि मृत्युमार्गे	४०७	इत्युक्ते रघुचन्द्रेण	३००	इत्युक्त्वावार्धमाणाऽपि	२३७
इतो हृष्टावितो हृष्टौ	६४	इत्युक्ते रहसि स्थित्वा	३५	इत्युक्त्वा विकथाः कर्तुं	२६१
इत्यधिगम्य विचक्षणमुख्यै-	१७३	इत्युक्ते रामदेवोऽपि	१४७	इत्युक्त्वा विरघमासी	५७
इत्यश्रुदुर्दिनीभूत-	४०४	इत्युक्ते रुदती सीता	३३५	इत्युक्त्वा विस्फुरतिक्ल-	३६३
इत्याचार्यस्य वचनं	६	इत्युक्ते लोकवक्त्रेभ्यः	१२२	इत्युक्त्वा शिरसा पागौ	१३६
इत्यादिवर्णनायुक्ता	३६	इत्युक्ते वचन वाति-	३३०	इत्युक्त्वा समिधाभारं	१३७
इत्याद्यालापसंसक्तं	१७०	इत्युक्ते वचनं सीता	३३१	इत्युक्त्वा साक्षात् कृत्वा	१६८
इत्यार्यध्यानयुक्तस्य	५४	इत्युक्ते विस्मयं प्राप्ता	६२	इत्युक्त्वालो सुसन्नह्य	५६
इत्यासन्नं तयोरसी-	२४५	इत्युक्ते वैरसम्यक्	२४४	इत्युक्त्वा स्मरुकाग्रं तं	२५८
इत्युक्तः करुणं यावत्	२२७	इत्युक्ते सीतया सार्धं	१२६	इत्युक्त्वा स्वग्रहं गत्वा	१६१
इत्युक्तः कुपितो राजा	१७३	इत्युक्तो धृतिमासाद्य	६३	इदं कर्मविचिन्तत्वाद्	२०६
इत्युक्तः क्रोधसंरक्तः	३४१	इत्युक्तोऽप्यनुकम्पेन	२८७	इदं च प्रत्ययोत्पादि	३०६
इत्युक्तः प्रकटक्रोधः	११६	इत्युक्तोऽप्यपरित्यक्त-	११३	इदं जनो यः सुविशुद्धचेताः	६६
इत्युक्तः साक्षात् पत्नी	२०६	इत्युक्तोऽमिदधे तात	७७	इदं तदण्डकारण्य	२१५
इत्युक्तस्तेन यातोऽसौ	२२४	इत्युक्तो मस्तके कृत्वा	१६५	इदं ते कथितं देव	११३
इत्युक्ताः सम्मदोपेताः	२४८	इत्युक्तो लक्ष्मणोऽभाणीत्	२४७	इदं नाथ महाश्चर्यं	२२५
इत्युक्ता कुपितावोच-	३२६	इत्युक्त्वा कङ्कटच्छन्नः	२३५	इदं परं चेष्टितमाति-	१६६
इत्युक्ता लिखती क्षोणीं	७५	इत्युक्त्वा क्षमयित्वा तं	१६६	इदं वाच्यमिदं वाच्य-	११५
इत्युक्ता वापसम्भार-	२५७	इत्युक्त्वा चरितार्थः सन्	२६	इदं शिखरिणो मूर्ध्नि	३०८
इत्युक्तास्ते गता मोहं	२८८	इत्युक्त्वा दहमानोरु	१५८	इदमेव शरीरं मे	२५७
इत्युक्ते करुणाविलम्बः	११३	इत्युक्त्वा दुःखभारेण	१२८	इन्द्रीवरनिभेनाद्य	३७६
इत्युक्ते कोपमायातः	११७	इत्युक्त्वा दौषण सैन्य	२४४	इन्दुरक्षिमर्जयत्कन्द-	३७७
इत्युक्ते कोपसम्भारं	३७६	इत्युक्त्वानन्दवाग्धेन	६५	इन्द्रायुषो गतत्रासः	३६७
इत्युक्ते कोऽपि नोऽत्यर्थ	३४	इत्युक्त्वा निरपेक्षौ तौ	८६	इन्द्रियप्रभव सौख्यं	१०८
इत्युक्ते चतुरैरद्वै-	२५०	इत्युक्त्वा परमं विभ्र-	२३४	इन्द्रियाण्यप्रमत्तः सन्	२०६
इत्युक्ते जनकैर्नैता	३२	इत्युक्त्वा परमोद्विग्नो	२४१	इन्द्रियैर्वचितात् पृच्छ	१०७
इत्युक्तेऽप्यन्तसद्भक्तिः	६६	इत्युक्त्वा पादयोः कान्ता	१८३	इन्द्रेण साक्षितो यो न	३५६
इत्युक्ते द्विज उत्थाय	३	इत्युक्त्वा पाशमेतस्याः	१४६	इन्धकः पल्लवश्चैव	३७१
इत्युक्तेन मया देवि	२५६	इत्युक्त्वा पुनरभ्यासीत्	२४१	इमकणौ गणस्तेषा-	१३५
इत्युक्ते संयतं नत्वा	२८५	इत्युक्त्वा पुनरप्यस्य	६५	इमं चन्द्रगतिः श्रुत्वा	५८
इत्युक्ते निश्चित ज्ञात्वा	७३	इत्युक्त्वा प्रणति कुर्वन्	१३१	इमकं वनिता दृष्ट्वा	३४२
इत्युक्ते परमं तोषं	१२८	इत्युक्त्वा भावतः पादौ	७६	इमकैर्दुःखलोत्पन्नैः	११४
इत्युक्ते परितुष्टेन	४००	इत्युक्त्वा मुदितोऽप्यन्त-	३७८	इमामप्रतिमाकारा	२३६

इमामप्रतिमाकारा	२३६	उक्तोऽपि शुद्ध शुद्धेति	२३३	उत्साहं परमं विभ्र-	२७४
इमे प्रिये फलकुसुमैरल-	२१८	उग्रनादस्तथा सुन्दरः	३६४	उत्साह्यन् लुलोद्बृत्तं	१५६
इमे वाणासने कर्तुं	३६	उचितं किमिदं कर्तुं	३२४	उत्सेहे रावणो योद्धुं	३७८
इमैर्निमादितैः क्रोधात्	३४०	उच्चारयति नो शब्द-	१७२	उदात्तेतैः सस्तस्य	३६०
इय च तव शोकेन	७८	उच्चावचा क्षितिं वेगात्	४८	उदारभट्टकामिन्यो	११८
इय च पुत्रशोकेन	७५	उज्जगाम ततो लोक	१६४	उदारे विजिते देव	३८१
इय च शाकतदाङ्गा	७८	उज्जयिन्या ददावध-	१२२	उदारे सति सौभाग्ये	३७
इय ते प्राणतुल्येति	२४१	उडुपातः किमेष स्याद्	११	उदाहृतमिदं श्रुत्वा	७१
इय नः सुमती माता	८७	उत्किरक्षितरा दृष्टो	३४८	उदीचीनं प्रतीचीनं	२५४
इय मनोहरकारा	३२०	उत्तमलक्ष्णलक्षितदेहं	३१	उद्गतं भवने वह्निं	३५२
इय यमालयं पापं	३१६	उत्तमलीसहस्राणा	३२७	उद्गता बद्धकवचाः	३८८
इयत यत्थ मे कालं	१३०	उत्तमा उपकुर्वन्ति	३६७	उद्गीर्णमानने नैव	६४
इयमेतदयं वल्ली	१७८	उत्तरीवायुकस्योद्भवं	२६३	उद्घाटितकपाटानि	२५६
इरा नाम ततस्तेन	३३२	उत्तिष्ठति पुनः शून्यः	२६४	उद्गमानं मनोवेगं	२७
इष्टवस्तुविधातेन	२३८	उत्तिष्ठ भज निःशेषाः	३७	उद्गमाऽसौ महानाग-	३३४
इह चमरीगणोऽयमति-	२१६	उत्तिष्ठ स्वपुरीं यामः	६४	उद्देतिपुपदेशोच्चै-	१०८
इह तावदल भोगै-	१६७	उत्तिष्ठैवं गृह्णाणैवं	१४१	उद्भिन्नवन्तिदन्ताग्र-	३६२
इह यत् क्रियते कर्म	१६७	उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्र त्वं	१०५	उद्भन्तमन्यदा भानुं	३३४
इह समरितः कालः	१६७	उत्तिष्ठोत्तिष्ठ मा भैवी	१३१	उद्भय्य नर्तकी खड्गं	१६४
इहापदि महाभाग	३१५	उत्तीर्णाः सरितं पद्मो	८६	उद्यानं सुमहादृक्	५१
इहापि निखिले लोके	३०४	उत्तीर्णस्वामिकर्तव्यो	३६१	उद्यानमिव निर्याता	१०३
इहासीद् भारते वास्ये	७०	उत्तीर्य प्रसृतः सते	१०८	उद्यानानि सुरभ्याणि	१३७
इहैव लोके विकटं पयं यशो	३८६	उत्तीर्य विहितक्रीडा-	१२६	उद्याने निकटे तस्य	१७०
		उत्तीर्य स बनो नागात्	१२५	उद्योगेन विमुक्ताना	२६६
		उत्तीर्य स्वरथाद्वीर-	३८२	उद्बृत्तनक्रसुत्कार-	८८
		उत्थाय पद्मनाभेन	३००	उद्बृत्तोऽग्रमसौ पापः	३४०
		उत्थाय सहसा दृष्ट्वा	२४६	उद्देगकारणं भद्र-	५
		उत्थायान्तिकमागत्य	२२६	उद्देगविपुलवर्ते	५४
		उत्थायान्पापदेशेन	२३०	उद्देगानन्दसम्पन्नं	३०१
		उत्पत्य च रथे तस्य	३१०	उद्देष्टव्यं दधितानाहु-	३६१
		उत्पन्नः कनकाभाया	१८८	उन्मज्जत्प्रवृत्त्याह-	८८
		उत्पन्नो विमलारुपाया	१८६	उन्मत्तवारणस्कन्ध-	१०२
		उत्पाद्य वायुपुनोऽपि	३३७	उन्मूलयन्निदं यन्त्रं	३१८
		उत्सृज्यनयनो लोकः	१६८	उन्मूलितमहालाना	३३८
		उत्सृज्यनेत्रपञ्जीवाः	१५१	उत्पकटोऽस्य नगरं	२२०
		उत्सृज्यमुखराजीवाः	१६२	उत्पकारः कृतस्तस्याः	२२८
		उत्सवः स महाज्ञाता	१५३	उत्पगम्य ततः सीता	३२७
		उत्सार्य खेचरान् संख्ये	४०५	उत्पचारो यथायोग्यं	१५३
		उत्सार्य चोरलङ्घनां ता	१०४	उपनिन्ये शुभा कन्यां	१६७

[ई]

ईदृश्यपक्रमकृष्टो	२३
ईदृक्शूलगुणोपेतो	११५
ईदृक्पि वाङ्मयमि	३६६
ईदृशानपि शङ्काया	६०
ईदृशी नाम नायस्य	४७
ईदृशो चरिते कृत्ये	३२२
ईदृशे समरे जाते	३६२
ईदृशचिदभिज्ञाय	३३६
ईर्ष्याक्रोषपरीतश्च	५६

[व]

वक्तुं च गुण्या भद्र	२०८
वक्तुं च स्वाभिना तस्य	१२८
वक्तुं तातेन यत्सर्वं	६५
वक्तुं प्रयुक्तमालाभिः	५५

उपमानविनिर्मुक्तं	१८१	उवाच गौतमो राजा	१	ऋद्धया परमया युक्तः	१७६
उपयोगा जगदैव	१८४	उवाच च गणस्वामी	१३६	ऋग्याभिगच्छुस्तस्य	३०१
उपयोगेति भार्यास्य	१८४	उवाच च गतिः केन	३१७	ऋषम सततं परमं वरदं	३१
उपरिष्ठात् करिष्यामि	६६	उवाच च ग्रहाः सर्वे	३४२	ऋषिसम्बन्धमुद्भवान्	५८
उपयुं परि संरक्तो	२६३	उवाच च चिरात् सोऽहं	२४४	[ए]	
उपलब्धप्रवृत्तिश्च	२८७	उवाच च परिक्लिन्न-	१७४	एककं मीषणेऽरण्ये	२२८
उपलभ्य च वृत्तान्तं	१५१	उवाच च प्रिये नूनं	२३४	एककेनैव सा तेन	२३५
उपलभ्यास्य वैराग्यं	१४६	उवाच चेदमेकं मे	२८३	एकतो दयितादृष्टि-	३६३
उपवासपरिश्चान्त	१४०	उवाच जनको धीरः	३४	एकदेशानहं तस्य	२६२
उपवासदिहीनस्य	८	उवाच पयिको देव	१०६	एकमक्षौहिणीना तु	३५७
उपवातैः कृशीभूता	४०४	उवाच रावणो देवि	२५८	एकक्षदं सहस्राणि	३५८
उपविष्टाश्च विधिना	२७१	उवाच लक्ष्मणः शक्त्या	१७३	एकस्तावदय ध्वस्तो	३६४
उपविष्टोऽर्कसङ्काशो	३४०	उवाच श्रेणिकोऽयैवं	३७१	एकस्तु पुरुषाकारो	१०५
उपविश्य विनीतास्ता	२७६	उवाच श्रेणिको भूपः	६७	एकस्मिन्नुपितः कुक्षौ	५६
उपविश्याङ्गमारोप्य	७६	उवाचासावहो वृद्धा	२६६	एकस्मादपि जैनैर्न-	६८
उपसहृत्य संरम्भं	३६१	उपितोऽनेकशो बीजो	१८६	एका रात्रिं वसामीति	१११
उपसर्गादिवस्ते	१८२	उपित्वा गच्छता तेषा	१०१	एका वेलाभिह ततो	१२३
उपससृजश्च ते सर्वे	२६४	उष्णदीर्घातिनिःश्वासान्	३६	एकाकिनमसौ ज्ञाता	२४४
उपसृत्य च ता कन्या	३२१	[ऊ]		एका नानासपत्नीना	३३२
उपसृत्य ततः स्वैरं	१८१	ऊचिरे तस्य मृत्यास्त	११४	एकान्तरहृत्तयं वा	२०८
उपसृत्य मय त्यक्त्वा	१४३	ऊचुरन्येऽन्यनारीभिः	४०	एकसने च तेनाति	१२५
उपासत्पुण्यो जननान्तरे जनः	३८७	ऊचुरन्ये विवेकस्था	२३४	एकीभूय च ते सर्वे	२७३
उपासत्सुमनोदामा	४२	ऊचुश्च देव मुञ्चैनं	१२०	एके च वचनं प्रोचुः	२६७
उपादाय च ते शूरा	३६	ऊचुश्च राज्ञसाः सोऽय	३७५	एकेन वायुपुत्रेण	३५६
उपाध्यायेन चानीती	१८६	ऊचे च कुन्दसकाशैः	१४३	एकेन साधुना तत्र	२५६
उपायः सर्वथा कश्चि-	३६७	ऊचे च तेऽसिनानेन	२८५	एको रथो गवश्चैक-	३५८
उपायश्चिन्त्यतामाशु	२६	ऊचे चन्द्रमरीचिश्च	३४६	एत मुखन्वमी दोषा	११६
उपायारम्भमुक्तस्य	१५१	ऊचे च वायुपुत्रेण	३२८	एतयोः सुधतोरेवं	१४२
उपालङ्घिमिदं किं स्यात्	१३७	ऊचेऽपराजिता हा त्वं	७६	एतश्च वनमायाता	३१५
उपासीनस्य चारुणा	१०६	ऊचे रघुकुलोद्योतं	१६४	एतश्च सर्वरोगाणां	२६२
उपास्तिर्वेदि देहीति	६६	ऊचे विमीषणो नत्वा	३५६	एतच्चाश्रमिमानेन	२५६
उरगार्णा पतिः किं स्यात्	३२	ऊचे वैता द्रुतस्वान-	११	एतत् चेत् कुरुपे सर्व-	१३१
उरोधातमहादाह-	४०१	ऊर्ध्वापदमधोग्रीवं	१३४	एतत्तत्त्वामिनः प्रीति	३४०
उल्काभिर्गुं जगद्व्यासं	२०५	ऊर्ध्वा मात्रा सह प्रातः	६२	एतत्तत्त्वनिवासिन्यः	१४६
उल्काळाङ्गुलदिव्याङ्ग-	३४६	[ऋ]		एतत् पश्यसि यद् विप्र	१३७
उल्काळाङ्गुलपाणिं तं	३१०	ऋजुनैव च रूपेण	२०३	एतत् प्राणदृढासक्तात्	२४७
उल्केय सङ्गादित्य	३१६	ऋणता तच्चिरं नीत-	७८	एतत्सर्वं मम भ्रातः	३२८
उल्लङ्घयस्तेऽति दुर्ज्ञेय	७	ऋद्धया च परया युक्तो	१८३	एतत् कुरुते बन्धु-	३०५
उल्लङ्घ्य सुमहारण्यं	१४७			एतन्नगरनाथस्य	१७१

एतस्मिन् कुसुमैः पूर्णा	३३४	एवं चिन्तयतस्तस्य	२८२	एवं स गदितो दध्यौ	११०
एतस्मिन्नन्तरे प्रातः	२४४	एवं चिन्ता परे तस्मिन्	३१	एवं सङ्गान् सावसानान्	२५१
एतस्मिन्नन्तरे जाते	२५८	एवं चिन्तामुपेतायाः	७४	एवं सुदुःखितमतिः	३
एतस्मिन्नन्तरे दिव्य-	३८५	एवं जनः परां भक्ति	४५	एव हि बोधिता तेन	३३९
एतस्मिन्नन्तरे प्राप	२७२	एवं तयोः समालापं	५६	एवमशु शुचं मुखं	७५
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः पद्मः	१८	एव तयोर्महायुद्धे	३६०	एवमस्त्विति तेनोक्ते तारं	५८
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः स्वय-	२५८	एव तिरस्कृतो माया	२५८	एवमस्त्विति तेनोक्ते दध्मुः	१६४
एतस्मिन्नन्तरे साधु	६	एव तौ चारुधामानि	१८८	एवमस्त्विति भाषित्वा	१२२
एतस्य वचनस्यान्ते	२७१	एवं तौ विहितालापौ	१८७	एवमस्त्विति संभाष्य तं	३०६
एतस्या स निषण्णेति	२८१	एव दुर्गतिरे जाते	२६७	एवमस्त्विति संभाष्य देवी	१२
एतस्याकृतिमाश्रित्य	२७१	एवं धर्मिणि देहेऽस्मिन्	१८६	एवमस्त्विति संभाष्य नृपो	११४
एतामिरपराभिश्च	३१६	एव ध्यात्वानुराधाद्यैः	२७५	एवमस्त्विति संभाष्य प्र-	३६४
एतामानायकीभूता	३८१	एव नानाविधैरुग्रै-	२५६	एवमस्त्विति सम्भाष्य	२०७
एतावतैव ससारः	४११	एव निगद्य शाखाया	१४६	प्रणम्य	२०७
एतास्त्वया परित्यक्ता	१६३	एवं निश्चितचित्तो	८५	एवमस्त्वित्यभीष्टाया	१६७
एते किं लोचने तस्या	२८२	एवं परममाहार-	३३३	एवमादिकृतालापाः	११६
एते खण्डत्रयाधीशा	२६७	एवं प्रमातसमये	५२	एवमादि गदन्तस्ते	८८
एते चान्ये च भूयासश्चारु	१६५	एवं प्रभो करोमीति	१३१	एवमादि चिर कृत्वा	४०३
एते ध्वजोपरिन्यस्त-	३४८	एवं प्रयत्नीकृतयोग्य-	३६८	एवमादितर भूरि	३०१
एतेऽन्ये च महासत्त्वा-	१५६	एव प्रवदमान त	३५३	एवमादिभिरालापैः	३६३
एतेऽन्ये च महासत्त्वा महा-	३६	एव प्रशान्तसरम्भे	१६५	एवमादिमहादोषा	६६
एतेऽपि बलिनः सर्वे	२६६	एवं भगवतो वक्त्र-	२५६	एवमादीनि वस्तूनि	१४२
एतेऽपि वातरहोमी	३६४	एवं भूतापि नो यावत्	२३०	एवमाद्याः क्रिया क्लृष्टा	२६५
एते बाणियुतैः कान्तै-	३६८	एवं मनोरथं सिद्धं	२२६	एवमाद्याः पुराभिख्याः	३५७
एतैरन्यैश्च विविधै-	३१०	एवं मोक्षपरीक्षणा	२०८	एवमाद्याः सुवहवः	२८६
एतौ प्रथमि शरणं	२०१	एवं युक्तो महाभूत्या	३०७	एवमाद्या महायोचा	२५०
एव कुरु न चेदेवं	१६३	एवं वर्षसहस्राणि	४०४	एवमित्युक्तिं याता	११४
एवं कृतध्वनिभ्राम्यन्	२३६	एव वायुगतिः पृष्ठो	१५७	एवमिन्द्रजितेनापि	३८१
एव कृतसमालापा	४११	एव विचिन्तयन्तीभिः	१२३	एवमुक्तः स तैरुक्ते	११६
एवं कृते न ते भेद	१६७	एव विदिततत्त्वाना	३५६	एवमुक्तं त्वया नाथ	१४६
एवं गलेन्द्रवद्बद्ध	३६६	एवविषममु युद्धे	२८६	एवमुक्तं समाकर्ण्य क्रुद्धः	२६०
एवं गतेऽपि निग्राणः	१६३	एव विध्वंसयन् यावन्	११७	एवमुक्तं समाकर्ण्य लीता	२६०
एव गतेऽपि चेत् कर्तुं	३८६	एवं विनिर्गता योधाः	३६३	एवमुक्तस्तथा साकं	१६२
एवं च चिन्ता सततं प्रपन्नो	१००	एव विमृश्य विद्वासः	२६८	एवमुक्ता विसृज्यासौ	२३२
एव च पथुंगायैतौ	२०१	एवं विमृश्य सज्जात-	२७०	एवमुक्ता संती लीता	२५२
एवं च मानसे चक्रे	७१	एवं विरचिता क्षोणी	३६८	एवमुक्ते कुमारिणा	१२३
एवं च वाचिते लेखे	१५६	एवं विष्णुपिनी कुच्छ्रा	४०७	एवमुक्ते तथा स्वैरं	१३३
एवं च सुचिरं खल्ला	२६६	एव विषमता प्राप्ते	३०१	एवमुक्ते विमुक्तः सन्	८०
		एवं संख्यबलापेतं	३५८	एवमुक्तेऽखसपूर्णा-	३८

एवमुक्तो जगादासौ	७५	कदम्बविटपौ मीमो	३६४	कर्मभारगुरुभूता	१४१
एवमुक्त्वा तथा कृत्वा	१४२	कदम्बैस्तिलकैर्लोमै-	२११	कर्मविचेष्टितमेतदसुखिम्	३२३
एवमुक्त्वाभिमानेन	१६३	कदाचारसमुद्रे त्वं	३४१	कर्मानुभावतस्तच्च	३७
एवमुक्त्वा मरुपुत्र-	३२३	कदानु विषयास्त्यक्त्वा	५०	कलं प्रवरनारीमि-	५८
एवमुक्त्वा शुचा ग्रस्त	१४५	कनकस्याग्रजो राजा	५८	कलयकलयनिष्णातो	४२
एवमुग्रान् विसुञ्चन्तं	२८३	कानने सीतया साक-	१२५	कल्पोद्यानसमञ्छाय-	१८५
एवमुद्गतसदृष्टि-	१४१	कनीयास्तस्य धर्मोऽय-	६६	कल्पिताः पुरुषोभादयाः	३४६
एवमुद्गमापन्नो	१४३	कनीयानसि स त्वं मे	३८६	कल्लोला इव निर्जग्मुः	१२७
एवमेकाकिना तेन	११७	कन्दमूलफलाहाप	२१	कश्चित् परशुर्हं प्रातो	८६
एवमेवेति सोऽबोचद्यद्	३२२	कन्यया मुदितश्चौरः	२	कश्चित् सुरतविभ्राङ्गो	८६
एष खङ्गधनुञ्छाय-	११८	कन्या त्वय जुषार्चन	४०५	कश्चित् सन्ध्याय दन्ताग्रैः	३६१
एष प्रत्युपकारं मे	२७५	कन्यामिर्धटकैः स्वादु	१०१	कश्चिदङ्गराता कान्ता	४०८
एष ममोपकरोति मुचेताः	३७३	कन्यामेकामुपादाय	१६७	कश्चिद्विचटित इष्ट्वा	३६१
एषा मध्ये न पश्यामि	२६८	कन्या स्वयवरा साध्वी	५५	कष्टं चिन्तितमेतन्मे	२६६
एषा क्रौञ्चरवा नाम	२१६	कपिकेतुस्वाचेदं	२७६	कष्टमेककयोनि	१६०
एषा गन्तासि वैधव्यं	३३२	कपित्थवनमानम्र	४०४	कष्टावस्थां ततः प्राप्तं	१३१
एषा नीला शिला स्यात्तिमिर-	२१६	कपित्थवनलं तेन	३७८	कस्त्वं कस्य कुतो वाऽसि	४००
एषा यातानेकविलासा-	२१८	कपिमौलिभृतामीशं	३४२	कस्त्वसौ भविता लोके	३१५
एषाऽसौ विजनेऽरण्ये	३०८	कपोतभृङ्गराजश्च	२१२	कस्मादयं जनोऽस्माकं	२७२
एषोऽपि दुःखः परमो महीशः	१६८	कमण्डलुशिखाकूर्च-	१३३	कस्मैचित् पूर्वैरगुण्यं	८६
एहि बत्स निर्जं रूपं	२२८	कमलजालकराजितमस्तकः	२१४	कस्य पुण्यवतो गोत्र-	१७०
एषागच्छ क्व यातोऽसि	१५०	कमलनिकरेष्वत्र स्वेच्छं कृता-	२१७	काश्चिन्निच्छेद बाणोवैः	२०
एषागच्छ (प्र) यातोऽसि	२३६	कम्बोजेन सताफारि	७०	काश्चिदन्योन्यघातेन	११७
[ओ]		कयानः क्रमशो भूत्वा	६३	काश्चिदश्रुतवृत्तान्तान्	२८५
ओदनञ्छादिते हेम-	३५५	कयानोऽयं सुतो हर्षा	६३	काश्चिद् विशातवृत्तान्तान्	२८५
[क]		करञ्जकुष्ठकालीयै-	२१२	काको नदा इति ख्याता	१३०
कचिद्वावेन निर्दग्ध-	१२६	करवालीकराकूर-	१८२	का क्व कामिस्त्वया दृष्टा	३६
कचेषु काश्चिदाकृष्य	११७	कराञ्जकुष्ठमलङ्केन	१६६	कास्मिजगाद ते नाथ	३६१
कटकस्य प्रसादेन	२६३	करिवालककर्णान्त-	१८६	कास्मिन् सत्ताहकदस्य	३६३
कटिस्त्रिमणिप्रायाः	१६	करुण बहु कुर्वन्त्यः	१२०	कास्मिन्दुमुखी वामे	३६६
कथं जानासि देवीति	१५०	करेण हृदयं मार्ष्टि	२६४	काश्चिदधीर् कृतं त्यक्त्वा	४०८
कथं त्रिभुवनख्यातो	३४	करेश्वरवतीर्याऽसौ	५२	कचिदुत्तानित भर्तु-	३६२
कथं निरुत्तरा यूय-	२४०	कर्णकुण्डलनद्याश्च	३३५	कास्मिन्दूचे यथैतत्	३६२
कथं मे न मवेद्भर्त्ता	७४	कर्णकुण्डलनामात्र	२०३	कास्मिद्वक्षस्तटे भर्तुः	३६२
कथं वा तव मन्त्रोऽयं	१११	कर्णयोरतिदुःखानि	१४३	कास्मिन्निर्वर्त्तमानापि	३६३
कथं वा मुच्यते पापै-	६	कर्ता रोगसहस्राणा	४०२	कातरस्य विषादोऽस्ति	५६
कथामिः स्मिन्नुत्तमिः	१५१	कर्तुं प्रत्युपकारं यो	३०५	का तस्य बुद्धिर्यायेषु	३०५
कथितं ते महाराज	२८५	कर्मपादैर्यया जीवो	३६२	कान्तावियोगदावेन	२७५
		कर्मयक्त्वा विनेन्द्राणा	६८	कास्तिमासि मुखं दृष्ट्वा	३२७

कान्ते रामपुरी किं नो	१४१	किं वा दुर्गं समाश्रित्य	१६	किष्किन्वैशस्ततो भ्राम्यन्	२६६
कामदाहृहीतात्मा	२३७	किं वा दुष्टं द्विजा केचि-	२३५	किष्किन्वैशस्ततोऽवोचत्	३७६
कामान्तिः कामराशिश्च	३६४	किं वा मदिराहादुग्र-	३२८	कीदृश्वामं मया नाथ	३८
कामार्चिषा पर दाहं	७७	किं वृथा गर्जसि क्षुद्र	२४५	कीदृशी वा सती सीता	३२२
कामार्थाः सुलभाः सर्वे	३६६	किं स्यादसुरनाशोऽयं	३१७	कीर्तयन्ती गुणान् भूयः	२३८
काय म्लेच्छो महाराजः	१३१	किङ्कराणामतः पत्न्यो	३६१	कीर्तिरस्य निजा पाल्या	३३०
कारणं यदतिक्रान्त	५६	किङ्किणीचालयुक्तानि	१६५	कुक्षिनातोऽपि पुत्रस्य	१२
कारयामूर्धिका स्वाणी	११०	किञ्चित् किल त्रपाभाजं	२२६	कुङ्कुमप्रविलिताङ्गा	७२
कार्मुकं क्षिरं सुञ्चारवं	११६	किञ्चित् पद्मवियोगेन	६१	कुटुम्बमेतन्ने दत्तैः	११३
कालः कर्मेश्वरो देवं	८२	किञ्चित् सम्भ्रान्तधीर्वाति	३३६	कुतः किं राजपुत्रीति	२१२
काल देशो च विनाय	१७६	किञ्चिदाह्वयते दत्त-	२६४	कुतः भद्रविमुक्तस्य	६८
काले तत्रैव नेष्यन्ते	१२३	किन्तु त्वद्विरहोदार-	३४५	कुतः समागतः कर्त्तुं	१७३
कालेनाथ सुतं देवी	१०	किन्तु राज्ञौ निरीयेऽस्मि-	४०८	कुतः समागतावेतौ	१७०
काले महत्यतिक्रान्ते	२०५	किन्त्वयं वततेऽत्रैव	१६१	कुतोऽप्यपुण्यतः क्षिप्रं	१६०
कालो नाम यमो बाधुः	११६	किमङ्गदो गतो मेरु	२७२	कुतोऽयमीदृशो बाधु-	४०३
कालो नैव विषादस्य	२४६	किमञ्जनासुतं गत्वा	२६६	कुन्तासितोमरञ्छन	२६१
कारिचदुष्कण्ठया युक्ता	१०२	किमत्र बहुनोक्तेन प्र-	३१८	कुन्दातिमुक्तकलता	१६५
काषायप्रावृता चाहं	१६२	किमत्र बहुनोक्तेन समु०	३३१	कुमतेस्त्व वीरेषा	१२१
काष्ठाद्यानयनासक्ता	७२	किमद्यैव करोम्यन्या	८१	कुमाराः परमोत्साहा	३६
किं करिष्यति वः शत्रु-	३६६	किमधीतैरिहानर्था	१८८	कुमाराभ्यां सम गन्तु-	८२
किं करोमि वन गच्छामि	४०३	किमनेन विचारेण	८१	कुमारे च दत्ता माता	१६३
किं करोमि वन गच्छामि		किमयं वनदेवीभिः	१५०	कुम्भकर्णेन्द्रजिन्मुख्यै-	३५३
विबर	१४३	किमयं शक्रनिर्वायं	३७८	कुम्भीपाकाख्यमास्थानं	७
किं कार्यं पशुतत्रैतै-	१७	किमिति त्वविनाशाय	१६३	कुरुपादारुणारावा	७
किं भो ब्राह्मण ब्रूहि	१३६	किमिदमिह मनो मे किं	२३१	कुर्वन्तीव लतालीला	२६३
किं किमेतद्दहो नाथ	२३४	किमियं ज्ञानकी नैषा	२८१	कुर्वन्ती सा महाकन्दं	२८७
किं वदमर्थकामेयु	१६२	किमेतदिति प्रष्टश्च	२६६	कुर्वन्तु सर्वथा देवा	४००
किं तिष्ठतु विप्रश्चक्राः	३३६	किमेष रमते युद्धे	११६	कुर्वन्तु मुक्तं भद्र	१६५
किं त्वमिच्छसि वैदेहीं	२६७	किमेषा नगरी नाका-	१३७	कुलं गोत्रं च संश्राव्य	३२७
किं न प्रतिमये शीघ्रं	२८६	किमेषा नर्दति क्षोणी	२४६	कुलपर्वतकुञ्जेषु	२८५
किं न स्पृष्टं न किं दृष्टं	६२	किमन्तः कथयिष्यन्ते	३६५	कुलपर्वतसयुक्तां	२५२
किं नाथाकुलता धत्से	२५४	किमत्यपि ततोऽजीते	५०	कुलपोतं निमज्जन्तं	८४
किं नु दुःखेचरैः संख्ये	३२८	किष्किन्ध च पुरं गत्वा	३१६	कुलमेक पिताप्येक-	४२
किं नो ग्रहेण किं भोगैः	८६	किष्किन्धस्वामिनोऽप्येऽपि	३४७	कुलिशोदरनामा च	४६३
किं पुनस्तस्य माहात्म्यं	१५	किष्किन्धाधिपतिर्वातिः	३४८	कुशाग्रनगरेशोऽयं	१३६
किं भीतोऽसि न हन्मि त्वां	३६०	किष्किन्धाधिपतेः सैन्ये	३७८	कुसुमन्ध्वं परित्यज्य	३४
किं वा कृतार्थता प्राप्तः	२८२	किष्किन्धाधिपुरारण	३५३	कुसुमप्रहणव्याजात्	१६१
किं वाऽप्यन्तर्जुनाचैनं	२४२	किष्किन्धेन्द्रजिद्वीरौ	२५०	कुर्चाच्छादितवक्ष्को	१०५
किं वात्र कृत्यं बहुभाषिते	२२	किष्किन्धेशः समाल्याख्यं	३६०	कूर्मपुष्टमहातेजः	३०३

कृत्तेषु सरितामद्रेः	१३५	केविज्ज्वराकुलाः पेतुः	४०	क्रमेण मानिनस्ते च	४०
कृच्छ्राभियनय शोकं च	१२६	केचित् केवलमासाद्य	६०	क्रमेणातीत्य शिविरं	११६
कृत कृतमहो साधु	३०१	केचित्पन्नगवातेन	४०	क्रमेलकमहारावा	३६८
कृत तैराननः श्रेयो	१०८	केचिदध्वबलेदेन	८७	क्रव्यादा विरसं रेसुः	१८२
कृतं परेणाप्युपकारयोगं	३०७	केचिदस्त्रविनिर्मुक्ता	३६१	क्रीडास्त्रपि त्वया देव	८६
कृत सौमित्रिणा नूनं	१७५	केचिद्विचुर्यदि स्थानं	४०	क्रुद्धः सिद्धो यत्ते	११०
कृतपूर्वोपकारस्य	३६७	केचिद्भिन्नाज्ञनच्छायाः	१६	क्रुद्धा इव परं तीव्राः	४०१
कृतप्रचिन्तनामेवं	३२५	केतकीसुतिरबसा	२२३	क्रुद्धाच्चक्रवरादाज्ञा	४०२
कृतसमस्तजनप्रतिमाननाः	४४	केतुकल्पनदृष्टेन	३७६	क्रुद्धेन कुम्भकर्णेन	३७८
कृतसान्त्वनमप्युच्चैः	६१	केतुतोरणमालामि-	४३	क्रुद्धो जगलं सुग्रीवः	२७३
कृतस्मिंतोऽसावरादत्तमीपे	४१३	केयूररत्नवटिलैः	२५५	क्रूरकर्मभिरन्यैश्च	२०४
कृतस्यास्योपकारस्य	३२६	केवलज्ञानसम्भूति-	१८३	क्रूरश्वापदयुक्तेषु	१६६
कृतान्तमेव निम्नुद्ध-	३७	केवलो द्रोणमेवाहः	४०१	क्रोधसंसृष्टचित्तेन	३३६
कृतान्तापकृतं किं ते	२२८	केवल्यास्यात् समुद्भूता	१८८	क्रोशं क्रोश शनैस्तत्र	१६६
कृतापयमहाशीभं	३०२	केशभारं मयूरीषु	२८२	क्व गतास्ता नु नर्तक्यः	१६८
कृता मया प्रतिज्ञेयं	११३	केसरैश्चन्दनैर्नापै-	२११	क्वचित्स्तालादिभिर्वृद्धैः	१२६
कृतार्थवत्तातदशाननोऽसौ	४१३	कैकसीनन्दनोऽबोचद्	३२४	क्वचिदिदमतिघनवरनग-	२१५
कृतार्थभाषणस्यास्य	२४४	कैकसेयी सुतस्नेहाद्	२२६	क्वचिदुद्धमदराजपातित-	२१५
कृतावग्रहमेवं तमुवाच	६६	कैलासपर्वते पूर्वं	४१०	क्वचिदिदं क्वचित्पद्मं	२११
कृती चपलवेगश्च	३०	कैव वातां प्रीत्या नु	२८	क्वचिद्भ्रमरसङ्घातै-	१७८
कृती सुग्रीववैदेही	३८१	को दोषः कर्मसामर्थ्या-	१६४	क्वचिद् वल्लिखिलाकारः	२१०
कृत्य किञ्चिद्विशदमनसा	२६८	को दंष्ट्र इति सखिन्य	१२५	क्वचिद्दिदमसंकाशं	१७८
कृत्वा करपटं मूर्ध्नि	२५३	कोऽन्धःकूपं समापन्नो	२३२	क्वचिद् विभ्रान्तसत्त्वकं	२१५
कृत्वा चेत्ये नमस्कारं	६	कोपकम्प्यलर्थं चास्य	३४७	क्वचिन्नाय क्वचिद् गीतं	१६६
कृत्वा त विरथ भूयो	३७५	कोऽपराधो वदास्माकं	८६	क्वचिन्नाशेखरीभाति	१६६
कृत्वा निदानमेतस्याः	४०५	कोपस्मितसमायुक्ता	३४०	क्वचिन्नील क्वचित् पीतं	१०३
कृत्वापराधकः पूर्वं	८६	कोपेन तप्यमानस्य	२०४	क्व तत् क्व तत् प्रिये साधि	२००
कृत्वा पुरस्सरान् पद्म-	६४	कोऽप्युद्दामतयोद्यानं	३३६	क्व महासम्पदो देवैः	३४
कृत्वा पुराणवस्तुनि	१६२	कोऽप्येष पुरुषो नाथ	११८	क्व मे पापाधुना याति	२४
कृत्वा पूजा विनेन्द्राणां	१६१	कोलाहलेन रम्येण	२१२	क्व यातमधुना तत्ते	३३१
कृत्वा बालतपः कष्टं	१८८	को वाच नृपतेर्दोषः	४६	क्व वथ क्षुद्रसामर्थ्याः	२८८
कृत्वा मे मस्तके पाद	४०६	को वा प्राक्कल्पकालोऽस्या	३	क्व सौमित्रिः क्व सौमित्रि-	२९६
कृत्वा सुनिश्चत मृत्युं	१३२	कोऽसौ नाथेति तेनोक्तं	२०७	क्वासौ महाराजिनः क्वासा-	१६७
कृत्वास्य महती पूजा	१६८	कौतुकोत्कलिकाकीर्ण-	१६७	क्वेदासौ गम्पते साधु	२४४
कृत्वेदमीदृशं सैन्यं	११६	क्रमाच्च यौवनं विभ्रद्	१११	क्षणं चिन्तागतः स्थित्वा	१६४
क्षपाणं यावदादत्ते	२०	क्रमादरिजये जाता	३७२	क्षणं बाणाः क्षणं दण्डाः	३६२
क्षुरोदरि गवाक्षेण	२५२	क्रमेण गच्छतश्चास्य	१७५	क्षणं स्थित्वा च वृत्तान्तै-	३२
क्षणसर्पं मृतस्तस्य	२०३	क्रमेण तावत्समस्ततः	६०	क्षणं स्थित्वाऽतिरम्याणि	१६६
केकयानन्दनः श्रीमान्	१५८	क्रमेण प्रणमन् साधू	१८६	क्षणविरचितसर्वश्लाघ्यकर्त्तव्य	४१४

क्षयादग्निमिवालोक्ष्य २०२
क्षणाविवर्तते यावत् २३६
क्षणेन प्राप्य संज्ञा च ३०
क्षन्तव्यं दुरितं किंचि- १६८
क्षन्तव्यं देव यत्किञ्चि- १४७
क्षपितारिः समाहूतः ३७५
क्षान्तधार्मा वृन्दमध्यस्था ३
क्षितिगोचरदूतोऽय ३४२
क्षिप्रं समर्थता सीता ३५१
क्षीणमत्वमिरामाङ्गं ३४४
क्षुत्पूष्पापरिगृह्याङ्गा ४०४
क्षुत्पूष्पापरिगृह्याङ्गो ४०६
क्षुद्रतिक्तुश्चार्दूल- १०२
क्षुद्रशक्तिसमासक्ता २६६
क्षुद्रस्याथ शिखी जातु २६१
क्षुब्धः स्वासनक्रमेण १६०
क्षुब्धकूपारनिर्घोषा २११
क्षुब्धकूपारनिस्वानं ४१
क्षुब्धोर्मिणि जले सिन्धोः ३७२
क्षेत्रवंशसमुद्भूताः २२५
क्षेपिष्ठं प्रमदारत्नं २६
क्षेमङ्करनरेशस्तु १६०
क्षोणीक्षोभ पर प्राप्ता ३६८
क्षोभगो धुत्पुरुषामा ३६४
क्षमागोचरस्य निर्लभं २७

[ख]

खड्गगदस्य खण्डोऽयं २४२
खड्गशूलौटदेहश्च २४५
खड्गि खड्गसमुपक्रीड १०३
खरदूषणनामा त्व २३३
खरदूषणशोकेन २५६
खरेण सह संग्रामं २४५
खर्चुरैरिहगुदैपद्मै- २००
खलीकारात्ततः पूर्व- १८६
खिद्योऽसौ धरणां दुःखं ६१
खेचरा भूचपरचैते ५६
खगत मयमहादैत्य- ३६०
ख्यते शशिपुरे स्थाने ६६
खगो घनगतिस्तीक्ष्णो ३४६

[ग]

गच्छ क्षिप्रं निर्बं धाम १३१
गच्छन्तं तं महाभाग्य ३०१
गच्छतस्तस्य चात्नेन २८२
गजदन्ताग्रभिन्नस्य ३६२
गजध्वजसमालङ्घ्यौ ३६६
गजवाजिविमानस्था- ३२२
गजवीभत्सनामानौ ३६४
गजाह्वानरागदेत्य ४०६
गजोऽयमस्य शैलाम- ३६
गणाधिपसमेतोऽसौ २०४
गतश्च लक्ष्मणः पद्मं ३२६
गताऽऽगता च सा तस्मै २६३
गताया व्यसनं धोर- ३२६
गते साधौ तपोयोग्य १०६
गत्वा कृत्वाञ्जलिर्दक्षः १२५
गत्वा कयितसत्त्वैः ३८३
गत्वा पवनपुत्रेण ३४६
गत्वा पवनवेगेन ६४
गत्वा प्रबोधयिष्यामि ३०५
गत्वा महेन्द्रकेशुश्च ३११
गत्वा स यावदन्विष्य ४६
गदाप्रहरणं विद्युद्वक्त्रा ३८३
गम्भीरो दौन्दुभो धीरो ३०२
गरुडाधिपतिश्चासौ १६०
गरुडेन्द्रस्य तोष च ३८६
गरुत्मकैतने तस्मिन् ३८५
गरुत्मपक्ष्मवातेन ३८५
गजितैरिति धीराणां ३६१
गर्भवासपरिक्लेश- २२५
गर्भस्य एव चैतस्मिन् १६३
गर्भे च तौ विदेहाया ६
गले तदंशुकैर्नैव ११६
गवामरण्यजातानां २००
गवेषयत यत्नेन २४७
गहनान् कोकिलालापान् २६३
गहनेषु समस्तेषु २८५
गाढप्रहारदुःखात्तः ३६३
गायतोरक्षराण्येवं १८१

गिरिः सप्तमिरुद्यानै- २६२
गीतबलिपतमुत्तानि २७२
गीतनर्तनवादित्रै- ६८
गीतवृत्तादिसम्प्राप्ता- ७२
गीतानुगमसम्पन्न- १८२
गीर्वाणकुक्ष्यदेशाम ३२५
गुडेन सर्पिषा दध्ना १६६
गुणश्रुत्यनुरागेण २७६
गुणान्वितैर्भक्ति जनैरलङ्- ३१६
गुणोच्चारणसन्नोदः ११५
गुप्ता बहुविधैः सैन्यै- १५
गुरुः प्रोधाच वचनं ६
गुरुणा च यथादिष्टं २०८
गुरुपूजा परा कृत्वा ६१
गुरुभिर्वायमाणोऽपि २२६
गुरुकृचे न यो मार्सं ८
गुरुवाक्यानुरोधेन २३४
गुरुपदेशयुक्तोऽसौ १३८
गुरुन् परिजन वृद्धान् ३४१
गुरोस्तस्य प्रसादेन १०
गृहं प्लाविदुमारब्धा १२७
गृहाण तदिदं देवि ४६
गृहाय प्रहरणगच्छ ३६०
गृहाणैतत्तत्तत्सुभं २६३
गृहाभ्रमे महावत्स ७६
गृहचिर्मसमासक्तो ६६
गृहीतगमनक्षेत्रं ३४७
गृहीतबलराज्यं तं ५
गृहीतश्रायमेतेन २२७
गृहीतसायकं दृष्ट्वा २२७
गृहीतादरसर्वस्वो ३७८
गृहीत्वा च परा पूजा ३०
गृहीत्वा च प्रमोदेन ११
गृहीत्वा समयेनास्य १६५
गृहीत्वासौ ततो राज्ञा १५५
गृहोपकरण भूरि ११३
गृह्यतु क्वचित्स्तुभ्यं १२०
गृह्यता गृह्यता कोऽयं २३
गोघण्ट्यारवसम्पूर्णं १०४

गोत्रक्रमसमायात-	४६	चक्षुस्तत्र द्रुतं केचि-	४०	चलिताश्चञ्चलप्रीवाः	२६१
गोपुरं च समासीद्	११४	चण्डविक्रमसम्पन्नो	२०३	चान्दनेन द्रवेणैता	२६६
गोमायुषावृतान् काञ्चित्	२६६	चण्डलौढामिनीदण्ड-	३७६	चापं यावद्द्वितीयं स	३०६
गोशीर्षचन्दनेनैव	४१२	चण्डातकं समुद्रिद्य	१२७	चातणमियमुद्यानं	२६२
गोष्पद्रप्रमितं चैतद्	३५६	चण्डोर्मिमालयाञ्ज्यन्तं	२४१	चारुगुपुरनिष्ठाना	१७
ग्रस्ताराक्षससैन्यास्तै-	३८६	चतस्रो यस्य सम्पन्नाः	३५	चारुवशप्रसूताना	२५८
ग्रस्यमानं निजं सैन्यं	३७६	चन्दनादिभिरालिते	३३३	चारुश्रीरिति विख्याता	२७६
ग्रहणं वा भयङ्गिः किं	३५	चन्दनाक्षितसर्वाङ्गः	३२७	चित्तोत्सवकरी पद्म-	२४०
ग्रहनक्षत्रपटल-	१३५	चन्दनेन विलिप्तस्य	६५	चित्तोत्सवा समायुक्त-	५
ग्रामखेटमटम्वेषु	८७	चन्दनेन स दिग्धाङ्गो	२१०	चित्रं श्रेणिक ते बाणाः	३६२
ग्रामाश्चायतवापीभिः	१०५	चन्दनैररद्वकैश्च	२१२	चित्रं सुग्रीवराजो मा	२७०
ग्रामे तत्रैव जातोऽस्मि	१४५	चन्द्रकान्तेद्रनीलान्तः	१८०	चित्रकूटः सुदुर्लभ्यः	१०२
ग्रन्था निश्चूर्णं तद्रत्नं	३५५	चन्द्रविभ्रमिवाचूर्ण्यं	११५	चित्रपादपसङ्घातै-	२१२
ग्राहसहस्रचारविप्रमा	२१७	चन्द्रमःकान्तवदना	२३६	चित्रमासीद्यदृशाना	३०१
ग्रीष्मढामरकं धारं	१३५	चन्द्राशुरप्रतीघातो	३६७	चित्रमिदं परमत्र नृलोके	३२३
[घ]		चन्द्रादित्यसमे छत्रं	३८३	चित्रयथादरी सीता	२६५
घटस्तनविमुक्तेन	३३६	चन्द्राभा नाम चन्द्रास्या	२७६	चिन्तयत्येवमेतस्मिन्	३२०
घटिता सा ततस्तेन	११०	चन्द्रोदरसुतः सोऽयं	२४७	चिन्तयत्येवमेवारिम्	७१
घनकालस्ततः प्रातो	१३५	चन्द्रोदरसुत प्राप्य	३५६	चिन्तयत्येवमेवारिम्	३६६
घनच्छायाकृतश्रद्ध-	२६१	चम्पकैः कर्णिकारैश्च	२११	चिन्तयत्येवमेवारिम्	२७२
घनवाहनवीरोऽपि	३०८	चरमागचरं दृष्ट्वा	१६३	चिन्तयत्येवमेवारिम्	२६५
घनानामिव सङ्घास्ते	११८	चरितं निरगाराणा	५६	चिन्तयत्येवमेवारिम्	५०
घृणावान् संप्रचार्येद्	१०	चविमिर्घातकीमिश्च	२१२	चिन्तयत्येवमेवारिम्	३४४
घृतक्षीरमिदं जातं	११५	चतुःपङ्क्तिसहस्राणि	१६०	चिन्तयत्येवमेवारिम्	१६०
घृतसूपादिभिः काञ्चित्	३३३	चतुरङ्गकलोपेतौ	१८	चिन्तास्य नित्यं मगधाधिपा-	६६
[च]		चतुरङ्गस्य देशस्य	१२२	चिन्तितं च मया तच्चे-	१११
चकार वशाकुलीभूता	२३२	चतुराननयोगेन	३८६	चिन्त्यमत्स्यपर नातः	२६०
चकारोपवने चन्द्र-	२४	चतुर्दशसहस्राणि	२२५	चिरं कृतरणोऽथायं	३७५
चक्रकचकुन्तासि-	३६६	चतुर्दिग्यः समायातैः	३४८	चिरं प्रार्थयमानोऽपि	३१५
चक्रकचवाशासि-	३८८	चतुर्विधमहसैन्य-	२५०	चिरात् कमलिनीगेहं	२२३
चक्रकचचसंवर्त-	३२०	चतुर्विधास्ततो देवा	१८३	चिरादुपगतं कश्चिद्	८६
चक्रतुः परमं युद्धं	३१०	चतुर्विधेन महता	२४७	चिरान्मानुषनिर्मुक्तो	२३०
चक्रवाककृतच्छाया	५४	चतुर्भिर्विंशति युक्ता	१४२	चिरायति कथं सोऽपि	२८२
चक्रशक्तिगदायष्टि-	३६१	चरितजननकालाऽभ्यस्त-	३६०	चिराय रक्षितं मानं	३६२
चक्रसन्नाहनिष्पेध-	३७६	चलता पल्लवेनेयं	२१३	चिह्नानि चिन्तातस्य	३४०
चक्रेण महता युक्तो	१५८	चलत्कुण्डलविद्योत-	३२७	चूडामणिं सुकल्पार्णं	१४७
चक्रेणानिलसन्नुश्व	३१६	चलत्केतुमहाखण्डं	२५३	चूडामणिमिम चोद्ध	३३५
चक्रे योद्धुमभिप्रायं	३७७	चलत्केसरसङ्घातैः	२५६	चूर्ण्यमानविमानेन	४०२
चक्षुस्ततो नियुज्यासा-	३१७	चलन्नीलोत्पलच्छाये	१६१	चैत्याङ्गणं समासाद्य	६८

सैत्याल्य प्रभाते तं	१२३	जनसुत्तारथत्येप	१४१	जानत्याऽपि तथा मृत्युं	४०५
सैत्याल्यैरल तुङ्गै-	३४६	जनस्याथाविरुस्यापि	१८२	जानन् सकलमथादा	२६०
च्युतोऽतः पुनरुपवत्या	६६	जनस्योत्सार्यमाणस्य	८३	जानन्नपि कथं सर्वं	२६१
च्युतो तो मुन्दौ नाका	१८८	जनाना विस्मयकरं	१४५	जानामि नाथ ते भाव	३३५
[छ]				जानास्येव विभोग ते	३६६
छत्रचामरलम्बूय-	६७	जनोऽचिदितपूर्वो यो	२३०	जानुं क्षितितले न्यस्य	२८४
छायया तुङ्गशृङ्गाणा	१७८	जन्तुरेक एवाय	७४	जानुन्यस्तमुहुःक्षस्त-	१७५
छेकहताशिरं वस्ता	१२७	जन्तुना दुःखभूयिष्ठ-	२५६	जामाता लक्ष्मणाऽय ते	१५१
[ज]		जन्मनः प्रभृति क्रूरः	१०६	जामात्रेऽपि मुसम्पन्न-	११५
जगतो गुरुभूतत्वं	३११	जन्ममृत्युजराव्याधै-	८४	जाम्बूनदमवान् कुम्भान्	१७
जगदुरचैवमन्योऽन्यं	२५	जन्मान्तर प्राप्त इवाय-	४१२	जाम्बूनदमयो यावत्	३५२
जगाद च किमद्यापि	१७३	जन्मान्तरकृतस्यास्य	१६५	जाम्बूनदनुताद्याश्च	३७७
जगाद च कुर्वतस्य	१५८	जन्मान्तराजितकोध-	३७५	जाम्बूनदस्ततोऽबोचत्	२६०
जगाद च न देव त्वा	१२०	जम्बूद्वीपमहीध्रस्य	२८६	जाम्बूनदादयः सर्वे	२६४
जगाद जानकीनाथ	१५६	जम्बूद्वीपस्य जगतो	२२४	जाम्बूनदो महाबुद्धिः	२६४
जगाद भद्र नो वेदि	२४६	जम्बूमाली शिखावीरो	३६४	जायते ज्ञानदानेन	६७
जगाद प्रणतो वासिः	३४५	जय वर्धस्व नन्देति	२५३	जायते प्राप्तकम्पाना	५१
जगाद मुनिमुख्यस्त-	१८६	जयशब्दसमुद्घोष्य	२६५	जाया न्यग्रोधवा भित्वा	१०४
जगाद राघवः किं नु	२३५	जराघोनस्य मे नाथ	४८	जायावैरप्रदीप्तोऽय-	२३७
जगाद वज्रकर्णश्च	११४	जरारोगविहीनाश्च	२२५	विधासन्त तमालोक्य	१८७
जगाद वाऽतिदृष्टस्ता	१३६	जलं प्रार्थयमानाना	७	जितपद्मा ततो भीतां	१७६
जगाद विहसन् भृशद-	१०७	जलज्जुदुदनिस्तारं	५०	जितपद्मा ततः प्राप	१७४
जगाद व्याकुलः किञ्चि-	२५६	जवनारवरथारुढा	३१६	जितहसगतिं कान्तं	२१०
जगाद श्रेणिको नाथ	१	जातमात्रा मृता नाह	४०३	जित्वा तमपि सद्ग्रामे	३६६
जगादाथ यथावृत्त	२६६	जातमुर्वीतल सम्यक्	५१	जिनमार्गप्रवीणासौ	३००
जगादासौ समलं भो	७३	जातरूपधरी कान्ति-	१८०	जिनशाननवर्गण	११३
जगादेति च सत्रैकः	३	जातश्चाभिमुखः शक्तेः	१७१	जिनानर्चति यो भक्त्या	६६
जगादेन्द्रजितः क्रुद्धः	३७६	जातस्य नियतो मृत्यु-	६२	जिनेन्द्रविहिते मार्गे	३२८
जगाम च समुद्रेश	२४१	जाता चक्रवरेणाऽहं	४०४	जिनेन्द्रशाननासक्ता	४०२
जगौ च वाण्यूर्णास्था	२६०	जाता मनस्विनीदेव्याः	६३	जिनेन्द्रसमता याता.	२६५
जगान जातुना काश्चित्	११७	जाताया सुप्रसन्नाया	१४७	जोमृतमलनिर्मुक्तं	२२३
जग्राथिगात्समुद्यद्भी	३३८	जाता विशुद्धवशेषु	१६३	जीवं जीवकमेरुण्ड-	२१२
जननः कनकं हृष्टा	१८	जाता सा विपये कस्मिन्	२३१	जीवन् पश्यति भट्टाणि	२१६
जनरुः कृत्रिमाश्वेन	६०	जातुचिद्विचरन् व्यामि	४००	जीवत्येवानङ्गस्य	१६३
जनरुस्तु सखेदाङ्गः	३६	जातेन ननु पुत्रेण	७६	जीवनशिरनन्तोऽयं	६८
जनरेन च साक्रेता	१५	जातेऽस्य वाग्वर्तिनि रौद्र-	१३२	जीवन्योऽग्निम वेदि	२१२
जनरेन ममासल्यै-	१११	जातो वायुक्रुमागोऽभा-	४०६	जीवितं जनितामिष्ट	७७
नवर्गो बालरन्त्राया	५५	जातो हेमप्रभौ पद्मौ	२०२	जीवितस्तेऽस्मन्मृत्	८०१
नवर्गोऽथोचदत्यन्त-	३४	जानक्या सह सन्मन्य	१६६	जीवितस्य त्वमेवैवः	८०

जीविताशा परित्यज्य	३६७	तं लङ्कासुन्दरी भूयो	३२०	ततः क्षणमासौ सङ्ग-	२०४
जीविताशा समालम्ब्य	२८७	तं विसर्पमदामोदं	११०	ततः क्षणात् परित्यज्य	२२६
जीर्णवस्त्रावशेषाङ्गा	६२	तं दृष्ट्वा सुन्दराकारं	१७३	ततः क्षुब्धपगानाथ	१७५
जृम्भोत्तानीकृतोरस्को	२६५	तर्कं धूसरसर्वाङ्ग-	२८६	ततः खेचरपुष्टोऽसौ	४०२
जैनं व्याकरणं श्रुत्वा	१८७	तच्छ्रुत्वा भूपतिस्तस्यै	१६१	ततः पञ्चमुखोऽञ्ज-	२६६
ज्ञातमिशेषकर्तव्या	१५०	तच्छ्रुत्वा रावणोऽञ्ज-	२६१	ततः पञ्चः समुत्सृज्यौ	४०
ज्ञातमिशेषवृत्तान्तै-	१५१	तच्छ्रुत्वा वचनं सद्यः	३२४	ततः पद्मप्रमोऽञ्ज-	२७७
ज्ञातमेव हि देवस्य	३००	तच्छ्रुत्वा विगतक्रोधो	३०१	ततः पञ्चो जगादेद	८६
ज्ञातश्चानुमतिं प्राप्य	२७१	तच्छ्रुत्वा विविधं विभ्र-	२८७	ततः पञ्चो जगादैव	२२६
ज्ञात्वा तदीदृशं कर्म	२०४	तच्छ्रुत्वा समुपाख्यात	२१४	ततः पञ्चो जगादैव किं न	६५
ज्ञात्वापद्धतमात्मनं	२३८	तच्छ्रुत्वा सुतरां पद्मी	२०८	ततः पञ्चो जगादैव ता नः	१४३
ज्ञानत्रितयसम्पन्नौ	२००	तच्छ्रेण कथितं रम्यं	१६८	ततः पञ्चो जगादैव विभ्र-	७६
ज्ञानभ्यानहरेः कान्तै-	३२०	ततः कपिष्वन्नावेवं	२७४	ततः पञ्चो निवार्यता	१६०
ज्ञानविज्ञानरहित-	२	ततः कपिष्वन्नायोषा	३१६	ततः पञ्चोऽपि तत्प्राणौ	७८
ज्ञापिताः सेवितद्वारा-	४०८	ततः कर्मणि निवृत्ते	१२६	ततः परं परिप्राता-	३३०
ज्ञायते देवि नाद्यापि	४००	ततः कर्मानुभोवन	१६३	ततः परममित्युक्त्वा धनुषी	३६
ज्योतिर्वरे गते तस्मिन्	१८३	ततः करतलासङ्ग-	१५	ततः परममित्युक्त्वा वार्ता-	४२
ज्योतीरेखेव काप्येषा	१४८	ततः करिणमारुह्य	१६४	ततः परादृष्ट्वीभूता	१६
ज्योत्स्नाकृताङ्गहासाया	६२	ततः कलाकलाप्रज्ञा	७४	ततः परिकरं बद्ध्वा	२६५
ज्योत्स्नया सहितश्चन्द्रो	१५१	ततः कल्याणमालाया	२२६	ततः पर्यङ्गं विपिने	२४२
ज्योत्स्नानक्रमकरा-	३७४	ततः कान्तकरस्पर्श-	११	ततः पलायनीयुक्तान्	३८६
ज्वलदङ्गारकुण्डिले	७	ततः कपिष्वन् तैन्य	३८८	ततः पञ्चवक्त्रान्ताम्बा	१५०
ज्वलद्विशुद्धकरमागु-	३०२	ततः कसुमिक्रान् दृष्ट्वा	३३६	ततः पुण्योदयात्पञ्चः	३८२
ज्वलत्कुक्षिदम्पीमानै-	२५६	ततः कालानलाकारो	२०४	ततः प्रकुपितोऽञ्ज-	४७
[ऋ]		ततः कालो गतः क्वापि	५४	ततः प्रणम्य भूषोऽसौ	२४४
भर्भराहेतुक गुञ्जाक्ष	३६८	ततः किञ्चिन्मधुस्वाद	२५७	ततः प्रत्युपकारं कं	३३
[ङ]		ततः किलापरैः क्रूरैः	३३७	ततः प्रकुञ्जागुञ्जलोचनेन	४१३
हुदौकिरे च भक्त्याख्या	१८०	ततः कुमारकोपस्तं	३८६	ततः प्रबुधचित्तेन	१५२
[ढ]		ततः कुक्षिगुहां तस्याः	३१८	ततः प्रभृति चास्माक-	३१५
दौकितश्च स मायाश्वः	२८	ततः कृतमहाशोभं	३३	ततः प्रभृति सक्तोऽसौ	२०३
दौकित्वा वज्रकर्णस्ताः	२७४	ततः कृत्वा जिनेन्द्राणा	३६	ततः प्रमदसम्भार-	२००
[त]		ततः कृत्वा जिनेन्द्राणा पूजा	१६७	ततः प्रमदती माता	७६
तं कपिष्वन्मालोक्य	१२२	ततः कृत्वा रणनीडां	२७८	ततः प्रमजितं वाञ्छा	२०८
तं क्रीडन्तं बनो दृष्ट्वा	२८६	ततः कैपि ते दृष्टाः	१५१	ततः शत्रुदमोऽज्येन	१७४
त च विशयं वृत्तान्तं	१४८	ततः क्रोधपरीताङ्गः	१५७	ततः शनैश्चक्षुसितोऽवक्ष्य	४१२
तं च सिंहवं श्रुत्वा	२३७	ततः क्रोधपरीताङ्गो	२४६	ततः शरद्वज्रं कृत्वा	२२३
त द्रष्टुं धनुःपारिणि	७०	ततः क्रोधपरीतेन	२४५	ततः शाल्योदनः सृण-	१२५
तं दृष्ट्वा मारुतिर्दध्या-	३१८	ततः क्रिष्टेन सन्तापो	३७४	ततः शुद्धप्रमदोः सन्	२८
तं भस्मीकृतमालोक्य	३६३	ततः क्षणं बिलम्ब्यैतौ	१२६	ततः शोचति निःश्वासात्	२४

ततः शोणितधारामि-	२३३	ततः सौरमसंरुद्ध	४०१	ततस्तयैवमित्युक्ते	२५५
ततः श्रुत्वा कुमारं त-	२५	ततः स्थित्वा क्षणं विरुद्ध	३२४	ततस्ता गुणलक्षणय-	८४
ततः श्रेणिक वैदेही	३२६	ततः स्थित्वा पुरस्तस्य	३६	ततस्तान् राघवोऽवोच-	८८
ततः संज्ञा समासाद्य	२२८	ततः स्पन्दनमारोप्य	१७५	ततस्तापसता प्राप्य	१६३
ततः संधारयन् सैन्य-	२०	ततः स्वपुरुषासक-	२३८	ततस्तिर्यङ्मु सुचिरं	३७२
ततः संवेगमापद्य	४	ततः स्वमन्यथाभूत-	२०२	ततस्त्रुष्टः प्रयातोऽसौ	११४
ततः सख्या विमुक्तासौ	२८४	ततः स्वयंवरोदन्तं	५६	ततस्त्रुष्टोऽवदत्पदमः	११५
ततः सङ्गीतमाकर्ण्य	४०८	ततः स्वैरं मयाद् भ्रष्टो	२४	ततस्ते कथयाम्बु-	५५
ततः सदनयाताना	४३	ततश्चन्द्रगतिः श्रुत्वा	२७	ततस्ते कथयाम्बु-	१८१
ततः स पिङ्गलाख्योऽपि	२	ततश्चन्द्रायणोऽवोचदीर्घ-	३२	ततस्तेऽत्यन्तविभ्रस्ता	१३०
ततः ससिद्धिपारुढ-	१५३	ततश्चन्द्रायणोऽवोचक्षीमान्	३२	ततस्तेन सुमृतेन	५
ततः सभ्रादृक् पद्मं	२७८	ततश्चपलवैगाख्यं	२७	ततस्तेन सप्रुद्धिर्दं	१३८
ततः समन्तादनुपाल्य	३१२	ततश्च माधवीकुङ्ग-	२६	ततस्ते निम्नगा दृष्ट्वा	८८
ततः समाकुलत्वान्तः	३६६	ततश्च भ्रुतवृत्तान्तो	३१६	ततस्ते पुनरित्युक्तु-	८६
ततः समुत्सुकः पद्मः	२८८	ततश्च विनयी गत्वा	१२१	ततस्ते बहुबलत्वेन	३७७
ततः समुद्रवातेन	२४६	ततश्चामीकरानेक-	२११	ततस्ते भूमहीप्राप्र-	१०२
ततः सम्भाषण प्राप्य	२२६	ततश्चालीकमुग्रीवः	२७६	ततस्तेऽवहिताः श्रुत्वा	३८३
ततः सरमसस्तत्र	११८	ततश्चित्तमात्रेण	४०८	ततस्ते सुखसम्पन्नं	१३६
ततः सर्वसमृद्धीना	४५	ततश्चिरं वनं भ्रान्त्वा	३२६	ततस्तेऽपवैर्वाक्यैः	२४५
ततः सर्वहितोऽवोचन्	६२	ततस्त तादृशं ज्ञात्वा	२५७	ततस्तेर्विषयाक्रोशैः	३४२
ततः सर्वास्त्रकुशलौ	१८	ततस्तं बालकं कान्त	११४	ततस्तौ तदिगरो ज्ञात्वा	१६०
ततः ससम्भ्रमत्वान्तः	२८२	ततस्त शोकमारेण	५६	ततस्तौ परया द्युत्वा	१८६
ततः ससार पद्मामः	२७७	ततस्तं विद्युदुद्योत-	२८३	ततस्तौ सम्भ्रमी ज्ञात्वा	१८३
ततः स दृष्टरोमाङ्गो	१८	ततस्तदनुभावेन	३३६	ततस्त्वयेति पृष्ठेन	३३५
ततः सागरगम्भीरः	१५८	ततस्तद्वह्माकर्ण्य	४०२	ततस्त्वासपरीताङ्गो	३००
ततः साध्यससम्पूर्णो	२३०	ततस्तदिङ्गितं ज्ञात्वा	३४६	ततो गणधरोऽवोचच्छृणु	२८३
ततः साहसगत्याख्यः	३००	ततस्तद्वचनं श्रुत्वा खेचय	३४७	तो गणधरोऽवोचच्छृणुत	३७१
ततः सिंहोदरं पद्मो	१२०	ततस्तद्वचनं श्रुत्वा शोक-	२३३	ततो गणधरोऽवोचन्ज्ञात-	२२४
ततः सिंहोदरो भूर्ना	१२०	ततस्तद्वचनं श्रुत्वा विस्मय-	२७५	ततो गत्वा मया साधो	१४०
ततः सिंहोदरोऽबादी-	११६	ततस्तद्वचनाद् गत्वा	११३	ततो ग्रहग्रहीतस्य	२५
ततः सिद्धान्तसम्बद्धा	५३	ततस्तनूदरीसूनुर्गध्या	३७६	ततो गुरुवचः प्राप्य	२०६
ततः सिद्धान् प्रमोदाढ्याः	२६६	ततस्तन्निनदं श्रुत्वा	३१८	ततोऽगुलीयक तस्या	३२५
ततः सोताऽब्रवीत्पद्म-	१३४	ततस्तन्मण्डलप्रान्त-	३४०	ततोऽचिन्तयदेताभ्या	२२६
ततः सुप्रोचरुष्योऽपि	२७३	ततस्तन्मन्त्रिणोऽवोचन्	७३	ततो जनोपभोगाना	१०१
ततः सुप्रोचरजेन	३४४	ततस्तमङ्गलिं कृत्वा	२३५	ततो बन्धोत्सवस्तस्य	१२
ततः सुतजने काले रज्ज्या	१२८	ततस्तमुद्यदाटित्य-	३३७	ततो जयजयत्वान	२४७
ततः सुतजने काले विदितौ	१७०	ततस्तमेवमित्युक्त्वा	२६३	ततो जिहीर्षया तस्य	१११
ततः सौमनसाकार	२१३	ततस्तस्याः समाप्राय	१४८	ततोऽञ्जलिपुटं बद्ध्वा	३३४
ततः सौम्यानं यम	१०६	ततस्तस्या वचः श्रुत्वा	१३८	ततोऽञ्जलिपुटं मूर्ध्नि	३०

ततोऽटनिजटङ्कार	४१	ततोऽनुकमताः काले	१४७	ततो लक्ष्मीधरे नम्रे	२२१
ततोऽप्यन्तमृदुस्यर्थे	१०४	ततोऽनेकममरुह	११८	ततो लक्ष्मीधरोऽपृच्छ-	२७०
ततोऽप्यन्तविषण्णात्मा	२३६	ततोऽनेन विपुत्राया	२८४	ततो लक्ष्मीधरोऽवाचि	१७५
ततो दण्डिनमाहूय	३५६	ततोऽन्यस्यातिरुद्धस्य	१०४	ततो लक्ष्मीधरोऽवाचत् किमत्र	११६
ततो दशरथः कृत्वा	५६	ततोऽनमाननिर्दग्धः	१६३	ततो लक्ष्मीधरोऽवाचत् किमेवं	१५६
ततो दशरथः श्रुत्वा	६४	ततोऽपरमुपादाय	३६०	ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत्प्रमो	३८२
ततो दशरथोऽपृच्छत्	६०	ततो बहुविधैः शस्त्रै-	३६६	ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत्प्रमो	२६२
ततो दशरथोऽवोचद्	७४	ततोऽभवद् भृशं दुःखी	२६६	ततो लल्लटभगोन	१५८
ततो दशरथोऽवोचत् प्रिये	७५	ततो मयाद्विशेषेण	४७	ततो लीला चक्षु रम्या	३२५
ततो दुःखमिनिधोपं	२७०	ततोऽभिमुखमेतस्य	३१८	ततो यानं समाकृष्ट	६५
ततो देवगणाः स्वस्था	१७४	ततो मगधराजेन्द्रः	२२४	ततो विक्रमगर्वेण	२८५
ततो देवत्वमासाद्य	६१	ततो मगधराजेन्द्र-	१५	ततो विदितनिश्चये-	१८१
ततो धनुर्ग्रहप्रान्ते	३८	ततो मत्तिसमुद्ग्रेण	३५४	ततो विनयदत्त-	२६१
ततो दर्पणसक्रान्तं	२३	ततो मदनदीप्ताग्नि-	२६४	ततो विशोभितस्तेन	६४
ततो दशाननोऽप्येन-	२४८	ततो मदनबावाचि	१६१	ततो विभीषणो विद्वान्	३८१
ततो दूरपत्तमालोक्य	१५२	ततो मन्दोदरी कष्टां	२५५	ततो विभीषणोऽवोचत्	३८६
ततो हृष्टिर्गता तस्य	५६	ततो मन्दोदरीसूनु-	३८०	ततो विभीषणोऽवोचदिति	३५२
ततो द्रोणव्रनाह्वस	४१०	ततो महाहवे जाते	३३	ततो विमलता प्राप्ते	२५६
ततो द्विजगणा ऊचुः	२८	ततो महादधिनम्ना	२६८	ततो विशुद्धया बुद्ध्या	१२७
ततो नगरलोकेन	३३६	ततो महोदरः स्वैर	२५५	ततो विशेषविज्ञान-	८३
ततो नताननः किञ्चित्	२४७	ततोऽमात्यगणान्तर्त्यं	३६२	ततो विषमपाषाण-	१६८
ततो नदीर्गिरीन् देशा-	२६	ततो मुक्ताफलस्थूल-	३२८	ततो विपाटिनः सर्वे	३६७
ततो नमः समुत्पत्य	२६६	ततो मुदितसम्प्रीतो	३८२	ततो विस्मयमापन्नाः	१८५
ततो नमश्चरा ऊचू-	३३	ततो मृदुमहामोद-	१५०	ततो विस्मयमादाय	४१
ततो नमश्चराधीशौ	३८५	ततो मृष्टानि पक्वानि	१६६	ततोऽशुकेन संवीथ	१२७
ततो नमस्त्वतः सूनु-	३२६	ततो मैथुनिकावैरं	४००	ततोऽश्रुपूर्णैर्त्राणां	१५१
ततो नमो निषद्याया	१४२	ततोऽय सत्यसुग्रीवो	२७४	ततोऽसाव्रवीदेवं	५३
ततोऽनरण्यसेनान्या	५७	ततो यत्र नमोदेवो	३२२	ततोऽसौ कृपयाऽऽकृष्टा	१३८
ततो नलेन सत्यर्द्धं	३४६	ततो यथोचितस्थान-	४२	ततोऽसौ कृतकर्तव्यो	१४२
ततो नष्टे पु सर्वेषु	३७६	ततो युगमितक्षोभ्यौ	२००	ततोऽसौ खड्गमालम्ब्य	२६
ततो नागाश्वसिंहाना	३५६	ततो रत्नरथेनासौ	१८६	ततोऽसौ त्रयया युक्ता	१५०
ततो नादरतस्तेषा-	२६०	ततो रथकरुदौ	२७६	ततोऽसौ पतितः क्षोभया	२४५
ततो निमेषमात्रेण	४१०	ततो राजीवनयनो	१७	ततोऽसौ परम क्रोध	१३०
ततो निर्मलैर्न स्वस्य	१६३	ततो रामावरच्छाये	१५२	ततोऽसौ परपात्राताद्	२३८
ततो निर्मलैर्न सकलं	१३४	ततो रामोऽभिरामाङ्गः	५६	ततोऽसौ बालचन्द्रेण	५
ततो निर्लुठितं सन्तं	१०	ततो रथकमादाय	१६२	ततोऽसौ मन्त्रिणा सुख्यो	२७१
ततो निर्बिध्नमारोप्य	२३८	ततो रोषपरीतेन	१८४	ततोऽसौ मुदितस्तुङ्ग	२८
ततो निर्वैदमापन्ना	४०४	ततो लब्धासनासीनो	१४३	ततोऽसौ विधुरा नाम्ना	२०८
ततो निशम्य ता वार्ता	२६६	ततो लक्ष्मीधर स्फण्डं	३६७	ततोऽसौ विनयी नित्ये	२८

ततऽसौ शकुनो मृत्वा	१८८	तत्र सङ्कयया स्थित्वा	१७६	तदाशान्यस्तनेत्रासु	६०
ततोऽसौ सहसा मुक्त-	१२७	तत्राक्षयवने रम्ये	३६४	तदासञ्चे मया चैका	१३६
ततोऽसौ स्वसृष्टुःखेन	२७६	तत्राचार्यो द्युतिर्नाम	६६	तद्विष्यमायया सृष्टं	३१०
ततोऽस्मागते सूर्ये	१४७	तत्राज्ञानात् समालोक्य	२४	तद्व्यति तयोः पृष्ट्वा	१५३
ततोऽस्माक वध कर्तु-	३१५	तत्रादरनिराकाङ्क्ष	२५४	तद्धि नः पुरमाथात-	२५०
ततोऽस्य क्रोधसंरुद्ध-	३००	तत्राद्राक्षीद्विथान् भग्नान्	२६६	तद्वशानुक्रमो ज्ञेयो	२२५
ततोऽस्यामिमुख तस्थौ	३७६	तत्रार्धवर्षे देशो	१५	तनयाद्यैव मे गन्तु-	८०
ततोऽस्यतरितरुद्धे	६५	तत्रार्त्तं प्रतिमा दृष्ट्वा	२५१	तनया वनमालेति	१४८
ततोऽहं कुलिशेनैव	११२	तत्राशोकतच्छूलै-	२६३	तनुकृत्ये कृते तत्र	१५६
ततोऽहं चण्डरवया	४०१	तत्रासाजुतमे वृक्षे	२५२	तनुदरी स्वभावेन	३४५
ततोऽहं पापिनी जाता	१२८	तत्र हेमद्रव्यन्यस्त	२६६	तन्निमित्तं मशशोकः	२६१
ततो हरिगजद्वीपि-	३०	तत्रैका रजनीं स्थित्वा	३४६	तप्यन्ते विधिवद्गोरं	३१३
ततो हरिगजव्रात-	८८	तत्सङ्गमार्थमन्योन्यं	१८६	तद्भयनामभूद् युद्धं	३७६
ततो हर्म्यतले कान्ते	३६	तथा चास्मालितं सर्व-	१३०	तमपिगडासितैस्तुङ्गै-	२५६
ततो हेमचयाम्भोभिः	१४५	तथा जिनमतिर्नित्यं	२७६	तमक्षततुं दृष्ट्वा	१७४
ततो ह्रीभारनम्रास्था	२७६	तथा न माता न पिता	३८६	तमाचार्यं परिप्रातः	६३
तत्कान्त्या भवन लिप्तं	१२६	तथापरे वचः प्राहुः	२६६	तमुपेत्य नतिं कृत्वा	२८३
तत्किमेतेन लङ्घेन	२३८	तथापि देवभाषेऽहं	१५६	तमुयैः शक्नोतिदभूयः	३६२
तत्क्षेमङ्कलमस्माक	३२४	तथापि धीर नो भंगः	७८	तमूर्ध्वमन्विणो वृद्धा	२६७
तत्पुत्रो यद्बद्धसाख्यः	२८३	तथापि पुण्यशेषेण	२३३	तमेकान्तपर दृष्ट्वा	२७४
तत्र वल्लतकच्छाय-	२५४	तथापि भवतो वाक्यान्	३२४	तमेव पादपं सापि	१४६
तत्र कृत्वा नमस्कार		तथापि रक्षितः पुण्यै-	३६४	तथा कलिस्तथा तस्य	३३
तत्र कैविद्विदुत प्रोक्षुः	२३३	तथानि विहरन् क्षीर्णौ	४	तथा चित्तं समाकृष्टं	२५
तत्र गोपायितं सर्पं	११३	तथाप्यनिलसूनुस्तान्	३७७	तथा नानासुधाटोपैः	३२०
तत्र च प्रमदोद्याने	२६२	तथाप्युत्साहमाश्रित्य	२४७	तथा विरहितः सोऽयं	२४७
तत्र चोत्तमनारीभिः	३६	तथाविधं च तद्वक्त्रं	३४७	तथा सह सुखं रेमे	२
तत्र ताडयितौ श्लात्वा	८४	तथाविधं तमालोक्य	१८३	तयोर्कं नाथ कः कौप-	४७
तत्र ते कानने रम्ये	१२८	तथाविधं पुरा राज्यं	२७५	तयोरन्योऽन्यमासङ्गे	३६८
तत्र ते चित्रकूटस्य	१०३	तथाविधो दशास्यत्वं	३४१	तयोरभूत्महत्संख्यं	३१०
तत्र दूषणसम्राजे	२५३	तथाविधौ च तौ दृष्ट्वा	१८१	तयोरभूत्महद्बुद्धं	३७५
तत्र देवनिवासमे	२५०	तथास्ति भरतक्षेत्रे	१८८	तयोरियं कथा याव-	२७१
तत्र देशे नरा नूनं	११७	तथास्मिन्नियमद्वीपे	६६	तयोश्चिचोत्सवापत्यं	१
तत्र प्रयातुमस्माकं	१७	तथैव लक्ष्मणस्तत्र	१६	तत्तुल्यतसारङ्ग-	१०३
तत्र प्रीति महाप्राप्ता	२१०	तदहं वत्स नो नेत्रि	७६	तत्तुल्यशरभद्वीपि-	४०३
तत्र बान्धवभूतस्य	५७	तदाज्ञा प्राप्य सम्पद्भि-	१५७	तर्जयन्निव लोकस्य	५१
तत्र भद्रासने रम्ये	३०४	तदाज्ञापनया मार्गो	११२	तत्प्रेऽवस्थितमात्मान-	१३६
तत्र माण्डोपकरणां	१६६	तदातिथोमते सीता	६०	तत्र सोऽयमपुत्रायाः	१२
तत्र लावण्यकिञ्चल-	१७६	तदा वृष्टेन पत्नीनां	७५	तस्यदूरत एवात्ये	४०
तत्र वंशगिरी राजन्	१६६	तदा दशरथो भीतो	७२	तस्माद् केनाप्यु गबेन	२७

तस्मात्क्षेपविनिर्मुक्त-	२६७	तस्या बहुलार्थार्थ्या	८८	ताम्बूलप्रार्थनव्यंगात्	३८३
तस्माच्चदुर्गुरुसिद्धौ	२६८	तस्या सिद्धान्नमस्कृत्य	२६५	ताम्रचूडाः खरं रेणु-	५२
तस्मात्तावत् प्रतीक्षेता	१२९	तस्या एव च वाक्येन	२६०	तार्थ्ये दुःखतो यस्मा-	७७
तस्मात्प्रथितवृत्तोऽय	३५५	तस्यामिमुखता प्राप्य	२१०	तार्क्ष्यपक्षविनिर्मुक्त	३८५
तस्मादकीर्तिसम्भूति-	२३६	तस्यामीक्षितमात्रायां	२३६	तावच्च गरुडाधीशः	१६४
तस्मादन्यपरिज्ञाण-	११५	तस्यामेवमत्रस्थाया	३२५	तावच्च तेन दुष्टेन	२३३
तस्मादवलम्ब्यता धैर्यं	२४९	तस्या रूपेण चक्षुषि	१६२	तावच्च नरवृन्दस्य	१७५
तस्मादानय तौ क्षिप्रं	६३	तस्या रोषसि विश्रम्य	८८	तावच्चन्द्रनखास्तु	२५०
तस्मादानयता सीता	२६७	तस्यार्चपाशयो दाराः	२८३	तावच्च समतीताया	२५६
तस्मादुच्छिष्ट तत् स्थान-	२५०	तस्या वर्णनमेवाति-	२७८	तावच्चास्तिरितादित्य-	२२७
तस्मादेक एवाह	८०	तस्यास्वरितमायान्त्या	३१६	तावच्छिरसि संकुक्षो	२४५
तस्माद् बुद्धि रणे त्यक्त्वा	२६७	तस्यै वगाद वृत्तान्त-	३२२	तावत्ताः सिद्धसंस्था	३१४
तस्माद् भोग भुवनविकटं	३५०	तस्यैतद्भवनं भद्रे	१४३	तावत्तैयदवाहेन	३३९
तस्माद्यनैव संग्रामे	२७०	तस्यैवामिमतो भूत्वा	१३१	तावत् त्रिवर्णाञ्जलिासि-	४१३
तस्माद् द्रव्यादिलोभेन	३५५	तस्योपरि समारुह्य	२६२	तावत्पत्यन्तरस्थाया	२५६
तस्मान् महाबल दीप्तं	२६६	ता प्रसिद्ध पुराधीशः	४०२	तावत्तरागतं दृष्ट्वा	११२
तस्मिन् च दर्शयस्व	३५५	ता विनष्टवृत्ति दृष्ट्वा	२३२	तावत्सलायक कुत्वा	२७८
तस्मिन् कालगते पद्मः	२३६	ता वीक्ष्य लक्ष्मीनिलयो	४१३	तावद् दुन्दुभयो नेदुर्गगने	२०१
तस्मिन् दशाननोकाभिः	२६३	ताडितः कामरागेन	१२५	तावद् दूषणपञ्चस्था-	२५४
तस्मिन् देव मया साद्धं	३३४	ताडितः स्मरणागैश्च	१६१	तावदुच्छिष्ट गच्छावः	११४
तस्मिन्मरसप्रामे	२५०	ताडितो वज्रनक्षत्रेण	३७६	तावदेतौ स्वयं गत्वा	३८१
तस्मिन्नासन्नता प्राप्ते	३५८	तात तात न ते युक्त	३७८	तावद्गणमुखेऽभागीद्	३६३
तस्मिन् रणशिरो याते	११८	तात रत्नात्मनः सत्य	७६	तावन्टपयुता साध्वी	३५२
तस्मिन् विप्रकृष्टे तु	३१३	तातस्यास्य च को भेदो	३८२	तावन्मे नास्ति दुःखस्य	१४६
तस्मिन् विमानद्वयेषु	११३	तातेन पृथिवी दत्ता	७६	तावपि भ्रातरौ तस्मिन्	१८७
तस्मिन् शिलातले रम्ये	५१	तातेन भरतः स्वामी	६६	तावालोम्ब्य ततो राजन्	३६६
तस्मिन् सजानकीरामः	११४	तातेन भ्रातरुक्त बन्धु	७८	ताश्च निस्सीमसौभाग्या	३१६
तस्मै दत्त्वा ॥ जैनैर्द्री	३२६	ता दुःखहेतवः सर्वा	३३२	तासामाकुलिका काचि-	३३६
तस्मै सैकान्तयाताय	१६१	तान् वीक्ष्य शोकस्तप्तान्	५४	तासामेवोर्द्धमागेषु	२८२
तस्य कूट्यद्रुमेक्षिचैः	२८८	तान् समापततो दृष्ट्वा	३७४	तितवाक्कारदेवोऽय	२७८
तस्य क्रोशचतुर्मार्ग-	३१३	तान्चुस्तापसा वृद्धाः	१०२	तिरिच्छन्त्यन्तच्छाय-	७२
तस्य तद्वचन श्रुत्वा	३१७	तान्यह खातुमिच्छामि	६७	तिस्मन्तस्ते ततोऽन्यर्ण	१३५
तस्य राज्ञसन्त्यस्य	२३४	तापसप्रमदा दृष्ट्वा	१०२	तिरोचानं गता कञ्चि	७१
तस्य राज्ञेऽधुना जाते	३३	तापसा बटिलास्तत्र	१०१	तिर्यन्तरक्तुःखान्नि-	६०
तस्य स्थूलिङ्गसंसर्गा-	३८०	तापसोऽवश्यमस्माभि-	१०२	तिष्ठत स्वेच्छयेगर्ना	२४६
तस्य स्मरन्निना दीप्त	२६५	ताभ्यमगकुमारेण	३८२	तिष्ठ तिष्ठ महापाप	२४८
तस्याः पुरोऽय रहसि	१६१	तामपश्यन्ततो नेतु-	४०५	तिष्ठ त्वमिह कुर्वाणः	१५६
तस्याः श्रोणीवरारोहा	२६	तामेव च पुनर्न्यस्ता	३४७	तिष्ठन्तमिह मृत्यु चेदेत-	३५३
तस्या प्रयातमात्राया	२३०	तामेव सर्वार्थी रम्या	१२५	तिष्ठामि पापो भवदुःख-	६६

तिष्ठणा तरुणीस्त्रीभि-	४५	ते शिलीमुखसङ्घाताः	३७७	त्रैलोक्यगुणवद्रत्नं	२४०
तीक्ष्णकोटिभिरत्यन्तं	२३८	तेऽस्मदर्थे शिव क्वापि	३१५	त्रैलोक्येऽपि न मे कश्चि-	३३६
तीक्ष्णायस्त्रीलसङ्कीर्णां	१०७	तेषा ज्ञात्वा मनःशून्यं	२४६	त्रैलोक्ये स न जीवोऽस्ति	६२
तीर्थस्नानानि दानानि	६	तेषा द्रष्टुं सक्ताः श्रेष्ठमपर-	२१६	त्वं बालः सुकुमारान्नः	१७
तीव्रक्रोधपरीतात्मा	२३४	तेषा निर्दग्धकण्ठाना	८	त्वं मे हृदयसर्वस्वं	४६
तीव्रगिरिगिरिस्तातः-	१०३	तेषां बभूव तेजस्वी	३४८	त्वदीक्षाचिन्तया देहो	६५
दृङ्गप्राकारयुक्ता ता	३४६	तेषा महानुभावाना	१३६	त्वया दशात्यजातेन	३४१
दृङ्गया शिखरेष्वस्य	२१५	तेषु ते तीव्रदुःखानि	७	त्वया मत्तद्वचनाद् वाच्यः	३३४
द्वीपानुत्थरो नाम्ना	२७६	तैः समापतितैः सैन्यं	३७७	त्वया मया च भिक्षार्थं	३३५
दुष्टयमसनताहेतोः	२७०	तैरसौ व्याप्तसर्वाङ्गो	३८१	त्वया व्यापादितेनापि	३८६
दृष्टस्यापि न वाञ्छामि	१२२	तैरावृता दिशं प्रेक्ष्य	१३०	त्वया सह परिज्ञाति-	३२८
दृष्टस्यापि पुरा दुःखं	१०	तोद्यमानमिमं नूनं	११५	स्वर्चितं चोदितायासौ	१८४
दृष्टीये द्वे जनो द्वारे	८३	तौ च सर्वकलाभिज्ञौ	२०६	दंष्ट्राकरालदशनै-	२५६
दृष्टीयेऽलं वने रम्ये	२६२	तौ निरीक्ष्यैव निर्माता	१२६	दंष्ट्राकरालवदनैः	३७६
दृष्टीयेऽहनि पञ्चत्वं	२०७	तौ महातेजसौ तत्र	१६६	दन्तद्वन्द्वजालं भीरुं	१७३
दृष्टातनेव सचोयं	१३६	तौ विधाय यथायोग्यं	६५	दक्षिणावर्त्तनिर्धूम-	३४७
ते चक्षुर्गोचरीकृत्य	८७	तौ सीतागतिचिन्तत्वा-	८७	दक्षिणे विजयार्दस्य	१५
ते चक्षुर्वैशतिभक्त्या	१६२	त्यक्तनिःशेषकर्तव्यो	३२७	दण्डकारण्यभागान्तं	२२६
तेजःपटवरीतेन	२६५	त्यक्तमृत्युभयो विभ्रत्	३४१	दण्डपाणिशुचौचैकः	११०
तेजसा शलज्जातेन	३८८	त्यक्तराज्याधिकारोऽहं	८४	दण्डोपायं परित्यज्य	१६१
ते दृष्ट्वा दुःखिते बाह-	६३	त्यक्त्रोपपादागशिलाभिवा-	४१३	दत्तप्रेङ्गाः क्वचित् स्मरैः	१६६
तेन गोपराशब्देन	२६३	त्रयोऽपि ते शुभध्यानाः	६३	दत्ता विराचितायाश्च	२४६
तेन च भ्रमता तत्र	१०६	त्रस्तं शरणमायातं	३६२	दत्ता स्थानं क्षणमवनि-	५३
तेन तेजस्विना सैन्य	२७७	त्रिंशदयोजनमानेन	२८८	ददर्श च महापुङ्गवं	२६
तेन दृष्टान्यदा बाला	२	त्रिकस्य बलनैर्भाग-	१६२	ददर्श च महाभागान्	१८३
तेन देवेन्द्रवन्द्येन	२५६	त्रिकालगोचर विश्व	१८४	दहशुश्च विविक्तेषु	६०
तेन मायासुरगेण	३७	त्रिकालमरनाथस्य	६३	दधती हृदये कर्म	३२७
तेन मे पुरुषेन्द्रेण	४०१	त्रिगुप्त इति विख्यातो	२०६	दधाति हृदये पद्मं	२६४
तेन बाणसमूहेन	३७६	त्रिगुप्तस्य मुनेस्तस्य	२०६	दधानः प्रवरं माल्यं	१७१
तेन सम्भाव्यमानोऽसौ	३१८	त्रिजगन्मण्डनाभिरुच्य-	१६१	दधाना परमं राग-	८३
तेन सुमीवरूपेण	३०५	त्रिदशस्तस्तमो बुद्ध्या	२८६	दधिकुम्भैर्जिनेन्द्राणा	६७
तेनापि क्रोपयत्येन	३५३	त्रिभुवनवरदममिष्टत-	३१	दध्नुश्च विस्मय प्राप्ता	१८०
तेनापि तस्य वज्रेण	३८०	त्रियामान्ते ततोऽस्पष्टे	८७	दध्यौ च भारयाम्येतं	३२१
तेनापि तस्य सरम्भ-	३६०	त्रिलोकेऽप्यस्ति नासाध्यं	१५६	दध्यौ चाहं पुरा यव	१४५
तेनापि पवनास्त्रेण	३८०	त्रिलोके प्रकटं सूक्ष्म	७३	दध्यौ सञ्जातकर्मश्च	१४३
तेनाभ्यागतमात्रेण	२०	त्रिवर्णामोजनेन्द्राणा	२६१	दन्तस्थानमवावर्णा	४६
तेनाह लोकपालेन	४०३	त्रिवर्णाम्भोजखण्डेषु	२८२	दन्तिनो जलदाकारा-	१७२
तेनोक्तस्त्वद्वयं श्रुत्वा	२३६	त्रिविष्टपसमे साध्वि	३२७	दन्तिभिश्च समृद्धश्च	१६०
तेनोद्यानसमुत्थेन	५८	त्रिसन्ध्यं सीतया साकं	२१०	दयादानादिना येन	३७३

देवावानीदृशः कोऽस्मिन्	२४१	दीर्घमुष्णं च निम्बस्य	३४५	दृष्टं ब्राह्मणि यातेन	१३६
दयावान् यद्वान् योऽपि	८	दीर्घसूतत्वमुत्सृज्य	२६७	दृष्टं मया कदाच्येव-	५६
दयितां यन्नेकस्य	२४८	दीर्घसूत्रो भवानेवं	५४	दृष्टसूत्रं ननोहारि	२४१
दयितां सान्त्वयित्वैवं	१३	दुःखं तिष्ठति ये तातः	१२८	दृष्टादृष्टेति किं वन्ति	२४१
दयिते क्रियते यावत्	४७	दुःखतापितसर्गद्व्या	३०८	दृष्टान्तः परकीयोऽपि	२०६
दर्पगादिबिभूषं तत्	८३	दुःखस्य यावदेकस्य	३८	दृष्टिगोचरमात्रे तु	१०५
दर्पया बुद्धुदाबल्यो	१६५	दुःखस्य यावदेकस्य नाव-	२४२	दृष्टेन केन कार्येण	४७
दर्पसमूरितश्चाविन्	१०३	दुःखार्णवतं प्राप्तो	२४७	दृष्टवा कश्चिन्नरेणान्नं	३३८
दर्शनस्तामयोस्तुष्टा	२४०	दुःखितानां दरिद्राणां	५	दृष्ट्वा कम्पमार्गं च	७०
दर्शनस्य विद्युद्विश्व	१०६	दुःखेभ्यः पूर्णचन्द्रश्च	३६७	दृष्ट्वा कश्चिन्नरेणान्नं	१६१
दर्शिताशेषवित्तोऽसा-	१६७	दुःश्रुत्य दुर्धर्मयोगे	२४०	दृष्ट्वा गणेश्वरामुदि	६३
दशवर्षसहस्रायुः	६३	दुःखेव दीधितिर्गिन्योः	११५	दृष्ट्वा च दूतः सीता	३२५
दशव्यामायता वृक्षा	२६२	दुःखस्मनातिवीर्येण	१६०	दृष्ट्वा च प्रमदनेका	१३७
दशाङ्गपुरमायोऽस्य	१०६	दुर्गसागरमध्यस्था	२६५	दृष्ट्वा तं क्षाममोमार्च	१०७
दशाननसहायत्वं	३३०	दुर्गेन विजने रात्रन्	३१३	दृष्ट्वा तं पतितं भूमौ	३६४
दशात्यक्तस्य नगरी	३४६	दुर्धिमन्त्रैः खरोमांशूत्	२७६	दृष्ट्वा तं पुरगो दृष्ट-	१०५
दशात्यक्शासनं त्यक्त्वा	३७६	दुर्लभैः सङ्गमो भूयः	३०६	दृष्ट्वा समीदृशं रामो	२२७
दशात्यक्शासितं वीक्ष्य	३७७	दुर्लभादप्यलं तस्मान्	३०६	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दहति त्वचमेवाकौ	२६	दुःशाल्या तथा नूनं	२३५	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दहमानं तयाप्येष	४	दुष्कृतलोभयस्यस्य	३६६	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दहमानान् वृथान् कांचित्	२६६	दुष्कृतलोभयस्यस्य	३६६	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दाग्निमकृत्यातिमीतस्य	२६०	दुष्टया किं तथा कृत्यं	१७२	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दारिद्र्ययान्मोचितो लोकः	६४	दुष्टविद्याधरः कोऽपि	२७२	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दाग्नामे तु विप्रोऽभूद्	६२	दुष्टविद्याधरानेक-	२८६	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दावानलसमं यस्य	१३३	दुष्टः शक्राशनिं कालि-	३६०	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दावेन महता रामन्	३१४	दुष्टः शक्राशनिं कालि-	३६०	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दिक्कुमार इवोदरे	२२५	दूतः पितुः सकाशान्मे	१२६	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दिङ्मुत्सवां महापुत्र	१७२	दूतत्वेनागतं सीतां	३३१	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दिवसस्य गते यामे	२०७	दूताहूतः समायातः	३३६	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दिवसो द्वादशोऽस्माकं	३१५	दूति सीतां त्रय ब्रूहि	२६३	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दिव्यगन्धानुलिप्तस्य	२२६	दूतोऽस्मि शक्रपुत्रस्य	१५७	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दिव्यपीताम्बरधरो	३०४	दूरं देशं यदनायि	२	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दिव्यस्त्रीरूपसम्पन्ना	४१०	दूरादुत्थाय दृष्ट्वैवं	३०३	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दिव्यहाराम्बरं दृष्ट्वा	१७२	दूरदेव च तौ दृष्ट्वा	१३६	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दिव्या शक्तिरियं शक्त्या	३६७	दूरदेव समालोक्ष्य	१२६	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दिव्यैः सनर्तनैर्गात्रै-	२६३	दूरस्वपरिनिन्नाहो	१५५	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दिवाः सर्गाः समास्तौर्ध	१५१	दूरे च सरसी दुर्गे	२८	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दिशस्तूर्धनिनादेन	१५३	दूरे लङ्कापुरी देव	४०६	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७
दीक्षां श्रुत्वातिवीर्यस्य	१६७	दूषणो मीषणः क्रोधः	३६७	दृष्ट्वा तदुत्पन्नं वीरं	३७७

देवी मस्करिणा तस्य	२०३	धनिनैकेन तत्राहं	१३०	ध्यायन्तमेवं परिगम्य योषा-	४१३
देवीविटपरिभ्राजा	२०४	धनुरायतमास्थाय	१६	ध्यायन्निति महोद्धेती	१७२
देवेन भरतेनामा	१६३	धनुस्सम्भोदये ऋषः	३०५	ध्रुवं भवान्तरे कोऽपि	१२
देवेन सदृशैर्भोगै-	७५	धनूरत्नलता तस्य	५५	ध्वनिं मासतिर्त्यस्य	३०२
देवोपगीतसरो च	२८७	धन्या पुण्यवती सुखी	६५	ध्वनिरश्रुतपूर्वोऽयं	१७६
देवोपनीतनिर्देश-	१७८	धन्या मनुष्या धरणीतले ये	६६	ध्वस्ता ग्राहादयः सर्वे	५२
देशं जनकराजस्य	१५	धन्या सा श्रीधरा देवी	१११	ध्वनिमश्रुतपूर्वं तं	१६२
देशकालप्रपन्नेभ्यः	६६	धन्येयं वनिवैताभ्या	१७०		

[न]

देशघाते यथा जातः	२७	धर्मपत्नी महानीतिः	३५४	न करोति कथामन्या	२८१
देशकुलभूषणमहामुनिभवं	१६४	धर्ममेवं विधानेन	६८	न करोति यतः पातं	७८
देशकुलभूषणमुनी तु	१६४	धर्मरत्नोज्ज्वलद्वीपं	२५६	न किञ्चिदत्र बहुना	२०१
देशा उद्भासिता तेन	४	धर्मस्य पश्यतौदार्यं	२१०	न कृता मन्दभागिन	१४५
देशान् सर्वान् समुल्लेख्य	१२३	धर्मस्यैतद्विधियुतकृतस्या-	३८३	न केवलमसौ मानी	११६
देशो देशो नमस्कुर्वन्	५२	धर्मिणा सुस्थिरो राम-	७१	न केवलमहं तेन	४०२
देशोऽयमतिविस्तीर्णः	१०४	धर्माधर्मविवेकज्ञः	३२६	नक्तदिवमशुष्यत् स	५
देहि पुत्रस्य मे राज्य-	७५	धर्मार्थकाममोक्षाणा-	१६	नक्त शक्या स्थितेनासा-	११
देहेनापि किमेतेन	७४	धर्मार्थकामससक्तै-	२१	नक्षत्रगोचरातीतं	५७
देहोपकारणव्यग्र	१३६	धर्मादिद्वयपर्यन्तं	६८	नक्षत्रमण्डलालोकं	१८२
द्रक्ष्यामि यदि धन्याहं	३६१	धर्मोद्यतमनस्कस्य	११२	नक्षत्रलुब्धससश्व	३६७
द्रविणेन तथा लोकः	४३	धर्म्यध्यानगतः कृत्वा	६१	नखच्छेद्ये तुणे किं वा	३७८
द्रुमखण्डे क्वचिद् स्थित्वा	१७८	धवमिक्षा प्रयच्छेति	१२०	नखविच्छत्कक्षोरु	२३२
द्रुमसेनयुगेः पार्श्वं	४०५	धातुपर्वतसङ्काशाः	३६१	नखैर्विच्छिप्य दन्तैश्च	२३३
द्वयमेव ध्रुवं मन्ये	२६	धारयन्ती परा कान्ति-	२६	नगरं साधनं कोषं	११३
द्वाःस्थमाज्ञापयद्भूमि-	७२	धावध्वमसकौ कोऽसौ	३३६	नगरीतश्च निष्क्रम्य	४०२
द्वाःस्थेन प्रविशन्नेव	१७२	धिक् तं पशुसर्म पापं	२३२	नगर्यां पश्चिनीनाग्नि	१८४
द्वादशस्य ततः किञ्चि-	६८	धिक् शब्दः प्राप्यते योऽय	२६०	नगानां कोटरेष्वन्ये	५१
द्वादशोभा करोत्यन्यो	४५	धिगत्यन्ताशुचि देहं	१८६	नगोऽय दण्डको नाम	२१५
द्वारे च रक्षिताभ्यर्च्ये	३२४	धिगिद शौर्यमस्मार्क	२३४	नग्नतापरिहारेण	६५
द्वितीय निःस्वयुगालं	३७१	धिग् धिग् धिगिदमत्यन्तं	१६०	न च प्रत्युपकाराय	३२८
द्वितीयस्य जिनेन्द्रस्य	२२४	धिग् धिग् नीचसमासङ्गं	१३५	न चात्र काचिदापत्ते-	१६५
द्वितीयैतद्वस्तेन	१७४	धिद् मया चिन्तितं सर्वं	१०	न चापे साम्प्रतं जाते	५५
द्विरदना सहस्रेण	१५६	धूपं यश्चन्दनाशुभ्रा-	६७	न जल्पति निषण्णाङ्गां	२६४
द्वोपस्य तस्य पर्यन्ते	३५४	धृताशक्तैः समीपेऽस्य	१७४	न तथासन्नमृत्योर्मै	४६
द्वेषे लोकविमुक्तोऽसौ	५१	धृतार्थिना जल तेन	२०३	न तजरा नो ययवो न	३६८
		धृताः शङ्का जगत्कम्पा	३०६	न त्वयैकेन संसारो	६७
[ध]		ध्यात्विति सोदरस्नेह-	५६	न त्वा स्तुत्वा च तत्रासौ	५६
धत्ते कवहक स्वानं	२६५	ध्यात्वेन्द्रनगरेणस्य	१४८	नदीतीरं समागम्य	४०३
धनगौरत्नसंपूर्णा	३३	ध्यानाशुशुब्धिणाविद्धे	१४१	नद्याः कर्णरवावास्तु	१६७
धनकपुरुषदत्तेन-	२६२		६३		
धनलोभाभिभूतस्य	१३८				

नद्यां गिरावरण्ये वा	७८	नवयौवनसंपूर्णा	३३	नानापत्तिकुलकूर-	१०३
नृधोषा विमलबला-	२१८	नवयौवनसंभृत-	२५	नानापुष्पकतामोदा	२२३
ननाम चाञ्जलिं कृत्वा	१०६	नवयौवनसम्पन्ना	१७२	नानापुष्पफलाकीर्ण	१०३
ननाश भयपूर्णा च	२१	न वर्तते इदं कर्तुं	१६२	नानाप्रकाररत्नांशु	२२४
ननु ते ज्ञातमेवैतद्यथा-	३२१	नवसङ्गमना कश्चि-	८६	नानाप्रहरणान् वीरान्	१२६
न नो निवर्तते चित्तं	८६	न विद्मः स किमस्माकं	१६४	नानाभूषणयुक्ताङ्गौ	१६६
नन्दिधोषोऽन्यदा धर्म-	६६	न विनश्यन्ति कर्माणि	३७३	नानाभृगुक्षतजपानसुरक्त-	२१४
नन्दिधर्मनकाले ते	७१	न वृक्षाज्जायते मासं	६	नानायानविमानास्ते	३४८
नन्यावर्तपुरी रामो	१५६	नवेन संगमेनास्था	१७४	नानाशुद्धकृतध्वान्ता	२०
न प्रसादयितुं शक्यः	२३८	नवो बद्धो यथा पद्मी	३८२	नानाशुद्धसदृशेषु	२५०
नभःसमुत्पतन्तौ तौ	२०६	न शृणोति ध्वनिं किञ्चिद्	२८१	नानाशुद्धाश्च संक्रुद्धा	२७७
नभश्चरसमायोगे	३२६	न शृणोति स्मर्यस्तौ	१६२	नानाशुचिविचिह्नाना	३५६
नभश्चरैः समं पूर्वां	५६	न शृणोति स्मर्यस्तौ	२२७	नानारत्नाशुसम्पर्क-	१५३
न भेत्तव्यं न भेत्तव्यं इति तां	२३४	न सा क्षितिर्न तत्तोर्यं	६२	नानारूपसमाकीर्ण	२६
न भेत्तव्यं न भेत्तव्यं निवर्त्त-	१४३	न ह्याखूनां विरोधेन	१७	नानालतोपगृहानि	१७१
नमोऽन्धकारितं कुर्वन्	१३५	नाकाले म्रियते कश्चि-	२५४	नानावर्णविमानाश्च	३६८
नमोविह्वरणीं लब्धि	१६०	नागपाशैरिमौ बद्धौ	३८२	नानावल्कीसमाश्लिष्ट-	४०३
नमस्कारं च कृत्वास्था	१३८	नागा सिंहादयोऽप्यत्र	२०१	नानावृक्षलताकीर्ण	१६६
नमस्कारं जिनेन्द्राणां	१६१	नागारिवाहनारुदौ	३८५	नानावृक्षलताकीर्ण	१६५
नमस्कृत्य मुनि श्रेष्ठे	६४	नागेन्द्र इव हस्तेन	२६४	नानाशस्त्रकरेण्येषु	११७
नमस्त्यजिन् भक्त्या	१८७	नागैरञ्जनशैलभैः	११२	नान्ताःपुरं न देशो न	२०५
नमस्त्रिलोकबन्धुभ्यो	१४२	नातिदूरे ततो दृष्ट्वा	२६	नाम्नाऽनङ्गशरा तस्य	४०२
नयनाना समानन्दं	३०२	नाश्रयुक्तमवगाह्यं	२३५	नारकानिमयग्रस्ताः	७
न यस्य बलदध्वान्ते	४	नाथ ! भक्तोऽस्मि ते किञ्चि-	२४४	नारदः परमं विश्रद्ध-य-	२३
न यावदथवा याति	१६०	नाथ ! युक्तमयुक्तं वा	२७	नारदोऽनुपदं तदथा	२३
न युक्तमथवा चित्तं	८१	नाथ बाह्यायतौ ताव-	१५०	नारायणसमेतेन	१६३
न ये भवप्रभवविकार-	२४३	नाथ ! वेदस्य मे स्थानं	३७	नारिङ्गमाशुलिङ्गाद्यैः	२६२
नरकप्रतिमे घोरे	१८३	नाथ शूरस्त्वमेवैकः	१६८	नालिकेरैः कपित्थैश्च	२१२
नरप्रधानदोषिस्ते	१८६	नाथ ! सातिशयोक्त्यं मे	२०६	नाशकनोदनरण्यस्तं	४
नराणां मानदग्धानां	१६६	नाथाज्ञापय किं कृत्य-	७३	नासावासीजनस्तत्र	१३
न राघौ न दिवा निद्रा	२४	नाथानर्थसमुद्गरेन	२६	नास्थव्याहिल्लमात्रोऽपि	७
नरास्ते दमिते श्लाघ्या	३६२	नाथावापत्सु वामेषा	३८५	नास्थेव मरणे हेतु-	२६४
नरेन्द्र पश्य केनापि	२०३	नाथे तथा स्थिते तस्मिन्	६३	निःशङ्क द्विपविकान्तः	३२७
नरेभक्तभौ सत्य-	१७६	नादो वर्वरकः पापो	३६७	निःशेषं दूत यद्दृष्टं	३००
नरेशः सुमुखस्तत्र	१६०	नानाजनपदाकीर्णा	१७०	निःशेषतश्चास्य निवेदित	४१३
नलनीलप्रभृतयः	३०४	नानाजनोपभोग्येषु	१७८	निःसर्पसारकाकार-	३६३
नलेनोत्पत्य हस्तो वा	३६६	नानाजन्महावर्ता	७३	निःसृताशुपसर्गात्तौ	१८८
नलो नीलो तडिद्वक्त्रो	३४६	नानाजातीश्च वृद्धाणां	२६	निःस्वःपद्मगोचरः कोऽपि	२५७
नवमेघप्रतीकाशै-	३१३	नानानिर्गृहसम्पन्नं	१७२	निक्षिप्यते हि कामाग्नौ	७७

निक्षेपो गुणमित्त्व मे	३६६	निर्दयाः पशुमासादो	२०	नूनं त्वथा न विज्ञाता	१०७
निजसैन्यार्णव दृष्ट्वा	३८६	निर्दयैश्च गदाघातै-	३१८	नूनं दैत्येन केनापि	२४६
निजा शक्तिमयुद्धाद्भि-	२४६	निर्दयोन्मुक्तशस्त्रोऽस्य-	३०६	नूनं न भवितव्यं मे	२७७
निजे भुजे समुत्क्रये	४११	निर्दोषभावनो यस्तु	१०	नूनं भवत्तमुद्दिश्य	२८
नितान्तकूरकर्माय-	१०६	निर्मात्यैर्नानकीं सम्यक्	२३७	नूनं सर्वं कृतं कर्म	२४६
नितान्तपटुताभाक्षि	४६	निर्मुक्तदुःखनिश्वासं	२३०	नृत्यन्तं च समालोक्य	१७५
नितान्तबहुयोद्धृणा	३८०	निर्ययी च पुराद्युक्तः	२७	नृपतिश्चागतो वीक्ष्य	४६
नित्यमर्थयुतं देव	१४४	निर्वाह्य दिवसानष्टौ	३५६	नृपत्राहुवल्छायां	१६
निद्राघूर्णितनेत्राणा	३७८	निर्विचैष्टं तमालोक्य	३६६	नृपाः शत्रुन्दमाधाश्च	१७६
निद्राविद्राणसङ्ग्रामा-	३७८	निर्वर्त्तय द्रुत चित्तमशुभ-	१६३	नृपाः सिंहोदराद्याश्च	१२२
निद्रावशीकृतान् वीरान्	१६०	निर्वर्त्तस्व भग स्वास्थ्यं	१७०	नृपाव्या नरैः क्रूरै-	३
निधानमघनेनैव	१०६	निर्वर्त्तस्व महाबुद्धे	३१७	नेक्ष्यते सन्धिरप्यत्र	१६०
निधाय हृदये राम	३३३	निर्वर्त्तमानबन्धूना	८२	नेता वानरमौलीना	२६६
निन्दनेषं खलसङ्ग	१३५	निवासमत्र कुर्मोऽत्र	२११	नेत्रचापविनिर्मुक्तै-	३२०
निन्द्योनिपु पर्यट्य	१८८	निवृत्तभोजनविधिः	३३३	नेत्रमानसचौराभ्या	१७०
निपत्य शिखरावद्रे-	३२५	निवृत्ते मरुतः पुत्रे	२७५	नेत्राभ्यामलमुत्पुज्य	६५
निमग्नं संशयाग्मोघौ	२७५	निवेष्टितं ततो बृद्धै-	२७१	नैमिष्ठादिष्टकालस्य	२६३
निमिषान्तरमात्रेण	२१	निवेदयन् गुणास्ताव-	२३६	नैव वारयितुं शक्या	१८५
नियतं मरणं ज्ञात्वा	३६६	निवेद्यैवमसौ तेभ्यः	२५	नैशं ध्वान्तं समुत्सार्थं	२५६
नियमस्तुतप्रसादेन	१२२	निशम्य तद्वचो राजा	५०	नैषा सीता समानीता	३५२
नियमावधितोऽतीते	४०५	निशम्य वचनं तस्या	३४२	न्यायेन सङ्गता साध्वी	२३०
नियुज्यात्मसमं द्वारे	७२	निशम्यामोषवाक्यस्य	३१५		
निरन्तरं त्रिरोधाय	२२१	निशम्योक्तमिदं सीता	१७६	[प]	
निरपेक्षं प्रवृत्तेऽस्मिन्	२६१	निशागमे किमस्माक	१७६	पक्वं फलमिषैतन्मे	४६
निरर्थकं प्रियगतै-	३४१	निशितानि च चक्राणि	१६	पक्षिणः प्रतिबोधाथं	२०६
निरर्थकमिदं बन्ध	५६	निश्चलश्च कृण स्थित्वा	२४८	पक्षिणं संयतोऽगादीन्	२०६
निस्तमपि निर्यन्तं	३७२	निश्चेष्टविग्रहश्चाय	२७६	पश्चिमत्स्यमृगान् हत्वा	६
निराश्रयाकुलीभूता	८६	निश्छायां स्फुटित क्षायं	४०४	पश्चिमत्स्यमृगान् हन्ति	६
निरिक्ष्वैतमुत्तल्य	११६	निश्शब्दपदनिक्षेपा-	१४८	पक्षीभवन्नसौ यस्मा-	१८८
निरिक्ष्य सीमया दृष्ट्या	१०८	निषद्याऋषभादीना-	२६६	पक्षोन्नैः पञ्चभिर्मासै-	१०३
निरिक्ष्य स्वजनं विप्रो	१४६	निष्क्रान्तेनान्यदा तेन	२०३	पङ्कचन्दनयोर्यद्वद-	२२५
निरुद्ध भ्रातरं श्रुत्वा	३६४	निष्क्रामत परं गेहान्	१३४	पञ्चकल्याणसम्प्राप्तिः	३५
निरुध्य सर्वशस्त्राणि	२३५	निसर्गक्रान्त्या गत्वा	३३६	पञ्चपत्न्योपमं स्वर्गं	७०
निरुपद्रवसञ्चारे	२६२	निहन्तास्मि न चेदेन	११२	पञ्चषष्टिसहस्राणि	३५८
निरुपय क्वचित्तावद्	१०४	निहतोऽयमनेनेति	३२१	पञ्चसङ्गन्धताम्बूल-	३०४
निर्गच्छन्ती प्रजा दृष्ट्वा	१७८	नीचानामपि नात्यन्त-	५६	पञ्चसैरावतास्थ्येषु	१४२
निर्गन्धपुङ्खवावेभिः	२०६	नीतानामपि नात्यन्त-	५६	पट्टवस्त्रादिसम्पूर्णा	४०६
निर्गन्धसंयतशृङ्गं	३४७	नीतिज्ञैः सततं भाव्य-	४०६	पठद्भिर्विशदं युक्ताः	१०१
निर्बाधः पतितः क्षोण्या	२४६	नीत्वा द्वादशवर्षाणि	२२६	पततावेश्मना तेन	३४२
				पतद्भिस्तोरणैस्तुङ्गैः	३३८

पतन्तं मा समालोक्य	४०१	पद्मो लक्ष्मण इत्युज्ज्वै-	३६	परितोऽकरोद्भ्रमणमस्य	२२०
पतन् वीक्ष्य तदा रात्रा-	५७	पद्मोऽवदक्ष मेऽन्याभिः	२६०	परित्यक्तनरद्वेषा	१७३
पताकातोरगैश्चित्रं	५६	पपात नभसो वृष्टि-	१५१	परित्यक्ताहृतिग्रीष्मे	१०६
पतितस्याथ नो रूपे	१६३	पपञ्च परिसाल्यैव	२३२	परित्यक्तोत्सवतिथिः	१४०
पतितोदारवृक्षौघे	३१३	पपञ्च मगधाधीशो	२८३	परित्यज्यातिवीर्यस्य	१६४
पत्तनग्रामसंवाह-	२०३	पयसा संस्कृतैः काश्चि-	३३३	परिदेवननिस्वानं	२४८
पत्तयः पत्तिमिल्गनाः	२४४	पयोमुचः केचिदभी-	२२१	परिदेवनमारब्धे	२४६
पत्तिः प्रथमभेदोऽत्र	३५८	परं च विस्मयं प्राप्ता	११	परिदेवनमेवं च चक्रे चक्रा-	१२
पत्तिखिण्णिता सेना	३५८	परं प्राप्य प्रबोधं स	२७०	परिदेवनमेवं च चक्रे पुत्रक-	६५
पत्नीमहानरस्यास्य	२४७	परं विस्मयमापन्ना	१५०	परिदेवनमेवं च चक्रे विद्वल-	३८
पत्न्या जनकराजस्य	६	परं साधुप्रसादं च	३८३	परिदेवनमेव ता	७६
पत्युर्मनं न गुरुयस्तु	२७३	परचक्रसमा कान्तो	२२४	परिभ्रस्ताखिलद्वेष	६५
पदमन्यत्र यच्छ्रामि	४६	परदारान् समाकाञ्चन्	२५३	परिप्राप्याश्रमपदं	५
पदातिभो रथैर्नगैः	१५६	परदारामिलाषोऽय-	२६०	परिवार्य महावीर्यं	२६६
पदार्थान् सर्वजीवादीन्	५३	परपञ्चान्यं कर्तु-	३८५	परिष्वज्य महाप्रीत्या	१५२
पद्मा सीतानुगो भूत्वा	१७६	परमं भोजितस्वाभं	१४५	परिष्वज्य रहो नाथं	४१२
पद्मं लक्ष्मणसंयुक्त-	७५	परम सर्वमावाना	७३	परिसान्त्वनसुरिभ्यां	८२
पद्मकैर्मुचिच्छिन्दैश्च	२११	परमं सुन्दरे तत्र	१२५	परिसान्त्य सुतं कान्ता	२७
पद्मगर्भदलाभ्या च	१०४	परमं स्नानवारीदं	४०५	परिसान्त्योत्तमैर्विक्रयै-	२४६
पद्मगर्भदलं यस्मिन्	२३	परमशितिशिलौघरश्मि-	२१७	परिवैश्वदनान्तैश्च	- २३८
पद्मगर्भदलच्छाया	४२	परमापदि सीदन्त	३२६	परेण तेजसा युक्ता	१८०
पद्मश्च सीत्या साकं	१५१	परमेऽथ निशीथे ते	१२३	पर्यलङ्घ्यी ततो विद्या	१०
पद्मनाभः सुमित्राजः	३६८	परयोषिःकृताशस्य	२५८	पर्यटन्तो महीं स्वैर	१४७
पद्मनाभस्ततोऽगादी-	३८६	परलोकादिहैतत्त्वं	१०८	पर्यटन् वसुधाभेतां	२६२
पद्मनाभस्ततोऽबोच-	२६७	परसैन्यसमाश्लेष-	३६१	पर्यट्य पृथिवीं सर्वां	३६६
पद्म पद्म महाबाहो	३८१	परस्परं च दुश्चिन्तां	३५५	पर्यस्ता भूतले केचि-	३६१
पद्मरागामनेत्रश्च	२०२	परस्परं समालापं	३५५	पर्यस्तानि न किं तानि	७१
पद्मश्च तानुवाचैनं	१२३	परस्परं समालोक्य	३०३	पर्यातिर्नास्ति मृष्टाना-	८४
पद्मस्य प्रणतिं कृत्वा	१७६	परस्परकृतं दुःखं	८	परलक्ष्यस्पर्शहस्ताभ्या	२०६
पद्मस्याङ्गुलियातोऽसौ	३४५	परस्परकृताहाने-	२४५	पवनञ्जयराजस्य	२६६
पद्मादिङ्गादितैः स्वच्छैः	३२५	परस्परकृताक्षेपौ	३१०	पवनस्य सुतो न त्वं	३४०
पद्मामस्य शरैर्ग्रस्तो	३६४	परस्परमिधाताह्या	३५४	पवस्यात्मजः ख्यातो	२५०
पद्मेनादित्यकर्णोऽपि	३६२	परस्त्रीरूपसंस्थेयु	१८७	पशोर्भौमैककार्यस्य	२४२
पद्मे द्विरेफवत् सक्तः	१११	परकाश्यययुक्तं	१६२	पश्चात्तापानलेनालं	६४
पद्मेषु चरणामिख्या	२८२	परक्रमेण वैर्यैश्च	३३०	पश्चात् खोतः संसक्तग्र-	२१६
पद्मो जगाद ता देवि	१८३	परादुमुलीकृतैः क्लीबैः	२१	पश्चादिदं समाकीर्णं	२०५
पद्मो नाम सुतो यस्य	३५	पराजिता त्वया नाथ	३२१	पश्चान्मस्तकभागस्थ-	४८
पद्मोत्पलनाब्द्यामि-	१६५	पराधीनक्रिया साऽह	४११	पश्चिमाया इवाशयाः	१२
पद्मोत्पलादिजलज-	५४	परार्यै यः पुरस्कृत्य	३२६	पश्यतः प्रौढया दृष्टया	३०८

पश्य तं विभवैर्युक्तं	३३३	पाषाणेनैव ते गात्र-	११६	पुरस्तात् नरेशानां	१७४
पश्यताम्बरयानोद्ध-	३५६	पितरं तादृशं दृष्ट्वा	७४	पुरस्य दक्षिणे भागे	२७४
पश्यतैन महाभीम	११८	पितरौ परिवर्गेण	८१	पुरस्थात्यन्तदुर्गत्वात्	११२
पश्यन्ती तुरगान् द्वारे	४१०	पिता तद्वचनं श्रुत्वा	७७	पुरा करिक्राकार-	४८
पश्य पश्य नरश्रेष्ठ !	२००	पिता दशरथो यस्य	३०५	पुराकृतादतिनिश्चितात्	३१६
पश्य पापस्य माहात्म्यं	२२६	पितानाथोऽथवा पुत्रः	८०	पुरातनं च वृत्तान्तं	६७
पश्य मातरमुद्भिक्त्वा	८२	पितुः पालयितुं सत्यं	७८	पुरानेकत्र संग्रामे	२५५
पश्य सीता कथं याति	८२	पितुः सङ्गीतकं श्रुत्वा	४०४	पुरा योऽनेकमासादो	२१०
पश्यात्मीय पतिं युद्धे	३३२	पितुरन्ते ततो नीतः	५६	पुरा विशिष्टं चरितं कृता-	३१२
पश्यामस्तावदित्युक्त्वा	३३६	पितुर्भ्रातृश्च दुःखेन	३००	पुरा संसर्गतः प्रीतिः	१
पश्यामुष्य महानुभाव-	२१३	पिनद्ध कस्यचिद्वर्म	३६३	पुरुषः कोऽन्वचौ लोके	१७१
पश्यात्माकं वुपुस्ताभि-	४७	पिनष्टि पञ्चवर्णानि	४५	पुरुषेऽसम मे माता	२२६
पश्येमे निखरा धृष्टाः	१३४	पुण्डरीकातपत्रेण	१३७	पुरे कारयितुं शोभां	२७८
पात्यंगुलीयकं सीता	३३५	पुण्ड्रेक्षुवाटसम्पन्ना	१०४	पुरो मोक्ष्यामि सेवध्वं	१२०
पातालं किं भवेन्नीता	२४६	पुण्यक्षयात् परिभ्रष्टौ	३७२	पुरोहितो गन्धो जातो	७०
पातालालुस्थितः किं वा	३०	पुण्यवत्स्य इमाः श्लाघ्या	४६	पुण्यकार्यं समारोप्य	२६१
पात्रदानप्रभावेण	२११	पुण्यवन्तो महोत्साहाः	५०	पुण्यचूडो महारक्तो	३६४
पात्रदानमहो दानं	३३५	पुण्यानुभावेन महानराया	३५७	पुण्यप्रकरसंपूर्णाः	८२
पात्रदानानुभावेन	२०१	पुण्येन लभ्यते सौख्य-	७२	पुण्याणि गन्धमाहारं	२४
पात्रदानैः त्रैतैः शीलैः	३७३	पुत्रः प्रकाशसिंहस्य	२	पुण्याद्वैरवतीर्णस्य	३३७
पादताडितभूभागा	३३२	पुत्र रावर्ष त्वया लब्धं	९३	पुण्यैर्बलस्यलोद्भूतै-	१०३
पादन्धासैलैर्बुल्लुष्ट-	१६२	पुत्रवत्यो भवत्योऽत्र	८४	पूरिताल्लिर्मशूना-	३४५
पादपाना किमेतेषा	२२४	पुत्राभ्यां सह सम्मन्त्र	८४	पूर्णं जगत्सिद्धिं जन्तु-	३०७
पादमार्गप्रदेशेषु	३३८	पुत्रोत्तिष्ठ पुरीं यामः	६५	पूर्वं सनत्कुमारख्यः	१४४
पादमूले ततो नीत्वा	१४१	पुत्रोऽनरयणराजस्य	३५	पूर्वकर्मानुभावेन प्रेरितः	२६२
पादविन्यासमात्रेण	३४२	पुनः पुनः समाहूय	३०६	पूर्वकर्मानुभावेन स्थिति-	३७१
पादावष्टम्भभिन्नेषु	३३८	पुनः पुनरप्युच्छ्व	२८८	पूर्वं चक्रे लक्ष्मीनाथः	२१६
पादादकप्रभावेण	२०२	पुनः पुनरप्युच्छ्व सा	१५२	पूर्वजन्मनिवास्येऽस्मिन्	५७
पानकानि विचित्राणि	११६	पुनरन्यैर्मटैः शीघ्र-	३६६	पूर्वद्वारमदो यत्तु	१३८
पापकर्मपरिविलो-	१०८	पुनश्च मारुतेः पार्श्व-	२७४	पूर्वद्वारेण संचारे	३६८
पापपातकरं सर्व-	१०७	पुनश्च राघवोऽवोचत्	१२१	पूर्वमेव तु निर्यातो	१८
पापात्मकमनायुष्य-	२५३	पुनश्चाचिन्तयद्युद्धे	२४८	पूर्वमेव हृता कस्मा-	५५
पाशः सीतया सार्धं	६०	पुनश्चोवाच भरतं	६५	पूर्वानुन्धसदक्रोध-	३८८
पार्थिवः प्रतिभाः कश्चि-	४०६	पुनस्तत्रैव गान्धार्या	७०	पूर्वापरायतक्षेत्र्यां	१५
पालयन् स निर्बलं सैन्यं	३६२	पुनाति त्रायते चाय	७६	पूर्वं तु प्रच्युतौ नाकात्	३७२
पाशकोऽन्तरे नत्वा	२८	पुरःकृत्वातिवैर्यस्य	१६६	पूष्णो यस्य करैर्ययै-	४
पार्श्वस्थः पद्मनाभस्य	३४८	पुरःप्रवृत्तसोत्साह-	१५३	पृच्छन्ती श्री चरा तस्य	१११
पार्श्वस्थया तया रेजे	४१	पुष्ट्यामसमाकीर्णा	१६६	पृथिवीति प्रिया तस्य	१२७
पार्श्वे कमलकान्ताया	६३	पुरमव्ये महादुःखं	४०६	पृथिवी महिषी तोष-	१३२

प्रयिव्यः सति सप्ताधो	१०७	प्रतिपद्यस्व तत् क्षिप्रं	२५७	प्रभाते तद्विनिर्मुक्तं	१७०
पृथुस्थाधिपस्थाहं	२६२	प्रतिपन्नैस्ततः सर्वै-	२६८	प्रमापरिक्रय शक्ति-	४१०
पृष्ठश्च लक्ष्मणः कुत्सं	२२७	प्रतिबुद्धास्तथा तेऽथ	३७८	प्रभामण्डलमादाय	६४
पृष्ठा च सा मयाख्यात	१३६	प्रतिमा यो जिनेन्द्राणा	६८	प्रभामण्डलमायातं	३५६
पृष्ठतश्चास्य सानन्दा	३४२	प्रतिमा किन्तु जैनेन्द्री	३१७	प्रभावं तपसः पश्य	१६७
पौद्गे नगरेऽन्विष्य	३	प्रतिमावस्थितान् काञ्चि-	१८४	प्रभिन्न वारणं तावद्	२०६
प्रकीर्णक जनानन्दं	२६२	प्रतिसन्ध्येति तज्जाया	१३०	प्रभीष्यते वराकोऽयं	१७६
प्रकीर्णकं महीपृष्ठे	२६२	प्रतीकारो विलापोऽत्र	३६७	प्रभुर्महाबलो भोगी	२७१
प्रकारेणाधुना शत्रू-	२६८	प्रतीच्छारिन्दमेदानौ	१७४	प्रभृतदिवसप्राप्त	६४
प्रकृतेऽस्मिन् त्वमाख्यानं	३५५	प्रतीच्छेच्छसि महं चे-	१७३	प्रभ्राष्टुरलोकाच्च	४०५
प्रचण्डनिस्सङ्गण्डः	२६१	प्रतीतः प्रणिपत्यासौ	११३	प्रमदसुपगताना योषिता-	१३
प्रचण्डैर्विगलदृगण्डैः	२५८	प्रतीतां सनमस्कारा	१३२	प्रमदाभिख्यमुद्यानं	२६३
प्रच्छन्नं प्रेषिता वृत्ती	२	प्रतीन्दोर्वचनं श्रुत्वा	४०८	प्रमादरहितस्तत्र	१६१
प्रच्छन्नमिह तिष्ठाम-	७	प्रतीहारा मयाः शूरा-	१३६	प्रमादाद्भवतो बावो	३३५
प्रभातेन स्वया वत्स	३११	प्रत्यावृत्त्य च सगन्तान्-	२८४	प्रयच्छति स्वयं नान्तं	६८
प्रजात्तरमानन्दा	२१	प्रत्यासर्चं ततः कृत्वा	१३२	प्रयोऽलिं क्षपाया च	२०८
प्रजाभिः प्रयिवोपृष्ठे	६२	प्रत्युवाच स तं यीतिः	१८७	प्रययौ परया धृत्या	३०७
प्रजासु रक्षितास्वेत-	१६	प्रत्येकं पञ्चभिः सति-	१५६	प्रयाणतृप्तसघातं	३४७
प्रजासु विप्रनष्टासु	१६	प्रत्येति नाधुना लोकः	३३४	प्रयाहि भगवन् भानो-	१४८
प्रजिघाच च सर्वासु	३२५	प्रथमं निर्गतोदात्त-	३६४	प्रयोगकुशलश्चाव	३८०
प्रणम्य केकया सान्तवं	६५	प्रथम वातिना हर्ष-	३४४	प्रलम्भास्तुदृष्टन्दोष	३०६
प्रणम्य च जगौ रामं	२७६	प्रथमा चन्द्रलेखाख्या	३१४	प्रलम्बितमहाबाहु	३१४
प्रणम्य विजगद्बन्धं	१२१	प्रथमाभ्यां ततस्तस्य	२८५	प्रलयाभ्योदसम्भार-	३६३
प्रणम्य पादयोः साधुं	२०२	प्रथमे गोपुरे नील-	३६८	प्रमथति गुणसंस्थं येन	१३
प्रणम्य भरतायासौ	१६७	प्रथितः सिंहकटिना	३७८	प्रवरं रथमावह्य	१४८
प्रणम्य वायुपुत्रोऽपि	३११	प्रदानैर्दिव्यवस्तुना	२५३	प्रवरभवनकुक्षिष्वत्यु-	१४
प्रणम्य विधिना तत्र	१८३	प्रदोषाः पाण्डुरा जाता	५२	प्रवाच्य चार्पितं लेखं	६४
प्रणम्य शिरसा तस्य	६१	प्रदेशमौत्तरद्वार	३६८	प्रवाच्य भारतिनागं	३२१
प्रणम्य श्वसुरं श्वश्रू-	८१	प्रदेशा नगरोपेता	२८६	प्रवातधूर्णिताम्भोज-	४१
प्रणम्य सर्वभावेन	८४	प्रदेशान्तरमेतस्मिन्	३५४	प्रवाहेणामृतस्येव	२७६
प्रणाममात्रसाधो हि	२८३	प्रदेशे स त्वया कस्मिन्	३२८	प्रविशन्तं च तं दृष्ट्वा	२७९
प्रणामरहितं दृष्ट्वा	१७३	प्रदेशे सप्तमे राज-	३६८	प्रविशन् विपुलं सैन्यं	१६
प्रसिपत्य गुहं मूर्ध्ना	६	प्रदोषे सस्तरं कृत्वा	१५०	प्रविश्य च पुरं दुर्गं	११२
प्रसिपत्य च भावेन	८७	प्रधानसम्बन्धमिदं हि	३७०	प्रविष्टं नगरं श्रुत्वा	११२
प्रणेष्टुश्च समं तेन	३१४	प्रपद्यस्व च वीरत्वं	३६७	प्रविष्टे भारतेर्गेहं	२६६
प्रतापश्चानुरागश्च	६६	प्रपद्येऽहं जिनेन्द्राणा	४	प्रवेशितस्व चास्यान्या	३३६
प्रतिज्ञा स्मारयैस्तस्य	२८३	प्रपात्य भूतले भूयो	८	प्रवृत्तश्च महासीमः	१८
प्रतिज्ञाय तदेदानीं	७५	प्रपीड्यते च यन्त्रेण	७	प्रशम्य स्वयं कोप-	८१
प्रतिपत्नी भवन् साधो	२८७	प्रपुष्ट्य च विशालेन	६५	प्रशशशुश्च ते सीता	८७

प्रशान्तगुणसम्पूर्णं	३०३	प्राप्तोचिरसौ पत्नी	२०६	फलैर्वहुविधैः पुष्पै-	१०१
प्रशान्तावस्थितं हत्वा	२३३	प्राप्तरोषं सुतं दृष्ट्वा	३०६	[व]	
प्रशान्तो भव मा पीडा	२०८	प्राप्तश्च तामरण्यानी	६४	वदन्त्याविधो वृत्ते	२६१
प्रेषितः पञ्चनाभश्च	३२६	प्राप्तसल्लेखनां क्षीणा	४०५	वदन्धतमसा पत्नै-	३६५
प्रसन्नवदना भटु-	२२६	प्राप्ते काले कर्मणामानु-	३६६	वद्ध्वा परिकरं पुष्पिभः	१६५
प्रसन्नमानसौ सद्यः	१८३	प्राप्ते विनाशकालेऽपि	३४१	वधान स्फोटयाकर्ष-	३६०
प्रसन्न साधुना हटु-	५५	प्राप्तो दूष्यहद्वारं	४००	वन्धयित्वा महावृक्षै-	६४
प्रसादः साधुना तस्य	१०६	प्राप्तो भवत्प्रसादेन	६२	वन्धुस्नेहमय वन्ध	१०६
प्रसादं कुर्वन् गच्छाशु	११२	प्राप्तौ नानारचनभवनो-	१२४	वमज्ज स्वरित काश्चि-	३३७
प्रसादं कुर्वन् तच्छाया-	१२६	प्राप्य च वासमात्मीयं	३४४	वभूव चोदितस्मापि	१८४
प्रसादं कुर्वन् मा दुःखं	१२०	प्राप्य तौ गुणसंपूर्णौ	३३	वलं वाज्रमुखं दृष्ट्वा	३१८
प्रसादं कुर्वन् यास्यामो	४०६	प्रावृट्कालाग्नौ मेघ-	२२३	वलदेवोऽपि कर्त्तव्य-	१४७
प्रसाद्यता सुविज्ञानै-	२६७	प्रावृत्त्ये यस्य भगवन्	५	वलीयान् रावणः स्वामी	२५७
प्रसादाद्यस्य यातोऽसि	३४०	प्रासादगिरिमालाभि-	१७१	वलिश्चण्डतरङ्गश्च	३७७
प्रसीद दयितस्यास्य	४७	प्रासादप्रबरोत्संगे	२७२	वलेऽस्मिन् मारदेशीयो	३५६
प्रसीद देवि कोऽद्यापि	४७	प्रासादशिसरच्छाया	१६५	वर्धिनैकान्तकैश्चिन्ध-	३४४
प्रसीद देवि भृत्यास्ये	२५२	प्रियंगुलतिका पश्य	२१३	वर्धिविनिर्गयो हृष्टः	३०६
प्रसीद नाथ सुखत्वं	४१०	प्रियस्य चिरहं प्राणान्	१२३	वह्निश्चैत्यालयस्यास्य	२७६
प्रसूतमेक कृत्वा	६१	प्रिया जीवति ते भद्रे	३४४	वहुकोषो नरेशो यः	१६
प्रस्तो हिमवान् भङ्गः	३६७	प्रियापरिमलं कश्चि-	३६३	वहुनात्र किमुक्तेन	११७
प्रस्थिता च पित्रुर्गैहं	२८४	प्रियायास्तदभिज्ञानं	३५५	वहुनादा महाशैल	३५७
प्रसूदमिति चोवाच	११६	प्रिये त्वं तिष्ठ चात्रैव	८०	वहुप्रकारैर्मरणाज्ञैर्नो	१००
प्रहस्यावोचतामेता-	१७६	प्रिये मा गाः परं शोकं	१२	वहुभिः पूज्यमानोऽसौ	३०२
प्रहारमिमैकं मे	३६३	प्रीतिवर्धनसंज्ञस्य	१०६	वहुले मार्गशीर्षस्य	३४७
प्राकृता कापि सा नारी	३७	प्रीतिश्चेन्मयि युष्मार्कं	२६०	वहुभुतोऽतिधर्मज्ञो	६६
प्राकृता परमा सा त्व	३३१	प्रीत्या परमया दृष्ट्वा	७४	वाजिनो वारणा मत्ता	३७६
प्राग्भागेषु स्थिताः केचिद्	५१	प्रीत्या विमोचयामि त्वां	३२६	बालः सूर्यस्तमो वीर	१७
प्राग्भारदक्षिवक्त्राश्च	३५३	प्रीत्या सर्वाधितं भूयः	८०	बालनीलोत्पलम्भान-	३७६
प्राग्भारसिंहकर्णस्थ-	१०५	प्रेमनिर्भरपूर्येण	३२१	बालशुद्धिपि स्वामिन्	२६०
प्राणाश्च धारयन्तीनां	१२३	प्रेषितं मानुमार्गैश्च	६४	बालानां प्रतिकूलेन	१७४
प्राणिनां मृत्युमीरुणा	६	प्रेषितः कोशला दूतः	३८	बालिखिल्य इति ख्यातः	१२७
प्राणेशं निश्चितं श्रुत्वा	७३	प्रोक्तश्च पञ्चनाभेन	३६४	बालेन्दुद्वतसर्वत्वं	६१
प्रातिवेशिमक्रयोधाना-	३६१	[फ]		बाल्यात् प्रभृति दुःकर्म	१३०
प्रातिहार्यं कृतं येन	१६४	फलं ध्यानाच्चतुर्थस्य	६८	बालं हस्तशताद् भूमि-	४०५
प्रातिहार्यसमायुक्तं	३०	फलं प्रदक्षिणीकृत्य	६८	बालभूमिगतस्तत्र	२०४
प्रातिहार्यं कृते तास्या-	१८३	फलं यदेतदुद्दिष्टं	६८	बालस्थानि पुरस्यास्य	१६०
प्राप्तेषु सर्वसामन्ता-	३६	फलपुष्पभरणमग्रा	३३६	बालायां भुवि लङ्काया	३३६
प्राप्तः कर्मानुभावेन	१२०	फलमारनतैरग्नै-	२१२	त्रिमूर्तिं तावद् दृढनिश्चयं	३७०
प्राप्तः प्राप्यसपात-	७१	फलानि स्वादुहारीणि	१०३	विभेति दशवक्त्राहः	३४६

बुद्धिमानसि धन्योऽसि	१२१	भयेन स्वनतस्तस्मा-	१७६	भव्याम्भोजमहासमुत्तव-	३८६
बोधिस्तेन दाक्षिण्या-	२६८	भरतः शिञ्जणीयोऽयं	६५	भाग सर्वं परित्यज्य	७८
ब्रवीत्येवमसौ यावत्	६४	भरतस्ये विदग्धाख्ये	६०	भागो न भरतस्तस्य	१६०
ब्राह्मणी विनिशम्यैतं	१४०	भरतस्य किमाकृत	८२	भाग्यवन्तो महासत्वा-	६०
ब्राह्मण्य वसुभूतेश्च	१८४	भरतस्य जयेनात्र	१६०	भामण्डलं प्रतिक्रुद्धाः	३६५
ब्रुवते नास्ति तृष्णा न	८	भरतस्य ततो मात्रा	४१०	भामण्डलकुमारस्य	५४
ब्रुवता अपि सीताया-	१२६	भरतस्य त्रिखण्डस्य	२६७	भामण्डलेन समन्य	३४
ब्रुवन्ति महाहृष्टः	१४३	भरतस्य मया नाथ-	४२	भामिनी जनकस्यासीद्	१
बृहद्वक्त्रकिनो हस्ते	४५	भरतस्याखिले राज्ये	७६	भारती न विशत्याशा	१६७
बृहत्केतुस्ततोऽबोचत्	५५	भरतस्याल्यं प्राप्त-	४०६	भार्या मित्रवती तस्य	२८४
बृहज्जटो बृहत्कायौ	३७२	भरतायामिनरोचिष्णु-	१५८	भावपुण्यैर्जितं यस्तु	६७
बृहद्गणिततृजस्तु	११०	भरतेन ततोऽत्राचि-	४०६	भाव प्रतश्चसे किं स्व-	२०१
बृहद्वादित्रिनिर्वापे-	१६	भरतो जयति श्रीमान्	१६४	भावमाणे गुणानेव	१७५
[भ]		भर्तारं दुःखयुक्तेव	२५४	भासा भूषणजाताना	३०२
भक्तिभिः पूज्यमानोऽपि	८३	भर्तुर्मै भूषिताङ्गस्य	२७३	भास्कराभाः पयोदाह्वाः	३५६
भक्त्या बह्मयुगहार यः	६८	भवतो या गतिः सैव	३४६	भास्वन्नक्तिशताकीर्ण	१७२
भक्त्या शशाङ्कयानोऽपि	३१	भवत्कीर्तिताबालै-	२६०	भिन्नं वैध्यानदण्डेन	१८१
भगवंत्सत्प्रसादेन	५८	भवत्प्रभाषत्तसर्वविघ्नं	४१४	भीमभोगिमहद्भोग-	३३७
भगवन्तौ कृतो नक्तं	१८४	भवत्या यद्यसौ भ्राता	५६	भीमो भीमरथो धर्मो	३६७
भगवन्नयमत्यन्त	२०२	भवत्या रमणोद्याने	२५२	भीषितानीं दरिद्राणा-	२
भगवान् स हि सर्वत्र	५८	भवत्या वाञ्छितं कृत्वा	३६२	भुञ्जे देशं मया दत्त-	११३
भगिनी दुर्नखा तस्य	२२५	भवद्विद्वत्तमैः प्रीतै-	३६६	भुक्त्वा योगान् दुःकृत्यादान्	७७
भग्नं पुष्पनगोद्यानं	३३६	भवद्वद्वत्सलत्त्यान-	३६१	भुक्त्वा राज्यं चिरं कालं	१८६
भग्नोत्तुङ्गापयःश्रेणिः	३३८	भव धीरा प्रवीराणां	४००	भुषण्डीः परशूल् वाणान्	३१०
भग्नः शक्रसैन्येऽदिमन्	१६	भवनं यस्तु जैनैर्नद्रं	९८	भूतमात्रमतिं त्यक्त्वा	५८
भज खेचरनाथाना	५६	भवनेऽवधिना स्मृत्वा	६	भूतोऽयं भविता वापि	११६
भजत सुकृतसङ्गं तेन	३४३	भवन्त तादृश चीरं	३६६	भूमिगोचरिणो मर्या-	१८३
भजता चन्द्रहासेन	२२८	भवन्तं शरणं भक्तः	३५४	भूमिसम्प्राप्तसौवर्ण-	३४२
भज तावत्सुखं पुत्र	७६	भवन्तमेव पृच्छामि	१०८	भूयोजलधिकक्षोल-	३८८
भजत्येव तथा देवो	१५७	भवादारम्य पूर्वोक्तात्	१६०	भूयो भूयो बहु ध्यायन्	२४२
भज सर्वाः क्रियाः पुत्र-	२७	भवान्तकस्य भवन	८३	भूयो विषादमागत्य	२४०
भक्त्यमानं निर्जं सैन्य	३८६	भवान्गमा मम स्मृत्वा	७३	भूरिशोऽवग्रहाश्चक्र-	५२
भञ्जनं करशाखानां	२२६	भवामि छत्रधारस्ते	६४	भुविरेषु निपातमुपैति	३७३
भद्र किं किमयं स्वप्नः	६४	भवार्णवसमुत्तीर्णा-	२६५	भृगुपातपरित्रस्ता	१८०
भद्र ते कुशलेनाद्य	१२१	भवितव्यं कृतज्ञेन	३२१	भृत्याना भक्तिपूर्णाणा	८८
भद्राः किं किमिति ब्रूये-	१८५	भवितारौ जगत्सारौ	१६३	भृत्यो भूत्वा विपुण्योऽहं	११०
भद्रे कोऽहं प्रसादस्य	१६२	भव्यबीजा यमासाद्य	६०	भ्रेक्षमानं बलं दृष्ट्वा	३६६
भद्रोत्तिष्ठ जययुः खं	२२७	भव्यता पश्यतामुष्य-	२६६	मेरीपश्यववीणाधै-	५२
भम्भामेयं मृदङ्गाश्च	३६८	भव्य भो यावदायाति	६६	मेरीशङ्करवः सिद्धि-	३४८

भोगसागरमग्नोऽसौ	२७८	मद्यपस्यातिवृद्धस्य	२७३	मयार्थं सहशो मन्ये	२७१
भोगैर्नस्ति मम प्रयोजन-	१७७	मद्वाक्यादुच्यता सीता	३०६	मया शिशुतया किञ्चि-	३११
भो भामण्डलसुग्रीवौ	३६७	मद्वियोगेन तप्ता वा	२८२	मयासीन्मन्दवीभाजा	१४०
भो भो निर्गन्ध मा गास्त्वं	२०४	मधुरं द्रुवते काश्चिद्	१०२	मया स्नेहानुबन्धेन	७०
भो भो महीधराधीश !	२४१	मध्ये च गहनस्यास्य	२२६	मयि स्थिते समीपेऽस्मिन्	७६
भो भो सुविभ्रमाः सर्वे	२८५	मध्ये तस्यापि विपुलं	२२६	मयूरमालनगरे	१५
भो वृक्षाश्चम्पकच्छाया	२४०	मध्ये मन्दरखुल्योऽस्य	२८८	मयेति गदितं वाक्यं	२५७
भृत्यस्य दशवक्त्रस्य	३३१	मध्येऽयमस्य सैन्यस्य	३१	मयेदं शासनं जैनं	१३६
भ्रकुटि कुटिला वस्य	२८६	मध्ये वस्य नदी भाति	१३३	मयेदमर्कितं पूर्वं	२५४
भ्रमश्च समिदाद्यर्थ-	१३६	मनुष्यमावसुकरं	२०१	मयैवं सततं पृष्टो	४०२
भ्रमद्भिश्चलैर्मृगै-	३३४	मनुष्यलोकमासाद्य	१६८	मर्यादा न च नामेयं	७६
भ्रमयित्वा हितौ याव-	१३४	मनुष्याणां पशूना च	२५६	मर्यादानां नृपो मूल-	३२४
भ्रमरप्राङ्गतैर्युञ्जैः	३२५	मनोरथशतैः पुत्र-	२८६	मर्यादार्थं यथा कश्चित्	३४१
भ्रष्टनिःशेषनीतिश्च	३२६	मनोविषयमार्गेषु	७६	मल्योपलब्धा प्राप्य	१६६
भ्राजते त्रायमानः सन्	७६	मनोहरैर्युद्धैर्भाति	२६३	महतः सरस्वत्यः	१२५
भ्रातारौ बाह्युग्रीवौ	२७०	मन्त्रदोषमसत्कारं	२७०	महता शोकमारेण	१४६
भ्राता मम मृषे भीमे	२४२	मन्त्रिणो नृपतीन् सर्वांन्	८०	महतापि प्रयत्नेन	८८
भ्राता ममया सुहृदेव वश्यो	३५७	मन्त्री जाम्बूनदोऽवोचत्	३०६	महता मोहपकेन	२५३
भ्राता विभीषणो यस्य	२८६	मन्त्री माता च मे वेत्ति	१२८	महदाश्चर्यमेतन्मे	३७१
भ्रातृश्वन्नखा पादौ	२५४	मन्थरैश्चासञ्चारै-	१६२	महाकलोलसङ्काशा-	३७६
भ्रातृश्वन्परिवृज्ज	८०	मन्दमास्तनचित्तैः	२१२	महाजलधरब्जान-	४१
भ्रातृभिः स पितृभ्या च	२६२	मन्दोदरि परं गर्वं	३३१	महातरोरधस्तावत्	२६३
[म]		मन्दोदरी क्रमात्प्राप्य	२५७	महातामसशस्त्रं च	३६२
मकरग्राहकक्रादि-	३२८	मन्दोदरी ततोऽवोचत्	३३१	महातुरङ्गसंयुक्तैः	३०१
मकरन्दरास्वादा-	१२१	मन्दोदरी ततोऽवोचत्	३३१	महादेव्याडुमे तस्य	१८८
मत्सिकाच्छदनच्छात-	४८	मन्दोदरी सुतं तावदभि-	३२०	महाद्रिकन्दरास्थाल-	८८
मगधेन्द्र ततो वातिः	३२४	मन्दोदरी सुतोऽव्येष-	३६३	महानरानिति पुरुदुःख-	२४२
मगधेन्द्रस्ततोऽपृच्छत्	३५८	मन्मथाकृष्टनिःशेष-	१६२	महानिर्भरगम्भीरान्	२११
मणिगौरगरम्येषु	१३८	मन्ये पराजये देवान्	४११	महान्तस्तस्य सज्जाता	२६३
मणिपीठस्थित सौम्यं	८३	मन्ये तस्य सुरैर्योऽपि	३७	महापुरुषयुक्त ते	१२६
मण्डलाग्र समाक्षिप्य	१६४	मन्ये यथानुबन्धेन	२४६	महानिधानवह्मका-	२६३
मतिक्रान्तोऽग्रवीत्यग्र-	३५४	ममात्मजमुदासीनं	२४५	महापति निमग्नस्य	३३०
मत्तवारणदन्ताग्र-	३६१	ममापि सहसा हृष्टा	१२१	महापूतमिति श्रुत्वा	१६४
मचाः केसरिणोऽरण्ये	३४०	मयदैत्यात्मजा तीव्र-	३३२	महाप्रकटपूरस्य	२३७
मलैर्गौरिसैर्नगै-	३७२	मया किं तर्हि कर्त्तव्य-	४०६	महाप्रतिभयाकारां	४०३
मदनाट्कुरसन्ताप-	३७४	मया जन्मानि युरीणि	६७	महाप्रभावसम्पन्नं	३०३
मदनैर्लक्षैर्मैत्रै-	२१२	मयानुमोदितस्तेऽयं	११	महाभेरोन्वजि चाशु	४०८
मनीय रूपमासाद्य-	२७४	मयापि पुत्र जातोऽसि	२२८	महाभोगो महातेजा-	१५५
मद्बाहुपैरितैर्बाणै-	३६४				

महामहिषशृङ्गाय-	१०२	मातापितृसुहृन्मित्र-	२०८	मित्राणि द्रविणं दाराः	१८०
महाभ्युदप्रतीकाशा-	३६८	मातामहं समादाय	३१०	मिथिलनगरीतोऽहं	३२
महायोगेश्वराधीरा	१८१	मातालिङ्ग्यागदत्त सीता	६६	मिथ्यादर्शनमुक्ताना	३७१
महारथवरैर्नाना-	३६८	माता विषेण तौ हन्तु-	३५५	मुक्तमात्रः स पापेन	८
महार्णवरवामेयं	३५१	मातुः सहोदरो भ्राता	६	मुक्तलवण्यरूपस्य	१०७
महालोचनदेवस्य	३८३	मानवो भव देवो वा	१२०	मुक्ता कन्या स्वशिविरं	३३२
महावष्टम्भसुस्तम्भा	१६६	मातुषत्वं परिग्रहं	२४०	मुक्ताढामसमाकीर्ण-	२६६
महाविनयसम्पन्नः	१२५	मातुषद्वीपमासाद्य	१४०	मुक्तिक्षान्तिगुरौमुक्ता	१६
महाविनयसम्पन्नो	८१	मातुष्यकर्मदं जातं	१६६	मुक्त्वा नानाकृत्यासङ्गं	२१६
महाशक्तिमिम शत्रुं	२४४	मानन्दतैरिमैर्वाक्यै-	२६७	मुक्त्वा त्रिभुवनाधीशं	१०६
महाशीतपरीतस्त्व-	३५२	माभूत्तस्मिन् कृतक्रोधे	२६७	मुग्धबालकमादाय	४०८
महाश्रद्धान्वितस्त्वान्ता	३३३	मा भैषीमैर् मा भैषी-	२८७	मुग्धा मुग्धमृगीनेत्रा	४१२
महासंवेगयुक्तो	२०५	मामैष्ट ततो राजा कृत्वा	१८५	मुञ्चते समये यस्मिन्	६
महासाधनसामान्त-	१६८	मायथाह्वयचैनं	११०	मुञ्चते सुकृतं चासा-	७०
महिमानं परं प्राप्य	३८३	मायां सुश्रवसन्देह-	२६८	मुञ्जस्रानन्दनेत्रात्म-	२०२
महीतले समस्तेऽस्मिन्	२८५	मायाविनिहतैः क्षुद्रै-	२३४	मुञ्जैर्न त्वरितं क्षुद्रं	१३४
मुहुः प्रेषितशूलोऽयमद्य	३४६	मायासहस्रसम्पन्नो	२७५	मुदितैः किङ्करैर्मैरी	१७
महेन्द्रं निभृतं श्रुत्वा	३११	मा यासीद्वि संवासं	२५८	मुनयो यं समाश्रित्य	१४०
महेन्द्रकेतुरत्युग्र-	३४६	मारयामीति तेनोक्त्वा	५७	मुनिं निःप्रतिकर्माणं	२०३
महेन्द्रजितसङ्गश्च	२८६	मारस्यात्यन्तमृदुभि-	२५२	मुनिरयातमात्रः सन्	५२
महेन्द्रजिह्वसौ बाणै-	३६२	मारितास्मि न कि तेन	१२	मुनिमुव्रतनाथस्य तीर्थै-	१६३
महेन्द्रसहस्रैस्ताव-	२५३	मारीचः सिंहबधनः	३७४	मुनिमुव्रतनाथस्य सम्प्राप्य	१४१
महेन्द्रोऽथ महावीर्यो	३१०	मारीचः सिंहबधनः	३६४	मुनिमुव्रतनाथाय तस्मै	१४२
महेन्द्रोदययात त-	५८	मारीचोऽमलचन्द्रश्च	३५१	मुनीना वत्स केषाञ्चि-	७७
महेभङ्गुमशिश्वर-	२३६	मा रोटीः सौम्यवक्त्रे त्व-	३२१	मुनीशेन समादिष्टा	४०६
महोदरस्य वातेरच	३७७	मार्गं तत्र क्रियन्तं चि-	१०४	मुनी सुगुप्तिगुताख्या	२००
महोरगाङ्गना कि त्व्याद्	२५	मार्तण्डमण्डलच्छायो	५१	मुनेश्चारित्रशूरस्य	१३८
महामन्वेषितस्ताभ्या	१३	मालिनं नष्टमालोक्य	३७५	मुनेस्तस्य प्रभावेण	२०५
मासखण्डाभमग्नान्क्षी-	१८२	माली तस्याग्रतो भूतो	३७५	मुसुवृश्च घनं शलं	३३७
मासाशानात्रिबुक्ताना	१४४	मा वीवधोऽस्य लक्ष्मीमन्	१६४	मुहुस्तामीक्षते कन्या	२६
माषिक्यशकलाङ्कानि	२३५	मा वजीरङ्गदैत्यं त्वं	१६५	मुहूर्तं मन्त्रिभिः सार्धं	२७५
मातरं भ्रातरौ चैवा	३५५	माश्वसीदीर्घमुष्णं च	७८	मुहूर्तं ऽथ चतुर्थं नु	३३३
मातरं शरणं प्राप्ता	३०८	मासमात्रमुषित्वातो	६६	मूर्छनाभिः स्वरैर्ग्रामै-	१६२
मातरौ दुःखिते एते	६३	मासानेकादशामुष्णां	४०६	मूर्तिनिर्मुक्तमेवैत-	२०५
माता च वनमालयाः	१५२	मामोपवासिनौ वीरौ	२००	मूर्तिमन्तमिवानन्दं	३२०
माता तं मूर्च्छिता दृष्ट्वा	६५	मास्त्राक्षीर्लक्ष्मण देव-	३६७	मूर्ध्नोरोभुजबद्धादी-	१८२
माता पिता च ते वत्स	६२	माहात्म्यादसुतो राजन्	२१	मृगच्छनो रणोर्मिश्र	१५६
माता पिता च पुत्रश्च	६	माहेन्द्रिरथ सम्भ्रान्तो	३०६	मृगीत्वं सरसा प्राप्ता	६३
मातापितृसमायोगं	३११	माहेन्द्रिमुदितो भूयो	३०६	मृगेन्द्राधिष्ठितात्मान-	२६७

मृदङ्गवंशसुरज-	१६७	यथा भज समागत्य	१५७	ययुर्मिर्महपैरन्यै-	३६५
मृदुमन्दरीरथङ्कुरमलं	२१६	यथा भवशतैः खिन्नो	१३३	ययौ सिंहकटिं नीलो	३६०
मुद्यमाना निपेतुस्ते	२०	यथाभूतो मुनेर्धर्म	१४०	यशोधरमुनेः पार्श्वे	६६
मृत्युक्लोलसंयुक्ता	७३	यथा मे केचिदेतस्मिन्	१५५	यस्त सर्पति मृदात्मा	३१७
मृत्युजीवननि.काक्षा	३१४	यथा यथा महामाग्या	४१०	यस्मिंश्चलधरः सख्ये	३६०
मेघकाण्डानि वल्गाणि	१६५	यथा रत्नाकरद्वीपं	६६	यस्मादंशुजयस्तस्य	२१०
मेघवाहनवीरिण्य	३७६	यथावद् विदितं तेन	२८५	यस्मिन् दधिमुखं नाम	३१३
मेरुशृङ्गप्रतीकाशं	३६५	यथावस्थितभावाना	२२५	यस्मिन् विद्यते पत्न्या	१६६
मोहारिकण्टक हित्वा	१८७	यथाश्रुति परिज्ञाय	८७	यस्य चारणकन्याना-	१६४
श्लेच्छनिर्घाटनात् स्तोत्रं	३४	यथा सत्त्वहितेनेदं	४०६	यस्य देशं समाश्रित्य	१७
श्लेच्छैः किं ग्रहणं लुद्रै-	३४	यथा स्थायामि ते मातः	८०	यस्य सर्वस्य सम्यक्वाद्	२०३
श्लेच्छोऽयं हन्तुमुद्युक्तो	१८७	यथेष्टं दीयमानेषु	१७५	यस्याः कृते क्षत्रोरस्कं	३६६
[य]		यथोक्तमाचरन् राज-	२२६	यस्यां गर्भप्रपन्नाया-	४०२
यः करोति विभावर्था-	६७	यदत्र द्रविणं क्रिञ्चि-	१२८	यस्या रात्रौ वनोद्देशे	१४८
यः पुनः शीलसम्पन्नो	८	यदर्थं मत्तमातङ्ग-	३५२	यस्यातपत्रमालोक्य पूर्ण-	२८६
यः सन्देहकलङ्केन	६८	यदाज्ञापयतीत्युक्त्वा	४२	यस्यातपत्रमालोक्य शरदि	३६०
यः क्लिप्तियिवेलाया-	१४०	यदाज्ञापयसीत्युक्ते	१६७	यस्यायस्तस्य मित्राणि	१४४
य य देशं विहितमुकृताः	३४६	यदि दृष्टिप्रसादं मे	२५२	यस्यालोक्य तदा सख्ये	३०३
य वीक्ष्य जायते कोपो	३७२	यदि नाम न तत्सैन्यं	३३	यस्यासिरत्नमुत्पन्नं	२३४
य वीक्ष्य जायते चित्तं	३७२	यदि भोगशरीराम्या	११०	यस्यास्तयानि रम्याणि	१६६
य दृष्ट कविलानुकीर्तन	१४६	यदि मे निश्चयोपेतः	२७६	यात्येष किमुतायाति	१०५
यज्ञेणैव कृते तस्मिन्	१५३	यदिमी शोभिनी मुग्धे	१७०	यादृक् येन कृतं कर्म	४३
यज्ञं नाशा नरेशाना	४०६	यदि वाञ्छसि जीवन्तं	२६५	यामोऽनेन समं दुःख-	८२
यजन्ते भावतः सन्तो	१६	यदि सा वेधसः लुष्टि-	२५५	या येन भाविता बुद्धिः	६४१
यतोऽनया जितं पद्मं	१७१	यदीयं देव नामापि	२८८	यावच्च कुरुते पूजा	३१४
यतोऽय दण्डको देशः	२०५	यदोपलभ्यते चावीं	३२२	यावत्सस्य च तासां च	२३
यत्तद्वस्तप्रहस्ताभ्या	३७२	यद् ग्रीष्मातपतप्ताङ्गौ	१४६	यावत् तिष्ठन्ति ते तत्र	१३३
यत्प्राप्तव्यं यदा येन	५०	यद्दर्शं दुःखितोऽप्राप्ती-	६१	यावत्पत्नी नरेन्द्रस्य	२६३
यत्र भिलोकपूज्याना	५७	यद्यनेन समं सक्ता	३२१	यावत्पश्यति तं बद्धं	२६१
यत्र यत्र पदन्यास	१६६	यद्यथा निर्मितं पूर्वं	१८८	यावत्पश्यति तं सुप्तं	२४६
यत्र यत्र समुद्देशे	१६२	यद्यप्याशापूर्वकमार्तु-	२५१	यावत्पश्यति सज्जात-	३६३
यथा किल द्वये लोके	३२४	यद्यप्युपशमं यात-	१५८	यावत्प्राप्नोमि नो वार्ता	२५३
यथा किल विनीताना	११६	यद्येनं वारयामोऽतः	१८३	यावत्सुग्रीवभाचक्रौ	३८१
यथा किल समस्तोऽयं	४०१	यद्विद्याधरसन्तानं	३८६	यावदाहुयते स्वामी	३२६
यथा ज्ञापयसि स्पष्ट-	१६१	यद्वृत्तं दण्डकाखयस्य	३५६	यावदेवं वदत्येषा	४७
यथा ज्ञापयसीत्युक्त्वा	३०६	यद्रौद्रभूतिः सुचिरं विचित्रं	१३२	यावदेव क्वनिर्लोकं	२०५
यथा त्वद्विरहे बाला	१४६	यन्त्रैषु श्रमणाः सर्वे	२४०	यावदेवमसौ पद्मं	३८१
यथा नन्दीश्वरे द्वीपे	४५	यन्त्रैर्बहुजनक्षोदै-	२६८	यावदेवोऽपनीतो न	२०३
यथाधिपेन रामस्य	१३६	यन्निरीक्ष्य वयरोहे	२००	यावद्दशः समाधान-	३८२

यावन्न मुञ्चति प्राणान्	२६०	यो यतिरूपमन्युश्च	७१	रथैः प्रमात्सरैर्दिव्यैः	६६
यावन्नेच्छति मा नारी	२५६	यो रतिं परनारीषु	६६	रत्नं प्राप्य वने भीमे	२४०
यावन्नोपद्रवः कश्चि-	३३४	यो लोकाहितमुद्दिश्य	३५	रत्नविन्यस्तचित्तेन	११०
यावन्तः केचिदन्ये तु	३६८	योऽसौ परमया शक्त्या	२०५	रमणाश्च महामोक्षान्	२६
यावन्तो भुवने केचि-	३१५	योऽसौ विमोक्षणाः ख्यातः	२६८	रमणात्मबपञ्चल-	२५४
यावन्मुञ्चामि तो प्राणान्	२५६	योऽसौ विधुचिरित्यासीत्	६३	रमते क्वचिदपि चित्त	१८०
विधासोः शस्त्रहस्तस्य	३६३	यौ रामलक्ष्मणौ नाम	२५७	रमते जीवन्मृपतिः	१८६
युक्तं युचतुरैरश्वै-	३३६	[२]		रम्यं चैत्यग्रहं वन	२७८
युक्तमुक्तमलं तार-	१६०	रक्तच्छटा विमुञ्चन्त-	३६१	रम्येष्वग्निनितम्बेषु	६०
युक्तमेवातिवीर्यस्य	१५६	रक्तवल्गुशिरस्तायाः	१६	रम्ये सुविपुले हृष्ये	६४
युक्त्या भवन्तमन्यस्य	२६	रक्तशिलौषधिरनिचिता	२१७	रवः किमपि सिंहस्य	२३४
युगान्तकालमेवौषध-	३१७	रक्ताशोकप्रकाशेन	२०४	रविणा दिवसस्यान्ते	८३
युद्धार्थमुद्गतावेतो	३५३	रक्तावनं किं तत्	३६१	रविरश्मिकृतोद्योत	३३३
युद्धावर्त्तो वसन्तश्च	३६८	रक्षःप्रभृतिषु शृण्व्ये	२२५	रहितश्चानया रामो	२६०
युद्धे च मानसं कृत्वा	३१८	रक्षःसामन्तसङ्घातो	३७५	रहिता शतपत्रेण	३२५
युद्धे हंसरथं तत्र	३४६	रक्षभिर्दं मृतं तस्मात्	२३६	रहस्यमिदमेकं च	२२४
युवगर्वसमाधत्ता	१६०	रक्षसा वानराणां च	३५६	रहस्यमेतत्सन्मन्य	२६४
युवत्युज्ज्वलप्रह्वीना	१७०	रक्षितस्य पितृवाक्च-	१६६	राक्षसानामधीशेन	२२४
युवयोः कुवतोर्नरूपं	२०७	रक्षिता येन मे प्राप्ता-	३७७	राक्षसैः परकायै-	१८२
युवविद्याभूतालेख	२८६	रक्षोभिर्वैरितं दृष्ट्वा	३७७	राक्षवाकुलपुत्रास्ते	३४७
युश विमोक्षणेनाथ	३५४	रणप्रत्यागतं धीर-	३६१	राक्षवो रथमारुढो	१६
युष्मान् ब्रवीमि सञ्ज्ञे- या	२५८	रणमेरीनिनादेन	३५१	राक्षसैर्यात् कुतोऽप्येष	२१४
ये जन्मान्तरसञ्ज्ञिता- ति-	१७६	रणसंसारचक्रेऽसौ	३७६	राक्षन्कर्मयुद्धसमर्थ	२६८
ये तस्य प्रणतास्तुङ्गाः	३५३	रणसञ्ज्ञाततोषेण	३६३	राक्षन् दारुणानङ्गुल-	२७२
येन व्यापादितो वस्ते	२५४	रणाचिरे परं तेजो	२४५	राक्षसं साधयित्वा तं	५
येनासीत् समरे भीमे	२८७	रतिं न लभते क्वापि	३	राक्षन् विचित्ररूपोऽय	१४४
येनैवेन्दुनखानाथो	३३१	रत्नं पुरुषवीराणां	३६६	राक्षपुत्रकरं प्राप्ता	२६१
ये पुण्येन विनिर्मुक्ताः	१५२	रत्नकाञ्चनराशिं च	२०६	राक्षपुत्रि परीक्षस्व	३६
येऽयन्येऽन्वेषणं कर्तुं	२४६	रत्नकुण्डलमावृत्ता	१२	राक्षपुत्र्या समं बालौ	६३
ये विवाहोत्सव द्रष्टु-	४३	रत्नप्रयापादितचारु-	१६६	राक्षमागोऽद्विसकाशान्	१४२
येऽद्विगतसितच्छत्रो	६३	रत्नमालिन् किमारब्धा-	७०	राक्षाधिपराजितः	१५५
येषा न भोजनं हस्ते	१४०	रत्नमाली पुनर्नाना	७१	राक्षानमागतं शाला	४६
येषा विरतिरेकापि	२५६	रत्नवातायनैर्युक्त	२६	राक्षा भूत्वा पुनः शत्रु	६
यैः संसारसमुद्रस्य	१४२	रथाकारुद्धमायान्त	७०	राक्षालये समुद्रावतो	४०६
योजनस्याष्टमं भागं	२२४	रथात्ते विगता शीघ्रा-	३०६	राक्षः पुरोहितस्यास्य	१
योजनानां शतेनापि	१५२	रथादुत्तीर्य पञ्चास्यः	१७६	राक्षः च संग्रहीतस्य	१८६
यो जिनेन्द्रालये दीप	६७	रथान्तरं समारुद्ध-	३६४	राक्षोऽन्यस्य धृता नागना	१८६
यो ना परकलापिणि	२६०	रथाश्चकारणारुद्धाः	३६०	राक्ष्यं पाक्ष्य वत्स ल-	७६
यो निर्वाणशिक्षा पुण्या-	२६४	रथे दिवाकरस्यापि	२८		

राज्य पुत्रेभु निक्षिप्य	१८८	लक्ष्मी कुमुदती यस्य	१६४	लोको बगद कि न्वेत-	४०८
राज्यस्थश्च प्रमादाश्च	२६३	लक्ष्मीधरः समाकर्ण्य	१७२	लोको दुर्लभदर्शनं	१३७
राज्ये तथाविधेऽयस्य	६५	लक्ष्मीधर पुरस्कृत्य	२८५	लोको विचित्ररूपोऽयं	६३
राजापि न विन्दन्ति	१०८	लक्ष्मीधरकुमाराद्या	२७१	लोहितोऽपि शरैस्तीवै-	३६४
रात्रिमेका बहिरात्वा	२७८	लक्ष्मीधरस्ततोऽवोचद्	१२३	लोभसगासमासक्तः	१०६
रामः पप्रच्छ तेनैतो	१८७	लक्ष्मीधरस्तदादाय	११४	[व]	
रामकार्यसमुद्युक्ताः	३६७	लक्ष्मीधरेण रुद्धोऽसौ	३६०	वंशस्थलपुरेशश्च	१६५
रामपादरजःपूत-	१५६	लक्ष्मीधरोऽनुजो यस्य	३३१	वशाद्रिषित्वरे रम्ये	१६५
रामलक्ष्मणयोरग्रे	२१०	लक्ष्मीमान् लक्ष्मणश्चाय-	३६	वक्त्रारविन्दमेतत्ते	२५२
रामलक्ष्मणयोर्यानि	१६६	लक्ष्मीलताविषकाङ्गं	३०२	वैज्रस्तस्य तथा भिन्न	३६३
रामे च पञ्चता प्राप्ते	२६७	लक्ष्मते दीर्घसूत्रत्वं	३४६	वचस्तत्रा शापयामीति	१५७
रामेण यस्मात्तरमाणि-	१६८	लग्नमश्वीयमश्वीयै-	३८८	वचोगुति ततो भित्वा	२०६
रावणस्य कुमाराभ्या	३८२	लङ्का जिगमिषोरस्य	३०८	वचोभिरिभिरन्यैश्च	३२१
रावणस्य महासैन्यं	३५६	लङ्का दृष्ट्वा समासबां	३४६	वज्रकर्णस्ततः कृत्वा	१२२
रावणस्य हि तत्तुल्यो	२६६	लङ्का कमलिनीखण्डं	३३८	वज्रकर्णो दुरात्मायं	११६
रिपुचक्रमिहायातं	१७	लङ्काधिपतिना नून	२८६	वज्रगणेरिवामुष्य-	३०८
रिपुञ्जयाः शशिस्थानाः	३५७	लङ्कानाथस्य पुत्रेण	३८०	वज्रावर्तधनुर्घोषं	३३१
रुक्माक्षरामिधानाभिः	२५३	लङ्कानिवासिभिर्यौधै-	३६६	वज्रावर्तमधिक्य चे-	३७
रुक्माक्षरकुवञ्जत्व	६१	लङ्कायाः परिपार्श्वेषु	२८६	वज्रावर्तमिदं चाप-	४०
रूपमात्रेण यातोऽसि	२५	लङ्काया तेन विन्यस्ता	३४७	वज्रावर्तं समारोप्य	३६
रूपमेवमलं कान्तं	१४५	लङ्काशालपरिक्षेपं	३१७	वज्रोदरी ततोऽवोचत्	३४२
रूपेणाप्रतिमो युक्तः	३२७	लङ्कायाः क्रोपनो योद्धुं	३८६	वज्रोदरोऽयं शक्राभः	३६४
रूपयौवनलावण्य-	२३०	लताग्रहेषु विश्रान्ता	१०३	वण्टेन राजदानस्वं	३७१
रेने विराधितस्यापि	३४८	लवण्य च पुनर्दानं	२६३	वत्स पूर्व रणे घोरे	७५
रेजिरे प्रतिमास्तत्र	१६७	लवण्यरत्नरथेनैषां	१८६	वद किं कृतमस्माभि-	७५
रोमाञ्चाचितसर्वागा दधती-	४१	लवण्यैः दशवक्त्रेण	४११	वदतामिति श्रुत्याना	१५१
रोमाञ्चाचितसर्वाङ्गा	५८	लब्धिदासो लघुप्राप्तः	४०५	वद तेषां पशूनां च	३४
शेषतोषविभिर्मुक्त	१६८	लब्धवानुमननं क्येष्टा	२२३	वदनजितशशाङ्का-	१३
रौरवाद्यवदक्रान्ता	१०७	लब्धवापि जैनं समय	१००	वदन्ती पुनरेवं सा	१८०
रौरवारौरवौद्रेण	१७६	लयान्तरवशोत्कम्पि-	१८२	वदन्त्यन्योन्यमग्रेते	११८
[ल]		लालितं परमैर्भोगैः	४६	वदन्त्यन्योन्यमग्रेते	१२२
लक्ष्मणश्चमाधर वधुः	२०	लावण्य यौवनं रूप	२५५	वदन्त्यन्योन्यमग्रेते	५७
लक्ष्मणश्चानुगस्तस्य	३३	लावण्ययुतिरुपाढ्या	३२८	वदन्त्यन्योन्यमग्रेते	१४६
लक्ष्मणस्ता तथाभूता	१४६	लिखन्तो भूमिमङ्गल्या-	७३	वदन्त्यन्योन्यमग्रेते	२६०
लक्ष्मणस्योपमां तश्च	२०	लीलया परया युक्ता	१८१	वनमाला रुहं दृष्ट्वा	१७०
लक्ष्मणेनेयुषा तावद्	२४६	लुब्धकेनाहृतो जीवः	१८८	वनमाला ततोऽवोच-	१६६
लक्ष्मणैर्नैव सुग्रीवः	२७७	लुब्धको जीवमोक्षेण	१८८	वनमेतदलं चार	१६६
लक्ष्मणो दूषणेनामा	३२६	लोकं च विविधं पश्यन्	१७१	वनस्त्युपजीविन्या-	१८४
लक्ष्मणोऽपि सा सक्ता	३६३	लोकं द्रष्टुमावाश्च	५३	वनान्तरस्थितं पुत्रं	२३३
लक्ष्मणो विस्मय प्राप्तः	२२६				

वनितामृतमेतन्मे	२४०	वहन् परमभावेन	११०	विस्वतान्मान् महायोधान्	३४४
वनिते सर्वमेतत्ते	२४७	वाच्यो मद्रचनादेवं	१४६	विग्रहेऽविग्रहे वापि	३७२
वनेऽतिभीषणे कष्टं	३००	वाताग्रनस्यतेषापि	१६०	विघूर्णमाननयनः	५२
वनेऽस्मिन् जननिर्मुक्तै	२४०	वातेनापहृते सिन्धोः	२६६	विघृणस्य कथं तस्य	१२
वन्दनं यो विनेन्द्राणां	६७	वातेहिताम्बरव्याजा-	१६१	विचारेण न वः कृत्यं	३३६
वन्द्यानापि महानागान्	१७५	वानराभोगमुकुटः	३०४	विचित्रचातुरङ्गारच	१७१
वयस्तपोधिकारे ते	७८	वानरीनैः खमालोन्नय	३८८	विचित्रशिखरा यव	२११
वयस्यवनिता तावत्	२३७	वाये शुषे सुवेणश्च	३४८	विचित्रस्ववनस्तेहै-	१४६
वरं तत्तले शीते	१३५	वायसं धृच्छ्रुति प्रीत्या	२८१	विचित्रैः कुट्टिमतलै-	३४६
वरं पुष्पफलच्छुभैः	१३४	वायसा अपि गच्छन्ति	३५	विचिन्त्यैवं द्रुतं गत्वा	२४
वरं सम्प्रति त यच्छु	७४	वायुतो ह्यियमाणेन	२१२	विचेष्टितमिदं व्यर्थं	१८३
वरधर्मापि सर्वेण	१६४	वायुपुत्रं द्रुतं गत्वा	३०६	विच्छिन्नकण्डवृक्षा भ्रष्ट-	२३२
वरप्रासादयातास्तु	७२	वायुशावसमैरश्वै-	३०७	विच्छिन्नचापकवचः	३६४
वरमस्मिन् मृचे मृत्युः	३२०	वारणैः सप्तभिर्गोभि-	१३७	विच्छिन्ननासिकाकर्ण-	७
वरमालाधरी गन्ध-	१५३	वारणो मेवकान्तस्य	३४८	विच्छिन्नवार्धुमान् कारिचत्	२६६
वरमाधारमुत्सृज्य	१३५	वारणेन ततोऽन्नेण	३८०	विनहारं महातपासतः	१४६
वरवारणमास्त्र	१५२	वार्तान्विषो गतो याव-	२६०	विज्ञापनबोधोद्युक्ति-	२६८
वरज्जीवनमुद्याने	३३६	वार्ता समागता भर्तु-	३२६	विज्ञापयति देव स्वा	१५
वराक्षननगामानां	१५५	वार्यमाणोऽपि यत्नेन	२०२	विज्ञाप कपिलं रक्तं	१४१
वराटकाभदशना	२०	वार्हद्गतप्रसादेन	१२२	विद्धम्भमिदं कस्मा-	६४
वराहमहिषव्याघ्र-	२०	वालिखिल्यस्तु सम्प्राप्तः	१३२	वितत्य सकलं लोकं	२३६
वर्तते किमिदं मातः	८२	वालीति योऽत्र विरुधातः	२७०	वितापिर्विधिना ध्वस्तो	३७५
वर्ततेऽनुचितं वादं	८२	वासमानो सुदुः क्रूरं	१२६	विदग्धनगरं चाप	९
वर्तमानं महाशोक-	३४४	वासयत्युदकं कक्षि-	४५	विदग्धो विजयो मेरुः	६१
वर्षं रैस्तु महासैन्यै-	१८	वाहनावजसम्पत्ति-	३८६	विदेशगमनोद्युक्तं	८१
वर्षावातविमुक्तानि	२२३	वाहिनी श्रीणि गुरुमानि	३५८	विदेहा द्रु हृते पुत्रे	१२
वर्षाशीतोत्तपैर्वाँरै-	४११	वाह्योऽहं भरतस्यापि	१७३	विदेहैति प्रिया तस्य	२५
वलीना वर्तते बुद्धि-	४६	विशतिर्गोबनान्यस्या-	३५६	विदेहे घातकीलण्डे	६६
वह्नीभिर्गुल्मकैः स्तग्धैः	३१३	विशतिर्वासराणां च	३७	विदेहे पौण्डरीकाक्ष्ये	४०२
ववर्षं वायुपुत्रस्य	३१६	विकचास्यद्युतिं सीता	३२६	विद्यया तपनात्वं च	३६२
वधारीभूतेषु सिंहेषु	३७७	विकलीभूतनिशेषोच-	४१	विद्ययाऽनिलपुनोऽपि	३६२
वसन्ततिलकामिख्ये	१८५	विकस्युष्यसङ्घातान्	२२३	विद्यया षण्णलम्बासौ	४०३
वसुभूतिः समं तेन	१८४	विकस्ययनाम्भोज-	२०६	विद्याकवचयुक्तं च	३१८
वसुभूतिचरेणाय	१८७	विकस्वरमनोदेहं	३२०	विद्याकौशिकविख्यातिः	३६४
वस्तुना केन हीनोऽहं	२५८	विक्रान्ते लोळकः कालि	३६७	विद्याधरकुमारीणां	२६०
वज्रकाण्डितवितेन्दूना	२६१	विक्रीणोस्तथहुल्य माषा	१०४	विद्याधरमहामन्त्रि	४१२
वज्रालङ्कारमाल्यानि	१२६	विक्रान्ताः स च राजौष-	३२०	विद्याधरमहाराजे	२५०
वहन्ती चापमानं तं	२३२	विक्रान्तपुरुषाकुष्ठ-	४६	विद्याधरं समागत्य	४२
वहससौ दर्पमुदारमुख्यै-	२१३	विक्रान्त्ययं तथा तलै	४२	विद्यावत्विधिज्ञैर्य-	३०५

विद्याभूता सुराणा च	२२५	विनीता पृथिवी यस्य	१५७	विमुचिर्दक्षिणाकाक्षी	६२
विद्यामाहात्म्यनिर्मुक्ता-	३४	विनीताभिः कलाज्ञाभिः	७२	विम्बप्रवालरक्तोद्यं	३०२
विद्यार्जनोचितौ तौ च	१८६	विनोदः कण्टकः सत्यः	६१	विवतोऽवतरद् वीक्ष्य	२८६
विद्यालाभस्तयोर्नासी-	१	विनोदान् प्रस्तुतान् मुक्त्या	७४	विवत्तलं वरित्री च	३८१
विद्या वाभिमत लब्धुं	२२८	विन्ध्योऽयं निधिभिः पूर्णो	१३१	वियुक्तो बन्धुभिः प्रातु-	३६६
विद्युज्ज्वालाकुले कासे	१११	विन्ध्यस्य मक्तिसम्पन्न-	५२	विनोममरणव्याधि-	६०
विद्युज्ज्वालामुखैर्लम्बै-	१८२	विपञ्चो च विद्यायाङ्गे	३१	वियोगवह्निनात्यन्त-	१२८
विद्युत्फणीं बलः शीलः	३६७	विपादयितुमस्माक-	४७	विरक्ता च समात्यन्त-	१६३
विद्युत्संभावना योग्या	५४	विपुलस्तननम्राङ्गा-	२४१	विराधितः कुमारोऽपि	३०४
विद्युदङ्कः सुधी सोऽय	१२१	विपुले राज्ञसद्वीपे	२२४	विराधितनरेन्द्रेण	३७६
विद्युदङ्कोऽप्यय मित्र	१२१	विप्रलापं ततः कृत्वा	६०	विराधितोऽपरः कोऽपि	२६६
विद्युदधनेमवप्रेन्द्र-	३५३	विप्रस्य रूक्ष्या वाचा	१३४	विलक्षाः पार्थिवाः सर्वे	४३
विद्युद्वदनमारीच-	३८८	विप्रोऽवोचदुपायेन	१३७	विलक्षण च शोकात्तां	२२८
विद्युद्वाहिसुवर्णाञ्ज-	२७६	विबुद्धा तानपश्यन्तो	१२६	विलापमिति कुर्वाणा	२२८
विद्युद्वाहो मरुद्वाहुः	३६८	विबोधे क्वेचिदत्रोचु-	६०	विलासायापि ते सर्वे	२०८
विद्ये संप्राप्य सम्मान्य	३८३	विभावर्था तमिलाया	१६०	विवादो गर्विणोरेव	१७३
विधातुं महिमानं च	३२६	विभीषणं समुत्सार्य	३६३	विबाहसमये प्राप्ते	२०८
विधातुरथ सामर्थ्यं	८१	विभीषणकुमारेण	३८६	विविधयानसमाकुल-	४३
विधानदन्तिना सोऽपि	२६६	विभीषण न मे शोक-	३६७	विविधागोभिरापूर्णाः	३२२
विधाय बानकीं मध्ये	८६	विभीषणसमायोगे	३५६	विवेकहितास्ते हि	३३
विधाय तुङ्गानचलान्	२२१	विभीषणस्तृतीये तु	३६८	विवेश चिन्तयन्नेवं	३०
विधाय राज्य घनपापदिग्धो	१००	विभीषणागमे जाते	३५४	विशन् सिंहोदरस्यासौ	११४
विधाय वृषभादीना	१६३	विभीषणेन वत्राद्यैः	२६८	विशल्याहस्तसंस्पृष्टं	४१२
विधाययुषशाला च	३६	विभीषणोदितं श्रुत्वा	२६६	विशालसंज्ञमाहूय	४६
विधिच्छलेन केनापि	१४८	विशुः सूरपुरस्याय-	३६	विशालद्युतिनाभा च	३७५
विधिना पारणा कृत्वा	२०२	विभूर्तिं तस्य तां वाप्यः	२६३	विशालपङ्कजवर्नं	३
विधिना वारुणेनेमा	४०३	विभूतिमवितुङ्गा च	६१	विशालपत्रसंश्लिङ्गा	१०१
विधिरिव रतिदेवीं	१४	विमल चरितं लोके	३२४	विशालभूतिसज्ज	२६०
विधिर्वितापिताऽन्यान्य-	३७५	विमलाम्भसि पञ्चिन्या-	३३४	विशुद्धकुलजाताना	१६८
विधूय पद्मगुल-	२०१	विमानं चारुशिखर-	३०७	विशुद्धराज्ञसानूकाः	३६५
विधेः पश्य मना योगं	१४०	विमानं परमच्छाय-	२७४	विश्रवः कस्यचिज्जाया-	३६३
निजसं वज्रशालस्य	३३६	विमानं सुमहत्स्य	३०१	विश्रवचेतयोर्वावत्	२४७
निनयाद्यैर्गुणैर्युक्तो	३११	विमानमर्कसङ्काशं	३६५	विषमप्रावसङ्घातं	१८०
निना ताभ्या विनीताभ्या	६३	विमानमुत्तमाकारं	३६८	विषमानधिकुर्वाणः	६३
विनाशमगमत्तस्याः	२२६	विमानवाहनघण्ट्यः	३३०	विषयेषु वदामयत्तं	५०
विनिमज्जन् सुदूरयायिना	२१६	विमानसदृशैः रम्यैः	२८८	विषाणक्रोडितसंक्र-	३६१
विनिशम्य वचस्तस्य	३६०	विमुक्तं बन्धुभिः कष्टं	२४६	विषाटं सङ्गता भूयो	३२७
विनीत धारयन् वेप-	११६	विमुक्तनिश्चेषपरिग्रहाशं	१६६	विषाटमनुलं देव-	२४६
विनीता च परित्यज्य	१५७	विमुक्तहारमुकुटं	१६५	विपिकं पाताले क्रचि-	२१७

विषेणात्यन्तपरमं	४६	वैष्णवपुरस्वामी	३४८	शक्नोति मुखधोः पातुं	२५३
विष्टपानन्दजननी	५२	वेश्यां कामलता दृष्ट्वा	१११	शक्रप्रासादसङ्काश	३४२
विस्तीर्णां प्रवरा सम्य-	३५१	वेश्याचरणयोश्चासौ	१६२	शक्रभूतिरथागादी	३५८
विस्तीर्णेन किमुक्तेन	२	वेष्टितः किङ्करैः क्रूरै-	३४२	शक्रस्येव शक्तौ पाशै	४१२
विस्मये जगतः शक्ता-	३२०	वैदेहि तव न ज्ञातः	३३०	शक्रायुधश्रुतिर्यत्	१२०
विस्मिन् गोपुराग्रस्थो	११८	वैदेहि भयसम्पन्ना	१८१	शङ्कितो धातकीद्वीपो	२६७
विस्मिन् सुचिरं रामं	३०४	वैदेही सज्जरेवोचे	१७६	शङ्खेव रहित शक्र	३०३
विहरन्तो ततः क्षोणीं	१७०	वैदेह्याः शरणं देव	६६	शतानि वरनारीणा	३५
विहाय लौकिकं मार्गं	१४२	वैदेह्या सज्जतो रामः	२२४	शतानि सप्तविस्तीर्णां	२८८
विहितातिथिसम्मानो	१०६	वैनतेयाख्ययोगेन	३६२	शङ्खन्तोऽपि सुसंभ्रान्तो	४०६
वीक्षस्व माहात्म्यमिदं	६६	वैराग्यादथवा ताते	१५८	शङ्खन्दमकृतच्छन्दौ	१७६
वीक्षितं परमं रूपं	६२	वैवस्वतः शशाङ्को जु	१०५	शङ्खशब्दममृष्यन्तो	१८
वीक्ष्यन् वं वासरेः स्वल्पैः	२६६	व्याक्षेपो मे कुतः कश्चि-	४६	शनैः प्रसन्नता याते	१५३
वीर्या च सन्निधायाङ्के	१८१	व्याघ्रयुक्तैरिमैस्तुगै-	३६४	शनैः शनैस्ततः कर्म	२४
वीणातन्त्रीसहस्राणां	२६६	व्याघ्रसिद्धजन्त्रादि	८६	शनैर्विहरमाणो तौ	१७८
वीणादिवादनैस्तासा	२८१	व्याचाननैः कृतोत्पात-	२५६	शब्दोऽयं शोकसम्भूत-	२६०
वीणावेणुमुदङ्गादि	१५३	व्यापाद्यते न किं दृष्टः	३४०	शम्भूकः साधितो येन	२३३
वीरपत्नी प्रिय काचि-	३६१	व्याप्ताशेषवर्गत्कीर्तिः	१६६	शम्भूकस्य वध युद्धं	२६६
वीरा योद्धुं दत्तचित्ता	३६६	व्यालज्जलाद्वा विषतो-	६६	शम्भूको नाम सुन्दश्च	२२५
वृक्रेण मारिता मेघी	२०७	व्रजता बन्धुदत्तेन	२८५	शम्भुः स्वयम्भुश्चन्द्रार्क-	३७४
वृक्षैर्वियोजिता वलय-	३३६	व्रज तावत्स्वमारुह्य	६३	शयनान्यासनैः सार्क	१६६
वृताः सामन्तचक्रेण	३४८	व्रजति विधिनियोगा-	३६५	शयनासनवादित्र-	२११
वृत्तान्तमिममालोक्य	४२	व्रजतोश्च तयो रग्रा-	१४२	शयनीयगतैः पुष्टै-	४०४
वृत्तान्तमीदृशं श्रुत्वा	२०८	व्रजन्तो लीलया युक्ता	१०३	शयिताश्च यथास्थानं	२६६
वृत्तान्तभ्रवणात्तस्मा-	७१	व्रजन्तो वाहनैश्चित्रै-	३५४	शरवर्जितरच्छत्र-	३८१
वृत्तान्तेनामुना कस्य	२६६	व्रज स्वास्थ्यमिमं लेखं	१३	शरत्काळः परिप्रातः	५४
वृत्तान्तोऽयं च सज्जातो	२०६	व्रजानय जनन्यौ नौ	२२१	शरधारा क्षिपत्यस्मिन्	२७८
वृथा रोदिषि किन्त्वेत-	३२१	व्रतज्ञानतपोदानै	६८	शरशक्तिशतवर्णीभि-	३२०
वृथाबोचत मा किञ्चि-	७३	व्रीडा व्रजति मे चेतः	२६६	शरीरच्छायायां तुल्याः	७२
वैगनिक्षिप्तनिःशेष-	२८२	[श]		शरीरवद्वामिब मन्मथस्य	४१३
वैगनिर्मुक्तदृङ्गाराः	११७	शकुन्तयो मुगाश्चामी	१०८	शरीरमात्रवारी तु	५
वैगेनोत्पततस्तस्य	३३८	शक्तिः पलायिता वनापि	४०१	शरीरस्थातं च विधाय	२२०
वैणीव्रज्यच्युतिच्छाय-	३४५	शक्तिं दधतापि परा	२६८	शरीररथमुन्मुक्ताः	१८७
वैणुतन्त्रीसमायुक्तं	३२७	शक्तिं यः पाणिना मुक्तां	१७२	शरीरिसार्थ एतस्मिन्	१८६
वैणुनादाहृष्टासाश्च	३६८	शक्तितोमरचक्रासि-	३३७	शराः शरैरुद्यन्त	३२०
वैत्रैः श्यामलतामिश्र	२१२	शक्तिमुद्गारचक्राणि	२३५	शरे निहितदृष्टिं तं	४१
वेदिकापुण्डरीकामैः	३०८	शक्तिशक्तित्वच्छत्र	४०१	शर्वरी प्रणयतां यात्वा	१४८
वेदितागमनस्तावद्	२६६	शक्त्या मुञ्चत पापानि	२५६	शल्पभूतोऽस्य विश्वस्य	२६७
वेभिर् निर्मलशीलाढ्या	३०६	शक्त्या हतं गत भूमि	३६६	शशिमण्डलसङ्काश-	३७६

शास्त्रान्वकारिते जाते	२३७	शैलामा द्विरदाः पेतु-	२३५	श्रुत्वा धर्मं मुनेः प्रातः	३
शक्तिवृन्दावृते-तस्मि-	१७२	शोकविस्मरयो हेतु-	१३	श्रुत्वा नरम्पुत्रस्य	१४८
शाकामलललाकान्त-	७२	शोकाकुलजवाकीर्णं	३००	श्रुत्वा पङ्कजरागायाः	३०१
शालाकेतरिचहाना	३७८	शोकावर्त्तिमग्नना तो	३८	श्रुत्वा परचमूर्त्य-	३६३
शालामृगध्वजो तावत्	३६६	शोको हि नाम कोऽप्येष-	२४९	श्रुत्वा परवलं प्राप्तं	३०६
शातकीम्भानिमान् कुम्भान्	४०६	शोचत्पुन्युकदीर्घाण-	२६४	श्रुत्वापीद सुतारोक्तं	२७३
शार्दूलसङ्गतैस्तुङ्गै-	३६७	शोभयापहृतस्तस्या-	२३०	श्रुत्वा प्राप्तं हनूमन्त-	२७४
शार्दूलस्ताडितः पूर्वं	३७५	शौर्यगर्वाविवायुक्त-	३६६	श्रुत्वा सिंहस्वनं पद्मो	३२६
शासन यच्छ्रुता नाथो	१३१	शौर्यमाहात्म्यस्युक्त	३०३	श्रुत्वा स्वं स्वं हतं नाथं	३७४
शासनस्य विनेन्द्राणा-	५७	शौर्योत्तिगर्वसमूहा-	३६५	श्रुत्वा स्वं स्वं कश्चि-	१७१
शास्त्रानुगतमस्तुङ्गं	३५१	श्येनयुवैप लघुभ्रमपङ्को	२१४	श्रेयस्कपुरस्तामी	४०६
शियिलीभूतनिःशेष-	३२८	श्रद्धासवेगहीनाना	६८	श्रेष्ठेन विदुषा तेन	२८७
शिरसो मृगडनैः स्नानै-	६	श्रमे कृत्वापि भूयासं	११	श्रेष्ठं समुद्यतस्यैवं	६७
शिरीषकुसुमासारं	४११	श्रमणा ब्राह्मणा गावः	१३४	श्लाघामित्यस्तिवीर्यस्य	१६७
शिल्यामिह ये सिद्धा-	२६६	श्रमादिदुःखपूर्णस्य	६	श्वसत्यशुगणस्तीक्ष्णः	४०४
शिव सौम्याननो वाक्य	३५१	श्रावकोऽयं विनीतात्मा	२०६	श्वसुराभ्या ततो ज्ञात्वा	२८४
शिरोर्विपफले प्रीति-	३४	श्रीनन्द्यावर्तनगरा-	१५५	[प]	
शीतल तं समाप्राप्य	४१२	श्रीमास्तावन्मरुतपुत्रः	३३२	वटखण्डा यैरपि क्षोणी	१६५
शुच्यङ्गया च वैदेह्या	२००	श्रीमानयमतौ राज्ञा	३०३	वडभिः संवत्सरैः सप्तै-	३१५
शुद्धात्मा भगवान्नुचे	६०	श्रीमान् जनकराजस्य	५८	वडरसं स्वादुसम्पन्नं	७२
शुद्धात्मा श्रूयते सोऽय-	११५	श्रीप्रभामण्डलोऽप्येक	५६	वडरैरुपदशैरच	३३३
शुभे काश्चिद्व्यतीक्ष्णस्य	१२८	श्रीरत्नश्रवसः पुत्रः	३५३	[स]	
शुशुभाते तदात्यन्तं	२५०	श्रीवत्सकान्तिसम्पूर्ण-	३०३	संक्रुद्धभोगिमोगोभा	१७४
शुश्रूषा भवतः कृत्वा	१६२	श्रीशैलप्रमुखैर्वीरै-	३८५	संक्षुब्धास्तनयास्तस्य	४१०
शुष्कागकृतसरोधे	३१३	श्रीशैलस्य वियत्युच्चै-	३१३	संक्षुब्धतीव्र भूः सर्वा	१७६
शुष्कपत्राशिनस्तत्र	१०१	श्रीसंबधो जयो भानुः	३६	सख्ये पितुर्वचं दृष्ट्वा	३१६
शरकोविदगोष्ठीयु	३३१	श्रुत केसरिज कुच्छं	३०८	सगीतेन समुद्युक्ता	१६३
शराः परम सामन्ताः	३५३	श्रुत तव न तस्मिन्ना	१३६	संघारक्षाम्बिताम्भोद-	३६८
शृणु देवि यतोऽवस्था-	३७	श्रुत वेत्ति विनेन्द्राणा	४६	संज्ञा प्राप्य ततो दृष्टिं	२३६
शृणु नाथ । दयाधार ।	१६२	श्रुतवृद्धिरिति ख्यातो	१५७	संदष्टोद्यौ महासत्त्वौ	२७३
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यन्मा-	६७	श्रुतश्च तेन वृत्तान्तो	२३	संधानवर्जितान् बर्णान्	४८
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि रामस्य-	१५	श्रुताः सङ्गीतनिखाना	६२	संध्याप्रकृत्संकाशान्	२६
शृणु शृण्वति तत्राय	१७१	श्रुत्वा केवलिनः पद्म-	१६५	सन्नद्धवदतुणीर-	३६८
शृणु सारथ्यवृष्टेन	७८	श्रुत्वा चैर्विध तं च	२०७	संन्यासेन तनुं त्यक्त्वा	६६
शृणु सुन्दरि सद्भाव-	२५५	श्रुत्वा तं मिथिलाधीशः	१५८	संप्रयुज्य प्रणामं च	४००
शृण्वन्ति मृत्तिकावत्या	२८४	श्रुत्वा तदिन्द्रविद्वाक्यं	३५२	संभाषितः स रामेण	६४
शेष मातृजनं नत्वा	८०	श्रुत्वा तद्वचनं तस्या	२३०	संरक्ष राजपुत्रीं त्वं	२३५
शेषाः कन्या यथायोग्यं	४१२	श्रुत्वा तद्वचनं स्मिन्वा	१३५	संरक्ष जनकं प्रीतः	१६
शेषामिह ततो मूर्ध्नि	२८६	श्रुत्वा तावदलं तारं	२४६	संरम्भवशसम्कुल-	३१६

संहृतो मासमात्रोऽस्य	२८	स तयोः प्रणतिं कृत्वा	१२१	सम्मानैर्बहुभिः शश्वत्	२६७
ससारधर्मनिर्मुक्तान्	२६५	सतालशब्दं जनकाल्मजाया	२१०	सपत्नीभिरपि प्रीत-	४७
ससरेऽतिचिरं भ्रान्त्वा	२०५	स तूष्णं घनुराढाय	७६	सपुरस्कारमारोप्य	२६४
संसारे न परः कश्चिन्	७१	सत्यं यदीदृशः ख्यातः	२६०	सप्तकद्वयाद्वसम्पन्ना	३६८
ससारे सुचिरं भ्रान्त्वा	६०	सत्यक्रेतुगणीशेन	६१	सफेनवलया लसत्पङ्कटवीचि-	२१६
संसिद्धसूर्यहासश्चे-	२२८	सत्यव्रतधरः सग्भि-	६६	समानुरञ्जनी यावत्कथेयं	७६
सहितामिव कामेन	२३६	सत्यश्री कमला नैव	३४६	सभाया पितुरस्माकं	२०८
सकम्पहृदया चीता	४१	स त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य	१२०	सभावापीविमानाना-	३३८
सकलविप्रपतिर्गतकीर्तयः	४३	स त्वं नाथ जराचीन	५०	सद्भावजापने लब्जा	१२६
सकपायं तपः कृत्वा	६	स त्वं निष्कण्टक तात	७८	समं करतलैर्हन्तु-	३३२
सखत्कारं मुहुः कुर्वन्	४८	स त्वं भूतिभृगो जातो	७०	समं किं परिवर्गेण	१२४
सखि पश्यात्थ वीरस्य	११६	स त्वं रत्नजटी पूर्व-	२८७	समं कुक्षिकर्णेन	१२४
सखी त्वं मूर्ख्या तस्या	७६	सत्स्वत्यागादिवृत्तीनां	१८	समं दशाननेनास्य	२६८
सख्योऽत्र वनमालायाः	१५१	सत्सुग्रीवो भवान्यो वा	२७५	समं पुत्रसहस्राणां	४०५
सख्योऽनेन पथा दृष्टौ	१७०	स दध्यौ नीयमानः सन्	१३१	समं साहसयानेन	२७८
सप्रावपिः करैर्मनो-	१०७	सदपैर्नैगतेयैश्चै	३६६	समक्षं लक्ष्मणस्याथ	२८७
सङ्क्षयेयं तथोर्थवद्	१२१	सदा करोति सर्वस्मै	३२७	समन्तकुसुम ताव-	२६२
सङ्कटोत्कटतीक्ष्णाग्र-	३१७	स दृष्ट्वातिशयोपेतौ	२०१	समयं शृणु भूनाथ	३६
सङ्कुल चञ्चला तेन	३०२	सद्गन्धं विपुलं स्वच्छं	३३३	समये नारदस्तरिमन्	२३
सङ्ग्रामाभिमुखो नाथैः	३६२	सद्भावात् प्रणयोत्पत्तिः	१	समयेऽस्मिन्नतिश्रान्ते	२२१
सङ्ग्रामे तारको नष्टो	२६७	सद्भूतगुणसस्त्रीचै-	१२१	समवे हि कृते तेन	३५६
सङ्ग्रामेऽभिमुखो भ्राता	३६४	सद्यो विनयनप्राक्तो	१७४	समयैः सान्त्वयित्वेति	१६६
सङ्ग्रामे विक्षतः पृष्ठे	३६१	सद्वितीयं ततो दृष्ट्वा	१५०	समर्थतपतिशशि	३३२
सङ्घातमृत्सुमस्माक-	३८१	सनत्कुमाररूपोऽपि	२५८	समवगम्य जनाः शुभकर्मणः	४४
स चाह च सुतस्याशु	१३	स नाबानाद् द्विप न क्षमा	३८०	समवलोकितमुत्तमविग्रहे	४३
सचिवाः सचिवैः साकं	३७५	सन्तुष्टोऽङ्गगतं ताभ्यो	३२६	समस्तं च समाख्यातं	३११
सचिवैः परमयुक्तः	४०६	सन्त्यस्मिन् विविचा भ्रात-	२२०	समस्तैभ्यो हि वस्तुभ्यः	१७१
सन्चेष्टाः पूर्यमानास्ताः	१२३	सन्त्रासकम्पमानाङ्गा	८८	समाकल्पितवृत्तोऽय-	१०५
सन्तर्ज्जुभिर्मुक्ता	१०१	सन्धानं शरं वीक्ष्य	१३०	समादधे सखलपाणि-	२४
सबलाविव जीमूतौ	१८३	सन्दिदेश च सुग्रीव	३०७	समाधानोपदेशेन	१६१
सबायो दृश्यते व्याया-	१२२	सन्दिहाना निजे नाथे	२७४	समाने जानकी तरिमन्	३५२
सज्जनामोदवाकोय-	२८३	सन्देहतापविच्छेदि	६०	समासाशनकृत्यञ्च	२०६
सज्जिता परमा भूमिः	१६५	सन्धिषु प्लिङ्गुभ्यानेषु	६	समायासुपविष्टोऽसौ	३५४
सञ्चरन्ती तमुद्देशं	२२६	सन्ध्या रञ्जिता प्राची	२५६	समालम्ब्य जिनाय गन्धैः	६७
सक्षिन्त्येति कृतप्रान्ति-	२३१	सन्ध्याकारः सुवेङ्कच	२६६	समालोक्य कुमारस्ता	२६
सञ्छाद्य रोदसी सैन्यै-	३६५	सन्ध्याकालोऽत्र ये केचित्	१६१	समावास्य समीपे च	११२
सततं चिन्तयन्ती त्वां	३४५	सन्धारकाभ्रसङ्कार्श	३२२	समाश्वास्य च सर्वत्र	२४०
सततारब्धनिःशेष-	१६७	सन्ध्यालोकललामोष्टी	५४	समाश्वासमिमं नीत्वा	१४३
स तथा परमा श्रद्धा	२०६	सन्मानविशिखैर्विदो	१४५	समाश्वास्य च संक्रुद्धो	२४०

समासाद्य च तैः सर्वैः	२७८	सर्वबातिगता जीवा	६	सशक्त्यस्य दरिद्रस्य	११२
समाहितमतिर्नाना	३८०	सर्वशोकं निश्चयैत-	२६४	ससागरा मही देवि	३३२
समित्यलप्रसूनार्य	१०२	सर्वतैजस्विमूर्धनि	३५६	सस्यन्दं दक्षिणं चक्षु-	२६६
समिदर्थं प्रयातेन	१३६	सर्वतो मरणं दुःख-	४६	सस्यानि कृष्टपञ्चानि	१०४
समीपता च सम्प्राप्तो	१८७	सर्वत्र जगति ख्यात-	२६५	सस्यानि बहुरूपाणि	८७
समीपीभूय चोवाच	२५८	सर्वथा जिनचन्द्राणां	४११	सस्यैर्बहुप्रकारैश्च	२१२
समीपीभूय दूतश्च	२७६	सर्वथा परमोत्साहो	२३६	सस्मिता लोकितैस्तस्या-	१६२
समुद्रतालकैर्ममै-	१८०	सर्वथा प्रातरुत्थाय	२६१	सहस्रमतिनामाथ-	२६७
समुद्रजलमध्यस्थ	२४८	सर्वथा शुद्धमावांश्च	२६५	सहस्रमधिक चान्यत्	४१०
समुद्रावर्तभूत्पूर्व-	३५४	सर्वदा सुलभा पुंसः	२६२	सहस्रसख्यतुर्वाणा	२६१
समुद्रावर्तसन्नेन	३७	सर्वप्राणिहितोऽवोच-	६०	सहस्रामरपुण्यस्य	२२६
समेति बन्धुलोकोऽस्य	६५	सर्वभाग्येन तौ रत्न-	३५५	सहस्रैरागतोऽष्टाभि-	१५६
सम्यग्द्विरेवमाद्याभि-	२६१	सर्वभूतहितो नाम	५१	सहायराहित्येन	२८४
सम्बूष्य च पुनर्भुक्तः	३४६	सर्वमक्षप्रवर्तयु	१४०	सहायैर्मृगयस्य	३३७
सम्पूर्णचन्द्रवदन	८४	सर्वमेतत् समासन्न-	१२६	स हि रावणराष्ट्रज	२६५
सम्पूर्णाना परममहसा	५३	सर्वलोकस्य नेत्राणि	१६१	सह्यानन्दमतेः शिष्यः	१४६
सम्पूर्णैन्दुसमानोऽपि	२३३	सर्वविद्याधराधीश परा-	२५७	साक्षाश्यपुरनायोऽय-	३६
सम्प्रहारैस्ततो लभ्य-	३०६	सर्वविद्याधराधीशस्त्रि-	२३३	सार्कं विजयसुन्दर्या-	१६६
सम्प्रहारो महान्-जातस्तयो-	२७६	सर्वव्यापी समुद्रिजो	३४५	सार्कं विमलया देव्या	१६०
सम्प्रातः परम क्रोध-	१६१	सर्वशास्त्रार्थबोधाम्बु-	२३०	सागारं निरगारं च	१०६
सम्प्रातश्च महाकालः	५१	सर्वसारश्च दुर्बुद्धिः	३६७	सागारधर्ममपरे	२५६
सम्प्राप्य च चिरात् संजा-	३६६	सर्वसौन्दर्ययुक्तस्य	३०४	सागारधर्मरक्तसु	१४१
सम्प्राप्य साध्वसं यस्मा-	१५७	सर्वस्मृतिमहाचारी	२३६	सागरान्ता मही यस्य	२८७
सम्पापणैः कुटीरानैः	१०१	सर्वस्यामवनौ ख्यातः	५७	सागरोदारमस्तुत्र	३५६
सम्प्रान्तमानसः किञ्चि-	३५१	सर्वदेवेनापि यः पूज्यो	३४०	सार्धं योजनमेतस्मा-	१७६
सम्प्रान्तो जयमित्रश्च	३६७	सर्वाः प्रियास्तदा तस्य	४५	साम्राभिश्चास्त्रास्त्राभिः	३५३
सम्पदं च व्रजन्ती ता-	१८७	सर्वाकारसमानीतो	२८१	सा जगौ जातु पञ्चस्य	१३७
सम्पददर्शनमात्रेण	६१	सर्वातिथ्यसमेतास्य	१०२	सार्धो धर्मेण यो युक्तो	१४४
सम्पददर्शनगत् स-	६६	सर्वादरसमेतश्च	७१	साधनेन वदमेण	१५६
सम्पददर्शनहीना या	१६६	सर्वानामन्य विन्यस्य	६६	साधुगोश्रावकाकीर्णा	१६
सम्पददृष्टिः पुनर्बन्धुः	८	सर्वासामेव शुद्धिर्ना	८४	साधुवचसुनेः पार्श्वे	१६१
सवेष्टय सर्वतो नागैः	३६२	सर्वेषा भूभृता नाथ	७४	साधु दानाद्विरिञ्चेने	३७१
सख्याश्च सटे कालं	५१	सर्वेषामेव बीजाना	१५२	साधनानि भयस्तेषा	६१
सख्युन्निद्रपञ्चादि-	२८१	सर्वोपायविधानेन	२६७	साधुपूर्वमर्चं श्रुत्वा	१६४
सगसि पङ्कजाढ्यानि	२२३	सख्यज्जादिताम्बुलं	१६६	साधुप्रसादवत्तस्य	१०६
सगत्यभूनि रम्याणि	१३७	सविमुच्यानुवाच्यैर्न	१५५	साधुम्यामुक्तमित्येतं	२०६
सत्सर्ववदुर्गुणैः	४	स व्रजन् शुद्धणावाचि	२०७	साधु साधु त्वया चित्रं	१६५
सर्वान् सीता समुद्दिश्य	३२७	सशस्त्रतुर्नित्वान-	४३	साधु साध्विति देवाना वभूव	४१
सर्विषा जिननाथाना	६७	सशब्देरायतैः स्थूलै-	३४२	साधु साध्विति देवाना मधुरो	२०१

साधु साध्विति संस्मृत्य	३१६	सिंहोदर इति ख्यातो	१०६	सुग्रीवरूपसंयुक्तः	३२६
साधुसेवाप्रसादेन	१६४	सिंहोदरप्रभृतयो	१३२	सुग्रीवरूपसम्पन्नं	३०५
साधूनामग्रतः पूर्वं	२३८	सिंहोदरमहिष्योऽथ	११६	सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा	२७४
साधूपसर्गमथने	३३६	सितक्रीतिसमुत्पत्ति-	८१	सुग्रीवाकृतिचौरेण	३००
साधोः कमलगर्भस्य	७०	सितचन्दनदिग्भागा	२६४	सुग्रीवाकृतिनिर्मुक्तं	२७७
साधो केनासि पृष्ठस्त्वं	३५२	सितानामातपत्राणा	३०१	सुग्रीवागमने तेन	२७०
सा निर्वाणशिला येन	२६६	सितासितारुणम्भोज-	२१२	सुग्रीवाद्याः समासीना	२६७
सानुकम्पौ स्वभावेन	३७१	सिद्धाः सिद्धयन्ति सेतस्यन्ति	६८	सुग्रीवेण प्रतीष्टश्च	३०२
सानुजः सानुजं पद्मो	२१	सिन्धवः स्वच्छकौलाळा	२२३	सुग्रीवोऽप्यभिनकात्मा	२७०
साऽन्नवीत् समतिक्रान्तं	३२२	सीतया सह रामस्य	३२२	सुग्रीवेण प्रसार्यन्तां	२६७
सा भामण्डलचन्द्रेण	४१०	सीतया शोभितं पार्श्व-	१०६	सुचिरं देवमोगेऽपि	७७
सा भामण्डलचक्राय	३२	सीतया सहितस्तस्यौ	१२६	सुचिरं प्रथितं लोके	१२७
सामन्तैरथ सन्नद्धै-	११७	सीता चाक्लिष्टसौभाग्या-	१६६	सुतं स्वैरं समादाय	२८४
सामन्तैर्वहुभिर्गत्वा	६१	सीता तत्र विशुद्धाक्षी	६०	सुतरां तेन वाक्येन	१४७
सामाधिकं पुरस्कृत्य	१३८	सीतापतिस्ततोऽवोचदिति	२२०	सुता वनकराजस्य	२६०
सामोरणित्रयः श्रुत्वा	३४५	सीतायाः शोकतप्ताया	२५२	सुता तु द्रोणमेवस्य	४१२
सामौहैर्बुजभेदभूतैः	६७	सीताया वदनाम्भोजं	३०५	सुतारामवनद्वारं यो	२७४
सायके रविहासाख्ये	३२६	सीता लक्ष्मीवत्सखैव	८६	सुतारैति ततोऽवोचत्	२७३
सा यावदगृहीच्छक्तिं	३१६	सीताशरीरसम्पर्क-	२८१	सुतारौ सङ्गता वल्मी	१७८
सायाह्ने सौम्यवपुषो	२६६	सीता सीतेति कृत्वात्य	२६४	सुतैर्दशरथोऽमीभि-	३६
सारङ्गदयितामिश्रच	२६३	सीतोवाच कुशीलस्य	२५८	सुतोऽभूद् भद्रधारिण्यो	६६
सारङ्गैरुपित सार्व	१३४	सुकुमारशरीरोऽसी	२६२	सुतो यस्याङ्गदामिष्यः	२७१
सारैरेवंविधैर्वाक्यैः	३८	सुकैतुः प्रतिबुद्धः सन्	२०७	सुदीर्घोऽपि तयोः कालो	१७८
सा लक्ष्मणकुमारेण	२६६	सुकैतुरग्निनेत्रश्च	२०७	सुदुर्लभमिदं प्राप्य	३५२
सा विद्यावल्लगम्भीरा	३१६	सुकैशतनयाः पूर्व	३४८	सुदुष्करं विगोहानां	१०६
सावोचप्रिय बन्ध्यासि	११	सुकृतं दशवक्त्रस्य-	३४०	सुनिश्चितानामपि सन्नराणा-	३७०
सावोचदस्तु नामैवं	११	सुखं प्रसादतो यस्य	३३०	सुन्दरि पश्य वराहं	२१४
सावोचन्मधुरैर्वर्णैः	१६१	सुखं संवसतात्वेष्टं	२४७	सुपीवरसुजो वीरः	३६८
साहं दुःखसहलाणां	२३३	सुखशीतो ववी वायुः	३३५	सुपोवरसुजो वीरो दुर्द्धर-	३६०
साहं न कस्यचिच्छ्रया	४११	सुखेन च प्रसूता सा	५७	सुप्तं तमसिना हत्वा	१८४
साहं पूर्वकृतात् पापाद्	२२६	सुखेन पालिता क्षोणी	५०	सुप्तस्योत्थाप्यमानस्य	४०८
साहमस्यामस्याया	३२८	सुखेन प्राप्य निद्रां च	३८५	सुप्ताजगरनिश्वास-	१०२
सिंहयुक्तं समारूढः	३६४	सुखोदधौ निमग्नस्त्वं	३५१	सुप्रभा नाम ये माता	४००
सिंहवारणशार्दूल-	१३८	सुगन्धिभिर्महाम्भोजैः	२६४	सुभद्रो मुनिभद्रश्च	१५६
सिंहव्याघ्रसुखैस्त-	१८२	सुगन्धिमालयवस्त्राद्यै-	३०४	सुभूमश्चक्रभृद् भूत्वा	१४४
सिंहसम्बृद्धवाहोद-	३७४	सुगुप्तिभ्रमयोऽवोचद्	२०२	सुभूरिचरितं पाप	२०१
सिंहाना भीतिजननं	२४०	सुग्रीवः सचिवैः सार्क	३५७	सुभृश तेन वह्निः स	३१४
सिंहाविन महारोपी	३१०	सुग्रीवं कैकुनगर-	२६७	सुभहान् भृगुरेकत्र	१२३
सिंहे करीन्द्रकीलाल-	१५८	सुग्रीवमेव सुग्रीवो	२७६	सुमित्राजस्ततोऽवोच-	२४७

सुमित्राननयोऽपृच्छत्	२७१	सोऽवोचत् कथमित्याख्यं	२८४	सौमित्रिगदद् भद्रे	१६६
सुमित्रानन्दनं कुब्जं	३५२	सोऽवोचत् कुन्दनगरे	१११	सोमित्रे किमिदं क्लीबे	१३४
सुमित्रासुनुना चोक्ता	१२८	सोऽवोचत् पश्यतोदारं	१२०	सौम्यः क्रौर्यविनिर्मुक्तः	३२६
सुरतायासखिन्नाङ्गा	८६	सोऽवोचत् सद्य उत्तमो	१७	स्कन्धावारमहासार्थ-	१२६
सुरुगशुचिर्वाङ्गा-	२२५	सोऽवोचत् सर्वमेतत्स्यात्	३२	स्तनद्वयसमुत्तीर्णं	३६१
सुरेन्द्रकीर्तितोदार-	३५	सोऽवोचत् साहसगतिं	३१५	स्तनेष्वप्सरसा पाणि-	६२
सुरेन्द्रगणिकातुल्यं	१६१	सोऽवोचत् सुहृदं प्राप्य	१२२	स्तन्येन वर्धितं यस्या	६
सुराफाग्रेर्मृदङ्गानां	२८	सोऽवोदय दिवस-	१७६	स्तवकैषु सुजातेषु	२८२
सुरार्माया समारोप्य	१४६	सोऽवोचदद्य मे मासः	४००	स्त्रियोऽय नारदं मत्वा	२६
सुपेणो नलीनी च	३७७	सोऽवोचदुपलैस्त्र-	८०	स्त्रियो मंगलहस्तास्तं	१७६
सुहृच्चन्द्रगतिरुचे	३२	सोऽवोचद्वधिते जात-	११	स्त्रीणां कुतोऽयथा शक्ति-	१६६
सुहृदाज्ञाप्रवृत्तय	३०८	सोऽवोचद्दीयता मद्य	२६१	स्त्रोणा परिहरन्तीना	३६३
सुहृद्भिर्भ्रातृभिः पुत्रे-	२८६	सोऽवोचद्दूरतः स्थाना-	१०६	स्त्रीहेतोः क्षणमात्रेण	३५१
सूचयत्यथवा तस्य	१५७	सोऽवोचद्देव जानामि	४०१	स्थानं दुर्गं समाश्रित्य	४
सुता तावदियं देवी	६	सोऽवोचद्देव पश्यामि	१०४	स्थानभ्रंश परिकलेश-	३
सूढगेहसमेतानि	१६६	सोऽवोचद्देवि नानेन	११	स्थापयित्वा कृती सीता	१६१
सूर्यज्ञप्रक्षतपः कृत्वा	७१	सोऽवोचद्देवि निद्रा मे	१११	स्थापयित्वा धनुर्वर्म	८३
सूर्यहासधरेणापि	२६६	सोऽवोचद्देवि मा शङ्कां	११	स्थापितो बन्धयित्वाऽसौ	१६३
सूर्यालोकेहतच्छाया	४०४	सोऽवोचद्देवि विज्ञाप्य	२५५	स्थितं फुल्लनगस्योद्ध्वं	२६२
सूर्योदयामृतमिषयाः	३५७	सोऽवोचद् या समुद्दिश्य	२८४	स्थितश्च यत्र ससिद्ध-	२२७
सेनापुरेऽय दीपिन्या	६८	सोऽवोचद् यो मया मुक्ता	१७३	स्थितास्त्रैलोक्यशिखरे	२६५
सेयं सिद्धगतिः शुद्धा	६७	सोऽवोचद् विप्रयोगान्मे	१२५	स्थितामूर्द्धसु हर्म्याणां	११६
सेयमत्यन्तशीलाढ्या	२८५	सोऽवोचद् द्रष्टुमिच्छामि	१७२	स्थितास्तत्र यथान्यायं	३२२
सैहं पञ्चावढातस्य	३८३	सोऽवोचच्चगरस्यास्य	१७५	स्थितिरेषा जगन्नाथ	१४४
सैह सैहेन पादातं	३८८	सोऽवोचच्च ममायत्तं	८४	स्थितो द्वादशवर्षाणि	२२८
सैकतमस्या राजति चेदं	२१८	सोऽवोचच्चान्न भुञ्जेऽह-	११४	स्थित्वा सिंहोदरस्याग्रे	११०
सैतस्मिन्नगरे देशे	४०५	सोऽवोचच्चमयि निर्वाणं	१६३	स्थूरीपृष्ठं समावृज्य	१६८
सोऽपि तस्याः परं वश्य	२०३	सोऽवोचच्चमृत्युकन्या सा-	१७१	स्थूलमुक्ताफलसग्भि-	२११
सोऽपि बह्विप्रमस्तस्मा-	१६३	सोऽहं दर्शनमात्रेण	१३०	स्थैर्यनिर्जितशैलेन्द्रः	३५
सोऽपि श्रामण्यमासाद्य-	१४४	सोऽह पुनर्भवाद् मीर	१६६	स्नसालालकसंश्लिष्ट-	१८६
सोऽप्याकर्णसमाकृष्टान्	३७६	सोऽहं भवत्प्रसादेन	५७	स्नानक्रौडोचितारम्या	२६२
सोऽब्रवीन्न मया ज्ञात	१४३	सोऽहं महात्मा भुवने	२२	स्नानालंकाररहितैः	१०७
सोऽय नीतो विशाल्याया-	४०६	सोऽहं स्वमानमुन्मूल्य	१६५	स्नानोदकमिदं तस्या	४०२
सोऽयं यथा श्रुतो नायः	१५०	सौदामिनीत्वस्यास्य	५०	स्निग्धचलनसङ्काशा	३६५
सोऽय लङ्कापुरीनाथो	३२६	सौधर्मेशानदेवामौ	१५३	स्निग्धेन चक्षुषा पश्यन्	८०
सोऽयं समासाद्य परां विभूतिं	१३२	सौधादवतरन्नेगा-	७६	स्नेहालम्बनमेकैव	२८
सोऽहं हृदमौ मया लब्ध-	१४०	सौन्दर्यकारणं नात्र	३५४	स्पर्द्धमानं समालोक्य	३७८
सोऽवोचच्छ्रुता देव-	२७०	सौमित्रिः सद्य पञ्च न	३४१	स्फटिकस्वच्छुकलिला	३१३
सोऽवोचच्छ्रुता राजवसि-	४०२	सौमित्रिषुजनिर्मुक्तै-	१६	स्फीतदेवानकारामे	२८४

स्फुटं यातोऽसि हा वत्स	२२८	स्वशरीरेऽपि निस्संगा	१४१	हा तात क्व प्रयातोऽसि	३००
स्फुटिताधरपादान्ताः	७२	स्वसंशयमशेषज्ञ	६७	हा देवि किमिदं मुग्धे	४६
स्फुरच्चण्डाचिरञ्ज्योतिः	४०४	स्वसार च समालिङ्ग्य	६६	हानिः पुरुषकारस्य	३२६
स्फुरत्स्फुलिङ्गचवाला च	४१०	स्वसारमेवमाश्वास्य	२५४	हा पुत्रौ सुमहावीर्यौ	३६६
स्फुरद्भुजगविस्फुरि-	३१७	स्वस्ति स्वस्तिलकोदार-	१५५	हा भद्र लक्ष्मण प्राप्त-	३६६
स्मरन् सीता मनोयाता	२६४	स्वस्तिमिहितचेतस्के	२२०	हा भ्रातः परमोदार	३६६
स्मरप्राप्तेयनिर्दग्ध	२६४	स्वाध्यायनिरतानन्यान्	१८६	हा भ्रातः प्रथम दृष्टो	६४
स्मरेषु हतचित्तोऽसौ	२८३	स्वामिने चावदन्नत्वा	३०	हा मया पुण्डरीकाक्षौ	१४५
स्मिन्वा च स जगादाय	१४३	स्वामिनो दशवक्त्रस्य	२६६	हा मातः कोऽयमत्रेति	२३
स्मर्यमाणोपदेशोऽसौ	२०६	स्वामिनो दृष्टिमार्गस्थाः	३१६	हा मातः पश्यतामुष्य	२०२
स्यन्दनैर्वारणैः सिंहै-	३६५	स्वामी त्व परमोऽहमाभि-	२४७	हा मातः सकल लोकं	४०३
स्यन्दनैर्विचिघैयनैः	३५६	स्वामी भरतखण्डाना	२८७	हा मातस्तादृशं दुःखं	४०३
स्यन्दनोद्वाहिनागाहि	३७६	स्वाहारेण क्वचित्तुताः	१६६	हा मेऽन्तःकरणच्छाय-	४०३
स्वच्छनीलाम्बरधर-	३०४	स्वेच्छया तेषु यातेषु	१४७	हार स्वयप्रभामिख्यं	१४७
स्वजन नैव तौ कश्चि-	१८६	स्वेच्छया पर्यटन्तस्ते	२११	हारराजितवक्त्रका	१५३
स्वजनस्योत्सवे जातो	२६१	स्वैरं स्वैरं जनकतनया	१२४	हा वत्स विधियोगेन	३६६
स्वनाथवचनात् साध्वी	३२६	[ह]		हा सीत इति भाषित्वा	२३६
स्वपाकौदपि पापीयान्	३०५	हंसकुलामफेनपटलप्रमिन्न-	२१७	हाहाकार नृपाः कृत्वा	२८
स्वप्नः किमेव सम्प्राप्तं	४०३	हंसस्ताराक्षरसि	६३	हा हा मातः किमेतन्तु	२०५
स्वप्नप्रतिममैश्वर्यं	१८६	हंसीव पद्मनीखण्डे	२२६	हाहाहीकारगम्भीरः	३३८
स्वप्नमेवं तु पश्यामि	१३७	हत महोपकारेण	३३	हिंसाधर्मविहीनाना	१६
स्वभावमागत दृष्ट्वा	२७७	हतवान् हन्यते पूर्वं	३७२	हिंसाया कारणं धोरं	६
स्वभावविद्यामप्यन्ना	२२५	हत्वा शत्रून् समुद्बृत्ता	३५२	हितं करोत्यसौ स्वस्य	१०८
स्वभावार्जवसम्पन्ना	६१	हनूमानप्यलं रेजे	३०४	हिमाहत इवात्यर्थ	४८
स्वयं दुर्मतिना साद्धं	३४१	हनूमानिति विख्यातः	३३०	हुताशनशिखागौरं	३०
स्वयंवरामिधं भूयः	४२	हनूमानिपुमिस्तस्य	३०६	हुतमार्यो द्विजो दीन-	२
स्वयमेव गमिष्यामि	२२१	हनूमान्यावदेतेन	३३६	हुता तत्र मया जाया	५७
स्वयमेव च सुग्रीवः	२८६	हन्ता सत्त्वसहस्राणा	१०७	हृदयागारमुद्गीतं	२४१
स्वर्गादिव ततोऽपस्तत्	१२६	हरिवाहननामाऽयं	३६	हृदये स्थापिताः कृच्छ्रा	४८
स्वर्गे राज्यं ददामीति	१७१	हस्तं हस्तेन समुपश्य	२६५	हे सुग्रीव सुहृत्स्व ते	३६७
स्वल्प इत्यनया बुद्ध्या	२६७	हस्तप्रहस्तसद्दीरौ	३७४	हेमकुम्भोपम गोवं	३०१
स्वल्पमप्यर्जितं पाप	१०	हस्तप्रहस्तसामन्ता-	३६६	हेमनानामणिस्फीतः	२८८
स्वल्पेन सुकृतेन त्व-	७१	हा कष्टं देव कस्मात् त्वं	२३६	क्षियमाणामथ प्रेक्ष्य	२३८
स्वशरीरमपि त्यक्त्वा	३०५	हा कान्त इति कुर्जश्च	६१	ह्लादनश्चपलश्चोल-	३६५

